10 OCT 2005

अध्यात्म और प्राण-ऊर्जा

प्रस्तुतकर्ता— लखपतेन्द्र देव जैन
B.E.(Hons), F.I.E.(I), C.E.(I)
सेवानिवृत्त सदस्य अभियन्ता
उत्तर प्रदेश राज्य विद्युत परिषद

आशीर्वचन—
परम पूज्य गुरुवर आचार्यरत्न श्री १०८ दयासागर जी महाराज

मूल्य—
(१) त्यागी—व्रतियों की वैयावृत्य
(२) आत्म चिन्तन— ध्यान
(३) प्राण ऊर्जा द्वारा स्व—पर कल्याण

"अध्यात्म और प्राण-ऊर्जा" नामक इस पुस्तक का विमोचन परम पूज्य आचार्य रत्न श्री दया सागर जी के पावन कर कमलों द्वारा उनकी दीक्षा जयन्ती दिनांक ११ अप्रैल २००५ को सम्पन्न हुआ।

मिलने का पता—
सी— ५७ ख, मन्दिर पार्क,
महानगर विस्तार,
लखनऊ— २२६००६
(उत्तर प्रदेश)

प्राक्कथन

हमारे आचार्यों की कृपा से जैन साहित्य आजकल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इसका श्रेय बीसवीं सदी के प्रमुख चारित्र चक्रवर्ती पूज्य आचार्य श्री १०८ शान्ति सागर जी को जाता है, जिनकी कृपा से आज अनेक पिच्छियां दृष्टिगोचर आती हैं। सभी अनुयोगों के ग्रंथ उपलब्ध हैं, इसलिए अध्यात्म के विषय में मुझ जैसे तुच्छ बुद्धि के व्यक्ति को कुछ भी लिखने की आवश्यकता नहीं थी, जबकि हमारे सौभाग्य से बड़े-बड़े आचार्यों द्वारा रचित महान ग्रंथ उपलब्ध हैं। फिर भी प्राण ऊर्जा द्वारा ध्यान के उपयोग के प्रासंगिकता में, मुझ जैसे अल्पज्ञों जिनको स्वयं के विषय में ही ज्ञान नहीं है कि मैं कहां हूं, कौन हूं, कहां से आया हूं और मेरा क्या भविष्य है के बोध व सहज सन्दर्भ हेतु इन प्रश्नों के उत्तर विभिन्न शास्त्रों के आधार से खोजने का प्रयत्न किया गया है।

चूंकि धर्म साधन का आधार शरीर है, अतएव उसकी शारीरिक एवम् मानसिक स्वस्थता आवश्यक है। इसलिए भाग २ में संक्षिप्त शरीर विज्ञान तथा भाग ३ में शरीर रक्षा कैसे करें– इनका वर्णन दिए गये हैं।

"प्राण ऊर्जा" – यह विषय दिगम्बर जैन समाज में अधिकांश लोगों के लिए नया है तथा अनेकों ने इसका शायद नाम नहीं सुना। यह कौन सा विज्ञान है। हम सभी में जो प्राण ऊर्जा शरीर है, उसकी क्या रचना है आदि का विवरण भाग ४ में दिया है। प्राण ऊर्जा शक्ति द्वारा प्राण ऊर्जा शरीर/ भौतिक दृश्यमान शरीर को कैसे स्वस्थ्य रखा जाए तथा और इसके अन्य उपयोग भाग ५ में दिया है। इस प्राण ऊर्जा को अध्यात्म के क्षेत्र में कैसे उपयोग किया जाए तथा आत्मोन्नति हेतु पंच परमेष्ठी के ध्यान में कैसे इसका उपयोग किया जाए, यह विवरण भाग ६ में दिया गया है।

प्राण ऊर्जा द्वारा उपचार के प्रशिक्षण चार प्रकार के हैं:–

(१) प्रारम्भिक व माध्यमिक उपचार एवं स्व-उपचार, दूरस्थ उपचार (२) उन्नत प्राण चिकित्सा (३) मनो रोग प्राण चिकित्सा तथा (४) रत्नों द्वारा प्राण उपचार चिकित्सा। मैंने इन चारों का प्रशिक्षण वर्ष १९९७ व १९९८ में लिया था। प्रारम्भिक

उपचार पर हिन्दी में पुस्तक प्रमुख बुक स्टॉल पर उपलब्ध है, जिसका नाम "प्राण शक्ति उपचार– प्राचीन विज्ञान और कला– लेखक श्री चोआ कोक सुई" हैं, किन्तु उक्त अन्य विषयों में बाजार में कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है। इनके प्रशिक्षण के समय अंग्रेजी भाषा में सम्बन्धित पुस्तक उपलब्ध कराई जाती हैं, किन्तु मेरी जानकारी में आज तक इनका हिन्दी रूपान्तर नहीं हुआ है। इन सब पुस्तकों के सार भाग ४ व ५ में वर्णित हैं।

इस पुस्तक के दो उद्देश्य हैं:–

(१) त्यागी–व्रतियों की वैयावृत्य– हमारे त्यागी-व्रतियों की वैयावृत्य के रोगी हो जाने पर, उनकी चिकित्सा करने में काफी कठिनाई आती है, जैसे योग्य वैद्य/डाक्टर की अनुपलब्धता, उनके विभिन्न वस्तुओं का त्याग, दिन में मात्र एक दफा आहार व जल लेना– उसमें भी उचित शुद्ध दवा की अनुपलब्धता, जिस घर में वे आहार ले रहे हों, वहां उनके रोग की जानकारी का न होना आदि।

मेरा करबद्ध त्यागीवृतियों के साथ के लोगों से प्रार्थना है कि वे इस पुस्तक का लाभ उठाकर यदि प्राण ऊर्जा चिकित्सा सीख लें, तो वे बगैर दवा के, बगैर स्पर्श के हमारे साधुओं व संघस्थ अन्य त्यागी-वृतियों का समय -समय पर उपचार करके वैयावृत्य करने का आनन्द उठायें। इस उपचार के पूर्व, उनसे अनापत्ति लेना कदाचित् आवश्यक होगी और उनका उपचार करने के लिए उनके दीक्षागुरु से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से आशीर्वाद लेना अत्यन्त आवश्यक होगा।

(२) स्व– आत्मोन्नति

स्वस्थ शरीर द्वारा, प्राण ऊर्जा के सिद्धान्तों का मनन करके, धीरे–धीरे उनका अभ्यास करते हुए, अपने शरीर को तथा दूसरों के शरीर को स्वस्थ रखने के काम में लाएं। फिर कुछ अभ्यास करने के बाद, आप भाग ६ में दिये गये विधि द्वारा प्राण ऊर्जा को ध्यान के उपयोग में कदाचित् ला सकेंगे। इसके लिए जैन धर्म का थोड़ा बहुत ज्ञान आवश्यक होगा, जिसके लिए भाग १ में दिया गया वर्णन कदाचित् पर्याप्त होगा।

कृतज्ञता

मैं परम पूज्य समाधिस्थ आचार्य श्री १०८ वीर सागर जी का अत्यन्त ऋणी हूं, जिन्होंने मुझे मेरी बालक अवस्था में दया करने के संस्कार दिए।

मैं परम पूज्य समाधिस्थ आचार्य श्री १०८ नेमिसागर जी अत्यन्त ऋणी हूं, जिन्होंने मुझे क्रोध व मान कषाय के नियंत्रण के लिए प्रेरित किया व मार्ग दर्शन दिया। उनके चरणों से जो अमृत झरता था, उसकी दिव्य अनुभूति मेरी चिर-स्थायी सम्पत्ति है। (स्थान– लखनऊ)।

मैं परम पूज्य आचार्य श्री १०८ दया सागर जी का अत्यन्त ऋणी हूं, जिन्होंने मुझे सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी और जिनके आशीर्वाद के बगैर इस पुस्तक का संकलन सम्भव नहीं था। (स्थान– लखनऊ/गुवाहाटी)

मैं परम पूज्य उपाध्याय श्री १०८ ज्ञान सागर जी का अत्यन्त ऋणी हूं, जिन्होंने मृत्यु को मित्रवत समझने और उसका स्वागत करने का उपदेश दिया (स्थान– सोनागिर)

मैं परम पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी का अत्यन्त ऋणी हूं, जिन्होंने जैन धर्म की सेवा करने की भावना प्रेरित की। (स्थान: अलवर, राजस्थान)

अन्त में मैं अपने पिता श्री स्व० श्री द्वारका प्रसाद जी जैन, माताश्री स्व० श्रीमती अनार देवी जैन का अत्यन्त कृतज्ञ हूं, जिन्होंने मुझे धर्म के संस्कार दिए। मैं अपने आदरणीय जीजाजी श्री भगवती प्रसाद जी जैन व बड़ी बहिन श्रीमती चन्द्र प्रभा जैन (जो चलती-फिरती धार्मिक चारित्र की जीवंत मूर्ति हैं) का अत्यन्त आभारी हूं, जिन्होंने मुझे समय-समय पर प्रेरणा दी। मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कमला जैन का सहयोग के लिए अत्यन्त आभारी हूं।

अल्पज्ञता

जिन वाणी एक महासागर है। उसके वर्णन में मुझ जैसे अल्पज्ञ से कदाचित भूल या गल्ती हो जाना स्वाभाविक है। मेरी मुनिराजों एवम् विद्वजनों से प्रार्थना है कि

वे इसके लिए मुझे क्षमा प्रदान करेंगे तथा सुधार कर पढ़ें। मेरे संज्ञान में यदि कोई भूल/गल्ती लायी जाएगी, तो मैं अत्यन्त अनुग्रहीत हूंगा।

एक और बात – भाग ५ में पुस्तक का विस्तार बहुत ज्यादा न बढ़ जाए, इसके लिए अंग्रेजी की वर्णमाला का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया गया है। आजकल के परिप्रेक्ष्य में इसको समझना सहज होगा।

पाठकगण से मेरी पुनः प्रार्थना है कि इस पुस्तक के माध्यम से त्यागी-व्रतियों की वैयावृत्य करें, अपने व दूसरों के शरीर को स्वस्थ रखें एवम् अपनी आत्मोन्नति हेतु ध्यान का प्रयास करें। जो भी धर्मात्मा व्यक्ति इस प्रकार त्यागी–व्रतियों की वैयावृत्य करेंगे, उनके चरणों में मेरा शत–शत प्रणाम होगा।

प्रस्तुतकर्ता एवं निवेदक–

लखपतेन्द्र देव जैन

अध्यात्म और प्राण ऊर्जा

SPIRITUALITY AND PRANIC ENERGY

अध्यात्म और प्राण ऊर्जा

विषयानुक्रमणिका

भाग	विषय	पृष्ठ
१.	अध्यात्म	१.१
२.	मानव शरीर विज्ञान	२.१
३.	शरीर रक्षा	३.१
४.	प्राण ऊर्जा विज्ञान	४.१
५.	प्राण ऊर्जा का उपचारादि में उपयोग	५.१
६.	प्राण ऊर्जा का अध्यात्म में उपयोग	६.१

प्रथम भाग

अध्यात्म

PART I

SPIRITUALITY

धर्म क्या है ?

१. धर्म वह है जो इस भवसागर में भटकते प्राणी को आत्मा से परमात्मा बनाकर शाश्वत आनंद प्रदान करे।

२. "चारित्तं खलु धम्मो"– अर्थात् चारित्र ही धर्म है। चारित्र का अभिप्राय सम्यक्दर्शन व सम्यग्ज्ञान से विभूषित सम्यक् चारित्र से है। इसके दो भेद हैं : व्यवहार चारित्र – गृहस्थ व मुनि धर्म तथा निश्चय चारित्र। व्यवहार (मुनि) चारित्र निश्चय चारित्र का कारण और निश्चय चारित्र (अथवा निश्चय रत्नत्रय) साक्षात मोक्ष का कारण है।

३. "वस्तु स्वभावो धम्मो" – अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है। आत्मा का क्या स्वभाव है ? मात्र अपने स्वरूप में परिणमन करना, न कि कर्म के वशीभूत अथवा राग, द्वेष, मोह में विभावरूप परिणमन करना। रत्नत्रय के आश्रय से इन सब विभावरूपी परिणतियों से छुटकारा मिलता है और तब आत्मा मात्र ज्ञाता, दृष्टा बनकर निज आत्मा में ही मग्न होकर मोक्ष प्राप्ति कर परमात्मा बन जाता है।

४. "अहिंसा परमो धर्म" – अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है। अहिंसा से यहाँ तात्पर्य मन, वचन, काय/कृत, कारित, अनुमोदना/समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ/क्रोध, मान, माया, लोभ के द्वारा होने वाली भाव व द्रव्य हिंसा से अपने आत्मा की हिंसा तथा समस्त षट काय के जीवों की हिंसा न होने देना से है।

५. "दया मूलस्य धर्म" – अर्थात् धर्म का मूल दया है। यह परिभाषा उक्त वर्णित (४) के अन्तर्गत ही आ जाती है।

६. उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य रूपी दशलक्षण धर्म है।

७. "आप्त" (जो परम वीतरागी, पूर्ण ज्ञानी एवम हितोपदेशी हो) द्वारा कथित वचन हैं, उन पर आचरण करना ही धर्म का पालन करना है। इसका पालन करते हुए ज्ञानी जन तटस्थ भाव से रहकर भेद विज्ञान के बल से आत्मा और

अनात्मा में अन्तर समझ लेते हैं, तो नवीन कर्मों का बंध होना बंद कर, कर्मों का आना (आश्रव) रोकते हैं जो संवर कहलाता है। फिर व्यवहार रत्नत्रय, तत्पश्चात निश्चय रत्नत्रय के बल से अधिकाधिक – यहाँ तक कि सम्पूर्ण निर्जरा करके आत्मा के मोक्ष अर्थात् आत्मा के विशुद्ध स्वभाव की प्राप्ति कर परमात्मा बन जाते हैं और पंच परावर्तन (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव) रूपी संसार से सदैव के लिए मुक्त हो जाते हैं।

उक्त सभी परिभाषायें अलग–अलग न होकर एक दूसरे की पूरक हैं अथवा सहगर्भित हैं।

भाग – १ अध्यात्म

अनुक्रमणिका

क्र०सं०	विषय		पृष्ठ
१	मैं कहाँ हूँ (त्रिलोक का वर्णन)		१.१
२.	मैं कौन हूँ (जीव का स्वरूप)		१.८१
३.	मैं कहाँ से आया हूँ (जीव का संसार में भ्रमण– आश्रव व बंध तत्त्व)		१.१०७
४.	मेरा क्या भविष्य है (सम्यकत्व की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ–संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्त्व)		१.१३६
५.	ध्यान		१.१५५
६.	प्रथम भाग का उपसंहार– सारांश		१.१७३
७.	परिशिष्ट		
	१.०१	अलौकिक गणित– संख्यामान	१.१७७
	१.०१(क)	शलाकात्रयनिष्ठापन निकालने की विधि	१.१८३
	१.०२	अलौकिक गणित– उपमामान	१.१८४
	१.०३	अलौकिक गणित– काल परिमाण	१.१९०
	१.०४	पंच परावर्तन काल	१.१९३
	१.०५	प्रातः स्मरणीय त्रिकाल वन्दनीय परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्तिसागर जी का अंतिम उपदेश	१.२०२
	१.०६	मन को कैसे जिएँ ?	१.२०६
	१.०७	पञ्च परमेष्ठी का लक्षण	१.२०९
	१.०८	श्रावक धर्म	१.२१५
	१.०८(क)	अभक्ष्य पदार्थ	१.२३०
	१.०९	कल्याणालोचना – अर्थ सहित	१.२३३
	१.१०	सल्लेखना	१.२४५
	१.१०(क)	मृत्यु से पूर्व होने वाले लक्षण	१.२५४
	१.११	श्री आदिनाथ प्रभु से प्रार्थना	१.२५८

अध्याय – १

मैं कहाँ हूँ

क्रम संख्या	विषय		पृष्ठ संख्या
१.	लोक		१.२
२.	अधोलोक–नरक		१.७
३.	भावनलोक		१.६
४.	मध्य लोक		१.१३
५.	व्यन्तर लोक		१.२३
६.	ज्योतिर्लोक		१.२४
७.	ऊर्ध्व लोक		१.२६
८.	अष्टम ईषत्प्राग्भार पृथ्वी		१.४२
९.	त्रिलोक जीवों के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें		१.४५
	(क)	योनि	१.४५
	(ख)	जन्म	१.४६
	(ग)	वेद	१.४६
	(घ)	कुल	१.४७
	(ङ.)	अवगाहना	१.४७
	(च)	पर्याप्ति	१.४८
	(छ)	प्राण	१.५१
	(ज)	संज्ञा	१.५२
	(झ)	जीव समास	१.५३
	(ञ)	मार्गणा	१.५४
	(ट)	गुणस्थान	१.६२
	(ठ)	जीवों की संख्या	१.७०
	(ड)	आयु	१.७७
	(ढ)	जिन भवन	१.७६
१०.	मेरी स्थिति		१.८०

मैं कहाँ हूँ

मङ्गलाचरण

अरिहन्त–स्तवन

घण–घाइ–कम्म–महणा, तिहुवण–वर–भव्व–कमल–मत्तंडा ।

अरिहा अणंत–णाणा, अणुवम–सोक्खा जयंतु जए ।।१।।

अर्थ– प्रबल घातिया कर्मों का मन्थन करने वाले, तीन लोक के उत्कृष्ट भव्यजीवरूपी कमलों के लिए मार्तण्ड (सूर्य), अनन्तज्ञानी और अनुपम सुख वाले अरिहन्त भगवान जग में जयवन्त होवें ।।१।।

सिद्ध–स्तवन

अट्ठ–विह–कम्म–वियला, णिट्ठिय–कज्जा पणट्ठ–संसारा।

दिट्ठ–सयलत्थ–सारा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।२।।

अर्थ– आठ प्रकार के कर्मों से रहित, करने योग्य कार्यों को कर चुकने वाले, संसार को नष्ट कर देने वाले और सम्पूर्ण पदार्थों के सार को देखने–वाले सिद्ध परमेष्ठी मेरे लिए सिद्धि प्रदान करें।।२।।

आचार्य–स्तवन

पंच–महव्वय–तुंगा, तक्कालिय–सपर–समय–सुदधारा।

णाणागुण–गण–भरिया, आइरिया मम पसीदंतु ।।३।।

अर्थ– पाँच महाव्रतों से उन्नत, तत्कालीन स्व–समय और परसमय स्वरूप श्रुतधारा (में निमग्न रहने) वाले और नाना गुणों के समूह से परिपूरित आचार्यगण मेरे लिए आनन्द प्रदान करें ।।३।।

उपाध्याय–स्तवन

अण्णाण–घोर–तिमिरे, दुरंत–तीरम्हि हिंडमाणाणं ।

भवियाणुज्जोययरा, उवज्झया वर–मदिं देंतु ।।४।।

अर्थ– दुर्गम–तीर वाले अज्ञान के गहन अन्धकार में भटकते हुए भव्य जीवों के लिए ज्ञानरूपी प्रकाश प्रदान करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी उत्कृष्ट बुद्धि प्रदान करें ।।४।।

साधु–स्तवन

थिर–धरिय–सीलमाला,ववगय–राया जसोह–पडहत्था ।

बहु–विणय –भूसियंगा, सुहाइं साहू पयच्छंतु ।।५।।

अर्थ–शीलव्रतों की माला को दृढ़तापूर्वक धारण करने वाले, राग से रहित, यश समूह से परिपूर्ण और विविध प्रकार के विनय से विभूषित अङ्गवाले साधु (परमेष्ठी) सुख प्रदान करें ।।५।।

अनन्तानन्त आकाश जो एक द्रव्य है और जिसका प्रमाण त्रिकाल के समयों से भी अनन्तगुणा है, सर्वज्ञ द्वारा स्पष्ट अवलोकित है। द्रव्य के सामान्य गुण जैसे सत्ता, उत्पाद– ध्रौव्य–व्यय आदि इसमें विराजमान हैं। यह जीवादिक समस्त द्रव्यों को युगपत अवकाश देता है तथा सर्वव्यापी अनन्तानन्त प्रदेशमयी है। यद्यपि आकाश द्रव्य निश्चयनय से अखंडित एक द्रव्य है, तथापि व्यवहारनय से इसके दो भेद हैं– लोकाकाश और अलोकाकाश। अनन्त अलोकाकाश के बहुमध्य में जिस भाग में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल ये पांच अन्य द्रव्य भी हैं, उस भाग को लोकाकाश कहते हैं और शेष भाग को अलोकाकाश कहते हैं। यह सब अनादि अनन्त हैं– इसको किसी ईश्वरादि ने बनाया नहीं है। ये छहों द्रव्य द्रव्यार्थिक नय से नित्य हैं, इसलिये लोक जो इनका समूह है कथंचित नित्य है और पर्यायार्थिक नय से अनित्य है, इसलिये लोक कथंचित अनित्य भी है।

(१) लोक–

लोक की ऊँचाई चौदह राजू, मोटाई (उत्तर–दक्षिण दिशा में) सर्वत्र सात राजू और पूर्व–पश्चिम दिशा में चौड़ाई मूल में सात राजू, मध्य में एक राजू, मध्य लोक और लोकांत के मध्य में पांच राजू और लोक के अंत में एक राजू है, जैसा कि चित्र नं १.०१ व १.०२ में दिखाया गया है। इसका आयतन ३४३ घनराजू होता है। यह सब

ओर से क्रमशः घनोदधि वातवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय द्वारा वेष्ठित है। लोक घनोदधिवातवलय के, घनोदधिवातवलय घनवातवलय के, घनवातवलय तनुवातवलय के और तनुवातवलय आकाश के आश्रित हैं। लोक के कथन में अलौकिक गणित का उपयोग हुआ है– इसके लिये परिशिष्ट १.०१, १.०२ तथा १.०३ देखिये।

मध्य लोक में एक रत्नप्रभा नामक पृथ्वी है, जिसमें अधोलोक का एक भाग भी है। शेष अधोलोक में अन्य छह पृथ्वी (शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा) तथा लोकांत में एक अष्टम ईषत्प्राग्भार पृथ्वी है। मध्य लोक में व्यन्तर, ज्योतिष्क देव तथा प्रथम पृथ्वी में भवनवासी देव तथा प्रथम रत्नप्रभा नरक है, अधोलोक की अन्य छह पृथ्वियों में क्रमशः दूसरा शर्कराप्रभा, तीसरा बालुकाप्रभा, चौथा पंकप्रभा, पांचवा धूमप्रभा, छठा तमःप्रभा और सातवां महातमःप्रभा नरक स्थित है। इस प्रकार नीचे के छह राजू में सात नरक तथा अन्त के एक राजू में मात्र निगोद जीवों की राशि है जो कि अनन्तानन्त प्रमाण है।

मध्य लोक में रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरिम भाग में १ लाख योजन गोल प्रथम जम्बूद्वीप, उसको वेष्ठित चारों ओर वलयाकार दो लाख योजन चौड़ा लवण समुद्र, इसको वेष्ठित वलयाकार चार लाख योजन चौड़ा धातकीखंड द्वीप, इसको वेष्ठित वलयाकार आठ लाख योजन चौड़ा कालोदधि समुद्र, इसको वेष्ठित वलयाकार सोलह लाख योजन चौड़ा पुष्कर द्वीप, फिर इसी प्रकार असंख्यात समुद्र, द्वीप हैं तथा अन्त में स्वयम्भूरमण द्वीप, फिर स्वयम्भूरमण समुद्र है। इस प्रकार इनका व्यास क्रमशः १ लाख योजन, ५ लाख योजन, १३ लाख योजन, २९ लाख योजन, ६१ लाख योजन, ..., तथा अन्त के स्वयम्भूरमण समुद्र का एक राजू है। पुष्कर द्वीप के प्रथम अर्ध भाग की सोलह लाख से आधी अर्थात आठ लाख योजन चौड़ाई है, इस द्वीप में बीच में गोलाकार मानुषोत्तर पर्वत है। जम्बू द्वीप, लवण समुद्र, धातकीखंड द्वीप, कालोदधि समुद्र व इस (प्रथम अर्ध) पुष्करार्द्ध द्वीप अर्थात मानुषोत्तर पर्वत तक मानुष क्षेत्र है, अर्थात मनुष्य केवल इसी क्षेत्र में रह सकते हैं और इसका उल्लंघन नहीं कर सकते। इसका व्यास ४५ लाख योजन है।

ऊर्ध्व लोक में विमानों में कल्पवासी देव हैं, जो कि सौधर्म–ईशान, माहेन्द्र–सानत्कुमार, ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर, लांतव–कापिष्ठ, शुक्र–महाशुक्र, शतार–सहस्त्रार,

आनत–प्राणत तथा आरण–अच्युत सोलह स्वर्गों के नाम से विख्यात हैं। इसके आगे कल्पातीत विमान हैं। सोलहवें स्वर्ग के ऊपर अधो–मध्य–ऊर्ध्व ग्रैवेयिक विमान हैं। अभव्य जीव इनसे ऊपर नहीं जा सकते हैं। ग्रैवेयिक के ऊपर नव अनुदिश तथा पांच विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि नामक अनुत्तर विमान हैं।

सर्वार्थसिद्धि विमान के ऊपर अष्टम ईषत्प्राग्भार नामक पृथ्वी है, जिसके उपरिम भाग में ४५ लाख योजन प्रमाण गोल सिद्ध शिला है।

इसके ऊपर सिद्धशिला के भी ऊपर तनुवातवलय के अन्तिम भाग में त्रिकाल वन्दनीय, सर्वोत्कृष्ट पद के धारक, अनन्तानन्त सिद्ध भगवान विराजमान हैं, जिनके चरणों की नित्य प्रति, उत्कृष्ट भक्ति एवम् विनयपूर्वक मैं वन्दना करता हूं।

लोकाकाश में आकाश के अतिरिक्त पांच अन्य द्रव्य – जीव (जिनका प्रमाण अनन्तानन्त है), पुद्गल द्रव्य (जो जीव द्रव्य से अनन्त गुणे हैं), धर्म द्रव्य (जो लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी हैं), अधर्म द्रव्य (जो लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी हैं) और काल द्रव्य है (जो एक प्रदेशी है, अर्थात लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु अवस्थित है और इस प्रकार समस्त कालाणुओं की कुल संख्या लोक प्रमाण असंख्यात है)। धर्म-अधर्म द्रव्य क्रमशः जीव व पुद्गल के गमन/स्थिति में सहकारी हैं, काल द्रव्य समस्त द्रव्यों के वर्तना में सहकारी है तथा आकाश द्रव्य समस्त द्रव्यों को अवकाश देने में सहकारी है।

लोक के बहु मध्य भाग में ऊपर लोकान्त से कुछ कम (अर्थात ३, २१, ६२, २४१ $\frac{२}{३}$ धनुष कम) तेरह राजू नीचे तक, एक राजू चौड़े और एक राजू मोटे भाग में त्रस जीव (द्वीइन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त) अवस्थित हैं किन्तु उपपाद और मारणांतिक समुद्घात में परिणत त्रस तथा लोकपूरणसमुद्घात को प्राप्त केवली का आश्रय करके सारा लोक त्रस–नाली है। इन तीन अवस्थाओं में त्रस जीव त्रस-नाली के बाहर भी पाये जाते हैं। समुद्घात का वर्णन आगे क्रम (६) (झ) (१४) में दिया है। एकेन्द्रिय जीव समस्त लोक में हैं।

तीन लोक का दिग्दर्शन चित्र १.०१ व १.०२ में दिया है।

(२) अधोलोक– नरक

विवरण/नरक	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पञ्चम	षष्ठि	सप्तम
स्थिति	प्रथम १८०,००० योजन मोटी रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे के ८०,००० यो. मोटे अब्बहुल भाग में	द्वितीय शर्कराप्रभा पृथ्वी– ३२,००० योजन मोटी	तृतीय बालुकाप्रभा पृथ्वी– २८,००० योजन मोटी	चतुर्थ पंकप्रभा पृथ्वी– २४,००० योजन मोटी	पञ्चम धूमप्रभा पृथ्वी– २०,००० योजन मोटी	षष्ठम तमःप्रभा पृथ्वी– १६,००० योजन मोटी	सप्तम महातमः प्रभा पृथ्वी– ८,००० योजन मोटी
		प्रकारान्तर से मोटाई– योजन					
		१,३२,०००	१,२८,०००	१,२०,०००	१,१८,०००	१,१६,०००	१,०८,०००
बिलों की कुल संख्या–८४ लाख	३० लाख	२५ लाख	१५ लाख	१० लाख	३ लाख	९९,९९५	५
उष्ण/शीत	उष्ण	उष्ण	उष्ण	उष्ण	३/४ भाग उष्ण १/४ भाग शीत	शीत	शीत
अवधिज्ञान का क्षेत्र	४ कोस	३ १/२ कोस	३ कोस	२ १/२ कोस	२ कोस	१ १/२ कोस	१ कोस
जघन्य आयु	१०,००० वर्ष	पिछले नरक की उत्कृष्ट आयु से एक समय अधिक					
उत्कृष्ट आयु– सागर	१	३	७	१०	१७	२२	३३
ऊँचाई (अन्तिम पटल में)	७ धनुष ३ हाथ ६ अंगुल (प्रथम पटल में ३ हाथ)	१५ धनुष २ हाथ १२ अंगुल	३१ धनुष १ हाथ	६२ धनुष २ हाथ	१२५ धनुष	२५० धनुष	५०० धनुष

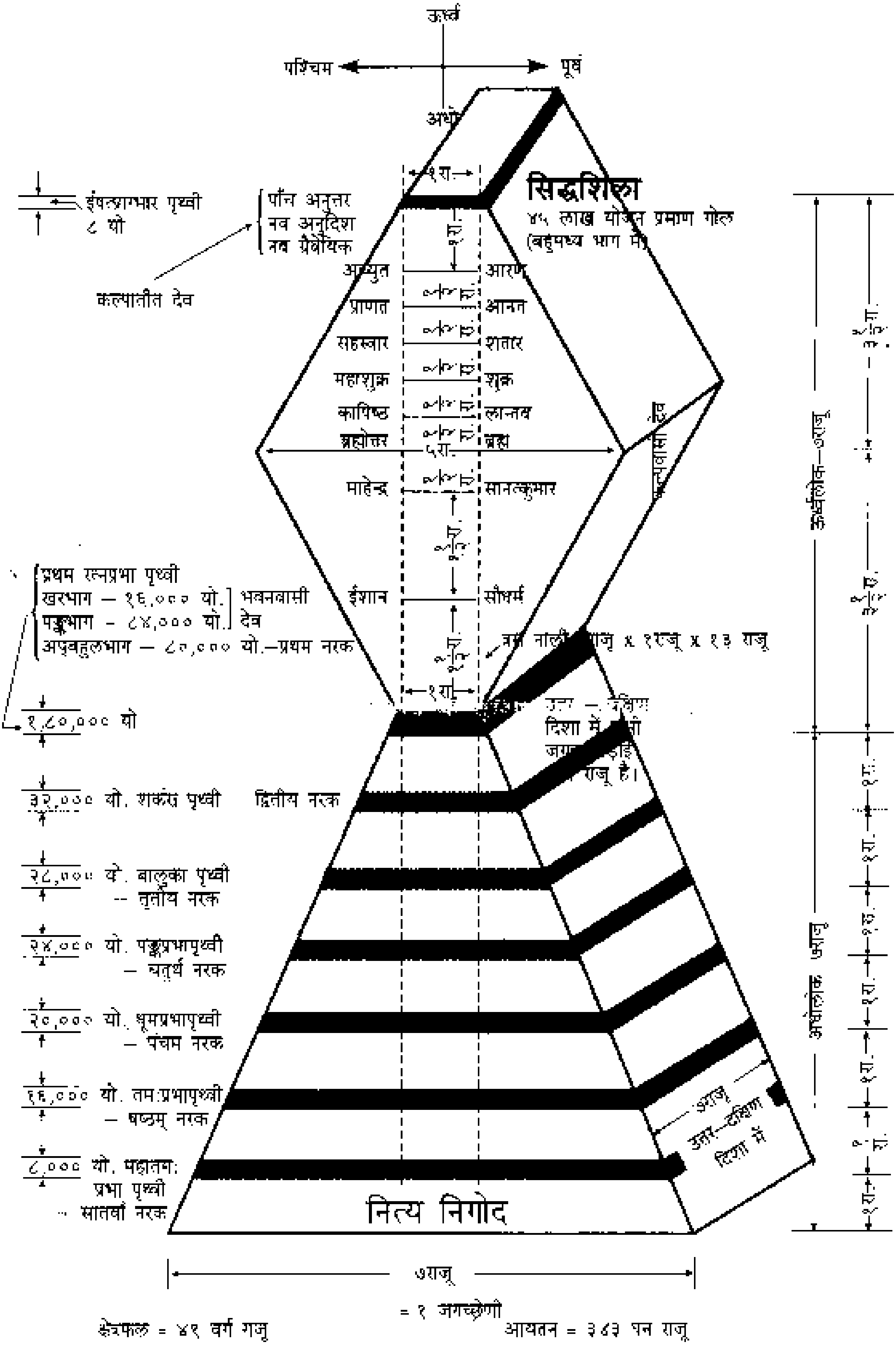
ऊर्ध्व
पश्चिम
पूर्व
अधो
सिद्धशिला
४५ लाख योजन प्रमाण गोल
(बहुमध्य भाग में)
ईषत्प्राग्भार पृथ्वी
८ यो
पाँच अनुत्तर
नव अनुदिश
नव ग्रैवेयक
कल्पातीत देव
अच्युत
आरण
प्राणत
आनत
सहस्त्रार
शतार
महाशुक्र
शुक्र
कापिष्ठ
लान्तव
ब्रह्मोत्तर
ब्रह्म
५रा.
माहेन्द्र
सानत्कुमार
ईशान
सौधर्म
१रा.
प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी
खरभाग – १६,००० यो.
पङ्कभाग – ८४,००० यो.
भवनवासी देव
अप्बहुलभाग – ८०,००० यो.–प्रथम नरक
१,८०,००० यो
३२,००० यो. शर्करा पृथ्वी
द्वितीय नरक
२८,००० यो. बालुका पृथ्वी
– तृतीय नरक
२४,००० यो. पङ्कप्रभापृथ्वी
– चतुर्थ नरक
२०,००० यो. धूमप्रभापृथ्वी
– पंचम नरक
१६,००० यो. तमःप्रभापृथ्वी
– षष्ठम् नरक
८,००० यो. महातमः
प्रभा पृथ्वी
– सातवां नरक
नित्य निगोद
त्रस नाली
राजू x १राजू x १३ राजू
उत्तर – दक्षिण
दिशा में सभी
जगह
राजू है।
७राजू
उत्तर–दक्षिण
दिशा में
ऊर्ध्वलोक–७राजू
अधोलोक ७राजू
७राजू
= १ जगच्छ्रेणी
क्षेत्रफल = ४९ वर्ग राजू
= १ जगप्रतर
आयतन = ३४३ घन राजू
= लोक

लोक

चित्र १.०१

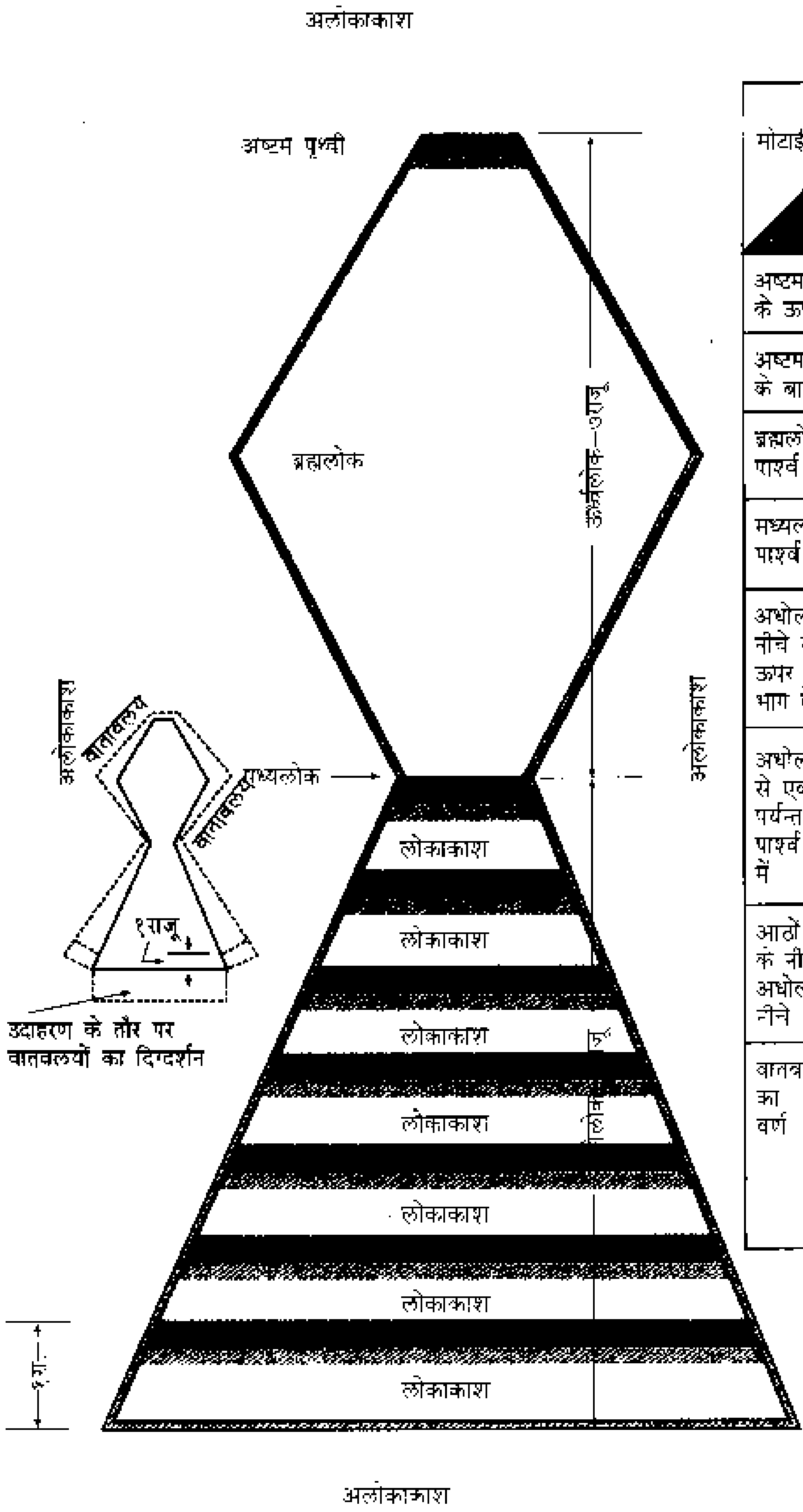

मोटाई / की	घनोदधि	घन	तनु
अष्टम पृथ्वी के ऊपर	२ कोस	१ कोस	१५७५ धनुष
अष्टम पृथ्वी के बाजू में	५ यो.	४ यो.	३ यो.
ब्रह्मलोक के पार्श्व भाग में	७ यो.	५ यो.	४ यो.
मध्यलोक के पार्श्व भाग में	५ यो.	४ यो.	३ यो.
अधोलोक के नीचे से १ राजू ऊपर पार्श्व भाग में	७ यो.	५ यो.	४ यो.
अधोलोक में नीचे से एक राजू पर्यन्त तक पार्श्व भाग में	२०,००० यो.	२०,००० यो.	२०,००० यो.
आठों पृथ्वियों के नीचे तथा अधोलोक के नीचे	२०,००० यो.	२०,००० यो.	२०,००० यो.
वातवलयों का वर्ण	गाय के मूत्र सदृश्य	मूँग के सदृश्य	विविध वर्णों वाला

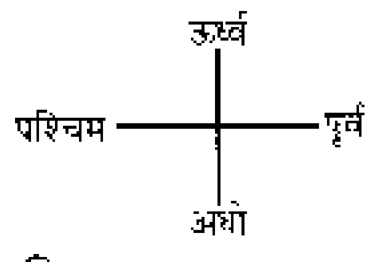

चित्र १.०२

विवरण / नरक	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पञ्चम	षष्ठि	सप्तम
जीवों की संख्या =J (जगच्छ्रेणी) X घनांगुल का दूसरा वर्गमूल (उत्कृष्ट संख्या का प्रमाण)	कुल नारकी जीवों की संख्या में से दूसरे से सातवें नारकीयों की संख्या घटाने पर	J ÷ J का बारहवां वर्गमूल	J ÷ J का दसवां वर्गमूल	J ÷ J का आठवां वर्गमूल	J ÷ J का छठवां वर्गमूल	J ÷ J का तीसरा वर्गमूल	J ÷ J का दूसरा वर्गमूल
नरक जाने वाले जीव (तक)	असंज्ञी जीव	सरी सृप	पक्षी	सर्प	सिंह	स्त्री	मत्स्य तथा मनुष्य
	अर्थात् ये जीव अधिकतम दर्शाये नरक तक जा सकते हैं।						
नरक से निकलकर कहां जन्म लेता है	कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, मनुष्य / तिर्यञ्च गति	कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, मनुष्य / तिर्यञ्च गति	कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, मनुष्य / तिर्यञ्च गति	कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, मनुष्य / तिर्यञ्च गति	कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, मनुष्य / तिर्यञ्च गति	कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, मनुष्य / तिर्यञ्च गति	कर्मभूमिज, संज्ञी, पर्याप्तक, गर्भज, तिर्यञ्च गति
नरक से निकलकर क्या नहीं हो सकता —नारायण बलभद्र चक्रवर्ती तथा				तीर्थंकर	चरम शरीरी	सकल संयमी	सम्यग्मिथ्या – दृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि, देशसंयमी Δ
लेश्या— अशुभ	कापोत का जघन्य अंश	कापोत का मध्यम अंश	कापोत का उत्कृष्ट अंश और नील का जघन्य अंश	नील का मध्यम अंश	नील का उत्कृष्ट अंश और कृष्ण का जघन्य अंश	कृष्ण का मध्यम अंश	कृष्ण का उत्कृष्ट अंश

Δ यह साधारण कथन की अपेक्षा से है, सातवीं पृथ्वी से निकले हुए जीव विरले ही सम्यक्त्व के धारक होते हैं।

(३) भावन लोक

स्थिति :

प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में ६ प्रकार के नागकुमारादि भवनवासी देव तथा पङ्क भाग में असुरकुमार देवों के भवन हैं। दस प्रकार के भवनवासी देव– उनके नाम, वर्ण, भवन संख्या आदि निम्नवत् हैं:–

प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी

खर भाग	१६,००० यो.
पङ्क भाग	८४,००० यो.
अप्‌बहुल भाग	८०,००० यो.

प्रकार	इन्द्रों के नाम		चिन्ह	वर्ण	भवन संख्या (लाख में)	ऊंचाई	जघन्य आयु	*उत्कृष्ट आयु (दक्षिणेन्द्र की)	इन्द्र की देवियों की उत्कृष्ट आयु	
	दक्षिणेन्द्र	उत्तरेन्द्र							दक्षिणेन्द्र	उत्तरेन्द्र
असुर कुमार	चमर	वैरोचन	चूड़ामणि	कृष्ण	६४	२५ धनुष	१०,००० वर्ष	१ सागर	$२\frac{१}{२}$ पल्य	३ पल्य
नाग कुमार	भूतानन्द	धरणानन्द	सर्प	काल श्यामल	८४	१० धनुष	"	३ पल्य	१/८ पल्य	कुछ अधिक १/८ पल्य
सुपर्ण कुमार	वेणु	वेणुधारी	गरुड़	श्यामल	७२	"	"	$२\frac{१}{२}$ पल्य	३ पूर्व कोटि	कुछ अधिक ३ पूर्व कोटि
द्वीप कुमार	पूर्ण	वशिष्ठ	हाथी	श्यामल	७६	"	"	२ पल्य	३ करोड़ वर्ष	कुछ अधिक ३ करोड़ वर्ष
उदधि कुमार	जलप्रभ	जलकान्त	मगर	काल श्यामल	७६	"	"	$१\frac{१}{२}$ पल्य	"	"

प्रकार	इन्द्रों के नाम		चिन्ह	वर्ण	भवन संख्या (लाख में)	ऊंचाई	जघन्य आयु	*उत्कृष्ट आयु (दक्षिणेन्द्र की)	इन्द्र की देवियों की उत्कृष्ट आयु	
	दक्षिणेन्द्र	उत्तरेन्द्र							दक्षिणेन्द्र	उत्तरेन्द्र
स्तनित–कुमार	घोष	महाघोष	वर्धमान (स्वस्तिक)	काल श्यामल	७६	१० धनुष	१०,००० वर्ष	१ १/२ पल्य	३ करोड़ वर्ष	कुछ अधिक ३ करोड़ वर्ष
विद्युत कुमार	हरिषेण	हरिकान्त	वज्र	बिजली के सदृश	७६	〃	〃	〃	〃	〃
दिक्कुमार	अमितगति	अमित–वाहन	सिंह	श्यामल	७६	〃	〃	〃	〃	〃
अग्नि कुमार	अग्नि–शिखी	अग्नि–वाहन	कलश	जलती अग्नि की ज्वाला के समान	७६	〃	〃	〃	〃	〃
वायु कुमार	वेलम्ब	प्रभंजन	अश्व (तुरग)	नील कमल	९६	〃	〃	〃	〃	〃
कुल					७७२					

*उत्तरेन्द्र की उत्कृष्ट आयु दक्षिणेन्द्र की उत्कृष्ट आयु से कुछ अधिक होती है।

प्रत्येक इन्द्र (राजा सदृश) के दस परिवार देव इस प्रकार हैं:

प्रतीन्द्र	–	युवराज सदृश
त्रायस्त्रिंश	–	पुत्र सदृश
सामानिक	–	कलत्र अथवा पत्नी तुल्य
लोकपाल	–	तंत्रपालों के समान (पूर्व में सोम, दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण तथा उत्तर में धनद)
तनुरक्षक	–	अंगरक्षक के समान
तीन प्रकार के पारिषद	–	बाह्य, मध्य, आभ्यन्तर समिति के सदृश
सात प्रकार के अनीक	–	सेना तुल्य (निम्नवत्)

प्रकार	अनीकों के नाम
असुरकुमार	महिष, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
नागकुमार	नाव, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
सुपर्णकुमार	गरुड़, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
द्वीपकुमार	हाथी, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
उदधिकुमार	मगर, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
स्तनितकुमार	गैंडा, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
विद्युत्कुमार	ऊँट, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
दिक्कुमार	सिंह, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
अग्निकुमार	शिविका, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी
वायुकुमार	अश्व, घोड़ा, रथ, हाथी, प्यादे, गन्धर्व और नर्तकी

प्रकीर्णक	–	पुरजन सदृश
आभियोग्य	–	दास सदृश
किल्विषिक	–	चाण्डाल की उपमा को धारण करने वाले

असुरकुमार देव नरकों में जाकर नारकियों को आपस में लड़ाया करते हैं।

भवनवासी देवों में आयु बांधने के कारण

ज्ञान और चारित्र में दृढ़ शङ्का सहित, संक्लेश परिणाम वाले तथा मिथ्यात्व भाव से संयुक्त, दोषपूर्ण चारित्र वाले, उन्मार्गगामी, निदान भावों से युक्त, पापों की प्रमुखता से संयुक्त, कामिनी के विरह से जर्जरित, कलहप्रिय, पापिष्ठ, अविनयी, सत्य वचन से रहित जीव भवनवासी देवों में जन्म लेते हैं। तीर्थंकर जिन प्रतिमा एवं आगम--ग्रन्थादिक के विषय में प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करने वाले (जीव) किल्विषिक देवों में उत्पन्न होते हैं। जो कषायों में आसक्त हैं, दुश्चारित्र (क्रूराचारी) हैं तथा वैर भाव में रुचि रखते हैं वे असुरों में उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त जो जीव तपश्चरण से पुन्य संचय करते हुए देवायु बांध लेते हैं, किन्तु बाद में सम्यक्त्वादि से च्युत हो जाते हैं, वे जीव भी भवनवासी देवों में जन्म लेते हैं। किन्तु विशुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव कदापि इनमें जन्म नहीं लेते।

इन सब देवों में पीत लेश्या का जघन्य अंश रहता है।

सम्यक्त्व का ग्रहण

ये जीव जन्म लेकर पश्चाताप करके, सम्यक्त्व को ग्रहण कर सकते हैं। कोई जिन महिमा (पंचकल्याणाकादि) के दर्शन से, कोई देवों की ऋद्धि के देखने से, कोई जातिस्मरण और कितने ही देव उत्तम धर्मोपदेश की प्राप्ति से दुरन्त संसार को नष्ट करने वाले सम्यग्दर्शन को ग्रहण करते हैं।

भवनवासी देव अपनी आयु पूर्ण करके कहां जन्म लेते हैं:

मिथ्यादृष्टि जीव कर्मभूमि में गर्भज और पर्याप्त मनुष्य, तिर्यञ्च में उत्पन्न होते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव कर्मभूमि में गर्भज और पर्याप्त मनुष्य में उत्पन्न होते हैं, किन्तु वे शलाका पुरुष नहीं होते। उन्हीं में किसी को मोक्ष की प्राप्ति भी हो जाती है।

भवनवासी देवों की संख्या = जगच्छ्रेणी x घनांगुल का प्रथम वर्गमूल

जिन भवनों की संख्या = ७,७२,००,०००

(४) मध्य लोक

प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में सबसे मध्य में १ लाख रज्जू प्रमाण गोल जम्बूद्वीप अवस्थित है, जिसका वर्णन चित्र १.०३ व १.०४ में दिया है। जम्बूद्वीप को चूड़ी के समान वेष्ठित किये हुए लवण समुद्र (चित्र १.०५) स्थित है जो जम्बूद्वीप से दुगुना, अर्थात २ लाख योजन चौड़ा है और १००० योजन गहरा है। इसको घेरे हुए धातकीखण्ड द्वीप है जो लवण समुद्र से दूना अर्थात ४ लाख योजन चौड़ा है। इसको घेरे हुए कालोदधि समुद्र है जो ८ लाख योजन चौड़ा है और १००० योजन गहरा है। इसके चारों ओर चूड़ी के समान अवस्थित पुष्कर द्वीप है, जो १६ लाख योजन चौड़ा है। इसके गोलाकार मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है जो १,७२१ योजना ऊँचा है। मनुष्य व विद्याधर इस पर्वत को उलंघ नहीं सकते हैं, अर्थात आधे पुष्कर द्वीप के आगे नहीं जा सकते हैं। इस प्रकार यह ढाई द्वीप लवण समुद्र तथा कालोदधि समुद्र सहित मानुष क्षेत्र है तथा ढाई द्वीप के नाम से प्रसिद्ध है, जो चित्र १.०६ में दिखाया है। धातकीखण्ड द्वीप व पुष्करार्द्ध द्वीप की रचना जम्बूद्वीप सदृश ही है, केवल लम्बाई आदि में अन्तर है। धातकीखण्ड द्वीप व पुष्करार्द्ध प्रत्येक में २ भरत क्षेत्र, २ ऐरावत क्षेत्र, २ हैमवत क्षेत्र, २ हैरण्यवत क्षेत्र, २ हरि क्षेत्र, २ रम्यक क्षेत्र, २ देवकुरु, २ उत्तर कुरु व २ विदेह क्षेत्र हैं। कल्पकाल (अर्थात अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल, जो दस-दस कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर की है)भरत क्षेत्रों व ऐरावत क्षेत्रों में रहता है। अवसर्पिणी के प्रथम सुषमा सुषमा काल के ४ कोड़ा कोड़ी सागर, द्वितीय सुषमा काल के ३ कोड़ा कोड़ी सागर, तृतीय सुषमा दुःषमा काल के २ कोड़ा कोड़ी सागर, चतुर्थ दुःषमा सुषमा काल के ४२००० वर्ष कम १ कोड़ा कोड़ी सागर, पञ्चम दुःषमा काल के २१,००० वर्ष व षष्ठम दुःषमा दुःषमा काल के २१,००० वर्ष होते हैं। इनमें क्रमशः उत्तम भोगभूमि, मध्यम भोगभूमि, जघन्य भोग भूमि, कर्म भूमि का काल अर्थात मोक्ष जाने की योग्यता, दुःखभरी एवं अति दुःखमयी काल होता है।

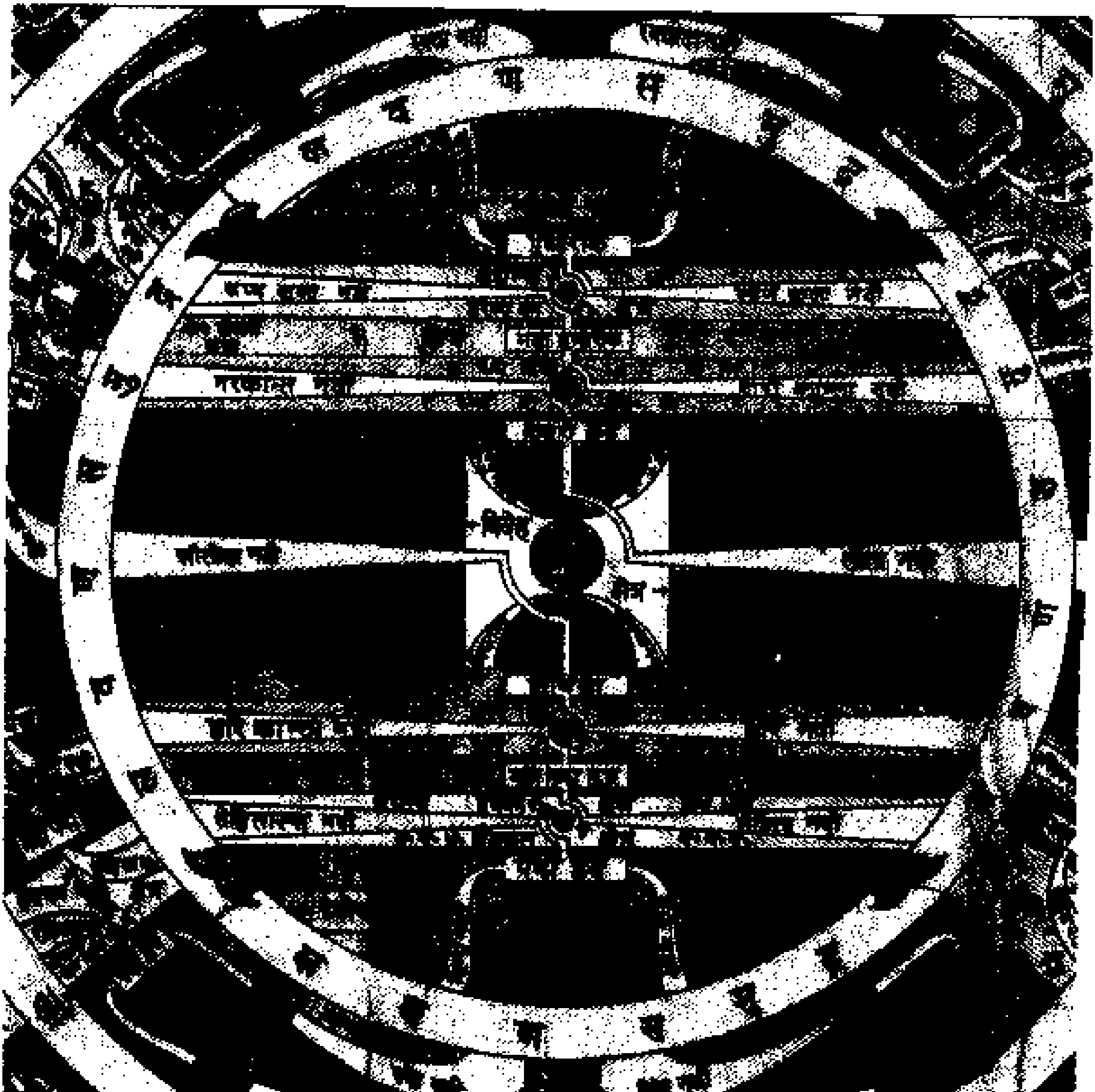

	वृषभाचल — नाभिगिरि पर्वत			
	नाम	ऊँचाई	मूल में	क्षेत्र
•	वृषभाचल	१००	१००	भरत
●	नाभिगिरि	१०००	१०००	हैमवत
●	नाभिगिरि	१०००	१०००	हरि
●	नाभिगिरी	१०००	१०००	रम्यक
●	नाभिगिरि	१०००	१०००	हैरण्यवत
•	वृषभाचल	१००	१००	ऐरावत
	योजन			

कुरु जम्बू—शाल्मलि वृक्ष देवकुरु में

●	जम्बूवृक्ष—उत्तरविदेह मे	●	शाल्मलिवृक्ष—दक्षिणविदेह

उत्तर—दक्षिण दिशा मे चौडाई—योजन में			
भरत—ऐरावत	५२६ $\frac{६}{१९}$	हरि—रम्यक	८४२१ $\frac{१}{१९}$
हिमवान—शिखरी	१०५२ $\frac{१२}{१९}$	निषध—नील	१६८४२ $\frac{२}{१९}$
हैमवत—हैरण्यवत	२१०५ $\frac{५}{१९}$	विदेहक्षेत्र	३३६८४ $\frac{४}{१९}$
महाहिमवान—रुक्मि	४२१० $\frac{१०}{१९}$		

सरोवर				
नाम	ल.	चौ.	ग.	
पद्म	१०००	५००	१०	
महापद्म	२०००	१०००	२०	
तिगिंछ	४०००	२०००	४०	योजन
केसरी	४०००	२०००	४०	
पुण्डरीक	२०००	१०००	२०	
महापुण्डरीक	१०००	५००	१०	

उत्तर / दक्षिण / पूर्व / पश्चिम

जम्बू—द्वीप

चित्र १.०३

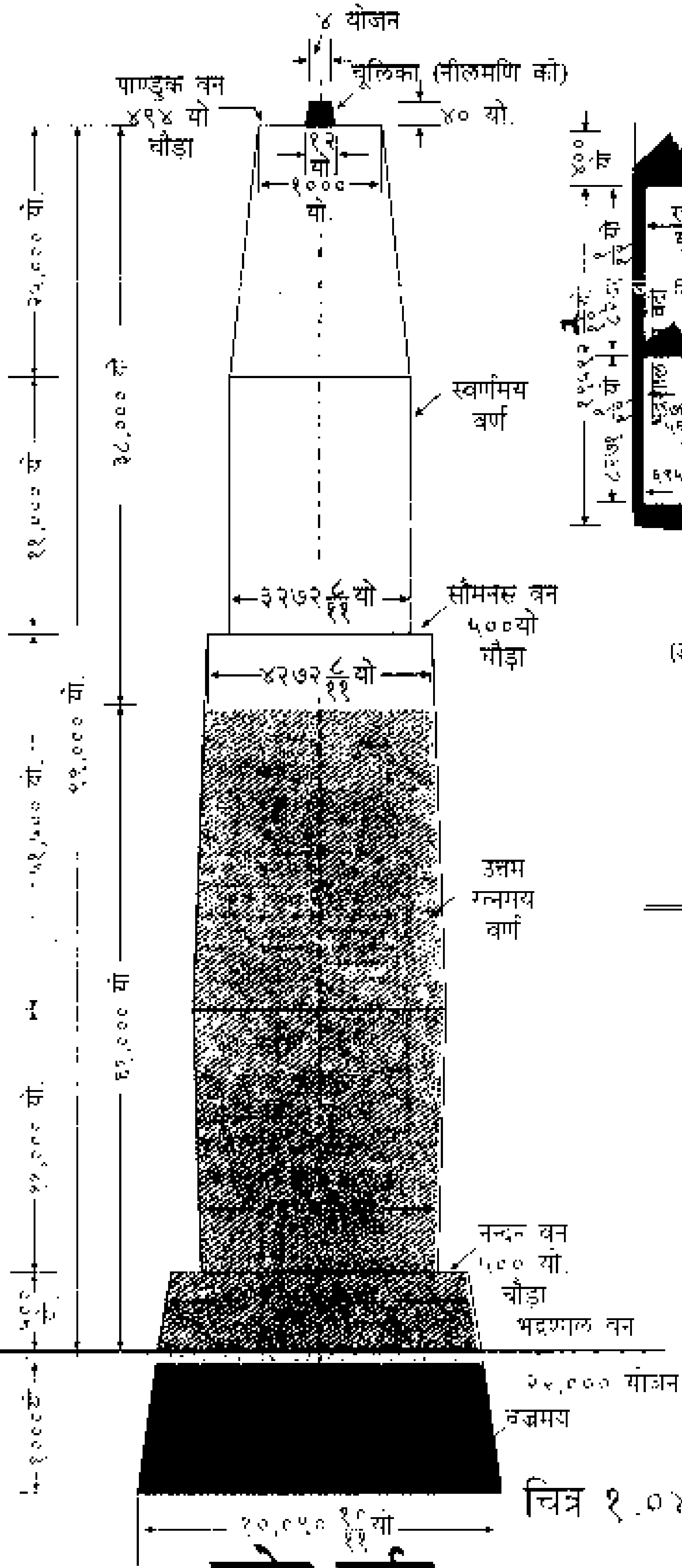

चित्र १.०४

सुमेरु पर्वत

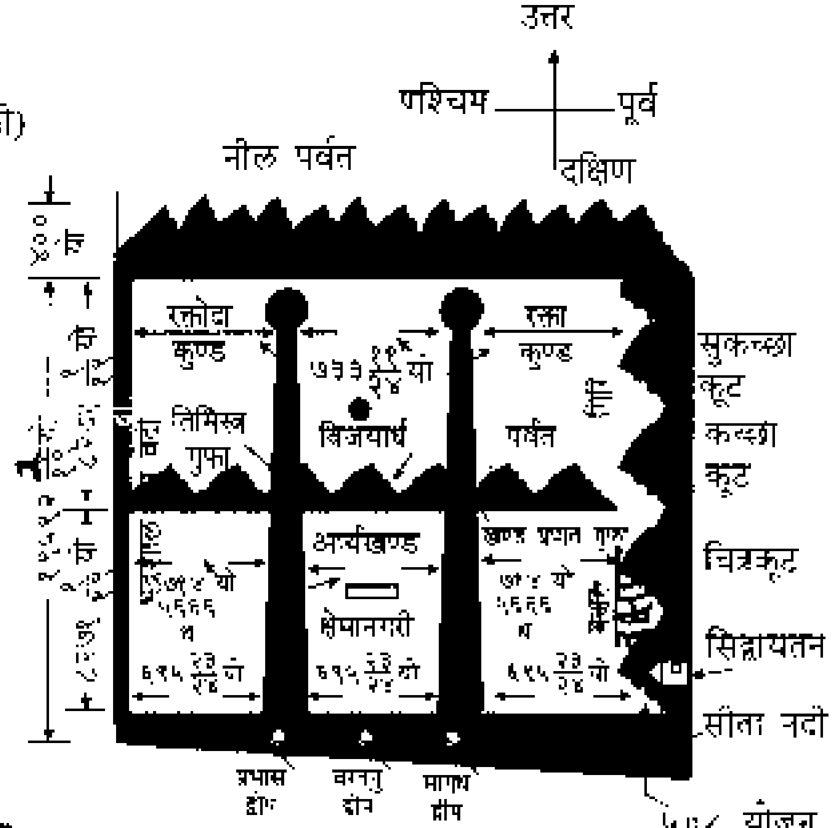

विदेह का कच्छा क्षेत्र
(अन्य क्षेत्र इसी प्रकार समझना)

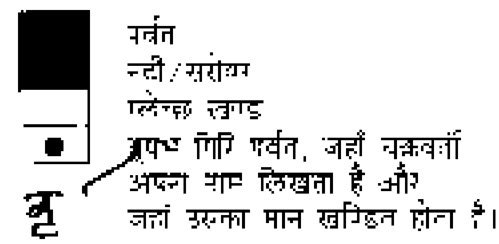

बत्तीस कर्मभूमियाँ

	क्षेत्र	प्रधान नगरी	क्षेत्र	प्रधान नगरी	
श्री बाहु स्वामी	उत्तर — पश्चिम		उत्तर — पूर्व		श्री सीमंधर स्वामी
	वप्रा	विजया	कच्छा	क्षेमानगरी	
	सुवप्रा	वैजयन्ता	सुकच्छा	क्षेमपुरी	
	महावप्रा	जयन्ता	महाकच्छा	रिष्टा	
	वप्रकावती	अपराजिता	कच्छकावती	अरिष्टपुरी	
	गंधा	चक्रपुरी	आवर्ता	खड्गा	
	सुगंधा	खड्गपुरी	लांगलावर्ता	मंजूषा	
	गंधिला	अयोध्या	पुष्कला	औषधपुरी	
	गंधमालिनी	अवध्या	पुष्कलावती	पुण्डरीकिणी	
श्री सुबाहु स्वामी	दक्षिण — पश्चिम		दक्षिण — पूर्व		श्री युगमंधर स्वामी
	पद्मा	अश्वपुरी	वत्सा	सुसीमा	
	सुपद्मा	सिंहपुरी	सुवत्सा	कुण्डला	
	महापद्मा	महापुरी	महावत्सा	अपराजिता	
	पद्मकावती	विजयपुरी	वत्सकावती	प्रभंकरा	
	शंखा	अरजा	रम्या	अंका	
	नलिनी	विरजा	सुरम्यका	पद्मावती	
	कुमुदा	अशोका	रमणीया	शुभा	
	सरिता	वीतशोका	मंगलावती	रत्नसंचया	

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत विदेह क्षेत्र

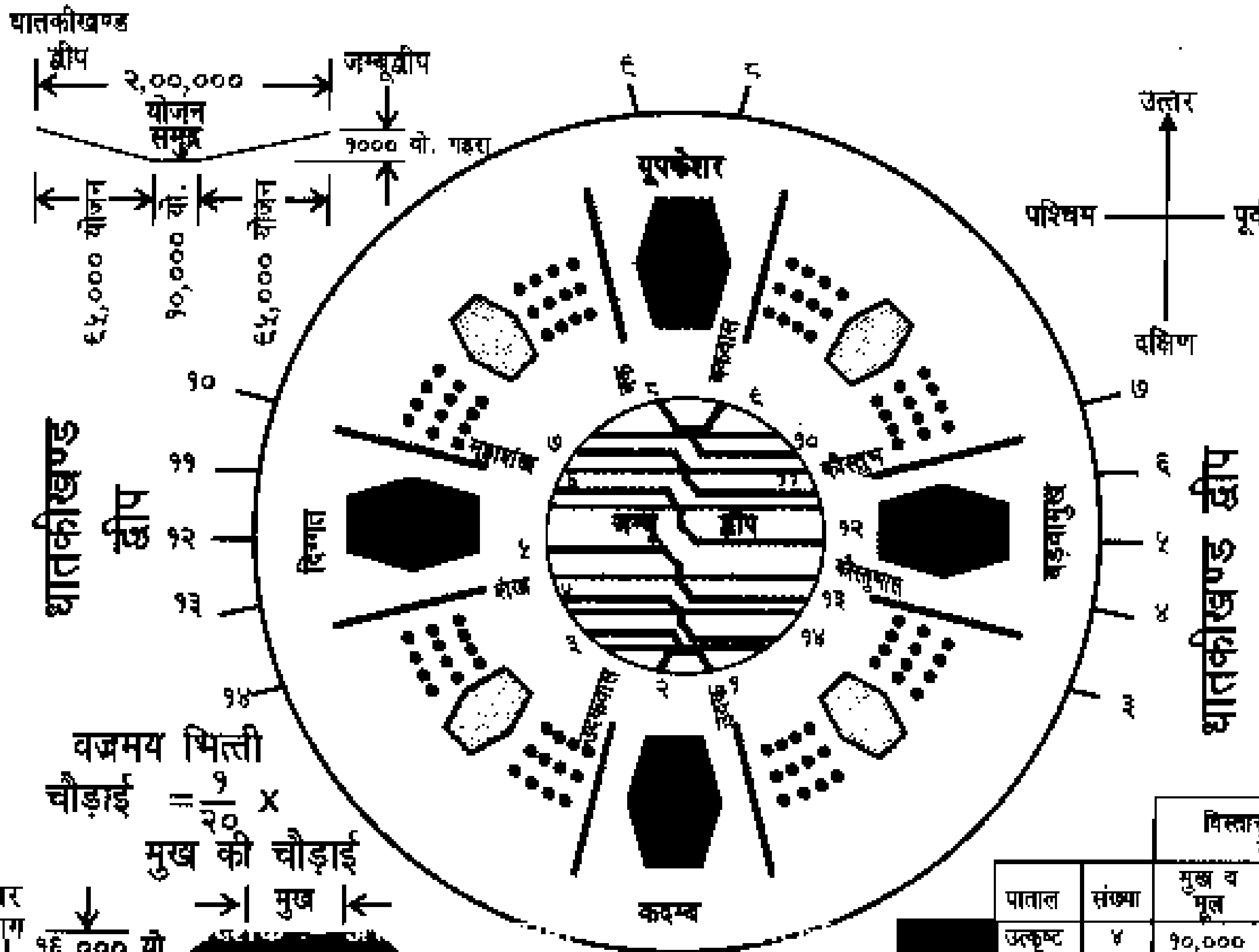

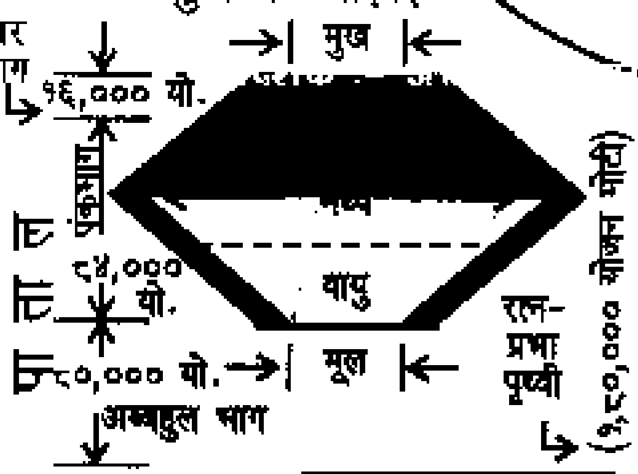

भाग	वायु	जल
अमावस्या	१	२
पूर्णिमा	२	१

	पाताल	संख्या	विस्तार योजन में: मुख व मूल	विस्तार योजन में: मध्य में
■	उत्कृष्ट	४	१०,०००	१,००,०००
▒	मध्यम	४	१,०००	१०,०००
●●●	जघन्य	१,०००	१,००	१,०००
	लवण समुद्र			
——	पर्वत			
——	महानदी			

महानदियों के नाम

१ गंगा	८ रक्तोदा
२ सिन्धु	९ रक्ता
३ रोहितास्या	१० स्वर्णकूला
४ हरिकान्ता	११ नारीकान्ता
५ सीतोदा	१२ सीता
६ नरकान्ता	१३ हरि
७ रूप्यकूला	१४ रोहित

नोट :-

१. कालोदधि समुद्र लवण समुद्र के समान है, किन्तु उसकी चौड़ाई ८ लाख योजन है और उसमें कोई पाताल नहीं है।

२. उक्त दोनों समुद्रों में ४८-४८ कुद्वीप हैं, जहाँ कुमानुष रहते हैं।

चित्र १.०५

लवण समुद्र

१	सुमेरु
२	विजय
३	अचल
४	मंदर
५	विद्युन्मालि

पंचमेरु

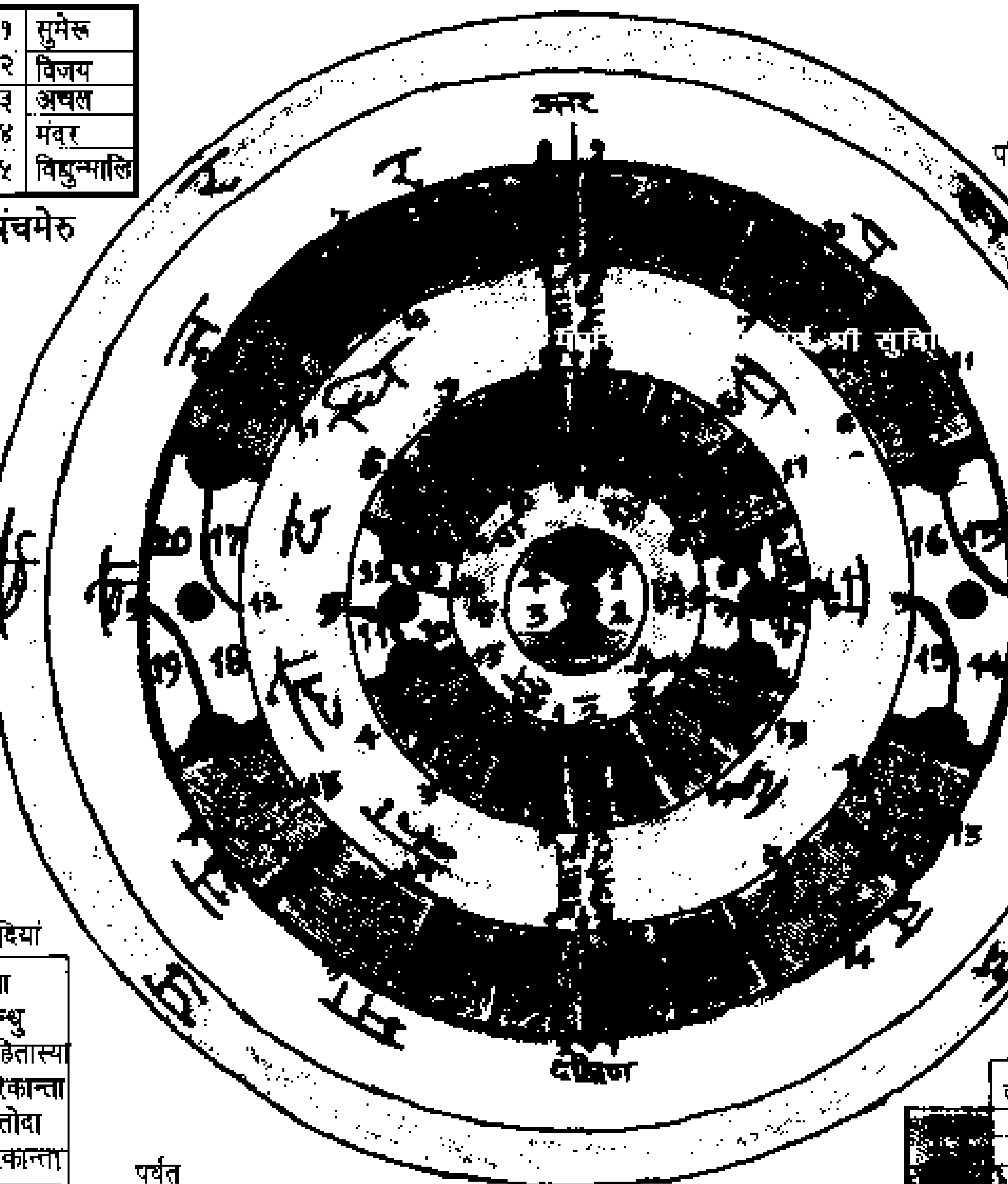

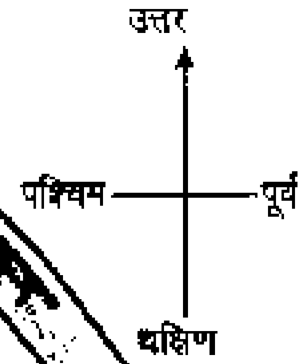

महानदियां

१	गंगा
२	सिन्धु
३	रोहितास्या
४	हरिकान्ता
५	सीतोदा
६	नरकान्ता
७	रूप्यकूला
८	रक्तोदा
९	रक्ता
१०	स्वर्णकूला
११	नारीकान्ता
१२	सीता
१३	हरि
१४	रोहिता

पर्वत

१	हिमवान
२	महाहिमवान
३	निषध
४	नील
५	रुक्मि
६	शिखरी
वि	विजयार्द्ध

विदेह क्षेत्र – तीर्थंकर भगवान			
१ सीमंधर	२ युगमंधर	३ बाहु	४ सुबाहु
५ संजात	६ स्वयंप्रभ	७ ऋषिभानन	८ अनन्तवीर्य
९ सूर्यप्रभ	१० विशालकीर्ति	११ वज्रधर	१२ चन्द्रानन
१३ भद्रबाहु	१४ भुजंग	१५ ईश्वर	१६ नेमिप्रभ
१७ वीरसेन	१८ महाभद्र	१९ यशोधर	२० अजितवीर्य

संदृष्टि

	दक्षिण में	उत्तर में
	हैमवत	हैरण्यवत
	जघन्य	भोग भूमि
	हरिक्षेत्र	रम्यक क्षेत्र
	मध्यम	भोग भूमि
	देव कुरु	उत्तर कुरु
	उत्कृष्ट	भोग भूमि
	भरत क्षेत्र	ऐरावतक्षेत्र
	मेरु पर्वत	
	पर्वत	
	सागर	
	महानदी	

नोट • जम्बूद्वीप का चित्रण चित्र १.०३ में दिया है।
• पुष्करार्द्ध द्वीप की आधी नदियां पुष्कर समुद्र में गिरती हैं (अदर्शित)।

चित्र १.०६ **ढाईद्वीप**

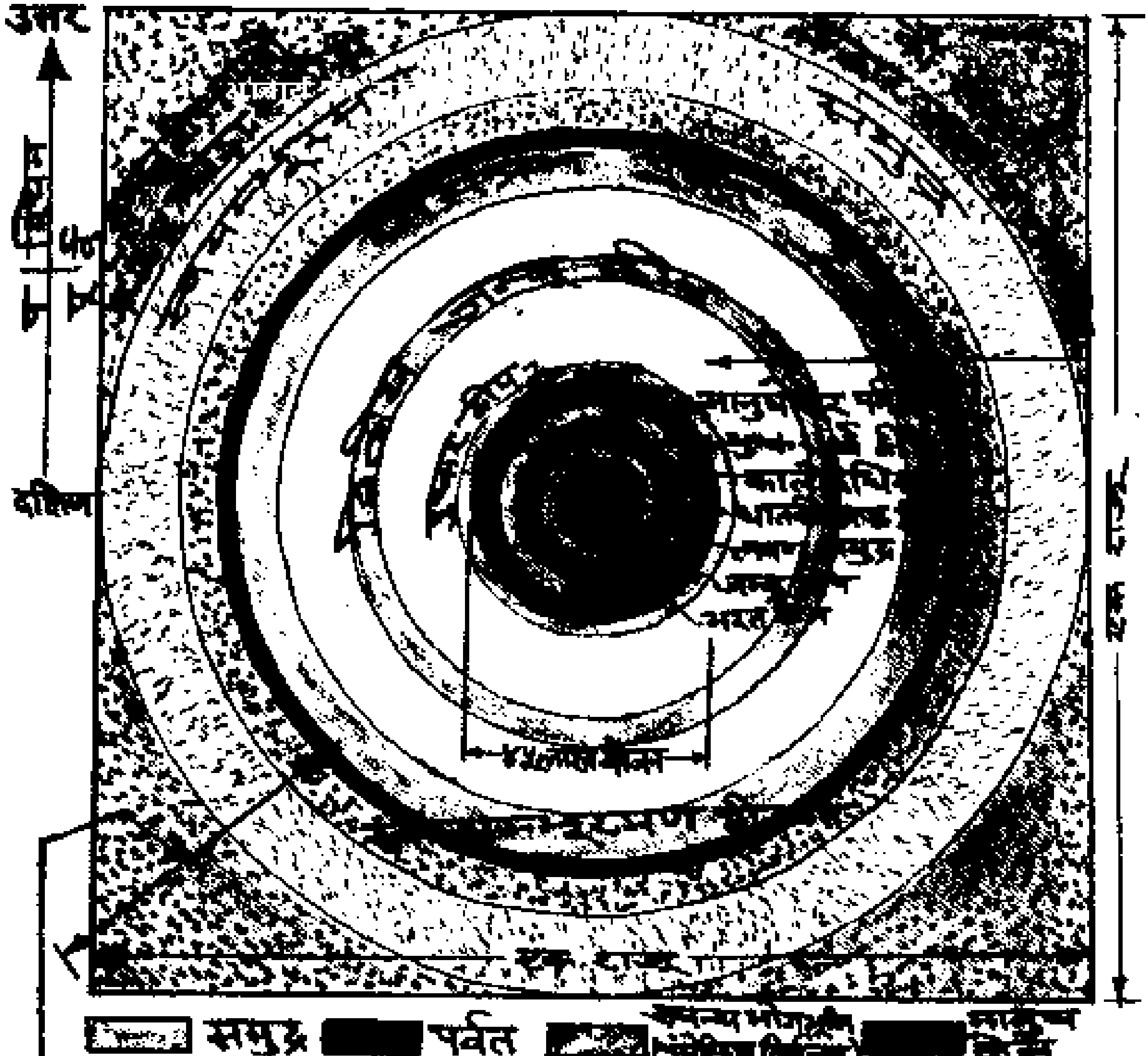

पंचम कालकी आदि की सी रचना (दुःखमाकाल) {आधारः जैन सिद्धान्त दर्पण, विरचित-श्री स्याद्वाद् वारिधि पं. गोपाल दास बरैया-मौरेना}

मध्यलोक में अकृत्रिम जिनभवन

सुमेरु पर्वत	१६	
कुलाचल	६	
विजयार्द्धपर्वत	३४	
वक्षार पर्वत	१६	
गजदन्त पर्वत	४	
जम्बू-शाल्मलि वृक्ष	२	७८
धातकीखण्ड द्वीप		१५६
पुष्करार्द्ध द्वीप		१५६
मानुषोत्तर पर्वत		४
नन्दीश्वर द्वीप		५२
कुण्डलवर द्वीप		४
रुचकवर द्वीप		४
योग - ४५८		

प्रारम्भ के द्वीप-समुद्र

१	जम्बूद्वीप	७	क्षौद्रवर
–	लवणसमुद्र	८	नन्दीश्वर
२	धातकी-खण्ड द्वीप	९	अरुणवर
		१०	अरुणाभास
–	कालोदधि समुद्र	११	कुंडलवर
		१२	शंखवर
३	पुष्कर	१३	रुचकवर
४	वारुणीवर	१४	भुजनगवर
५	क्षीरवर	१५	कुशवर
६	घृतवर	१६	क्रौंचवर

अन्त के १६ द्वीप-समूह

१	मनःशिल	११	नागवर
२	हरिताल	१२	भूतवर
३	सिन्दूर	१३	यक्षवर
४	श्यामक	१४	देववर
५	अंजन	१५	अहीन्द्रवर
६	हिंगुलिक	१६	स्वयंम्भू-रमण
७	रूप्यवर		
८	सुवर्णवर		
९	वज्रवर		
१०	वैडूर्यवर		

क्रम १६ के पश्चात् असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद मनःशिल द्वीप है

चित्र १.०७

मध्यलोक

प्रत्येक अवसर्पिणी व उत्सर्पिणी काल में–

भरत व ऐरावत क्षेत्रों की कर्म भूमियों में ६३ शलाका पुरुष होते हैं, जो निम्नवत हैं:–

तीर्थंकर	–	२४
चक्रवर्ती	–	१२
नारायण	–	९
प्रतिनारायण	–	९
बलभद्र	–	९

ये सभी भव्य जीव होते हैं, किन्तु तीर्थंकरों के अतिरिक्त सभी का मुक्त होना उसी भव में अनिवार्य नहीं है। सभी बलभद्र ऊर्ध्वगामी (स्वर्ग और मोक्षगामी) होते हैं। सभी नारायण और प्रतिनारायण नियम से नरक में जाते हैं।

इनके अतिरिक्त २४ कामदेव होते हैं, ९ नारद होते हैं जो कलहप्रिय होते हैं तथा ११ रुद्र होते हैं। नारद पाप के निधान, कलह प्रिय एवम् युद्ध प्रिय होते हैं तथा नरकों में जाते हैं। सभी कामदेव, नारद और रुद्र भव्य जीव होते हैं। रुद्र दसवें पूर्व का अध्ययन करते समय विषयों के निमित्त से तप से भ्रष्ट होकर, सम्यक्त्वरूपी रत्न से रहित होते हुए नरकों में जाते हैं।

असंख्यात कल्पकाल व्यतीत होने पर एक हुण्डावसर्पिणी काल आता है, जब बजाय ६३ के, कम जीव शलाकापुरुष होते हैं, जैसे वर्तमान काल में भगवान शान्तिनाथ, कुंथुनाथ व अरहनाथ चक्रवर्ती भी थे, भगवान महावीर पिछले किसी अन्य भव में त्रिपृष्ट नारायण भी थे। इसके अतिरिक्त अन्य दोष भी होते हैं, जैसे चक्रवर्ती का अपमान (भरत का), तीर्थंकर को पुत्री की प्राप्ति (जैसे आदिनाथ की ब्राह्मी व सुन्दरी), मिथ्यामत का प्रचलन, तृतीय काल व पञ्चमकाल में मोक्षगमन (जैसे आदिनाथ भगवान, बाहुबलि भगवान, जम्बू स्वामी का)।

इस प्रकार जम्बूद्वीप में ३४ कर्मभूमियां (भरत क्षेत्र का आर्य खण्ड, विदेह क्षेत्र में ३२ कर्म भूमि तथा ऐरावत क्षेत्र का आर्यखण्ड) तथा धातकीखण्ड द्वीप में ६८ कर्मभूमि तथा पुष्करार्द्ध द्वीप में ६८ कर्मभूमि हैं, कुल १७० कर्मभूमियां हैं। अर्थात एक समय में १७० तीर्थंकर हो सकते हैं। कहते हैं कि भगवान अजितनाथ के समय में एक समय १७० तीर्थंकर विद्यमान थे। पुष्करार्द्ध द्वीप का व्यास ४५ लाख योजन है, इसलिए ईषत्प्राग्भार पृथ्वी पर अवस्थित कटोरे के समान सिद्धशिला का व्यास भी ४५ लाख योजन प्रमाण है।

ढाई द्वीप में काल–विभाग इस प्रकार है:–

१	भरत क्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र के आर्य खण्ड (कर्म भूमि)	सभी छहों काल, किन्तु दुःषमा सुषमा काल में ही मोक्ष जाना सम्भव है।
२	भरतक्षेत्र व ऐरावत क्षेत्र के म्लेच्छ खंडों एवम् विद्याधर श्रेणियों में (दुःषमा सुषमा काल)	अवसर्पिणी काल में दुःषमा सुषमा काल के प्रारम्भ से उसके अन्तपर्यंत हानि एवम् उत्सर्पिणी काल में इसका विपरीत, अर्थात वृद्धि होती रहती है
३	हैमवत, हैरण्यत क्षेत्र (जघन्य भोगभूमि)	हानि वृद्धि से रहित सुषमा दुषमा काल।
४	हरिवर्ष, रम्यक क्षेत्र (मध्यम भोगभूमि)	हानिवृद्धि से रहित सुषमा काल।
५	देव कुरु, उत्तर कुरु (उत्तम भोगभूमि)	हानिवृद्धि से रहित सुषमा सुषमा काल।
६	विदेह क्षेत्र (कर्म भूमि)	दुःषमा सुषमा काल। यहाँ से मोक्ष गमन सदैव सम्भव है।

मध्य लोक में पुष्कर द्वीप के उपरान्त असंख्यात समुद्र द्वीप हैं। मध्य लोक में समस्त द्वीप समुद्रों की संख्या २५ कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्य (की रोम राशि) प्रमाण है। इनमें उल्लेखनीय आठवां नन्दीश्वर द्वीप है जिसका विस्तार १,६३,८४,००,००० योजन हैं। इसके चारों दिशाओं में चार अंजनगिरि पर्वत हैं तथा प्रत्येक अंजनगिरि के चारों ओर चार दधिमुख एवं आठ रतिकर पर्वत हैं, अर्थात एक–एक दिशा में तेरह पर्वत हैं, तथा चारों दिशाओं में ५२ पर्वत हैं। इन पर्वतों के शिखर पर उत्तम, रत्नमय अकृत्रिम १०० योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े तथा ७५ योजन ऊँचे उत्कृष्ट ५२ जिन भवन हैं। इन मन्दिरों में चारों प्रकार के देव प्रतिवर्ष आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन के अष्टाह्निका पर्व में बड़ी भक्ति से रात्रि–दिन पूजा करते हैं। इन चैत्यालयों में स्थित सभी अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं को मेरा भक्तिपूर्वक नमस्कार होवे।

इसके आगे ११वां कुण्डलवर द्वीप है जहां व्यन्तर देव रहते हैं तथा ४ जिन भवन स्थित हैं।

इसके आगे १३वां रुचकवर द्वीप है जहां ४ जिन भवन हैं। इस पर्वत पर ३२ प्रकार की दिक्कन्यायें रहती हैं जो तीर्थंकर भगवान के जन्म कल्याणक के समय में जिनमाता की सेवा करती हैं।

सबसे अन्त में स्वयम्भूरमण द्वीप है (जिसके गोलाकार मध्य में स्वयंप्रभ पर्वत है), तत्पश्चात् स्वयंभूरमण समद्र है। ढाई द्वीप के आगे स्वयंप्रभ पर्वत तक जघन्य भोगभूमि है। तत्पश्चात् कर्मभूमि के दुःखमा काल जैसी व्यवस्था है, किन्तु वहां केवल तिर्यञ्च ही पैदा होते हैं। मध्य लोक चित्र १.०७ में दर्शाया है।

लवण समुद्र, कालोदधि समुद्र तथा स्वयभूरमण समुद्र में ही जलचर जीव हैं। अन्य समुद्रों में नहीं है।

लवण समुद्र में चार उत्कृष्ट, चार मध्यम तथा १००० जघन्य पाताल हैं, जैसा कि चित्र १.०५ में दर्शाया गया है। इस समुद्र में ४८ द्वीपों पर कुभोगभूमियां हैं। जो जीव तीव्र अभिमान से गर्वित होकर सम्यक्त्व और तप से युक्त साधुओं का किञ्चित भी अपमान करते हैं, जो दुराचारी मुनि एकाकी रहते हैं, कलह करते हैं, ~~आहार~~-संज्ञा में आसक्त, लोभ कषाय से मोहित, जिन लिंग को धारण करते हुए भी घोर पाप करते हैं, पंच परमेष्ठी की भक्ति से विमुख रहते हैं, सम्यक्त्व से विमुख रहते हैं, कुपात्रों को दान देते हैं, वे इन कुत्सित-रूप से युक्त कुमानुष इन कुभोगभूमियों में उत्पन्न होते हैं। ये सब कुमानुष २००० धनुष ऊँचे होते हैं, मन्द कषायी, प्रियंगु सदृश श्यामल और १ पल्य प्रमाण आयु से युक्त होते हैं। मरण को प्राप्त होकर भवनत्रिक देवों में उत्पन्न होते हैं। इन द्वीपों में जिन मनुष्यों व तिर्यंचों ने सम्यग्दर्शन रूप रत्न ग्रहण कर लिया है, वे सौधर्म युगल में उत्पन्न होते हैं।

कालोदधि समुद्र में भी ४८ द्वीपों पर कुभोग भूमियां हैं, किन्तु लवण समुद्र की तरह पाताल नहीं हैं।

मनुष्यों की आयु आदि का विवरण इस प्रकार है:

	आयु	ऊँचाई
सुषमा सुषमा काल (उत्कृष्ट भोगभूमि)	३ पल्य (आदि में)	३ कोस (आदि में)
सुषमा काल (मध्यम भोगभूमि)	२ पल्य (,,)	२ कोस (,,)
सुषमाः दुःषमा काल (जघन्य भोगभूमि)	१ पल्य (,,)	१ कोस (,,)
दुःषमा सुखमा काल (कर्मभूमि)	१ पूर्व कोटि (,,)	५०० धनुष (,,)
दुःखमा काल	१२० वर्ष (,,)	७ हाथ (,,)
दुःखमा दुःखमा काल	उत्कृष्ट २० वर्ष	३ अथवा $3\frac{1}{2}$ हाथ (,,)
	१५ अथवा १६ वर्ष (अंत में)	१ हाथ (अन्त में)

मनुष्यों में सभी छह लेश्यायें पाई जाती हैं।

पर्याप्त मनुष्य राशि का प्रमाण २९ अंक प्रमाण है यथा–

१६८०७०४०६२८५६६०८४३६८३८५६८७५८४ है और पर्याप्त मनुष्यिणी राशि का प्रमाण ३० अंक प्रमाण यथा–

५६४२११२१८८५६६८२५३१६५१५७६६२७५२ है।

अन्तर्द्वीपज, कुभोगभूमिज मनुष्य सबसे थोड़े हैं, इनसे संख्यात गुणे १० कुरुक्षेत्रों (देवकुरु, उत्तर कुरु) में हैं। इनसे संख्यात गुणे हरिवर्ष और रम्यक क्षेत्रों में हैं, इनसे संख्यात गुणे हैरण्यवत और हैमवत क्षेत्रों में हैं, इनसे संख्यात गुणे भरत और ऐरावत क्षेत्रों में हैं और इनसे भी संख्यात गुणे विदेह क्षेत्रों में हैं। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य इनसे असंख्यात गुणे हैं जो सम्मूर्छन होते हैं। पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त के भेद से मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। १७० आर्यखण्डों में तीनों प्रकार के मनुष्य होते हैं। भोग भूमि, कुभोग भूमि और म्लेच्छ खण्डों में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य नहीं होते।

जिन मनुष्यों की आहार शरीर आदि ६ पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं हुई हैं किन्तु होने वाली हैं वे निवृत्यपर्याप्तक हैं, जिनकी पर्याप्तियाँ पूर्ण हो चुकी है वे पर्याप्तक हैं। यह पर्याप्त अवस्था गर्भ में ही अंतर्मुहूर्त में ही हो जाती है। जिनकी पर्याप्तियां पूर्ण नहीं होती हैं और नियम से मर जाते हैं, ऐसे क्षुद्रभव को धारण करने वाले लब्ध्यपर्याप्तक हैं, इनके मनुष्य गति, मनुष्य आयु कर्म का उदय है, किन्तु ये अत्यन्त दयनीय समूर्च्छन होते हैं। स्त्रियों की कुक्षि, कक्ष आदि में जन्म लेते रहते हैं, मरते रहते हैं।

सामान्य मनुष्य राशि का प्रमाण (M) = जगच्छ्रेणी (J) ÷ सूच्यंगुल (S) का प्रथम व तृतीय वर्गमूल – १

$= J \div (S^{1/2} \times S^{1/8}) - 1 \qquad = J \div S^{5/8} - 1$

इनमें पर्याप्त मनुष्य पांचवे वर्ग के घनप्रमाण, अर्थात् $M^{3/32}$ हैं।

अपर्याप्त मनुष्य राशि = सामान्य मनुष्य राशि– (उपरोक्त पर्याप्त मनुष्य राशि+ उपरोक्त पर्याप्त मनुष्यिणी राशि)

मनुष्यों में सभी छहों लेश्यायें पायी जाती हैं। मरकर सभी गतियों एवम् मोक्ष में जाते हैं।

(५) व्यन्तर लोक

विवरण / प्रकार	किन्नर	किम्पुरुष	महोरग	गन्धर्व	यक्ष	राक्षस	भूत	पिशाच
स्थान	पृथ्वी के ऊपर	पृथ्वी के ऊपर	पृथ्वी के ऊपर	पृथ्वी के ऊपर	पृथ्वी के ऊपर	पंक भाग (रत्न प्रभा पृथ्वी)	खर भाग (रत्न प्रभा पृथ्वी)	पृथ्वी के ऊपर
वर्ण	प्रियङ्गु सदृश	सुवर्ण सदृश	काल श्यामल	शुद्ध सुवर्ण सदृश	काल श्याम ल	शुद्ध श्याम वर्ण	काल श्यामल	कज्जल सदृश
दक्षिणेन्द्र	किम्पुरुष	सत्पुरुष	महाकाय	गीतरति	माणि भद्र	भीम	स्वरूप	काल
उत्तरेन्द्र	किन्नर	महापुरुष	अतिकाय	गीतयशा	पूर्णभद्र	महाभीम	प्रतिरूप	महाकाल
व्यन्तर देवों के आश्रय रूप द्वीपों के नाम	अञ्जनक	वज्र–धातुक	सुवर्ण	मनः शिलक	वज्र	रजत	हिंगुलक	हरिताल
भवनों की संख्या	०	०	०	०	०	१६,०००	१४,०००	०
निवास	भवन रत्नप्रभा पृथ्वी में, भवनपुर द्वीप समुद्रो के ऊपर और आवास द्रह (तालाब) एवं पर्वतादिकों के ऊपर होते हैं।							
इन्द्रों के परिवार देव	प्रतीन्द्र–१, सामानिक देव– ४,०००, तनुरक्षक– १६,०००, आभ्यन्तर पारिषद– ८,०००, मध्यम पारिषद– १०,०००, वाह्य पारिषद– १२,०००, सात सेनायें– हाथी–घोड़ा–पदाति–रथ– गन्धर्व– नर्तक–बैल– प्रत्येक ३५,५६,००० = २,४८,६२,००० प्रकीर्णक–प्रमाण प्राप्त नहीं है, आभियोग्य देव– प्रमाण प्राप्त नहीं है।							
आयु	उत्कृष्ट– एक पल्य प्रमाण, मध्यम– असंख्यात वर्ष, जघन्य– १०,००० वर्ष							
उत्सेध (ऊँचाई)	दस धनुष प्रमाण							
व्यन्तर देवों का प्रमाण	जगत्प्रतर ÷ (३०० योजन)[२]							
आयु बन्धक परिणाम, सम्यग्दर्शन ग्रहण करने के कारण	भवनवासी देवों के समान							

विवरण / प्रकार	किन्नर	किम्पुरूष	महोरग	गन्धर्व	यक्ष	राक्षस	भूत	पिशाच
व्यन्तर देव सम्बन्धी जिन भवनों का प्रमाण	जगत्प्रतर ÷ [संख्यात x (३०० योजन)^{२}]							
विशेष वर्णन	भवन, भवनपुर और आवास ये तीन प्रकार के स्थान व्यंतर देवों के माने गये हैं। इन व्यन्तरों में से किन्हीं के भवन हैं, किन्हीं के भवन और भवनपुर दोनों हैं एवं किन्हीं के तीनों ही स्थान होते हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी में भवन, द्वीप–समुद्रों के ऊपर भवनपुर होते हैं और तालाबों, पर्वत एवं वृक्षों के आश्रित आवास होते हैं। ये असंख्यात द्वीप– समुद्रों में स्थित हैं। जिन भवनों में १०८–१०८ प्रमाण जिन प्रतिमायें विराजमान हैं। ये व्यन्तर देव क्रीड़ा प्रिय होने के कारण मध्य लोक में यत्र–तत्र शून्य स्थान, वृक्षों की कोटर, श्मसान भूमि आदि में भी विचरण करते रहते हैं। कदाचित, क्वचित किसी से पूर्व जन्म का वैर विरोध होने से उसे कष्ट दिया करते हैं, किसी पर प्रसन्न होकर उसकी सहायता भी करते हैं। जब सम्यक्दर्शन को ग्रहण कर लेते हैं तब पापभीरु बनकर धर्म कार्यों में ही रूचि लेते हैं, ऐसा समझना चाहिए। इन सभी व्यन्तर देवों में पीत लेश्या का जघन्य अंश रहता है।								

(६) ज्योतिर्लोक

विवरण / प्रकार	चन्द्र (इन्द्र)	सूर्य (प्रतीन्द्र)	ग्रह	नक्षत्र	तारा
कुल संख्या= जगत्प्रतर ÷ ६५,५३६ प्रतरांगुल	जगत्प्रतर ÷ {(संख्यात प्रतरांगुल)X (४३८६२७३६०००० ०००००७७३३२४८) }	जगत्प्रतर ÷ {(संख्यात प्रतरांगुल)X (४३८६२७३६०० ००००००७७३३ २४८)}	११X { जगत्प्रतर ÷(संख्यात प्रतरांगुल)X (५४८६५६२००० ००००००६६६६ ५६)}	७X{जगत्प्रतर ÷(संख्यात प्रतरांगुल)X (१०६७३१८४०० ००००००१६३३ ३१२)}	४०८७८२६५८ ६८४३७५X {जगत्प्रतर÷ (संख्यात प्रतरांगुल)X (२६७६०००० ००००००४७ २)}
संख्या प्रतिचन्द्र परिवार तथा नाम	एक	एक	८८ बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनि, काल,	२८ कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्षा,	६६९७५ कोड़ा–कोडी – नाम अनुपलब्ध हैं

विवरण / प्रकार	चन्द्र (इन्द्र)	सूर्य (प्रतीन्द्र)	ग्रह	नक्षत्र	तारा
			लोहित, कनक, नील, विकाल, केश, कवयव, कनक संस्थान, दुंदुभिक, रक्तनिभ, नीलाभास, अशोक संस्थान, कंस, रूपनिभ, कंसकवर्ण, संख– परिणाम, तिलपुच्छ, संखवर्ण, उदकवर्ण, पंचवर्ण, उत्पात, धूमकेतु, तिल, नभ, क्षारराशि, विजिष्णु, सदृश, संधि,कलेवर, अभिन्न, ग्रंथि, मानवक, कालक, कालकेतु, निलय, अनय, विद्युज्जिह्व, सिंह, अलक,निर्दुःख, काल, महाकाल, रुद्र, महारुद्र, सन्तान, विपुल, सम्भव, सर्वार्थी, क्षेम, चन्द्र, निर्मन्त्र, ज्योतिष्मान,	आर्द्रा, पुनर्वसु, पुण्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति,विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा, रेवती, अश्विनी और भरणी	

विवरण / प्रकार	चन्द्र (इन्द्र)	सूर्य (प्रतीन्द्र)	ग्रह	नक्षत्र	तारा
			दिससंस्थित, विरत, वीतशोक, निश्चल, प्रलम्ब, भासुर, स्वयंप्रभ, विजय, वैजयन्त, सीमंकर, अपराजित, जयन्त, विमल, अभयंकर, विकस, काष्ठी, विकट, कज्जली, अग्निज्वाल, अशोक, केतु, क्षीरस, अघ, श्रवण, जलकेतु, केतु, अन्तरद, एकसंस्थान, अश्व, भावग्रह, महाग्रह		
प्ररूपणा स्थिति	चित्रा पृथ्वी से ८८० योजन ऊपर उत्तानमुख विमान जिसका व्यास ५६/६१ योजन है। इसमें जिन मन्दिर स्थित है। इन विमानों में विद्यमान पृथ्वीकायिक जीव उद्योत नाम कर्म के उदय से संयुक्त हैं, अतः	चित्रा पृथ्वी से ८०० योजन ऊपर विमान जिसका व्यास ४८/६१ योजन है। इसमें जिन मन्दिर स्थित है। इन विमानों में विद्यमान पृथ्वीकायिक जीव आताप नाम कर्म के उदय से संयुक्त हैं, अतः	चित्रा पृथ्वी के उपरिम तल से ग्रह समूह की नगरियां स्थित हैं:– ८८८ यो. ऊपर – बुध ग्रह, ८९१ यो. ऊपर शुक्र ग्रह, ८९४ यो. ऊपर बृहस्पति ग्रह, ८९७ यो. ऊपर मंगल ग्रह, ९०० यो. ऊपर शनि ग्रह। बुध	चित्रा पृथ्वी से ८८४ योजन ऊपर आकाश मार्ग में नक्षत्रों के नगर है।	चित्रा पृथ्वी से ७९० योजन ऊपर जाकर आकाश तल में ११० योजन प्रमाण बाहुल्य में ताराओं के नगर है।

विवरण / प्रकार	चन्द्र (इन्द्र)	सूर्य (प्रतीन्द्र)	ग्रह	नक्षत्र	तारा
	वे प्रकाशमान अतिशय शीतल और मन्द किरणों से संयुक्त होते हैं।	वे प्रकाशमान उष्णतर किरणों से संयुक्त होते हैं।	और शनि ग्रह के अन्तराल में शेष ८३ ग्रह अवस्थित हैं।		
अग्रदेवियां	चार– चन्द्राभा, सुसीमा, प्रभंकरा और अर्चिमालिनी	चार– श्रुतिश्रुति, प्रभंकरा, सूर्यप्रभा और अर्चिमालिनी			
परिवार देव	प्रतीन्द्र (सूर्य)–१ सामानिक– संख्यात / तनुरक्षक– सख्यात आभियोग्यदेव– १६,०००	सामानिक तनुरक्षक, तीनों पारिषद, प्रकीर्णक, अनीक, आभियोग्य– १६,०००, किल्विषिक – प्रमाण अनुपलब्ध,	शुक्र, गुरु, बुध, शनि, मंगल– प्रत्येक के ८००० आभियोग्य	प्रत्येक के ४००० आभियोग्य	प्रत्येक के २००० आभियोग्य
उत्कृष्ट आयु	१ पल्य और १ लाख वर्ष	१ पल्य और १००० वर्ष	शुक्र– १ पल्य और १०० वर्ष गुरु– १ पल्य बुध, मंगल शनिचरादि अन्य ग्रह –१/२ पल्य	अनुपलब्ध	१/४ पल्य
जघन्य आयु	१/८ पल्य	१/८ पल्य	१/८ पल्य	१/८ पल्य	१/८ पल्य
देवियों की आयु	अपने–अपने देवों की आयु से अर्ध भाग प्रमाण होती है।				

विवरण/ प्रकार	चन्द्र (इन्द्र)	सूर्य (प्रतीन्द्र)	ग्रह	नक्षत्र	तारा
उत्सेध (ऊँचाई)	सात धनुष प्रमाण				

प्रमाण	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	अस्थिर तारा	स्थिर ध्रुव तारा
जम्बू द्वीप में	२	२	१७६	५६	१,३३,९५० कोड़ा कोड़ी	३६
लवण समुद्र में	४	४	३५२	११२	२,६७,९०० " "	१३९
धातकी खण्ड द्वीप में	१२	१२	१०५६	३३६	८,०३,७०० " "	१०१०
कालोदधि समुद्र में	४२	४२	३६९६	११७६	२८,१२,९५० " "	४१,१२०
पुष्करार्ध द्वीप में	७२	७२	६३३६	२०१६	४८,२२,२०० " "	५३,२३०
योग	१३२	१३२	११,६१६	३,६९६	८८,४०,७०० कोड़ा कोड़ी	९५,५३५

मानुषोत्तर पर्वत से ५०,००० योजन आगे जाकर प्रथम वलय है। इसके पश्चात् स्वयम्भूरमण समुद्र की वेदी से ५०,००० योजन पहले तक, प्रत्येक एक लाख योजन आगे जाकर द्वितीयादिक वलय हैं। यह समस्त वलय {(जगच्छ्रेणी ÷ १४ लाख योजन)−२३} प्रमाण हैं। प्रथम वलय में १४४ चन्द्र व १४४ सूर्य हैं। पुष्करवर समुद्र के प्रथम वलय में स्थित चन्द्र एवं सूर्य प्रत्येक २८८−२८८ हैं। इस प्रकार अधस्तन द्वीप अथवा समुद्र के प्रथम वलय में स्थित चन्द्र−सूर्यों की अपेक्षा तदन्तर उपरिम द्वीप अथवा समुद्र के प्रथम वलय में स्थित चन्द्र और सूर्य स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त दुगने−दुगने होते चले गये हैं।

चन्द्र, सूर्य का गमन मात्र मानुषोत्तर पर्वत के अन्तर्गत ही हैं, उससे आगे नहीं है। सुमेरु पर्वत से ४४,८२० योजन जाकर चन्द्र एवम् सूर्य की आभ्यन्तर (प्रथम) वीथियाँ है।

इन देवों में पीत लेश्या का जघन्य अंश रहता है।

ज्योतिष देवों में जन्म लेने, सम्यक्त्वादि ग्रहण के विषय में भवनवासी देवों के समान ही कथन जानना चाहिये।

जिन भवनों की संख्या ज्योतिष्क देवों की संख्या में संख्यात का भाग देने से आता है।

ॐ

(७) उर्ध्व लोक

मेरु की चूलिका के ऊपर से उत्तम भोगभूमिज मनुष्य के एक बाल के अन्तर से ऊर्ध्व लोक प्रारम्भ होता है। मध्य लोक में १ लाख ४० योजन ऊँचे सुमेरु प्रमाण है और चूलिका से प्रथम स्वर्ग में १ बाल का अन्तर है एवं लोक शिखर से १५७५ धनुष प्रमाण तनुवातवलय, १ कोस प्रमाण घनवातवलय, २ कोस घनोदधिवातवलय, ८ योजन सिद्धशिला और १२ योजन नीचे सर्वार्थसिद्धि का विमान है।

अतः ऊर्ध्व लोक का प्रमाण सात राजू में से (१,००,०६१ योजन–४२५ धनुष + उत्तर कुरु क्षेत्रवर्ती मनुष्य का एक बाल बराबर) कम है।

ऊर्ध्व लोक के २ भेद हैं– कल्प और कल्पातीत। सोलह स्वर्गों को कल्प कहते हैं। नव ग्रैवेयिक, नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमान कल्पातीत में आते हैं। मोटे रूप से ६ राजू में कल्पवासी विमान हैं और १ राजू में कल्पातीत विमान है।

मेरु तल से ऊपर डेढ़ राजू में प्रथम युगल (सौधर्म, ईशान), इसके आगे डेढ़ राजू में द्वितीय युगल (सानत्कुमार, माहेन्द्र), इसके आगे छह युगलों में से प्रत्येक अर्ध–अर्ध राजू में (ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर), (लान्तव, कापिष्ठ), (शुक्र, महाशुक्र), (शतार, सहस्त्रार), (आनत, प्राणत), और (आरण, अच्युत) स्वर्ग हैं।

कोई आचार्य सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तव, महाशुक्र, सहस्त्रार, आनत,प्राणत, आरण और अच्युत, इस प्रकार ये बारह कल्प मानते हैं।

स्वर्ग संख्या / विवरण	स्वर्ग का नाम	इन्द्र	विमानों का प्रमाण	विमानों का रंग (वर्ण)	इन्द्र का निवास
१.	सौधर्म	इन्द्र	३२,००,०००	काला, नीला, लाल, पीला, शुक्ल	दक्षिण
२.	ईशान	इन्द्र	२८,००,०००	"	उत्तर
३.	सानत्कुमार	इन्द्र	१२,००,०००	नीला, लाल, पीला, शुक्ल	दक्षिण
४.	माहेन्द्र	इन्द्र	८,००,०००	"	उत्तर
५.	ब्रह्म	इन्द्र	२,००,०९६	लाल, पीला, शुक्ल	दक्षिण
६.	ब्रह्मोत्तर	–	१,९९,९०४	"	–
७.	लान्तव	इन्द्र	२५,०४२	"	दक्षिण
८.	कापिष्ठ	–	२४,९५८	"	–
९.	शुक्र	–	२०,०२०	पीला, शुक्ल	–
१०.	महाशुक्र	इन्द्र	१९,९८०	"	उत्तर
११.	शतार	–	३,०१९	"	–
१२.	सहस्त्रार	इन्द्र	२,९८१	"	उत्तर
१३.	आनत	इन्द्र	४४० अथवा ४००	शुक्ल	दक्षिण
१४.	प्राणत	इन्द्र		"	उत्तर
१५.	आरण	इन्द्र	२६० अथवा ३००	"	दक्षिण
१६.	अच्युत	इन्द्र		"	उत्तर
योग	१६	१२	८४,९६,७००	इन सभी विमानों में अकृत्रिम जिन भवन हैं।	

स्वर्ग का नाम / विवरण	इन्द्रों के मुकुट का चिन्ह	इन्द्रों के परिवार देव		
		सामानिक	तनुरक्षक	आभ्यन्तर पारिषद
सौधर्म	बराह (शूकर)	८४,०००	३,३६,०००	१२,०००
ईशान	मृगी	८०,०००	३,२०,०००	१०,०००
सानत्कुमार	भैंसा	७२,०००	२,८८,०००	८,०००
माहेन्द्र	मत्स्य	७०,०००	२,८०,०००	६,०००
ब्रह्म	कछुआ	६०,०००	२,४०,०००	४,०००
ब्रह्मोत्तर	मेंढक			
लान्तव	घोड़ा	५०,०००	२,००,०००	२,०००
कापिष्ठ	हाथी			
शुक्र	चन्द्र			
महाशुक्र	सर्प	४०,०००	१,६०,०००	१,०००
शतार	खड्गी			
सहस्त्रार	बकरी	३०,०००	१,२०,०००	५००
आनत	बैल	२०,०००	८०,०००	२५०
प्राणत	बैल	२०,०००	८०,०००	२५०
आरण	कल्पवृक्ष	२०,०००	८०,०००	२५०
अच्युत	कल्पवृक्ष	२०,०००	८०,०००	२५०
योग		**५,६६,०००**	**२२,६४,०००**	**४४,५००**

प्रत्येक इन्द्र के एक **प्रतीन्द्र** (युवराज सदृश); सामानिक (कलत्र अथवा पत्नी सदृश); ३३ त्रायस्त्रिंश देव (पुत्र सदृश); ४ लोकपाल– सोम, यम, वरुण, कुबेर (तन्त्रराय सदृश); तनुरक्षक (अंगरक्षक सदृश); पारिषद– आभ्यन्तर, मध्यम, बाह्य (सभासद सदृश); अनीक (सेना सदृश); प्रकीर्णक (पुरजन सदृश); आभियोग्य (परिचारक सदृश) और किल्विषिक (चाण्डाल सदृश), ये दस प्रकार के परिवार देव होते हैं।

स्वर्ग का नाम/विवरण	इन्द्रों के परिवार देव				देवियों की उत्पत्ति का स्थान —स्वर्ग	प्रवीचार
	मध्यम पारिषद	बाह्य पारिषद	सात अनीकों में से प्रति अनीक की संख्या	सातों अनीकों की सम्पूर्ण संख्या*		
सौधर्म	१४,०००	१६,०००	१,०६,६८,०००	७,४६,७६,०००	सौधर्म	मनुष्य सदृश
ईशान	१२,०००	१४,०००	१,०१,६०,०००	७,११,२०,०००	ईशान	"
सानत्कुमार	१०,०००	१२,०००	९१,४४,०००	६,४०,०८,०००	सौधर्म	स्पर्श मात्र
माहेन्द्र	८,०००	१०,०००	८८,६०,०००	६,२२,३०,०००	ईशान	"
ब्रह्म	६,०००	८,०००	७६,२०,०००	५,३३,४०,०००	सौधर्म	रूपावलोकन मात्र
ब्रह्मोत्तर					ईशान	"
लान्तव	४,०००	६,०००	६३,५०,०००	४,४४,५०,०००	सौधर्म	"
कापिष्ठ					ईशान	"
शुक्र					सौधर्म	गीतादि शब्दों को सुनकर
महाशुक्र	२,०००	४,०००	५०,८०,०००	३,५५,६०,०००	ईशान	"
शतार					सौधर्म	"
सहस्त्रार	१,०००	२,०००	३८,१०,०००	२,६६,७०,०००	ईशान	"
आनत	५००	१,०००	२५,४०,०००	१,७७,८०,०००	सौधर्म	देवांगना का विचार मात्र
प्राणत	५००	१,०००	२५,४०,०००	१,७७,८०,०००	ईशान	"
आरण	५००	१,०००	२५,४०,०००	१,७७,८०,०००	सौधर्म	"
अच्युत	५००	१,०००	२५,४०,०००	१,७७,८०,०००	ईशान	"
योग	५६,०००	७६,०००	७,१८,८२,०००	५०,३१,७४,०००		

*सात अनीकों के नाम इस प्रकार हैं: वृषभ, तुरङ्ग, रथ, गज, पदाति, गन्धर्व और नर्तक— ये सात प्रकार की सेनायें होती हैं।

स्वर्ग का नाम / विवरण	अग्र (महा) देवियों का प्रमाण	इन्द्र की समस्त देवांगनाओं का प्रमाण	जघन्य आयु देवों की	उत्कृष्ट आयु देवों की	जघन्य आयु देवियों की	उत्कृष्ट आयु देवियों की	देवों के शरीर की ऊँचाई	किन तीर्थंकर बालकों के वस्त्र आभरणादि यहाँ रखे रहते हैं
सौधर्म	८	१,६०,०००	एक पल्य	२ सागर	१ पल्य से कुछ अधिक	५ पल्य	७ हाथ	भरत क्षेत्र के
ईशान	८	१,६०,०००	"	"	"	७ पल्य	"	ऐरावत क्षेत्र के
सानत्कुमार	८	७२,०००	कुछ अधिक २ सागर	७ सागर	७ पल्य	९ पल्य	६ हाथ	पूर्व विदेहवर्ती के
माहेन्द्र	८	७२,०००	"	"	९ पल्य	११ पल्य	"	पश्चिम विदेहवर्ती के
ब्रह्म	८	३४,०००	कुछ अधिक ७ सागर	१० सागर	११ पल्य	१३ पल्य	५ हाथ	–
ब्रह्मोत्तर			"	"	१३ पल्य	१५ पल्य	"	–
लान्तव	८	१६,५००	कुछ अधिक १० सागर	१४ सागर	१५ पल्य	१७ पल्य	"	–
कापिष्ठ			"	"	१७ पल्य	१९ पल्य	"	–
शुक्र			कुछ अधिक १४ सागर	१६ सागर	१९ पल्य	२१ पल्य	४ हाथ	–
महाशुक्र	८	८,२५०	"	"	२१ पल्य	२३ पल्य	"	–

स्वर्ग का नाम / विवरण	अग्र (महा) देवियों का प्रमाण	इन्द्र की समस्त देवांगनाओं का प्रमाण	जघन्य आयु देवों की	उत्कृष्ट आयु देवों की	जघन्य आयु देवियों की	उत्कृष्ट आयु देवियों की	देवों के शरीर की ऊँचाई	किन तीर्थंकर बालकों के वस्त्र आभरणादि यहाँ रखे रहते हैं
शतार			कुछ अधिक १६ सागर	१८ सागर	२३ पल्य	२५ पल्य	३ १/२ हाथ	—
सहस्त्रार	८	४,१२५	"	"	२५ पल्य	२७ पल्य	"	—
आनत	८	२,०६३	कुछ अधिक १८ सागर	२० सागर	२७ पल्य	३४ पल्य	३ हाथ	—
प्राणत	८	२,०६३	"	"	३४ पल्य	४१ पल्य	"	—
आरण	८	२,०६३	कुछ अधिक २० सागर	२२ सागर	४१ पल्य	४८ पल्य	"	—
अच्युत	८	२,०६३	"	"	४८ पल्य	५५ पल्य	"	—
योग	६६	५,३५,१२७						

नोट— आयु का उपरोक्त प्रमाण बद्धायुष्क (जिन्होंने इन्हीं स्वर्गों की आयु बांधी होती है) के प्रति कहा गया है। घातायुष्क (जो उच्च स्वर्ग की आयु बांध लेते हैं; किन्तु बाद में परिणामों की मलिनता के फलस्वरूप निम्न स्वर्ग में जन्म लेते हैं) के प्रति आयु निम्नवत है (जहां इन दोनों में अन्तर है, केवल वही नीचे दिये गये हैं):—

जघन्य— सौधर्म–ईशान कल्प में आधा पल्य अधिक।

उत्कृष्ट— सौधर्म–ईशान कल्प से लेकर शतार–सहस्त्रार कल्प तक— अपनी–अपनी उत्कृष्ट आयु से आधा सागर अधिक।

लेश्या– सौधर्म व ईशान स्वर्ग में मध्यम पीत, सानत्कुमार व माहेन्द्र स्वर्ग में उत्कृष्ट पीत व जघन्य पद्म, ब्रह्म से महाशुक्र तक मध्यम पद्म, शतार व सहस्त्रार स्वर्ग में उत्कृष्ट पद्म व जघन्य शुक्ल, आनत से अच्युत स्वर्ग तक मध्यम शुक्ल लेश्या होती है।

लौकान्तिक देवों का वर्णन

नन्दीश्वर समुद्र को वेष्ठित करता हुआ नौवां अरुणवर द्वीप है। इसकी बाह्य जगती से १७२१ योजन प्रमाण दूर जाकर आकाश में अरिष्ट नामक अन्धकार वलयरूप से स्थित है और सौधर्म–ईशान–सानत्कुमार–माहेन्द्र स्वर्गों को आच्छादित करता हुआ ब्रह्म कल्प में अरिष्ट नामक इन्द्रक के तल भाग में एकत्रित होता है। यहां से ये अंधकार आठ श्रेणियों में विभक्त हो जाता है। मृदुंग सदृश आकार की ये तम पंक्तियां चारों दिशाओं में दो–दो होकर विभक्त एवम् तिरछी होती हुई लोक-पर्यन्त चली गई हैं। उन अंधकार पंक्तियों के अन्तराल में लौकान्तिक देवगण अवस्थित रहते हैं। ईशान दिशा में सारस्वत, पूर्व दिशा में आदित्य, आग्नेय दिशा में वन्हिदेव, दक्षिण दिशा में अरुण देव, नैऋत्य दिशा में गर्दतोय, पश्चिम दिशा में तुषित, वायव्य दिशा में अव्याबाध और उत्तर दिशा में अरिष्ट, ये आठ प्रकार के देव रहते हैं। इनके अन्तराल में दो–दो अन्य देव अवस्थित रहते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है :–

देवों के नाम	संख्या	अंतराल के देव	संख्या	अन्तःदेव	संख्या
सारस्वत	७००	अनलाभ	७००७	निर्माणराज	२३०२३
आदित्य	७००	सूर्याभ	६००६	दिगंतरक्ष	२५०२५
वन्हिदेव	७००७	चंद्राभ	११०११	आत्मरक्ष	२७०२७
अरुण	७००७	सत्याभ	१३०१३	सर्वरक्ष	२६०२६
गर्दतोय	६००६	श्रेयस्क	१५०१५	मरुदेव	३१०३१
तुषित	६००६	क्षेमंकर	१७०१७	वसुदेव	३३०३३
अव्याबाध	११०११	वृषभेष्ट	१६०१६	अश्वदेव	३५०३५
अरिष्ट	११०११	कामधर	२१०२१	विश्वदेव	३७०३७
योग	५५,४५४		१,१२,११२		२,४०,२४०

इन सभी लौकांतिक देवों की संख्या = ४,०७,८०६ है। लौकांतिक देवों में प्रत्येक के शरीर की ऊँचाई ५ हाथ प्रमाण है। अरिष्ट नामक देव की आयु ६ सागर है (यह आयु त्रिलोकसार गाथा ५४० की अपेक्षा से है, मतान्तर से यह आयु तिलोयपण्णत्ती गाथा ६६३ की अपेक्षा ८ सागर ही है।), बाकी सभी देवों की आयु ८ सागर है। ये लौकान्तिक देव, देवी आदि परिवार से रहित, परस्पर में हीनाधिकता से रहित, विषयों से विरक्त, देवों में ऋषि के समान होने से देवर्षि कहलाते हैं। बारह भावनाओं के चिंतवन में तल्लीन, सभी इन्द्रों और देवों से पूज्य हैं। चौदह पूर्व रूप श्रुत ज्ञान के धारी हैं। तीर्थंकरों के निष्क्रमण कल्याणक में सम्बोधनरूप नियोग को पूरा करने के लिए और भक्ति भाव स्तुति करने के लिए जाते हैं, अन्य कल्याणकों में नहीं जाते हैं। वे नियम से एक भव मनुष्य को लेकर मोक्ष चले जाते हैं। ये शुक्ल लेश्याधारी होते हैं और सम्यग्दर्शन से युक्त होते हैं। जो श्रमण स्तुति और निन्दा, सुख और दुख में तथा बन्धु और शत्रु वर्ग में समान हैं, बहुत काल पर्यन्त बहुत प्रकार के वैराग्य को भाकर संयम सहित मरण करते हैं, देह के विषय में निरपेक्ष हैं, तीनों योगों को वश में करने वाले हैं तथा निर्ममत्व, निरारम्भ और निरवद्य हैं, संयोग और वियोग में, लाभ और अलाभ में तथा जीवन और मरण में समदृष्टि होते हैं, संयम, समिति, ध्यान एवं समाधि के विषय में जो निरन्तर अप्रमत्त (सावधान) रहते हैं तथा तीव्र तपश्चरण से संयुक्त हैं और पांच महाव्रतों सहित पांच समितियों का स्थिरता पूर्वक पालन करने वाले और पांचों इन्द्रिय विषयों से विरक्त ऋषि हैं, वे ही लौकान्तिक देवों में जन्म लेते हैं।

वैमानिक देवों की संख्या

स्वर्ग का नाम	संख्या
सौधर्म –ईशान	जगच्छ्रेणी (J) X घनांगुल (G) का तृतीय वर्गमूल = $J \times G^{1/8}$
सानत्कुमार–माहेन्द्र	जगच्छ्रेणी ÷ जगच्छ्रेणी का ग्यारहवां वर्गमूल = $J \div J^{1/2048}$
ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	जगच्छ्रेणी ÷ जगच्छ्रेणी का नवां वर्गमूल = $J \div J^{1/512}$
लान्तव –कापिष्ठ	जगच्छ्रेणी ÷ जगच्छ्रेणी का सातवां वर्गमूल = $J \div J^{1/128}$
शुक्र–महाशुक्र	जगच्छ्रेणी ÷ जगच्छ्रेणी का पांचवां वर्गमूल = $J \div J^{1/32}$

शतार–सहस्त्रार	जगच्छ्रेणी ÷ जगच्छ्रेणी का चतुर्थ वर्गमूल $= J \div J^{1/16}$
आनत–प्राणत	प्रत्येक कल्प में पल्य का असंख्यातवां भाग, किन्तु उत्तरोत्तर आरणादिक में संख्यातगुणा हीन है।
आरण–अच्युत	

देवों की संख्या से देवियाँ संख्यातगुणी हैं।

मुक्तिगामी जीव

सौधर्म इन्द्र तथा इन्द्र की शची देवी, सौधर्म इन्द्र के चारों लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर), सानत्कुमार आदि दक्षिण इन्द्र, सभी लौकान्तिक देव और सर्वार्थसिद्धि (अनुत्तर विमान) के देव नियम से एक भवावतारी होते हैं।

स्वर्गों में उत्पन्न होनें वाले जीव

किस प्रकार के जीव	कहां की आयु बांधते हैं
जो कषायों का शमन, इन्द्रियों का दमन, जीवनपर्यन्त त्याग और नियम से युक्त हों, मन, वचन, काय को वश में करने वाले, निर्ममत्व परिणाम वाले तथा आरम्भ से रहित होते हैं, वे साधु	इन्द्र अथवा पाँच अनुत्तरों की
जो ईर्ष्या, मात्सर्य भाव, भय और लोभ के वशीभूत होकर वर्तन नहीं करते हैं तथा विविध गुण और श्रेष्ठ शील से संयुक्त होते हैं, वे श्रमण	महा ऋद्धिधारक देव
जो सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् तप से युक्त, मार्दव और विनय आदि गुणों से सम्पन्न, मद और शल्यों रहित साधु	कोई कोई महाऋद्धिधारक देव
समता भाव धारण करने वाले श्रमण/शरीर से निरपेक्ष, अत्यन्त वैराग्यभावों से युक्त और रागादि दोषों से रहित श्रमण/मूल और उत्तर गुणों, पञ्च समितियों, पञ्च महाव्रतों, धर्म एवं शुक्ल ध्यान तथा योग की साधना में सदैव प्रमाद रहित वर्तन करने वाले श्रमण	महाऋद्धिधारक देव

जो उत्तम, मध्यम और जघन्य पात्रों को औषधि, आहार, अभय और ज्ञान दान देते हैं	मध्यम ऋद्धिधारक देव
दस पूर्वधारी श्रमण	सौधर्म स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त
चौदह पूर्वधारी श्रमण	लान्तव स्वर्ग से सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त
चार प्रकार के दान में प्रवृत्त, कषायों से रहित और पंच परमेष्ठियों की भक्ति से युक्त देशव्रत संयुक्त जीव	सौधर्म स्वर्ग से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त
लज्जा और मर्यादा रूप मध्यम भावों से युक्त तथा उपशम प्रभृति भावों से संयुक्त जीव	मध्यम ऋद्धिधारक देव
सम्यकत्व, ज्ञान, आर्जव, लज्जा एवम शीलादि से परिपूर्ण स्त्रियाँ	अच्युत कल्प पर्यन्त
जिनलिंगधारी अभव्यजीव जो उत्कृष्ट तप के श्रम से परिपूर्ण हैं।	उपरिम ग्रैवेयक पर्यन्त
पूजा, व्रत, तप, दर्शन, ज्ञान और चारित्र से सम्पन्न निर्ग्रन्थ भव्य जीव	उपरिम ग्रैवेयक से आगे सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त
मन्दकषायी एवं प्रिय बोलने वाले कितने ही चार्वाक (साधुविशेष) / परिव्राजक	भवनवासी देवों को आदि लेकर ब्रह्म कल्प पर्यन्त
पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यन्च अकाम निर्जरा से युक्त और मन्द कषायी	सहस्त्रार कल्प पर्यन्त
अनादि से प्रकटित संज्ञाओं एवं अज्ञान के कारण अपने चारित्र में अत्यन्त क्लिश्यमान भाव संयुक्त कई जीव	अल्पर्द्धिक देव

काय क्लेश आदि सहित, तीव्र क्रोध से युक्त आजीवक साधु	भवनवासी देवों से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त
असंयत सम्यग्दृष्टि और देशसंयमी मनुष्य और तिर्यन्च	अच्युत कल्प पर्यन्त
द्रव्य से निग्रन्थ, किन्तु भाव से मिथ्यादृष्टि	अन्तिम ग्रैवेयक पर्यन्त
जो मनुष्य कंदर्प–काम, रागादि परिणामों से सहित पुण्य संचय करते हैं	ईशान स्वर्ग पर्यन्त कंदर्प जाति के देव
जो मनुष्य गीत, गान आदि को आजीविका–नृत्य आदि करते हैं, किल्विषिक परिणाम सहित होते हैं और शुभ कर्म का संचय करते हैं	लान्तव कल्प तक किल्विषिक जाति के देव
जो मनुष्य पापक्रिया में– पूज्यों के अपमान आदि में प्रवृत्त होते हैं और आभियोग्य भावना से सहित होते हैं	अच्युत कल्प पर्यन्त आभियोग्य जाति के देव

गन्धोदक कहां और क्यों

१. ललाट – हे जिनेन्द्र देव! मेरा सिर सदैव आपके चरणों में झुका रहे।
२. पलक – आपकी परम वीतरागी शान्त मुद्रा मेरी आँखों में सदा के लिये बस जाये।
३. कण्ठ – मैं सदैव आपका भक्तिपूर्वक गुणगान करता रहूँ।
४. कान – मैं सदा आपकी दिव्य वाणी सुनता रहूँ।
५. हृदय - आप मेरे मन-मन्दिर में सदा विराजित रहें।
६. सिर - आपका यह पवित्र गन्धोदक मेरे समस्त कर्मों, नोकर्मों, कषायों को नष्ट कर दे और इसके प्रताप से मुझे आपकी जिन सम्पत्ति मिल जाए, अर्थात् मुझे केवलज्ञान प्राप्त हो जाये।

कल्पातीत विमान

इनमें स्थित देवों को अहमिन्द्र कहते हैं, ये सभी देवियों रहित होते हैं।

नाम	विवरण	स्थिति	विमानों की संख्या	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	ऊँचाई	लेश्या	जीवों की संख्या
जघन्य ग्रैवेयक	सुदर्शन	अच्युत स्वर्ग के ऊपर एक राजू ऊँचाई के अन्तर्गत	१११	कुछ अधिक २२ सागर	२३ सागर	२ $\frac{१}{२}$ हाथ	मध्यम शुक्ल	आनत प्राणत आरण अच्युत नव ग्रैवेयक नव अनुदिश विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित इन २६ कल्पों में प्रत्येक कल्प के देवों का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग है। यह प्रमाण सामान्य से है, किन्तु विशेष रूप में उत्तरोत्तर-- आरणादिक में संख्यातगुणा हीन है।
	अमोघ			" २३ सा.	२४ सा.	"	"	
	सुप्रबुद्ध			" २४ सा.	२५ सा.	"	"	
मध्यम ग्रैवेयक	यशोधर		१०७	" २५ सा.	२६ सा.	२ हाथ	"	
	सुभद्र			" २६ सा.	२७ सा.	"	"	
	सुविशाल			" २७ सा.	२८ सा.	"	"	
उत्कृष्ट ग्रैवेयक	सुमनस		९१	" २८ सा.	२९ सा.	१ $\frac{१}{२}$ हाथ	"	
	सौमनस			" २९ सा.	३० सा.	"	"	
	प्रीतिंकर			" ३० सा.	३१ सा.	"	"	
नव अनुदिश विमान	*		९	" ३१ सा.	३२ सा.	१ हाथ	उत्कृष्ट शुक्ल	
पांच अनुत्तर विमान	विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित		४	एक समय अधिक ३२ सागर	३३ सा.	"	"	
	सर्वार्थ सिद्धि		१	३३ सागर	३३ सा.	"	"	संख्यात**
योग			३२३					

* अर्चि, आर्चिमालिनी, वैर, वैरोचन, सोम, सोमप्रभ, अंक, स्फटिक और आदित्य

** यह संख्या मानुषियों का जितना प्रमाण है उससे तिगुना अथवा सात गुना है (यह कथन दो आचार्यों के मत की अपेक्षा से है)।

कल्पातीत देव तीर्थकरों के कल्याणकों में नहीं जाते, अपितु अपने स्थान से ही उनको शिर नवाकर नमस्कार करते हैं।

प्रत्येक विमान में एक अकृत्रिम जिन भवन होता है। ऊर्ध्व लोक में समस्त अकृत्रिम जिन भवनों का प्रमाण (८४,९६,७०० +३२३) = ८४,९७,०२३ है।

न स्वाध्यायत्परं तपः।

अर्थात् - स्वाध्याय के बराबर कोई तप नहीं है।

स्वाध्याय के भेद

वाचनापृच्छनाऽनुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः।।२५।।

(तत्त्वार्थ सूत्र-अध्याय ९, आ. उमास्वामीकृत)

१. वाँचना - आत्मकल्याण हेतु निर्दोष ग्रन्थों का पढ़ना।

२. पृच्छना - सत्पथ पर चलने के लिए प्रश्न पूँछना।

३. अनुप्रेक्षा - निश्चित किए हुए वस्तु स्वभाव व पदार्थ स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना।

४. आम्नाय - चित्त रोककर शान्तिदायक पाठों को शुद्धतापूर्वक पढ़ना, याद करना, घोकना, मनन करना।

५. धर्मोपदेश- सत्य मार्ग एवम् पदार्थों का स्वरूप कहना तथा श्रोताओं में रत्नत्रय में प्रवृत्ति के लिए धर्मोपदेश देना, प्रवचन करना।

(८) अष्टम ईषत्प्राग्भार पृथ्वी (चित्र १.०८)

(पार्श्वभाग के वातवलय नहीं दर्शाये गये हैं)

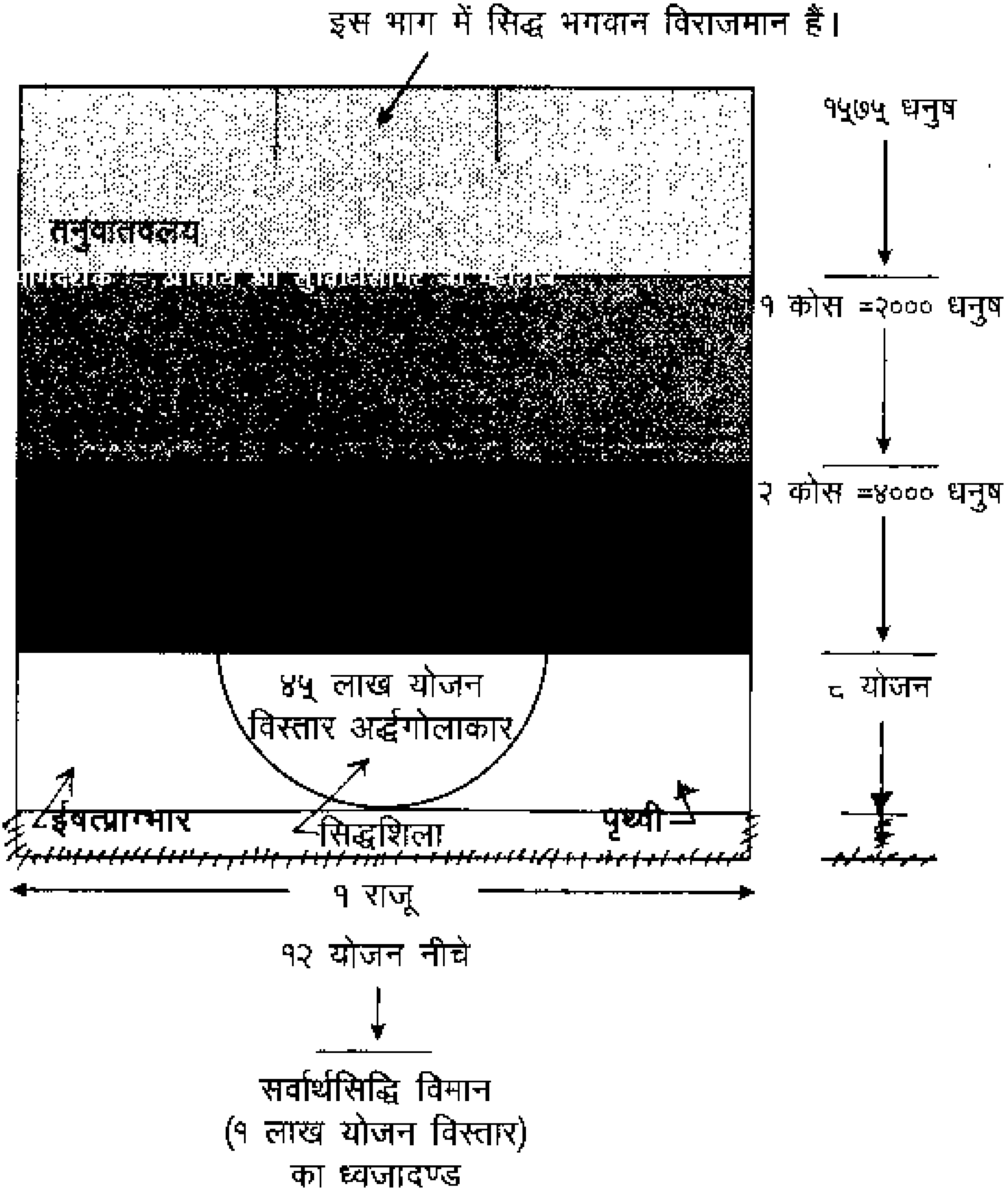

चित्र १.०८

तीन लोक के मस्तक पर आरूढ़ ईषत्प्राग्भार नाम वाली आठवीं पृथ्वी है, इसकी चौड़ाई एक राजू, लम्बाई सात राजू और बाहुल्य आठ योजन प्रमाण है। यह सर्वार्थसिद्धि विमान के ध्वजादण्ड से बारह योजन ऊपर जाकर अवस्थित है। इसके ठीक मध्य में रजतमय छत्राकार और मनुष्य क्षेत्र के व्यास (४५ लाख योजन) प्रमाण सिद्धक्षेत्र है, जिसके मध्य की मोटाई आठ योजन है, और अन्यत्र क्रम से हीन होती हुई अन्त में ऊंचे (सीधे) रखे हुए कटोरे के सदृश एक अंगुल रह गई है। इस पृथ्वी से ७०५० धनुष और ७५७५ धनुष के अन्तराल में (४००० धनुष घनोदधिवातवलय+ २००० धनुष घनवातवलय + १५७५ तनुवातवलय – ५२५ धनुष सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना) परमोत्कृष्ट सिद्ध परमेष्ठी विराजमान हैं। तनुवात के उपरिम भाग में सब सिद्धों के सिर सदृश होते हैं। तनुवातवलय के ऊपर धर्मद्रव्य का अभाव होने से इनका गमन नहीं है। एक सिद्ध जीव से अवगाहित क्षेत्र के अनन्तर जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तानन्त सिद्ध जीव होते हैं। जघन्य अवगाहना साढ़े तीन हाथ है।

$$\text{इनकी (सिद्ध जीवों) की संख्या} = \frac{\text{अतीत काल के समय}^{*} \times ६०८^{**}}{\text{(६ महीना ८ समय) के समय}}$$

---

* यह एक अक्षय अनन्त राशि है।

** गोम्मटसार जीव काण्ड (श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित) की गाथा १९७ के अनुसार निगोद के दो भेद हैं। एक नित्य निगोद और दूसरा चतुर्गति (अथवा इतर) निगोद। इन दोनों प्रकार के जीवों की संख्या अनन्तानन्त है। तथा छह महीना आठ समय में ६०८ जीवों के उसमें से निकलकर तथा इतने ही मोक्ष को चले जाने पर भी कोई बाधा नहीं आती। यहाँ ६०८ जीवों का निगोद से निकलने का आशय नित्य निगोद से है। इस गाथा से यह सिद्ध होता है कि छह महीना आठ समय में नियम से ६०८ जीव निगोद से निकलते हैं तथा इतने ही जीव मोक्ष में जाते हैं, तो

$$\text{मुक्त सिद्ध जीवों की संख्या} = \frac{\text{अतीत काल के समय} \times ६०८}{\text{(६ महीना आठ समय) के समय}}$$

मतान्तर से तिलोय पण्णत्ती (श्री यतिवृषभाचार्य विरचित) के नवें महाधिकार की गाथा ५ के अनुसार, यह संख्या ६०८ के स्थान पर ५९२ है।

सिद्धजीवों का सुख– चक्रवर्ती, भोगभूमिज, धरणेन्द्र, देवेन्द्र और अहमिन्द्रों का सुख क्रमशः एक दूसरे से अनन्त गुणा है। इन सबके त्रिकालवर्ती सुख से सिद्धों का एक क्षण का भी सुख अनन्त गुणा है।

सिद्धों के गुण– अष्ट कर्मों के नाश होने से सिद्धों के निम्न गुण प्रकट होते हैं–

ज्ञानावरणी कर्म (घातिया) के नाश होने से अनन्त ज्ञान,

दर्शनावरणी कर्म (घातिया) के नाश होने से अनन्त दर्शन,

वेदनीय कर्म (अघातिया) के नाश होने से अव्याबाधत्व,

मोहनीय कर्म (घातिया) के नाश होने से क्षायिक सम्यक्त्व एवं अनन्त सुख

आयु कर्म (अघातिया) के नाश होने से अवगाहनत्व,

नाम कर्म (अघातिया) के नाश होने से सूक्ष्मत्व,

गोत्र कर्म (अघातिया) के नाश होने से अगुरुलघुत्व और

अन्तराय कर्म (घातिया) के नाश होने से अनन्त वीर्य।

सिद्धों के समस्त गुणों को कहने में जब गणधर, बृहस्पति, सरस्वती भी असमर्थ हैं, तब मुझ जैसे बुद्धिहीन व अल्पज्ञ की सामर्थ्य ही क्या है। मेरा सिद्ध परमेष्ठियों को मन–वचन–कायपूर्वक, उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक, उत्कृष्ट विनय पूर्वक, उत्कृष्ट श्रद्धापूर्वक, उत्कृष्ट अनन्तानन्त बार, त्रिकालवर्ती नमोऽस्तु होवे।

स्वाध्याय बिना ज्ञान नहीं

स्वाध्याय बिन होत नहीं, निज-पर भेद विज्ञान।
जैसे मुनि पद के बिना, ना हो केवल ज्ञान।।२६।।

–क्षु. सन्मतिसागर जी विरचित 'मुक्तिपथ की ओर' से उद्धृत

(६) त्रिलोक– जीवों के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें

(क) योनि

- **आकृति योनि**
  - शंखावर्त्त (जिसके भीतर शंख के समान चक्कर पड़े हों)– इसमें नियम से गर्भ वर्जित है।
  - कूर्मोन्नत (जो कछुआ की पीठ की तरह उठी हुई हो)– इसमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, अर्धचक्री, बलभद्र तथा अन्य महान पुरुष उत्पन्न होते हैं।
  - वंशपत्र (जो बांस के पत्ते के समान लम्बी हो)– इसमें साधारण पुरुष उत्पन्न होते हैं।
- **गुण योनि**
  - सचित्त (सम्मूर्छन)
  - अचित्त (उपपाद जन्म–देव/नारकी, सम्मूर्छन)
  - मिश्र (सचित्ताचित्त) (गर्भ, जन्म, सम्मूर्छन)
  - शीत (उपपाद जन्म, गर्भ, सम्मूर्छन)
  - उष्ण (उपपाद जन्म, गर्भ सम्मूर्छन)
  - मिश्र (शीतोष्ण) (गर्भ, सम्मूर्छन)
  - संवृत (ढ़का हुआ) (उपपाद जन्म, एकेन्द्रिय जीव)
  - विवृत (खुला हुआ) (विकलेन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय सम्मूर्छन जीव)
  - मिश्र (संवृत और विवृत की अपेक्षा) (गर्भज)
  - सामान्य से उक्त नवभेद होते हैं।

इनके निम्नवत ८४ लाख भेद होते हैं:

नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु– प्रत्येक की सात लाख	= ४२ लाख
प्रत्येक वनस्पति	= १० लाख
द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय– प्रत्येक की दो लाख	= ६ लाख
देव, नारकी, तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय– प्रत्येक की चार लाख	= १२ लाख
मनुष्य	= १४ लाख
योग	= ८४ लाख

(ख) जन्म

उपपाद – देव, नारकी

गर्भज– पर्याप्त मनुष्य, तिर्यंच (लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय को छोड़कर), भोग भूमिया तिर्यंच

सम्मूर्छन– मनुष्य, तिर्यंच, लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय

भावार्थ– देव, नारकी पर्याप्त निर्वृत्यपर्याप्त ही होते हैं। और चक्रवर्ती की रानी आदि को छोड़कर शेष आर्यखण्ड की स्त्रियों की योनि, काँख, स्तन, मूत्र, मल आदि में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्छन जीव ही होते हैं।

(ग) वेद

भाव वेद– मोहनीय कर्म की प्रकृति के उदय से होने वाले परिणाम विशेष

द्रव्य वेद– आंगोपांग नाम कर्म के उदय से होने वाले शरीरगत चिन्ह विशेष

देव/भोग भूमि–पुरुष वेद, स्त्रीवेद (दोनों ही भाव व द्रव्य भेद की अपेक्षा से)

नारकी/सम्मूर्छन मनुष्य तथा तिर्यंच– नपुंसक वेद (" " " ")

शेष मनुष्य और तिर्यंच– तीनों ही वेद (इनमें भाव वेद व द्रव्य वेद में विपरीतता भी पाई जाती है)

(घ) कुल–

शरीर के भेद को कारणभूत नोकर्म वर्गणाओं के भेद को कुल कहते हैं।

पृथ्वीकायिक जीव	–	२२ लाख कोटि
जलकायिक जीव	–	७ लाख कोटि
अग्निकायिक जीव	–	३ लाख कोटि
वायुकायिक जीव	–	७ लाख कोटि
द्वीन्द्रिय जीव	–	७ लाख कोटि
त्रीन्द्रिय जीव	–	८ लाख कोटि
चतुरिन्द्रिय	–	९ लाख कोटि
वनस्पतिकायिक जीव	–	२८ लाख कोटि
पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में जलचरजीव	–	१२ $\frac{१}{२}$ लाख कोटि
पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में पक्षीजीव	–	१२ लाख कोटि
पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में पशु जीव	–	१० लाख कोटि
पंचेन्द्रिय छाती के सहारे चलने वाले जीव	–	९ लाख कोटि
देव	–	२६ लाख कोटि
नारकी	–	२५ लाख कोटि
मनुष्य	–	१२ लाख कोटि
योग	**–**	**१९७ $\frac{१}{२}$ लाख कोटि**

(१ कोड़ाकोड़ी तथा सत्तानवे लाख और पचास हजार कोटि)

(नोट– तत्त्वार्थसूत्र में मनुष्य के १४ लाख कोटि कुल बताये हैं, इसके अनुसार कुल कुलों की संख्या १ कोड़ा कोड़ी तथा निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि होती है)

(ङ.) अवगाहना

सबसे जघन्य अवगाहना ऋजुगति के द्वारा उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्य- पर्याप्तक जीव की उत्पत्ति के तीसरे समय होती है जो कि घनांगुल के

असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। उत्कृष्ट अवगाहना स्वयम्भूरमण समुद्र के मध्य में होने वाले महामत्स्य की १००० योजन लम्बा, ५०० योजन चौड़ा, २५० योजन मोटा होती है। इन्द्रियों के दृष्टिकोण से उत्कृष्ट अवगाहना निम्नवत है:–

एकेन्द्रिय	– कमल	– कुछ अधिक १००० योजन
द्वीन्द्रिय	– शंख	– बारह योजन
त्रीन्द्रिय	– चींटी	– ३ कोश
चतुरिन्द्रिय	– भ्रमर	– १ योजन
पंचेन्द्रिय	–महामत्स्य	– १००० योजन

द्वीन्द्रिय में जघन्य अवगाहना अनुंधरी के पाई जाती है जो धनांगुल का संख्यातवां भाग मात्र है, इससे संख्यात गुणी त्रीन्द्रियों में कुंथु के पाई जाती है, इससे संख्यात गुणी चतुरिन्द्रियों में काणमक्षिका की और इससे भी संख्यात गुणी पंचेन्द्रियों में सिक्थक मत्स्य के पाई जाती है।

(घ) पर्याप्ति

पर्याप्त नाम कर्म के उदय से पर्याप्त (पूर्ण) और अपर्याप्त नाम कर्म के उदय से अपूर्ण पर्याय को अपर्याप्त कहते हैं। अपर्याप्त जीव के दो भेद हैं– एक निर्वृत्य पर्याप्त है जिनकी पर्याप्ति अन्तर्मुहुर्त में नियम से पूर्ण हो जायेगी और दूसरा लब्ध्य पर्याप्त है जिनकी पर्याप्ति न तो अभी तक पूर्ण हुई है और न होगी तथा पर्याप्त पूर्ण होने के काल से पहले ही जिनका मरण हो जायेगा अर्थात अपनी आयु काल में जिनकी पर्याप्ति कभी भी पूर्ण न हो।

पर्याप्ति निम्न प्रकार की होती है :–

१. **आहार पर्याप्ति–** एक शरीर को छोड़कर दूसरे नवीन शरीर के लिये कारणभूत जिन नोकर्मवर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है उनको खलरसभाग रूप परिणमाने की पर्याप्त नाम कर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति को पूर्ण हो जाने को कहते हैं।

२. **शरीर पर्याप्ति–** उपरोक्त में से खलभाग को हड्डी आदि कठोर अवयव तथा रसभाग को खून आदि द्रव (नरम–पतले) अवयवरूप परिणमाने की शक्ति के पूर्ण होने को कहते हैं।

३. **इन्द्रिय पर्याप्ति–** उसी नोकर्मवर्गणा के स्कन्धों में से कुछ वर्गणाओं को अपनी-अपनी इन्द्रिय के स्थान पर उस द्रव्येन्द्रिय के आकार परिणमाने की आवरण– ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम तथा जाति नाम कर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण हो जाने को कहते हैं।

४. **श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति–** इसी प्रकार कुछ स्कन्धों की श्वासोच्छ्वासरूप परिणमाने की शक्ति के पूर्ण हो जाने को कहते हैं।

उपरोक्त चार पर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय जीव की होती है। इन जीवों की अन्य पर्याप्ति नहीं होती है।

५. **भाषा पर्याप्ति–** वचनरूप होने के योग्य पुद्गल स्कन्धों (भाषा वर्गणा) को वचनरूप परिणमाने की स्वरनाम कर्म के उदय से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण होने को कहते हैं।

ये पांच पर्याप्तियां द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी (मनरहित) पंचेन्द्रिय तक के जीवों की होती हैं।

६. **मनः पर्याप्ति –** द्रव्यमन रूप होने के योग्य पुद्गल स्कन्धों को (मनोवर्गणाओं को) द्रव्यमन के आकर परिणमाने की नोइन्द्रियावरण और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से युक्त जीव की शक्ति के पूर्ण होने को कहते हैं।

यह छहों पर्याप्तियां संज्ञी जीवों के हुआ करती हैं।

समस्त पर्याप्तियों का आरम्भ तो युगपत होता है, किन्तु उनकी पूर्णता क्रम से होती है। इनका काल यद्यपि पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर कुछ–कुछ अधिक है, तथापि सामान्य की अपेक्षा सबका अन्तर्मुहूर्तमात्र ही काल है। आहार पर्याप्ति की पूर्णता होने के संख्यात भाग अधिक काल में शरीर पर्याप्ति पूर्ण होती है। इसके आगे की पर्याप्ति के पूर्ण होने में पूर्व की अपेक्षा कुछ अधिक काल लगता है, तथापि वह अन्तर्मुहूर्त ही है। इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन पर्याप्तियों के पूर्ण नहीं होने पर भी यदि शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो गई है तो वह जीव पर्याप्त ही है, किन्तु उससे पूर्व निर्वृत्यपर्याप्तक कहा जाता है।

एक लब्ध्यपर्याप्तक जीव यदि निरन्तर जन्म मरण करे तो अन्तर्मुहर्त काल में ६६३३६ जन्म और उतने ही मरण कर सकता है, इससे अधिक नहीं। इन भवों में से प्रत्येक का काल प्रमाण श्वास का अठारहवां भाग है। फलतः त्रैराशिक के अनुसार ६६३३६ भवों के श्वासों का प्रमाण ३६८५$\frac{१}{३}$ उच्छवास होता है। इतने उच्छ्वासों के समूह प्रमाण अन्तर्मुहूर्त में पृथ्वीकायिक से लेकर पंचेन्द्रिय तक लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के क्षुद्रभव ६६३३६ हो जाते है। ध्यान रहे ३७७३ उच्छवासों का एक मुहूर्त होता है।

उक्त भवों का खुलासा इस प्रकार है:

स्थूल पृथ्वीकादिक	६, ०१२ भव
सूक्ष्म " "	६, ०१२ "
स्थूल जलकायिक	६, ०१२ "
सूक्ष्म " "	६, ०१२ "
स्थूल अग्निकायिक	६, ०१२ "
सूक्ष्म " "	६, ०१२ "
स्थूल वायुकायिक	६, ०१२ "
सूक्ष्म " "	६, ०१२ "
स्थूल साधारण वनस्पतिकायिक	६, ०१२ "
सूक्ष्म " " " "	६, ०१२ "
प्रत्येक वनस्पतिकायिक	६, ०१२ "
समस्त एकेन्द्रिय	६६,१३२ "
द्वीन्द्रिय	८० "
त्रीन्द्रिय	६० "
चतुरिन्द्रिय	४० "
पचेन्द्रिय	२४ "
कुल	**६६,३३६ भव**

(छ) प्राण

जिनके सद्भाव में जीव में जीवितपने का, वियोग होने पर मरणपने का व्यवहार हो, उनको प्राण कहते हैं। प्राण और पर्याप्ति में कार्य और कारण का अन्तर है। प्राण दस प्रकार के होते हैं :–

पांच इन्द्रिय प्राण– स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षुः, श्रोत्र। तीन बल प्राण–मनोबल, वचनबल, काय बल। एक श्वासोच्छ्वास तथा एक आयु।

वीर्यान्तराय और अपने–अपने योग्य मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले मनोबल और इन्द्रिय प्राण, निज और पर पदार्थों को ग्रहण करने में समर्थ लब्धिनामक भावेन्द्रिय रूप होते हैं। इस ही प्रकार अपने–अपने पूर्वोक्त कारण से उत्पन्न होने वाले कायबलादिक प्राणों में शरीर की चेष्टा उत्पन्न करने की सामर्थ्यरूप कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास की प्रवृत्ति में कारण भूत शक्तिरूप श्वासोच्छ्वास प्राण, वचन व्यापार को कारणभूत शक्तिरूप वचोबल प्राण तथा नरकादि भव धारण करने की शक्तिरूप आयु प्राण होता है। प्राण इस प्रकार होते हैः–

जीव	पर्याप्त	अपर्याप्त
एकेन्द्रिय जीव	स्पर्शन, काय बल, श्वासोच्छ्वास, आयु	स्पर्शन, कायबल, आयु
द्वीन्द्रिय जीव	स्पर्शन, रसना, वचन बल, काय बल, श्वासोच्छ्वास, आयु	स्पर्शन, रसना, कायबल, आयु
त्रीन्द्रिय जीव	स्पर्शन, रसना, घ्राण, वचन बल, काय बल, श्वासोच्छ्वास, आयु	स्पर्शन, रसना, घ्राण, कायबल, आयु
चतुरिन्द्रिय जीव	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, वचन बल, काय बल, श्वासोच्छ्वास, आयु	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कायबल, आयु
असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	पांचों इन्द्रिय, वचन बल, काय बल श्वासोच्छ्वास, आयु	पांचों इन्द्रिय, कायबल, आयु
संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	पांचों इन्द्रिय, तीनों बल, श्वासोच्छ्वास, आयु	पांचों इन्द्रिय, कायबल, आयु

(ज) संज्ञा

जिनसे संक्लेशित होकर जीव इस लोक में और जिनके विषय का सेवन करने से दोनों ही भवों में दारुण दुःख को प्राप्त होते हैं उनको संज्ञा कहते हैं। संज्ञा नाम वाञ्छा का है। जिसके निमित्त से दोनों ही भवों में दारुण दुःख की प्राप्ति होती है, उस वांछा को संज्ञा कहते हैं। उसके चार भेद हैं– आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। क्योंकि इन आहारादिक चारों ही विषयों की प्राप्ति और अप्राप्ति दोनों ही अवस्थाओं में यह जीव संक्लिष्ट और पीड़ित रहा करता है। इस भव में भी दुःखों का अनुभव करता है और उसके द्वारा अर्जित पाप कर्म के उदय से परभव में भी सांसारिक दुःखों को भोगता है। इन संज्ञाओं के निम्नवत कारण होते हैं :

संज्ञा	बाह्य कारण	बाह्य कारण	बाह्य कारण	अंतरंग कारण
आहार संज्ञा	किसी उत्तम आहार को देखना	पूर्वानुभूत भोजन का स्मरण होना	पेट के खाली हो जाने से	असाता वेदनीय कर्म का तीव्र उदय एवं उदीरणा
भय संज्ञा	अत्यन्त भयंकर पदार्थ का देखना	पहले देखे हुए भयंकर पदार्थ का स्मरण	शक्ति के हीन होने पर	भय कर्म का तीव्र उदय–उदीरणा होना
मैथुन संज्ञा	कामोत्तेजक, स्वादिष्ट, गरिष्ट, रसयुक्त पदार्थ का भोजन करने से	काम कथा, नाटक आदि का सुनना एवं पहले के भुक्त विषयों का स्मरण आदि करना	कुशील का सेवन, कुशीली पुरुषों की संगति गोष्ठी आदि करना	वेद कर्म का तीव्र उदय या उदीरणा आदि
परिग्रह संज्ञा	इत्र, भोजन, उत्तम वस्त्र, स्त्री, धन, धान्य आदि भोगोपभोग के साधनभूत बाह्य पदार्थों का देखना	पहले के भुक्त पदार्थों का स्मरण या उनकी कथा का श्रवण आदि करना	ममत्व परिणामों के परिग्रहाद्यर्जन की तीव्र गृद्धि के भाव होना	लोभ कर्म का तीव्र उदय–उदीरणा

ये संज्ञायें प्रमत्त गुणस्थान तक होती हैं। अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में आहार संज्ञा नहीं होती। इन गुणस्थान में शेष संज्ञायें उपचार से ही होती हैं, क्योंकि उनके कारणभूत कर्मों का वहां उदय पाया जाता है। परन्तु भागना, रतिक्रीड़ा, परिग्रह के स्वीकार आदि में प्रवृत्ति रूप उनका कार्य वहां नहीं हुआ करता, क्योंकि वहां ध्यान अवस्था ही है।

(झ) चौदह जीव समास

संसार के भीतर रहने वाले अनन्त जीव जातियों के संग्रह करने की उस पद्धति को जीव–समास कहते हैं, जिसमें कोई जीव जाति छूट न जावे। आगम में जीवसमास के अनेक भेद हैं। बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय, और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय – ये सात, इनके पर्याप्तक और अपर्याप्तक दो भेदों से गुणा करने पर चौदह प्रकार से जीव समास होते हैं। **"बादर जीव"**– बादर नाम कर्म के उदय से जिसका शरीर दूसरों से रुकता है और दूसरों को रोकता है, इन्हें बादर जीव कहते हैं। **"सूक्ष्म जीव"** – सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जिनका शरीर न तो दूसरों से रुकता है और न दूसरों को रोकता है, उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं।

"पर्याप्तक"– जिन जीवों की आहारदिक पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाएं, उन्हें पर्याप्तक जीव कहते है। "अपर्याप्तक" जिन जीवों के आहारदि पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं होती है, उन्हें अपर्याप्तक कहते हैं– इनके दो भेद होते हैं। एक तो वे जिनकी शक्तियाँ अभी पूर्ण नहीं हुई हैं, किन्तु अन्तर्मुहूर्त के भीतर नियम से पूर्ण हो जाने वाली हैं, ऐसे जीव निर्वृत्यपर्याप्तक कहलाते हैं। दूसरे वे जिनकी शक्तियाँ न तो पूर्ण हुई हैं और न आगे पूर्ण होंगी, ऐसे जीव लब्ध्यपर्याप्तक कहलाते हैं। वास्तव में लब्ध्यपर्याप्तक (लब्धि–अपर्याप्तक) जीव ही अपर्याप्तक कहलाते हैं, क्योंकि उन्हीं के अपर्याप्तक नाम कर्म का उदय रहता है। निर्वृत्यपर्याप्तक तो मात्र निवृत्त (रचना) की अपेक्षा अपर्याप्तक है। जीव अपर्याप्त अवस्था में अन्तर्मुहूर्त तक ही रहते हैं। **"पर्याप्ति"**– आहारवर्गणा, भाषावर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओं को शरीर तथा इन्द्रियादि रूप परिणमावने की जीव की शक्ति की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्तिक के छह भेद – आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनः पर्याप्ति होते हैं। इन सब पर्याप्तियों के पूर्ण होने का काल अन्तर्मुहूर्त हैं और एक–एक पर्याप्ति का काल भी अन्तर्मुहूर्त है।

विशेष – ४८ मिनट का एक मुहुर्त होता है। आवली के ऊपर और मुहुर्त के भीतर प्रत्येक समय अर्थात कालखण्ड को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। एकेन्द्रिय के चार पर्याप्तियाँ (आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास), विकलत्रिय और असैनी पञ्चेन्द्रिय के पाँच (भाषा अतिरिक्त) तथा सैनी पञ्चेन्द्रिय के छह (मनः अतिरिक्त) पर्याप्तियाँ होती हैं।

(ञ) मार्गणा

प्रवचन में जिस प्रकार से देखे हों उसी प्रकार से जीवादि पदार्थों का जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में विचार–अन्वेषण किया जाये उनको ही मार्गणा कहते हैं। तात्पर्य यह है कि यह जीव के उन असाधारण कारणरूप परिणामों का बोध कराता है जोकि गुणस्थानों की सिद्धि में साधन हैं अथवा अपनी जीव की उन अधिकरणरूप पर्यायों– अवस्थाओं को बताता है जिनमें कि विवक्षित गुणस्थानों की सिद्धि शक्य एवं प्राप्ति संभव है। यद्यपि ये परिणाम और पर्याय अशुद्ध जीव के होते हैं फिर भी उसकी शुद्धि में साधन और आधार हैं अतएव अन्वेष्य है। मार्गणा चौदह प्रकार की होती है।

१. गति मार्गणा – गति नाम कर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय को अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को कहते हैं। इसके चार भेद– नरक गति, तिर्यग्गति, मनुष्य गति और देवगति।

२. इन्द्रिय मार्गणा – इन्द्र के समान जो हो उसको इन्द्रिय कहते हैं। जिस प्रकार नवग्रैवेयकादिवासी किसी की आज्ञा के वशवर्ती नहीं हैं, अतएव स्वतन्त्र हैं। उसी प्रकार स्पर्शन आदि इन्द्रियां भी अपने–अपने विषयों में दूसरे विषय की अपेक्षा न रखकर स्वतंत्र हैं। इनके भावेन्द्रिय (मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले विशुद्धि अथवा उस विशुद्धि से उत्पन्न होने वाले उपयोगात्मक ज्ञान) और द्रव्येन्द्रिय (शरीर नाम कर्म के उदय से बनने वाले शरीर के चिन्ह विशेष), ये दो भेद होते हैं। इन्द्रिय के पांच भेद एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय हैं जो स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द से सम्बन्धित हैं।

३. काय मार्गणा – जाति नाम कर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नाम कर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को कहते हैं। उसके छह

भेद हैं— पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस।

४. योग मार्गणा — पुद्गल विपाकी शरीर नाम कर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है, उसको योग कहते हैं। उसके दो भेद हैं— भाव योग और द्रव्य योग। पुद्गल विपाकी आंगोपांग नाम कर्म और शरीर नाम कर्म के उदय से, मन वचन काय पर्याप्ति जिसकी पूर्ण हो चुकी है और जो मनोवाक्काय वर्गणा का अवलम्बन रखता है ऐसे संसारी जीव की जो समस्त प्रदेशों में रहने वाली कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उसको भाव योग कहते हैं और इस ही प्रकार के जीव के प्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है उसको द्रव्य योग कहते हैं। यहां पर कर्म शब्द उपलक्षण है, इसलिये कर्म और नोकर्म दोनों को ग्रहण करने वाला योग होता है, ऐसा समझना चाहिए।

५. वेद मार्गणा — वेद नामक नोकषाय के उदय से जीवों के भाव वेद होता है और निर्माण नाम कर्म सहित आंगोपांग नामकर्म के उदय से द्रव्य वेद होता है। यह दोनों वेद प्रायः करके समान ही होते हैं, अर्थात जो द्रव्य वेद वही भाव वेद और जो भाव वेद वही द्रव्य वेद। परन्तु कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यग्गति में कहीं—कहीं विषमता देखी जाती है। इसके तीन भेद होते हैं:

पुरुष — उत्कृष्ट गुण अथवा उत्कृष्ट भोगों का जो स्वामी है, अथवा लोक में उत्कृष्ट गुणयुक्त कर्म को करे, यद्वा जो स्वयं उत्तम हो उसको पुरुष कहते हैं।

स्त्री — जो मिथ्यादर्शन अज्ञान असंयम आदि दोषों से अपने को आच्छादित करे और मृदु भाषण, तिरछी चितवन आदि व्यापार से जो दूसरे पुरुषों को भी हिंसा, अब्रह्म आदि दोषों से आच्छादित करे, उसको आच्छादन—स्वभावयुक्त होने से स्त्री कहते हैं। यह लक्षण बहुलता की अपेक्षा से है, क्योंकि तीर्थकरों की माता या सम्यक्त्वादि गुणों से भूषित दूसरी बहुत सी स्त्रियाँ

अपने को तथा दूसरों को दोषों से आच्छादित नहीं भी करती हैं।

नपुंसक – जो न स्त्री हो और न पुरुष हो, ऐसे दोनों ही लिंगों से रहित जीव को नपुंसक कहते हैं। इसके भट्टा में पकती ईंट के अग्नि के समान तीव्र कषाय होती है।

६. कषाय मार्गणा – जीव के सुख दुःख आदि रूप अनेक प्रकार के धान्य को उत्पन्न करने वाले तथा जिसकी संसाररूप मर्यादा अत्यन्त दूर है ऐसे कर्मरूपी क्षेत्र (खेत) का यह कर्षण करता है, इसलिये इसको कषाय कहते हैं। बंधने वाले कर्मों में अनुभाग बंध और स्थिति बंध इसका कार्य है। सम्यक्त्व, देश चारित्र, सकल चारित्र, यथाख्यात चारित्ररूपी परिणामों को जो कषे–घाते, न होने दे, उसको कषाय कहते हैं। क्रमशः इसके अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन भेद होते हैं। इसके क्रोध, मान, माया, लोभ भी भेद होते हैं। इन दोनों प्रकारों का परस्पर गुणा करने से कषाय के १६ भेद हो जाते हैं।

यद्यपि यहां कषाय शब्द का ही उल्लेख है, तथापि यहां नोकषाय का भी ग्रहण कर लेना चाहिए अर्थात हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसक वेद। गुणस्थान की अपेक्षा ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर ऊपर के सभी जीव अकषाय होते हैं।

७. ज्ञान मार्गणा – जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक पर्यायों को जाने, उसको ज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं, एक प्रत्यक्ष एवम् क्षायिक–केवलज्ञान और दूसरा परोक्ष एवं क्षायोपशमिक– मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान। इनमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान सम्यग्ज्ञान भी होते हैं और मिथ्याज्ञान भी होते हैं। ज्ञान के मिथ्या होने का अंतरंग कारण मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय है। मिथ्या अवधि ज्ञान को विभंगज्ञान भी कहते हैं। मनः पर्यय ज्ञान केवल संयमी जीवों को ही हो सकता है (प्रमत्त गुणस्थान से लेकर क्षीण कषाय गुणस्थान पर्यन्त)।

८. संयम मार्गणा – पांच महाव्रतों का धारण करना, पांच समितियों का पालना, कषायों का निग्रह करना, मन वचन काय रूप दण्ड का त्याग तथा पांच इन्द्रियों के जय को संयम कहते हैं। बादर संज्वलन कषाय के उदय से अथवा सूक्ष्म लोभ के उदय से और मोहनीय कर्म के उपशम से अथवा क्षय से नियम से संयम रूप भाव उत्पन्न होते हैं।

संयम दो प्रकार का है– प्राणि संयम और इन्द्रिय संयम।

९. दर्शन मार्गणा – पदार्थों में सामान्य विशेष दोनों ही धर्म रहते हैं; किन्तु इनके केवल स्वरूप मात्र की अपेक्षा से जो स्व–परसत्ता का अभेदरूप निर्विकल्प अवभासन होता है, उसको दर्शन कहते हैं अतएव वह निराकार है और इसीलिये शब्दों द्वारा प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। इसके चार भेद हैं:–

चक्षुदर्शन – चक्षुरिन्द्रिय द्वारा पदार्थ का देखना अथवा ग्रहण करना

अचक्षु दर्शन – अन्य चार इन्द्रिय अथवा मन के द्वारा पदार्थ का सामान्य रूप ग्रहण

अवधि दर्शन – अवधि के विषयभूत परमाणु से लेकर महास्कन्ध पर्यन्त मूर्त द्रव्य का सामान्यरूप से प्रत्यक्ष

देखना–ग्रहण– प्रकाश– अवभासन होना

केवल दर्शन	–	लोक और अलोक के सभी पदार्थों का सामान्य आभास रूप प्रकाश होना, अर्थात सभी पदार्थों का सामान्य दर्शन होना।

१०. लेश्या मार्गणा – जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य ओर पाप से लिप्त करे, उसे लेश्या कहते हैं। ये दो प्रकार की है। द्रव्य लेश्या शरीर के वर्ण रूप और भाव लेश्या जीव के परिणामस्वरूप है। यहां भाव लेश्या को ही दृष्टि में रखकर यह निरुक्ति–सिद्ध लक्षण कहा गया है।

कषाय और योग इन दोनों के जोड़ को लेश्या कहा गया है। क्योंकि कर्मों का प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग के द्वारा होता है और स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध कषाय के द्वारा होता है। लेश्या छह प्रकार की होती है:– तीन अशुभ– कृष्ण, नील, कापोत और तीन शुभ– पीत, पद्म, शुक्ल।

कृष्ण	–	तीव्र क्रोध करने वाला, धर्म और दया रहित, वैर को न छोड़ने वाला, दुष्ट
नील	–	विवेकरहित, मानी, मायाचारी, इन्द्रिय लम्पट, ठग, अति निद्रालु, लोभी, धन धान्य के विषय में तीव्र लोभी
कापोत	–	क्रोध करना, निन्दा करना, शोक/भय ग्रस्त रहना, दूसरे का तिरस्कार करना, दूसरे को दुःख देना, स्व–प्रशंसा करना आदि।
पीत	–	अपने कार्य–अकार्य में विवेकशील, सबके विषय में समदर्शी, दया और दान में तत्पर, मन वचन काय के विषय में कोमल परिणामी
पद्म	–	भद्रपरिणामी, दान देने वाला, उपद्रवों को सहना, उत्तम काम करने का स्वभाव हो, मुनिजन गुरुजन आदि की पूजा में प्रीतियुक्त हो
शुक्ल	–	पक्षपातरहित, निदानरहित, सब जीवों में समदर्शी

होना, इष्ट से राग और अनिष्ट से द्वेष न करना, स्त्री पुत्र मित्रादि में स्नेहरहित

११. भव्य मार्गणा – जिन जीवों की अनन्त चतुष्टय रूप सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हो, उन्हें भव सिद्ध कहते हैं। जिनमें इन दोनों में से कोई लक्षण घटित न हो उन जीवों को अभव्य सिद्ध कहते हैं। अभव्य जीव जघन्य युक्तानन्त प्रमाण होते हैं। सम्पूर्ण संसारी जीव राशि में से अभव्य जीव राशि घटाने पर भव्य जीव राशि का प्रमाण निकलता है।

१२. सम्यक्त्व मार्गणा – सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव के द्वारा वर्णित छह द्रव्य, पांच अस्तिकाय, नव पदार्थ का श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है।

१ आज्ञा सम्यक्त्व– बिना युक्ति के यथा श्रद्धान करना।

२ अधिगम सम्यक्त्व– इनके विषय में प्रत्यक्ष परोक्षरूप प्रमाण, द्रव्यार्थिक आदि नय, नाम, स्थापना आदि निक्षेप इत्यादि के द्वारा निश्चय करके श्रद्धान होना।

१३. संज्ञा मार्गणा – जीव दो प्रकार के होते हैं– एक संज्ञी और दूसरे असंज्ञी। संज्ञा शब्द से मुख्यतया तीन अर्थ लिये जाते हैं। १– नाम निक्षेप, जो कि व्यवहार के लिये किसी का रख दिया जाता है जैसे ऋषभ, भरत, बाहुबली, महावीर, अर्ककीर्ति आदि। २– आहार, भय, मैथुन और परिग्रह की इच्छा। ३– धारणात्मक या ऊहापोहरूप विचारात्मक ज्ञान विशेष। प्रकृत में यह अन्तिम अर्थ ही विवक्षित है। यह दो प्रकार का हुआ करता है– लब्धिरूप और उपयोग रूप। नोइन्द्रियावरणी कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त विशुद्धि को लब्धि और अपने विषय में प्रवृत्ति को उपयोग कहते हैं। जिनके यह लब्धि या उपयोगरूप मन–ज्ञान विशेष पाया जाय उनको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह मन न हो उनको असंज्ञी कहते हैं। इन असंज्ञी जीवों के मानस ज्ञान नहीं होता, यथासम्भव इन्द्रियजन्य ज्ञान ही होता है।

१४. आहार मार्गणा — शरीर नामा नामकर्म के उदय से देह–औदारिक वैक्रेयिक आहारक, इनमें से यथासम्भव किसी भी शरीर तथा वचन और द्रव्यमन रूप बनने के योग्य नोकर्मवर्गणाओं का जो ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं। ऐसे जीव को आहारक कहते हैं। विग्रहगति को प्राप्त होने वाले चारों गति सम्बन्धी जीव, प्रतर और लोकपूर्ण समुद्घात करने वाले सयोग केवली, अयोग केवली और समस्त सिद्ध अनाहारक होते हैं। अपना मूल शरीर छोड़े बिना तैजस और कार्माणरूप उत्तरदेह के साथ जीव प्रदेशों के मूल शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं। प्रसंगवश यहां पर समुद्घात के प्रकार कहते हैं:

१. **वेदनासमुद्घात**– पीड़ा वेदना के निमित्त से आत्म प्रदेशों का बाहर निकलना

२. **कषायसमुदघात**– क्रोधादि के वश प्रदेशों का बाहर निकलना।

३. **वैक्रेयिक समुद्घात–** विक्रिया के द्वारा प्रदेशों का बाहर निकलना।

४. **उपपाद और मारणान्तिक समुद्घात–** जीव का अपनी पूर्व पर्याय को छोड़कर नवीन पर्यायजन्य आयु के प्रथम समय को उपपाद कहते हैं। पर्याय के अन्त में मरण के निकट होने पर बद्धायु के अनुसार जहाँ उत्पन्न होना है, वहाँ के क्षेत्र को स्पर्श करने के लिए आत्म प्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना मरणान्तिक समुद्घात है।

५. **तैजस समुद्घात**– शुभ या अशुभ तैजस ऋद्धि के द्वारा निकलने वाले तैजस शरीर के साथ आत्म प्रदेशों का बाहर निकलना।

शुभ तैजस– जब लोक के प्राणियों को व्याधि, दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित देखकर तैजस ऋद्धिधारी संयमी मुनि के अंतःकरण में दया उत्पन्न होती है तब मुनिराज के दांये कंधे से तैजस शरीर निकलकर शुभ कार्य करता है। यह शरीर हंस के समान धवल (सफेद) वर्ण का होता है और १२ योजन तक के जीवों का दुःख दूर करके फिर मूल शरीर में प्रवेश कर जाता है।

अशुभ तैजस– जब मन अनिष्टकारी किसी कारण या उपद्रव को देखकर, तैजस ऋद्धिधारी मुनि की क्रोध–कषाय से उत्पन्न होता है, तब वह बायें कंधे से सिन्दूर की तरह लाल रंग का, बिलाव के आकार वाला, बारह योजन लम्बा, मूल में नौ योजन चौड़ा होता है, जो बारह योजन तक के सभी पदार्थों को जलाकर मूल शरीर में प्रवेश कर उस शरीर को भी जला डालता है और मुनि को नरक में पहुंचा देता है।

६. **आहारक समुद्घात–** ऋद्धिधारी प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनि के द्वारा सूक्ष्म पदार्थों को जानने के लिए अथवा संयम की रक्षा, तीर्थ–वन्दना हेतु, अन्य क्षेत्र में मौजूद केवली या श्रुतकेवली के पास भेजने के लिए मुनि के मस्तक से जो एक हाथ का सफेद रंग का पुतला निकलता है उसे आहारक समुद्घात कहते हैं। सर्वज्ञ प्रभु के दर्शन से संदेह दूर हो जाता है और मूल शरीर में पुनः प्रविष्ट हो जाता है। इसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र है। इससे किसी भी दूसरे पदार्थों का व्याघात नहीं होता है।

७. **केवली समुद्घात**— आयुकर्म की स्थिति अत्यल्प रहने पर तथा शेष तीन अघातिया कर्मों की स्थिति अधिक होने पर सयोग केवली भगवान् के आत्मप्रदेशों का दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण के प्रकार से जो बाहर निकलना होता है उसे केवली समुद्घात कहते हैं। इस समुद्घात में आठ समय तथा शेष समुद्घातों में अन्तर्मुहुर्त का समय लगता है।

आहारक उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग है तथा जघन्य काल तीन समय कम श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण है, क्योंकि विग्रहगति सम्बन्धी तीन समयों के घटाने पर क्षुद्र भव का काल इतना ही अवशेष रहता है। अनाहरक का काल कार्माण शरीर में तीन समय का है और जघन्य काल एक समय का है।

(ट) गुणस्थान

मोह और योग के निमित्त से होने वाली आत्मा के सम्यदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र गुण की अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हैं। यहां कर्मों की प्रकृति व उनके भेद–प्रभेदों के नाम उल्लेखनीय होंगे।

घातिया–	ज्ञानावरण	–	मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनः पर्ययज्ञानावरण, केवल ज्ञानावरण	=५
	–दर्शनावरण	–	चक्षुर्दर्शनावरण, अचक्षुर्दर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि	=९
	–मोहनीय	–	दर्शनमोहनीय– मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति (३), चारित्रमोहनीय– (अनन्तानुबन्धी / अप्रत्याख्यान / प्रत्याख्यान / संज्वलन) x (क्रोध / मान / माया / लोभ) (=१६)+हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद,	=२८

		नपुंसकवेद (नोकषाय) (=६) (=२५)	
		कुल योग	
	—अन्तराय	– दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय	=५
			=४७
अघातिया	—वेदनीय	– साता वेदनीय, असातावेदनीय	=२
	—आयु	– नरकायु, तिर्यगायु, मनुष्यायु, देवायु	=४
	—नाम	– नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति, देवगति, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, वैक्रेयिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, औदारिकांगोपांग, वैक्रेयिकांगोपांग, आहारकांगोपांग, निर्माण, औदारिक शरीर बंधन, वैक्रेयिक शरीर बंधन, आहारकशरीर बंधन, तैजसशरीर बंधन, कार्माणशरीर बंधन, औदारिकसंघात, वैक्रेयिकसंघात, आहारकसंघात, तैजससंघात, कार्माणसंघात, समचतुरस्त्र संस्थान, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान, स्वातिसंस्थान, कुब्जक संस्थान, वामनसंस्थान, हुण्डकसंस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन,वज्रनाराचसंहनन,नाराचसंहनन, अर्धनाराचसंहनन, कीलितसंहनन, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, स्निग्ध स्पर्श, रूक्ष स्पर्श, शीत स्पर्श, उष्ण स्पर्श, मृदु स्पर्श, कठोर स्पर्श, लघु स्पर्श, गुरु स्पर्श, आम्ल	

रस, मधुर रस, कटुक रस, तिक्तरस, कसैला रस, सुगंध (सुरभि), दुर्गंध (दुरभि), कृष्ण वर्ण, नील वर्ण, पीत वर्ण, रक्त वर्ण, श्वेत वर्ण, नरकगत्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य, देवगत्यानुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आताप, उद्योत,उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, अप्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, त्रस, स्थावर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, शुभ, अशुभ, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्ति, अपर्याप्ति, स्थिर, अस्थिर, आदेय, अनादेय, यशः कीर्ति, अयशकीर्ति, तीर्थंकरत्व। =६३

गोत्र — उच्च गोत्र, नीच गोत्र। =२

=१०१

समस्त आठों कर्मों की प्रकृतियों का योग =१४८

न सम्यकत्वसमं किंचित त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं, नान्यत्तनूभृताम।।३४।।

-(रत्नकरण श्रावकाचार)

तीनों लोकों और तीनों कालों में सम्यकत्व के बढ़कर अन्य कोई पदार्थ उपकारी - कल्याणकारी नहीं है, तथा मिथ्यात्व से बढ़कर कोई अन्य अपकारी अर्थात् दुःखदायक नहीं है।

अब विभिन्न गुणस्थानों में कर्मों की व्युच्छति तथा जीव संख्या बताते हैं।

संख्या	नाम विवरण		व्युच्छति (क्षपक श्रेणी वाले के)	जीवों की संख्या
१.	मिथ्यात्व	मिथ्यात्वप्रकृतिनाम दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से वस्तु स्वरूप का यथार्थ श्रद्धान न होना	०	अनन्तानन्त (संसारी जीव राशि— दूसरे से चौदहवें गुणस्थानों के जीव)
२.	सासादन	सम्यक्त्व का नष्ट होकर मिथ्यात्व गुणस्थान के सन्मुख–एक समय से लेकर छह आवली के अनन्तर नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त हो जावेगा	०	पल्य का असंख्यातवां भाग =५२ करोड़ मनुष्य और श्रावकों से असंख्यातगुणे अन्य तीन गति के जीव
३.	मिश्र	सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनों भावों का होना	०	सासादन गुणस्थान वालों से संख्यात गुणे =१०४ करोड मनु और सासादन गुणस्थान वालों से संख्यात गुणे शेष तीन गति के जीव
४.	अविरत सम्यग्दृष्टि	सम्यग्दर्शन को प्राप्त, किन्तु असंयमी (अव्रती)	०	सात सौ करोड़ मनुष्य और सासादन गुणस्थान वालों से संख्यातगुणे अन्य तीन गति के जीव

संख्या	नाम विवरण		व्युच्छति (क्षपक श्रेणी वाले के)	जीवों की संख्या
५.	देशविरत (देशसंयम)	देशव्रती / देशसंयमी सम्यक्त्वी जीव	०	१३ करोड़ मनुष्य तथा पल्य के असंख्यातवें भाग तिर्यञ्च
६.	प्रमत्त	सकल संयमी (महाव्रती)	०	५,६३,६८,२०६ मनुष्य
७.	अप्रमत्त –स्वस्थान अप्रमत्त –सातिशय अप्रमत्त	जहां सम्यक्त्व है एवम महाव्रत है तथा संज्वलन कषाय के मन्द उदय से प्रमाद भी नहीं है, उसे अप्रमत्त गुणस्थान कहते हैं। जो अप्रमत्त विरत आगे गुणस्थान में जाने का अपूर्व परिणाम नहीं कर रहा और छठे में जावेगा, अथवा जो छठे में न जा सके किन्तु मरण कर चौथे में जायेगा, वह स्वस्थान अप्रमत्त है। जो श्रेणी चढ़ने के सन्मुख है वह सातिशय अप्रमत्त है।	अनन्तानुबन्धी क्रोध / मान / माया / लोभ, मिथ्यात्व / सम्यक्मिथ्यात्व / सम्यक् प्रकृति नामक =७ मोहनीय कर्म की प्रकृति; नरकायु, तिर्यंचायु, देवायु = <u>३ आयु कर्म</u> कुल १० कर्म प्रकृति	२,६६,६६,१०३
८.	अधः प्रवृत्तकरण	इस गुणस्थान के काल में ऊपर के समयवर्ती जीवों के परिणाम नीचे के समयवर्ती जीवों के परिणामों के सदृश– अर्थात संख्या और विशुद्धि की अपेक्षा समान होते हैं।	०	उपशम श्रेणी वाले ८वें, ९वें, १०वें, ११वें गुणस्थान के जीवों का प्रमाण ३०० / ३०४ / २९९ (विभिन्न आचार्यों के अनुसार) है। क्षपक श्रेणीवाले इससे दुगने हैं।

संख्या	नाम	विवरण	व्युच्छति (क्षपक श्रेणी वाले के)		जीवों की संख्या
९.	अनिवृत्ति करण (अपूर्वकरण)	इसमें परिणामों की संख्या अधः प्रवृत्तकरण की अपेक्षा असंख्यात लोकगुणी है। और इन परिणामों में उत्तरोत्तर प्रति समय समान वृद्धि होती गई है।	भाग		
			१.	निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि दर्शनावरणी कर्म =३,नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, उद्योत, आतप, साधारण, सूक्ष्म, स्थावर नाम कर्म=१३। कुल =१६ कर्म प्रकृति	
			२.	अप्रत्याख्यानावरण / प्रत्याख्यानावरण क्रोध / मान / माया / लोभ =८ मोहनीय कर्म प्रकृति	
			३.	नपुंसकवेद मोहनीय कर्म=१	
			४.	स्त्रीवेद मोहनीय कर्म=१	
			५.	हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा मोहनीय कर्म =६	
			६.	पुरुष वेद मोहनीय कर्म=१	
			७.	संज्वलन क्रोध मोहनीय कर्म =१	
			८.	संज्वलन मान मोहनीय कर्म=१	
			९.	संज्वलन माया मोहनीय कर्म =१	
			कुल	दर्शनावरणी कर्म प्रकृति =३ मोहनीय कर्म प्रकृति =२० नाम कर्म प्रकृति =१३ ३६	

संख्या	नाम विवरण		व्युच्छति (क्षपक श्रेणी वाले के)	जीवों की संख्या
१०	सूक्ष्म सांपराय	जिस प्रकार धुले हुए कसूमी वस्त्र में लालिमा–सुर्खी सूक्ष्म रह जाती है, उसी प्रकार जो जीव अत्यन्त सूक्ष्म राग–लोभ कषाय से युक्त हैं, उनको सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती कहते हैं।	इस गुणस्थान के अन्त में, संज्वलन लोभ मोहनीय कर्म प्रकृति =१ **नोट–** पृथकत्त्ववितर्क वीचार शुक्लध्यान (प्रथम शुक्ल ध्यान) के फलस्वरूप इस गुणस्थान के अन्त में क्षपक श्रेणी वाले जीवों का मोहनीय कर्म सर्वथा नाश को प्राप्त हो जाता है।	
११	उपशान्त मोह	इस गुणस्थान में निर्मली फल से युक्त जल की तरह, सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के सर्वथा उपशम से होने वाले निर्मल परिणाम होते हैं।	नोट– क्षपक श्रेणीवाला इस गुणस्थान को प्राप्त नहीं करता है।	
१२	क्षीण कषाय	जिस निर्ग्रन्थ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण (नाश) हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है, उसको क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती कहते हैं। **नोट–** एकत्त्ववितर्क वीचार(द्वितीय) शुक्ल ध्यान के फलस्वरूप शेष घातिया कर्मों का इस गुणस्थान के अन्त में सर्वथा नाश हो जाता है।	मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यय, केवल ज्ञानावरण =५ ज्ञानावरण कर्म; चक्षु, अचक्षु, निद्रा, प्रचला, अवधि, केवल दर्शनावरण = ६ दर्शनावरण कर्म; दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय अन्तराय कर्म =५; कुल =दर्शनावरण – ६, ज्ञानावरण–५, अन्तराय–५ = १६ कर्म प्रकृति गुणस्थान के अन्त में	

संख्या	नाम	विवरण	व्युच्छति (क्षपक श्रेणी वाले के)	जीवों की संख्या
		सातवें से बारहवें गुणस्थान पर्यन्त	घातिया कर्म – ४७ (ज्ञानावरण – ५ दर्शनावरण – ६ मोहनीय – २८ अन्तराय – ५) नाम कर्म – १३ आयु कर्म – ३ **कुल कर्म प्रकृति – ६३**	
१३	सयोग केवली	जिनके अनन्त चतुष्टय (ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य) प्रकट हो गया है	०	८,६८,५०२
१४	अयोग केवली	आगम में शील के जितने भेद या विकल्प कहे हैं (१८,०००) उन सबकी पूर्णता यहां पर होती है। इसीलिये वह शील का स्वामी है। पूर्ण संवर तथा निर्जरा का सर्वोत्कृष्ट एवं अन्तिम पात्र होने से मुक्तावस्था के सम्मुख है। काय योग से भी वह रहित हो चुका है। इस तरह के जीव को अयोग केवली कहते हैं।	शेष अघातिया कर्म वेदनीय कर्म = २ आयु कर्म = १ नाम कर्म = ८० गोत्र कर्म = २ **योग = ८५** उपान्त्य व अन्त्य समय में	५९८
			महायोग = १४८ समस्त कर्म प्रकृतियों	छठे से चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या = ८,९९,९९,९९७

(ठ) जीवों की संख्या

संदृष्टि–

F	=संख्यात (विभिन्न संख्यातों का मान अलग-अलग हो सकता है)
a	= असंख्यात (विभिन्न असंख्यातों का मान अलग-अलग हो सकता है)
घनावलि	= आवली के समय प्रमाण का घन
L	= लोक प्रमाण, अर्थात लोक के प्रदेशों की संख्या
S	= सूच्यांगुल
P	= प्रतरांगुल = S^2
G	= घनांगुल = S^3
J	= जगच्छ्रेणी
L	= लोक = J^3

⌉, ⌉̅, ⌉̿ –इनकी संदृष्टि के लिए परिशिष्ट १.०१ देखिए

$$\text{सिद्ध जीव} = \frac{\text{अतीत काल के समय} \times ६०८}{(\text{६ माह ८ समय}) \text{ के समय}}$$

= संसारी जीवों के अनन्तवें भाग, तथा अभव्य जीवों से अनन्त गुणे।

संसारी जीव = अनन्तानन्त (यह अक्षय अनन्त राशि है)

$$\text{त्रस राशि} = \text{जगत्प्रतर} \div \left(\frac{\text{प्रतरांगुल}}{a}\right) = \frac{J^2 . a}{S^2}$$

द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुर्न्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण

माना x = समस्त त्रस राशि = जगत्प्रतर ÷ (प्रतरांगुल का असंख्यातवां भाग)

और y = आवलि का असंख्यातवां भाग

तो द्विन्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{1}{4}(x - \frac{x}{y}) + \frac{3}{4} \cdot \frac{x}{y} = \frac{x}{4} + \frac{x}{2y}$

त्रीन्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{1}{4}(x - y) + \frac{3}{16} \cdot \frac{x}{y} = \frac{x}{4} - \frac{x}{16y}$

चतुर्न्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{1}{4}(x - y) + \frac{3}{64} \cdot \frac{x}{y} = \frac{x}{4} - \frac{13x}{64y}$

पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{1}{4}(x - y) + \frac{1}{64} \cdot \frac{x}{y} = \frac{x}{4} - \frac{15x}{64y}$

उपरोक्त त्रस जीवों में पर्याप्तक जीवों का प्रमाण

माना कि z = जगत्प्रतर ÷ (प्रतरांगुल का संख्यातवां भाग)

तो पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{z}{4} + \frac{z}{2y}$

पर्याप्त त्रीन्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{z}{4} - \frac{z}{16y}$

पर्याप्त चतुर्न्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{z}{4} - \frac{13z}{64y}$

पर्याप्त पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या $= \frac{z}{4} - \frac{15Z}{64y}$

अपर्याप्तक जीवों का प्रमाण—अपनी-अपनी राशि में से पर्याप्तों की राशि घटाने पर जो राशि आवे, उतने प्रमाण।

नारकी जीव–

इसका वर्णन क्रम (२) – नरक के वर्णन में दिया है। कुल संख्या = $J.G^{1/4}$

मनुष्य

इसका वर्णन क्रम (४) – मध्यलोक में किया है। कुल संख्या = $(J \div S^{5/8}) - 1$

देव

समस्त देव राशि = ज्योतिष्क देवों के प्रमाण से कुछ अधिक

(नोट– समस्त देवों में ज्योतिष्क देवों की संख्या सबसे अधिक है)

भवनवासी देवों का प्रमाण– इसका वर्णन क्रम (३) – भावन लोक में किया है।

व्यन्तर देवों का प्रमाण– इसका वर्णन क्रम (५) – व्यन्तर लोक में किया है।

ज्योतिष्क देवों का प्रमाण– इसका वर्णन क्रम (६) – ज्योतिर्लोक में किया है।

स्वर्ग (कल्पवासी/कल्पातीत) के देवों का प्रमाण– इसका वर्णन क्रम (७) ऊर्ध्वलोक में दिया है।

समस्त देव = व्यन्तर देव + भवनवासी देव + ज्योतिष्कदेव + स्वर्ग के देव

= ज्योतिष्क देवों से कुछ अधिक, क्योंकि सम्पूर्ण देवों में ज्योतिषियों का प्रमाण बहुत अधिक है, शेष तीन जाति के देवों का प्रमाण बहुत अल्प है।

तिर्यन्च

पंचेन्द्रिय तिर्यंच = पंचेन्द्रिय जीव – (नरक, मनुष्य व देव गति के जीव)

एकेन्द्रिय जीव

समस्त एकेन्द्रिय जीव = संसारी जीव – त्रस जीव

बादर एकेन्द्रिय = $\frac{1}{a.L}$ x समस्त एकेन्द्रिय जीव

बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय = $\frac{1}{a.L}$ x बादर जीव

बादर अपर्याप्त = बादर – बादर पर्याप्त

सूक्ष्म एकेन्द्रिय = समस्त एकेन्द्रिय – बादर

सूक्ष्म पर्याप्त = सूक्ष्म – सूक्ष्म अपर्याप्त

सूक्ष्म अपर्याप्त = सूक्ष्म ÷ F

एकेन्द्रिय जीवों के पांच भेद होते हैं :– पृथ्वीकायिक, जल (अप) कायिक, अग्नि (तेज) कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। वनस्पति के दो भेद– प्रत्येक और साधारण होते हैं; जो एक ही जीव प्रत्येक वनस्पति नाम कर्म के उदय से युक्त होकर पूरे एक शरीर का मालिक हो, उस जीव को प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। जिस एक ही शरीर में अनेक जीव समान रूप से रहें, उस शरीर को साधारण शरीर कहते हैं और इस तरह के साधारण शरीर के धारण करने वाले उन जीवों को साधारण वनस्पति कहते हैं, क्योंकि उनके साधारण वनस्पति नामकर्म का उदय पाया जाता है। प्रत्येक वनस्पति के भी दो भेद हैं; एक प्रतिष्ठित और दूसरे अप्रतिष्ठित। प्रतिष्ठित प्रत्येक उसको कहते हैं कि जिस एक ही जीव के उस विवक्षित शरीर में मुख्य रूप से व्यापक होकर रहने पर भी उसके आश्रय से दूसरे अनेक निगोदिया जीव भी रहें। किन्तु जहां यह बात नहीं है– एक जीव के मुख्यतया रहते हुए भी उसके आश्रय से दूसरे निगोदिया जीव नहीं रहते उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं।

(नोट– उपर्युक्त वनस्पतिकायिकों की पहचान आदि का विशेष वर्णन गोम्मटसार जीव काण्ड से देखें)

जिन जीवों के साधारण नाम कर्म का उदय होता है उनका शरीर इस प्रकार का होता है कि जो अनन्तानन्त जीवों का समान रूप से आश्रय दे। इस शरीर में कोई एक जीव मुख्य नहीं होता, बल्कि सभी जीव रहते है और वे सभी समान रूप से रहते हैं। इनके दो भेद हैं– एक बादर तथा दूसरा सूक्ष्म। एक शरीर के जीवों का जन्म, श्वासोच्छ्वास, आहार, मरण समान रूप से होता है। एक बादर निगोद शरीर में साथ ही उत्पन्न होने वाले जीव या तो पर्याप्तक होते हैं या अपर्याप्तक, किन्तु मिश्र रूप से नहीं होते।

निगोदिया जीवों का प्रमाण

एक बादर निगोद के शरीर में जीवों का प्रमाण

= अनन्त X (समस्त सिद्ध जीव + अतीत काल के समय)

एक पुलवि = a. L बादर निगोदिया जीवों के शरीर

एक आवास = a. L पुलवि

एक अंडर = a. L आवास

एक स्कंध = a. L अंडर

स्कंधों का प्रमाण = a. L

इसलिए समस्त निगोदिया जीव = (a. L) x (a.L) x (a. L) x (a.L) x (a. L) x अनन्त x (समस्त सिद्ध जीव + अतीत काल के समय), यह एक अक्षय अनन्त राशि है।

निगोदिया जीव एक श्वास में अठारह बार जन्म लेते हैं और अठारह बार मरण को प्राप्त होते हैं। लोक में सर्वत्र निगोद जीव हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– एक नित्य निगोद जो कभी निगोद से न निकले हों और दूसरे इतर (चतुर्गति) निगोद, जो कभी निगोद से निकलकर फिर त्रस पर्याय प्राप्त कर पुनः निगोद में आ गये हों। इतर निगोद की स्थिति अढ़ाई पुद्गल परावर्तन काल है। यदि कोई जीव निगोद से निकलकर २००० करोड़ अद्धा सागर ३ कोटि पूर्व में निर्वाण नहीं पाता, तो पुनः निगोद में जाना पड़ता है। प्रति छह मास आठ समय में ६०८ जीव नित्य निगोद से निकलते हैं और इतने ही जीव मुक्ति को प्राप्त होते हैं। नित्य निगोद में जीवों की संख्या अक्षय अनन्त है, इसलिए वह कभी समाप्त नहीं होती।

एकेन्द्रिय जीवों की संख्या

पृथ्वी कायिक = $(1+\frac{1}{a.L})$ x अग्निकायिक जीवों का प्रमाण

जल कायिक = $(1+\frac{1}{a.L})$ x पृथ्वीकायिक जीवों का प्रमाण

अग्निकायिक (तेजस्कायिक) –

माना कि $L' = \overline{\overline{\overline{L\rceil}}} - \overline{\overline{L\rceil}} - \overline{L\rceil} - L$

अब L' का शलाकात्रियनिष्ठापन विधि की पद्धति के अनुसार विरलन राशि का विरलन कर और देय राशि का परस्पर गुणा तथा शेष महाशलाका राशि में से एक–एक कम करना। इस पद्धति से साढ़े तीन बार लोक का गुणा करने पर जो महाराशि उत्पन्न हो, उतना ही तेजस्कायिक जीवों का प्रमाण होता है।

(आधारः गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा २०४)

मेरी अल्पबुद्धि में, इसका स्पष्टीकरण निम्नवत है। यदि यह गलत हो, तो विद्वजन इसको कृपया सुधार कर पढ़ें।

यदि $L_1' = (L')^{(L')}$, $(L_2') = (L_1')^{(L_1')}$

$(L_3') = (L_2')^{(L_2')}$, $L_n' = \{L'_{(n-1)}\}^{\{L'_{(n-1)}\}}$

तो $L'_{3.5L} = \{L'_{(3.5L-1)}\}^{\{L'_{(3.5L-1)}\}}$

तो अग्निकायिक जीवों की संख्या = $L'_{3.5L}$

वायुकायिक जीवों का प्रमाण = $(1 + \frac{1}{a.L})$ x जलकायिक जीवों का प्रमाण

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण = a. L

प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण

= (a. L) x (अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक जीवों का प्रमाण)

साधारण वनस्पति कायिक जीवों का प्रमाण

= समस्त संसारी जीव – त्रस राशि– (पृथ्वी कायिक + जलकायिक + अग्निकायिक + वायुकायिक+प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव)

बादर तथा सूक्ष्म

उपरोक्त एकेन्द्रिय जीवों में से अपनी–अपनी राशि का $\frac{1}{a.L}$ भाग बादर होते हैं और शेष सूक्ष्म होते हैं।

पर्याप्त तथा अपर्याप्त

बादर पर्याप्त जीव –

पृथ्वीकायिक = बादर पर्याप्त जलकायिक जीवों का प्रमाण ÷ (आवलि ÷ a)

जलकायिक = जगत्प्रतर ÷ (प्रतरांगुल ÷ $\frac{\text{पल्य}}{a}$) = $J^2 \div (S^2 \times \frac{a}{\text{पल्य}})$

अग्निकायिक = घनावलि ÷ a

= (आवलि के समय)^3 ÷ a

वायुकायिक = L ÷ F

अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक =(बादर पर्याप्त प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव) ÷ (आवलि ÷ a)

प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक=(बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीवों का प्रमाण) ÷ (आवलि ÷ a)

बादर अपर्याप्त जीव

अपनी–अपनी बादर जीव संख्या में से बादर पर्याप्त जीवों का प्रमाण घटाने पर बादर अपर्याप्त जीवों का प्रमाण आता है। बादर जीवों में पर्याप्त अवस्था अत्यन्त दुर्लभ है, यह बात उनकी अल्प संख्या बताकर आचार्य ने प्रकट की है।

सूक्ष्म पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीव

अपनी–अपनी राशि के संख्यात भागों में से एक भाग प्रमाण अपर्याप्तक होते हैं और बहुभाग पर्याप्तक है। कारण यह है कि अपर्याप्तक के काल से पर्याप्तक का काल संख्यात गुणा है।

(ड) आयु–

विवरण		जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	कैफियत
एकेन्द्रिय		उच्छ्वास के अठारहवें भाग		१ मुहूर्त = ३,७७३ उच्छ्वास
"	शुद्ध पृथ्वी		१२,००० वर्ष	१ दिन = ३० मुहूर्त
"	खर पृथ्वी		२२,००० वर्ष	
"	जल कायिक		७,००० वर्ष	
"	अग्निकायिक		३ दिन	
"	वायुकायिक		३,००० वर्ष	
"	वनस्पति कायिक		१०,००० वर्ष	
त्रस	विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय	इससे उत्तरोत्तर संख्यात गुणी है, किन्तु अन्तर्मुहूर्त ही है		

विवरण		जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु	कैफियत
तिर्यन्च	द्वीन्द्रिय		१२ वर्ष	
,,	त्रीन्द्रिय		४६ दिन	
,,	चतुरिन्द्रिय		६ मास	
तिर्यन्च–	सरीसृप		६ पूर्वांग	
पंचेन्द्रिय कर्म	सर्प		४२,००० वर्ष	
भूमिज	पक्षी		७२,००० वर्ष	
	शेष		१ कोटि पूर्व	
तिर्यन्च	जघन्य भोगभूमिज	१ समय अधिक १ पूर्व कोटि	१ पल्य	
,,	मध्यम भोगभूमिज	१ समय अधिक १ पल्य	२ पल्य	
,,	उत्कृष्ट भोगभूमिज	१ समय अधिक २ पल्य	३ पल्य	
नारकी		१०,००० वर्ष	३३ सागर	
मनुष्य	कर्मभूमिज	अन्तर्मुहूर्त	१ कोटि पूर्व	
	जघन्य भोग भूमिज	१ समय अधिक १ कोटि पूर्व	१ पल्य	
	मध्यम भोगभूमिज	१ समय अधिक १ पल्य	२ पल्य	
	उत्कृष्ट भोगभूमिज	१ समय अधिक २ पल्य	३ पल्य	
देव	भवनवासी	१०,००० वर्ष	१ सागर	
	व्यन्तर	१०,००० वर्ष	१ पल्य	
	ज्योतिषी	१/८ पल्य	१ पल्य + १ लाख वर्ष	
	कल्पवासी स्वर्ग–	१ पल्य	२२ सागर	
	कल्पातीत स्वर्ग–	कुछ अधिक २२ सागर	३३ सागर	

(ढ.) जिन भवन–

स्थिति		अकृत्रिम जिन भवनों की संख्या
अधोलोक	रत्नप्रभा पृथ्वी का खर भाग	७,७२,००,०००
मध्य लोक	जम्बू द्वीप	सुमेरु पर्वत – १६
		कुलाचल – ६
		विजयार्द्ध पर्वत – ३४
		वक्षार पर्वत – १६
		गजदन्त पर्वत – ४
		जम्बू शाल्मलि वृक्ष – २
		योग – ७८
	धातकी खण्ड द्वीप	जम्बू द्वीप से दो गुने = १५६
	पुष्करार्द्ध द्वीप	जम्बू द्वीप से दो गुने = १५६
	मानुषोत्तर पर्वत	४
	नन्दीश्वर द्वीप	५२
	कुण्डलवर द्वीप	४
	रुचकवर द्वीप	४
	योग	४५८
	व्यन्तर लोक	जगत्प्रतर÷[संख्यातx(३०० योजन)^2], अथवा जगत्प्रतर÷[संख्यातx५३०८४१६००००००००००]
	ज्योतिर्लोक	{जगत्प्रतर÷(२५६ अंगुल)^2} ÷ संख्यात
ऊर्ध्व लोक	कल्पवासी विमान	८४,९६,७००
	कल्पातीत विमान	३२३
	योग	८४,९७,०२३

अकृत्रिम जिन भवनों की कुल संख्या = ८,५६,६७,४८१ + असंख्यात,

अर्थात ८,५६,६७,४८१ + मध्य लोक में व्यन्तर और ज्योतिर्लोक में जिन भवनों की संख्या

उपर्युक्त जिन भवनों को एवम् इनमें विराजित अकृत्रिम जिन बिम्बों को मेरा त्रियोग सम्हालकर, उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक, उत्कृष्ट विनयपूर्वक, उत्कृष्ट श्रद्धापूर्वक एवम् उत्कृष्ट अनन्तानन्त बार नमस्कार होवे।

(१०) मेरी स्थिति

अनन्तानन्त अलोकाकाश में स्थित उपरोक्त वर्णित त्रिलोक के मध्य भाग में स्थित, मध्यलोक के मध्य भाग में स्थित मानुषलोक के बहुमध्य भाग में, प्रथम जम्बूद्वीप के दक्षिण भाग में स्थित भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में मैं इस समय विद्यमान हूँ।

सन्दर्भ

१. त्रिलोकसार श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति विरचित टीकाकर्त्री, पूज्य विदुषी आर्यिका १०५ विशुद्धमति माताजी।
२. तिलोयपण्णत्ती श्री यतिवृषभाचार्य– विरचित, टीकाकर्त्री पूज्य विदुषी आर्यिका १०५ विशुद्धमती माताजी– भाग १, २ और ३
३. जैन सिद्धान्त दर्पण– श्री स्याद्वाद वारिधि वादिगजकेसरी– न्यायवाचस्पति स्व० पंडित गोपालदास बरैया, मोरेना (ग्वालियर) द्वारा विरचित।
४. गोम्मटसार (जीवकाण्ड)– श्री मन्नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक चक्रवर्ति विरचित, टीका पं० खूबचन्द्र जैन।
५. गोम्मटसार (कर्मकाण्ड)–श्री मन्नेमिचन्द्र सैद्धान्तिक चकवर्ति, टीका पं. मनोहर लाल जी शास्त्री।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

केवल ज्ञान रूपी तीसरे नेत्र के धारक, चौंतीस अतिशय रूपी विभूति से सम्पन्न और तीनों लोकों के द्वारा नमस्करणीय, ऐसे विदेह क्षेत्र विराजित श्री सीमंधर-युग्मंधर-बाहु-सुबाहु-संजात-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूर्यप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन – भद्रबाहु-भुजङ्ग-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येति विंशति विद्यमान तीर्थङ्करों को बार-बार नमस्कार करता हूँ।

अध्याय – २

मैं कौन हूँ (जीव का स्वरूप)

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
१.	जीव और द्रव्य	१.८२
२.	जीव का लक्षण	१.८३
३.	जीव का अमूर्तित्व	१.८४
४.	जीव का कर्तृत्व	१.८५
५.	जीव का भोक्तृत्व	१.८६
६.	जीव का स्वदेह परिमाण	१.८६
७.	संसारी जीवों के भेद	१.८७
८.	अस्तिकाय और जीव	१.८७
९.	सप्त तत्व /नव पदार्थ और जीव	१.८८
१०.	मार्गणा और गुणस्थानों की अपेक्षा संसारी जीव	१.८९
११.	चेतन आत्मा और जीव	१.९८
१२.	आत्मा और आत्म–ज्योति	१.१०१
१३.	मैं कौन हूँ ?	१.१०४

अध्याय – २

मैं कौन हूँ ?

मङ्गलाचरण

केवलणाण–तिणेत्तं, चोत्तीसादिसय–भूदि संपण्णं।
णाभेय–जिणं तिहुवण–णमंसणिज्जं णमंसामि ।।१।।
अजिय –जिणं जिय –मयणं, दुरित–हरं आजवंजवातीदं।
पणमिय णिरूवमाणं ।।२।।
संसारण्णवमहणं, तिहुवण–भव्वाण पेम्म–सुह जणणं।
संदरिसिय -सयलट्ठं, संभवदेव णमामि तिविहेण।।३।।
भव्व –जण–मोक्ख–जणणं, मुणिंद–देविंद–पणद–पय –कमलं।
णमिय अहिणंदणेसं ।।४।।

अर्थ– केवलज्ञान रूपी तीसरी नेत्र के धारक, चौंतीस अतिशय रूपी विभूति से सम्पन्न और तीनों लोकों के द्वारा नमस्करणीय, ऐसे नाभेय अर्थात ऋषभ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।१।। कामदेव को जीतने वाले, पाप को नष्ट करने वाले, संसार से अतीत और अनुपम अजितनाथ भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ। ।।२।। संसार–समुद्र का मंथन करने वाले (वीतराग), तीनों लोकों के भव्य जनों को धर्म प्रेम और सुख के दायक (हितोपदेशक) तथा सम्पूर्ण पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को दिखलाने वाले (सर्वज्ञ), सम्भवनाथ भगवान को मैं मन, वचन और काय से नमस्कार करता हूँ।।३।। भव्य जीवों को मोक्ष प्रदान करने वाले तथा मुनीन्द्र (गणधर) एवम् देवेन्द्रों के द्वारा वन्दनीय चरण–कमल वाले अभिनन्दन स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ।।४।।

(१) जीव और द्रव्य

छः द्रव्यों – जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों के अन्तर्गत मैं एक द्रव्य हूँ। द्रव्य–जिसमें गुण और पर्याय पाये जाते हैं। उपर्युक्त छःह द्रव्यों में से मैं जीव नामक द्रव्य हूँ। 'उपयोगो लक्षणम्'– उपयोग ही जीव का लक्षण है अर्थात जो जीवित है, जीवेगा और पहले जी आया है, वह जीव है (इसके विपरीत, जिसमें

जानने–देखने की शक्ति नहीं है, वह अजीव है)। मेरे जैसे अनन्तानन्त जीव इस लोक में हैं।

जीवो उवओगमओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ।।२।। (द्रव्य संग्रह)

वह जीने वाला है, उपयोगमय, अमूर्तिक, कर्ता, अपने शरीर के बराबर परिमाण वाला, भोक्ता, संसारी, सिद्ध और स्वभाव से ऊर्ध्व गति वाला है।

अनादि कर्म–बन्ध के वश अशुद्ध द्रव्यप्राणों और भावप्राणों से जो जीता है, अतः वह जीव है। क्षायोपशमिक ज्ञान और दर्शन से सहित होने से ज्ञानदर्शन रूप उपयोगमय है। शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव वाला होने से अमूर्त है। मन-वचन-काय के व्यापार को उत्पन्न करने वाले कर्म-सहित होने से कर्ता है। अनादि कर्म-बन्ध के आधीन होने से शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न संकोच-विस्तार के कारण स्वदेह परिमाण वाला है। शुभाशुभ कर्मो के कारण उत्पन्न सुख-दुःख को भोगने वाला होने से भोक्ता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पाँच प्रकारों से संसार में रहने के कारण संसार रूप है। अनन्तज्ञानादि और अनन्तगुण रूप स्वभाव वाला होने से सिद्ध है, स्वभाव से ऊपर की ओर गमन करने के कारण ऊर्ध्वगमन करने वाला है।

(२) जीव का लक्षण

व्यवहार नय से जिसके तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास– ये चार प्राण हैं और निश्चय नय से जिसके चेतना है, वह जीव है।

भावार्थ– वस्तु के एक देश को जानने वाले को नय कहते हैं। नय के दो भेद हैं– निश्चय नय और व्यवहार नय। **"निश्चय नय"**– वस्तु के किसी असली अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चयनय कहते हैं। निश्चय नय से जो शुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाला है और शुद्ध चैतन्य प्राण से जीता है, जीवेगा, पहले जी आया है वह जीव है। **"व्यवहार नय"** - किसी निमित्त के वश से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ रूप जानने वाले ज्ञान को व्यवहार नय कहते हैं। व्यवहार नय से जिसके तीनों कालों (भूतकाल, वर्तमान काल, भविष्यकाल) में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास– ये प्राण पाये जाते हैं वह जीव है। **"इन्द्रिय"** – जिससे संसारी जीव की पहचान होती है, उसे इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रिय दो प्रकार की होती हैं– द्रव्य इन्द्रिय और भाव इन्द्रिय।

''द्रव्य इन्द्रिय'' - निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् अर्थात् निवृत्ति और उपकरण को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं। ''भाव इन्द्रिय'' लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम् अर्थात लब्धि और उपयोग को भावेन्द्रिय कहते हैं। **''बल''**- अनन्तवीर्य लक्षण (बल) वाले से एक भाग प्रमाण मनोबल, वचनबल और कायबल के निमित्त से उत्पन्न हुए बल को बलप्राण कहते हैं। शरीर से श्वास का खींचना और छोड़ना यह श्वासोच्छ्वास प्राण है। **''आयु''** - जिसके उदय से भव-सम्बन्धी जीवन होता है और क्षय से मरण होता है, उसे आयु कहते हैं।

इस प्रकार जिसके ये चार प्राण अर्थात् बल, इन्द्रिय, आयु और श्वासोच्छ्वास हैं वह जीव है। अपर्याप्त अवस्था में जिसके तीन प्राण अर्थात् इन्द्रिय, बल और आयु पाई जाती है वह भी जीव है। उत्तर भेद करने से एकेन्द्रिय के चार प्राण, दो इन्द्रिय के छः प्राण, तीन इन्द्रिय के सात प्राण, चार इन्द्रिय के आठ प्राण, असंज्ञी पंचेन्द्रिय के नौ प्राण और संज्ञी पंचेन्द्रिय के दस प्राण होते हैं। मूल में प्राण के चार भेद हैं, लेकिन उत्तर भेद करने से दस भेद हो जाते हैं।

उपरोक्त प्राणों से वर्तमान में जीवित है, आगे जीवित रहेगा और पहले जीवित था, वह जीव है। ये सभी प्राण पुद्‌गल द्रव्य से रचे गये हैं। ''यः प्राणैः जीवति सः जीवः'' जो प्राणों से जीवित है वह जीव है। यः प्राणैः जीविष्यति सः जीवः'' जो प्राणों से जीवित होगा वह जीव है। ''यः प्राणैरजीवत् सः जीवः'' जो प्राणों से जीवित था वह जीव है।

सिद्ध परमेष्ठी के मात्र शुद्ध चैतन्य प्राण होता है। वे प्राणातीत होते हैं।

(३) जीव का अमूर्तित्व एवं मूर्तित्व

जीव में निश्चयनय से पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श नहीं होते। इसी कारण अमूर्तिक है। व्यवहार नय से कर्मबन्ध की अपेक्षा मूर्तिक है।

भावार्थ– निश्चय नय से जीव अमूर्तिक है क्योंकि आत्मा का कोई रंग, कोई रस, कोई गंधादि नहीं होता है लेकिन व्यवहार नय से जीव मूर्तिक है क्योंकि वह अनादिकाल से कर्मों से बंधा हुआ है। कर्म पुद्‌गल है और कर्मपुद्‌गल मूर्तिक होते हैं। मूर्तिक कर्म के साथ रहने से अमूर्तिक आत्मा भी उपचार से मूर्तिक बन जाता है। इसी संदर्भ में अमृतचन्द्र आचार्य ने कहा है–

तथा च मूर्तिमानात्मा सुराभिभवदर्शनात्।
नह्यमूर्त्तस्य नभसो मदिरा मदकारिणी।।

अर्थ– मूर्तिक होने के कारण ही आत्मा मदिरा से पागल हो जाता है। किन्तु अमूर्तिक आकाश को मदिरा मदकारिणी नहीं होती है। "अमूर्तस्य भावोऽमूर्तत्त्वं रूपादिरहितत्वम्" अर्थात् अमूर्त के भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहितपने को अमूर्त कहते हैं।

(४) जीव का कर्त्तृत्व

व्यवहार नय से आत्मा ज्ञानावरणादि कर्मों का और अशुद्ध निश्चयनय से रागादि भाव कर्मों का तथा शुद्ध निश्चय नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

भावार्थ– पुद्गल "पूरयन्ति गलयन्ति इति पुद्गलाः" अर्थात् जिसमें पूरण और गलन (भेद और संघात) द्वारा नई-नई पर्यायों का प्रादुर्भाव होता है उसको पुद्गल कहते हैं। विज्ञान की भाषा में इसे इन्टीग्रेशन व डिसइन्टीग्रेशन (Integration and disintegration) (एकीकरण और विभाजन) कहते हैं।

भाव कर्म– द्रव्य कर्म के उदय से होने वाले आत्मा के राग-द्वेष, कषाय, अज्ञान आदि परिणाम-विशेष को भावकर्म कहते हैं। **नोकर्म–** औदारिक, वैक्रियिक, आहारक एवं तैजस शरीर के रूप में परिणत पुद्गल-स्कन्ध को नोकर्म कहते हैं। द्रव्य कर्म के सामान्य से आठ भेद हैं अथवा एक सौ अड़तालीस या असंख्यात लोक प्रमाण भी उसके भेद होते हैं।

इस संदर्भ में आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं–

कम्मं पि सगं कुव्वदि जेण सहावेण सम्ममप्पाणं।
जीवो वि य तारिसओ कम्मसहावेण भावेण ।।

जिस प्रकार कर्म स्वकीय स्वभाव द्वारा यथार्थ में अपने आपको करते हैं उसी प्रकार जीवद्रव्य भी स्वकीय अशुद्ध रागादि परिणामों द्वारा अपने आपको करते हैं। निश्चय नय से कर्म के कर्त्ता कर्म हैं और जीव-भाव के कर्त्ता जीव हैं। जीव पुद्गल द्रव्य में होने वाले कर्मरूप परिणमन का कर्त्ता है और कर्म, जीवद्रव्य में होने वाले राग-द्वेषादि परिणमन के कर्त्ता हैं। यह सब औपचारिक कथन है।

जीव अपने निजभाव को करता हुआ आत्मा निजभाव का ही कर्त्ता है, पुद्गल रूप द्रव्यकर्मों का कर्त्ता नहीं है, ऐसा जिनेन्द्र देव का वचन जानना चाहिए।

(५) जीव का भोक्तृत्व

आत्मा व्यवहार नय से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों का भोक्ता है और निश्चय नय से शुद्ध दर्शन-ज्ञान का ही भोक्ता है।

भावार्थ– संसारी जीव सुख चाहते हैं और दुःख से डरते हैं। बाह्य कारणों के कारण और सातावेदनीय कर्म के उदय से जो प्रसन्नता होती है उसे सुख कहते हैं। "दुःख"– सामान्य भाषा में पीड़ा रूप आत्मा के परिणाम को दुःख कहते हैं या असाता वेदनीय कर्म के उदय से आत्म परिणामों से जो संक्लेश होता है, उसे दुःख कहते हैं।

शुद्धदर्शन से अभिप्राय केवलदर्शन से है तथा शुद्ध ज्ञान से केवलज्ञान। चतुर्थ गुणस्थान से सिद्ध अवस्था तक के सभी जीव अपनी-अपनी भूमिका की शुद्धि के अनुसार आत्मिक अर्थात् अतीन्द्रिय सुख को भोगते हैं।

कर्त्ता और भोक्ता अधिकार को स्पष्ट करते हुए आचार्य वक्रग्रीवाचार्य कहते हैं–

कत्ता भोत्ता आदा पोग्गल–कम्मस्स होदि ववहारा।
कम्मजभावेणादा कत्ता भोत्ता दु णिच्छयदो।।

अर्थात्– आत्मा पुद्गल कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता व्यवहार से है और आत्मा कर्म-जनित भावों का कर्त्ता-भोक्ता निश्चय से अर्थात् अशुद्ध निश्चय नय से है।

(६) जीव का स्वदेह परिमाण

व्यवहार नय से आत्मा संकोच-विस्तार के कारण समुद्घात के बिना अपने-अपने शरीर के बराबर है और निश्चय नय से असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश के बराबर है।

भावार्थ– शरीर नाम-कर्म के उदय से जब जीव कर्मों के आवरण से आच्छादित होता है तो वह संकोच को प्राप्त होता है और जब आवरण का अभाव हो जाता है तो वह विस्तार को प्राप्त होता है। संसार अवस्था में हानि-वृद्धि का कारण शरीर नाम-कर्म है। उसके सम्बन्ध से जीव घटता है और बढ़ता है। सबसे सूक्ष्म शरीर वाले लब्ध्य-अपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीव (के उत्पन्न होने के तीसरे समय) से

लेकर सबसे बड़े शरीर वाले स्वयम्भूरमण समुद्र के महामच्छ जीव तक जीव घटता-बढ़ता है। मुक्त अवस्था में हानि-वृद्धि का कारण जो नामकर्म है, उसका अभाव होने से जीव के प्रदेश न तो संकोचते और न ही विस्तार को प्राप्त होते हैं, किन्तु विगत शरीर-प्रमाण रहते हैं।

(७) संसारी जीवों के भेद

संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

स्थावर नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की अवस्था-विशेष अर्थात् पर्याय को स्थावर जीव कहते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवों के शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है, इसलिए ये दिखाई नहीं देते। पृथ्वीकायिक का शरीर मसूर के दाने के समान गोल, जलकायिक का शरीर पानी की बूँद के समान गोल, अग्निकायिक का शरीर सुइयों के समूह के समान और वायुकायिक का शरीर ध्वजा के समान लम्बा-तिरछा होता है। वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर अनेक प्रकार का एवम् अनेक अवगाहनाओं का होता है। ये एकेन्द्रिय जीव बादर और सूक्ष्म के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

त्रस नामकर्म के उदय से प्राप्त हुई जीव की अवस्था-विशेष को त्रस कहते हैं। दो इन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव विकलत्रय कहलाते हैं। दो इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव त्रस कहलाते हैं। त्रस जीव तीनों लोकों के मध्य में स्थित एक राजू चौड़ी और चौदह राजू ऊँची त्रस नाड़ी है, उसमें कुछ कम तेरह राजू प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी (जिनके मन हो) और असंज्ञी (जिनके मन न हो) के भेद से दो प्रकार के होते हैं।

(८) अस्तिकाय और जीव

अस्तिकाय में दो शब्द हैं– अस्ति और काय। जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश ये सदा रहने वाले हैं। इसलिए इनको 'अस्ति' कहा है और शरीर के समान बहुप्रदेशी हैं, अतः काय कहा है, दोनों मिलकर अस्तिकाय कहलाते हैं। इन सबको मिलाकर इनको पंचास्तिकाय कहा गया गया है। किन्तु कालाणु अस्ति रूप तो है, किन्तु एक प्रदेशी है, अतः उसको बहुप्रदेशी अर्थात् कायवान् नहीं कहा गया है।

एक जीव में, धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य में असंख्यात् प्रदेश होते हैं, क्योंकि वे समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं। आकाश द्रव्य में अनन्त प्रदेश होते हैं क्योंकि वह लोकाकाश के बाहर भी स्थित है। इसकी कोई सीमा या अन्त नहीं है। पुद्गल द्रव्य में संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश पाए जाते हैं। काल द्रव्य में एक ही प्रदेश होता है। एक-एक लोकाकाश के प्रदेश पर रत्नों की राशि के सामन एक-एक कालाणु स्थित है।

प्रदेश का लक्षण

एक पुद्गल परमाणु जितने आकाश द्रव्य को घेरता है अर्थात् स्थान लेता है उतने स्थान को प्रदेश कहते हैं।

(६) सप्त तत्त्व/नव पदार्थ और जीव

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व बताए गए हैं। इनमें पुण्य और पाप जोड़ देने से नौ पदार्थ बन जाते हैं। **'तस्य भावः तत्त्वम'**– जिस वस्तु का जो भाव है वह तत्त्व है अथवा जो श्रद्धान करने योग्य पदार्थ है, उसका जो भाव अर्थात स्वरूप, उसका नाम तत्त्व है। जीव और अजीव तत्त्व सामान्य हैं तथा शेष पांच तत्त्व पर्याय होने से विशेष कहलाते हैं। **"जीव"** – जिसमें चेतना पाई जाती है उसको जीव कहते हैं। चेतना ज्ञानदर्शन रूप होती है। **"अजीव"**– जिसमें चेतना नहीं पायी जाती है उसको अजीव कहते हैं। अथवा जो जीव से विपरीत स्वभाव वाला हो वह अजीव है। इसमें पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य आ जाते हैं। **"आस्रव"**– पाप और पुण्य रूप कर्मों के आगमन के द्वार को आश्रव कहते हैं। **"बन्ध"**– आस्रव द्वारों से आये हुये कर्म-पुद्गलों का आत्म-प्रदेशों के साथ एक-क्षेत्रावगाह हो जाना बंध है अर्थात् दूध-पानी की तरह मिल जाना। **'संवर'**– आस्रव-द्वार के निरोध को संवर कहते हैं। **'निर्जरा'**– पूर्व सञ्चित कर्मों की स्थिति पूर्ण होने पर उसका उदय होकर आत्म-प्रदेशों से अलग हो जाना अथवा तप विशेष से संचित कर्मों का क्रमशः अंशतः झड़ (अलग हो) जाना निर्जरा है। **'मोक्ष'**– सम्यग्दर्शनादि कारणों से सम्पूर्ण कर्मों का आत्यन्तिक मूलोच्छेद होना मोक्ष है। **पुण्य**- जो आत्मा को पवित्र करे उसको पुण्य कहते हैं। **"पाप"**– जो आत्मा को मलिन करे उसको पाप कहते हैं। कहा भी है–

आसवसंवरणिज्जरबंधो मुक्खो च पुण्ण-पावं च।
तह एव जिणाणाए सद्दहिदव्वा अपरिसेसा।।

अर्थ – आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन पदार्थों का भी जिनाज्ञा से प्रमाण या श्रद्धान करना सम्यग्दृष्टि का कर्तव्य है।

(१०) मार्गणा और गुणस्थानों की अपेक्षा

संसारी जीव

संसारी जीव अशुद्धनय से चौदह मार्गणा और चौदह गुणस्थानों की अपेक्षा चौदह-चौदह प्रकार के होते हैं और शुद्ध नय से सभी संसारी जीव शुद्ध ही होते हैं। यहाँ अशुद्धनय से अभिप्राय व्यवहार नय से है और शुद्धनय से अभिप्राय निश्चयनय से है।

मार्गणा

जिन-जिन धर्म-विशेषों से जीवों का अन्वेषण (अर्थात् खोज) किया जाता है, उन-उन धर्म-विशेषों को मार्गणा कहते हैं। ३४३ घन राजू प्रमाण लोकाकाश में अक्षय अनन्त जीवराशि भरी हुई है। उसे खोजने अथवा उस पर विचार करने के साधनों में मार्गणा का स्थान सर्वोपरि है। ये मार्गणाएं चौदह प्रकार की होती हैं। आचार्य नेमिचन्द्र जी कहते हैं--

गइ-इंदिये च काये, जोये वेये कसाय-णाणे य।
संजम-दंसण-लेस्सा, भविया संमत्त सण्णि आहारे।।

अर्थात्– गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञित्व और आहार ये चौदह मार्गणाएं हैं।

गतिमार्गणा– नरकगति आदि नाम कर्म के उदय से जो अवस्था होती है उसे नरकगति आदि कहते हैं।

इन्द्रियमार्गणा– जीव की जिनसे पहिचान हो उसे इन्द्रिय कहते हैं अथवा जो अपने स्पर्शादि विषयों को ग्रहण करने के लिए इन्द्र के समान स्वतंत्र है (किसी दूसरी की अपेक्षा नहीं रखतीं) उन्हें इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्र का अर्थ आत्मा से है।

कायमार्गणा— जाति नाम कर्म के साथ अविनाभावी त्रस और स्थावर नाम कर्म के उदय से जो शरीर प्राप्त होता है उसे काय कहते हैं। आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार बोझा ढोने वाला मनुष्य काँवर के द्वारा बोझा ढोता है उसी प्रकार संसारी जीव कायरूपी काँवर के द्वारा कर्मरूपी बोझे को ढ़ोता है।

योगमार्गणा— पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की कर्म-नोकर्म के ग्रहण में कारणभूत जो शक्ति है उसे योग कहते हैं। यह भाव-योग का लक्षण है, इसके रहते हुए आत्म-प्रदेशों का जो परिस्पन्द हलन-चलन होता है उसे द्रव्ययोग कहते हैं।

वेद— प्राणी के नोकषाय के उदय से उत्पन्न हुये मैथुन करने के भाव को भाववेद कहते हैं और प्राणी के नाम कर्म के उदय से अविर्भूत दैहिक लिंग को द्रव्यवेद कहते हैं। भाव-वेद और द्रव्य- वेद में प्रायः समानता रहती है। परन्तु कर्मभूमिज मनुष्यों और तिर्यञ्चों के कहीं-कहीं विषमता भी पायी जाती है। नारकियों के मात्र नपुंसक वेद तथा देवों, भोगभूमिज मनुष्यों, तिर्यञ्चों के स्त्रीवेद तथा पुंवेद होते हैं। कर्मभूमिज मनुष्यों तथा तिर्यञ्चों के नाना जीवों की अपेक्षा तीनों वेद होते हैं। सम्मूर्छन जन्म वाले जीवों के नपुंसक वेद ही होता है।

कषाय मार्गणा— कषाय शब्द की निष्पत्ति प्राकृत में कृष् और इण् इन दो धातुओं से की गई है। कृष् का अर्थ – 'जोतना' होता है। जो जीव के उस कर्म रूपी खेत को जोते जिसमें कि सुख-दुःख रूपी बहुत प्रकार का अनाज उत्पन्न होता है तथा संसार की जिसकी बड़ी लम्बी सीमा है, उसे कषाय कहते हैं। अथवा जो जीव के सम्यक्त्व, एकदेशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यात चारित्र रूप परिणामों को कषै या घाते, उसे कषाय कहते हैं। शिलाभेद, पृथ्वीभेद, धूलिभेदि और जलराजि के समान क्रोध चार प्रकार का होता है। शैल, अस्थि, काष्ठ और वेत के समान चार प्रकार का मान होता है। वेणुमूल (बांस की जड़), मेढ़ा का सींग, गोमूत्र और खुरपी के समान चार प्रकार की माया होती है। कृमिराग, चक्रमल, शरीरमल और हरिद्रारंग के समान लोभ भी चार प्रकार का है।

ज्ञानमार्गणा— आत्मा जिसके द्वारा त्रिकाल-विषयक द्रव्य, गुण और पर्यायों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जानता है उसे ज्ञान मार्गणा कहते हैं।

संयम मार्गणा– अहिंसा आदि पांच महाव्रतों को धारण करना, ईर्या आदि पांच समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन-वचन-काय की प्रवृत्ति रूप दण्डों का त्याग करना और स्पर्शनादि पांच इन्द्रियों को वश में करना संयम है। संयम शब्द की निष्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक यम् उपरमे धातु से हुई है जिसका अर्थ होता है– अच्छी तरह से रोकना। करणानुयोग में मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव होने पर तथा संज्वलन का उदय रहने पर संयम की प्राप्ति बतलाई है।

दर्शन मार्गणा– क्षायोपशामिक ज्ञान के पूर्व और क्षायिक ज्ञान के साथ केवलियों में जो पदार्थ का सामान्य ग्रहण होता है उसे दर्शन कहते हैं। आचार्य योगीन्द्रदेव के अनुसार **'निजात्मनः तस्य दर्शनमवलोकनं दर्शनमिति'** अर्थात् निज आत्मा का देखना **'दर्शन'** है। **'सत्तावलोकनं दर्शनम्'** सत्ता का अवलोकन ही दर्शन है।

लेश्या-मार्गणा– जिसके द्वारा जीव अपने आपको पुण्य-पाप से लिप्त करे, उसे लेश्या कहते हैं। यह लेश्या का निरुक्तार्थ है और कषाय के उदय से अनुरञ्जित योगों की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं, यह लेश्या शब्द का वाच्यार्थ है। लेश्या के द्रव्य और भाव की अपेक्षा दो भेद हैं। वर्ण नामकर्म के उदय से जो शरीर का रूप-रंग होता है, वह द्रव्य लेश्या है और क्रोधादि कषायों के निमित्त से परिणामों में जो कलुषितपने की हीनाधिकता है, वह भाव-लेश्या है।

भव्यत्व मार्गणा– जिस शक्ति के निमित्त से आत्मा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र प्रकट होने की योग्यता होती है, उसे भव्यत्व मार्गणा कहते हैं।

सम्यक्त्व मार्गणा– मोक्षमार्ग के प्रयोजनभूत तत्त्वों के यथार्थ श्रद्धान को सम्यक्त्व कहते हैं।

संज्ञी मार्गणा– जो संज्ञा अर्थात् मनसहित हैं उन्हें संज्ञी कहते हैं। **'संज्ञा'** – हित और अहित की परीक्षा तथा गुण-दोष का विचार तथा स्मरणादि करने को संज्ञा कहते हैं। विग्रह गति में जीवों के मन नहीं होता है, लेकिन फिर भी गमन करते हैं। इस बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य उमास्वामी जी कहते हैं– **'विग्रहगतौ कर्मयोगः'** विग्रहगति में कार्मणकाय योग होता है,उसी की सहायता से जीव एक गति से दूसरी

गति में गमन करता है। 'विग्रहगति' -- नया शरीर धारण करने के लिए गमन करने को विग्रहगति कहते हैं। 'कर्मयोग'-- कार्मण-काययोग के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में जो कम्पन होता है उसे कर्मयोग कहते हैं--

आहारक मार्गणा-- शरीर, मन और वचन के योग्य कर्म-वर्गणाओं का ग्रहण आहारक कहलाता है। संसारी जीव अविग्रह गति में आहारक ही होता है। जैसे आचार्य उमास्वामी जी कहते हैं--

"एक द्वौ त्रीन्वानाहारकः" विग्रहगति में जीव एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता है। लेकिन चौथे समय में नियम से आहारक हो जाता है।

गुणस्थान

मोह और योग के निमित्त से आत्मा के गुणों में जो तारतम्य होता है उसे गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान के चौदह भेद होते है। जैसा कि आचार्य नेमिचन्द्र जी ने गोम्मटसार (जीवकाण्डम्) में कहा है--

मिच्छो सासण मिस्सो अविरदसम्मो ये देसविरदो य।
विरदा पमत्त इयरो अपुव्व अणियट्टि सुहुमो य।।९।।
उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।
चउदसजीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा।।१०।।

अर्थ-- मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरतसम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगकेवलिजिन और अयोगकेवलिजिन ये चौदह जीवसमास (गुणस्थान) और सिद्ध इन जीव समासों-गुणस्थानों से रहित हैं।

मिथ्यात्व-- मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के उदय से जिसके आत्मा में अतत्त्वश्रद्धान रहता है उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं।

सासादन-- सम्यग्दर्शन के काल में एक समय से लेकर छह आवली तक का समय बाकी रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक का उदय

आ जाने के कारण जो जीव चतुर्थ गुणस्थान से नीचे आ पड़ता है परन्तु अभी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में नहीं आ पाया है, उसे सासादन कहते हैं।

मिश्र— चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव के यदि मिश्र प्रकृति का उदय आता है, तो वहां से गिरकर मिश्र गुणस्थान में आता है। इस गुणस्थान में ऐसे भाव होते हैं जिन्हें न तो सम्यक्त्व रूप कह सकते हैं और न मिथ्यात्व रूप। इस गुणस्थान में किसी की मृत्यु नहीं होती, न मारणान्तिक समुद्घात होता है, न नवीन आयु का बन्ध होता है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीव चतुर्थ गुणस्थान से गिरकर तृतीय गुणस्थान में आता है, परन्तु सादि मिथ्यादृष्टि जीव भी प्रथम गुणस्थान से तृतीय गुणस्थान में पहुंच जाता है।

असंयत— मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व प्रकृति तथा अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशमादि होने पर जिसका आत्मा में तत्त्व-श्रद्धान तो प्रकट हुआ है, परन्तु अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों का उदय रहने से संयमभाव जागृत नहीं हुआ है उसे असंयत या अविरत-सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

देशविरत— अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षयोपशम होने पर जिस सम्यग्दृष्टि जीव के हिंसादि पांचों पापों का एकदेश त्याग हो जाता है, उसे देशविरत कहते है। यह त्रस हिंसा से विरत हो जाता है, इसलिए विरत और स्थावर हिंसा से विरत नहीं होता है, इसलिए अविरत कहलाता है। अर्थात् विरताविरत कहलाता है।

प्रमत्तविरत— प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदयाभावी क्षय और सदवस्था रूप उपशम तथा संज्वलन का तीव्र उदय रहने पर जिसके आत्मा में प्रमाद-सहित संयम प्रकट होता है, उसे प्रमत्तसंयत कहते हैं। इस गुणस्थान का धारक नग्न मुद्रा में मुनिरूप रहता है।

अप्रमत्तविरत— संज्वलन के तीव्र उदय की अवस्था निकल जाने के कारण जिसके आत्मा से पन्द्रह प्रकार का प्रमाद नष्ट हो जाता है, उसे अप्रमत्त-विरत कहते हैं। इसके स्वस्थान और सातिशय की अपेक्षा से भेद हैं।

अपूर्वकरण— जहाँ प्रत्येक समय में अपूर्व-अपूर्व (नवीन-नवीन) ही परिणाम होते हैं, उसे अपूर्वकरण कहते हैं। इसमें सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश तथा

विसदृश दोनों प्रकार के होते हैं और भिन्न-समयवर्ती जीवों के परिणाम विसदृश ही होते हैं।

अनिवृत्तिकरण– जहाँ सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश ही और भिन्न-समयवर्ती जीवों के परिणाम विसदृश ही होते हैं, उसे अनिवृत्तिकरण कहते हैं। ये अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थान संज्वलन कषाय के उदय की मन्दता में क्रम से प्रकट होते हैं।

सूक्ष्मसाम्पराय– जिस गुणस्थान में अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त मात्र लोभ कषाय शेष रहता है उसे सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

उपशान्तमोह– उपशम श्रेणी वाला जीव दसवें गुणस्थान में चारित्रमोह का पूर्ण उपशम कर उपशान्त मोह गुणस्थान में आता है। इसका मोह पूर्ण रूप से शांत हो चुकता है और शरद् ऋतु के सरोवर के समान इसकी सुन्दरता होती है। अन्तर्मुहूर्त तक इस गुणस्थान में ठहरने के बाद जीव नियम से नीचे गिर जाता है।

क्षीणमोह– क्षपकश्रेणी वाला जीव चारित्र मोहनीय का पूर्ण क्षय कर क्षीणमोह गुणस्थान में आता हैं। यहाँ इसका मोह बिलकुल ही क्षीण हो चुकता है और स्फटिक के पात्र में रखे हुए स्वच्छ जल के समान इसकी स्वच्छता होती है।

सयोगकेवली– यहाँ घातिया कर्म की ४७ और अघातिया कर्म की १६, इस तरह ६३ कर्म-प्रकृतियों के क्षय हो जाने के फलस्वरूप केवलज्ञान प्रकट होता है तथा योगसहित प्रवृत्ति होती है, इसे सयोगकेवलीजिन गुणस्थान कहते हैं।

अयोगकेवली– योग के नष्ट होते ही ये परमात्मा अयोग केवली हो जाते हैं। शरीर के क्षेत्र में रहते हुए भी इनके प्रदेशों का शरीर से सम्बन्ध नहीं रहता। इनका काल 'अ, इ, उ, ऋ, लृ' इन पांच ह्रस्व अक्षरों के बोलने के बराबर रहता है। इस गुणस्थान के उपान्त्य और अन्त्य समय में शेष बची हुई ७२ और १३ प्रकृतियों का क्रमशः क्षय हो जाता है।

इसके बाद ही ये प्रभु गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान् हो जाते हैं।

जीव का सिद्धत्व और ऊर्ध्वगमन स्वभाव

णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता।।१४।।

(द्रव्य संग्रह)

अन्वयार्थ– (णिक्कम्मा) ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित (अट्ठगुणा) सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सहित (चरमदेहदो) अन्तिम शरीर से (किंचूणा) कुछ कम (सिद्धा) सिद्ध हैं। (णिच्चा) नित्य (लोयग्गठिदा) लोक के अग्र भाग में स्थित (उप्पादवयेहिं) उत्पाद और व्यय से (संजुत्ता) सहित होते हैं।

अर्थ – आठ कर्मों से रहित और सम्यक्त्व आदि आठ गुणों से सहित, अन्तिम शरीर से कुछ कम, उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से सहित और लोक के अग्रभाग में अवस्थित जीव सिद्ध कहलाते हैं।

भावार्थ– जीव के रागद्वेषादिक परिणामों के निमित्त से कार्मणवर्गणारूप जो कर्म पुद्गलस्कन्ध जीव के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं उन्हें कर्म कहते हैं। कर्म आठ होते हैं–

ज्ञानावरण– जिस कर्म के उदय या निमित्त से आत्मा के ज्ञानगुण पर आवरण पड़ता है उसे ज्ञानावरण कहते हैं। ज्ञानावरण कर्म के क्षय होने से अनन्तज्ञान प्राप्त होता है।

दर्शनावरण– जिस कर्म के उदय या निमित्त से आत्मा के दर्शनगुण पर आवरण पड़ता है, उसे दर्शनावरण कहते हैं। इस कर्म के क्षय होने पर अनन्तदर्शन प्रकट होता है।

वेदनीय कर्म– जिस कर्म के उदय से जीव के आकुलता होती है अथवा जिस कर्म के उदय से आत्मा के अव्याबाध गुण का घात होता है उसे वेदनीयकर्म कहते हैं।

मोहनीय कर्म– जिसके उदय से जीव अपने आत्मा के स्वरूप को भूलकर अन्य को अपना समझने लगता है उसे मोहनीय कर्म कहते हैं। इस कर्म के क्षय होने से सम्यक्त्वादि गुणों की प्राप्ति होती है।

आयु– जिस कर्म के उदय से आत्मा नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव के शरीर में रुका रहता है उसे आयुकर्म कहते हैं। अथवा आयुकर्म के निमित्त से आत्मा के अवगाहनगुण का घात होता है।

नामकर्म– जिस कर्म के उदय से जीव गत्यादिक में नानारूप परिणमता है अथवा शरीरादिक बनाता है अथवा जिस कर्म के उदय से आत्मा के सूक्ष्मत्वगुण का घात होता है उसे नामकर्म कहते हैं।

गोत्रकर्म– जिस कर्म के उदय से जीव का उच्च-नीच गोत्र अर्थात् कुल में जन्म होता है उसे गोत्रकर्म कहते हैं। इस कर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व गुण प्रकट होता है।

अन्तराय कर्म– जिस कर्म के उदय या निमित्त से दान, लाभ, भोग, उपभोग आदि में विघ्न आता है उसे अन्तराय कर्म कहते हैं। इस कर्म के अभाव से अनन्तवीर्य गुण प्रकट होता है।

इन आठ कर्मों का क्षय करने पर ही जीव लोक के अग्रभाग तनुवातवलय में सिद्धिशिला से ऊपर स्थित होता है। जैसा कि मोक्षशास्त्र में कहा है– **'तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्'**, समस्त कर्मों का क्षय होते ही उसी समय वह मुक्त जीव ऊपर की ओर लोक के अन्त तक जाता है।

किसी कार्य के होने में दो कारण अवश्य होते हैं। कारण दो प्रकार के हैं। **'उपादान कारण'–** पदार्थ के कार्यरूप होने की स्वयं की अपनी शक्ति उपादान कारण है। **'निमित्तकारण'**– उपादान से अन्य बाह्य-सामग्री जो उसे कार्य रूप होने में सहायक हो वह निमित्त कारण है, जैसे मिट्टी घड़े का उपादान कारण है और कुम्हार, चक्र, दंड, चीवर आदि निमित्त कारण हैं।

कारण के अन्य प्रकार से दो भेद–

(१) समर्थ कारण– प्रतिबंधक का अभाव होने पर उपादन निमित्त रूप दोनों प्रकार की सहकारी समस्त सामग्री समर्थ कारण है, इसके होने पर उसी समय कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है।

(२) असमर्थ कारण– उपादान-निमित्तात्मक भिन्न-भिन्न प्रत्येक सामग्री अथवा कोई एक दो आदि कम सामग्री को असमर्थ कारण कहते हैं, जैसे कि मुक्त जीव के ऊर्ध्वगमन करने में अपनी ऊर्ध्वगमन स्वभाव रूप स्वयं की शक्ति तो उपादान कारण है और धर्मद्रव्य निमित्त कारण है। जहाँ तक मुक्त जीव को ऊर्ध्वगमन करने में यह दोनों प्रकार की सहकारी समस्त सामग्री मिलती हैं, वहीं तक उसका ऊपर की ओर जाना संभव है। धर्मद्रव्य लोक के अन्त तक ही है, आगे नहीं है। अतः आगे अलोकाकाश में धर्मद्रव्य के न होने से वहाँ पर मुक्त जीव का गमन नहीं होता है। जैसा कि आचार्य उमास्वामी जी कहते हैं–

"धर्मास्तिकायाभावात्" अर्थात् अलोकाकाश में धर्मद्रव्य का अभाव है।

उत्पाद– चेतन या अचेतन द्रव्य में अपनी जाति का त्याग किये बिना नवीन पर्याय की प्राप्ति को उत्पाद कहते हैं, जैसे मिट्टी के पिंड में घट-पर्याय का होना। **'व्यय'**– पूर्व पर्याय का त्याग व्यय है, जैसे घट-पर्याय के उत्पन्न होने पर पिण्ड-पर्याय का व्यय (विनाश)। **ध्रौव्य**– पूर्व-पर्याय का नाश और नई पर्याय का उत्पाद होने पर भी अपने अनादि स्वभाव को न छोड़ना ध्रौव्य है, जैसे पिण्ड आकार के नष्ट हो जाने पर और घट-पर्याय के उत्पन्न होने पर भी मिट्टी ध्रौव्य रूप से कायम रहती है। प्रत्येक द्रव्य में ये तीनों धर्म एक साथ पाये जाते हैं।

विशेष– इस संदर्भ में श्रीमद्देवसेनाचार्य कहते हैं–

'स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्यायाश्चरमशरीरात् किंचिन्न्यूनसिद्धपर्यायाः' अर्थात्– अन्तिम शरीर से कुछ कम जो सिद्ध -पर्याय है, वह जीव की स्वभाव द्रव्य व्यञ्जनपर्याय है। आचार्य श्री यतिवृषभ जी कहते हैं–

लोयविणिच्छयगंथे लोयविभागम्मि सव्वसिद्धाणं।
ओगाहण परिमाणं भणिदं किंचूण चरिमदेहसमो।।

अर्थात् – लोकविनिश्चय ग्रन्थ में लोक-विभाग में सब सिद्धों की अवगाहना का प्रमाण कुछ कम चरम शरीर के समान कहा है।

सिद्धशिला– सर्वार्थसिद्धि विमान से १२ योजन ऊपर, ८ योजन मोटी, १ राजू पूर्व-पश्चिम और ७ राजू उत्तर-दक्षिण ईषत्प्राग्भार नाम की आठवीं पृथ्वी है जिसके

अन्तिम (ऊपरी) भाग में बीचों-बीच मनुष्यलोक प्रमाण ४५ लाख योजन समतल अर्द्धगोलाकार सिद्धशिला है।

ऊर्ध्वगमन स्पष्ट करते हुए आचार्य वक्रग्रीव कहते हैं–

पयडट्ठिदि अणुभागप्पदेशबंधेहिं सव्वदो मुक्को।
उड्ढं गच्छदि सेसा विदिसा-वज्जं गदिं जंति।।

अर्थात– प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन चार प्रकार के बन्धनों से सर्वथा निर्मुक्त हुआ जीव केवल ऊपर की ओर जाता है अर्थात ऊर्ध्वगमन ही करता है और बाकी के जीव चार विदिशाओं को छोड़कर छह ओर गमन करते हैं।

(११) चेतन आत्मा और जीव

यह चैतन्य तत्त्व प्रत्येक प्राणी के शरीर में ही स्थित है। किन्तु अज्ञानरूप अन्धकार से व्याप्त जीव उसको नहीं जानते हैं, इसीलिये वे बाहिर-बाहिर घूमते हैं, अर्थात् विषयभोगजनित सुख को ही वास्तविक सुख मानकर उसको प्राप्त करने के लिए ही प्रयत्नशील होते हैं। कितने ही मनुष्य सदा महान् शास्त्रसमूह में परिभ्रमण करते हुए भी, अर्थात् बहुत से शास्त्रों का परिशीलन करते हुए भी उस उत्कृष्ट आत्मतत्त्व को काष्ठ में शक्तिरूप से विद्यमान अग्नि के समान नहीं जानते हैं। जो भव्य जीव क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य और करण इन पांच लब्धियों रूप विशेष सामग्री से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयको धारण करने के योग्य बन चुका है, वह मोक्ष मार्ग में स्थित हो गया है। **विशेषार्थ–** प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति जिन पांच लब्धियों के द्वारा होती है उनका स्वरूप इस प्रकार है।

१. **क्षयोपशमलब्धि–** जब पूर्वसंचित कर्मों के अनुभागस्पर्धक विशुद्धि के द्वारा प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हीन होते हुए उदीरणा को प्राप्त होते हैं, तब क्षयोपशमलब्धि होती है।

२. **विशुद्धिलब्धि–** प्रतिसमय अनन्तगुणी हीनता के क्रम से उदीरणा को प्राप्त कराये गये अनुभागस्पर्धकों से उत्पन्न हुआ जो जीव का परिणाम सातावेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियों के बन्ध का कारण तथा असातावेदनीय आदि पाप प्रकृतियों के अबन्ध का कारण होता है, उसे विशुद्धि कहते हैं। इस विशुद्धिकी प्राप्ति का नाम विशुद्धिलब्धि है।

३. **देशनालब्धि–** जीवादि छह द्रव्यों तथा नौ पदार्थों के उपदेश को देशना कहा जाता है। उस देशना में लीन हुए आचार्य आदि की प्राप्ति को तथा उनके द्वारा उपदिष्ट पदार्थ के ग्रहण, धारण एवं विचार करने की शक्ति की प्राप्ति को भी देशनालब्धि कहते हैं।

४. **प्रायोग्यलब्धि–** सब कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति को घातकर उसे अन्तःकोड़ाकोड़ि मात्र स्थिति में स्थापित करने तथा उक्त सब कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग को घातकर उसे द्विस्थानीय (घातियाकर्मों के लता और दारुरूप तथा अन्य पाप प्रकृतियों के नीम और कांजीर रूप) अनुभाग में स्थापित करने को प्रायोग्यलब्धि कहा जाता है।

५. **करणलब्धि–** अधः प्रवृत्तकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन प्रकार के परिणामों की प्राप्ति को करणलब्धि कहते हैं। जिन परिणामों में उपरितनसमयवर्ती परिणाम अधस्तनसमयवर्ती परिणामों के सदृश होते हैं उन्हें अधःप्रवृत्तकरण कहा जाता है (विशेष जानने के लिये देखिये षट्खण्डागम पु. ६, पृ. २१४ आदि)। प्रत्येक समय में उत्तरोत्तर जो अपूर्व अपूर्व ही परिणाम होते हैं, वे अपूर्वकरण परिणाम कहलाते हैं। इनमें भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम सर्वथा विसदृश तथा एक समयवर्ती जीवों के परिणाम सदृश और विसदृश भी होते हैं। जो परिणाम एक समयवर्ती जीवों के सर्वथा सदृश तथा भिन्न समयवर्ती जीवों के सर्वथा विसदृश ही होते हैं, उन्हें अनिवृत्तिकरण परिणाम कहा जाता है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति इन तीन प्रकार के परिणामों के अन्तिम समय में होती है। उपर्युक्त पांच लब्धियों में पूर्व की चार लब्धियां भव्य और अभव्य दोनों के ही जीवों के समान रूप से होती हैं, किन्तु पांचवी करणलब्धि सम्यक्त्व के अभिमुख हुए भव्य जीव के ही होती हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों एकत्रित स्वरूप से मोक्ष के कारण हैं और वास्तविक सुख उस मोक्ष में ही है। इसलिये उस मोक्ष के विषय में प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा के विषय में जो निश्चय हो जाता है उसे सम्यग्दर्शन, उस आत्मा का जो ज्ञान होता है उसे सम्यग्ज्ञान, तथा उसी आत्मा में स्थिर होने को सम्यक्चारित्र कहा जाता है। इन तीनों का संयोग मोक्ष का कारण होता है अथवा शुद्ध निश्चयनयकी अपेक्षा से ये (सम्यग्दर्शनादि) तीनों एक

चैतन्यस्वरूप ही हैं। कारण कि उस अखण्ड एक वस्तु (आत्मा) में भेदों के लिये स्थान ही कौन सा है ? **विशेषार्थ–** ऊपर जो सम्यग्दर्शन आदि का पृथक्-पृथक् स्वरूप बतलाया गया है वह व्यवहारनय की अपेक्षा से है। शुद्ध निश्चयनय से उन तीनों में कोई भेद नहीं है, क्योंकि वे तीनों अखण्ड आत्मा से अभिन्न हैं। इसीलिये उनमें भेद की कल्पना भी नहीं हो सकती है। प्रमाण, नय और निक्षेप ये अर्वाचीन पद में स्थित हैं, अर्थात् जब व्यवहारनय की मुख्यता से वस्तु का विवेचन किया जाता है तभी इनका उपयोग होता है। किन्तु शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि में केवल एक शुद्ध आत्मा ही प्रतिभासित होता है। वहां वे उपर्युक्त सम्यग्दर्शनादि तीनों भी अभेदरूप में एक ही प्रतिभासित होते हैं। मैं निश्चयनय रूप अनुपम नेत्र से सदा भ्रांति से रहित होकर उसी एक चैतन्य स्वरूप को देखता हूं, किन्तु व्यवहारनयरूप नेत्र से उक्त सम्यग्दर्शनादि को पृथक-पृथक स्वरूप देखता हूं। जो महात्मा जन्म-मरण से रहित, एक, उत्कृष्ट, शान्त और सब प्रकार के विशेषणों से रहित आत्मा को आत्मा के द्वारा जानकर उसी आत्मा में स्थिर रहता है वही अमृत अर्थात् मोक्ष के मार्ग में स्थित होता है, वही मोक्षपद को प्राप्त करता है। तथा वही अरिहन्त, तीनों लोकों का स्वामी, प्रभु एवं ईश्वर कहा जाता है। केवलज्ञान, केवलदर्शन और अनन्त सुख स्वरूप जो वह उत्कृष्ट तेज है उसके जान लेने पर अन्य क्या नहीं जाना गया, उसके देख लेने पर अन्य क्या नहीं देखा गया, तथा उसके सुन लेने पर अन्य क्या नहीं सुना गया? अर्थात् एक मात्र उसके जान लेने पर सब कुछ ही जान लिया गया है, उसके देख लेने पर सब कुछ ही देखा जा चुका है, तथा उसके सुन लेने पर सभी कुछ सुन लिया गया है। इस कारण विद्वान मनुष्यों के द्वारा निश्चय से वही एक उत्कृष्ट आत्मतेज जानने के योग्य है, वही एक सुनने के योग्य है, तथा वही एक देखने के योग्य है; उससे भिन्न अन्य कुछ भी न जानने के योग्य है, न सुनने के योग्य है, और न देखने के योग्य है। योगीजन गुरु के उपदेश से, अभ्यास से और वैराग्य से उसी एक आत्मतेज को प्राप्त करके कृत-कृत्य (मुक्त) होते हैं, न कि उससे भिन्न किसी अन्य को प्राप्त करके। उस आत्मतेज के प्रति मन में प्रेम को धारण करके जिसने उसकी बात भी सुनी है, वह निश्चय से भव्य है व भविष्य में प्राप्त होने वाली मुक्ति का पात्र है। जो ज्ञान स्वरूप जीव कर्म से पृथक् होकर अभेद

अवस्था को प्राप्त हुई उस उत्कृष्ट आत्मा को जानता है और उसमें लीन होता है, वह स्वयं ही उसके स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, अर्थात् परमात्मा बन जाता है।

(१२) आत्मा और आत्म ज्योति

जिस चैतन्य रूप तेज के विषय में मन से कुछ विचार नहीं किया जा सकता है, वचन से कुछ कहा नहीं जा सकता है, तथा जो शरीर से भिन्न, अनुभव मात्र से गम्य एवं अमूर्त है; वह चैतन्यरूप तेज हम लोगों की रक्षा करे। मन के बाह्य शरीरादि की ओर से हटकर आनन्दरूप समुद्र में डूब जाने पर जो ज्योति प्रतिभासित होती है वह उत्कृष्ट चैतन्यस्वरूप ज्योति जयवन्त होवे। जो अज्ञान रूप अन्धकार सूर्यादिकों के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता है वह जिस गुरु की निर्मल वचनरूप किरणों के द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, वह श्रेष्ठ गुरु जयवन्त होवे। वृद्धत्व आदि के निमित्त से उत्पन्न होने वाला दुख तो दूर ही रहे, किन्तु विषय भोगों से उत्पन्न हुआ सुख भी साधु जनों को दुखरूप ही प्रतिभासित होता है। वे जिसको वास्तविक सुख मानते हैं, वह सुख मुक्ति में है और वह बहुत कठिनता से सिद्ध की जा सकती है। लोक में सब ही प्राणियों ने चिर काल से जन्म-मरणरूप संसार की कारणीभूत वस्तुओं के विषय में सुना है, परिचय प्राप्त किया है, तथा अनुभव भी किया है। किन्तु जो शुद्ध आत्मा की ज्योति मुक्ति की कारणभूत है उसकी उपलब्धि उन्हें सुलभ नहीं हुई। जो आत्मा वचनों के अगोचर है– विकल्पातीत है– उस आत्मतत्त्व के विषय में प्रायः ज्ञान ही नहीं होता है, उसके विषय में स्थिति और भी कठिन है, तथा उसका अनुभव तो दुर्लभ ही है। वह आत्मतत्त्व अत्यन्त दुर्गम है।

चूंकि सज्जन मनुष्य व्यवहारनय के आश्रय से ही मुख्य और उपचारभूत कथन को जानकर शुद्ध स्वरूप का आश्रय लेते हैं, अतएव वह व्यवहार पूज्य (ग्राह्य) है। आत्मा के विषय में दृढ़ता (सम्यग्दर्शन), ज्ञान और स्थिति (चारित्र) रूप रत्नत्रय संसार के नाश का कारण है। किन्तु जिसकी बुद्धि शुद्ध निश्चयनय के मार्ग में प्रवृत्त हो चुकी है, उसके लिये वे तीनों (सम्यग्दर्शनादि) एक आत्मस्वरूप ही हैं– उससे भिन्न नहीं हैं। समीचीन सुख (चारित्र), ज्ञान और दर्शन इन तीनों की एकता परमात्मा का अखण्ड स्वरूप है। इसीलिये जो जीव उपर्युक्त परमात्मस्वरूप में लीन होता है, वही उनकी प्राप्ति से कृतकृत्य होता है। जिस प्रकार अभेदस्वरूप से अग्नि में उष्णता रहती है उसी प्रकार से आत्मा में ज्ञान है, इस प्रकार की प्रतीति का नाम शुद्ध सम्यग्दर्शन और

उसी प्रकार से जानने का नाम सम्यग्ज्ञान है। इन दोनों के साथ उक्त आत्मा के स्वरूप में स्थित होने का नाम सम्यक्चारित्र है।

आत्मा वाचक शब्द भी निश्चयतः उससे भिन्न है क्योंकि निश्चयनय की अपेक्षा वह आत्मा संज्ञा से रहित (अनिर्वचनीय) है। जो आत्मज्योति गमनादिरूप क्रिया, कर्ता आदि कारक और उनके सम्बन्ध के विस्तार से रहित है वही एक मात्र ज्योति मोक्षाभिलाषी साधु जनों के लिये शरणभूत है। वही एक आत्मज्योति उत्कृष्ट ज्ञान है, वही एक आत्मज्योति निर्मल सम्यग्दर्शन है, वही एक आत्मज्योति चारित्र है, तथा वही एक आत्म ज्योति निर्मल तप है। **विशेषार्थ–** अभिप्राय यह है कि जब स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट हो जाता है, तब शुद्ध चैतन्य स्वरूप एक मात्र आत्मा का ही अनुभव होता है। उस समय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप आदि में कुछ भी भेद नहीं रहता। इसी प्रकार ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय का भी कुछ भेद नहीं रहता; क्योंकि, उस समय वही एक मात्र आत्मा ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता बन जाता है। इसीलिये इस अवस्था में कर्ता, कर्म और करण आदि कारकों का भी सब भेद समाप्त हो जाता है। वही एक आत्मज्योति नमस्कार करने के योग्य है, वही एक आत्मज्योति मंगल स्वरूप है, वही एक आत्मज्योति उत्तम है, तथा वही एक आत्मज्योति साधुजनों के लिये शरणभूत है। **विशेषार्थ–** "चत्तारि मंगलं........, चत्तारि लोगुत्तमा......" इत्यादि प्रकार से जो अरहंत, सिद्ध, साधु और केवलीकथित धर्म इन चार को मंगल, लोकोत्तम तथा शरणभूत बतलाया गया है वह व्यवहारनय की प्रधानता से है। शुद्ध निश्चयनय की अपेक्षा तो केवल एक वह आत्मज्योति ही मंगल, लोकोत्तम और शरणभूत है। प्रमाद से रहित हुए मुनि का वही एक आत्मज्योति आचार है। वही एक आत्मज्योति आवश्यक क्रिया है, तथा वही एक आत्मज्योति स्वाध्याय भी है। केवल उसी एक उत्कृष्ट आत्मज्योति का अनुष्ठान करने वाले साधु के गुणों की, समस्त शीलों की और अत्यन्त निर्मल धर्म की भी सम्भावना है। समस्त शास्त्ररूपी महासमुद्र का उत्कृष्ट रत्न वही एक आत्मज्योति है तथा वही एक आत्मज्योति सब रमणीय पदार्थों में आगे स्थित अर्थात श्रेष्ठ है। वही एक आत्मज्योति उत्कृष्ट तत्त्व है, वही एक आत्मज्योति उत्कृष्ट पद है, वही एक आत्मज्योति भव्य जीवों के द्वारा आराधन करने योग्य है, तथा वही एक आत्मज्योति उत्कृष्ट तेज है। वही एक आत्मज्योति साधुजनों के लिये जन्मरूपी वृक्ष को नष्ट करने वाला शस्त्र माना जाता है तथा समाधि में स्थित योगी जनों का अभीष्ट प्रयोजन उसी एक आत्मज्योति की प्राप्ति है। मोक्षाभिलाषी जनों के लिये मोक्ष

का मार्ग वही एक आत्मज्योति है, दूसरा नहीं है। उसको छोड़कर किसी दूसरे स्थान मे आनन्द की भी सम्भावना नहीं है। शान्त और बर्फ के समान शीतल वही आत्मज्योति संसाररूपी भयानक धूप से निरन्तर सन्ताप को प्राप्त हुए प्राणी के लिये उपचार एवम् आनन्ददायक है। वही एक आत्मज्योति कर्मरूपी शत्रुओं को तिरस्कृत करने वाली श्रेष्ठ सेना है। वही आत्मज्योति विपुल बोध है, वही प्रकाशमान मंत्र है, तथा वही जन्मरूपी रोग को नष्ट करने वाली श्रेष्ठ औषधि है। वही आत्मज्योति शाश्वतिक सुखरूपी महाफलों के भार से सुशोभित ऐसे अविनश्वर मोक्षरूपी सुन्दर वृक्ष का एक उत्कृष्ट बीज है। उसी एक उत्कृष्ट आत्मज्योति को तीनों लोकरूपी गृह का नायक समझना चाहिये, जिस एक के बिना यह तीन लोकरूपी गृह निवास से सहित होकर भी उससे रहित निर्जन वन के समान प्रतीत होता है। अभिप्राय यह है कि अन्य द्रव्यों के रहने पर भी लोक की शोभा उस एक आत्मज्योति से ही है। आनन्द की स्थान भूत जो यह आत्मज्योति है वह "जो शुद्ध चैतन्य है वही मैं हूं, इसमें सन्देह नहीं है" इस कल्पना से भी रहित है। मोह के उदय से उत्पन्न हुई मोक्ष प्राप्ति की भी अभिलाषा उस मोक्ष की प्राप्ति में रुकावट डालने वाली होती है, फिर भला शान्त मोक्षाभिलाषी जन दूसरी किस वस्तु की इच्छा करते हैं ? अर्थात् किसी की भी नहीं। मैं एक चैतन्यस्वरूप ही हूँ, उससे भिन्न दूसरा कोई भी स्वरूप मेरा कभी भी नहीं हो सकता। किसी पर पदार्थ के साथ मेरा सम्बन्ध भी नहीं है, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है। ज्ञानी साधु शरीरादि बाह्य पदार्थ विषयक चिन्तासमूह के संयोग से रहित अपने चित्त को निरन्तर शुद्ध आत्मा में स्थित करके रहता है। हे आत्मन ! ऐसी अवस्था के होने पर जो भी कुछ है वह रहे। यहां अन्य पदार्थों से भला क्या प्रयोजन है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। इस चैतन्य स्वरूप को पाकर तू शान्त और सुखी हो। बुद्धिमान पुरुष इस तत्त्व रूपी अमृत को पीकर अपरिमित जन्मपरम्परा (संसार) के मार्ग में परिभ्रमण करने से उत्पन्न हुई थकावट को दूर करें। वह आत्मज्योति अतिशय सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है, एक भी है और अनेक भी है, स्वसंवेद्य भी है और अवेद्य भी है, तथा अक्षर भी है और अनक्षर भी है। वह ज्योति अनुपम, अनिर्देश्य, अप्रमेय एवं अनाकुल होकर शून्य भी कही जाती है और पूर्ण भी। नित्य भी कही जाती है और अनित्य भी। **विशेषार्थ**— वह आत्मज्योति निश्चयनयकी अपेक्षा रूप, रस, गन्ध और स्पर्श से रहित होने के कारण सूक्ष्म तथा व्यवहारनय की अपेक्षा शरीराश्रित होने से स्थूल भी कही जाती है। इसी प्रकार वह शुद्ध चैतन्यरूप सामान्य स्वभाव की अपेक्षा एक तथा व्यवहारनय की

अपेक्षा भिन्न-भिन्न शरीर आदि के आश्रित रहने से अनेक भी कही जाती है। वह स्वसंवेदन प्रत्यक्ष के द्वारा जानने के योग्य होने से स्वसंवेद्य तथा इन्द्रियजनित ज्ञान की अविषय होने से अवेद्य भी कही जाती है। वह निश्चय से विनाश रहित होने से अक्षर तथा अकारादि अक्षरों से रहित होने के कारण अथवा व्यवहार की अपेक्षा विनष्ट होने से अनक्षर भी कही जाती है। वही आत्मज्योति उपमारहित होने से अनुपम, निश्चयनय से शब्द का अविषय होने से अनिर्देश्य (अवाच्य), सांव्यवहारिक प्रत्यक्षादि प्रमाणों का विषय न होने से अप्रमेय तथा आकुलता से रहित होने के कारण अनाकुल भी है। इसके अतिरिक्त चूंकि वह मूर्तिक समस्त बाह्य पदार्थों के संयोग से रहित है अतएव शून्य तथा अपने ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण होने से पूर्ण भी मानी जाती है, अथवा परकीय द्रव्यादि की अपेक्षा शून्य और स्वकीय द्रव्यादि की अपेक्षा पूर्ण भी मानी जाती है। वह द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा विनाश रहित होने से नित्य तथा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनित्य भी कही जाती है। वह उत्कृष्ट चैतन्यस्वरूप ज्योति चूंकि शरीर, आलम्बन, शब्द तथा और भी अन्यान्य विशेषणों से रहित है; अतएव वह वचन एवं मन के भी अगोचर हैं।

विवेकीजन को कर्म तथा उसके कार्यभूत रागादि भी छोड़ने योग्य हैं और उपयोगरूप एक लक्षणवाली उत्कृष्ट ज्योति ग्रहण करने के योग्य है। जो चैतन्य है वही मैं हूं। वही चैतन्य जानता है और वही चैतन्य देखता भी है। निश्चय से वही एक चैतन्य उत्कृष्ट है। मैं स्वभावतः केवल उसी के साथ एकता को प्राप्त हुआ हूँ।

जो भव्य जीव इस आत्मतत्व का बार-बार अभ्यास करते हैं, व्याख्यान करते हैं, विचार करते हैं, तथा सम्मान करते हैं; वे शीघ्र ही अविनश्वर, सम्पूर्ण, अनन्त सुख से संयुक्त एवं नौ केवललब्धियों (केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र) स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

(१३) मैं कौन हूं ?

(क) अनन्तानन्त अलोकाकाश के बहु मध्य भाग में लोकाकाश, जगत अथवा त्रिलोक में अवस्थित जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल नामक छह द्रव्यों में से मैं **जीव** नामक द्रव्य हूँ। मेरे अतिरिक्ति अन्य जीव भी विद्यमान हैं।

(ख) निश्चय नय से – मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाला हूँ और चैतन्य प्राण से पहले जी आया हूँ, जीता हूँ व भविष्य में जीऊंगा। मैं अमूर्तिक हूँ

क्योंकि जीव अथवा आत्मा का कोई रंग, कोई रस, कोई गंधादि नहीं होता है। मैं मात्र शुद्ध भावों का कर्ता हूँ और शुद्ध ज्ञान-दर्शन का ही भोक्ता हूँ। मैं अस्तिकाय हूँ क्योंकि मेरी आत्मा बहुप्रदेशी, असंख्यात प्रदेशमयी है। मेरे में चैतन्य तत्व है। रत्नत्रय मेरी आत्मा से अभिन्न है। मेरा चैतन्य रूप तेज अथवा आत्मा वचन से अगोचर है, मात्र अनुभव गम्य है, विकल्पातीत है। मैं एक चैतन्य स्वरूपी ही हूँ, उससे भिन्न दूसरा कोई भी मेरा स्वरूप कभी भी नहीं हो सकता। किसी पर पदार्थ के साथ मेरा किञ्चित भी सम्बन्ध नहीं है। वह आत्म ज्योति सूक्ष्म, एक, स्व-संवेद्य, अक्षर (विनाश रहित), अनुपम (उपमा रहित), अनिर्देश्य (शब्द का विषय न होने के कारण), अनाकुल, शून्य (चूंकि मूर्तिक समस्त बाह्य पदार्थों के संयोग से रहित है), पूर्ण (चूंकि ज्ञानादि गुणों से परिपूर्ण है), नित्य (विनाश रहित होने से) एवम् मन व वचन के अगोचर है।

(ग) **अशुद्ध निश्चय नय एवम् व्यवहार नय से** – मैं अनादि **कर्म-बन्ध के वश अशुद्ध द्रव्य** प्राणों से जीता हूँ। मन-वचन-काय के व्यापार को उत्पन्न करने वाले कर्म सहित होने से कर्ता हूँ, शुभाशुभ कर्मों के कारण उत्पन्न इन्द्रिय जनित सुख-दुःख को भोगने वाला भोक्ता हूँ। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पाँच प्रकार से संसार में रहने के कारण संसार रूप हूँ। मेरे व्यवहार नय से इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण हैं। यद्यपि अमूर्तिक हूँ, किन्तु कर्म बंध की अपेक्षा उपचार से मूर्तिक भी हूँ। अशुद्ध निश्चय नय से रागादि भाव कर्मों का कर्ता हूँ और व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता हूँ। व्यवहार नय से शरीराश्रित होने के कारण स्थूल हूँ। इन्द्रिय जनित ज्ञान की अविषय होने से अवेद्य हूँ। व्यवहार की अपेक्षा शरीरादि नष्ट होने के कारण अनक्षर हूँ। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनित्य हूँ।

(घ) चूंकि व्यवहार नय के आश्रय से ही मुख्य और उपचारभूत कथन को जानकर शुद्ध स्वरूप का आश्रय लिया जाता है, अतएव दोनों नयों का स्वरूप समझना आवश्यक है। मात्र किसी एक नय को लेकर ही भ्रमित न हो जाएं।

उक्त परिप्रेक्ष्य में मैं कर्मों से मिश्रित अनादिकाल से संसार रूपी भवसागर में भटकता आया हूँ। इन कर्मों से मेरे आत्मा के स्वाभाविक गुण प्रकट नहीं हो पा रहे हैं। नामकर्म व आयुकर्मों के कारण मैं विभिन्न गतियों (देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्च), शरीरों, पर्यायों, आकारों आदि अशुद्ध आत्मा के रूप में भटकता रहा हूँ। वर्तमान में मैं त्रस पर्याय, मनुष्य गति, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जाति, औदारिक तैजस और कार्माण शरीर सहित हूँ।

संदर्भ–

१. द्रव्य संग्रह– आचार्य मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, हिन्दी टीकाकार– **मुनि श्री १०८ सुन्दरसागर।**

२. पद्मनन्दि पंचविशंति– रचियता आचार्य श्री पद्मनन्दि जी, अनुवादक– **श्री पं०** बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

पंच भरत, पंच ऐरावत, त्रिकालवर्ती सात सौ बीस तीर्थंकरों के चरणों में मेरा त्रियोग सम्हालकर बारम्बार नमोऽस्तु।

मेरा जम्बूद्वीप में अवस्थित भरतक्षेत्र के त्रिकालवर्ती बहत्तर तीर्थंकरों (***अतीत** : १– श्री निर्वाण, २– सागर, ३– महासाधु, ४– विमलप्रभ, ५– श्रीधर, ६– सुदत्त, ७– अमलप्रभ, ८– उद्धर, ९– अंगिर, १०– सन्मति, ११– सिंधु, १२– कुसुमांजली, १३– शिवगण, १४–उत्साह, १५–ज्ञानेश्वर, १६– परमेश्वर, १७– विमलेश्वर, १८– यशोधर, १९– कृष्णमति, २०– ज्ञानमति, २१– शुध्यमति, २२– श्री मद, २३– पद्मकान्त, २४– अतिक्रान्त। **वर्तमान :** १– ऋषभदेव, आदिनाथ, वृषभनाथ ** २– अजितनाथ, ३– सम्भवनाथ, ४– अभिनन्दननाथ, ५– सुमतिनाथ, ६– पद्मप्रभ, ७– सुपार्श्वनाथ, ८– चन्द्रप्रभ, ९– पुष्पदन्तनाथ, सुविधिनाथ, १०– शीतलनाथ, ११– श्रेयांसनाथ, १२– वासुपूज्य, १३– विमलनाथ, १४– अनन्तनाथ, १५– धर्मनाथ, १६– शान्तिनाथ, १७–कुंथुनाथ, १८– अरहनाथ, १९– मल्लिनाथ, २०– मुनिसुव्रतनाथ, २१– नमिनाथ, २२– नेमिनाथ, अरिष्टनेमि, २३– पार्श्वनाथ, २४– वीर, अतिवीर, सन्मति, महावीर, वर्द्धमान। ***भविष्यत :** १– महापद्म, २– सुरदेव, ३– शुपार्श्व, ४– स्वयंप्रभ, ५– सर्वात्मभूत, ६– देवपुत्र, ७– कुलपुत्र, ८– उदक, ९– प्रोष्टिल, १०– जयकीर्ति, ११– मुनिसुव्रत, १२– अरनाथ, १३– निःपाप, १४– निःकषाय, १५– विमल, १६– निर्मल, १७– चित्रगुप्त, १८– समाधिगुप्त, १९– स्वयंभू, २०– अनिवर्तक, २१–जय, २२– विमल, २३–देवपाल, २४– अनन्तवीर्य।) के चरणों में त्रियोग सम्हालकर बारम्बार नमोऽस्तु।

---

* स्त्रोत : श्री माघनंद्याचार्य विरचित शास्त्रसार समुच्चय हिन्दी टीकाकार विद्यालंकार श्री १०८ आचार्य देशभूषण जी महराज।

** वृषभ = प्रधान । वृषभनाथ अर्थात प्रधान पुरुषों के स्वामी।

अध्याय ३

मैं कहाँ से आया हूँ

जीव का संसार में भ्रमण– आश्रव, बंध तत्त्व

विषय सूची

क्रमांक	विवरण	पृष्ठ संख्या
१.	संसार –भ्रमण	१.१०८
२.	गति	१.११८
३.	नरभव की दुर्लभता	१.१२१
४.	संसार भ्रमण और कर्म	१.१२१
५.	आश्रव तत्त्व	१.१२१
६.	जीव का कर्म के साथ सम्बन्ध	१.१२४
७.	कर्मों के भेद– प्रभेद	१.१२५
८.	बन्ध तत्त्व	१.१३४
९.	पुण्य और पाप	१.१३७
१०.	उपसंहार	१.१३८

अध्याय ३

मैं कहाँ से आया हूँ

मङ्गलाचरण

सण्णाण-रयण दीवं, लोयालोयप्पयासणं-समत्थं।
पणमामि सुमइ-समिं, सुमइकरं भव्व-संघस्स।।५।।
लोयालोय – पयासं ।
पउमप्पह–जिणवरं, णमंसित्ता ।।६।।
संसारण्णव-महणं, तिहुवण-भव्वाण पेम्म-पुह-चलणं।
संदरिसिय सयलट्ठं, सुपासणाहं णमंसामि ।।७।।
भव्व – कुमुदेक्क – चंदं,
चंदप्पह–जिणवरं हि पणामिदूण ।।८।।

अर्थ– जिनका सम्यग्ज्ञान रूपी रत्नदीपक लोकालोक के प्रकाशन में समर्थ है एवम् जो (चतुर्विध) भव्य संघ को सुमति देने वाले हैं, उन सुमतिनाथ स्वामी को मैं नमस्कार करता हूँ।।५।। लोकालोक को प्रकाशित करने वाले पद्मप्रभ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।६।। तीनों लोकों के भव्य जनों के स्नेहयुक्त चरणों वाले, समस्त पदार्थ के दर्शक और संसार-समुद्र के मंथनकर्ता सुपार्श्वनाथ स्वामी को मैं नमन करता हूँ।।७।। भव्यजनरूप कुमुदों को विकसित करने के लिए अद्वितीय चन्द्रस्वरूप चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को मैं नमन करता हूँ।।८।।

(१) संसार भ्रमण

इस संसार में जिसका कोई आदि नहीं है, अर्थात् अनादि काल से मैं सम्यक्त्व के अभाव में भिन्न–भिन्न गतियों में भटकता रहा हूँ तथा मोह रूपी तेज शराब पीता रहा हूँ, जिससे अपने स्वरूप को भूलकर व्यर्थ ही इन गतियों (चारों गतियों) में भटकता आ रहा हूँ। इस संसार भ्रमण की बहुत लम्बी कहानी है, तथापि कुछ थोड़ी सी जैसी श्री गुरु ने वर्णन की है, कहता हूँ ।

यह जीव अनादिकाल से इस संसार में है और निगोद (एकेन्द्रिय) शरीर को धारण करता आया है। यद्यपि निगोद सब जगह पाये जाते हैं, ऐसा कोई स्थान लोक में नहीं है जहां न पाये जाते हों, तथापि सातों नरकों के नीचे खास निगोदों का स्थान है। निगोद में असंख्य स्कन्ध पाये जाते हैं। हर एक स्कन्ध में असंख्य अण्डर होते हैं हर एक अण्डर में असंख्य आवास बने हैं। हर एक आवास में असंख्य पुलवि हैं और हर एक पुलवि में असंख्य शरीर निगोद जीवों के हैं। इनमें से हर एक शरीर में अनन्तानन्त निगोद जीव पाये जाते हैं। असंख्य स्कन्धों में हर एक स्कन्ध का यही हिसाब है। इस तरह अनन्तानन्त जीव हर स्कन्ध में ऐसे भी पाये जाते हैं, जिन्होंने अब तक त्रस पर्याय भी प्राप्त न की हो। ऐसे ही जीव ने अनन्तकाल बिताया है। (चित्र १.०६)

निगोद के दुःख और स्थावर पर्याय

एक स्वास में अठ–दस बार, जन्म्यो मर्‌यो दुःख भार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।४।।

(छहढ़ाला)

निगोद में जीव को दुःख ही दुःख मिलता है, वहाँ वह एक श्वास में ही अठारह बार जन्म–मरण करता है और ऐसी निगोद परम्परा में दुःखों को अनन्तकाल तक सहन करता है। इसके पश्चात दैवयोग से यह जीव अन्य स्थावर पर्यायें भी धारण करता है– जैसे पृथ्वी, जल, वायु, तेज और वनस्पतिकायिक जीव। ये भी सब एकेन्द्रिय जीव की पर्यायें हैं। (चित्र १.१०)

त्रस की दुर्लभता और उसके दुःख

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपीलि अलि आदि शरीर, धरि–धरि मर्‌यो सही बहुपीर।।५।।

जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न, जिससे मन की सभी इच्छित वस्तुएँ सुलभ हो जाती हैं, प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, उसी प्रकार स्थावर जीव का अपने से उच्च योनि (त्रस योनि) प्राप्त करना कठिन है। यदि जीव प्रयत्न कर त्रस योनि में पहुँच भी जाता है तब भी उसे शान्ति नहीं मिलती, दुःखमय संसार में वह दुःख से दूर नहीं भाग सकता। त्रस पर्याय पाने पर भी वह बार-बार द्विइन्द्रिय जैसे लट, त्रिइन्द्रिय जैसे चींटी, चौइन्द्रिय जैसे भौंरा आदि विकलत्रय शरीर धारण करता है, इन पर्यायों में भी जीव दुःख ही पाता है, क्योंकि संसार ही दुःखमय है। (चित्र १.११)

संसार भ्रमण   चित्र १.०९

चित्र १.१०
निगोद के दुःख और स्थावर पर्याय

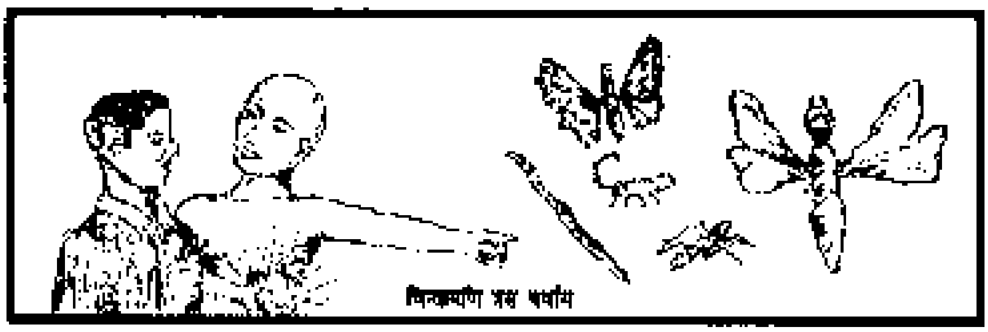

चित्र १.११
त्रस की दुर्लभता

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च के दुःख

कबहूं पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी है क्रूर, निबल-पशू हति खाये भूर।।६।।

तिर्यञ्च गति में भाग्योदय से यदि यह जीव पंचेन्द्रिय हो भी गया, तो उसे सुख कहाँ ? जब वह असैनी (असंज्ञी) था तब अज्ञान के कारण दुःख पाता रहा और जब सैनी (संज्ञी) भी हुआ, तब सिंह की तरह क्रूर प्रकृति का होने के कारण हिरण आदि निर्बल पशुओं का भक्षण करता रहा। अपनी प्रकृति को वश में न कर सकने से वह सैनी होकर भी पाप करता रहा, दुःख पाता रहा। इस प्रकार सैनी-असैनी दोनों ही अवस्थाओं में जीव सुखी नहीं रह पाता। (चित्र १.१२)

तिर्यञ्चगति में निर्बलता का दुःख

कबहूँ आप अयो बलहीन, सबलनिकरि खायो अतिदीन।
छेदन भेदन भूख प्यास, भार वहन हिम आतप त्रास।।७।।

जीव तिर्यञ्च गति में आकर अनेक प्रकार के दुःख उठाता है, किसी भी परिस्थिति में उसे सुख नहीं मिलता। जब वह सिंह की भाँति बलवान होता है, तब हिरण आदि निर्बल पशुओं का हनन करता है और जब वह स्वयं गाय-बैल की भाँति निर्बल हुआ, तो चीते आदि सबल पशुओं द्वारा मारा गया। यदि भाग्यवश इन दुःखों से छुटकारा पा जाता है, तब भी उसे राहत नहीं। कभी बैलगाड़ी में जोतने योग्य बनाने के लिये उसका छेदन-भेदन होता है, भूख प्यास की तृप्ति के लिये उसे मालिक पर निर्भर रहना पड़ता है, कभी उस पर शक्ति से भी अधिक बोझा लादा जाता है। उसे गर्मी, सर्दी के दिनों में तीव्र दुःख उठाने पड़ते हैं। इस प्रकार से जीव हमेशा दुःखी ही रहता है। (चित्र १.१३)

तिर्यञ्च के अनेक दुःख

बध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश-भावतैं मर्यो, घोर श्वभ्र-सागर में पर्यो।।८।।

पंचेन्द्रिय तिर्यन्च के दुःख　　　　चित्र ११२

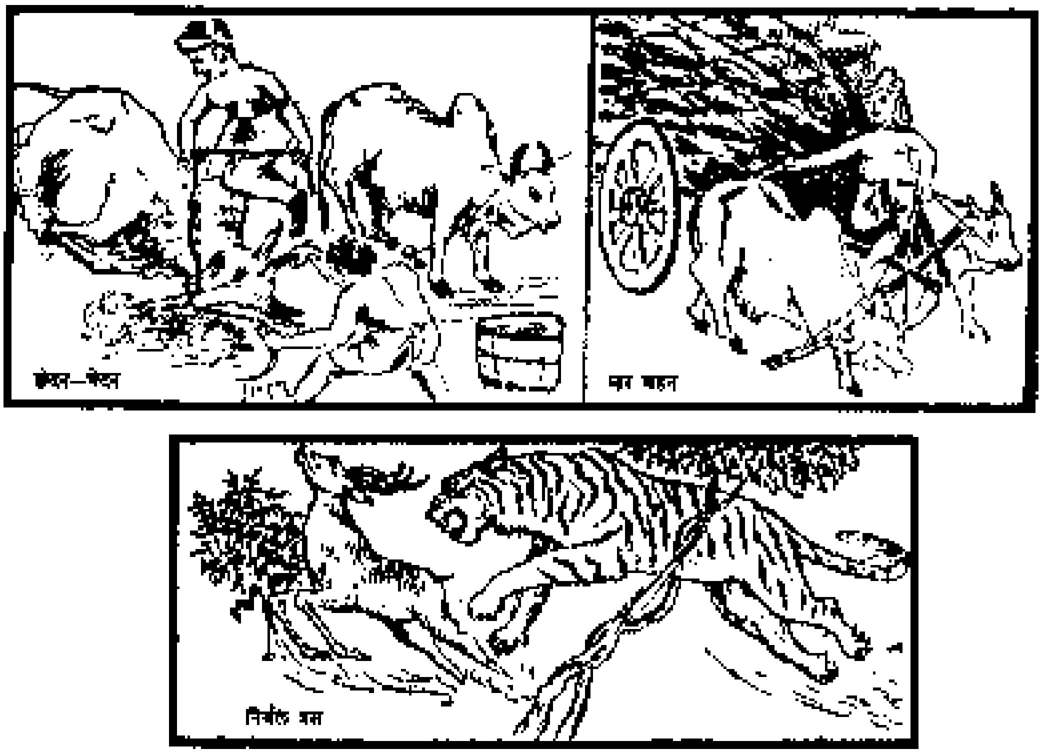

तिर्यन्च गति में निर्बलता का दुःख　　　　चित्र ११३

तिर्यन्च के अनेक दुःख　　　　चित्र ११४

तिर्यञ्च गति में अनेकानेक कष्ट हैं, सिंह जैसा सबल है तो हत्या का पाप उसके सिर पर है। बैल जैसा निर्बल है तो कष्ट ही कष्ट हैं, अतः कहीं वध है तो कहीं बन्धन। प्रत्येक परिस्थिति में कष्ट ही कष्ट है। कष्ट इतने हैं कि इनका वर्णन करते हुए जिह्वा थक जाती है। इन यातनाओं से त्रस जीव जब खोटे परिणामों सहित मरता है तो नरक में स्थान पाता है। (चित्र १.१४)

नरक की भूमि और नदी

तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बीछू सहस डसै नहिं तिसो।
तहाँ राध-शोणित-वाहिनी, कृमि-कुल-कलित देह-दाहिनी।।९।।

नरक के दुःख कल्पना से परे हैं। वहाँ चैन का नाम ही नहीं है। जमीन के सहज स्वाभाविक स्पर्श से ही अनेक बिच्छुओं के काटने की पीड़ा होने लगती है। पर जीव को रहने के लिये आधार तो चाहिए ही। थल को त्याग यदि वह जल में शान्ति पाना चाहे तो वहाँ जल के स्थान पर पीव और रक्त की नदी है, जो देखने में ही घृणास्पद नहीं है, वरन् शरीर को जलाने वाली भी है। जीव आधार के बिना रह नहीं सकता, पर वहाँ जिस आधार को भी वह ग्रहण करे, वही असह्य पीड़ादायक है। जब जल-थल का यह हाल है, तब वहाँ के कष्टों का तो पूछना ही क्या ? (चित्र १.१५)

नरक के सेमर वृक्ष, शीत और उष्ण

सेमर-तरु-युत दल-असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

नरक में प्रकृति असह्य पीड़ादायक है। असहनीय शीत है और गर्मी तो इतनी होती है कि लोहा तक गल जाता है, इस गर्मी की भीषणता से रक्षा पाने के लिये यदि नारकी पेड़ की छाया में बैठता है, तो सेमर वृक्ष के पत्ते उसकी काया को छिन्न-भिन्न कर देते हैं। शीतलता की आशा में उसे कृपाण की धार मिलती है, उसके कष्टों का अनुमान ही नहीं किया जा सकता। (चित्र १.१६)

नरक में आपसी कलह और तृषा का दुःख

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु-नीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बून्द लहाय।।११।।

नरक की भूमि और नदी चित्र १.१५

नरक के सेमर वृक्ष, शीत और उष्ण चित्र १.१६

नरक में आपसी कलह चित्र १.१७

चित्र १.१८

नरक में दुःख के समस्त रूप दृष्टिगत होते हैं। कलह और अभाव की तो वहाँ चरम सीमा है। नारकी वहाँ आपस में खूब झगड़ते हैं, एक दूसरे के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं, असुर आदि देव उन्हें लड़ने के लिए खूब उकसाते हैं, प्यास तो इतनी लगती है कि समुद्र को ही पूरा पीने को जी चाहता है, पर एक बूंद भी जल पीने के लिये नहीं मिलता। अतृप्ति–चिर अतृप्ति ही नरक की देन है। (चित्र १.१७)

नरक में भूख, वहां की आयु और मनुष्यगति–प्राप्ति

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख, कणा न लहाय
ये दुःख बहु सागर लौं सहै, करम जोग तैं नर गति लहै।।१२।।

नरक में प्यासे को जब पानी नहीं मिलता, तो भूखे को भोजन कैसे मिलेगा ? भूख तो इतनी तीव्र होती है कि तीनों लोकों के अन्न से भी शायद वह न मिट पाये, पर खाने को एक दाना भी नहीं मिलता। नरक के कष्ट अपार हैं और वहां जीव की आयु भी बहुत लम्बी होती है; अतः अनेक काल तक जीव इस दुख सागर की भँवरों में तड़पता रहता है, फिर कहीं शुभ–कर्मों के उदय का योग मिले तो उसे मनुष्य–गति प्राप्त होती है। (चित्र १.१८)

मनुष्यगति में गर्भ कष्ट और प्रसव दुःख

जननी–उदर बस्यो नव मास, अङ्ग-सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवै ओर।।१३।।

मनुष्यगति में भी जीव को शांति नहीं मिलती। प्रारम्भ से ही वह कष्टों में आता है, कष्टों में पलता है और कष्टों में ही चला जाता हैं। इस गति का प्रारम्भ माँ के उदर से होता है, जहाँ जीव को नौ महीने संकुचित अवस्था में पड़ा रहना पड़ता है। पृथ्वी पर आते हुए उसे वर्णनातीत कष्टों का सामना करना पड़ता है, इस प्रकार मनुष्यगति का प्रारम्भ ही कष्टों से होता है। (चित्र १.१९)

बाल्यावस्था, जवानी व बुढ़ापे के दुःख

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरूण समय तरूणी–रत रह्यौ।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनों, कैसे रूप लखै आपनो।।१४।।

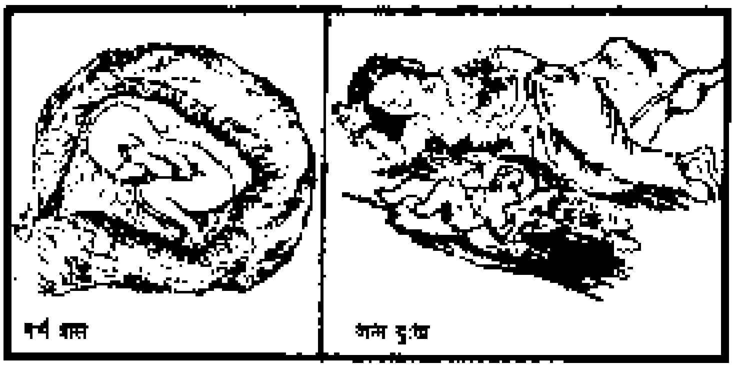

मनुष गति में गर्भ, कष्ट चित्र १.१९

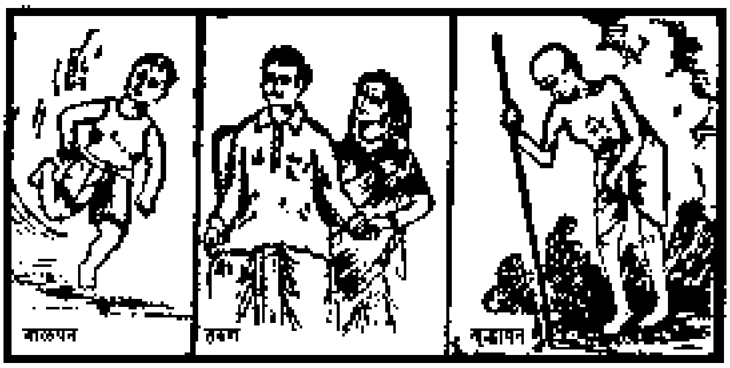

बाल्यावस्था, जवानी व बुढ़ापे का दुःख चित्र १.२०

देवगति में भवनत्रिक दुःख चित्र १.२१

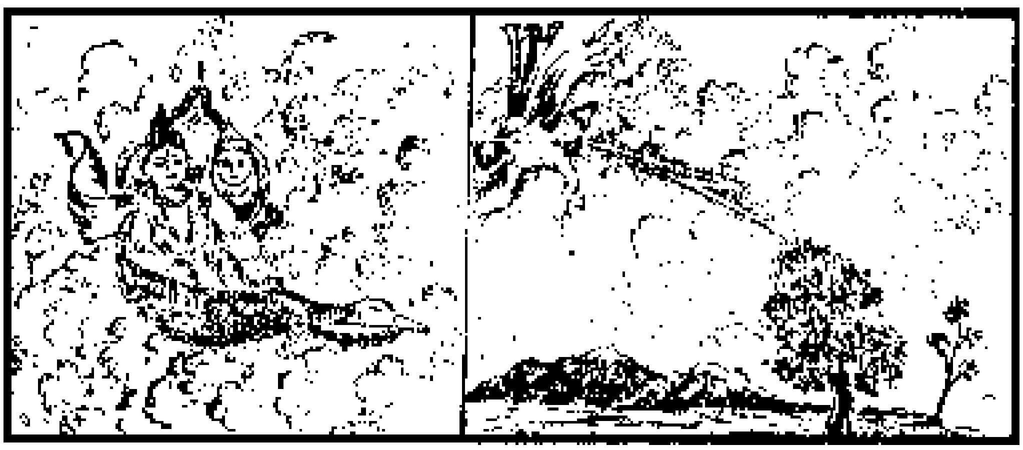

विमानवासी देवों के दुःख चित्र १.२२

इसके पश्चात का सम्पूर्ण जीवन अज्ञान और मोह का है। बाल्यावस्था तो खेल-कूद में यों ही व्यतीत हो जाती है, उस समय अपने भले-बुरे का कुछ ज्ञान ही नहीं रहता। युवावस्था में भले-बुरे को समझने के ज्ञान-चक्षु तो खुलते हैं, लेकिन जीवन विषय-रूपी मोह में व्यतीत हो जाता है; अतः ज्ञान भी मोह के कारण अज्ञान में डूबा रह जाता है। वृद्धावस्था अपनी असमर्थता के लिये रोते-रोते ही व्यतीत हो जाती है, अतः ज्ञान होते हुए भी व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को समझ अपना उद्धार नहीं कर पाता। (चित्र १.२०)

देवगति में भवनत्रिक दुःख

कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुर-तन धरै।
विषय -चाह-दावानल दह्यौ, मरत विलाप करत दुःख सह्यौ।।१५।।

मनुष्य अपने परिवर्तन चक्र में कहीं भी सुख का अनुभव नहीं करता, दुःख का कोई न कोई कारण सदा विराजमान रहता है। कभी-कभी मनुष्य समता भाव से कर्मों के फल को भोग लेता है, तो इससे भी कर्मों की निर्जरा होती है और इस मन्द कषाय के परिणाम स्वरूप वह भवनवासी, व्यन्तर अथवा ज्योतिषी देव का शरीर धारण करता है। वहां उसे अनेक सुविधायें प्राप्त हैं पर चिर-अतृप्ति तो जीव में अनादि से है, वह वहां भी विषय- इच्छाओं की चाह रूपी अग्नि में जलता रहता है और जब मरणकाल आता है, तब विषय- वासनाओं के वियोग में दुःखी होता है; अतः वहाँ भी विलाप करते-करते प्राण त्याग देता है। इस प्रकार जीव को कहीं भी सुख नहीं मिलता। (चित्र १.२१)

विमानवासी देवों के दुःख

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहँ ते चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।।१६।।

देवों की पर्याय में केवल सुख ही सुख नहीं है; दुःख भी है। यदि वहाँ जाकर जीव विमानवासी देव भी बन जाता है, तब भी 'स्व' और 'पर' की ठीक-ठीक प्रतीति न होने के कारण दुःख ही पाता है। मिथ्यादर्शन की तीव्रता से देवगति से निकलकर वह फिर स्थावर होता है; पश्चात कभी विकलत्रय, कभी तिर्यञ्च, कभी नारकी, कभी मनुष्य और कभी देवगति में भ्रमण करता रहता है। वह सदैव संसार के परिवर्तन के चक्र में

घूमता रहता है, उसे कहीं पूर्ण सुख नहीं मिलता, वह सदा दुःखी रहता है। (चित्र १.२२)

(२) गति

प्रसंगवश, इन चारो गतियों के स्वरूप को कहते हैं।

(क) नारक गति

जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव में स्वयं तथा परस्पर में प्रीति को प्राप्त नहीं होते, उनको नारत (नारकी) कहते हैं।

भावार्थ– शरीर और इन्द्रियों के विषयों में, उत्पत्ति शयन विहार उठने बैठने आदि के स्थान में, भोजन आदि के समय में, अथवा और भी अनेक अवस्थाओं में जो स्वयं अथवा परस्पर में प्रीति (सुख) को प्राप्त न हों, उनको नारत कहते हैं। अथवा जो नरकगति नाम कर्म के उदय से हों उनको नारक कहते हैं। क्योंकि नीचे सातों ही भूमियों में रहने वाले नारकी निरन्तर ही स्वाभाविक, शारीरिक, मानसिक, आगंतुक तथा क्षेत्रजन्य इन पाँच प्रकार के दुखों से दुखी रहते हैं।

(ख) तिर्यग्गति

जो मन वचन काय की कुटिलता को प्राप्त हों और जो निकृष्ट अज्ञानी हों तथा जिनमें अत्यन्त पाप का बाहुल्य पाया जाय उनको तिर्यञ्च कहते हैं।

भावार्थ– जिनमें कुटिलता की प्रधानता हो तथा जिनकी आहारादि संज्ञा प्रकट हो, और श्रुत का अभ्यास तथा शुभोपयोगादि के न कर सकने से जिनमें अत्यन्त अज्ञानता पाई जाय तथा मनुष्य की तरह महाव्रतादिक को धारण न कर सकने और सम्यग्दर्शन की विशुद्धि आदि के न हो सकने से जिनमें अत्यन्त पाप का बाहुल्य पाया जाय, उनको तिर्यंच कहते हैं।

तात्पर्य यह कि निरुक्ति के अनुसार तिर्यग् गति का अर्थ माया की प्रधानता को बताता है। यथा-तिरः-तिर्यग्भावं-कुटिपरिणामं अञ्चन्ति इति तिर्यंचः। माया प्रधान परिणामों से संचित कर्म के उदय से यह गति-पर्याय प्राप्त होती है। उनकी भाषा अव्यक्त होने से वे अपने मनोभावों को व्यक्त करने में असमर्थ रहा करते हैं। मनुष्यों के समान इनमें विवेक– हेयोपादेय का भेदज्ञान, श्रुताभ्यास, शुभोपयोग आदि भी नहीं

पाया जाता। प्रभाव, सुख, लेश्या आदि की अपेक्षा से भी वे मनुष्यों से निकृष्ट हैं। महाव्रतादि गुणों को वे धारण नहीं कर सकते। इस गति में जिनका प्रमाण सबसे अधिक है, उन एकेन्द्रिय जीवों में तथा असंज्ञि पंचेन्द्रिय पर्यन्त त्रस जीवों में भी जिससे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है ऐसी विशुद्धि नहीं पायी जाती। अतएव यह पर्याय अत्यन्त पाप बहुल है। सारांश यह है कि जिसके होने पर ये भाव हुआ करते या पाये जाते हैं, जीव की उस द्रव्य पर्याय को ही तिर्यग्गति कहते हैं।

(ग) मनुष्य गति

जो नित्य ही हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व, आप्त-अनाप्त, धर्म-अधर्म आदि का विचार करें, और जो मन के द्वारा गुण दोषादि का विचार स्मरण आदि कर सकें, जो पूर्वोक्त मन के विषय मे उत्कृष्ट हों, शिल्प कला आदि में भी कुशल हों तथा युग की आदि में जो मनुओं से उत्पन्न हों उनको मनुष्य कहते हैं।

भावार्थ– मन का विषय तीव्र होने से गुणदोषादि विचार, स्मरण आदि जिनमें उत्कृष्ट रूप से पाया जाय, अवधानादि करने में जिनका उपयोग दृढ़ हो, तथा कर्मभूमि की आदि में आदीश्वर भगवान् तथा कुलकरों ने जिनको व्यवहार का उपदेश दिया इसलिए जो उन्हीं की–मनुओं की सन्तान कहे या माने जाते हैं, उनको मनुष्य कहते हैं। क्योंकि अवबोधनार्थक मनु धातु से मनु शब्द बनता है और जो मनु की सन्तान हैं उनको कहते हैं मनुष्य। अतएव इस शब्द का यहां पर जो अर्थ किया गया है, वह निरुक्ति के अनुसार है। लक्षण की अपेक्षा से अल्पारम्भ परिग्रह के परिणामों द्वारा संचित मनुष्य आयु और मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से जो ढ़ाई द्वीप के क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले हैं उनको कहते हैं मनुष्य। ये ज्ञान विज्ञान मन पवित्र संस्कार आदि की अपेक्षा अन्य जीवों से उत्कृष्ट हुआ करते हैं।

यद्यपि लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों में यह विशेष स्वरूप-निरूक्त्यर्थ घटित नहीं होता, फिर भी उनको मनुष्य गति नाम कर्म और मनुष्य आयु के उदय रूप लक्षण मात्र की अपेक्षा से मनुष्य कहते हैं, ऐसा समझना चाहिए।

(घ) देव गति

जो देव गति में होने वाले या पाये जाने वाले परिणामों-परिणमनों से सदा सुखी रहते हैं और जो अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व,

वशित्व–इन आठ ऋद्धियों के द्वारा सदा अप्रतिहतरूप से विहार करते हैं और जिनका रूप, लावण्य, यौवन आदि सदा प्रकाशमान रहता है, उनको परमागम में देव कहा है।

भावार्थ– देव शब्द दिव् धातु से बनता है जिसके कि क्रीड़ा विजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद आदि अनेक अर्थ होते हैं। अतएव निरुक्ति के अनुसार जो मनुष्यों में न पाये जा सकने वाले प्रभाव से युक्त हैं तथा कुलाचलों पर वनों में या महासमुद्रों में सपरिवार विहार-क्रीड़ा किया करते हैं। बलवानों को भी जीतने का भाव रखते हैं। पञ्चपरमेष्ठियों या अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयों आदि की स्तुति वन्दना किया करते हैं। सदा पंचेन्द्रियों के सम्बन्धी विषयों के भोगों से मुदित रहा करते हैं, जो विशिष्ट दीप्ति के धारण करने वाले हैं, जिनका शरीर धातुमल दोष रहित एवं अविच्छिन्न रूप लावण्य से युक्त सदा यौवन अवस्था में रहा करता है और जो अणिमा आदि आठ प्रकार की ऋद्धियों को धारण करने वाले हैं उनको देव कहते हैं। यह देव पर्याय के स्वरूप मात्र का निदर्शन है। लक्षण के अनुसार जो अपने कारणों से संचित देवायु और देवगति नाम कर्म के उदय से प्राप्त पर्याय को धारण करने वाले संसारी जीव हैं वे सब देव हैं।

सिद्धों का स्वरूप

इस प्रकार संसार सम्बन्धी चारों गतियों का स्वरूप बताकर संसार से विलक्षण सिद्धों का स्वरूप बताते हैं–

जाइजरामरणभया, संजोगविजोगदुक्खसण्णाओ
रोगादिगा य जिस्से, ण संति सा होदि सिद्ध गई।।१५२।।

(गोम्मटसार– जीवकाण्डम्)

अर्थ– एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक पाँच प्रकार की जाति, बुढ़ापा, मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, इनसे होने वाले दुःख आहारादि विषयक संज्ञाएँ– वांछाएँ और रोग आदि की व्याधि इत्यादि विरुद्ध विषय जिस गति में नहीं पाये जाते उसको सिद्ध गति कहते हैं।

भावार्थ– जाति नाम कर्म के उदय से प्राप्त होने वाली एकेन्द्रियादिक जीव की पांच अवस्थाएँ, आयु कर्म के विपाक आदि कारणों से शरीर के शिथिल होने पर जरा, नवीन आयु के बन्धपूर्वक भुज्यमान आयु के अभाव से होने वाले प्राणों के त्यागरूप

मरण, अनर्थ की आशंका करके अपकारक वस्तु से दूर रहने या भागने की इच्छारूप भय, क्लेश के कारणभूत अनिष्ट पदार्थ की प्राप्तिरूप संयोग, सुख के कारणभूत अभीष्ट पदार्थ के दूर होजानेरूप वियोग, इनसे होने वाले अन्य भी अनेक प्रकार के दुःख तथा आहार आदि विषयक तीन प्रकार की संज्ञाएँ, शरीर की अस्वस्थतारूप अनेक प्रकार की व्याधि तथा आदि शब्द से प्राण भंग तथा बन्धन आदि दुःख जिस गति में अपने-अपने कारणभूत कर्मों का अभाव हो जाने से नहीं पाये जाते, उसको सिद्धगति कहते हैं।

(३) नरभव की दुलर्भता

"मैं कहाँ हूँ" नामक प्रकरण से विदित होगा कि निगोद जीव अनन्तानन्त हैं (अक्षय अनन्त), उनसे कम किन्तु लगभग अनन्त अन्य एकेन्द्रिय जीव हैं। अनादि काल से निगोद में पड़ा हुआ यह जीव किञ्चित कषाय की मन्दता से अथवा किसी अरिहन्त प्रभु के केवली समुद्घात का संयोग पाकर, निगोद से बाहर निकलकर पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीवों में हुआ। इससे त्रस गति अति दुर्लभ है, अर्थात द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य और भी दुर्लभ है। किन्तु इसमें भी विषय वासनाओं में लिप्त रहने के कारण चतुर्गतिरूपी संसार में दुःख उठाते हुए चिरकाल तक भ्रमण करता रहा। कभी संयम धारण कर देवगति प्राप्त की, तो पुनः विषयों में आसक्त रहने के कारण एकेन्द्रिय जीवों में अथवा इतर निगोद में चला गया।

(४) संसार भ्रमण और कर्म

"मैं कौन हूँ" प्रकरण में 'जीव और तत्त्व' वर्णन में सात तत्त्वों (जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष) और नव पदार्थ (इन सात तत्त्वों में पुण्य, पाप जोड़कर) का वर्णन आया है। इनका विपरीत श्रद्धान अथवा मिथ्यादर्शन कर्मों के आने का (आश्रव) व आत्मा से बंधने का (बंध) का कारण है। जीव के अनादि काल से संसार भ्रमण का मूल कारण यही मिथ्यादर्शन अथवा मिथ्यात्व है।

(५) आश्रव तत्त्व

आत्मा के जिस परिणाम से कर्म आते हैं, वह जिनेन्द्र देव का कहा हुआ भावास्रव जानना चाहिए। पुद्गल कर्मों का आना दूसरा द्रव्यास्रव होता है।

भावार्थ– आत्मा के जिन राग-द्वेषादि परिणामों से कर्म आते हैं, वह परिणाम भावास्रव कहलाता है। चैतन्य आत्मा का मन-वचन-काय से जुड़ना सो कर्म आने का कारण है। जब आत्मा के भाव मन-वचन-कायरूप होते हैं या उनसे जुड़ते हैं तभी आत्मा के प्रदेशों में हलन-चलन होता है अथवा स्पन्दन होता है, वही कर्मों के आने का कारण है। उन्हीं चैतन्य के भावों से जो कर्म बन्धते हैं वही भावास्रव है। इसके विपरीत पुद्गल मन-वचन-काय से द्रव्यास्त्रव होता है अर्थात् ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का आना द्रव्यास्रव है। जैसे दिमाग का कैमरा तस्वीरों की फाइलों का संग्रह करता है उसी प्रकार जीव के भावास्रव के द्वारा ही द्रव्यास्रव का संग्रह (बंध) होता है। आस्रव का कथन करते हुए आचार्य उमास्वामी कहते हैं कि 'स आस्रवः' वह योग ही आस्रव है। आस्रव को द्वार की उपमा दी गई है, जिस प्रकार मकान के प्रवेश द्वार से लोगों का आना होता है उसी प्रकार योग द्वारा ही कर्म और नो-कर्म वर्गणाओं का ग्रहण होकर उनका आत्मा से संबंध होता है। इसलिये योग को आस्रव का कारण कहा है।

उपयोग – जीव का शुद्ध परिणमन ज्ञाता-दृष्टा बनकर रहना मात्र है। उसका विकृत-परिणाम राग-द्वेषादि रूप है। ये दोनों प्रकार के परिणमन ही उपयोग या परिणमन कहलाते हैं।

(क) भावास्रव के भेद

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और योग ये भावास्रव के पांच भेद हैं।

(१) मिथ्यात्व–

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से अतत्त्व में तत्त्व बुद्धि, कुदेव में सुदेव बुद्धि, कुधर्म में सुधर्म बुद्धि इत्यादि रूप से अन्यथा अंभिनिवेश अर्थात् आस्था रूप जीव के परिणामों (भावों) को मिथ्यात्व कहते हैं। इसके पांच भेद होते हैं–

(क) **एकान्त मिथ्यात्व–** अनेक धर्म रूप वस्तु को एक धर्म रूप मानना एकान्त मिथ्यात्व है। जैसे वस्तु नित्य ही है अथवा अनित्य ही है।

(ख) **विपरीत मिथ्यात्व–** आत्मा के व अन्य वस्तु के स्वरूप को बिल्कुल विपरीत (अंन्यथा) ही मानना विपरीत मिथ्यात्व है। जैसे स्त्री को मुक्ति की अधिकारिणी मानना, हिंसा में धर्म मानना, केवली भगवान के द्वारा आहार आदि का लेना।

(ग) **संशय मिथ्यात्व–** तत्त्व श्रद्धान में संशय रहना। जैसे निर्ग्रन्थ अवस्था धारण करने से मोक्ष होता है या नहीं, अहिंसा धर्म का लक्षण है या नहीं, इस दुविधा को संशय मिथ्यात्व कहते हैं।

(घ) **वैनयिक मिथ्यात्व–** सब देवताओं को, सभी धर्मों को तथा सभी साधुओं को एक समान मानकर उनकी एक समान विनय करना वैनयिक मिथ्यात्व है।

खेद का विषय है कि अनेक श्रावकगण जो नित्य ही देव पूजनादि, स्वाध्यादि क्रियायें करते हैं, वे भी कुदेवों की मूर्ति, फोटो आदि अपने घरों, दुकानादि में रखते हैं और उनकी वीतराग प्रभु के समान ही विनय करते हैं एवम् यदाकदा पूजा भी करते हैं। वे पैतृक संस्कार, लोक लज्जा, अज्ञान अथवा/ और भयादि कारणों के वश ऐसा करते हैं। यह मिथ्यात्व होने के कारण उनके अनन्त संसार परिभ्रमण का कारण बन जाता है।

(ङ.) **अज्ञान मिथ्यात्व–** जिसमें हित और अहित का विचार (विवेक) न हो वह अज्ञान मिथ्यात्व है। जैसे पशु–बलि में धर्म मानना आदि।

(२) अविरति– हिंसादिक पापों में तथा पांच इन्द्रियों और मन के विषयों में प्रवृत्ति करने को अविरति कहते हैं। अविरति को असंयम भी कहते हैं। अविरित के बारह भेद है– षट्काय के जीवों की रक्षा नहीं करना, पांच इन्द्रियों और मन को वश में नहीं करना।

(३) कषाय– जो आत्मा को कषे (दुःख देवे), उसे कषाय कहते हैं। इसके मूल में चार भेद हैं– क्रोध, मान, माया और लोभ। लेकिन प्रभेद करने पर अनन्तानुबंधी क्रोध, अप्रत्याख्यानवरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, संज्वलन क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अप्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्यानावरण मान, संज्वलन मान, अनन्तानुबंधी माया, अप्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण माया, संज्वलन माया, अनन्तानुबंधी लोभ, अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण लोभ और संज्वलन लोभ। ये सोलह तथा नौ नोकषाय– हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरूषवेद और नपुंसक वेद। इस प्रकार ये कषाय के पच्चीस भेद होते हैं।

(४) **प्रमाद–** अच्छे कार्यों में उत्साह के न होने को प्रमाद कहते हैं, इसके पन्द्रह भेद हैं। चार विकथा– स्त्रीकथा, राष्ट्रकथा, भोजन कथा, चोर कथा। चार कषाय– क्रोध, मान, माया और लोभ। पांच इन्द्रिय विषय, निद्रा और स्नेह।

(५) **योग–** मन, वचन और काय की क्रिया से आत्मा के प्रदेशों में जो हलन–चलन होता है उसे योग कहते हैं। योग के मूल में तीन भेद हैं लेकिन प्रभेद करने पर पन्द्रह भेद हो जाते हैं– सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, अनुभवमनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग, अनुभववचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाय योग, वैक्रियककाययोग, वैक्रियकमिश्रकाययोग, आहारककाययोग, आहारकमिश्रकाययोग, कार्मणकाययोग।

इस प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, योग, कषाय और प्रमाद अवस्था दुःख देने वाली हैं। ये सब चेतन के विभाव परिणाम हैं।

(ख) द्रव्यास्रव के भेद–

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के योग्य जो पुद्गल कर्म आता है वह द्रव्यास्रव अनेक भेद वाला जानना चाहिए।

भावार्थ– भावास्रव के फलस्वरूप ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप होने–योग्य जो कार्मणवर्गणा के पुद्गल स्कन्ध आत्मा के साथ एक क्षेत्रावगाही होने के लिए आते हैं, उन आते हुए कर्मपुद्गल परमाणुओं को द्रव्यास्रव कहते हैं। भावास्रवों के अनुसार ही जो उस समय समीपवर्ती पुद्गल परमाणु आते हैं उसे ही द्रव्यास्रव कहते हैं। द्रव्यास्रव के मूल में आठ भेद होते हैं– ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। लेकिन इन आठों कर्मों के प्रभेद करने पर कुल एक सौ अड़तालीस उत्तर भेद होते हैं– ज्ञानावरण के पांच, दर्शनावरण के नौ, वेदनीय के दो, मोहनीय के अट्ठाईस, आयु के चार, नाम कर्म के तिरानवे, गोत्र कर्म के दो तथा अन्तरायकर्म के पांच भेद होते हैं।

(६) जीव का कर्म के साथ सम्बन्ध

यह जीव औदारिक आदि शरीर नाम कर्म के उदय से योगसहित होकर ज्ञानवरणादि आठ कर्मरूप होने वाली कर्म वर्गणाओं को तथा औदारिक आदि चार शरीर (औदारिक, वैक्रेयिक, आहारक, तैजस) रूप होने वाली नोकर्म वर्गणाओं को हर

समय चारों तरफ से ग्रहण (अपने साथ सम्बद्ध) करता है, जैसे कि आग से तपा हुआ लोहे का गोला पानी को सब ओर से अपनी तरफ खींचता हैं।

भावार्थ– जब यह शरीर सहित आत्मा मन, वचन, काय की प्रवृत्ति करता है तभी इसके कर्मों का बंध होता है, किन्तु मन वचन काय की क्रिया रोकने से कर्म बंध नहीं होता।

(७) कर्मों के भेद –प्रभेद

सामान्यपने से कर्म एक ही है, उसमें भेद नहीं है। लेकिन द्रव्य तथा भाव की अपेक्षा उसके दो प्रकार है। उसमें ज्ञानावरणादिरूप पुद्गल द्रव्य का पिंड द्रव्य कर्म है, और उस द्रव्य पिंड में फल देने की जो शक्ति है वह भाव कर्म है। अथवा कार्य में कारण का व्यवहार होने से उससे उत्पन्न हुए जो अज्ञानादि व क्रोधादि रूप परिणाम, वे भी भाव कर्म ही हैं। वह कर्म सामान्य से आठ प्रकार का है– ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय। इनमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय, ये चार घातिया कर्म हैं क्योंकि जीव के अनुजीवी गुणों को वे घातते (नष्ट करते) करते हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म अघातिया कर्म हैं क्योंकि इनके रहने से जीव के अनुजीवी गुणों का घात नहीं होता।

उक्त आठ कर्मों के भेद –प्रभेद निम्न प्रकार से हैं:

(क) ज्ञानावरण (५) – जो ज्ञान का आवरण करता है।

(१) मतिज्ञानावरण – मतिज्ञान का आवरण करने वाला।
(२) श्रुतज्ञानावरण – श्रुतज्ञान का आवरण करने वाला।
(३) अवधिज्ञानावरण – अवधिज्ञान का आवरण करने वाला।
(४) मनः पर्यायज्ञानावरण – मनः पर्ययज्ञान का आवरण करने वाला।
(५) केवलज्ञानावरण – केवलज्ञान का आवरण करने वाला।

(ख) दर्शनावरण (६) – जो दर्शन का आवरण करता है।

(१) चक्षुर्दर्शनावरण – जो चक्षु से दर्शन नहीं होने देवे।
(२) अचक्षुर्दर्शनावरण – जो अन्य चार इन्द्रियों से दर्शन (सामान्यवलोकन) नहीं होने देवे।
(३) अवधिदर्शनावरण – अवधि द्वारा दर्शन नहीं होने देवे।

(४) केवलदर्शनावरण — केवलदर्शन का आवरण करे।

(५) निद्रा — जिसके उदय से मद, खेद आदिक दूर करने के लिए केवल सोना हो।

(६) प्रचला — जिसके उदय से शरीर की क्रिया आत्माको चलावे और जिस निद्रा में कुछ काम करे उसकी याद भी रहे, अर्थात कुत्ते की तरह अल्प निद्रा हो।

(७) निद्रा निद्रा — निद्रा की ऊँची-पुनः पुनः प्रवृत्ति हो अर्थात आंख की पलक भी न उघाड़ सके।

(८) प्रचला प्रचला — जिसके उदय से क्रिया आत्मा को बार-बार चलाये।

(९) स्त्यानगृद्धि — जिसके उदय से यह जीव नींद में ही उठकर बहुत पराक्रम का कार्य तो करे, परन्तु उसका भान नहीं रहे।

(ग) वेदनीय कर्म (२) – इन्द्रियों का अपने-अपने रूपादि विषय का अनुभव करना वेदनीय कर्म का कार्य है।

(१) साता वेदनीय — सुखरूप अनुभव करना।

(२) असाता वेदनीय — दुःखरूप अनुभव करना।

(ग) मोहनीय (२८)

जो मोहै अर्थात असावधान (अचेत करे)—इससे जीव को अपने स्वरूप का विचार नहीं हो पाता। ये दो प्रकार का है-दर्शन मोहनीय (३ भेद) और चारित्र मोहनीय (२५ भेद)

(१) मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय– खोटा श्रद्धान करे, अर्थात सर्वज्ञ-कथित वस्तु के यथार्थ स्वरूप में रुचि ही न हो और न उस विषय में उद्यम करे, तथा न ही हित अहित का विचार करे।

(२) सम्यक्त्वप्रकृति दर्शनमोहनीय– यद्यपि सम्यकत्व गुण का मूल से घात तो न हो किन्तु परिणामों में मलिनता तथा चलायमानता हो जाये। जैसे यह मन्दिर मेरा है, शान्तिनाथ शांति को करने वाले हैं आदि। इस प्रकृति वाला सम्यग्दृष्टि ही

कहलाता है।

(३)सम्यग्मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय– जिस कर्म के उदय से वस्तु का यथार्थ श्रद्धान और अयथार्थ श्रद्धान दोनों ही मिले हुए हों। इन परिणामों को सम्यक्त्व या मिथ्यात्व दोनों में से किसी में भी नहीं कह सकते।

आगे चारित्र मोहनीय के दो भेद– कषाय वेदनीय (१६ भेद) तथा नोकषाय वेदनीय (६ भेद) हैं। जो घात करें अर्थात् गुण को प्रगट न होने दें उनको कषाय कहते हैं। उसके क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार भेद हैं। इनकी चार–चार अवस्थायें हैं। अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानवरण, प्रत्याख्यावावरण और संज्वलन। इन अवस्थाओं का स्वरूप क्रम से कहते हैं। अनन्त नाम संसार का है; परन्तु जो उसका कारण हो वह भी अनन्त कहा गया है, क्योंकि वह अनन्त संसार का कारण है। जो इस अनंत मिथ्यात्व के अनु साथ-साथ बंधे, उस कषाय को अनन्तानुबन्धी कहते हैं जो "अ" अर्थात ईषत– थोड़े से भी प्रत्याख्यान को न होने दे, अर्थात जिसके उदय से जीव श्रावक के व्रत भी धारण न कर सके उसको अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं। जिसके उदय से प्रत्याख्यान अथवा सर्वथा त्याग का आवरण हो, महाव्रत नहीं हो सके, उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। जिसके उदय से संयम "सं" एक रूप होकर "ज्वलित" प्रकाशित करे, अर्थात जिसके उदय से कषाय अंश से मिला हुआ संयम रहे, कषाय रहित निर्मल यथाख्यात संयम न हो सके उसको संज्वलन कषाय कहते हैं। इन प्रभेदों को चार प्रकार की कषाय से गुणा करने से कषाय वेदनीय के १६ भेद हो जाते है।

जो नो अर्थात् ईषत– थोड़ा कषाय हो–प्रबल नहीं हो, उसे नोकषाय कहते हैं, अथवा उसका जो अनुभव करावे वह नोकषाय कहा जाता है। यह नौ प्रकार का है। हास्य प्रकट होने से हास्य कर्म, देश धन पुत्रादिकों में प्रीति होने से रति कर्म, देश आदि में अप्रीति होने से अरति कर्म, इष्ट के वियोग होने पर क्लेश होने से शोक कर्म, उद्वेग (चित्त में घबड़ाहट) होने से भय कर्म, ग्लानि–अपने दोष को ढकना और दूसरे के दोष को प्रकट करना जुगुप्सा कर्म है, जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी भाव (मायाचार की अधिकता, पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा आदि) हों उसको स्त्री वेद कर्म, स्त्री में रमण करने की इच्छा आदि परिणाम होने से पुरुष वेद कर्म, और

स्त्री तथा पुरुष दोनों में रमण करने की इच्छा आदि मिश्रित भाव होने से नपुंसक वेद कर्म कहते हैं।

इस प्रकार मोहनीय कर्म के यह सभी २८ प्रकार के भेद हुए।

(ङ.) आयु कर्म (४)– कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ और मोह अर्थात अज्ञान, असंयम तथा मिथ्यात्व से वृद्धि को प्राप्त हुआ संसार अनादि है। उसमें जीव का अवस्थान रखने वाला आयु कर्म है। वह उदय रूप होकर मनुष्यादि चार गतियों में जीव को रखता है – यह कर्म उन-उन गतियों में जीव को रोककर रखता है। यह चार प्रकार है– नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु।

(च) नाम कर्म (९३)– नाम कर्म, गति आदि अनेक प्रकार का है। वह नारकी वगैरह जीव की पर्यायों के भेदों को और औदारिक आदि पुद्गल के भेदों को तथा जीव के एक गति से दूसरी गति रूप परिणमन को कराता है। अर्थात् चित्रकार की तरह वह अनेक कार्यों को किया करता है।

भावार्थ– जीव में जिनका फल हो सो जीव-विपाकी, पुद्गल में जिसका फल हो सो पुद्गल-विपाकी, क्षेत्र-विग्रहगति में जिसका फल हो सो क्षेत्र विपाकी और भव विपाकी। यद्यपि भव-विपाकी आयु कर्म को ही माना है, परन्तु उपचार से आयु का अविनाभावी गति कर्म भी भव-विपाकी कहा जा सकता है। इस तरह 'नाम कर्म' जीव विपाकी आदि चार तरह की प्रकृतियों रूप परिणमन करता है।

(१) से (४) जिसके उदय से यह जीव एक पर्याय से दूसरी पर्याय को "गच्छति" प्राप्त हो, वह गति नाम कर्म है। उसके चार भेद कहे हैं। नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देवगति नाम कर्म–जिस कर्म के उदय से क्रमशः नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव के शरीराकार करावे।

(५) से (९) उन गतियों में अव्यभिचारी सादृश्य धर्म से जीवों को इकट्ठा करे– वो जाति नाम कर्म है। इसके एकेन्द्री जाति, बेइन्द्रीजाति, तेइन्द्री जाति, चौइन्द्री जाति तथा पंचेन्द्री जाति–ये पाँच भेद हैं।

(१०) से (१४) जिसके उदय से शरीर बने, उसे शरीर नाम कर्म कहते हैं। इसके औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्माण शरीर–ये पाँच भेद हैं।

(१५) से (१९) शरीर नाम कर्म के उदय से जो आहार-वर्गणा रूप पुद्गल के स्कन्ध इस जीव ने ग्रहण किये थे उन पुद्गल स्कन्धों के प्रदेशों (हिस्सों) का जिस कर्म के उदय से आपस में सम्बन्ध हो, उसे बंध नाम कर्म कहते हैं। इसके औदारिकशरीरबंधन, वैक्रियिकशरीरबंधन, आहारकशरीरबंधन, तैजसशरीर बंधन और कार्माणशरीरबंधन–इस रीति से पाँच भेद हैं।

(२०) से (२४) जिसके उदय से औदारिक आदि शरीरों के परमाणु आपस में मिलकर छिद्ररहित बंधन को प्राप्त होकर एक रूप हो जायें उसे संघात नाम कर्म कहते हैं। यह औदारिकशरीरसंघात, वैक्रेयिकशरीरसंघात, आहारकशरीर संघात, तैजसशरीरसंघात और कार्माणशरीरसंघात–इस तरह से पाँच प्रकार का है।

(२५) से (३०) जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार बने, उसे संस्थान नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर का आकार ऊपर नीचे तथा बीच में समान हो, अथार्त् जिसके आंगोपाङ्गो की लम्बाई चौड़ाई सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ठीक-ठीक बनी हो वह समचतुरस्त्रसंस्थान, शरीर का आकार न्यग्रोध (बड़ के वृक्ष) सरीखा नाभि के ऊपर मोटा और नाभि के नीचे पतला हो वह न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान, स्वाति नक्षत अथवा सर्प की बाँमी के समान शरीर का हो अर्थात ऊपर से पतला और नाभि से नीचे मोटा हो वह स्वाति संस्थान, कुबड़ा शरीर होने से कुब्जकसंस्थान, बौना शरीर होने से वामन संस्थान और शरीर के आंगोपांग किसी खास शक्ल के न हों और भयानक बुरे आकार के बने हो उसे हुंडक संस्थान नाम कर्म कहते हैं। इस तरह से संस्थान नाम कर्म छह प्रकार का है।

(३१) से (३३) जिसके उदय से आंगोपांग का भेद हो, वह आंगोपांग कर्म है– उसके औदारिक,वैकियिक और आहारक ये तीन भेद हैं।

(३४) से (३९) जिसके उदय से हाड़ों के बंधन में विशेषता हो उसे संहनन नाम कर्म कहते हैं। वह छः प्रकार का है– यदि ऋषभ (बेठन) नाराच (कीला)

संहनन (हाड़ों का समूह) वज्र के समान हो अर्थात् इन तीनों का किसी शस्त्र से छेदन भेदन न हो सके उसे वज्रवृषभनाराच संहनन, यदि ऐसा शरीर हो जिसके वज्र के हाड़ और वज्र की कीली हों परन्तु बेठन वज्र के न हों उसे वज्रनाराच संहनन, जिसके उदय से शरीर में वज्ररहित (साधारण) बेठन और कीली सहित हाड़ हो उसे नाराच संहनन, जिसके उदय से हाड़ों की संधियां आधी कीलित हों उसे अर्ध नाराचसंहनन, जिसके उदय से हाड़ परस्पर कीलित हों उसे कीलित संहनन और जिसके उदय से जुदे-जुदे हाड़ नसों से बंधें हों, परस्पर (आपस में) कीले हुए न हों वह असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नाम कर्म है।

(४०) से (४४) जिसके उदय से शरीर में रंग हो वह वर्ण नाम कर्म है—उसके कृष्ण वर्ण, नील वर्ण, रक्त (लाल) वर्ण, पीत वर्ण, श्वेत वर्ण—ये पांच भेद हैं।

(४५) से (४६) जिसके उदय से शरीर में गंध हो, उसे गंध नाम कर्म कहते हैं— उसके सुरभि गंध और असुरभि गंध ये दो भेद हैं।

(४७) से (५१) जिसके उदय से शरीर में रस हो, उसे रस नाम कर्म कहते हैं। उसके तिक्तरस, कटुक रस, कषाय (कसैला) रस, आम्ल (खट्टा) रस, मधुर (मीठा) रस ये पांच भेद हैं।

(५२) से (५६) जिसके उदय से शरीर में स्पर्श हो, वह स्पर्श नाम कर्म है। इसके कर्कश (छूने में कठिन) स्पर्श, मृदु स्पर्श, गुरु (भारी) स्पर्श, लघु (हल्का) स्पर्श, शीत स्पर्श, उष्ण स्पर्श, सिनग्ध स्पर्श, रूक्ष स्पर्श, ये आठ भेद हैं।

(६०) से (६३) जिस कर्म के उदय से मरण के पीछे और जन्म से पहले अर्थात विग्रह गति में मरण से पहले के शरीर का आकार आत्मा के प्रदेश रहें, अर्थात पहले शरीर के आकार का नाश न हो उसे आनुपूर्व्य नाम कर्म कहते हैं। वह चार प्रकार का है— जिसके उदय से नरक गति के सन्मुख जीव के शरीर का आकार विग्रह गति में पूर्व शरीराकार रहे उसे नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, इसी प्रकार तिर्यंचगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्य नाम कर्म भी जानना।

(६४) जिस कर्म के उदय से ऐसा शरीर मिले जो लोहे के गोले की तरह भारी और आक की रुई की तरह हल्का न हो, उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं।

(६५) जिसके उदय से बड़े सींग, लम्बे स्तन अथवा मोटा पेट इत्यादि अपने ही घातक अंग हों, उसे उपघात नाम कर्म कहते हैं।

(६६) जिसके उदय से तीक्ष्ण सींग, नख, सर्प आदि की दाढ़ इत्यादि पर के घात करने वाले अवयव हों, उसे परघात नाम कर्म कहते हैं।

(६७) जिसके उदय से श्वासोच्छ्वास हो, उसे उच्छ्वास नाम कर्म कहते हैं।

(६८) जिसके उदय से पर को आताप करने वाला शरीर हो उसे आतप नामकर्म कहते हैं।

(६९) जिस कर्म के उदय से उद्योत रूप (आतापरहित प्रकाशरूप) शरीर हो उसे उद्योत नाम कर्म कहते हैं। उसका उदय चन्द्रमा के बिंब में और जुगनू आदि जीवों के होता है।

(७०, ७१) जिस कर्म के उदय से आकाश में गमन हो, उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं। उसके प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति ये दो भेद हैं।

(७२) जिसके उदय से दो इन्द्रियादि जीवों में जन्म हो, उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं।

(७३) जिसके उदय से एकेन्द्रिय (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पतिकाय) में जन्म हो, उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं।

(७४) जिसके उदय से ऐसा शरीर हो जो कि दूसरे को रोके और दूसरे से आप रुके, उसे बादर नाम कर्म कहते हैं।

(७५) जिसके उदय से ऐसा सूक्ष्म शरीर हो जो कि न तो किसी को रोके और न किसी से रुके, उसे सूक्ष्म नाम कर्म कहते हैं।

(७६) जिसके उदय से जीव अपने-अपने योग्य आहारादि (आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वसोच्छ्वास, भाषा और मन) पर्याप्तियों को पूर्ण करें, वह पर्याप्ति नाम कर्म है।

(७७) जिसके उदय से कोई भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं हो, अर्थात लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो, उसे अपर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं।

(७८) जिसके उदय से एक शरीर का एक ही जीव स्वामी हो, उसे प्रत्येक

शरीर नाम कर्म कहते हैं।

(७६) जिसके उदय से एक शरीर के अनेक जीव स्वामी हो, उसको साधारण नाम कर्म कहते हैं।

(८०) जिसके उदय से शरीर के रसादिक धातु[1] और वातादि उपधातु[2] अपने-अपने ठिकाने (स्थिर) रहें, उसको स्थिर नाम कर्म कहते हैं।

(८१) जिसके उदय से शरीर के धातु और उपधातु अपने-अपने ठिकाने न रहें, अर्थात चलायमान होकर शरीर को रोगी बनावें, उसको अस्थिर नाम कर्म कहते हैं।

(८२) जिसके उदय से मस्तक आदि शरीर के अवयव और शरीर सुंदर हो, उसे शुभ नाम कर्म कहते हैं।

(८३) जिसके उदय से शरीर के मस्तकादि अवयव सुन्दर न हों, उसको अशुभ नाम कर्म कहते हैं।

(८४) जिस कर्म के उदय से दूसरे जीवों को अच्छा लगने वाला शरीर हो, उसको सुभग नाम कर्म कहते हैं।

(८५) जिसके उदय से रूपादि गुण सहित होने पर भी शरीर दूसरे जीवों को अच्छा न लगे, उसे दुर्भग नाम कर्म कहते हैं।

(८६) जिसके उदय से स्वर (आवाज) अच्छा हो, उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं।

(८७) जिसके उदय से स्वर अच्छा न हो, उसे दुःस्वर नाम कर्म कहते हैं।

(८८) जिसके उदय से कान्ति सहित शरीर हो, उसे आदेय नाम कर्म कहते हैं।

(८९) जिसके उदय से प्रभा (कान्ति) रहित शरीर हो, उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं।

(९०) जिसके उदय से अपना पुण्यगुण जगत में प्रकट हो, अर्थात संसार में

---

[1] रसद्रक्तं हतो मांसं मांसान्मेदः प्रवर्तते। भेदतोऽस्थि ततोमज्जं मज्जाच्छुक्रस्ततः प्रजा।।१।।
अर्थात् रस से लोही, लोही से मांस, मांस से मेद, मेद से हाड, हाड़ से मज्जा, मज्जा से वीर्य होता है। इस तरह सात धातु हैं।

[2] वातः पित्तं श्लेष्मा शिरा स्नायुश्च चर्म च। जठराग्निरिति प्राज्ञैः प्रोक्ताः सप्तोपधातवः ।।
अर्थात् वात, पित्त, कफ, शिरा, स्नायु, चाम (चर्म), पेट की आग ये सात उपधातु हैं।

जीव की प्रशंसा हो, उसे यशः कीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

(९१) जिसके उदय से संसार में जीव की प्रशंसा न हो, उसे अयशःकीर्ति नाम कर्म कहते हैं।

(९२) जिसके उदय से शरीर के अंगोपांगों की ठीक-ठीक रचना हो, उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं। वह दो प्रकार का है– जो जाति नाम कर्म की अपेक्षा से नेत्रादिक इन्द्रियाँ जिस जगह होनी चाहिये, उसी जगह उन इन्द्रियों की रचना करे, वह स्थान निर्माण है । और जितना नेत्रादिक का प्रमाण (माप) चाहिये उतने ही प्रमाण बनावे, वह प्रमाण निर्माण है।

(९३) जो श्रीमत अर्हंत पद का कारण हो, वह तीर्थंकर नाम कर्म कहलाता है।

(छ) गोत्र कर्म (२)– कुल की परिपाटी के क्रम में चला आया जो जीव का आचरण उसकी गोत्र संज्ञा है, अर्थात उसे गोत्र कहते हैं। इसके दो भेद हैं। जिस कुल परम्परा में ऊँचा (उत्तम) आचरण हो, तो उसे उच्च गोत्र कहते हैं। यदि निंद्य आचरण हो, तो वह नीच गोत्र कहा जाता है। (कुल का संस्कार अवश्य आ जाता है, चाहे वह जीव कैसे भी विद्यादि गुणों कर सहित क्यों न हो। उस पर्याय में संस्कार नहीं मिटता)।

(ज) अन्तराय कर्म (५)– यह वह कर्म है जो "अन्तरं एति" अर्थात दाता तथा पात्र में अन्तर व्यवधान करे। इसका स्वभाव भण्डारी सरीखा है। जैसे भण्डारी (खजान्ची) दूसरे को दान देने में विघ्न करता है– देने से रोकता है, उसी प्रकार अन्तराय कर्म दान लाभादि में विघ्न करता है। इसके पांच भेद हैं– दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

इस प्रकार सभी प्रकार के भेद- प्रभेदों से इन समस्त आठों कर्मों की १४८ प्रकृति हो जाती हैं।

उपरोक्त आठ कर्मों को इसी क्रम में लिखने के कारण को कहते हैं। आत्मा के सब गुणों में ज्ञान गुण पूज्य है, इस कारण उसे पहले कहा है। उसके पीछे दर्शन कहा है। उसके बाद सम्यक्त्व कहा है तथा वीर्य शक्ति रूप है। इसी कारण इन गुणों का आवरण करने वाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय; इन चार कर्मों

का यही क्रम मान्य है। अब यहाँ प्रश्न यह है कि उन आठ कर्मों में अन्तराय कर्म जो कि घातिया कर्म है वह अघातिया के अन्त में क्यों कहा ? इसका उत्तर आचार्य देते हैं कि अन्तराय कर्म यद्यपि घातिया है, तथापि अघातिया कर्मों की तरह समस्तपने से जीव के गुणों के घातने को वह समर्थ नहीं है, इस कारण अघातिया कर्मों के अन्त में कहा है और नाम, गोत्र तथा वेदनीय इन तीन कर्मों के निमित्त से ही वह अपना कार्य करता है। अब अन्य कर्मों का क्रम कहते हैं। नाम कर्म का कार्य चार गति रूप या शरीर की स्थिति रूप है। वह आयु कर्म के बल से (सहायता से) ही है। इसलिये आयु कर्म को पहले कहकर पीछे नाम कर्म कहा है। और शरीर के आधार से ही उत्कृष्टपना या नीच पना होता है, इस कारण नाम कर्म को गोत्र कर्म के पहले कहा है। अब प्रश्न यह होता है कि वेदनीय कर्म जो अघातिया है, उसको घातिया कर्मों के बीच में क्यों कहा है। इसका कारण यह है कि वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म के भेद जो राग द्वेष हैं उनके उदय के बल से ही घातिया कर्मों की तरह जीवों का घात करता है। अर्थात इन्द्रियों के रूपादि विषयों में से किसी में रति (प्रीति) और किसी में अरति (द्वेष) का निमित्त पाकर सुख तथा दुःख स्वरूप साता और असाता का अनुभव कराके जीव को अपने ज्ञानादि गुणों में उपयोग में नहीं करने देता, पर स्वरूप में लीन करता है। इस कारण अर्थात घातिया होने की तरह होने से घातियाओं के मध्य में तथा मोह कर्म के पहले इस वेदनीय कर्म को कहा गया है।

(८) बन्ध तत्त्व

आश्रव द्वारा आये हुए कर्मों का आत्म प्रदेशों के साथ सम्बद्ध हो जाने को बंध कहते हैं। इसके दो भेद हैं– भाव बन्ध और द्रव्य बन्ध।

(क) भाव बन्ध और द्रव्य बन्ध के लक्षण

बज्झदि कम्मं जेण दु चेदण–भावेण भावबंधो सो।
कम्मादपदेसाणं अण्णोण्ण-पवेसणं इदरो।।३२।।

(द्रव्य संग्रह)

अर्थ– आत्मा के जिन परिणामों से कर्म बन्धता है उन्हें भाव बन्ध कहते हैं। कर्म और आत्मा के प्रदेशों का परस्पर मिल जाना द्रव्य बन्ध है।

भावार्थ– आगम में ऐसी तेईस प्रकार की पुद्‌गल-वर्गणाओं का वर्णन किया गया है जो समस्त लोक में भरी हुई हैं। उनमें अनन्तानन्त पुद्‌गल परमाणु कर्म रूप होने की योग्यता वाले हैं, शेष नहीं, जैसे चुम्बक में लोहे को खींचने की शक्ति विद्यमान है, अन्य पीतल, सोना, चाँदी आदि धातुओं को नहीं है। जब कभी भी जीव किसी भी स्थान पर कषाय से सहित होता है तो वह योगजन्य हलन-चलन क्रिया को करता है। और वह चारों तरफ से कर्म योग्य पुद्‌गल परमाणुओं को ग्रहण करता है। इन्हीं पुद्‌गल परमाणुओं को बन्ध कहते हैं। जीव को बन्ध होता है, यह सब व्यवहार नय का कथन है। निश्चय नय से आत्मा सदा स्वतंत्र है, उसमें किसी भी प्रकार का कर्मबन्ध नहीं है क्योंकि कर्म और आत्मा दोनों भिन्न -भिन्न हैं। बन्ध के दो भेद होते हैं– भाव बन्ध और द्रव्य बंध। **'भावबन्ध'** जिन रागादिक परिणामों से जीव बंधता है उन भावों को त्रिलोकीनाथ ने भावबंध कहा है और जो चैतन्य प्रदेशों पर नये कर्म बंधते हैं उनको द्रव्यबंध जानना चाहिए। जिस प्रकार दूध और पानी परस्पर में एकमेक होकर मिल जाते हैं उसी प्रकार भावबंध के कारण जो पुद्‌गल परमाणुओं का आत्मा के साथ एकमेक हो जाना है, उसे ही द्रव्यबन्ध कहते हैं।

कर्मों का ग्रहण योगों के निमित्त से होता है, योग मन-वचन-काय के व्यापार से होता है। बन्ध भावों के निमित्त से होता है और भाव रति, राग-द्वेष तथा मोह से होते हैं। भावबंध और द्रव्यबंध का लक्षण बताते हुए आचार्य कहते हैं कि जो उपयोग स्वभाव वाला जीव अनेक प्रकार के इष्ट-अनिष्ट विषयों को पाकर मोहित होता है, राग करता है अथवा द्वेष करता है, वह उन्हीं भावों से बन्ध को प्राप्त होता है। जीव इन्द्रियों के विषयों में आए हुए इष्ट-अनिष्ट पदार्थों को जिस भाव से जानता है, देखता है और राग करता है, उसी भाव से पौद्‌गलिक द्रव्य कर्म का बन्ध होता है, ऐसा उपदेश है।

इस कथन को स्पष्ट करते हुए आचार्य उमास्वामी कहते हैं–

"सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः" अर्थात कषाय सहित होने से जीव जो कर्म के योगय पुद्‌गलों को ग्रहण करता है, वह बंध है।

दौलतराम जी कहते हैं– **"जीव प्रदेश बंधे विधिसो सो बंधन"** अर्थात् आत्मा के प्रदेशों का कर्मों से बंधना बन्ध कहलाता है।

इससे यह स्पष्ट होता है कि जब-जब भी जीव कषाय-सहित होकर जिन कर्म-पुद्गल-वर्गणाओं को ग्रहण करता है, तब-तब उसको बन्ध होता है। यदि वह कषाय सहित न हो तो उसको कभी भी बन्ध नहीं हो सकता। जैसे– जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, इसी प्रकार जहाँ-जहाँ कषाय होती है वहाँ-वहाँ बन्ध होता है।

(ख) बन्ध के भेद तथा उनके कारण

प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध के भेद से बन्ध चार प्रकार का है। उसमें प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग से और स्थिति और अनुभाग बन्ध कषाय से होते हैं।

भावार्थ– बन्ध के प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध ये चार भेद हैं। जब कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु का आवरण बनती है तो उस वस्तु में (१) ढकने का स्वभाव, (२) आवरण का काल, (३) आवरण की अधिकतम न्यूनतम शक्ति और (४) आवरण करने वाली वस्तु का परिमाण – ये चार बातें एक साथ प्रकट होती हैं। आगम में इन्हीं को क्रमशः प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बन्ध कहा है। इसमें प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध ये दो बन्ध योग के निमित्त से होते हैं अर्थात ये सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान तक रहते हैं क्योंकि कारण के होने पर ही कार्य होता है। योग कारण है और कार्य है बन्ध। सयोग केवली गुणस्थान में कोई आचार्य तो बन्ध को स्वीकार करते हैं और कोई आचार्य बन्ध को स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि वह एक समय के बन्ध को बन्ध नहीं मानते हैं। सयोग केवली गुणस्थान के बाद योग का अभाव है, इसलिए वहाँ पर कोई भी बन्ध नहीं है। स्थिति और अनुभाग बन्ध ये दो बन्ध कषाय के निमित्त से होते हैं।

इन चारों बंधों के लक्षण निम्नवत हैं:–

(१) प्रकृति बन्ध– कर्म-परमाणु में ज्ञान आदि को आवृत्त करने आदि का स्वभाव पड़ना प्रकृति बन्ध है।

(२) स्थिति बन्ध– कर्म प्रदेशों में फल देने की शक्ति का जो हीनाधिक काल है उसे स्थिति बन्ध कहते हैं अर्थात् कर्मों का आत्मा के साथ ठहरने का काल।

(३) अनुभाग बन्ध– कर्म-प्रदेशों में फल देने की शक्ति की जो हीनाधिकता है, उसे अनुभाग बन्ध कहते हैं।

(४) प्रदेश बन्ध– ज्ञानावरणादि कर्मों के प्रदेशों की संख्या में जो हीनाधिकता लिये हुए परिणमन है, उसे प्रदेश बन्ध कहते हैं।

(ग) अवशेष संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व

इन का वर्णन अध्याय– ४ "मेरा क्या भविष्य है" प्रकरण में कहा गया है।

(६) पुण्य और पाप पदार्थ

शुभ और अशुभ परिणामों से सहित जीव क्रमशः पुण्यरूप और पापरूप होते हैं। सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र पुण्य रूप होते हैं, शेष कर्म पाप रूप होते हैं।

भावार्थ (क) पुण्य – आत्मा को जो पवित्र करे या निर्मल करे वह पुण्य है। वह पुण्य दो प्रकार का है– भावपुण्य और द्रव्यपुण्य । **भावपुण्य–** शुभ भावों को लाना भाव पुण्य है। **द्रव्यपुण्य–** ज्ञानावरणादि आठ कर्मों की शुभ–प्रकृतियों को ग्रहण करना द्रव्यपुण्य है।

(ख) पाप– जो आत्मा को अपवित्र अथवा मलिन करे वह पाप है। यह पाप भी दो प्रकार का है– भावपाप और द्रव्यपाप। **भावपाप –** मन–वचन–काय के द्वारा अशुभ भावों को लाना भाव–पाप है। **द्रव्यपाप–** ज्ञानावरणादि कर्मों की अप्रशस्त प्रकृतियों को ग्रहण करना द्रव्य पाप है।

पुण्य और पाप ये दोनों ही जीव को संसार में घुमाने वाले हैं क्योंकि जहाँ पर पुण्य और पाप पाये जाते हैं, वहीं पर संसार का निर्माण हो जाता है। पुण्य और पाप में से पाप सर्वथा हेय है। जब तक हमें शुद्धोपयोग की अवस्था प्राप्त नहीं होती है, तब तक पुण्य हमारे लिए उपादेयभूत है क्योंकि पुण्य से अशुभ कर्मों का आस्रव रुक जाता है। पुण्य–विशेष से ही तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध होता है।

पंचास्तिकाय में भी कहा गया है–

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावंति हवदि जीवस्स।
दोण्हं पोग्गलमेत्तो भावो कम्मत्तणं पत्तो।।१३२।।

अर्थ– जीव का शुभ परिणाम पुण्य कहलाता है और अशुभ परिणाम पाप। इन दोनों ही प्रकार के परिणामों से कार्मणवर्गणा रूप पुद्गलद्रव्य कर्म-अवस्था को प्राप्त होता है।

इस कथन को स्पष्ट करते हुए प्रवचनसार में कहते हैं–

सुहपरिणामो पुण्णं असुहो पावत्ति भणियमण्णेसु।

परिणामो णण्णगदो दुक्खक्खयकारणं समये।।

अर्थात्– बहिर्भूत शुभाशुभ पदार्थों में जो शुभ परिणाम हैं उसे पुण्य और जो अशुभ परिणाम हैं उसे पाप कहा है।

तथा अन्य पदार्थों से हटकर निज शुद्धात्म द्रव्य में जो परिणाम है वह आगम में दुःख-क्षय का कारण बताया गया है। ऐसा भाव शुद्ध-भाव कहलाता है।

(१०) उपसंहार

इस प्रकार अनादिकाल से मिथ्यात्व के वशीभूत संसार में भ्रमण करते-करते वचनातीत दुःख उठाता आया हूँ। अब मैंने इस वर्तमान समय में किञ्चत पुण्योदय से मनुष्य गति पाई है, मात्र जहाँ से ही सम्यक् संयमाचरण के आलम्बन से उत्तम गति (मोक्ष) को प्राप्त करने हेतु पुरुषार्थ कर सकता हूँ। यदि अति दुर्लभ इस मनुष्य गति पाकर भी मैंने मोक्ष जाने का प्रयास नहीं किया, तो जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न हाथ में लेकर यदि कोई फैंक दे, उसी प्रकार मेरी मूढ़ता की पराकाष्ठा होगी और मैं पुनः अनन्तकालीन संसार भ्रमण में ही घोर दुःख उठाते हुए रुलता रहूँगा।

सन्दर्भ

(१) छहढाला– कृत श्री पं. दौलतराम जी ।

(२) पद्मनन्दि पंचविंशति– रचियता श्री १०८ पद्मनन्दि आचार्य।

(३) गोम्मटसार (जीवकाण्ड)– रचियता श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती।

(४) गोम्मटसार (कर्मकाण्ड)– रचियता श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती।

(५) द्रव्य संग्रह– आचार्य मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती, हिन्दी टीकाकार– मुनि श्री १०८ सुन्दर सागर जी।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई।

सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवनमानी पूज्य भई।।

आप्त (ज्ञानी, वीतरागी, हितोपदेशी) की दिव्य ध्वनि अथवा जिनवाणी को मैं मन–वचन–काय से भावपूर्वक नमस्कार करता हूँ। इस वाणी में प्रकाशित जैन धर्म को मैं त्रियोग सम्हालकर नमस्कार करता हूँ।

अध्याय ४

मेरा भविष्य क्या है ?

(सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ – संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्व)

क्रम सं०	विवरण	पृष्ठ संख्या
१.	भूमिका	१.१४१
२.	सम्यग्दर्शन का लक्षण	१.१४२
३.	सम्यग्ज्ञान का लक्षण	१.१४४
४.	व्यवहार सम्यक्चारित्र का स्वरूप	१.१४५
५.	श्रावक का चारित्र	१.१४६
६.	निश्चय चारित्र का स्वरूप	१.१४६
७.	संवर, निर्जरा, और मोक्ष तत्त्व की उपादेयता	१.१४८
८.	संवर तत्त्व	१.१४८
९.	निर्जरा तत्त्व	१.१४९
१०.	मोक्ष तत्त्व	१.१५१
११.	सल्लेखना	१.१५३
१२.	मेरा भविष्य क्या है?	१.१५३

अध्याय ४

मेरा भविष्य क्या है?

मङ्गलाचरण

जं णाण–रयण–दीओ, लोयालोय–प्पयासण–समत्थो।
पणमामि पुप्फयंतं, सुमइकरं भव्व–संघस्स।।६।।

चोत्तीसादिसएहिं, विम्हय –जणणं सुरिंद–पहुदीणं।
णमिऊण सीदल–जिणं ।।१०।।

इंद–सद/णमिद–चलणं, अणंत–सुह–णाण–विरिय –दंसणया।
भव्वंबुज–वण–भाणुं, सेयसं–जिणं णमंसामि।।११।।

अक्खलिय –णाण–दंसण–सहियं
सिरि–वासुपुज्ज–जिणसामिं णमिऊणं।।१२।।

अर्थ– जिनका ज्ञान रूपी रत्नदीपक लोक एवम् अलोक को प्रकाशित करने में समर्थ है और जो भव्य–समूह को सुमति प्रदान करने वाले हैं ऐसे पुष्पदन्त जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।६।। चौंतीस अतिशयों से देवेन्द्र आदि को आश्चर्य उत्पन्न करने वाले शीतल जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।१०।। सौ इन्द्रों (४० भवनवासी, ३२ व्यन्तर, २ चन्द्र–सूर्य, २४ कल्पवासी, १ चक्रवर्ती, १ सिंह) से नमस्करणीय चरणों वाले अनन्त सुख, अनन्त ज्ञान, अनन्तवीर्य एवम् अनन्त दर्शन वाले तथा भव्य जीवरूप कमलवन को विकसित करने के लिए सूर्य–सदृश श्रेयांस जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।११।। अस्खलित ज्ञान–दर्शन से युक्त श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।१२।।

(१) भूमिका

पिछले प्रकरणों में "मैं कहां हूं" , "मैं कौन हूं" और "मैं कहाँ से आया हूँ" से विदित होगा कि इस संसार में चतुर्गति में अनादि काल से पञ्च परावर्तन करते हुए (देखिए परिशिष्ट १.०४), कर्माधीन भटकता हुआ मैं मिथ्यात्व से मलिन एक आत्मा हूँ और किसी पुण्य के संयोग से मैंने यह अतीव दुर्लभ मनुष्य गति को इस समय प्राप्त किया है। क्योंकि मोक्ष (आत्मा की स्वतंत्रता) की प्राप्ति मात्र इस मनुष्य पर्याय से ही सम्भव है, इसलिये यदि मैंने इस मनुष्य भव में भी संसार के परिभ्रमण से निकलने का उपाय व पुरुषार्थ नहीं किया, तो सम्भवतः अनन्त काल में भी मनुष्य गति दुबारा प्राप्त न होने के कारण यह दुर्लभ अवसर दुबारा प्राप्त न हो सके और पुनः इस संसार के अवर्चनीय दुःख उठाने पड़े। इसके लिए मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यक्त्व का, संयम का मार्ग अपनाना होगा।

इस सन्दर्भ में प्रातः स्मरणीय, त्रिकाल वन्दनीय, परम पूज्य, चारित्र चक्रवर्ती, आचार्य श्री १०८ शान्ति सागर जी ने अन्त समय यम सल्लेखना के समय जो सभी भव्य जीवों को अन्तिम उपेदश दिया था, वह इस सम्बन्ध में अत्यन्त उपयोगी व कल्याणकारक है। यह उद्‌बोध परिशिष्ट १.०५ में दिया है।

आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थ सूत्र में दिया गया है कि **"सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्ष मार्गः"**। अर्थात इन तीनों सम्यक् रत्नों की एकता मोक्ष मार्ग को प्रशस्त करती है।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझने के लिए , हमें मिथ्यादर्शन का स्वरूप समझना पड़ेगा क्योंकि मिथ्यादर्शन का विपरीत सम्यग्दर्शन होता है। यद्यपि दर्शन शब्द का अर्थ देखना है तथापि यहां उसका अर्थ श्रद्धान लिया गया है। तत्वार्थ सूत्र की टीका "सर्वार्थसिद्धि" में ऐसा ही कहा है, क्योंकि देखना नहीं अपितु श्रद्धान ही संसार व मोक्ष का कारण होता है। अतः मिथ्यारूप जो दर्शन अर्थात श्रद्धान है, उसका नाम मिथ्या दर्शन है। जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा नहीं मानना और जैसा वस्तु का स्वरूप नहीं है वैसा मानना मिथ्यादर्शन है। यहां वस्तु का तात्पर्य प्रयोजनभूत पदार्थ से है, न कि अप्रयोजन भूत पदार्थ से। इस जीव का प्रयोजन तो संसार के दुःख से छुटकारा पाना है और इस प्रयोजन की सिद्धि जीवादि तत्त्वों (जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्त्व) के श्रद्धान से होती है। अतएव जो मोक्ष मार्ग से सम्बन्धित तत्त्व हैं,

उनके सम्यक् श्रद्धान से सम्यग्दर्शन और मिथ्या श्रद्धान से मिथ्यादर्शन होता है। जो तत्त्व नहीं है अथवा जो मोक्षमार्ग से सम्बन्धित नहीं है, उनके सम्यक् या मिथ्या श्रद्धान से सम्यग्दर्शन का कोई ताल्लुक नहीं है।

नय— वस्तु के एक देश को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।

इसके दो भेद होते हैं— व्यवहार नय और निश्चय नय।

(क) व्यवहार नय— किसी निमित्तवश एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ रूप जानने वाले ज्ञान को व्यवहार नय कहते हैं। जैसे पीतल के घड़े में पानी के रहने के निमित्त से उसे पानी का घड़ा कहना।

(ख) निश्चय नय— वस्तु के वास्तविक अंश को ग्रहण करने वाले ज्ञान को निश्चय नय कहते हैं। जैसे दूध से भरे हुए मिट्टी के घड़े को देखकर मिट्टी का घड़ा कहना। निश्चय नय के दो भेद हैं— द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय।

(ग) द्रव्यार्थिक नय— जो नय केवल द्रव्य अथवा सामान्य को ग्रहण करता है उसको द्रव्यार्थिकनय कहते हैं।

(घ) पर्यायार्थिक नय— जो नय विशेष गुण या विशेष पर्याय को विषय करता है वह पर्यायार्थिकनय कहलाता है।

(२) सम्यग्दर्शन का लक्षण

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्त्वों या पदार्थों का जिनेन्द्र भगवान् ने जैसा वर्णन किया है वैसा ही मानना, श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। करणानुयोग के ग्रन्थों में सम्यग्दर्शन का लक्षण बताते हुए कहा है— मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व दर्शन मोहनीय और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशम अथवा क्षयोपशम अथवा क्षय से श्रद्धा गुण की जो निर्मलता प्रकट होती है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन दो प्रकार का होता है— निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन।

(क) निश्चय सम्यग्दर्शन— शुद्धनय से समस्त द्रव्यों से भिन्न आत्मा की सब पर्यायों में व्याप्त पूर्णचैतन्य रूप केवलज्ञान समस्त लोकालोक को जानने वाले आत्मा के असाधारण चैतन्य धर्म को दिखलाता है, उसको यह व्यवहारी जीव आगम को प्रमाण मानकर आत्म-श्रद्धान करे, यही श्रद्धान निश्चय सम्यग्दर्शन है।

(ख) व्यवहार सम्यग्दर्शन– सच्चे देव, शास्त्र और गुरु का आठ अंगों (निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, मार्ग प्रभावना, प्रवचन वात्सल्य) से सहित श्रद्धान करने को व्यवहार से सम्यग्दर्शन कहते हैं। अथवा जीवादि नौ पदार्थों, सात तत्त्वों व छह द्रव्यों का यथार्थ श्रद्धान करना ही व्यवहार सम्यग्दर्शन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन कारण है और निश्चय सम्यग्दर्शन कार्य है।

इसी कथन को स्पष्ट करते हुए रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं–

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपभृतां।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्।।४।।

अर्थात– परमार्थभूत देव, शास्त्र और गुरु का तीन मूढ़ताओं (देव मूढ़ता, गुरु मूढ़ता और लोक मूढ़ता) से रहित, उपरोक्त आठ अंगों (निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, मार्ग प्रभावना, प्रवचन वात्सल्य) से सहित और आठ प्रकार के मदों (कुल, जाति, रूप, ज्ञान, धन, तप, बल, प्रभुत्व मद) से रहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य अष्ट पाहुड़ के अन्तर्गत दंसणपाहुड में कहते हैं–

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं।।२०।।

अर्थ– जिनेन्द्र भगवान् ने जीवादि सात तत्त्वों के श्रद्धान को व्यवहार सम्यक्त्व कहा है और शुद्ध आत्मा के श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व बतलाया है।

प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये सम्यग्दर्शन के चार गुण हैं–

प्रशम– क्रोधादिक कषायों के उपशम होने को प्रशम कहते हैं।

संवेग– संसार, शरीर और भोगों से विरक्त या भयभीत होना संवेग है।

अनुकम्पा– दूसरों के दुःखों से स्वयं दुःखी होना और दुःखों को दूर करने का प्रयत्न करना अनुकम्पा है।

आस्तिक्य– छह द्रव्य, दस धर्म (उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन, ब्रह्मचर्य) तथा धर्म के फल में विश्वास रखना आस्तिक्य है।

सम्यग्दर्शन के दो भेद और होते है– सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यक्दर्शन।

(क) सराग सम्यग्दर्शन– जिसमें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य पाये जाये उसे सराग सम्यग्दर्शन कहते हैं।

(ख) वीतराग सम्यग्दर्शन–आत्मा की विशुद्धि अर्थात् आत्मा का निर्मल होना ही वीतराग सम्यग्दर्शन है।

परमात्मप्रकाश की संस्कृत टीमा में श्री ब्रह्मदेव कहते हैं–

निश्चयेन शुद्धात्मानुभूतिलक्षणं वीतरागसम्यक्त्वम्, व्यवहारेण तु वीतरागसर्वज्ञप्रणीत सद्द्रव्यांदिश्रद्धानरूपं सरागसम्यक्त्वम् चेति।

अर्थात– निश्चयनय से शुद्ध आत्मा की अनुभूति रूप वीतराग सम्यक्त्व है तथा व्यवहार नय से वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कथित षड्द्रव्यादि का श्रद्धानरूप सरागसम्यक्त्व है।

३– सम्यग्ज्ञान का लक्षण

संशय (शंका), विपर्यय (विपरीत) और अनध्यवसाय (अनिश्चितता) से रहित तथा आकार-सहित 'यह घट है, यह पट है' इत्यादि रूप से जानना अर्थात् अपने शुद्ध चैतन्य आत्मा को और उससे भिन्न पर वस्तुओं के स्वरूप को जानना सम्यग्ज्ञान है और वह मतिज्ञान आदि अनेक भेद वाला है।

संयम-सहित तथा उत्तम-ध्यान युक्त मोक्षमार्ग का लक्ष्य जो शुद्ध आत्मा है, वह ज्ञान से ही प्राप्त किया जाता है, इसलिये ज्ञान जानने योग्य है।

इसी संदर्भ में पं० दौलतराम जी कहते है–

"आप रूप को जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है"

अर्थात्– पर-पदार्थों से भिन्न अपनी आत्मा के स्वरूप को जानना निश्चय सम्यग्ज्ञान है।

व्यवहार सम्यग्ज्ञान– व्यवहार नय से विकल्प सहित अवस्था में तत्त्व, द्रव्य आदि के विचार के समय निज आत्मा और पर पदार्थों को जानना ही व्यवहार सम्यग्ज्ञान है। व्यवहार सम्यग्ज्ञान तो परम्परा से मोक्ष का कारण बनता है, लेकिन निश्चय सम्यग्ज्ञान साक्षात् मोक्ष का कारण होता है।

सम्यग्ज्ञान के मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान (प्रत्यक्ष) ये पांच भेद हैं।

४– व्यवहार सम्यक्चारित्र का स्वरूप

अशुभ क्रियाओं से निवृत्ति करना और शुभ क्रियाओं में प्रवृत्ति करना व्यवहार नय से चारित्र जानना चाहिए और वह चारित्र जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा गया व्रत, समिति और गुप्ति रूप होता है।

भावार्थ– 'चर्यते इति चारित्रम' जिसका जीवन में आचरण किया जाता है वही चारित्र है। हम प्रति क्षण जो कुछ भी क्रिया करते हैं, वह सब क्रिया आचरण कहलाती है। संसारावस्था में क्रिया अनिवार्य रूप से करनी ही पड़ती है। उसका ढंग, प्रक्रिया-वर्तन, प्रणाली आदि यदि स्व-पर का हित करने वाली है तो समझो कि ये सब क्रिया कलाप या जो कुछ भी हम आचरण कर रहे हैं वह सच्चारित्र है। और यदि इससे विपरीत स्व और पर का घातक या हानिकारक चारित्र होता है तो वह दुःचारित्र कहलाता है – जैसे सप्त व्यसन (जुआ खेलना, मांस खाना, मद्य सेवन, चोरी करना, शिकार करना, वेश्यागमन और परस्त्रीगमन), कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), पांच पापों (हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह) में लिप्त होना। व्यवहार चारित्र पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति के भेद से तेरह प्रकार का होता है।

(क) महाव्रत– हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पांच पापों का मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदना से पूर्ण रूप से सर्वदेश त्याग करना महाव्रत है।

(ख) समिति– यत्नाचार अर्थात् सम्यक् प्रकार से प्रवृत्ति करना समिति है। इसके पांच भेद होते हैं– ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान–निक्षेपण समिति और व्युत्सर्ग समिति।

(ग) गुप्ति– मन–वचन–काय में होने वाले हलन–चलन को रोकना ही गुप्ति है। यह तीन प्रकार की होती है– मनोगुप्ति, वचन–गुप्ति और काय गुप्ति।

यह तेरह प्रकार का चारित्र छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनिराजों के होता है।

५– श्रावक का चारित्र

उपरोक्त चारित्र निस्पृही साधु की अपेक्षा से है किन्तु किसी न किसी असमर्थतावश अथवा पुण्योदय न होने के कारण, यदि कोई मनुष्य महाव्रती अथवा सकल संयमी न बन सके तो उसे देश संयमी बनना चाहिये तथा श्रावक धर्म का पालन करना चाहिए। कृपया इसका वर्णन परिशिष्ट १.०६ में देखें।

६– निश्चय चारित्र का स्वरूप

श्री मन्नेमिचन्द्र आचार्य द्रव्य संग्रह में कहते हैं:

बहिरब्भंतर-किरियारोहो भव-कारणप्पणासट्ठं।
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं।।४६।।

अर्थ– ज्ञानी के द्वारा संसार के कारणों का नाश करने के लिए जो बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओं का रोकना है वह जिनेन्द्र देव द्वारा कहा गया उत्कृष्ट सम्यक्चारित्र जानना चाहिए।

भावार्थ– जिस सकलसंयमी जीव ने सम्यक्त्व को प्राप्त करने के बाद सम्यग्ज्ञान पूर्वक दुःख देने वाले संसार से छूटने के लिए मन, वचन और काय की समस्त शुभ और अशुभ, बाह्य और आभ्यन्तर क्रियाओं को रोककर आत्मा को अति निर्मल बना लिया है, उसको निश्चय सम्यक्चारित्र कहते हैं। चारित्र की पूर्णता अयोग केवली नामक गुणस्थान में होती है। शील के १८००० भेद भी इसी गुणस्थान में पूर्ण होते हैं जो निम्न प्रकार है :-

{ ३ प्रकार की स्त्री (देवी,मनुष्यिणी, तिर्यञ्चनी) x ३ (कृत, कारित, अनुमोदना) x ३ योग (मन, वचन, काय) x ४ संज्ञा (आहार, भय, मैथुन, परिग्रह) x १०

इन्द्रिय (५ द्रव्येन्द्रिय, ५ भावेन्द्रिय) x १६ कषाय (चार अनन्तानुबन्धी चतुष्क x चार कषाय)} ये १७२८० का त्याग + { ३ अचेतन स्त्री (काष्ठ, पाषाण, चित्र) x २ योग (मन,काय) x ३ (कृत कारित अनुमोदना) x ४ कषाय x १० इन्द्रिय} ये ७२० का त्याग = १८,०००

अथवा

१० (विषयाभिलाषा, वस्तिमोक्ष, प्रणीत रससेवन, संसक्त द्रव्यसेवन, शरीरांगोपांगोवलोकन, प्रेमी का सत्कार पुरस्कार, शरीर संस्कार, अतीत भोगस्मरण, अनागत भोगाकांक्षा, इष्ट विषय सेवन) x १० (चिन्ता, दर्शेच्छा, दीर्घ निःश्वास, ज्वर दाह, आहारारुचि, मूर्च्छा, उन्माद, जीवन, संदेह, मरण) x ५ इन्द्रिय x ३ योग (मन, वचन, काय) x ३ (कृत कारित अनुमोदना) x २ (जागृत, स्वप्न) x २ (चेतन, अचेतन) का त्याग = १८,०००

अथवा

३ योग (मन, वचन, काय) को वश में करना x ३ करण (अशुभ कर्म के ग्रहण करने में कारण भूत क्रियाओं के निग्रह को कहते हैं। निमित्त के भेद से इसके मन, वचन, काय ये तीन भेद हैं) x ४ संज्ञा (इनकी अभिलाषा का सर्वथा त्याग) x ५ इन्द्रियवश x १० जीव भेद (पृथ्वीकायिक, जल कायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनस्पति, साधारण वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंञ्चेन्द्रिय जीवों की रक्षा) x १० धर्म (उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिंचन, ब्रह्मचर्य का पालन) = १८,०००

रत्नत्रय-- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय आत्मा, अर्थात् जीव को छोड़कर शेष अजीव (पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, आकाश) द्रव्यों में नहीं रहता है। इसलिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सहित निज शुद्ध चैतन्य आत्मा ही मोक्ष का कारण है। मनुष्य पर्याय (भव) में ही ऐसी योग्यता है जो रत्नत्रय को धारण कर सकती है। अन्य पर्यायों में इस दुर्लभ रत्नत्रय को धारण करना सम्भव नहीं है क्योंकि मनुष्य पर्याय में ही यह जीव अपने पुरुषार्थ द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। यहाँ पर आचार्य भव्य जीवों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे भव्य जीवो ! एक अपना निज आत्मा ही उपादेय है, शेष अन्य द्रव्य तेरे नहीं हैं, वे सब हेय हैं। इसलिए तू शीघ्र ही इस दुर्लभ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय को धारण कर, यही उपादेय है और यही मोक्ष का कारण है।

७– संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व की उपादेयता

इस सन्दर्भ में "मैं कहाँ से आया हूं" प्रकरण में जो सात तत्त्वों का जिक्र आया है, उसमें से आश्रव व बन्ध तत्व का वहां कथन किया गया है जो संसार के कारण हैं। अब सम्यक्त्व के मार्ग में चलकर संसार भ्रमण के छूटने से उद्देश्य से उपादेय तत्वों अर्थात संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्वों को कहना चाहिए।

८– संवर तत्त्व

कषायों के शमन और इन्द्रियों के दमन से कर्मों का आना रुक जाना संवर है अर्थात् आत्मा में जिन-जिन कारणों से कर्मों का आस्रव होता है उन-उन कारणों को दूर करने से कर्मों का आना रुक जाना संवर कहलाता है। संवर के मूलतः दो भेद हैं– भाव संवर और द्रव्य संवर।

(क) भाव संवर

शुभाशुभ भावों को रोकने में समर्थ जो शुद्धोपयोग है अर्थात् आत्मा के जिन भावों से कर्मों का आना बन्द होता है उन भावों या परिणामों को संवर कहते हैं।

(ख) द्रव्य संवर

जो द्रव्य-आस्रव अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मों का आना रोकता है, उसको द्रव्य संवर कहते हैं।

पांच महाव्रत (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह), पांच समिति (ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और व्युत्सर्ग), तीन गुप्ति (मनो, वचन, काय), दश धर्म (उत्तम- क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य), बारह अनुप्रेक्षाओं (अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ और धर्म), बाईस परीषह जय (क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्नय, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृण-स्पर्श, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, मल, अज्ञान और अदर्शन) और पांच प्रकार के चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय और यथाख्यात), ये

सब अनेक प्रकार के भाव संवर के भेद हैं। इनका विस्तृत वर्णन मूलाचार आदि ग्रन्थों में दिया है।

६– निर्जरा तत्त्व

कर्मों की स्थिति पूर्ण होने पर जिनका फल भोगा जा चुका है ऐसे पुद्गलमय कर्म जिन परिणामों से और तप के द्वारा जिन भावों से झड़ते हैं, वह भाव निर्जरा है। स्थिति पूर्ण होने से तथा तप के द्वारा कर्मों का झड़ना द्रव्य निर्जरा है। इस प्रकार निर्जरा दो प्रकार की जानना चाहिए।

(क) सविपाक निर्जरा

आबाधा-काल पूर्ण होने पर बद्धकर्म उदयावली में आकर निषेक-रचना के अनुसार खिरने लगते हैं, उनका यह खिरना ही सविपाक निर्जरा है। सिद्धों के अनन्तवें भाग और अभव्य-राशि से अनन्त गुणित कर्म-परमाणु प्रत्येक समय बन्ध को प्राप्त होते हैं और उतने ही कर्म परमाणु निर्जीर्ण हो जाते हैं। यह सब स्वभाव से ही होता है।

(ख) अविपाक निर्जरा

सम्यग्दर्शन, संयम और तत्पश्चरण आदि का निमित्त मिलने पर उन कर्म परमाणुओं को, जो कि अभी उदयावली में नहीं आये हैं – उन्हें उदयावली में लाकर, खिरा देना अविपाक निर्जरा हैं। कर्मों की निर्जरा करने के लिए अविपाक निर्जरा ही उपादेय है क्योंकि यह जीव पुरुषार्थ द्वारा ही अपने कर्मों को नष्ट कर सकता हैं। तीर्थंकर परमदेव भी तप का आश्रय लेकर ही अपने सम्पूर्ण कर्मों को नष्ट करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

तप – जो कर्म की विशेष निर्जरा हेतु किया जाता है, वह तप है। ज्ञान और क्रिया से समन्वित 'निष्काम तप' द्वारा ही आत्मा परमात्मा बन सकता है। तप के दो भेद हैं– बाह्य तप और आभ्यन्तर तप।

(क) बाह्य तप– जो तपश्चरण दूसरों के द्वारा देखने में आता है, उसे बाह्य तप कहते हैं। इसके छह भेद हैं–

(१) **अनशन–** जो मन और इन्द्रियों को जीतता है। इस भव और परभव के विषय सुखों की इच्छा नहीं करता है। अपने स्वरूप में ही निवास करता है। उक्त प्रकार जो पुरुष कर्मों की निर्जरा के लिए एक दिन, दो दिन आदि का परिमाण करके आहार का त्याग करता है, उसके अनशन नामक तप होता है।

(२) **अवमोदर्य तप–** राग–द्वेष आदि भावों को दूर करने के लिए भूख से कम भोजन करना अवमोदर्य तप है। एक ग्रास प्रमाण भोजन करना या एक ग्रास कम खाना भी अवमोदर्य तप है।

(३) **रस परित्याग–** जिह्वा की लालसा तथा इन्द्रियों को वश में करने के लिए दूध, दही, घी, तेल, नमक और मीठा इन छह रसों में से किसी एकादि प्रकार के रसों का त्याग करके भोजन करना रस परित्याग तप है।

(४) **वृत्तिपरिसंख्यान**–आहार को जाते समय साधु कुछ भी अटपटा नियम (घरों का, गली आदि का नियम) कर लेते हैं उसे वृत्तिपरिसंख्यान तप कहते हैं।

(५) **विविक्त–शय्यासन**– स्वाध्याय या ध्यान आदि की सिद्धि के लिये एकान्त स्थान में बैठना विविक्त–शय्यासन तप है।

(६) **कायक्लेश**– ध्यान करने के लिए पद्मासन आदि अनेक प्रकार के आसनों से दीर्घकाल तक बैठना, अनेक प्रकार से शरीर को कष्ट देना कायक्लेश तप कहलाता है।

(ख) आभ्यन्तर तप– जो तप दूसरों के द्वारा सामान्यतः दृष्टिगोचर नहीं होता है, उन्हें आभ्यन्तर तप कहते हैं। इसके मूल में छह भेद होते हैं–

(१) **प्रायश्चित्त–** पूर्वकृत अथवा अज्ञान व प्रमादवश लगे हुए दोषों का शोधन करना प्रायश्चित्त है। इसके नौ भेद हैं– आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना।

(२) **विनय**– **"विनयत्यपनयति यत्कर्म अशुभं तद्विनयम्"** अर्थात् जो अशुभ कर्मों को विनयति (दूर करता है या नष्ट करता है), ऐसे कर्म को विनय कहते हैं। इसके चार भेद हैं– ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उपचार।

(३) **वैयावृत्य–** किसी प्रकार की लौकिक चाह (इच्छा) से रहित होकर शरीर तथा अन्य वस्तुओं से गुणी जनों तथा मुनियों की सेवा करना वैयावृत्य है। **वैयावृत्य करके यह जीव सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर प्रकृति को भी बांध लेता है।**

(४) **स्वाध्याय–** स्वाध्याय शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है– स्व अर्थात निज का अध्याय अर्थात अध्ययन करना। आत्मा का अध्ययन करना ही वास्तविक स्वाध्याय है। प्रमाद को छोड़कर ज्ञान की आराधना करना स्वाध्याय तप है। इसके पांच भेद हैं–

जिनेन्द्र देव द्वारा कथित ग्रन्थों का वाचना (पढ़ना-पढ़ाना), पृच्छना (पूछना), अनुप्रेक्षा (याद किये गए विषय का चिन्तवन-मनन), आम्नाय (कण्ठस्थ किए विषय को पुनः पुनः याद करना) और धर्मोपदेश।

(५) **व्युत्सर्ग तप–** त्याग करने को व्युत्सर्ग तप कहते हैं। इसके दो भेद हैं–

बाह्यव्युत्सर्ग– क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य आदि बाह्यपरिग्रह का त्याग करना बाह्यव्युत्सर्ग है।

अन्तरंगव्युत्सर्ग– मिथ्यात्व, क्रोध, लोभ आदि अन्तरंगपरिग्रह का त्याग करना अन्तरंगव्युत्सर्ग है।

(६) **ध्यान–** मन की चंचलता को रोककर मन को किसी एक पदार्थ के चिन्तन-मनन में स्थिर करना ही ध्यान है या ज्ञान का निश्चल होकर वस्तु में स्थिर होना ध्यान कहलाता है। इसका विशेष वर्णन अध्याय ५ में दिया है।

१०– मोक्ष तत्त्व

आत्मा का जो परिणाम समस्त कर्मों का क्षय करने में कारण होता है वह भावमोक्ष है और कर्मों का आत्मा से अलग होना द्रव्यमोक्ष है।

भावार्थ– मोक्ष का वास्तविक अर्थ है– मुक्त होना। आत्मा में लगे हुए सम्पूर्ण कर्मों का नाश हो जाना ही मोक्ष है। आत्मा चेतन द्रव्य है और पुद्गल द्रव्य अजीव अर्थात चेतनारहित है। इन दोनों की संयोग-अवस्था ही बंध है जिसके कारण यह जीव संसार में घूमता रहता है। इन दोनों का अलग-अलग हो जाना ही मोक्ष है। यह मोक्ष दो प्रकार का होता है– (क) भाव मोक्ष और (ख) द्रव्य मोक्ष। आत्मा का जो भाव

सम्पूर्ण कर्मों को क्षय (नष्ट) करने में कारणभूत है वह भाव मोक्ष है। यह तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरिहन्त परमेष्ठी (सयोग केवली) के होता है। आत्मा में लगे हुए ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाना द्रव्य मोक्ष है। यह द्रव्य मोक्ष अयोग केवली गुणस्थानवर्ती जीव के अन्त समय में होता है क्योंकि सम्पूर्ण कर्मों की प्रकृतियों का अभाव वहीं पर होता है। आत्मा और कर्म का सम्बन्ध आदिरहित है। यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि बिना भेद-विज्ञान के यह संसारी जीव कभी भी मोक्ष अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता है। भेद-विज्ञान को प्राप्त करने के लिए दिगम्बर वेष को धारण करना जरूरी है, इसके अभाव में कभी भी भेद-विज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है।

भेद-विज्ञान– आत्मा और पुद्‌गल इन दोनों को अलग-अलग समझना ही भेद-विज्ञान है।

मोक्ष मार्ग– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र इन तीनों का एकरूप हो जाना ही मोक्ष मार्ग है। यह मोक्ष मार्ग दो प्रकार का है– निश्चय मोक्षमार्ग– जो मोक्ष मार्ग यथार्थ है एवं साक्षात मोक्ष का कारण है, उसे निश्चय मोक्षमार्ग कहते हैं। व्यवहार मोक्ष मार्ग– जो मार्ग निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त कराने में हेतु (कारण) है, वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। व्यवहार मोक्ष के बिना निश्चय मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं हो सकती है, क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता है।

अर्थात्– जो जन्म, जरा, रोग, मरण, शोक, दुख और भय से रहित है, शुद्ध सुख से युक्त है तथा नित्य है ऐसा निर्वाण अर्थात मोक्ष या निःश्रेयस् कहलाता है।

अथवा– आत्मा में लगे हुए सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना ही मोक्ष मार्ग है। मोक्ष मार्ग मुख्य रूप से दो प्रकार का है– व्यवहार मोक्ष मार्ग और निश्चय मार्ग।

(क) व्यवहार मोक्षमार्ग– व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनों को ग्रहण करना ही व्यवहार मोक्षमार्ग है।

(ख) निश्चय मोक्षमार्ग– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र इन तीनों (रत्नत्रय) से सहित आत्मा को ही निश्चय मोक्ष मार्ग कहते है।

व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग को प्राप्त कराने में कारणभूत है । जिस प्रकार वृक्ष के अभाव में फल नहीं हो सकता, उसी प्रकार व्यवहार मोक्षमार्ग के बिना

निश्चय मोक्षमार्ग नहीं बन सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में व्यवहार मोक्षमार्ग ही उपादेय है और जब हम शुद्धोपयोग में (निश्चय मोक्षमार्ग) में पहुंच जाते हैं तो व्यवहार स्वतः ही छूट जाता है, उसको छोड़ना नहीं पड़ता है।

मोक्ष – अवस्था ही एक ऐसी अवस्था है जिसको प्राप्त करने के बाद यह जीव कभी भी संसार में नहीं आता है क्योंकि उसने जन्म और मरण दोनों नष्ट कर दिये हैं। इसलिए प्रत्येक भव्य जीव को मोक्ष प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए। वही उपादेयभूत है।

११. सल्लेखना

रत्नत्रय पालन करते हुए एवम् धर्म साधना करते हुए जीवन तभी सफल है जब सल्लेखनापूर्वक मरण हो। यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसका विवेचन परिशिष्ट १.१० में दिया है।

१२. मेरा भविष्य क्या है ?

यह मेरे अपने हाथ में ही है। यदि मैंने रत्नत्रय का निर्दोषतापूर्वक, निरन्तर, समुचित पालन करते हुए, अन्त समय (मरण के समय) में सल्लेखनापूर्वक मरण किया, तो मेरी निकट भविष्य में मोक्ष प्राप्ति निश्चित है। इनके अभाव में वर्णनातीत दुःखों से भरपूर इस दुर्जेय भवसागर में अनन्त काल तक रुलना पड़ सकता है।

सन्दर्भ–

१. पद्मनन्दि पञ्चविंशति–रचयिता आचार्य श्री १०८ पद्मनन्दि।
२. द्रव्य संग्रह– रचयिता श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती।
३. दिगम्बर मुनि– रचियता आर्यिका श्री १०५ ज्ञानमती माताजी।
४. मुक्ति पथ की ओर – विरचित श्री १०५ क्षुल्लक सन्मति सागर जी।

अधिकारान्त मङ्गलाचरण

अधोलोक में ७,७२,००,०००, मध्य लोक में ४५८ तथा व्यन्तर एवं ज्योतिष लोक में असंख्यात, ऊर्ध्व लोक में ८४,९७,०२३ अर्थात तीन लोक में ८,५६,९७,४८१ तथा व्यन्तर–ज्योतिष लोक में अवस्थित असंख्यात अकृत्रिम जिन भवन (चैत्यालय) और इन जिन भवनो में विराजित समस्त जिन प्रतिमाओं के चरणों में मन-वचन–काय से

नमस्कार होवे। मानुष क्षेत्र में अवस्थित समस्त कृत्रिम जिन भवनों एवम् उनमें विराजित समस्त जिन प्रतिमाओं के चरणों में मेरा भावपूर्वक नमस्कार होवे।

श्री सम्मेदशिखर, चम्पापुर (मन्दारगिरि), पावापुर, गिरनारजी, कैलाश पर्वत, राजगृही, गुणावा, द्रोणगिरि, नैनागिरि, मुक्तागिरि, सिद्धवरकूट, गजपंथा, शत्रुञ्जय पर्वत, पावागिरि, कुंथलगिरि, सोनागिरि, उदयगिरि, खण्डगिरि, गुल्जारबाग (पटना), अहारजी, तारङ्गाजी, मांगीतुंगी, बड़वानी एवम् ढाई द्वीप में विराजित समस्त सिद्धक्षेत्र, तथा समस्त अतिशय क्षेत्र व अन्य पुण्य भूमियों (जिन कल्याणकों के स्थान आदि) के प्रति मेरा त्रिकाल भक्तिपूर्वक नमस्कार होवे।

रात्रि भोजन

रात्रि भोजन करन से, धर्म कर्म सब जाय।
दिन में भोजन शुद्ध जो, करैं रोग न आय।।

अनछना पानी

अनछने पानी के सबसे छोटे बिन्दु में सुप्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता केप्टिन स्ववोर्सवी द्वारा सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) यन्त्र से देखकर ली गयी फोटो के अनुसार ३६४५० सूक्ष्म जन्तु होते हैं। अतः दया धर्म पालने एवम् रोगों से बचने की, अर्थात् धार्मिक एवम् स्वास्थ्य दोनों ही दृष्टिकोण से पानी छानकर ही पीना चाहिए।

अध्याय ५

ध्यान

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं०	विवरण	पृष्ठ संख्या
१.	आर्त्तध्यान	१.१५७
२.	रौद्र ध्यान	१.१५७
३.	उपादेय ध्यान	१.१५७
४.	ध्यान प्राप्ति के उपाय	१.१५८
५.	ध्याता की योग्यता	१.१५६
६.	प्राणायाम का अभ्यास	१.१५६
७.	ध्यान के लिए अयोग्य स्थान	१.१६०
८.	ध्यान के लिए योग्य स्थान	१.१६१
६.	ध्यान के लिए योग्य आसन	१.१६१
१०.	ध्यान के योग्य मंत्र	१.१६२
११.	धर्म ध्यान	१.१६३
१२.	पिण्डस्थ नामक संस्थान धर्म ध्यान	१.१६४
१३.	शुक्ल ध्यान	१.१६६

अध्याय ५

ध्यान

मङ्गलाचरण

इंद–सद–णमिद–चलणं, अणंत–सुह–णाण–विरिय –दंसणयं।
भव्व–कुमुदेक्क–चंदं, विमल–जिणिंदं णमस्सामि ।।१३।।

कम्म–कलंक–विमुक्कं, केवलणाणे हि दिट्ठ–सयलट्ठं।
णमिऊण अणंत जिणं ।।१४।।

चउ–गइ–पंक–विमुक्कं, णिम्मल–वर–मोक्ख–लच्छि–मुह–मुकुरं।
पालदि य धम्म–तित्थं, धम्म–जिणिंदं णमंसामि ।।१५।।

उम्मग्ग–संठियाणं, भव्वाणं मोक्ख–मग्ग–देसयरं ।
पणमिय संति – जिणेसं ।।१६।।

अर्थ– जिनके चरणों में सहस्त्रों इन्द्रों ने नमस्कार किया है और जो अनन्त सुख, ज्ञान, वीर्य एवम् दर्शन से संयुक्त तथा भव्यजन रूपी कुमुदों को विकसित करने के लिए अद्वितीय चन्द्रस्वरूप हैं ऐसे विमलनाथ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।१३।। कर्मरूपी कलङ्क से रहित, केवलज्ञान में सम्पूर्ण पदार्थों को देखने वाले अनन्तनाथ जिन को मैं नमस्कार करता हूँ।।१४।। जो चतुर्गतिरूप पङ्क से रहित, निर्मल एवम् उत्तम मोक्ष–लक्ष्मी के मुख के मुकुर (दर्पण) स्वरूप तथा धर्म-तीर्थ के प्रतिपादक हैं, उन धर्म जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।१५।। उन्मार्ग में स्थित भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का उपदेश देने वाले शान्ति जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।१६।।

मन की चंचलता को रोक कर किसी एक पदार्थ के चिन्तन–मनन में स्थिर करना ही ध्यान है। इसके चार भेद हैं–

(१) आर्त्तध्यान (२) रौद्र ध्यान – ये दोनों ध्यान हेय हैं और दुर्गति को ले जाने वाले हैं।

(३) धर्म ध्यान (४) शुक्ल ध्यान– ये दोनों ध्यान उपादेय हैं और आत्मोन्नति के कारण हैं। शुक्ल ध्यान धर्म ध्यान के बाद ही होता है।

१–आर्त्तध्यान–

खोटे ध्यान को आर्त्तध्यान कहते हैं या विश्व का कोई भी पदार्थ जो मन में क्लेश उत्पन्न करे, उसके चिन्तन को आर्त्तध्यान कहते हैं। इसके पांच भेद हैं– आर्त्त, अनिष्ट- संयोगज, इष्ट-वियोगज, वेदना और निदान-बन्ध।

२–रौद्रध्यान–

रौद्र का मतलब क्रूरता से है। जो आत्मा का हर पल पतन करे, उसको रौद्र ध्यान कहते हैं। इसके चार भेद हैं – हिंसानन्दी, मृषानन्दी (असत्यानन्दी), चौर्यानन्दी और परिग्रहनन्दी।

हिंसानन्दी– जीवों के समूह को अपने से अथवा दूसरों के द्वारा मारे जाने पर अथवा कष्ट दिये जाने पर जो सदा हर्ष में ही मग्न रहता है उसे हिंसानन्दी रौद्र ध्यान कहते हैं। इसी प्रकार अन्य भी समझना चाहिए।

३– उपादेय ध्यान– धर्मध्यान एवम् शुक्ल ध्यान

"निर्जरा तत्त्व" के वर्णन से स्पष्ट होगा कि ध्यान एक आवश्यक अंतरंग तप है। इससे संवर व निर्जरा दोनों होते हैं।

अपने मन की समस्त प्रवृत्तियों को चारों ओर से रोककर मन को किसी एक विषय में लगाना ध्यान है। ध्यान को करने वाला ध्याता कहलाता है। जिस विषय पर चित्त को लगाया जाता है वह ध्येय है। ध्यान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त्त है। अन्तर्मुहूर्त के बाद नियम से ध्यान बदल जाता है। इस प्रकार का ध्यान उपशम तथा क्षपक श्रेणी वाले जीवों के ही होता है। शेष संसारी जीवों के जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक ध्यान होता है।

मन को वश में करने का उपाय संलग्न परिशिष्ट १.०५ में देखें।

अन्तर्मुहूर्त– आवली के ऊपर और मुहूर्त के भीतर के प्रत्येक समय को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। अड़तालिस मिनट का एक मुहूर्त होता है। आवली– एक श्वास में संख्यात

आवली होती है। एक आवली में जघन्ययुक्तासंख्यात समय होते हैं। समय काल की सबसे छोटी इकाई है। (देखिए परिशिष्ट १.०१ एवम् १.०३)

४– ध्यान प्राप्ति के उपाय

श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव द्रव्य संग्रह में कहते हैं:

तवसुद-वदवं चेदा, झाण-रह–धुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होइ ।।५७।।

अन्वयार्थ– (जम्हा) जिस कारण से (तवसुदवदवं) तप, श्रुत और व्रत को धारण करने वाला (चेदा) आत्मा (झाणरहधुरंधरो) ध्यान रूपी रथ की धुरा को धारण करने वाला (हवे) होता है (तम्हा) इसलिए (तल्लद्धीए) उस ध्यान की प्राप्ति के लिए (सदा) हमेशा (तत्तिय-णिरदा) उन तीनों में लीन (होइ) होओ।

अर्थ– तप, श्रुत और व्रतों को धारण करने वाला आत्मा ध्यानरूपी रथ की धुरा को धारण करने वाला होता है, इसलिए उस ध्यान की प्राप्ति के लिए हमेशा तपादि तीनों में लीन होओ।

भावार्थ– कहावत है "बुद्धिर्यस्य बल तस्य" जिसके पास विवेक है, युक्ति है, वही संसार के फन्दों को सुलझाकर स्वतंत्र हो सकता है। मन और इन्द्रियों के बेलगाम घोड़ों को जब युक्ति से रोका जायेगा तभी वे हमारे अनुकूल होकर बाधक के स्थान पर साधक होंगे। क्योंकि द्रव्य–मन, भाव–मन तथा द्रव्य और भाव–इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके बारह तप और पांच महाव्रतों का पालन करने वाला एवं शास्त्रों का मनन-चिन्तन करने वाला तपवान, श्रुतवान और व्रतवान आत्मा ही उत्कृष्ट ध्यान कर सकता है। इसलिए इस उत्तम ध्यान की प्राप्ति करने के लिए समस्त बहिरंग परिग्रहों (क्षेत्र, वास्तु, चाँदी, सोना, पशु, धान्य,दासी, दास, कुप्य, भांड) और अंतरंग परिग्रहों (मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद) का त्याग कर तप, व्रत और श्रुत में सदैव लीन रहना चाहिए। यह ही उत्कृष्ट ध्यान की प्राप्ति में कारणभूत है। जिस प्रकार रथ पर सवार होकर यह जीव एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है, उसी प्रकार तप, व्रत और शास्त्रों में लवलीन रहने वाला विशिष्ट योगी ध्यानरूपी रथ पर आरूढ़ होकर संसाररूपी नगर से निकलकर मोक्षरूपी महानगर में पहुँच जाता है। जहाँ जाकर वह

आकुलता से रहित (निराकुल), अक्षय परमसुख का अनुभव करता है अर्थात् निज शुद्ध-आत्मा का अनुभव करता है।

इस कथन को स्पष्ट करते हुए प्रवचनामृत सार में कहा है-

वैराग्यं तत्त्वविज्ञानं नैर्ग्रन्थ्यं समचिंतता।
परीषहजयश्चेति पंचैते ध्यानहेतवः।।
ध्यानस्य च पुनः मुख्यो हेतुरेतच्चतुष्टयम्।
गुरूपदेशः श्रद्धानं सदाभ्यासः स्थिरं मनः।।

अर्थात- वैराग्य (संसार, शरीर और भोगों से विरक्ति), भेद-विज्ञान, दिगम्बरत्व, समताभाव और परीषहों पर विजय ये पांच ध्यान के हेतु हैं। अथवा मुख्य निम्न चार हेतु हैं: सद्गुरुओं का सदुपदेश, समीचीन श्रद्धा, आगमाभ्यास और मन की स्थिरता।

५- ध्याता की योग्यता-

यद्यपि मुख्य तौर पर ध्यान के अधिकारी मुनि हैं, तथापि कितने ही आचार्यों ने अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त पर्यन्त यथायोग्य हेतु से कहे हैं। चारित्र और ज्ञान (सम्यक्दर्शन सहित) से संयुक्त, मदरहित, आलस्यरहित, संवेग व वैराग्ययुक्त, संवररूप, धीरवान, निर्मल चित्त वाला।

६- प्राणायाम का अभ्यास-

ज्ञानार्णव के प्राणायाम वर्णन सर्ग में श्री शुभचन्द्राचार्य कहते हैं।

अतः साक्षात्स विजेयः पूर्वमेव मनीषिभिः।
मनागप्यन्यथा शक्यो न कर्तुं चित्तनिर्जय ।।२।।

अर्थ- आचार्य महाराज कहते हैं कि ध्यान की सिद्धि के लिए पूर्वाचार्यों ने प्राणायाम की प्रशंसा की है, इस कारण ध्यान करने वाले बुद्धिमान पुरुषों को प्रथम से ही प्राणायाम को विशेष प्रकार से जानना चाहिए क्योंकि इसके जाने बिना अन्य प्रकार किंचिन्मात्र भी मन के जीतने को समर्थ नहीं हो सकते।

भावार्थ- यह प्राणायाम पवन का साधना है। सो शरीर में जो पवन होता है वह मुखनासाकादि के द्वारा श्वासोच्छ्वास द्वारा प्रगट जाना जाता है। इस पवन के कारण

मन भी चंचल रहता है। जब पवन वशीभूत हो जाता है, तब मन भी वश में हो जाता हैं। पवन के स्तम्भनस्वरूप प्राणायाम को लक्षण भेद से तीन प्रकार का कहा है–

(क) पूरक– द्वादशान्त कहिये तालु के छिद्र से अथवा द्वादश अंगुल पर्यंत से खेंचकर पवन को अपनी इच्छानुसार अपने शरीर में पूरण करे, उसको वायुविज्ञानी पंडितों ने पूरक कहा है।

(ख) कुम्भक– उस पूरक पवन को स्थिर करके नाभिकमल में जैसे घड़े को भरें, तैसे रोके। नाभि से अन्य जगह न चलने दे सो कुंभक कहा है।

(ग) रेचक– जो अपने कोष्ठ से पवन को अतियत्न से मंद–मंद बाहर निकाले, उसको पवनाभ्यास के शास्त्रों में विद्वानों ने रेचक ऐसा नाम कहा है।

जो नाभिस्कन्ध से निकला हुआ तथा हृदयकमल में से होकर द्वादशान्त (तालुरंध्र) में विश्रान्त (ठहरा) हुआ पवन है वह पवन का स्वामी है। इस पवन के अभ्यास में हृदय कमल की कर्णिका मे पवन के साथ चित्त को स्थिर करने पर मन में विकल्प नहीं उठते और विषयों की आशा भी नष्ट हो जाती है तथा अंतरंग में विशेष ज्ञान का प्रकाश होता है। इस पवन के साधन से मन का वश करना ही फल है। इससे ध्यान में विशेष सहायता मिलती है।

७– ध्यान के लिए अयोग्य स्थान

(क) मिथ्यात्वी व पापी जनों के रहने का स्थान।

(ख) कुदेव, कुशास्त्राध्ययन व कुगुरुओं का स्थान।

(ग) जुआरी, शराबी, व्यभिचारी, बंदीजन, शत्रु, रजस्वला व भ्रष्टचारित्री स्त्रियां, नपुंसक, अंगहीनों का स्थान।

(घ) दुष्ट राजा (जमींदार) के अधिकार का स्थान।

(ङ) जीव बध का स्थान।

(च) शिल्पी, मोची, लुहार, ठठेरे आदि का छोड़ा हुआ स्थान।

(छ) क्षोभकारक, मोहक तथा विकार करने वाला स्थान।

(ज) तृण, कण्टक, बांबी, विषम पाषाण, भस्म, उच्छिष्ट, हाड़, रुधिरादिक निंद्य वस्तुओं से दूषित स्थान।

(झ) जो स्थान कौआ, उल्लू, बिलाव, गधा, श्रृगाल, श्वानादिक से अवघुष्ट हो अर्थात जहाँ ये शब्द करते हों, वह स्थान एवम् अन्य विघ्नकारक स्थान।

८– ध्यान के लिए योग्य स्थान

(क) सिद्धक्षेत्र, तीर्थंकरों के कल्याणक स्थान

(ख) सिद्धकूट, चैत्यालय।

(ग) समुद्र का किनारा, वन, पर्वत का शिखर, नदी के किनारे, जल के मध्य द्वीप।

(घ) प्रशस्त (निर्दोष–उज्जवल) वृक्ष के कोटर में, शमशान में, पर्वत की जीवरहित गुफा में, पृथ्वी के नीचे ऊँचे प्रदेश में, कदलीगृह (केलों के कुंजों) में, शालवृक्षों के समूह में, नदियों का जहाँ संगम हुआ हो।

(ङ) आकुलतारहित उपद्रवरहित स्थान, शून्य घर, सूना ग्राम।

(च) वर्षा, आतप, हिम, शीतादि तथा प्रचण्ड पवनादि से वर्जित स्थान।

तात्पर्य है कि ध्यान के योग्य वह स्थान है जहां रागादि दोष निरंतर लघुता को प्राप्त हों।

९– ध्यान के लिए योग्य आसन

(क) काष्ठ का तख्ता तथा शिला पर अथवा भूमि पर व बालू, रेत के स्थान में भले प्रकार स्थिर आसन करे।

(ख) पद्मासन, अर्धपद्मासन, सुखासन, वज्रासन, वीरासन, कमलासन, कायोत्सर्ग आसन।

इस समय काल दोष से वीर्य की विकलता अथवा सामर्थ्य की हीनता के कारण, कई आचार्यों ने पद्मासन और कायोत्सर्ग, ये ही आसन प्रशस्त कहे हैं। वैसे जिस आसन से सुखरूप मन को निश्चल कर सके, वही सुन्दर आसन है।

(ग) ध्यान प्रसन्नमुख पूर्व दिशा अथवा उत्तर दिशा में मुख करके करे। पूर्व दिशा उगते हुए सूर्य अथवा आत्मा की उन्नति का प्रतीक है। उत्तर दिशा में विदेह क्षेत्र में बीस तीर्थंकर अरिहन्त भगवान विराजमान हैं, इसलिए प्रशस्त है।

१०– ध्यान के योग्य मंत्र

परमेष्ठी वाचक मंत्र– इसको णमोकार मंत्र भी कहते हैं।

श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव द्रव्य संग्रह में लिखते हैं–

पणतीस–सोल–छप्पण, चदु–दुगमेगं च जवह झाएह।
परमेट्ठिवाचायाणं, अण्णं च गुरुवएसेण ।।४६।।

भावार्थ– णमोकार मन्त्र में मातृका ध्वनियों का अर्थात् सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम– इन तीनों प्रकार का क्रम सन्निविष्ट है। इसी कारण यह आत्मकल्याण के साथ लौकिक अभ्युदयों को भी देने वाला है। अष्टकर्मों के विनाश करने की भूमिका इसी मंत्र के द्वारा उत्पन्न की जा सकती है। संहारक्रम विनाश को प्रकट करता है तथा सृष्टिक्रम और स्थितिक्रम आत्मानुभूति के साथ लौकिक अभ्युदयों की प्राप्ति में भी सहायक है। इस मंत्र की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि इसमें मातृका ध्वनियों के तीनों प्रकार के मंत्रों की उत्पत्ति हुई है। मंत्र बीजों की निष्पत्ति बीज और शक्ति के संयोग से होती है।

महामंत्र की समस्त मातृका ध्वनियां निम्न प्रकार है–

अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क् ख् ग् घ् ङ् च छ् ज् झ् ञ् ट ठ् ड् ढ् ण् त् थ् द् ध् न् प् फ ब् भ् म् य् र् ल् व् श् ष् स् ह्।

जयसेन प्रतिष्ठापाठ में कहा गया है–

अकारादिहकारान्ता वर्णाः प्रोक्तास्तु मातृकाः
सृष्टिन्यास–स्थितिन्यास–संहृतिन्यासतास्त्रिधा।।

अर्थात्– अकार से लेकर हकार पर्यन्त मातृकावर्ण कहलाते हैं। इनका तीन प्रकार का क्रम है– सृष्टिक्रम, स्थितिक्रम और संहारक्रम। ककार से लेकर हकार पर्यन्त व्यंजन वर्ण बीजसंज्ञक हैं और अकारादि स्वर शक्तिरूप हैं।

यह मंत्र पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर वाला है। अतः उसके मंत्र का जाप करो, ध्यान करो और अन्य मंत्रों को भी गुरु के उपदेश से जपो (ध्यान करो)।

परमेष्ठी– जो परम पद में स्थित रहते हैं, वे परमेष्ठी कहलाते हैं इनका स्वरूप परिशिष्ट– १.०६ में दिया है।

पंचत्रिंशत्यक्षरी णमोकार मन्त्र अर्थात् पैंतीस अक्षरों का मन्त्र–

णमो अरिहंताणं, णमोसिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

षोडशाक्षरी मंत्र– अर्हं सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।
षडक्षरी मंत्र– ॐ नमो अर्हेभ्यः।
पंचाक्षरी मंत्र– ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः।
चतुराक्षरी मंत्र– ॐ सिद्धेभ्यः।
युग्माक्षरी मंत्र– अर्हं
एकाक्षरी मंत्र– ॐ।

१९– धर्म ध्यान

धर्म से संबंधित विषय पर चित्त को एकाग्र करना धर्म ध्यान है। इसके चार भेद होते हैं–

(क) **आज्ञा विचय**– अपनी बुद्धि के मंद होने से और पदार्थ के सूक्ष्म होने से जब युक्ति और उदाहरण की गति न हो तो ऐसी अवस्था में सर्वज्ञ देव द्वारा कथित आगम में पंचास्तिकाय, छह द्रव्यों, तत्त्वों, वस्तु स्वभाव, स्थावर तथा त्रस आदि का जिस प्रकार का वर्णन किया है उसको उसी प्रकार का मानना, श्रद्धान करना, आचरण करना, उनकी आज्ञा का पालन करना आज्ञा विचय धर्मध्यान है।

(ख) **अपाय विचय**– अपाय का अर्थ है नाश। जिस ध्यान में कर्मों का अपाय अर्थात् नाश कैसे हो, स्वयं और दूसरे जीवों के दुःखों का नाश कैसे हो ? जिनेन्द्र देव

द्वारा प्रतिपादित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ओर सम्यक्चारित्र की प्राप्ति कैसे हो ? आदि कारणों का उपाय, आचरण व चिन्तन करना अपाय विचय धर्मध्यान है।

(ग) **विपाक विचय–** संसारी जीवों के द्वारा संचित किए गये कर्मों के फलोन्मुख होने को विपाक कहते हैं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव इन पांच प्रकारों से संसार की अपेक्षा कर्म कैसे-कैसे फल देते हैं– जिस समय के लिए जो कर्म बाँधा था, वह अपने समय में उदय होता हुआ फल देता जा रहा है, उसमें हम राग-द्वेष न करें, यथार्थ मनन करना विपाक विचय धर्मध्यान है।

(घ) **संस्थान विचय–** लोक के आकार और उसके स्वरूप का बार-बार चिन्तन करना संस्थान विचय धर्मध्यान है। इसके अन्तर्गत चार प्रकार के ध्यान हैं। पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। इनमें क्रमशः स्वात्मा, पंच परमेष्ठी, अरिहन्त परमेष्ठी एवं सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान किया जाता है। इसका वर्णन ज्ञानार्णव ग्रन्थ से जानना। यह ध्यान निर्ग्रंथ मुनियों के लिए है, किन्तु अभ्यास के दृष्टिकोण से पिण्डस्थ ध्यान का स्वरूप निम्नवत वर्णित है, जो कथंचित श्रावक भी कर सकता है। श्रावक पदस्थ, रूपस्थ तथा रूपातीत ध्यान के लिए अयोग्य है।

१२– पिण्डस्थ नामक संस्थान धर्मध्यान

इसमें पार्थिवी, आग्नेयी, वायु, जल और तत्त्वरूपी पांच धारणायें यथाक्रम से होती हैं।

(क) पृथ्वी (पार्थिवी) धारणा

मन-वचन-काय की शुद्धिकर पद्मासन, अर्धपद्मासन अथवा सुखासन, जिसमें आकुलता न हो, बैठें। इसका सर्वोत्तम स्थान श्री जिन मन्दिर जी है। अपना मुख श्री प्रतिमा जी की ओर रखें और श्री जी से निवेदन करें कि मैं आपके समान अरिहन्त-सिद्ध बनना चाहता हूँ तथा इसमें आपकी अनुकम्पा चाहता हूँ। यदि आप अन्यत्र जगह हैं, तो जहाँ तक हो सके एकान्त में बैठें, सामने श्री भगवान जी का चित्रादि रख लें और अपना मुख पूर्व अथवा उत्तर दिशा में रखें। यदि पूर्व दिशा हो, तो प्रातःकाल के उगते सूर्य के तरह अपने आत्मोन्नति की कामना करें और यदि उत्तर

दिशा हो, तो विदेह क्षेत्र में विराजमान, श्री सीमंधरादि भगवानों का चिन्तवन करें। आसनों में दाभ (नारियल-जूट) का आसन सर्वश्रेष्ठ है।

यदि आप मन्दिर जी में हैं, तो दिशा बन्धन की आवश्यक्ता नहीं है। परन्तु यदि आप अन्य जगह जैसे घर में हैं, तो उसकी आवश्यक्ता होगी। इसके लिये पूर्व-दक्षिण-पश्चिम उत्तर दिशा में क्रमानुसार सीमा बाँध दें, ताकि कोई जीव आपको ध्यान के समय बाधा न पहुँचाये। तत्पश्चात् अपने शरीर की रक्षा हेतु "ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री णमो अरिहंताणं" मंत्र बोलते हुए अपने मस्तिष्क पर हाथ फेरते हुए श्री अरिहन्त परमेष्ठी से प्रार्थना करें कि वे आपके सिर की रक्षा करें, "ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री णमो सिद्धाणं" मंत्र बोलते हुए अपने वक्ष पर हाथ फेरते हुए श्री सिद्ध परमेष्ठी से प्रार्थना करें कि वे आपके वक्ष की रक्षा करें, "ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री णमो आइरियाणं" मंत्र बोलते हुए अपने दोनों हाथों पर हाथ फेरते हुए श्री आचार्य परमेष्ठी से प्रार्थना करें कि वे आपके हाथों की रक्षा करें, "ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री णमो उवज्झायाणं" मंत्र बोलते हुए अपनी पीठ पर हाथ फेरते हुए श्री उपाध्याय परमेष्ठी से प्रार्थना करें कि वे आपकी पीठ की रक्षा करें और "ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री णमो लोए सव्वसाहूणं" मंत्र बोलते हुए अपने पैरों के ऊपर से (बगैर स्पर्श किये) हाथ फेरते हुए श्री साधु परमेष्ठी से प्रार्थना करें कि वे आपके पैरों की रक्षा करें। इस प्रकार पंच परमेष्ठी से सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करने की प्रार्थना करें।

तत्पश्चात् अनन्तानन्त अलोकाकाश के मध्य में स्थित लोकाकाश, जगत अथवा त्रिलोक का चिन्तवन करें, जिसका वर्णन "मैं कहाँ हूँ" प्रकरण में दिया है। इसके मध्य लोक में एक राजू व्यास का गोलाकार, एक हजार योजन गहराई वाले एक महासागर की कल्पना करें। इस महासागर में क्षीरसागर का जल भरा है जो अत्यन्त निर्मल और परम शान्त है। सम्बन्धित आकाश भी निर्मल है। इस महासागर और आकाश में कोई थलचर, जलचर अथवा नभचर जीव नहीं है, जल में कोई लहरें नहीं हैं तथा परम शान्त है, वायु भी नहीं बह रही है। कोई आवाज भी नहीं हो रही है तथा पूर्ण निस्तब्धता छाई हुई है।

इस महासागर के मध्य में एक लाख योजन प्रमाण का एक सहस्त्र दल का स्वर्ण कमल है, जिसके मध्य में स्वर्ण कर्णिका है। इस कर्णिका के मध्य में एक लाख योजन ऊँचा एक स्वर्णमयी सुमेरु पर्वत है। पर्वत के ऊपर मध्य में पाण्डुक वन है,

जिसके मध्य में पाण्डुक शिला है। इस पाण्डुक शिला के मध्य में एक स्फटिक मणि का सिंहासन है। उस पर मैं बैठा हुआ हूँ और मेरा मुँह श्री भगवान जी के सम्मुख है। श्री प्रभु जी से निवेदन करें कि इस पिण्डस्थ ध्यान के द्वारा मैं कर्मों को नष्ट कर आपके समान अरिहन्त-सिद्ध बनना चाहता हूँ, जिसमें आपका आशीर्वाद चाहिए।

इस प्रकार अपने को स्थित करके, कल्पना करें कि आपके नाभि के स्थान में एक सोलह दल का श्वेत कमल है, जिसके मध्य में अर्थात् नाभिस्थान में एक श्वेत कर्णिका है। कमल के सोलह पटलों पर सामने के ओर से घड़ी की दिशा **(clockwise direction)** में पीले रंग से क्रमशः 'अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः' इन सोलह अक्षरों का ध्यान करें और मध्य की श्वेत कर्णिका में "र्हं" महामंत्र का स्थापन करें। तत्पश्चात् हृदय के स्थान पर एक औंधा श्यामवर्ण के कमल का चिन्तवन करें जिसके पटलों पर क्रमशः घड़ी की दिशा में ज्ञानावरणी कर्म, दर्शनावरणी कर्म, वेदनीय कर्म, मोहनीय कर्म, आयु कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म और अन्तराय कर्म, ये आठ कर्म काले रंग से लिखे हुए हैं।

(ख) अग्नि धारणा

इसके पश्चात् चिन्तवन करें कि अरिहन्त परमेष्ठी की कृपा से मेरी आत्म–ज्योति जगी, सिद्ध परमेष्ठी की कृपा से आत्म-शक्ति बढ़ी, आचार्य परमेष्ठी की कृपा से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई, उपाध्याय परमेष्ठी की कृपा से सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति हुई और साधु परमेष्ठी की कृपा से सम्यक्चारित्र की प्राप्ति हुई। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की एकता से मोक्षमार्ग प्रशस्त हुआ और सम्यक्तप हुआ, सम्यक्तप से सम्यक्ध्यान हुआ और सम्यक्ध्यान के कारण नाभिमण्डल में स्थित महामंत्र "र्हं" के रेफ् (ं) से ध्यानाग्नि प्रकट हुई। यह ध्यानाग्नि निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होती हुई हृदय कमल के मध्य से उसको वेधते हुई ऊपर उठी और मस्तिष्क को वेधते हुई ऊपर उठकर, फिर समस्त शरीर को त्रिकोणानुसार रूप से घेर लेती है।

अग्नि की ज्वाला से रं रं रं की ध्वनि निकल रही है। उसी अग्नि से त्रिकोण के अन्दर प्रत्येक कोण पर "ॐ र्हं" मंत्र को लिखें और त्रिकोण के बाहर स्वास्तिक बनायें जो चौबीसों तीर्थंकरों का प्रतीक है। इस प्रकार विचारें कि मंत्राग्नि से कर्म जल रहे हैं तथा बाह्याग्नि से नोकर्म अर्थात शरीर जल रहा है। यह अग्नि प्रलय काल की अग्नि का रूप लेकर लोकाग्र तक जा पहुंची है। चूँकि कर्म, शरीर तथा अग्नि सभी

मेरी आत्मा से अलग हैं और इसलिये मेरी आत्मा को न तो ये जला सकती है और न कुछ हानि पहुँचा सकती है। मैं मात्र ज्ञाता– दृष्टा बनकर उदासीन भाव से समस्त कर्मों को एवम् नोकर्म शरीर को जलता हुआ देख रहा हूँ और भस्म (राख) बनता हुआ देख रहा हूँ। अब थोड़ी देर में जब समस्त कर्म और नोकर्म शरीर जल गया, तो जलने योग्य पदार्थ के अभाव में अग्नि धीरे-धीरे शान्त हो गयी।

(ग) वायु धारणा

अब आकाश में पूर्ण होकर विचरते हुए महावेग वाले और महाबलवान ऐसे वायुमण्डल का चिन्तवन करें। तत्पश्चात् उस पवन को ऐसा चिन्तवन करें कि वह देवों की सेवा को चलायमान करता है, मेरू पर्वत को कम्पायमान करता है, मेघों के समूह को बिखेरता हुआ, समुद्र को क्षोभरूप करता हुआ तथा लोक के मध्य में गमन करता हुआ, छहों दिशाओं में स्वाँय, स्वाँय, स्वाँय कर संचरता हुआ, बह रहा है। इस प्रबल वायुमण्डल ने जो कर्म और शरीरादिक की भस्म है, उसको तत्काल उड़ा दिया। तत्पश्चात् इस वायु को स्थिर रूप चिन्तवन करके शान्तरूप करें।

(घ) वारुणी (जल) धारणा

वायु धारणा के पश्चात् ध्याता इन्द्रधनुष, बिजली, गर्जनादि चमत्कार सहित मेघों के समूह से भरे आकाश का ध्यान करें। उन मेघों के समूह से पं पं पं शब्द सहित जल की मोटी-मोटी धारा बरस रही है और उससे अवशेष भस्म बहकर चली गई, ऐसा चिन्तवन करें।

(ङ) तत्त्व धारणा

अब उस स्थान पर समस्त कर्मों व नोकर्मों-शरीर के नष्ट हो जाने से मात्र निर्दोष आत्मा ही शेष रही। आत्मा के ऊर्ध्व गति के स्वभाव होने के कारण और उससे अब कोई बन्धन सम्बद्ध न होने के कारण, वह एक समय में सिद्ध शिला के ऊपर सिद्धलोक में लोकाग्र पर तनुवातवलय में विराजित हो गई और आगे धर्म द्रव्य के अभाव में वहीं पर स्थित हो गई। अब चिन्तवन करें कि मेरी आत्मा संसाररहित, जन्मरहित, जरारहित, मरणरहित है। मेरी आत्मा मिथ्यात्वरहित, प्रमादरहित, मनोयोगरहित, वचनयोगरहित, काययोगरहित है। मेरी आत्मा कामरहित, क्रोधरहित, मानरहित, मायारहित, लोभरहित, हास्यरहित, रतिरहित, अरतिरहित, भयरहित,

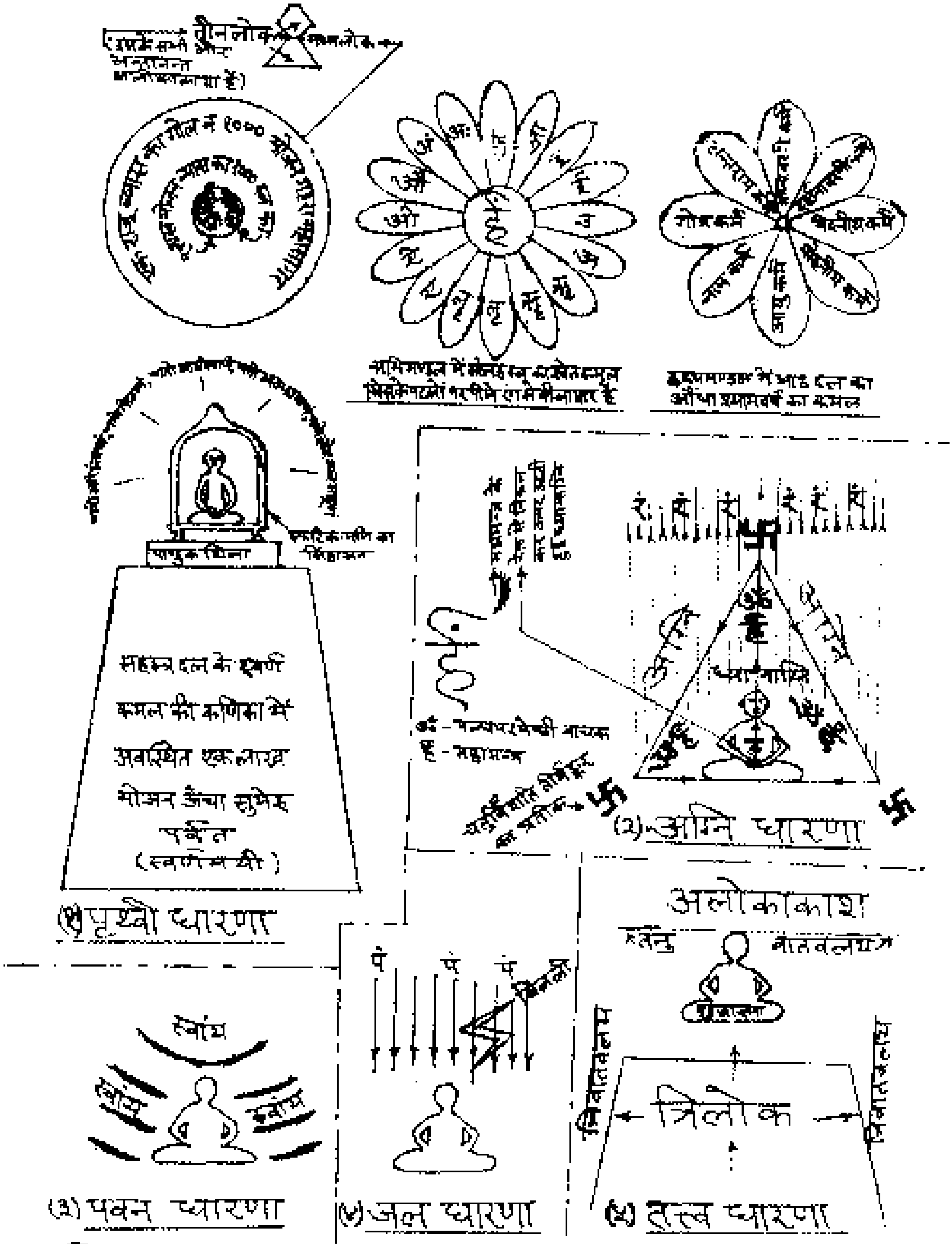

चित्र - 1.23

पिण्डस्थ धर्मध्यान

शोकरहित, जुगुप्सारहित, स्त्रीवेदरहित, पुरुषवेदरहित, नपुंसकवेदरहित है। मेरी आत्मा क्षुधारहित, पिपासारहित, रोगरहित, चिंतारहित है और मेरी आत्मा में लेशमात्र भी कोई दोष नहीं है। मेरे सम्यक्त्वादि सभी गुण पूर्ण प्रकट हो गये हैं। ज्ञानावरणी कर्म के नष्ट होने से अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणी कर्म के नष्ट होने से अनन्त दर्शन, वेदनीय कर्म के नष्ट होने से अव्याबाधत्व गुण, मोहनीय कर्म के नष्ट होने से क्षायिक सम्यक्त्व और अनन्त सुख, आयु कर्म के नष्ट होने से अवगाहनत्व गुण, नाम कर्म के नष्ट होने से सूक्ष्मत्व गुण, गोत्र कर्म के नष्ट होने से अगुरुलघुत्व गुण और अन्तराय कर्म के नष्ट हो जाने से अनन्त वीर्य गुण प्रकट हो गये हैं। आत्मा ब्रह्मचर्य (आत्मा में चर्या) में परम स्थित है। इस प्रकार आत्मा का चिन्तवन कर अतीन्द्रिय आनन्द में मग्न हो जावें।

पिण्डस्थ ध्यान के पश्चात पंचरमेष्ठी के प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए, चारों दिशाओं के बन्धन को खोल दें। यह ध्यान मोक्ष प्राप्ति के लिए कारणभूत है। उपरोक्त धारणायें चित्र १.२३ में दर्शित की गयी हैं।

१३– शुक्ल ध्यान

जिस ध्यान से परिणामों में विशेष विशुद्धि आती है, उस ध्यान को शुक्लध्यान कहते हैं। यह शुक्लध्यान धर्मध्यान के अनन्तर, अत्यन्त शुद्धता को प्राप्त हुआ धीर, वीर मुनि के होता है। इसके चार भेद हैं–

(क) पृथक्त्ववितर्कवीचार

इस ध्यान में छह द्रव्यों, सात पदार्थों का विचार करते समय मन–वचन–काय इन तीनों योगों में परिवर्तन होता रहता है। अथवा जिस ध्यान में पृथक्–पृथक् रूप से वितर्क अर्थात श्रुत का वीचार अर्थात संक्रमण होता है अर्थात जिसमें अलग–अलग श्रुतज्ञान बदलता रहता है, उसको सवितर्क सवीचार सपृथक्त्व ध्यान कहते हैं। पृथक्त्वविर्तकवीचार शुक्ल ध्यान का ध्याता १४ पूर्वों का ज्ञाता होता है। **वितर्क–** तर्क का अर्थ विचार करना है, 'वि' उपसर्ग है। इसलिए विशेष विचार करना वितर्क है। मोक्षशास्त्र के अनुसार 'वितर्कः श्रुतम्'' श्रुतज्ञान को वितर्क कहते हैं। **वीचार–** ध्यान करते समय मन–वचन–काय इन योगों का बदलना तथा ध्यान करने का विषय बदलना वीचार है। क्षपक श्रेणी मुनि के इस ध्यान से दसवें गुणस्थान के अन्त में मोहनीय कर्म जो कि सब कर्मों में प्रधान है, का क्षय हो जाता है। उपशम श्रेणी मुनि

के इस ध्यान से दसवें गुणस्थान के अन्त में मोहनीय कर्म का पूर्ण उपशम हो जाता है।

(ख) एकत्ववितर्कवीचार

यह ध्यान पृथक्त्ववितर्कवीचार के पश्चात् ही क्षपक श्रेणी मुनि के होता है। मन-वचन-काय इन तीनों योगों में से किसी एक योग द्वारा किसी एक द्रव्य या तत्त्व का चिन्तन करना एकत्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान है। इसमें जीव जिस योग में लवलीन रहता है उसका वही योग रहता है, योग बदलता नहीं है। इस ध्यान से ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय कर्म का क्षय होकर, अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति होती है। यह क्षय बारहवें गुणस्थान के अन्त में होता है। केवलज्ञानी होने के पश्चात् त्रैलोक्यपूज्य, धर्म चक्रवर्ती, त्रिलोकाधिपति होकर अरिहन्तपद को प्राप्त होते हैं और भाव मुक्त हो जाते हैं।

(ग) सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति

जब सयोग केवली की अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहती है, तो यह ध्यान होता है। इसमें समुद्घात के द्वारा अन्य अघातिया कर्मों की स्थिति यदि आयु कर्म से अधिक हो, तो आयु कर्म के बराबर हो जाती है। इस समुद्घात विधि में आत्मा के प्रदेश प्रथम समय में दण्ड रूप लम्बे, द्वितीय समय में कपाट रूप चौड़े, तृतीय समय में प्रतर रूप मोटे होते हैं और चौथे समय में इसके समस्त प्रदेश समस्त लोक में भर जाते हैं। ये सब क्रिया चार समय में होती है। इसमें ध्यान के बल से वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की स्थिति घटाकर, अर्थात भोग में लाकर, आयु कर्म के समान हो जाती है। इसके पश्चात् उसी क्रम से लोकपूरण से प्रतर, कपाट, दण्ड रूप होकर चौथे समय में शरीर के समान आत्म-प्रदेश हो जाते हैं।

जिनकी चेष्टा अचिन्त्य है, ऐसे केवली भगवान उस समय बादर काय योग में स्थिति करके, बादर वचन योग और बादर मनोयोग को सूक्ष्म करते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म काय योग में स्थिति करके, क्षण मात्र में उसी समय वचन योग और मनोयोग दोनों का निग्रह करते हैं। तब तीनों योगों में मात्र एक सूक्ष्म काय योग में स्थिति रह जाती है। यही तृतीय सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ध्यान है।

(घ) व्युपरत क्रिया निवृत्ति

अयोग नामक चौदहवें गुणस्थान के जिसका काल इतना है कि जितने समय में लघु पांच अक्षर अ इ उ ऋ लृ का उच्चारण होता है, तब उपान्त्य समय में यह ध्यान प्रकट होता है। उपान्त्य समय में ७२ कर्म प्रकृतियां नष्ट हो जाती हैं और अन्त समय में शेष १३ कर्म प्रकृतियां नष्ट हो जाती है। इस गुणस्थान में मन, वचन, काय योगों से रहित होने के कारण यथाख्यात चारित्र अर्थात चारित्र की पूर्णता प्रगट होती है। श्वासोच्छ्वास का संचार और समस्त प्रदेशों की हलन–चलन क्रिया रुक जाती है।

इसके पश्चात जीव ऊर्ध्व गमन के द्वारा एक समय मात्र में निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

नोट– केवली भगवान का चरित्र अचिन्त्य है। राग, मोह, आकांक्षा, इच्छादि का सर्वथा अभाव हो जाने के कारण, जो उपरोक्त सूक्ष्मक्रिया–अप्रतिपाति एवम् व्युपरत क्रिया निवृत्ति नामक शुक्लध्यान है वह केवल उपचार से है। अर्थात उनके यह स्वभावतः ही होता है तथा उसमें इच्छा आदि का सद्‌भाव नहीं है।

सन्दर्भ

१. द्रव्य संग्रह – रचियता– मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती।

२. ज्ञानार्णव– श्री शुभचन्द्राचार्य, विरचित–हिन्दी भाषा टीकाकर्ता– श्री पन्नालाल बाकलीवाल।

३. परम पूज्य आचार्य श्री १०८ दयासागर जी का मार्गदर्शन

अधिकारान्त मङ्गल भावना

मैं बारह भावनाओं (अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधि दुर्लभ एवम् धर्म भावना) जो वैराग्य की जननी हैं, निरन्तर चिन्तवन करता हूँ।

मैं दशलक्षण धर्मों (उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन और ब्रह्मचर्य) को पालन करने की भावना करता हूँ।

मैं अष्टाङ्ग सम्यक्‌दर्शन, अष्टाङ्ग सम्यग्ज्ञान एवम् त्रियोदश पूर्वक सम्यक् चारित्र पालन करने की भावना करता हूँ।

मैं सम्यक् दर्शनाराधना, ज्ञानाराधना, चारित्राराधना एवम् तपाराधना करने की भावना भाता हूँ।

मैं सम्यक् दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार एव् वीर्याचार पालन करने की भावना करता हूँ।

मैं दर्शनविशुद्धि, विनय सम्पन्नता, शीलव्रतेष्वनतीचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, संवेग, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधु समाधि, वैयावृत्य, अर्हदभक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, आवश्यकापरिहाणि, मार्गप्रभावना एवम् प्रवचन वात्सल्य नामक षोडसकारण भावनाओं का चिन्तवन करता हूँ।

अन्त में मैं मरण के समय सल्लेखनापूर्वक समाधिमरण की भावना करता हूँ।

मुक्तक

सोये चेतन को हर पल जगाते रहो,
सप्त व्यसनों को मन से भगाते रहो।

किस घड़ी काल आकर दबोचे हमें,
मंत्र नवकार का गुनगुनाते रहो।।

-मनोज जैन 'मधुर', भोपाल

अभिषेक करने से पापों का प्रक्षालन होता है।

परिणामों की विशुद्धि होती है।।

-आचार्य श्री १०८ भरतसागर जी

अध्याय ६

प्रथम भाग का सारांश

मङ्गलाचरण

केवलणाण-दिणेसं, चोत्तीसादिसय -भूपि-संपण्णं।
अप्प-सरूवम्मिठिदं, कुंथु-जिणेसं णमंसामि ।।१७।।

संसारण्णव-महणं, तिहुवण-भवियाण सोक्ख-संजणणं।
संदरिसिय -सयलत्थं, अर-जिणणाहं णमंसामि ।।१८।।

भव्व-जण-मोक्ख-जणणं, मुणिदं देविंद-पणद-पय -कमलं।
अप्प-सुहं संपत्तं, मल्लि-जिणेसं णमंसामि ।।१६।।

अर्थ– जो केवलज्ञान रूप प्रकाश युक्त सूर्य हैं, चौंतीस अतिशय रूप विभूति से सम्पन्न हैं और आत्म-स्वरूप में स्थित हैं, उन कुन्थु जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१७।। जो संसार समुद्र का मंथन करने वाले हैं और तीनों लोकों के भव्यजीवों को मोक्ष के उत्पादक हैं तथा जिन्होंने सकल पदार्थ दिखला दिये हैं, ऐसे अर जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।१८।। जो भव्य जीवों को मोक्ष-प्रदान करने वाले हैं, जिनके चरण-कमलों में मुनीन्द्रों और देवेन्द्रों ने नमस्कार किया है, आत्म सुख से सम्पन्न ऐसे मल्लिनाथ जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ ।।१६।।

यह जीव अनादि काल से मोह रूपी मद में फंसने एवमं मिथ्यात्व (सम्यक्त्व का अभाव) के कारण चार गतियों की चौरासी लाख योनियों में अवर्चनीय सांसारिक दुःखों को भोग रहा है। जो जीव जन्म लेता है, उसका मरण निश्चित है; उसका धर्म के अतिरिक्त कोई शरण नहीं है; संसार के दुःख उसको भोगने ही पड़ते हैं; इसका कोई साथी नहीं होता क्योंकि यह अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरण को प्राप्त होता है; धन, सम्पत्ति, कुटुम्बीजन, मित्र आदि, यहां तक कि शरीर भी अपने नहीं होते; इसके शरीर में सर्वाधिक घृणित पदार्थ– मल, मूत्र आदि भरे होते हैं; मोहवश यह जीव कर्मों द्वारा पीड़ित होते हुए इस जगत अर्थात त्रिलोक में सर्वत्र जन्म-जन्म में घूमता

रहता है। जब इसकी मोहनिद्रा का उपशम होता है और पुण्योदय से सद्गुरु का निमित्त मिलता है, तब कर्माश्रव का कुछ उपाय निकलता है अर्थात सम्यक्दर्शन की प्राप्ति के फलस्वरूप संवर द्वारा कर्माश्रव कुछ रुकता है। यदि यह जीव सर्वज्ञ द्वारा कथित धर्म के मार्ग में संयम का सहारा लेकर आगे बढ़ता है तो सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र/तप का आश्रय लेकर पिछले कर्मों की निर्जरा करता है। निर्ग्रंन्थ मुनि बनकर महाव्रतों, समिति व गुप्तियों का पालन करते हुए व्यवहार सम्यक्त्व से आगे अग्रसर होते हुए धर्म ध्यान से आगे, शुक्लध्यान द्वारा स्वात्मा में अत्यधिक लीन होकर निश्चय सम्यक्त्व द्वारा कर्मों की सम्पूर्ण निर्जरा कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। यद्यपि सांसारिक सुख व वैभव प्राप्त करना फिर भी कुछ सुगम है, किन्तु इस जीव को बोधि ज्ञान का प्राप्त होना जो मोक्ष प्राप्ति का मूल कारण है, अत्यन्त दुर्लभ है। किन्तु यदि यह जीव केवल धर्म का आश्रय लेकर अविचलित होकर दृढ़ संकल्प द्वारा संयम का मार्ग अपनाता है, तो उसको बगैर मांगे ही सर्वाधिक सुख, अर्थात मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। जिस प्रकार अनादिकाल से स्वर्ण की खान में स्वर्ण अन्य पदार्थों के साथ रासायनिक तथा भौतिक रूप से मिश्रित होता है और सोलह तावों पर अग्नि में से गुजर कर शुद्ध होता है, उसी प्रकार संसारी जीव अनादिकालीन कर्मों से मिश्रित है और सम्यक्त्व, संयम, तप व ध्यान की अग्नि में तपकर गुणस्थानों को पार करता हुआ शुद्ध होकर सिद्ध बन जाता है।

उक्त उद्बोधन के लिए यह आवश्यक है कि जीव इनको भली प्रकार समझे। इसके लिए उसको इसका ज्ञान होना चाहिए कि वह इस जगत में कहाँ पर अवस्थित है; वह कौन है अर्थात उसका क्या अस्तित्व है; कहाँ से भ्रमण करते-करते वर्तमान में मनुष्य पर्याय पाई है (जो कि अत्यन्त दुर्लभ है, और जिस भव से ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है) एवम् उसका क्या भविष्य है जो उसके अपने ही हाथ में है, अर्थात उसके मोक्ष प्राप्ति का क्या उपाय है, क्योंकि बगैर मोक्ष प्राप्ति के यथार्थ स्थायी सुख व शांति प्राप्त करना एकदम असम्भव है एवम् उसके अभाव में फिर चतुर्गतिरूपी संसार में जैसे अब तक अनादि काल से जीव भटकता आ रहा है, उसी प्रकार आगे भी अनन्त काल तक भटकता रहेगा। इन प्रकरणों में इस भाग में "मैं कहाँ हूँ" अध्याय में त्रिलोक का, "मैं कौन हूँ" अध्याय में जीव के स्वरूप का, "मैं कहाँ से आया हूँ" अध्याय में जीव के संसार भ्रमण की कथा का और "मेरा क्या भविष्य है" अध्याय में सम्यक्त्व द्वारा

मोक्ष प्राप्ति के उपायों का वर्णन किया गया है। चूँकि आन्तरिक तप के अन्तर्गत एक ध्यान आवश्यक अंग है, जिसके द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति होती है, इसलिए इसका विशेष विवरण अलग से एक अध्याय में दिया गया है। यह ग्रंथ चूंकि मात्र श्रावकों को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किया गया है, इसलिए ध्यान के प्रकरण में पदस्थ, रूपस्थ, रूपातीत ध्यान जिसके मात्र पूज्य निर्ग्रंथ मुनिराज ही अधिकारी हैं, का वर्णन नहीं किया है, जिसका विशिष्ट वर्णन ज्ञानार्णव आदि ग्रंथों में देखा जा सकता है। किन्तु पिण्डस्थ धर्मध्यान को अभ्यास के रूप में करने को प्रेरित किया गया है।

इस प्रकार इस भाग का उद्देश्य जीव को मोक्ष की प्राप्ति एवम् उसके महत्व की ओर अणुव्रत तथा प्रतिमाधारी श्रावकों का ध्यान आकर्षित करना है, ताकि वे सम्यक्त्व के मार्ग में अग्रसर हो सकें।

अधिकारान्त एवम् प्रथम भागान्त मङ्गलाचरण

णिट्ठ–वियघाइ–कम्मं, केवल–णाणेण दिट्ठ–सयलत्थं।
णमह मुणिसुव्वएसं, भवियाणं सोक्ख–देसयरं ।।२०।।

घण–घाइ–कम्म–महणं, मुणिंद–देविंद–पणद–पय –कमलं।
पणमह–णमि–जिणणाहं, तिहुवण–भवियाण सोक्खयरं ।।२१।।

इंद–सय –णमिद–चरणं, आद–सरूवम्मि सव्व–काल– गदं।
इंदिय–सोक्ख–विमुक्कं, णेमि–जिणेसं णमंसामि ।।२२।।

अर्थ– जो घातिकर्म को नष्ट करके केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को देख चुके हैं और जो भव्य जीवों को सुख का उपदेश करने वाले हैं, ऐसे मुनिसुव्रतस्वामी को नमस्कार करो।।२०।। घन–घाति–कर्मों का मंथन करने वाले, मुनीन्द्र और देवेन्द्रों से नमस्कृत चरण–कमलों से संयुक्त, तथा तीनों लोकों के भव्य जीवों को सुखदायक, ऐसे नमि जिनेन्द्र को नमस्कार करो।।२१।। सौ इन्द्रों से नमस्कृत चरण वाले, सर्व काल आत्मस्वरूप में स्थित और इन्द्रिय–सुख से रहित ऐसे नेमि जिनेन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।२२।।

卐 卐 卐

अन्त में, श्रीमद्देवाधिदेव श्री १००८ भगवान ऋषभदेव से अपने राग-द्वेषरूपी मल को दूर करने एवम् सम्यक्त्व की उपलब्धि के लिये उनके श्री चरणों में (परिशिष्ट १.११ के अनुसार) प्रार्थना करते हुए

एवम्

श्री मद्देवाधिदेव १००८ वर्द्धमान जिनेन्द्र से उनके श्री चरणों की भक्ति की प्रार्थना करते हुए उनसे विनती करता हूँ कि–

जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि,
यह सेवा-फल दीजै मोहि।
कृपा तिहारी ऐसी होय,
जामन मरण मिटावो मोय।।

जिनवाणी सेवक–
लखपतेन्द्र देव जैन

येषां न विद्या न तपो न दानं न ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुविभारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।

जिन (पुरुषों) में विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील (सदाचार) गुण तथा धर्म नहीं है, वे पृथ्वी के भारस्वरूप पशु ही हैं, जो मनुष्य के रूप में विचरण करते हैं।

–नीतिशतक (भर्तृहरि कृत)

परिशिष्ट १.०१

अलौकिक गणित – संख्यामान

इसके मूल तीन भेद हैं– संख्यात, असंख्यात और अनन्त।

संख्यामान की जघन्य गणना २ (दो) मानी गयी है। एक को गणना शब्द का वाच्य माना है, अतएव इसको संख्यामान नहीं माना गया है। संख्यात के तीन भेद हैं: जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। इनमें से उत्कृष्ट संख्यात जघन्य परीतासंख्यात से एक कम मानी जाती है और मध्यम संख्यात जघन्य संख्यात से एक अधिक से लेकर उत्कृष्ट संख्यात से एक कम तक होती है। असंख्यात के तीन भेद हैं: परीतासंख्यात, युक्तासंख्यात, असंख्यातासंख्यात। प्रत्येक के तीन प्रभेद हैं– जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। उत्कृष्ट परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात से एक कम होता है और मध्यम परीतासंख्यात जघन्य से एक अधिक से लेकर उत्कृष्ट से एक कम तक होता है। इसी प्रकार युक्तासंख्यात और असंख्यातासंख्यात के विषय में जानना। उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात जघन्य परीतानन्त से एक कम होता है।

अनन्त के तीन भेद हैं: परीतानन्त, युक्तानन्त, अनन्तानन्त। प्रत्येक के तीन प्रभेद हैं– जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट। परीतानन्त व युक्तानन्त के मध्यम व उत्कृष्ट प्रभेदों को उक्त प्रकार से ही समझना चाहिए। मध्यम अनन्तानन्त जघन्य से एक अधिक व उत्कृष्ट से एक कम तक होता है।

इस भाग में जघन्य को j, असंख्यात और अनन्त को क्रमशः a तथा A, परीता और युक्ता को क्रमशः p तथा u से दर्शाया गया है। इस प्रकार जघन्य परीतासंख्यात, जघन्य युक्तासंख्यात जघन्य असंख्यातासंख्यात को क्रमशः a_{jp}, a_{ju}, a_{ja} ; जघन्य परीतानन्त जघन्य युक्तानन्त, जघन्य अनन्तानन्त को क्रमशः A_{jp}, A_{ju}, A_{jA} द्वारा दर्शित है। साधारणतः संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त जिनमें इनके सभी भेद आ जाते हैं, को क्रमशः F, a तथा A से दर्शाया गया है, जिसमें इनके सभी भेद–प्रभेद आ जाते हैं।

जघन्य परीतासंख्यात (a_{jp}) का मान निकालने की विधि

कल्पना कीजिये कि चार गोल कुण्ड हैं जिनका प्रत्येक का व्यास १ लाख योजन (यहाँ १ योजन = २००० कोस) और गहराई १००० योजन है, तथा इनके नाम क्रमशः अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका हैं।

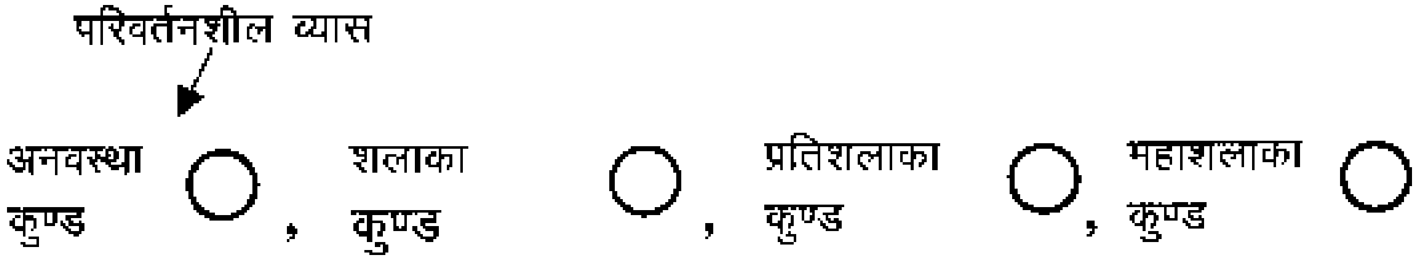

इनमें से अनवस्था कुण्ड को गोल सरसों से शिखाऊ (पृथ्वी पर अन्न की राशि की तरह) भरना। गणित शास्त्र के अनुसार इस अनवस्था कुण्ड में–

१६६७११२६३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६– ४/११ सरसों समायेगी (अपूर्णांक का ग्रहण नहीं करना)

इस अनवस्था कुण्ड के भरने पर दूसरी एक सरसों अनवस्था कुण्डों की गिनती करने के लिये शलाका कुण्ड में डालनी।

मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं जिनमें सबके बीच में जम्बूद्वीप है, जिसका व्यास १ लाख योजन है। जम्बू द्वीप गोल है, जिसके चारों ओर २ लाख योजन चौड़ाई का लवण समुद्र है। इसके चारों ओर धातकीखण्ड द्वीप है, फिर इसी प्रकार घेरे हुए कालोदधि समुद्र, पुष्कर द्वीप आदि असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। द्वीप की चौड़ाई से समुद्र की चौड़ाई दूनी और समुद्र की चौड़ाई से द्वीप की चौड़ाई दूनी, इस प्रकार अन्त पर्यन्त तक जानना। किसी द्वीप या समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट की चौड़ाई को सूची (व्यास) कहते हैं। जैसे लवण समुद्र की ५ लाख योजन, धातकीखंड द्वीप की १३ लाख योजन है। किसी भी द्वीप–समुद्र की सूची निकालने के लिए जम्बूद्वीप को पहला द्वीप मानते हुए, इस द्वीप–समुद्र की संख्या यदि n है, तो उस द्वीप–समुद्र की सूची = $(2^{n+1} - 3)$ लाख योजन होगी।

अब अनवस्था कुण्ड में से समस्त सरसों को निकालकर एक द्वीप, में एक समुद्र में अनुक्रम से डालते चलिये। जिस द्वीप या समुद्र में सब सरसों पूर्ण होकर

अन्त की सरसों डालो, उस ही द्वीप या समुद्र की सूची के समान वाला और १००० योजन गहराई वाला दूसरा अनवस्था कुण्ड बनाइये और उसको भी सरसों से शिखाऊ भरकर एक दूसरी सरसों शलाका कुंड में डालिये। इसी क्रम से चलते--चलते और शलाका कुण्ड में सरसों भरते-भरते, जब शलाका कुण्ड शिखाऊ भर जाये, तो एक सरसों प्रतिशलाका कुण्ड में डालिये। जब दूसरा शलाका इसी क्रम से भर जाये, तो दूसरी सरसों प्रतिशलाका कुण्ड में डालिये। इसी क्रम में चलते–चलते और प्रतिशलाका कुण्ड में भरते–भरते, जब प्रतिशलाका कुण्ड शिखाऊ भर जाये, तो एक सरसों महाशलाका कुण्ड में डालिये। जब दूसरी प्रति शलाका कुण्ड इसी क्रम से भर जाये, तब दूसरी सरसों महाशलाका कुण्ड में डालिये। इसी क्रम से चलते–चलते और महाशलाका कुण्ड भरते–भरते जब महाशलाका कुण्ड भी शिखाऊ भर जाये तो उस समय सबसे बड़े अंत के अनवस्था कुण्ड में शिखाऊ जितनी सरसों समायेगी, उतना ही जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण है।

गणित के अनुसार जो सरसों की संख्या प्रथम अनवस्था कुण्ड में उपर्युक्त ४६ अंक प्रमाण आई थी, उसको यदि क माना जाये और शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका कुण्ड में सरसों डालते–डालते, जब महाशलाका कुण्ड शिखाऊ भरेगा तो $क^3$ अनवस्था कुण्ड बन चुके होंगे, जिनकी सूची उत्तरोत्तर बढ़ती हुई होगी। इस अन्तिम अनवस्था कुण्ड में शिखाऊ भरने पर, सरसों की संख्या जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण बतायेगी। यह चौदह पूर्व के ज्ञाता श्रुतकेवली अथवा अवधिज्ञानी का विषय है।

जघन्य युक्तासंख्यात (a_{ju})

$$a_{ju} = (a_{jp})^{(a_{jp})}$$

जघन्य युक्तासंख्यात के बराबर आवली के समय होते हैं।

जघन्य असंख्यातासंख्यात (a_{ja})

$$a_{ju} = (a_{ju})^2$$

जघन्य परीतानन्त (A_{jp})

यदि b = $\overline{\overline{\overline{a_{ja}}}}$ *

\+ लोक प्रमाण (इसका कथन अलौकिक गणित – उपमामान के कथन में है) धर्म द्रव्य के प्रदेश (L)

\+ लोक प्रमाण अधर्म द्रव्य के प्रदेश (L)

\+ लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश (L)

\+ लोक प्रमाण लोकाकाश के प्रदेश (L)

\+ अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण, अर्थात (a.L)

\+ प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण (अर्थात अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण x a.L)

= $\overline{\overline{\overline{a_{ja}}}}$ + 4 L + a.L + (a.L) x (a.L)

तो यदि c = $\overline{\overline{\overline{b}}}$

\+ एक कल्पकाल (बीस कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर) के समय

\+ असंख्यात लोकप्रमाण स्थिति बन्धाध्यवसाय स्थान (स्थितिबन्ध को कारणभूत आत्मा के परिणाम)

\+ इनसे भी असंख्यात लोकगुणे (तथापि असंख्यात लोक प्रमाण) अनुभाग बन्धाध्यवसाय स्थान (अनुभाग को बन्ध कारणभूत आत्मा के परिणाम)

---

* नोट– यह महाराशि a_{ja} राशि की शलाकात्रयनिष्ठापन विधि से निकाली गयी राशि है। इस विधि का वर्णन परिशिष्ट १.०५ (क) में दिया हुआ है।

+ इनसे भी असंख्यात लोकगुणे (तथापि असंख्यात लोकप्रमाण) मन–वचन–काय योगों के अविभाग प्रतिच्छेद

तो $A_{jp} = \overline{\overline{c}}$

जघन्य युक्तानन्त – (A_{ju})

$$A_{ju} = (A_{jp})^{(A_{jp})}$$

नोट– अभव्य जीवों का प्रमाण जघन्य युक्तानन्त होता है।

जघन्य अनन्तानन्त – (A_{jA})

$$A_{jA} = (A_{ju})^2$$

उत्कृष्ट अनन्तानन्त –

यदि $d = \overline{\overline{\overline{A_{jA}}}}$

यह अनन्तानन्त का एक मध्यम भेद है।

अनन्त के दूसरे दो भेद हैं– एक सक्षय अनन्त और दूसरा अक्षय अनन्त। यहां तक जो संख्या हुई, वह सक्षय अनन्त है, इससे आगे अक्षय अनन्त के भेद हैं। क्योंकि इस महाराशि d में आगे छह राशि अक्षय अनन्त की मिलाई जाती हैं। नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते–करते जिस राशि का अन्त नहीं आवे, उसको अक्षय अनन्त कहते हैं।

तब यदि e = d

+ सिद्धराशि (जीव राशि के अनन्तवें भाग)

+ निगोद राशि (सिद्धराशि से अनन्त गुणी)

+ वनस्पति राशि

+ पुद्‌गलराशि (जीव राशि से अनन्त गुणी)

+ तीन काल के समय (पुद्गलराशि से अनन्त गुणे)

+ अलोकाकाश के प्रदेश (त्रिकाल के समयों से अनन्तगुणे)

और यदि f = $\overline{\overline{\overline{e}}}^{|||}$

+ धर्मद्रव्य और अधर्म द्रव्य के अगुरुलघुगुण के अनन्तानन्त अविभाग प्रतिच्छेद

तब यदि g = $\overline{\overline{\overline{f}}}^{|||}$, यह महाराशि केवलज्ञान–केवलदर्शन के अनन्तवें भाग है।

तब उत्कृष्ट अनन्तानन्त = केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद में से g को घटाकर, पुनः g को जोड़ देना।

उक्त महाराशि g को केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों में से घटाकर पुनः मिलाने का अभिप्राय यह है कि केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों का प्रमाण इस महाराशि से भी बहुत ही ज्यादा बड़ा है। इस महाराशि को किसी दूसरी राशि से गुणाकर करने पर भी केवलज्ञान के प्रमाण से बहुत कम रहती है। इसलिये केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों के प्रमाण का महत्व दिखलाने के लिये उपर्युक्त विधान किया है।

अनन्त का विषय केवलज्ञानी का विषय है।

नोट– उपरोक्त वर्णन में असंख्यात (a) और अनन्त (A) का मान अलग–अलग स्थानों पर अलग–अलग हो सकता है। यह केवलज्ञान–गम्य है। इन संख्यायों का एकदम सटीक (exact) मान न तो शास्त्रजी में उपलब्ध है और न ही सम्भवतः किसी कागज पर लिखा जा सकता है, क्योंकि उस मान के अंक (digit) भी असंख्यात /अनन्त होंगे।

सन्दर्भ– (१) जैन सिद्धान्त दर्पण– श्री स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी–न्यायवाचस्पति स्व० पंडित गोपालदास जी बरैया, मोरेना (ग्वालियर) द्वारा विरचित (मुनि श्री अनन्तकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला का सप्तम पुष्प) (प्रकाशित– जनवरी सन् १९२८)।

(२) त्रिलोकसार, श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित, टीकाकर्त्री आर्यिका श्री १०५ विशुद्धमती माताजी।

परिशिष्ट १.०१ (क)

शलाकात्रयनिष्ठापन निकालने की विधि

किसी संख्या (क) की शलकात्रयनिष्ठापन संख्या निकालनी है, तो उसकी विधि निम्नलिखित है।

यदि $क_1 = क^{क}$, $क_2 = (क_1)^{(क_1)}$

$क_3 = क_2^{(क_2)}$ ...... तब इसी प्रकार

यदि $क_{क} = \{क_{(क-1)}\}^{\{क_{(क-1)}\}}$

(इस राशि को अध्याय १ क्रम ११–ट में क] से वर्णित किया गया है)

फिर यदि $ख = क_{क}$

तब उक्त विधि से

यदि $ख_{ख} = \{ख_{(ख-1)}\}^{\{ख_{(ख-1)}\}}$

इस राशि को क]] से वर्णित किया गया है।

फिर यदि $ग = ख_{ख}$

तब इसी विधि से

यदि $घ = ग_{ग} = \{ग_{(ग-1)}\}^{\{ग_{(ग-1)}\}}$

यह महाराशि (घ) क की शलाकात्रयनिष्ठापन संख्या कहलायेगी और क]]] से वर्णित की गयी है।

अर्थात घ = क]]]

अलौकिक गणित– (उपमामान)– स्कंध, देश, प्रदेश, परमाणु

स्कंध, देश, प्रदेश, परमाणु

सब प्रकार से समर्थ (सर्वांशपूर्ण) स्कंध, उसके अर्धभाग को देश और आधे के आधे भाग को प्रदेश कहते हैं। स्कंध के अविभागी (जिसके और विभाग न हो सकें ऐसे) अंश को परमाणु कहते हैं। जो अत्यन्त तीक्ष्ण शस्त्र से भी छेदा या भेदा नहीं जा सकता तथा जल और अग्नि आदि के द्वारा नाश को भी प्राप्त नहीं होता, वह परमाणु है। जिसमें पांच रसों (तिक्त, कटुक, आम्ल, मधुर और कसायला) में से एक रस, पांच वर्णों (पीत, नील, श्वेत, श्याम और लाल) इनमें एक वर्ण, दो गंधों (सुगन्ध और दुर्गन्ध) इनमें से एक गंध और दो स्पर्श (स्निग्ध और रूक्ष में से एक स्पर्श एवम् शीत और उष्ण में से एक स्पर्श) (इस प्रकार कुल पांच गुण हैं) और जो स्वयं शब्द रूप न होकर भी शब्द का कारण हैं एवम् स्कन्ध के अन्तर्गत है, उस द्रव्य को परमाणु कहते हैं। जो द्रव्य आदि, मध्य व अन्त से विहीन, प्रदेशों से रहित (अर्थात एक प्रदेशी) हो, इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकने वाला और विभाग रहित है, उसे जिन भगवान परमाणु कहते हैं। क्योंकि स्कन्धों के समान परमाणु भी पूरते हैं और गलते हैं, इसलिये पूरण–गलन क्रियाओं के रहने से वे भी पुद्गल के अन्तर्गत हैं, ऐसा दृष्टिवाद अंग में निर्दिष्ट है। परमाणु स्कन्धों की तरह सब कालों में वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श, इन गुणों में पूरण–गलन क्रिया करते हैं, इसलिए वे पुद्गल ही हैं। जो नय विशेष की अपेक्षा कथंचित मूर्त है और कथंचित अमूर्त है, चार धातु रूप स्कन्ध का कारण है और परिणमन स्वभावी है, उसे परमाणु जानना चाहिए।

नाना प्रकार के अनन्तानन्त परमाणु द्रव्यों का एक 'उवसन्नासन्न' स्कन्ध होता है।

8 उवसन्नासन्न = 1 सन्नासन्न नाम का स्कन्ध होता है।

8 सन्नासन्न = 1 त्रुटिरेणु नाम का स्कन्ध होता है।

8 त्रुटिरेणु	= 1 त्रसरेणु नाम का स्कन्ध होता है।
8 त्रसरेणु	= 1 रथरेणु नाम का स्कन्ध होता है।
8 रथरेणु	= 1 उत्तम भोगभूमि का बालाग्र नाम का स्कन्ध होता है।
8 उत्तम भोगभूमि का बालाग्र	= 1 मध्यम भोगभूमि का बालाग्र नाम का स्कन्ध होताहै।
8 मध्यम भोगभूमि का बालाग्र	= 1 जघन्य भोगभूमि का बालाग्र नाम का स्कन्ध होता है।
8 जघन्य भोगभूमि का बालाग्र	= 1 कर्मभूमि का बालाग्र नाम का स्कन्ध होता है।
8 कर्म भोगभूमि का बालाग्र	= 1 लीख नाम का स्कन्ध होता है।
8 लीख	= 1 सरसों (जूँ) नाम का स्कन्ध होता है।
8 सरसों	= 1 जौ नाम का स्कन्ध होता है।
8 जौ	= 1 उत्सेध अंगुल नाम का स्कन्ध होता है। उत्सेधांगुल से देव, मनुष्य, तिर्यञ्च एवं नारकियों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण और चारों प्रकार के देवों के निवास स्थान और नगरादिक का प्रमाण जाना जाता है।
500 उत्सेधांगुल	= 1 प्रमाणांगुल नाम का स्कन्ध होता है।

भरत क्षेत्र के अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती का अंगुल प्रमाणांगुल होता है। द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड (सरोवर), जगती और भरतादिक क्षेत्र का प्रमाण प्रमाणांगुल से होता है।

जिस-जिस काल में भरत और ऐरावत क्षेत्र में जो-जो मनुष्य हुआ करते हैं उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल है। झारी, कलश, दर्पण, सिंहासन, छत्रादि, मनुष्यों के निवास-स्थान एवं नगर और उद्यानादिक का प्रमाण आत्मांगुल से समझना चाहिये।

6 अंगुल	=	1 पाद
2 पाद	=	1 वितस्ति (विलस्त)
2 वितस्ति	=	1 हाथ
2 हाथ	=	1 रिक्कू
2 रिक्कू	=	1 धनुष, दण्ड, मूसल अथवा नाली
2000 धनुष	=	1 कोस
4 कोस	=	1 योजन

नोट-- यदि अंगुल को प्रमाणांगुल से मानकर चला जायेगा, तो प्रमाण योजन आएगा।

व्यवहार पल्य की रोम राशि

प्रमाणांगुल से निष्पन्न योजन, एक योजन विस्तार वाले गोल गड्ढे जिसकी गहराई एक योजन हो, इसका घनफल $\sqrt{10}.(\frac{1}{2})^2.1 = 19/24$ घन (प्रमाणांगुल से निष्पन्न) योजन होगा।

उत्तम भोगभूमि में एक दिन से आठ दिन तक के उत्पन्न हुए मेढ़े के करोड़ों रोमों के अविभागी-खण्ड करके अखण्डित रोमाग्रों से लगातार इस एक योजन विस्तार वाले प्रथम पल्य (गड्ढे) को पृथ्वी के बराबर अत्यन्त सघन भरना करना चाहिए। अब व्यवहार पल्य के रोमों की संख्या निकालने के लिये, उपरोक्त 19/24 घनयोजन के उत्तर भोगभूमि के बालाग्र निकलाने चाहिये जो निम्न प्रकार आयेंगे:--

19/24 $\times 4^3$ (कोस) $\times 2000^3$ (धनुष) $\times 4^3$ (हाथ) $\times 24^3$ (प्रमाणांगुल) $\times 500^3$ (उत्सेधांगुल)

$\times 8^3$ (जौ) $\times 8^3$ (जूँ) $\times 8^3$ (लीख) $\times 8^3$ (कर्मभूमि का बालाग्र) $\times 8^3$ (जघन्य भोगभूमि का बालाग्र)

$\times 8^3$ (मध्यम भोगभूमि का बालाग्र) $\times 8^3$ (उत्तम भोग भूमि का बालाग्र)

=४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००००००

चार-एक-तीन-चार-पांच-दो-छः-तीन-शून्य-तीन-शून्य-आठ-दो-शून्य-तीन-एक-सात-सात

-सात-चार-नौ-पाँच-एक-दो- एक-नौ-दो, तत्पश्चात् अट्ठारह स्थानों पर शून्य =४५ अंक प्रमाण राशि। यह राशि व्यवहार पल्य की रोम राशि (प) कहलाती है।

व्यवहार पल्य / सागरोपम

सौ-सौ वर्ष पश्चात एक-एक रोम खण्ड के निकालने में जितने समय में वह गड्ढा खाली होता है, उतने काल को व्यवहार पल्योपम कहते हैं। व्यवहार पल्य से संख्या का मान निकाला जाता है।

१० कोड़ा कोड़ी व्यवहार पल्योपम =१ व्यवहार सागरोपम

उद्धार पल्योपम/सागरोपम

व्यवहार पल्य की रोम राशि में से प्रत्येक रोम खण्ड के, असंख्यात करोड़ वर्ष के जितने समय हों, उतने खण्ड करके उनसे दूसरे पल्य (गड्ढे) को भरकर पुनः एक-एक समय* में एक-एक रोम खण्ड निकालें। इस प्रकार जितने समय में वह दूसरा पल्य खाली होता है, उतना काल उद्धार नामक पल्य का है।

उद्धार पल्योपम की रोमराशि = प x असंख्यात करोड़ वर्ष के समय की गणना

उद्धार पल्योपम = प x असंख्यात करोड़ वर्ष के समय ÷ समय

= प x असंख्यात करोड़ वर्ष

उद्धार सागरोपण = १० कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्योपम

उद्धार पल्योपम से द्वीप-समुद्रादिक का प्रमाण लगाया जाता है।

समस्त द्वीप-समुद्रों की संख्या = २५ कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्य के समय की संख्या प्रमाण।

अद्धा पल्योपम/सागरोपम

उद्धार पल्य की रोम राशि में से प्रत्येक रोम खण्ड के असंख्यात वर्षों के समय- प्रमाण खंड करके तीसरे गड्ढे के भरने पर और पहले के समान एक-एक

---

* समय की परिभाषा अगले परिशिष्ट १.०३ में दी गयी है।

समय में एक-एक रोम-खण्ड को निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा रिक्त होता है, उतने काल को अद्धार या अद्धा पल्योपम कहते हैं।

∴ अद्धार पल्य अथवा अद्धा पल्य की रोम राशि

= उद्धार पल्योपम की रोमराशि x असंख्यात वर्ष के समय-प्रमाण गणना

तब, अद्धार पल्य या अद्धा पल्य

= (प x असंख्यात करोड़ वर्ष के समय प्रमाण गणना) x असंख्यात वर्ष के समय÷समय

= (प x असंख्यात करोड़ वर्ष के समय) x असंख्यात वर्ष

और अद्धार सागरोपम या अद्धा सागर

= 10 कोड़ा-कोड़ी अद्धा पल्योपम

इस अद्धा पल्य से जीवों की कर्मों की स्थिति का प्रमाण लगाया जाता है।

सूच्यंगुल और जगच्छ्रेणी का लक्षण

अद्धा पल्य के जितने अर्धच्छेद (Logarithm to the base 2)* हों, उतनी जगह पल्य को रखकर परस्पर गुणा करने से सूच्यंगुल प्राप्त होता है। इस विधि से

$$\text{सूच्यंगुल} = (\text{अद्धा पल्य})^{\log_2 \text{अद्धापल्य}}$$

एक प्रमाणांगुल लम्बे और एक प्रदेश चौड़े ऊँचे आकाश में सूच्यंगुल के बराबर प्रदेश होते है।

सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल तथा सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं।

---

* नोट– किसी राशि का जितने बार आधा-आधा करने से अवशेष १ रह जाए तब जितनी बार आधा-आधा किया जाय, उस संख्या को उस राशि का अर्द्धच्छेद कहते है। जैसे ३२ का अर्धच्छेद ५ होता है। इस प्रकार $३२=२^५$ और $\log_2 ३२ = ५$ हुआ। Log का पूरा form Logarithm (लॉगरिथ्म) होता है।

अद्धापल्य की अर्धच्छेद राशि के असंख्यातवें भाग का विरलनकर प्रत्येक एक के ऊपर घनांगुल रख, समस्त घनांगुलों का परस्पर गुणाकार करने से जो गुणनफल आये, उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं। अर्थात्

जगच्छ्रेणी (J) $=$ घनांगुल$^{(\text{अद्धापल्य की अर्धच्छेद राशि / असंख्यात})}$

जगच्छ्रेणी के सातवें भाग को राजू कहते हैं।

हमने पहले देखा कि मध्य लोक में द्वीप-समुद्र की संख्या २५ कोड़ा कोडी उद्धार पल्य के रोमराशि (समय) प्रमाण होती है तथा अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र की सूची १ राजू है, इस प्रकार

१ राजू $=$ {२$^{(\text{२५ कोड़ा कोड़ी उद्धार पल्य के समय प्रमाण} + \text{१})}$ $-$ ३} लाख योजन

$= (1/7) \times$ जगच्छ्रेणी (J)

जगच्छ्रेणी का वर्ग करने पर जगत्प्रतर तथा घन करने पर लोक का प्रमाण होता है। अर्थात्

जगत्प्रतर $= J^2$ और लोक (L) $=$ (जगच्छ्रेणी)^3 अथवा J^3

सन्दर्भ– तिलोय पण्णत्ती भाग १, विरचित श्री यतिवृषभाचार्य, टीकाकर्त्री आर्यिका श्री १०५ विशुद्धमती माताजी।

अलौकिक गणित— काल परिमाण

निश्चय/व्यवहार काल

काल द्रव्य अनादि निधन है, वर्तना उसका लक्षण माना गया है— जो द्रव्यों[२] की पर्यायों के बदलने में सहायक हो उसे वर्तना कहते हैं। यह काल अत्यन्त सूक्ष्म परमाणु के बराबर है और असंख्यात होने के कारण समस्त लोकाकाश में भरा हुआ है अर्थात काल द्रव्य का एक-एक परमाणु लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर स्थित है। उस काल में अनन्त पदार्थों के परिणमन कराने की सामर्थ्य है। जिस प्रकार कुम्हार के चाक के घूमने में उसके नीचे लगी हुई कील कारण है, उसी प्रकार पदार्थों के परिणमन में काल द्रव्य सहकारी है। संसार के समस्त पदार्थ अपने-अपने गुण पर्यायों द्वारा स्वयमेव ही परिणमन को करते हैं और काल द्रव्य इनके परिणमन में मात्र सहकारी होता है।

काल द्रव्य के भेद— इसके निश्चय परमार्थ और व्यवहार के भेद से दो भेद हैं। निश्चय काल के आश्रय से व्यवहार की प्रवृत्ति होती है। व्यवहार काल भूत, भविष्यत तथा वर्तमान' रूप होकर संसार का व्यवहार चलाने के लिये समर्थ होता है।

व्यवहार काल— एक अविभागी पुद्‌गल जितने काल में मन्द गति से एक आकाश प्रदेश का उल्लंघन करे/एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक गमन करे, अथवा तीव्र गति से १४ राजू जाये, उतने समय को एक समय कहते हैं।

१ जघन्ययुक्तासंख्यात समय = १ आवली

---

[२] द्रव्य ६ हैं:— जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल—

इनमें से प्रथम पांच पंचास्तिकाय कहलाते हैं क्योंकि ये बहुप्रदेशी हैं। काल द्रव्य एक प्रदेशी, अर्थात बहुप्रदेशी न होने से अस्ति रूप तो है, परन्तु 'अस्तिकाय' नहीं है क्योंकि काय में बहुप्रदेश होते हैं।

काल द्रव्य की संख्या = लोकाकाश के प्रदेशों की संख्या अथवा लोक प्रमाण (L)

' वर्तमान काल एक समय मात्र है और भावी काल समस्त पुद्‌गल द्रव्यों से अनन्तगुणा है।

संख्यात आवली = १ उच्छवास अथवा १ प्राण = $\frac{२८८०}{३७७३}$ सैकिन्ड

७ उच्छवास = १ स्तोक, ७ स्तोक = १ लव

३८½ लव = १ नाली = २४ मिनट

२ नाली = १ मुहूर्त (समय कम एक मुहूर्त को भिन्न- मुहूर्त कहते हैं)

३० मुहूर्त = १ दिन = २४ घण्टा

१५ दिन = १ पक्ष; २ पक्ष = १ मास; २ मास = १ ऋतु

३ ऋतु = १ अयन; २ अयन = १ वर्ष, ५ वर्ष = १ युग

५ वर्ष = १ युग

84 लाख वर्ष = १ पूर्वांग

84 लाख पूर्वांग = १ पूर्व =७,०५,६०,००,००,००,००० वर्ष

84 पूर्व = १ पर्वांग; 84 लाख पर्वांग = १ पर्व

84 पर्व = १ नयुतांग; 84 लाख नयुतांग = १ नयुत

84 नयुत = १ कुमुदांग; 84 लाख कुमुदांग = १ कुमुद

84 कुमुद = १ पद्मांग; 84 लाख पद्मांग = १ पद्म

84 पद्म = १ नलिनांग; 84 लाख नलिनांग = १ नलिन

84 नलिन = १ कमलांग; 84 लाख कमलांग = १ कमल

84 कमल = १ त्रुटितांग; 84 लाख त्रुटितांग = १ त्रुटित

84 त्रुटित = १ अट्टांग; 84 लाख अटटांग = १ अट्ट

84 अट्ट = १ अममांग; 84 लाख अममांग = १ अमम

84 अमम = १ हाहांग; 84 लाख हाहांग = १ हाहा

84 हाहा = १ हूहांग; 84 लाख हूहांग = १ हूहू

84 हूहू = १ लतांग; 84 लाख लतांग = १ लता

84 लता = १ महालतांग; 84 लाख महालतांग = १ महालता

84 लाख महालता = १ श्रीकल्प; 84 लाख श्रीकल्प = १ हस्त प्रहेलित

84 लाख हस्त प्रहेलित = १ अचलात्म नाम का कालांश (अथवा चर्चिका)

अचलात्म= 449425663149385461975295566818875162751606526724516
960272384000000000000000000000000000000000000000000000
000000000000000000000000000000000000000000000वर्ष
$=84^{31} \times 10^{90}$ वर्ष

अर्थात १५० उक्त अंक प्रमाण वर्षों का १ अचलात्म होता है। इस प्रकार वर्षों की गणना जहां तक उत्कृष्ट संख्या प्राप्त हो, वहां तक इस संख्यात काल को ले जाना चाहिये अर्थात ग्रहण करना चाहिये।

व्यवहार/उद्धार/अद्धा पल्य (पल्योपम)/ सागर (सागरोपम)

इनका वर्णन परिशिष्ट १.०२ में देखें।

कल्प काल

बीस कोड़ा कोड़ी अद्धा सागर के समूह को कल्प कहते हैं। इसके दो भाग होते हैं– एक अवसिर्पणी और दूसरा उत्सर्पिणी। इन दोनों ही का प्रमाण दस–दस कोड़ा कोड़ी सागर का है। अवसर्पिणी के छह भाग हैं– १. सुषमा सुषमा (४ कोड़ा–कोड़ी सागर) २. सुषमा (३ कोड़ा कोड़ी सागर) ३. सुषमा दुःषमा (२ कोड़ा कोड़ी सागर) ४. दुःषमा सुखमा (१ कोड़ा कोड़ी सागर में से ४२००० वर्ष कम) ५. दुःषमा (२१ हजार वर्ष) और ६. दुःषमा दुःषमा (२१ हजार वर्ष)। उत्सर्पिणी काल में उल्टा क्रम है, अर्थात दुःषमा दुःषमा, दुःषमा, दुःषमा सुषमा, सुषमा दुःषमा, सुषमा और सुषमा सुष्मा। यह काल परिवर्तन केवल ढ़ाई द्वीप के अन्तर्गत ५ भरतक्षेत्रों और ५ ऐरावत क्षेत्रों की कर्मभूमियों में ही होता है ।

सन्दर्भ– (१) तिलोय पण्णत्ती भाग २, विरचित श्री यतिवृषभाचार्य, टीकाकर्त्री आर्यका श्री १०५ विशुद्धमती माताजी।

(२) हरिवंश पुराण, श्री मज्जिनसेनाचार्य विरचित, अनुवाद डा० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य।

पंच परावर्तन काल

(गोम्मटसार–जीव काण्ड से उद्धृत)

१– भव्य मार्गणा

जिन जीवों की अनन्त चतुष्टय सिद्धि होने वाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों, उनको भवसिद्ध कहते हैं। जिनमें इन दोनों में से कोई भी लक्षण घटित न हो, उन जीवों को अभव्यसिद्ध कहते हैं।

भावार्थ--

कितने ही भव्य ऐसे हैं जो मुक्ति प्राप्ति के योग्य हैं, परन्तु कभी मुक्त न होंगे; जैसे बन्ध्यापने के दोष से रहित स्त्री में पुत्रोत्पत्ति की योग्यता तो है, परन्तु उसके कभी निमित्त न मिलने के कारण, कभी पुत्र उत्पन्न नहीं होगा। इसके सिवाय कोई भव्य ऐसे हैं जो नियम से मुक्त होंगे। जैसे बन्ध्यापने के दोष से रहित स्त्री के निमित्त मिलने पर नियम से पुत्र उत्पन्न होगा। इस तरह योग्यता भेद के कारण भव्य दो प्रकार के हैं। इन दोनों योग्यताओं से जो रहित हैं, उनको अभव्य कहते हैं। जैसे बन्ध्या स्त्री के निमित्त मिले चाहे न मिलै, परन्तु पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता है।

जिनमें मुक्ति प्राप्ति की योग्यता है, उनको भव्य सिद्ध कहते हैं। इस अर्थ को दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट करते हैं--

जो जीव अनन्त चतुष्टयरूप सिद्धि की प्राप्ति के योग्य है, उनको भवसिद्ध कहते हैं। किन्तु यह बात नहीं है कि इस प्रकार के जीवों का कर्ममल नियम से दूर हो ही, जैसे कनकोपलका।

भावार्थ– ऐसे भी बहुत से कनकोपल हैं जिनमें कि निमित्त मिलाने पर शुद्ध स्वर्ण रूप होने की योग्यता तो है, परन्तु उनकी इस योग्यता की अभिव्यक्ति कभी नहीं होगी। अथवा जिस तरह अहमिन्द्र देवों में नरकादि में गमन करने की शक्ति है परन्तु उस शक्ति की अभिव्यक्ति कभी नहीं होती। इस ही तरह जिन जीवों में अनन्त चतुष्टय को प्राप्त करने की योग्यता है, परन्तु उनको वह कभी प्राप्त नहीं होगी। उनको भी भव सिद्ध कहते हैं। ये जीव भव्य होते हुए भी सदा संसार में ही रहते हैं।

जिनका पांच परिवर्तनरूप अनन्त संसार सर्वथा छूट गया है और इसीलिये जो मुक्ति सुख के भोक्ता हैं, उन जीवों को न तो भव्य समझना और न अभव्य समझना चाहिये, क्योंकि अब उनको कोई नवीन अवस्था प्राप्त करना शेष नहीं रही है। इसलिये वे भव्य भी नहीं हैं और अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हो चुके हैं, इसलिये अभव्य भी नहीं हैं।

भावार्थ– जिसमें अनन्त चतुष्टय के अभिव्यक्त होने की योग्यता ही न हो उसको अभव्य कहते हैं। अतः मुक्त जीव अभव्य भी नहीं है; क्योंकि इन्होंने अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर लिया हैं और "भवितुं योग्या भव्या" इस निरुक्ति के अनुसार भव्य उनको कहते हैं जिनमें कि अनन्त चतुष्टय को प्राप्त करने की योग्यता है। किन्तु अब वे उस अवस्था को प्राप्त कर चुके, इसलिये उनके भव्यत्व की योग्यता का परिपाक हो चुका, अतएव अपरिपक्व अवस्था की अपेक्षा से भव्य भी नहीं है।

भव्यमार्गणा में जीवों की संख्या बताते हैं–

अवरो जुत्ताणंतो, अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ।।५६०।।

अर्थ– जघन्ययुक्तानन्त प्रमाण के बराबर अभव्य राशि है और सम्पूर्ण संसारी जीव राशि में से अभव्य राशि का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे, उतना ही भव्य राशि का प्रमाण है।

२– पंच परावर्तन

(१) द्रव्य परिवर्तन

भव्य राशि बहुत अधिक है और अभव्य राशि बहुत थोड़ी है। भव्य जीव मुक्त होने तक तथा अभव्य जीव सदा ही पांच परिवर्तन रूप संसार से युक्त ही रहते हैं। एक अवस्था से दूसरी अवस्था का प्राप्त होना इसको संसार-परिवर्तन कहते हैं। इस संसार अर्थात् परिवर्तन के पाँच भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव। द्रव्य परिवर्तन के दो भेद हैं– एक नोकर्मद्रव्य परिवर्तन, दूसरा कर्मद्रव्य परिवर्तन। यहां पर इन परिवर्तनों का क्रम से स्वरूप बताते हैं। किसी जीव ने, स्निग्ध रूक्ष वर्ण गन्धादि के तीव्र मन्द मध्यम भावों में से यथासम्भव भावों से युक्त औदारिकादि तीन शरीरों में से किसी शरीर सम्बन्धी तथा छह पर्याप्ति रूप परिणमने के योग्य पुद्गलों को एक समय में

ग्रहण किया। पीछे द्वितीयादि समयों में उस द्रव्य की निर्जरा कर दी। पीछे अनन्त बार अग्रहीत पुद्गलों को ग्रहण करके छोड़ दिया, अनन्त बार मिश्र द्रव्य को ग्रहण करके छोड़ दिया, अनन्त बार ग्रहीत को भी ग्रहण करके छोड़ दिया। जब वही जीव उन ही स्निग्ध रूक्षादि भावों से युक्त उन ही पुद्गलों को जितने समय बाद ग्रहण करे, प्रारम्भ से लेकर उतने काल समुदाय को नोकर्मद्रव्य परिवर्तन कहते हैं।

पूर्व में ग्रहण किये हुए परमाणु जिस समयप्रबद्धरूप स्कन्ध मे हों उसको ग्रहीत कहते हैं। जिस समयप्रबद्ध में ऐसे परमाणु हों कि जिनका जीव ने पहले ग्रहण नहीं किया हो उसको अग्रहीत कहते हैं। जिस समयप्रबद्ध में दोनों प्रकार के परमाणु हों उसको मिश्र कहते हैं। अग्रहीत परमाणु भी लोक में अनन्तानन्त हैं, क्योंकि सम्पूर्ण जीव राशि का समयप्रबद्ध के प्रमाण से गुणा करने पर जो लब्ध आवे उसका अतीत काल के समस्त समयप्रमाण से गुणा करने पर जो लब्ध आये उससे भी अनन्तगुणा पुद्गल द्रव्य है।

इस परिवर्तन का काल, अग्रहीतग्रहण ग्रहीतग्रहण मिश्रग्रहण के भेद से तीन प्रकार का है। इसकी घटना किस तरह होती है यह अनुक्रम यंत्र द्वारा बताते हैं।

द्रव्य परिवर्तन यंत्र					
००x	००x	००१	००x	००x	००१
x x०	x x०	x x१	x x०	x x०	x x१
x x१	x x१	x x०	x x१	x x१	x x०
११ x	११ x	११०	११ x	११ x	११०

इस यन्त्र में शून्य से अग्रहीत, हंसपद से (x इस चिन्ह से) मिश्र और एक के अंक से ग्रहीत समझना चाहिए। तथा दो बार लिखने से अनन्त बार समझना चाहिये। इस यन्त्र के देखने से स्पष्ट होता है कि निरन्तर अनन्त बार अग्रहीत का ग्रहण हो चुकने पर एक बार मिश्र का ग्रहण होता है, मिश्रग्रहण के बाद फिर निरन्तर अनन्त बार अग्रहीत का ग्रहण हो चुकने पर एक बार मिश्र का ग्रहण होता है। इस ही क्रम से अनन्त बार मिश्र का ग्रहण हो चुकने पर अनन्त बार अग्रहीत ग्रहण के अनन्तर एक

बार ग्रहीत का ग्रहण होता है। इसके बाद फिर उस ही तरह अनन्त बार अग्रहीत का ग्रहण हो चुकने पर एक बार मिश्र का ग्रहण और मिश्र ग्रहण के बाद फिर अनन्त बार अग्रहीत का ग्रहण होकर एक बार मिश्र का ग्रहण होता है। तथा मिश्र का ग्रहण अनन्त बार हो चुकने पर अनन्त बार अग्रहीत का ग्रहण करके एक बार फिर ग्रहीत का ग्रहण होता है। इस ही क्रम से अनन्त बार ग्रहीत का ग्रहण होता है। यह अभिप्राय सूचित करने के लिये ही प्रथम पंक्ति में पहले तीन कोठों के समान दूसरे भी तीन कोठे दिये हैं। अर्थात् इस क्रम से अनन्त बार ग्रहीत का ग्रहण हो चुकने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन के चार भेदों में से प्रथम भेद समाप्त होता है। इसके बाद दूसरे भेद का प्रारम्भ होता है। यहाँ पर अनन्त बार मिश्र का ग्रहण होने पर एक बार अग्रहीत का ग्रहण, फिर अनंत बार मिश्र का ग्रहण होने पर एक बार अग्रहीत का ग्रहण इस ही क्रम से अनन्त बार अग्रहीत का ग्रहण होकर अनन्त बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार ग्रहीत का ग्रहण होता है। जिस क्रम से एक बार ग्रहीत का ग्रहण किया उस ही क्रम से अनन्त बार ग्रहीत का ग्रहण हो चुकने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का दूसरा भेद समाप्त होता है। इसके बाद तीसरे भेद में अनन्त बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार ग्रहीत का ग्रहण होता है, फिर अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार ग्रहीत का ग्रहण। इस क्रम से अनंत बार ग्रहीत का ग्रहण हो चुकने पर अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार अग्रहीत ग्रहण होता है। जिस तरह एक बार अग्रहीत का ग्रहण किया उस ही तरह अनंत बार अग्रहीत का ग्रहण होने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का तीसरा भेद समाप्त होता है। इसके बाद चौथे भेद का प्रारम्भ होता है। इसमें प्रथम ही अनन्त बार ग्रहीत का ग्रहण करके एक बार मिश्र का ग्रहण होता है, इसके बाद फिर अनन्त बार ग्रहीत का ग्रहण होने पर एक बार मिश्र का ग्रहण होता है। इस तरह अनन्त बार मिश्र का ग्रहण होकर पीछे अनंत बार ग्रहीत ग्रहण करके एक बार अग्रहीत का ग्रहण होता है। जिस तरह एक बार अग्रहीत का ग्रहण किया उस ही क्रम से अनन्त बार अग्रहीत का ग्रहण हो चुकने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का चौथा भेद समाप्त होता है। इस चतुर्थ भेद के समाप्त हो चुकने पर नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन के प्रारम्भ के प्रथम समय में वर्ण गन्ध आदि के जिस भाव से युक्त जिस पुद्गल द्रव्य को ग्रहण किया था उस ही भाव से युक्त उस शुद्ध ग्रहीत रूप पुद्गल द्रव्य को जीव ग्रहण करता है। इस सबके समुदाय को

नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन कहते हैं। तथा इसमें जितना काल लगे उसको नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन का काल कहते हैं।

इस तरह दूसरा कर्मपुद्गलपरिवर्तन होता है। विशेषता इतनी ही है कि जिस तरह नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन में नोकर्मपुद्गलों का ग्रहण होता है, उस ही तरह यहाँ पर कर्मपुद्गलों का ग्रहण होता है। कर्मों के ग्रहण में त्रिभाग के समय आयु सहित आठ कर्मों का समयप्रबद्ध में ग्रहण हुआ करता है और त्रिभाग के सिवाय अन्य काल में आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों के ही योग्य कर्मपुद्गल द्रव्य का समयप्रबद्ध में ग्रहण होता है। किन्तु इस परिवर्तन के सम्बन्ध में आठ कर्मों के योग्य ही समयप्रबद्ध कर्मपुद्गल द्रव्य का ग्रहण करना चाहिए। दूसरी बात यह है कि जिस तरह नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन के वर्णन में ग्रहीत द्रव्य की निर्जरा दूसरे ही समय से होनी बताई गई है वैसा यहाँ नहीं है। कर्मद्रव्यपरिवर्तन में ग्रहीत समयप्रबद्धरूप कर्मद्रव्य की निर्जरा का प्रारम्भ एक आवली काल के अनन्तर होना कहना और समझना चाहिये, क्योंकि कर्मों के ग्रहण के समय से लेकर एक आवली काल तक उनकी निर्जरा न तो होती है और न हो सकती है। इन दो बातों को छोड़कर और परिवर्तन के क्रम में कुछ भी विशेषता नहीं है। जिस तरह के चार भेद नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन में होते हैं उस ही तरह कर्मद्रव्यपरिवर्तन में भी चार भेद होते हैं। इन चार भेदों में भी अग्रहीत ग्रहण का काल सबसे अल्प है, इससे अनंतगुणा काल मिश्र ग्रहण का है। इससे भी अनंतगुणा ग्रहीत ग्रहण का जघन्य काल है, इससे अनंतगुणा ग्रहीत ग्रहण का उत्कृष्ट काल है, क्योंकि प्रायः करके उसे ही पुद्गलद्रव्य का ग्रहण होता है कि जिसके साथ द्रव्य क्षेत्र काल भाव का संस्कार हो चुका है। इस ही अभिप्राय से यह सूत्र कहा भी है कि–

सुहमट्ठिदिसंजुत्तं, आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं।
पाएण एदि गहणं, दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं।। १।।

सूक्ष्मस्थितिसंयुक्तमासन्नं कर्मनिर्जरामुक्तम्।
प्रायेणेति ग्रहणं द्रव्यमनिर्दिष्टसंस्थानम्।।१।।

अर्थ– जो अल्पस्थिति से युक्त है, जीव प्रदेशों पर ही स्थित है तथा निर्जरा के द्वारा कर्मरूप अवस्था को छोड़ चुका है, और अनिर्दिष्ट संस्थान है अर्थात विवक्षित

प्रथम समय में ग्रहीत द्रव्य के स्वरूप से रहित है, इस तरह के पुद्गल द्रव्य को ही प्रायः करके जीव ग्रहण करता है।

भावार्थ-- यद्यपि यह नियम नहीं है कि इस ही तरह के पुद्गल को जीव ग्रहण करे तथापि बहुधा इस ही तरह के पुद्गल को ग्रहण करता है, क्योंकि यह द्रव्य क्षेत्र काल भाव से संस्कारित है।

द्रव्य परिवर्तन के उक्त चार भेदों का इस गाथा में निरूपण किया है—

अगहिदमिस्सं गहिदं, मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च।
मिस्सं गहिदमगहिदं, गहिदं मिस्सं अगहिदं च ।। २।।

अग्रहीतं मिश्र ग्रहीतं मिश्रमग्रहीतं तथैव ग्रहीतं च।
मिश्रं ग्रहीतमग्रहीतं ग्रहीतं मिश्रमग्रहीतं च।। २।।

अर्थ— पहला अग्रहीत मिश्र ग्रहीत, दूसरा मिश्र अग्रहीत ग्रहीत, तीसरा मिश्र ग्रहीत अग्रहीत, चौथा ग्रहीत मिश्र अग्रहीत, इस तरह चार प्रकार से पुद्गलों का ग्रहण हो जाने पर जब परिवर्तन के प्रारम्भ के समय में जिनका ग्रहण किया था उन्हीं पुद्गलों और उसी रूप में ग्रहण होता है तब एक कर्मद्रव्यपरिवर्तन पूरा होता है। नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन और कर्मद्रव्यपरिवर्तन दोनों के समूह को ही द्रव्य परिवर्तन कहते हैं और इसमें जितना काल लगता है वही द्रव्यपरिवर्तन का काल है।

(ख) क्षेत्र परिवर्तन

यहां पर प्रकरण के अनुसार शेष चार परिवर्तनों का भी स्वरूप लिखते हैं। क्षेत्र परिवर्तन के दो भेद हैं— एक स्वक्षेत्र परिवर्तन दूसरा परक्षेत्र परिवर्तन। एक जीव सर्व जघन्य अवगाहनाओं को जितने उसके प्रदेश हों उतनी बार धारण करके पीछे क्रम से एक-एक प्रदेश अधिक-अधिक की अवगाहनाओं को धारण करते-करते महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त अवगाहनाओं को जितने समय में धारण कर सके उतने काल समुदाय को एक स्वक्षेत्र परिवर्तन कहते हैं। कोई जघन्य अवगाहना का धारक सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव लोक के अष्ट मध्य प्रदेशों को अपने शरीर के अष्ट मध्य प्रदेश बनाकर उत्पन्न हुआ, पीछे वही जीव उस ही रूप से उस ही स्थान में दूसरी तीसरी बार भी उत्पन्न हुआ। इसी तरह घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जघन्य अवगाहना के जितने प्रदेश हैं उतनी बार उसी स्थान पर क्रम से उत्पन्न हुआ

और श्वास के अठारहवें भागप्रमाण क्षुद्र आयु को भोग-भोग कर मरण को प्राप्त हुआ। पीछे एक-एक प्रदेश के अधिक क्रम से जितने काल में सम्पूर्ण लोक को अपना जन्म क्षेत्र बना ले उतने काल समुदाय को एक परक्षेत्रपरिवर्तन कहते हैं।

(ग) काल परिवर्तन–

कोई जीव उत्सर्पिणी के प्रथम समय में पहली बार उत्पन्न हुआ, इस ही तरह दूसरी बार दूसरी उत्सर्पिणी के दूसरे समय में उत्पन्न हुआ, तथा तीसरी उत्सर्पिणी के तीसरे समय में तीसरी बार उत्पन्न हुआ। इस ही क्रम से उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के बीस कोड़ीकोड़ी अद्धा सागर के जितने समय हैं उनमें उत्पन्न हुआ, तथा इस ही क्रम से मरण को प्राप्त हुआ, इसमें जितना काल लगे उतने काल समुदाय को एक काल परिवर्तन कहते हैं।

(घ) भव परिवर्तन–

कोई जीव दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार जघन्य दस हजार वर्ष की आयु से प्रथम नरक में उत्पन्न हुआ, पीछे एक-एक समय के अधिक क्रम से नरक सम्बन्धी तेतीस सागर की आयु को क्रम से पूर्ण कर, अन्तर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतनी बार जघन्य अन्तर्मुहूर्त की आयु से तिर्यंचगति में उत्पन्न होकर यहां पर भी नरकगति की तरह एक एक समय के अधिक क्रम से तिर्यग्गति सम्बन्धी तीन पल्य की उत्कृष्ट आयु को पूर्ण किया। पीछे तिर्यग्गति की तरह मनुष्यगति को पूर्ण किया, क्योंकि मनुष्यगति की भी जघन्य अन्तर्मुहूर्त की तथा उत्कृष्ट तीन पल्य की आयु है। मनुष्यगति के बाद दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार जघन्य दस हजार वर्ष की आयु से देवगति में उत्पन्न होकर पीछे एक-एक समय के अधिक्रम से इकतीस सागर की उत्कृष्ट आयु को पूर्ण किया, क्योंकि यद्यपि देवगति सम्बन्धी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की है तथापि यहाँ पर इकतीस सागर ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यादृष्टि देव की उत्कृष्ट आयु इकतीस सागर ही होती है। और इन परिवर्तनों का निरूपण मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से ही है; क्योंकि सम्यग्दृष्टि संसार में अर्धपुद्गल परिवर्तन का जितना काल है उससे अधिक काल तक नहीं रहता। इस क्रम से चारों गतियों में भ्रमण करने में जितना काल लगे उतने काल को एक भवपरिवर्तन का काल कहते हैं तथा इतने काल में जितना भ्रमण किया जाय उसको भव परिवर्तन कहते हैं।

(ङ)– भाव परिवर्तन

योगस्थानअनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान कषायाध्यवसायस्थान[1] स्थितिस्थान इन चार के निमित्त से भावपरिवर्तन होता है। प्रकृति और प्रदेशबन्ध को कारणभूत आत्मा के प्रदेश परिस्पन्दरूप योग के तरतमरूप स्थानों को योगस्थान कहते हैं। जिन कषायों के तरतमरूप स्थानों से अनुभागबन्ध होता है उनको अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान कहते हैं। स्थितिबन्ध को कारणभूत कषाय परिणामों को कषायाध्यवसायस्थान या स्थितिबन्धाध्यवसायस्थान कहते हैं। बन्धरूप कर्म की जघन्यादिक स्थिति को स्थितिस्थान कहते हैं। इनका परिवर्तन किस तरह होता है यह दृष्टांत द्वारा आगे लिखते हैं–

श्रेणि के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थानों के हो जाने पर एक अनुभाग-बन्धाध्यवसायस्थान होता है, और असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसाय स्थानों के हो जाने पर एक कषायाध्यवसायस्थान होता है, तथा असंख्यात लोकप्रमाण कषायाध्यवसाय स्थानों के हो जाने पर एक स्थितिस्थान होता है। इस क्रम से ज्ञानावरण आदि समस्त मूलप्रकृति वा उत्तरप्रकृतियों के समस्त स्थानों के पूर्ण होने पर एक भाव परिवर्तन होता है। जैसे किसी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि संज्ञी जीव के ज्ञानावरण कर्म की अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जघन्य स्थिति का बन्ध होता है। यही यहाँ पर जघन्य स्थिति है। अतः इसके योग्य विवक्षित जीव के जघन्य ही अनुभागबन्धाध्यवसायस्थान जघन्य ही कषायाध्यवसायस्थान और जघन्य ही योगस्थान होते हैं। यहाँ से ही भावपरिवर्तन का प्रारम्भ होता है। अर्थात् इसके आगे श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थानों के क्रम से हो जाने पर दूसरा अनुभाग बन्धाध्यवसायस्थान होता है। इसके बाद फिर श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण योगस्थानों के क्रम से हो जाने पर तीसरा अनुभाग बंधाध्यवसायस्थान होता है। इस ही क्रम से असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागबन्धाध्यवसायस्थानों के हो जाने पर दूसरा कषायाध्यवसाय स्थान होता है। जिस क्रम से दूसरा कषायाध्यवसायस्थान हुआ उसही

---

[1] एक ही कषाय परिणाम में दो कार्य करने का स्वभाव है। एक स्वभाव अनुभाग बंध को कारण है, और दूसरा स्वभाव स्थितिबंध को कारण है। इसको ही अनुभागबंधाध्यवसाय और कषायाध्यवसाय कहते हैं।

क्रम से असंख्यात लोक प्रमाण कषायाध्यवसायस्थानों के हो जाने पर भी वही जघन्यस्थिति स्थान होता है। जो क्रम जघन्य स्थितिस्थान में बताया वही क्रम एक-एक समय अधिक द्वितीयादि स्थितिस्थानों में समझना चाहिए। तथा इसी क्रम से ज्ञानावरण की जघन्य स्थिति से लेकर उत्कृष्ट स्थिति तक समस्त स्थिति स्थानों के हो जाने पर और ज्ञानावरण के स्थितिस्थानों की तरह क्रमसे सम्पूर्ण मूल वा उत्तर प्रकृतियों के समस्त स्थितिस्थानों के पूर्ण होने पर एक भावपरिवर्तन होता है। तथा इस परिवर्तन में जितना काल लगे उसको एक भाव परिवर्तन का काल[1] कहते हैं।

इस प्रकार संक्षेप में इन पाँच परिवर्तनों का स्वरूप यहां पर कहा है। इनका काल उत्तरोत्तर अनन्तगुणा अनन्तगुणा है। नाना प्रकार के दुःखों से आकुलित पांच परिवर्तनरूप संसार में यह जीव मिथ्यात्व के निमित्त से अनन्त काल से भ्रमण कर रहा है। इस परिभ्रमण के कारणभूत कर्मों को तोड़कर मुक्ति को प्राप्त करने की जिनमें योग्यता नहीं है उनको अभव्य कहते हैं और जिनमें कर्मों को तोड़कर मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता है उनको भव्य कहते हैं।

यह जीव अनादि से अब तक अनन्त बार पंच परावर्तन कर चुका है।

[1] सभी परिवर्तनों में जहां क्रम भंग होगा वह गणना में नहीं आवेगा।

मानव कल्याण का आधार सत्य एवं अहिंसा

प्रातः स्मरणीय, त्रिकाल वन्दनीय, परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री १०८ शान्ति सागर जी का अन्तिम उपदेश

श्री देशभूषण कुलभूषण मुनियों की निर्वाण स्थली दिगम्बर जैन सिद्ध क्षेत्र कुन्थलगिरि (जि० उस्मानाबाद) में परम पूज्य योगीन्द्र--चूड़ामणि, धर्म साम्राज्य नायक, श्री १०८ चारित्र चक्रवर्ती आचार्य–वर्य श्री शांतिसागर महाराज का अपने यम सल्लेखना के २६वें दिन दिनांक ८.६.१६५५ बृहस्पतिवार को सायं ५-१० से ५–३२ तक (२२ मिनट) मराठी भाषा में दिया हुआ अन्तिम 'आदेश और उपदेश' का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है।

* * * * *

ॐ जिनाय नमः। ॐ सिद्धाय नमः। ॐ अर्हं सिद्धाय नमः। भरत ऐरावत क्षेत्रस्य भूत, भविष्यत, वर्तमान तीस–चौबीसों भगवान नमः। सीमंधरादि बीस विद्यमान तीर्थंकर भगवान् नमो नमः। ऋषभादि महावीर तक चौदह सौ बावन गणधर देवाय नमः। चौंसठ ऋद्धिधारी मुनीश्वराय नमः। अन्तःकृत्केवलिभ्यो नमो नमः। हर एक तीर्थंकर के समय दस दस घोरोपसर्ग विजयी मुनीश्वराय नमो नमः।

ग्यारह अंग चौदह पूर्व युक्त महासागर के समान शास्त्र हैं। उसका वर्णन करने वाले श्रुतकेवली नहीं हैं, उसके ज्ञाता केवली भी अब नहीं हैं; उसका वर्णन हमारे सदृश क्षुद्र मनुष्य क्या कर सकते हैं। आत्मा का कल्याण करने वाली जिनवाणी सरस्वती 'श्रुत देवी' अनन्त समुद्र समान है। उसमें कहे गए जिन धर्म धारण करने वाले जीव का कल्याण अवश्यम्भावी है। इनमें से एक अक्षर "ॐ" है। उस एक ॐ अक्षर को जो धारण करता है, उस जीव का कल्याण होता है। 'सम्मेद चोटी' पर कलह करने वाले दो कपि उसी के स्मरण से स्वर्ग पहुंच गये। पद्मरुचि श्रेष्ठी के उपदेश से बैल स्वर्ग को गया। सप्त व्यसन धारी अंजन चोर को भी मोक्ष प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त नीच योनी के कुत्ते को भी जीवन्धर कुमार के उपदेश से देवगति

प्राप्त हुई। इतना महत्त्वपूर्ण होने पर भी लोग जैन धर्म को स्वीकार नहीं करते। जैन होकर भी अपने धर्म पर विश्वास नहीं करते।

'जीव और पुद्गल पृथक-पृथक है'

अनादि काल से जीव और पुद्गल दोनों ही भिन्न हैं। यह समस्त संसार जानता है, लेकिन विश्वास नहीं करता। पुद्गल को जीव और जीव को पुद्गल मानते हैं। दोनों के गुण धर्म भिन्न हैं। ये दोनों भिन्न-भिन्न हैं। क्या जीव पुद्गल है ? या पुद्गल जीव है ? पुद्गल तो जड़ है। स्पर्श, रस, वर्ण, गन्ध यह उसके गुण हैं। ज्ञान, दर्शन चेतना यह जीव का लक्षण है। हम तो जीव हैं। पुद्गल का पक्ष लिया तो जीव का अहित होता है। किन्तु मोक्ष को जाने वाला एक मात्र जीव है, पुद्गल नहीं। जीव का कल्याण करना, अनंत सुख को पहुंचाना अपना कर्तव्य है, लेकिन मोहनीय कर्मो से विश्व भूला हुआ है। दर्शन मोहनीय कर्म सम्यक्त्व का नाश करता है। चारित्र मोहनीय कर्म चारित्र का नाश करता है। फिर हमें क्या करना चाहिए ? दर्शन मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिये सम्यक्त्व धारण करना चाहिये। चारित्र मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिए संयम धारण करना चाहिए। चारित्र मोहनीय कर्म को नष्ट करने के लिये संयम धारण कीजिये। यही हमारा आदेश है व उपदेश है।

अनंत काल से जीव मिथ्यात्वकर्म से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। तब मिथ्यात्व को नष्ट करना चाहिये और सम्यक्त्व को प्राप्त करना चाहिए। सम्यक्त्व क्या है ? इसका समग्र वर्णन कुन्दकुन्दाचार्य जी ने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड और गोम्मटसारादि ग्रन्थों में वर्णन किया है, लेकिन उस पर किसकी श्रद्धा है ? आत्म-कल्याण करने वाला ही श्रद्धा करता है। मिथ्यात्व को धारण मत करो, यह हमारा आदेश व उपदेश है। ॐ सिद्धाय नमः।

कर्म की निर्जरा का साधन आत्म-चिन्तन

तुम्हें क्या करना चाहिए? दर्शन मोहनीय कर्म को नष्ट करना चाहिये। दर्शन मोहनीय कर्म आत्म चिंतन से नष्ट होता है। कर्म की 'निर्जरा' आत्म चिंतन से ही होती है।

दान पूजा करने से पुण्य प्राप्त होता है। तीर्थ यात्रा करने से पुण्य प्राप्त होता है। हर एक धर्म का उद्देश्य पुण्य प्राप्त करना है किन्तु 'केवलज्ञान' होने के लिये,

अनंत कर्म की निर्जरा के लिये आत्म चिन्तन ही उपाय है। वह आत्म-चिंतन चौबीस घंटे में से छह घड़ी उत्कृष्ट, चार घड़ी मध्यम, दो घड़ी जघन्य, कम से कम दस-पन्द्रह मिनट या हमारे कहने से पांच मिनट तो आत्म–चिन्तन करो। आत्म-चिन्तन के सिवाय सम्यक्त्व नहीं होता, संसार का बंधन नहीं टूटता, जन्म, बुढ़ापा, मृत्यु नहीं छूटती। सम्यक्त्व के बगैर दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय नहीं होता। सम्यक्त्व होकर छयासठ सागर तक यह जीव संसार में रहेगा। चारित्र–मोहनीय कर्म का क्षय करने के लिए संयम धारण करना चाहिये। संयम के बिना चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय नहीं होता। इसलिये जैसे भी हो हर एक जीव को संयम धारण करना चाहिये। डरना नहीं है। वस्त्र धारण में संयम नहीं है। वस्त्र धारण में सातवां गुणस्थान नहीं है। सातवें गुणस्थान के बिना उच्च आत्मानुभव नहीं और 'केवलज्ञान' नहीं व 'केवलज्ञान' के अभाव से मोक्ष नहीं। ॐ सिद्धाय नमः।

सम्यक्त्व और संयम धारण के बिना समाधि संभव नहीं

सविकल्प समाधि, निर्विकल्प समाधि ऐसे दो भेद हैं। सविकल्प समाधि वस्त्र से गृहस्थ को होती है। वस्त्र में निर्विकल्प समाधि नहीं है। निर्विकल्प समाधि के बिना सम्यक्त्व होता नहीं। भाइयो ! इसलिये डरना नहीं। मुनि पद धारण करो। निर्विकल्प समाधि होने के बाद वास्तविक सम्यक्त्व होता है। आत्मानुभव होने पर परमार्थ सम्यक्त्व होता है। व्यवहार सम्यक्त्व परमार्थ सम्यक्त्व नहीं है। यह साधन है। फल के लिये जैसे फूल होना आवश्यक है, वैसे ही व्यवहार सम्यक्त्व आवश्यक है, ऐसा कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में बतलाया है। निर्विकल्प समाधि मुनि पद धारण करने के बाद ही होती है। सातवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक निर्विकल्प होती है। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान होता है। ऐसा नियम है, शास्त्र में लिखा है।

यह विचार कर डरो मत कि क्या करें ? संयम धारण करो, सम्यक्त्व धारण करो। पुद्गल और आत्मा भिन्न–भिन्न हैं, यह सर्व श्रुत है। सत्य को नहीं समझा। अगर सत्य समझते तो भाई, बन्धु, माता, पिता आदि को अपना नहीं समझते। यह सब पुद्गल से सम्बन्धित हैं। जीव का कोई भी साथी नहीं है। जीव अकेला है, बिल्कुल अकेला। उसका कोई नहीं, अकेला ही भव–भव में परिभ्रमण करता रहता है। मोक्ष की प्राप्ति भी अकेले को ही होती है।

देव पूजा, गुरुपारित्त, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये धर्म क्रियाएं हैं। असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन छः क्रियाओं से होने वाले पाप का उक्त छः धर्म क्रियाओं से क्षय होता है, पुण्य प्राप्त होता है। पंच पाप का त्याग करने से पंचेन्द्रिय सुख मिलता है, लेकिन मोक्ष नहीं मिलता। सम्पत्ति, संतति, वैभव, राज्य, इन्द्रपद पुण्य से ही मिलता है, किन्तु मोक्ष आत्म-चिन्तन से ही प्राप्त होता है। नय, शास्त्र, अनुभव इन तीनों को मिलाकर देखिये। मोक्ष क़िससे प्राप्त होता है ? मोक्ष आत्म-चिन्तन से ही प्राप्त होता है, यह भगवान की वाणी है। यही सत्य वाणी है। मोक्ष का कारण एक आत्म-चिंतन है। इसके बिना सद्गति नहीं होती।

सारांश

'धर्मस्य मूलं दया' प्राणी का रक्षक दया है। जिन धर्म का मूल क्या है ? 'सत्य और अहिंसा'। मुख से सब सत्य अहिंसा बोलते हैं। मुख से भोजन भोजन कहने से क्या पेट भरता है ? भोजन किये बिना पेट नहीं भरता है, क्रिया करनी चाहिए। सत्य अहिंसा पालो। सत्य से सम्यक्त्व है। अहिंसा से दया है। किसी को कष्ट नहीं दो। यह व्यवहार की बात है। सम्यक्त्व धारण करो, संयम धारण करो, इसके बिना कल्याण नहीं होता।

मन को कैसे जिएँ ?

मन को जीतने, मन को मारने का कहना जितना सरल है, उसका क्रियान्वयन करना उतना ही कठिन है। मन को जितना रोको, उतना ही भागेगा। किन्तु यदि इसको खुला छोड़ दो और मात्र साक्षी भाव से देखो तो पाओगे कि ढीठ सा खड़ा है, क्योंकि निषेध में आकर्षण होता है। मन को कहो कि कूद जा, तो नहीं कूदेगा– मन को कहो कि मत कूदो, तो जरूर कूदेगा। इसलिए यह ख्याल दिल से निकाल दो कि मन को जीतना है, बल्कि इसके लिए संकल्पित हो जाओ कि मन को जीना है।

मन को कैसे जिएँ ? इसके लिए इसका स्वभाव जानना आवश्यक है। मन खंभे से बंधे उस नटखट बन्दर की तरह है जो कभी शान्त नहीं बैठता, उछल-कूद करता ही रहता है। मन उस मृग की तरह है जो तृण से आच्छादित खाई को देखकर खाने के लोभ में दौड़ता है और उसमें गिर जाता है। मन चिकनी मछली की तरह है जो पकड़ में नहीं आती, हाथों से बार-बार फिसल जाती है। मन इतना चंचल है कि जिसका कोई सानी नहीं। कदाचित् समुद्र की लहरें गिनना आसान हो, किन्तु मन की गति को मापना सहज सम्भव नहीं है।

मन विषय वासनाएँ, इन्द्रिय-जनित सुख एवम् भोग विलास जैसे बहिर्मुखी, जन्म-मरणरूपी भयानक संसार वृद्धि कारणभूत, क्षुद्र एवं अधोगामी विषयों की ओर भागता है। लेकिन इस प्रवृत्ति को ऊर्ध्वारोहणता की ओर, मनुष्यता के चरम विकास, आत्मोन्नति तथा परमात्म-तत्त्व प्राप्ति जैसे अन्तर्मुखी एवं महान लक्ष्य की ओर परिवर्तित किया जा सकता है। मंत्र के द्वारा इस प्रकार का परिवर्तन लाया जा सकता है। मंत्र मन की मलिनता को चित्त से दूर करता है, अतः मन को मंत्र का संग देना आवश्यक है। मंत्र से ही मन के दुष्प्रवृत्ति की मृत्यु होती है और मंत्र से ही मन को अमृत स्वरूप जीवन मिलता है।

कौन सा मंत्र ?

अध्यात्म का मंत्र ! अध्यात्म से मन का सौन्दर्य खिलता है। अध्यात्म की शिक्षा, अध्यात्म की चर्चा मन को ऊर्ध्वगामी बनाती है, जबकि भौतिकता से मन अधोगामी

बनता है। अध्यात्म ही जीवन का परम सत्य है, जीवन की तर्ज है एवम् देवत्त्व/अमृतत्व की ओर ले जाता है।

आज मनुष्य भौतिक दृष्टि से अधिक सम्पन्न तो हो गया है, किन्तु वह मानसिक रूप से दुखी है। मुसीबतों में फंसा है, क्यों ? कठिनाइयों में जकड़ा है, क्यों ? क्योंकि मनुष्य के जीवन से अध्यात्म और धर्म चुक गया है। जो अध्यात्म और आत्मा के पथ पर चलते हैं, वे ही मन के मालिक बनते हैं, मन को जी पाते हैं एवम् मृत्यु को जीत लेते हैं। मन को परमात्मा के चरणों में मिटकार जिया जा सकता है। मन को मिटाने का अर्थ अपने अहंकार, ईगो (ego) क्रोधादि दुर्गुणों को मिटा देना है।

मन एक बहुत बड़े ऊर्जा का स्रोत है, किन्तु उस पर नियंत्रण न होने के कारण उस ऊर्जा का विभिन्न विचारों के रूप में बहिर्गमन होता रहता है एवम् दुरुपयोग भी होता रहता है। मन विद्युत के मेन (main) स्विच की तरह है, इसे बंद कर दें तो इन्द्रिय- लम्पटता रूपी उपकरण स्वतः ही बन्द हो जाते हैं। संसार को जीतना आसान है, लेकिन जो अपने आपको जीत ले, अपने विकारों को जीत ले, वह विरला ही वीर होता है, महावीर होता है। क्योंकि मन बड़ा प्रबल है, बड़ा राजनीतिज्ञ है, बड़ा अवसरवादी है और मायाचारी का बड़ा अजायबघर है।

मन की तृप्ति

मन भोगों से कभी तृप्त नहीं होता। उसे तृप्त करना है तो उस पर त्याग का अंकुश रखो। उसको विवेक की लकड़ी से पीटो। मन पीटने से सुधरता है। मन की पूजा नहीं, पिटाई करो-- बस मन तुम्हारा दास बनकर रह जायेगा। अभी तो तुम मन के गुलाम हो। मन को मनाओगे तो सिर पर चढ़ेगा, उसे मारोगे तो तुम्हारा चेला बन जायेगा।

मन आकांक्षाओं में जीता है और आकांक्षाएँ अगणित होती हैं। यदि मन आवश्यकता में जीना प्रारम्भ कर दे, तो आज ही तृप्त हो सकता है। मन को जीतना है, जीना है तो तुम्हें आवश्यक्ता में जीना होगा, क्योंकि आवश्यक्ता की पूर्ति सीमित होने के कारण सम्भव है।

तो मन को कैसे जिएँ ?

मन को जिएँ मित्र की तरह, मित्र मित्र होता है जो संकटों में सहयोगी होता है। जो सँसार में सहयोगी हो सकता है, वह मुक्ति में, परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति में कैसे नहीं सहायक होगा। जो जल कीचड़ का कारण होता है, वही जल कीचड़ की शुद्धि में भी कारण होता है। जो मन पाप में कारण है, वही मन पुण्य में भी कारण बन सकता है– जीवों पर दया करने में, साधु एवं गुणी जनों की वैयावृत्य करने में, दीन दुःखी प्राणियों की सेवा करने में, आत्म-शुद्धि में।

मन को कैसे जिएँ ?

मन को सम्यक् ध्यान के संग जिएँ, आत्म-ध्यान अथवा परमात्म-ध्यान लगायें। ध्यान से मन एकाग्र होता है। नियमित ध्यानाभ्यास करें। ध्यान करने सहज ही बैठ जाएं, नासाग्र दृष्टि करके सहज बैठें। केवल आती-जाती श्वास को देखें– श्वास आ रही है, श्वास जा रही है.................., केवल साक्षी भाव से। मन को नासाग्र पर केन्द्रित करके मात्र श्वास के गमन-निर्गमन को देखें। जैसे द्वार पर संतरी खड़ा होता है, वह एक ही बात का ध्यान रखता है कि कौन भीतर आ रहा है, कौन बाहर जा रहा है। तुम भी पूरी सजगता से श्वास की प्रेक्षा करो, इससे लाभ यह होगा कि तुम्हारा मन तुम्हारे संग हो लेगा।

मन को कैसे जिएँ ?

मन को जीना है तो विवेक रूपी अंकुश हो– यह आवश्यक है, संयम हो– यह आवश्यक है। संकल्प-शक्ति (will power) मजबूत है, तो कुछ भी असम्भव नहीं है। तुम तो अनन्त की सम्भावना हो, अपनी क्षमताओं को पहचानो और संयमपूर्ण जीवन से मन के चमन को महकादो, मन में संयम की सुवास होगी तो मञ्जिल भी पास होगी।

(पूज्य मुनि श्री १०८ तरूण सागर जी के भोपाल में जामा मस्जिद के सामने सार्वजनिक सभा में दिये गये एक मननीय प्रवचन से संक्षिप्त सारांश साभार उद्धृत)

पञ्च परमेष्ठी का लक्षण

अरिहन्त परमेष्ठी

जिन्होंने दर्शनावरण, ज्ञानावरण, मोहनीय और आयु इन चार घातिया कर्मों को समूल नष्ट कर दिया है तथा जो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य सहित हैं, जो सप्तधातु से रहित परमौदारिक शरीर सहित हैं तथा अठारह दोषों से रहित शुद्ध- आत्मा हैं, ऐसे अरिहंत परमेष्ठी कहलाते हैं। वही ध्यान-योग्य हैं।

घातिया कर्म – जो आत्मा के अनुजीवी गुणों का घात करते हैं, उन्हें घातिया कर्म कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं। इन चार घातिया कर्मों के नष्ट होने से अनन्त चतुष्टय प्राप्त होते हैं अर्थात् ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान, दर्शनावरण कर्म के क्षय से अनन्त दर्शन, मोहनीय कर्म के नष्ट होने से अनन्त सुख एवं क्षायिक सम्यक्त्व और अन्तराय कर्म के क्षय होने से अनन्त वीर्य की प्राप्ति होती है। अनन्त दर्शन और सम्यक्त्व में यह अन्तर है कि अनन्त दर्शन में केवल सम्यग्दर्शन है, जबकि मोहनीय कर्म के नष्ट होने से जो सम्यक्त्व गुण प्राप्त हुआ है उस सम्यक्त्व में चारित्र भी गर्भित है।

परमौदारिक शरीर

जिस शरीर में से शरीर के आश्रित रहने वाले अनन्त निगोदिया जीव पूर्णरूपेण निकल गए हैं और जो स्फटिक मणि के समान शुद्ध निर्मल हो गया है उस शरीर को परमौदारिक शरीर कहते हैं।

अठारह दोष

क्षुधा, प्यास, रोग, जन्म, जरा, मृत्यु, भय, गर्व, राग, द्वेष, मोह, चिन्ता, रति, निद्रा, विस्मय, मद, स्वेद और खेद – इन अट्ठारह दोषों को जिसने नष्ट कर दिया है, वही अरिहन्त परमेष्ठी बन सकता है।

सिद्ध परमेष्ठी

जिन्होंने ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणी कर्म के क्षय से अनन्त दर्शन, मोहनीय कर्म के क्षय से अनन्त सुख एवम् क्षायिक सम्यक्त्व, अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त वीर्य, वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाधत्व, आयु कर्म के क्षय से अवगाहनत्व, नाम कर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व (जिसको मात्र केवलज्ञानी ही देख सकते हैं) और गोत्र कर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व गुण प्राप्त कर लिया है, वे सिद्ध परमेष्ठी हैं। ये लोकाग्र भाग पर स्थित हैं और आगे धर्म द्रव्य के अभाव में उससे ऊपर नहीं गये हैं।

इन सिद्धों के ज्ञान में समस्त अलोकाकाश एवम् तीनों लोक आकाश में स्थित एक नक्षत्र के समान स्पष्ट प्रतिभासित होते हैं एवम् अपरिमित तेज के धारी हैं। यह सिद्धात्मारूप तेज विश्व को देखता और जानता है, आत्ममात्र से उत्पन्न आत्यन्तिक सुख को प्राप्त करता है। वह सिद्ध ज्योति चूंकि अतीन्द्रिय है अतएव सूक्ष्म कही जाती है। परन्तु उसमें अनन्तानन्त पदार्थ प्रतिभासित होते हैं, अतः इस अपेक्षा से वह स्थूल भी कही जाती है। वह पर (पुद्गलादि) द्रव्यों के गुणों से रहित होने के कारण शून्य तथा अनन्त चतुष्टय (अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य) से संयुक्त होने के कारण परिपूर्ण भी है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा वह परिणमनशील होने से उत्पाद-विनाशशाली तथा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा विकार रहित होने से नित्य भी मानी जाती है। स्वकीय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा वह सद्भावस्वरूप तथा पर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा अभावस्वरूप भी है। वह अपने स्वभाव को छोड़कर अन्यरूपवर्ती न होने के कारण एक तथा अनेक पदार्थों के स्वरूप को प्रतिभासित करने के कारण अनेक स्वरूप भी हैं। ऐसी उस सिद्ध ज्योति का चिन्तन सभी नहीं कर पाते, किन्तु निर्मल ज्ञान के धारक कुछ विशेष योगीजन ही उसका चिन्तन कर सकते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी को 'निकल-परमात्मा' भी कहते हैं क्योंकि निकल का अर्थ है-- नष्ट कर दिए हैं अपने आठों कर्मों को तथा पांचों शरीरों को जिन्होंने, उन्हें निकल परमात्मा कहते हैं।

आचार्य परमेष्ठी

जो मुनि ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओं से आचरण करवाते हैं, जो भव्य जीवों को शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्त आदि देते हैं, जो मेरु के सामन निश्चल, पृथ्वी के समान सहनशील, समुद्र के समान दोषों को बाहर फैंक देने वाले और सात प्रकार के भयों (इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अकस्मातभय अरक्षाभय, और अगुप्ति भय) से रहित हैं, जो शिष्यों के संग्रह और उन पर अनुग्रह करने में कुशल हैं, वे ही आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं। अथवा जो छत्तीस मूलगुणों का पालन करते हैं, उन्हें आचार्य कहते हैं।

दर्शनाचार– सम्यक्त्व को मलिन करने वाले पच्चीस दोषों से रहित श्रद्धान करना दर्शनाचार है।

ज्ञानाचार– निःशंकित आदि आठ अंगों सहित सम्यग्ज्ञान की आराधना करना ज्ञानाचार है।

चारित्राचार– प्राणिवध, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह इन पांच पापों का सर्वथा त्याग कर देना चारित्राचार है।

तपाचार– अनशनादि बारह प्रकार के बाह्य एवं आभ्यन्तर तपों का अनुष्ठान करना तपाचार है।

वीर्याचार– अपने बल और वीर्य को न छिपाकर जो साधु यथोक्त आचरण में अपने आपको लगाता है अर्थात् कायरता प्रकट न करके हमेशा चारित्र का पालन करने में तथा तप के पालन में उत्साहित रहता है वही वीर्याचार है।

आचार्य के छत्तीस गुण हैं– आचारवत्त्व आदि आठ गुण, बारह तप, दस स्थितिकल्प और छह आवश्यक, ये छत्तीस गुण होते हैं।

आचारवत्त्व आदि आठ गुण– आचारवत्त्व, आधारवत्त्व, व्यवहारपटुता, प्रकुर्वित्व, आयापायदर्शिता, उत्पीलक, अपरिस्रावणी और सुखावह।

१२ तप– अनशन, अवमोदर्य, रस परित्याग, वृत्तिपरिसंख्यान, कायक्लेश, विविक्तशय्यासन, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ये बारह तप हैं।

दस स्थिति कल्प– आचेलक्य, औद्देशिकपिंडत्याग, शैय्याधरपिण्डत्याग, राजकीयपिंड त्याग, कृतिकर्म, व्रतारोपण-योग्यता, ज्येष्ठता, प्रतिक्रमण, मासैकवासिता और योग (पद्य) इस प्रकार दस स्थितिकल्प हैं।

छह आवश्यक– सामायिक, वन्दना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग।

दूसरे प्रकार से अनशनादि बारहतप, उत्तमक्षमादि दस धर्म, पांच आचार, सामायिक आदि छह आवश्यक तथा तीन गुप्ति ये आचार्य के छत्तीस मूलगुण हैं। ये साधु के अट्ठाइस मूल गुणों के अतिरिक्त हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी

जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रय से युक्त हैं तथा सदा ही धर्मोपदेश देने में तत्पर रहते हैं, जो मुनिव्रत के धारक होते हैं, भव्य जीवों को सत्यमार्ग का उपदेश देते हैं, स्वयं पढ़ते हैं और दूसरों को पढ़ाते हैं, (संग्रह और अनुग्रह आदि गुणों को छोड़कर) मेरु के समान निश्चितता आदि रूप आचार्य के गुणों से समन्वित होते हैं, उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। शिष्यों का संग्रह करना, उन्हें दीक्षा देना, प्रायश्चित्त देना, उनका संरक्षण करना, संघ की व्यवस्था संभालना, अनुष्ठान कराना, मंत्र–तंत्र बताना आदि कार्य आचार्य के हैं जिन्हें उपाध्याय परमेष्ठी नहीं करते हैं। अथवा जो ग्यारह अंग और चौदह पूर्व के धारी होते हैं तथा संघ में रहते हुए अन्य साधुओं को श्रुत का अध्ययन कराते हैं, उनकी जिन शासन में उपाध्याय संज्ञा है।

ग्यारह अंग और चौदह पूर्व को आप पढ़ते हैं और अन्य को पढ़ाते हैं। ये पच्चीस गुण उपाध्याय परमेष्ठी के होते हैं।

इस कथन को स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं–

रयणत्तयसंजुत्ता जिणकहियपयत्थदेसया सूरा।
णिक्कंखभावसहिया उवज्झाया एरिसा होंति।।

अर्थात्– जो रत्नत्रय से संयुक्त है, जो जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गए पदार्थों का उपदेश करने वाले हैं, शूरवीर हैं, परिषह आदि के सहने में समर्थ हैं तथा निःकांक्षित भाव से सहित हैं, ऐसे उपाध्याय होते हैं।

ग्यारह अंग– (१) आचारांग (२) सूत्रकृतांग (३) स्थानांग (४) समवायांग (५) व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग (६) ज्ञातृकथांग (७) उपासकाध्ययनांग (८) अंतकृद्दशांग (९) अनुत्तरोत्पाददशांग (१०) प्रश्नव्याकरणांग (११) विपाकसूत्रांग।

चौदह पूर्व– (१) उत्पादपूर्व (२) अग्रायणीयपूर्व (३) वीर्यानुवादपूर्व (४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व (५) ज्ञानप्रवाद पूर्व (६) कर्मप्रवाद पूर्व (७) सत्यप्रवाद पूर्व (८) आत्मप्रवाद पूर्व (९) प्रत्याख्यान पूर्व (१०) विद्यानुवाद पूर्व (११) कल्याणवाद पूर्व (१२) प्राणावाय पूर्व (१३) क्रियाविशाल पूर्व और (१४) लोकबिंदुसार पूर्व।

यद्यपि काल दोष से आज इन गुणों से युक्त कोई भी उपाध्याय परमेष्ठी नहीं है, फिर भी वे नाम–स्थापना से पूज्य हैं। अतः आज जो वर्तमान में आगम ग्रन्थों को पढ़ने–पढ़ाने में समर्थ हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी हैं।

साधु परमेष्ठी

जो अट्ठाईस मूलगुण अर्थात पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रिय-निरोध, छह आवश्यक और सात अन्य गुणों का पालन करते हैं, वे साधु परमेष्ठी होते हैं।

पांच महाव्रत– अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अचौर्य महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत, परिग्रहत्याग महाव्रत।

पांच समिति– ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेपण समिति, उत्सर्ग समिति।

पांच इन्द्रिय-निरोध– स्पर्शनेन्द्रिय निरोध, रसनेन्द्रिय निरोध, घ्राणेन्द्रिय निरोध, चक्षु-इन्द्रिय निरोध, कर्णेन्द्रिय निरोध।

छह आवश्यक– सामायिक, स्तुति, वंदना, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण और कायोत्सर्ग।

सात अन्य गुण– केशलौंच, अचेलकत्व, अस्नानव्रत, क्षितिशयन, अदंतधावन, स्थिति– भोजन और एक भक्त (एक दफा भोजन)।

साधु के अर्थ को स्पष्ट करते हुए नियमसार में कहते हैं–

वावारविप्पमुक्का चउव्विहाराहणासयारत्ता।
णिग्गंथा णिम्मोहा साहू एदेरिसा होंति।।

अर्थ– जो व्यापार से सर्वथा रहित हैं, चार प्रकार की आराधनाओं में सदा लीन रहते हैं, परिग्रह से रहित हैं तथा निर्मोही हैं ऐसे साधु होते हैं। मुनियों के सामान्यतया चार भेद होते हैं। प्रथम तो वे सामान्य मुनि होते हैं जो कि अपने मूलगुणों का पालन करते हैं। दूसरे मुनि वे हैं जो मूलगुणों के साथ उत्तर गुणों का भी पालन करते हैं। तीसरे मुनि वे हैं जो मूल गुणधारी हैं, उत्तरगुणों से शून्य हैं किन्तु सिद्धान्त के विशेषवेत्ता हैं और चौथे मुनि वे हैं जो मूलगुण और उत्तरगुणों का निर्दोष पालन करते हैं और सिद्धान्त के वेत्ता भी हैं।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धारण करने वालों का सुकीर्तिरूपी जल संसाररूपी मैल को नष्ट करता है। वे इस रत्नत्रय के धारण करने से शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं। जगत् का हित करने वाली, अहित–नाशक, संशय को दूर करने वाली, कर्ण–प्रिय तथा भ्रमरूपी रोगों को हरने वाली मुनियों की वाणी चन्द्रमा की चाँदनी के समान निर्मल एवं अमृतमयी होती है।

संदर्भ– (१) द्रव्य संग्रह– श्री मन्नेमिचन्द्र सिद्धान्त देव द्वारा विरचित।

(२) पद्मनन्दि पंचविंशति–आचार्य पद्मनन्दि कृत।

भक्ति की शक्ति बढ़ी, निज गुण दे प्रगटाय।
लौकिक की तो बात क्या, शिव सुख दे दर्शाय।।
जिनवर की भक्ती जो करे, मन वच तन कर लीन।
इस भव में दुख ना लहै, ना भव धरे नवीन।।

श्रावक धर्म

सम्यक्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान के साथ सम्यक्चारित्र का पालन करते ही संसारी जीव के लिए मोक्ष मार्ग प्रशस्त होता है। यदि किसी कारणवश वह महाव्रत अंगीकार न कर सके, तो उसे श्रावक धर्म अर्थात देशसंयम का अवश्य पालन करना चाहिए। सम्यक्दर्शन व सम्यग्ज्ञान का पालन करते हुए वह शुभ-अशुभ भावों अर्थात राग-द्वेष तथा शरीर से भिन्न स्वयं को ज्ञानरूप देखता है। आत्म अनुभव होने लगता है। किन्तु आत्म बल की अभी कमी होने के कारण वह उस ज्ञान-स्वभाव में ठहरना चाहकर भी ठहर नहीं पाता है। यह चूंकि पूर्व संस्कारों के कारण से है, इसलिए वह इन पूर्व संस्कारों को तोड़ने के लिए नये संस्कार पैदा करता है। वह मद्य, मांस, मधु एवं पञ्च उदम्बर फलों (बड़, पीपल, पाकर, कठूमर, अञ्जीर) का यावज्जीवन त्याग करता है। सप्त व्यसन (जुआ खेलना, मांस भक्षण, शराब पीना, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन) का यावज्जीवन त्याग करता है। नित्य श्री जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करता है, अभक्ष्यादि का त्याग करता है, रात्रि भोजन का त्याग करता है, पानी छानकर पीता है। दैनिक छः आवश्यक कर्म (देव पूजा, गुरु उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप अर्थात इच्छानिरोध और दान) करता है। वह वैराग्य भावनाओं (बारह भावनायें– अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आश्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्म) का चिन्तवन करता है तथा अपने चारित्र को उत्तरोत्तर सुधार की ओर ले जाता है।

२.० आत्मा के स्तर पर वह पाता है कि मैं एक अकेला, अनन्त गुणों का पिण्ड, चैतन्य तत्त्व हूँ, मेरा न तो जन्म है और न मरण, न मैं मनुष्य-तिर्यञ्च-देव-नारकी हूँ और न ही स्त्री-पुरुष-नपुंसक, न मैं धनिक-निर्धन, न मैं मूर्ख-बुद्धिमान हूँ और न पर पदार्थों के संयोग- वियोग मुझे सुखी-दुःखी कर सकते हैं।

आत्म-दर्शन के साथ होने वाली सम्यक-धारणायें

जब जीव इस प्रकार अपने चैतन्य स्वभाव का अनुभवन करता है, तब–

१. अहंकार पैदा होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि अहंकार का तो आधार ही शरीरादि शुभ-अशुभ भाव और पुण्य-पाप का फलरूप परपदार्थों में अपनेपने की मिथ्या मान्यता है। तब मैं गृहस्थ हूं अथवा मुनि हूं, इस प्रकार की पर्याय में अहंबुद्धि कैसे हो सकती है ?

२. चेतना के स्तर पर यह ज्ञान दर्शन के अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकता। तब फिर पर को सुखी-दुःखी करने के कर्त्ता होने का मिथ्या अहंकार कहाँ से हो सकता है ?

३. शरीर के स्तर पर तो कोई इष्ट है और कोई अनिष्ट। परन्तु चेतना के स्तर पर न कोई इष्ट है, न अनिष्ट। अतः राग-द्वेष करने का कोई कारण ही नहीं रह जाता क्योंकि इष्ट-अनिष्ट वस्तु नहीं है। इष्ट-अनिष्टपना दिखाई देना यह हमारा दृष्टिदोष है।

४. सुख-दुःख या तो दूसरों के कारण होता है या पुण्य-पाप से होता है, पहले तो ऐसा मानता था। अब समझ में आया कि दुःख तो अपनी कषाय से होता है और सुख कषाय के अभाव से, अतः सुखी होने के लिए कषाय के अभाव का उपाय करता है।

५. पहले मानता था कि कषाय दूसरों की वजह से होती है या कर्मोदय के कारण होती है। अब समझ में आया कि कषाय होने में समूची जिम्मेदारी मेरी अपनी है। कोई निमित्त कषाय नहीं कराता, और न ही निमित्त की वजह से कषाय होती है, बल्कि जब पर को निमित्त बनाकर मैं स्वयं ही कषायरूप परिणमन करता हूँ तो उपचार से ऐसा कह दिया जाता है कि पर ने कषाय कराई। परन्तु ऐसा कथन मात्र उपचार है और वस्तुतः असत्य है। निमित्त न तो कोई कार्य करता है, न कार्य कराता है, अपितु हम ही निमित्त का अवलम्बन लेकर अपना कार्य करते हैं।

६. राग से बंध होता है- अशुभ भावों से पाप का और शुभ भावों से पुण्य का। तथा शुद्ध भावों से कर्मों का नाश होता है, इस प्रकार की सम्यक् मान्यता रखता है।

७. ऐसा मानता है कि व्यवहार-धर्म बंध-मार्ग है, परन्तु बंध-मार्ग होने के साथ-ही साथ वह आत्मोन्नति के मार्ग में निचली भूमिका में प्रयोजनभूत भी है।

८. नरक के डर से अथवा स्वर्ग के लोभ से होने वाला कार्य धर्म-कार्य नहीं हो सकता। आत्म-स्वभाव में लग जाने/ठहर जाने की भावना से प्रेरित कार्य को ही व्यवहार धर्म-कार्य कहा जाता है।

९. कषाय के नाश का उपाय अपने ज्ञान-स्वभाव का अनुभवन करना है। जितना कषाय का अभाव होता है उतना परमात्मपने के नजदीक होता जाता है। और जब कषाय का सर्वथा अभाव हो जाता है, तब परमात्मा हो जाता है। यही धर्म है, यही वस्तु स्वभाव है।

१०. मेरे में परमात्मा होने की शक्ति है, अपने सही पुरुषार्थ से उस शक्ति को व्यक्त किया जा सकता है।

११. भगवान किसी का कुछ कर्त्ता नहीं है। वह वीतराग और सर्वज्ञ है– न किसी को सुखी कर सकता है, न दुःखी कर सकता है। वह तो अपने स्वभाव में लीन है, उनको देखकर हम भी अपने स्वभाव को याद कर लें और उनके बताये मार्ग पर चलकर निज में परमात्मा बनने का उपाय कर सकते हैं।

यह सब निर्णय जो ऊपर में बताया है वह चौथे गुणस्थान में होता है जिसका वर्णन आगे पैरा ४.२ किया है।

३.० जैसा कि ऊपर विचार कर आये हैं, धर्म के लिये– निज ज्ञान-आनन्द-स्वभाव की प्राप्ति के लिये, कषाय का नाश करना जरूरी है। कषाय/ राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण अपनी अज्ञानता है, शरीर और कर्मफल में अपनेपने की मिथ्या मान्यता है। अपने स्वरूप को यह जीव जाने तो इसका शरीरादि में अपनापना छूटे, शरीरादि में अपनापना छूटे तो कषाय पैदा होने का कारण दूर हो, और कषाय पैदा होने का मूल कारण दूर हो तो उसके बाद, राग-द्वेष के जो पूर्व संस्कार शेष रह गए हैं उनके क्रमशः अभाव का उपाय बने, और इस प्रकार जितना-जितना कषाय -राग-द्वेष घटता जाये उतनी-उतनी शुद्धता आती जाये।

४.० गुणस्थानः

कषाय के माप के लिए चौदह गुणस्थानों का निरूपण आगम में किया गया है। जैसे थर्मामीटर के द्वारा बुखार का माप किया जाता है, वैसे ही गुणस्थानों के द्वारा मोहरूपी बुखार का माप होता है। जैसे-जैसे कषाय में कमी होती है, बाह्य में परावलम्बन घटता है और अंतरंग में स्वरूप से निकटता बढ़ती है– आत्मा उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होती है।

४.१ पहला गुणस्थान

जब तक यह जीव कर्म और कर्मफल में – शरीर तथा राग–द्वेष में अपनापना स्थापित किये हुए है तब तक यह पहले गुणस्थान में ही स्थित है।

यहां से आगे की ओर यात्रा की शुरूआत तभी सम्भव है जब वस्तुस्वरूप का, स्व–पर के भेद का निर्णय करने की दिशा में उद्यम करता है, यह निश्चय करता है कि कषाय का अभाव करना है, निज स्वभाव को प्राप्त करना है और इनके हेतु खोज करना है कि स्वभाव को प्राप्त करने वाला और कषाय का नाश करने वाला कौन है ? अब उसके लिये वही परमात्मा–देव है जो कषाय से रहित है और स्वभाव को प्राप्त किया है, वही पूजने योग्य है, वही साध्य है। वही शास्त्र है जो कषाय के नाश और स्वभाव की प्राप्ति का उपदेश दे, और वे ही गुरु हैं जो इस कार्य में लगे हुए हैं। इनके अतिरिक्त किन्हीं ऐसे तथाकथित देव, शास्त्र, गुरु की संगति, पूजा आदि नहीं करता जिनसे कषाय की पुष्टि होती हो। इस प्रकार सही देव–शास्त्र–गुरु का निर्णय करता है और उनके अवलम्बन से अपने स्वरूप को जानने का उद्यम करता है। यह पुरुषार्थ कोई भी व्यक्ति, स्त्री, पुरुष, वृद्ध, जवान यहां तक कि पशु–पक्षी जो मन सहित है, कर सकता है।

४.२ चौथा गुणस्थान

सच्चे देव–शास्त्र–गुरु के माध्यम से अपने स्वरूप को स्पर्श करने का पुरुषार्थ करते हुए जब यह जीव निर्णय करता है कि मैं शरीर से भिन्न एक अकेला चेतन हूँ, और मेरी पर्याय में होने वाले रागादि भाव, जिनके कारण मैं दुःखी हूं, मेरे स्वभाव नहीं अपितु विकारी भाव हैं, अनित्य हैं, नाशवान हैं– जब यह शरीर और रागादि से भिन्न अपने ज्ञाता–स्वरूप को देख पाता है– तो पहले से चौथे, अविरत सम्यग्दृष्टि नामक

नोटः दूसरा–तीसरा गुणस्थान चौथे से गिरने की अवस्था में होते हैं।

गुणस्थान में आता है। रागादि से भिन्न अपनी सत्ता का अब यद्यपि निर्णय हो गया है तथा राग-द्वेष का नाश नहीं कर पा रहा है, किन्तु अंतरंग में अनन्तानुबन्धी कषाय का अभाव हो जाता है।

अब शरीर है, परन्तु उसमें अपनापना नहीं है; रागादि भाव हैं परन्तु उनको कर्मजनित विकारी भाव जानकर उनके नाश करने का उपाय करता है। पहले समझता था कि इनके होने में मेरा कोई दोष नहीं, ये तो कर्म की वजह से हुए हैं अथवा किसी दूसरे ने करवा दिये हैं। परन्तु अब समझता है कि मेरे पुरुषार्थ की कमी से हो रहे हैं, इसलिये मेरी वजह से हुए हैं, और पुरुषार्थ बढ़ाकर ही मैं इनका नाश कर सकता हूं। बाहरी सामग्री का संयोग-वियोग, पुण्य-पाप के उदय से हो रहा है, उसमें मैं जितना जुड़ूंगा उतना ही राग होगा; वे संयोगादिक सुख-दुख के कारण नहीं हैं बल्कि मेरा उनमें जुड़ना सुख-दुःख का कारण है। इस प्रकार स्वयं में विकार होने की जिम्मेदारी अपनी समझता है, और विकार के नाश के लिये बार-बार अपने स्वभाव का अवलम्बन लेता है, स्वयं को चैतन्य-रूप अनुभव करने की चेष्टा करता है। जितना स्वयं को चैतन्य -रूप देखता है उतना शरीरादि के प्रति राग कम होता जाता है। फलतः कषाय बढ़ने के साधनों से हटता है। घोर हिंसा के मूल जैसे मद्य, मांस, पञ्च उदम्बर फल आदि का त्याग करता है। रात्रि में भोजन नहीं करता। इस प्रकार घोर हिंसा से बचता है। कषाय वृद्धि के साधनों जैसे मांस, मदिरा, जुआ, चोरी, शिकार, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन आदि व्यसनों के नजदीक भी नहीं जाता। कोई और लत भी नहीं पालता— जैसे कि बीड़ी, सिगरेट तम्बाकू, नशीले पदार्थ आदि की लत, क्योंकि व्यसन है ही ऐसी आदत जो आत्मा को पराधीन कर डालती है।

अभी तक कर्म के बहाव के साथ बह रहा था, जैसा कर्म का उदय आया वैसा ही परिणमन कर रहा था। अब समझ में आया कि यदि मैं अपने स्वभाव की ओर झुकाव करूँ तो कर्म का कार्य मिट सकता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि कोई आदमी हमारा हाथ पकड़कर खींच रहा है। अब यदि हम स्वयं भी उधर ही जाने की चेष्टा करते हैं तो खींचने वाले का बल और हमारा बल दोनों मिलकर एक ही दिशा में कार्य करते हैं, जिसके फलस्वरूप हम उसी दिशा में बिना किसी विरोध के बल्कि स्वेच्छा से, खिंचे चले जाते हैं। परन्तु यदि यह समझ में आये कि मैं अपना पुरुषार्थ विपरीत दिशा में भी लगा सकता हूँ, ये मेरी अपनी स्वतंत्रता हैं तो हमारा बल तो यद्यपि उतना ही है, परन्तु जब उस आदमी ने अपनी तरफ खींचा तो मान लीजिए

कि हमने अपनी ताकत उसके विपरीत दिशा में लगा दी। इस चेष्टा का नतीजा यह हुआ कि इस बार जो थोड़ा-बहुत खिंचाव आया भी तो वह उस आदमी की ताकत में से हमारी ताकत को घटाने पर जो थोड़ी बहुत ताकत शेष बची उसके फलस्वरूप आया। यही बात कर्मोदय के सम्बन्ध में है। यदि हम कर्म के बहाव में स्वेच्छा से बहने के बजाय अपना पुरुषार्थ विपरीत दिशा में अर्थात् आत्म-स्वभाव में रत होने में लगायें तो कर्म का फल उतना न होकर बहुत कम होगा, पहले की अपेक्षा नगण्य होगा।

चूंकि समस्त कषाय को मिटाने में भी अभी स्वयं को असमर्थ पाता है, अतः तीव्र कषाय को और उसके बाह्य आधारों, जैसे कि ऊपर कहे गए व्यसनादि, और अन्याय, अभक्ष्य आदि को छोड़ते हुए मन्द कषाय में रहकर उसको भी मिटाने की चेष्टा करता है। वहां वीतरागी सर्वज्ञ देव, उनके द्वारा उपदिष्ट शास्त्र और उसी मार्ग पर चल रहे गुरु– जो मानो जीवन्त शास्त्र ही हैं– इनको माध्यम बनाकर निज स्वभाव की पुष्टि करता रहता है।

सम्यग्दर्शन के साथ पाये जाने वाले गुणः

अब चूंकि शरीर के स्तर से चेतना के स्तर पर आ गया है, इसलिये इसे सात प्रकार का भय भी नहीं होता। मेरा अभाव हो जायेगा ऐसा भय कदापि नहीं होता, कर्मोदय-जनित (नोकषाय-जनित) भय यदि आत्मबल की कमी से होता भी है तो उसका स्वामी नहीं बनता। कर्मफल की वांछा भी इसके नहीं रहती, क्योंकि यह निर्णय हो चुका है कि पुण्य और पाप दोनों के फल से भिन्न मैं तो मात्र चेतना हूँ। अतः न तो पुण्य फल की अभिलाषा है और न पाप के फल से ग्लानि है, चाहे अपने पाप का फल हो या दूसरे के। कौन मेरे लिए ध्येय है, मार्गदर्शक है, इस विषय में कोई मूढ़ता तो अब रह ही नहीं गई है। ध्येय के स्वरूप को समझकर उनका अवलम्बन ले रहा है, देखा देखी की बात अब नहीं रही। निरन्तर आत्मगुणों को बढ़ाने की चेष्टा करता है, और स्वयं को पर से हटाकर अपने गुणों में स्थिर रखने का उपाय करता है। आत्म-उत्थान के प्रति तीव्र रुचि, अत्यन्त प्रेम रखता है। आत्मोत्थान की दिशा में बढ़ने का उपाय करता है। संसार-शरीर-भोगों से विरक्ति और आत्म-स्वरूप में प्रवृत्ति बढ़ती है। जीव मात्र को अपने समान चैतन्यरूप देखता है, अतः उनके प्रति अनुकम्पा का भाव पैदा होता है। जीवों की रक्षा के लिए रात्रि भोजन का त्याग और पानी छानकर पीने आदि की पद्धति अपनाता है।

इस भूमिका में रहते हुए कम से कम छह महीने में एक बार आत्मानुभव अवश्य होता है, अन्यथा चौथा गुणस्थान नहीं रहता। यहाँ साधक जब आत्मानुभव को जल्दी–जल्दी प्राप्त करने का पुरुषार्थ करता है तो देशसंयमरूप परिणामों की विरोधी जो अप्रत्याख्यानावरण कषाय है, वह मंद होने लगती है। जब यह पन्द्रह दिन में एक बार आत्मानुभव होने की योग्यता बना लेता है, तो वह पांचवें गुणस्थान में पहुंचता है।

४.३ पांचवां गुणस्थान (संयमासंयम अथवा देश संयम)

यहां अंतरंग में अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अभाव होता है, त्याग के भाव होते हैं और बहिरंग में अणुव्रतादिक बारह व्रतों को धारता है, तथा ग्यारह प्रतिमाओं के अनुरूप उत्तरोत्तर आचरण क्रम से शुरू होता है।

(१) **दर्शन प्रतिमाः** अब सप्त व्यसन का प्रतिज्ञापूर्वक त्याग करता है। जो भी कषाय बढ़ने के साधन हैं उनका त्याग करता है। जीव–रक्षा के हेतु ऐसे कारोबार से हटता है जिसमें जीव हिंसा अधिक होती हो। रात्रि भोजन का प्रतिज्ञापूर्वक त्याग करता है और खाने–पीने की चीजों को जीव हिंसा से बचने के लिऐ देख–शोधकर ग्रहण करता है।

(२) **व्रत प्रतिमाः** पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार बारह व्रतों का पालन इस प्रतिमा से शुरू होता है। यद्यपि साधक की दृष्टि समस्त कषाय का अभाव करने की है तथा आत्मबल उतना न होने के कारण जितना आत्मबल है उसी के अनुसार त्याग मार्ग को अपनाता है, और जितनी कषाय शेष रह गई है उसे अपनी गलती समझता है। उसके भी अभाव के लिये अपने आत्मबल को बढ़ाने की चेष्टा करता है, और आत्म बल की वृद्धि चूंकि आत्मानुभव के द्वारा ही सम्भव है, अतः उसी की प्राप्ति के लिऐ प्रयत्न करता है। जितना-जितना स्वावलम्बन बढ़ता है उतना--उतना परावलम्बन घटता जाता है। बहिरंग में परावलम्बन को घटाने की चेष्टा भी वस्तुतः स्वावलम्बन को बढ़ाने के लिये ही की जाती है। जैसे कि चलने के लिये कमजोर आदमी द्वारा पहले लाठी का सहारा लिया जाता है, फिर उसके सहारे से जैसे–जैसे वह चलता है, वैसे–वैसे सहारा छूटता जाता है। आत्मा को यद्यपि किसी सहारे की आवश्यकता नहीं, वह स्वयं में परिपूर्ण है, तथापि आत्मबल की कमी है। जितना पर का अवलम्बन है उतनी ही पराधीनता है, कमी है। अतः आत्मबल को बढ़ाता है तो पराधीनता घटती जाती है।

पहले अन्याय, अनाचार, अभक्ष्य* तक की पराधीनता थी, अब घटकर न्यायरूप प्रवृत्ति, हिंसारहित भक्ष्य पदार्थों तक सीमित हो जाती है। पहले व्यापार आदि में झूठ, चोरी आदि की असीमित प्रवृत्ति थी अब वह प्रवृत्ति झूठ और चोरी से रहित हो जाती है। पहले परिग्रह में असीम लालसा थी, अब उसको सीमित करता है। इसी प्रकार अपनी अभिलाषा, लालसा और इच्छाओं की सीमा निर्धारित करता है।

जिस प्रकार जब कोई मोटर-गाड़ी पहाड़ पर चढ़ती है तो ब्रेक के द्वारा तो गाड़ी को नीचे की ओर जाने से रोका जाता है और एक्सीलेटर के द्वारा गाड़ी को आगे बढ़ाया जाता है, उसी प्रकार प्रतिज्ञारूप त्याग के द्वारा तो साधक अपनी परिणति को नीचे की ओर जाने से रोकता है, और आत्मानुभव के द्वारा आगे बढ़ाता है। अथवा यह कहना चाहिए कि त्याग और आत्मानुभव दोनों का कार्य उसी प्रकार भिन्न-भिन्न है जिस प्रकार परहेज और दवाई का; जबकि दवाई तो रोग को मिटाती है, परहेज रोग को बढ़ने नहीं देता। नीरोगावस्था तभी प्राप्त होती है जब दवाई भी ली जाये और परहेज भी किया जाए- आत्मा का उत्थान भी तभी सम्भव है जब बहिरंग में त्याग और अन्तरंग में आत्मस्वरूप का अनुभव हो।

अब बारह व्रतों के स्वरूप पर विचार करते हैं-

१- अहिंसाअणुव्रत

दूसरे जीवों को अपने समान समझता है। जानता है कि जिस सुई के चुभने से मुझे जैसी पीड़ा होती है तो दूसरे को भी वैसी ही पीड़ा होती है। अतः मन-वचन-काय से दूसरे के प्रति कोई ऐसा व्यवहार नहीं करता जैसा यदि दूसरा अपने प्रति करे तो अपने को कष्ट हो। जब सभी जीव अपने समान हैं तो दूसरे को दुखी करना वास्तव में अपने को ही दुःखी करना है। अहिंसा अणुव्रत में निम्नलिखित बातें गर्भित हैं:-

(क) संकल्पपूर्वक किसी जीव को नहीं मारता।

(ख) वचन का ऐसा प्रयोग नहीं करता जिससे दूसरे को कष्ट हो।

(ग) मन से भी किसी का बुरा नहीं सोचता।

(घ) आत्महत्या का भाव नहीं करता।

(ङ) किसी के गर्भपातादि कराने को हिंसा समझता है।

---

* अभक्ष्य का विस्तृत विवेचन परिशिष्ट १.०८ (क) में दिया है।

(च) किसी ऐसी सभा सोसायटी अथवा आदमियों की संगति नहीं करता जिनका लक्ष्य हिंसा है।

(छ) सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव रखता है।

(ज) मजदूर, रिक्शा चालक आदि पर लोभ के वशीभूत होकर उनकी शक्ति से ज्यादा वजन नहीं लादता।

(झ) नौकर, मजदूर आदि को समय पर भोजनादि मिले इसका ध्यान रखता है।

(ञ) बैल, घोड़ा आदि जानवरों पर उनकी शक्ति से अधिक वजन नहीं लादता। इन जानवरों को समय पर भोजनादि देता है। मांसाहारी पशुओं को नहीं पालता।

(ट) रास्ते पर चलते हुए नीचे देखकर चलता है कि किसी जीव की विराधना न हो।

(ठ) कोई भी चीज रखता-उठाता है तो देख-भालकर ये क्रियायें करता है।

(ड) खान-पान बनाता है अथवा खाता है तो देख-शोधकर ही बनाता-खाता है। मर्यादा के भीतर की वस्तुएँ ही काम में लाता है।

(ढ) अचार, मुरब्बा, मक्खन, बहुत दिनों का पापड़ आदि वस्तुएं काम में नहीं लेता क्योंकि इन चीजों में जीवों की उत्पत्ति होती है।

(ण) रेशमी, ऊनी वस्त्र और चमड़े की बनी वस्तुएँ, कपड़े, जूते आदि को काम में नहीं लेता क्योंकि ये सब जीव हिंसा से उत्पन्न होते हैं। ऐसे प्रसाधन भी काम में नही लाता जिनके निर्माण में जीवों की हिंसा होती है।

२– सत्याणुव्रतः

झूठ नहीं बोलता है यद्यपि अभी पूर्ण सत्य का पालन नहीं कर पा रहा है, तथापि ऐसा झूठ नहीं बोलता जिससे दूसरे का नुकसान हो जाये, बुरा हो जाये। सत्य अणुव्रत में निम्नलिखित बातें गर्भित हैं :–

(क) किसी को ठगता नहीं है।

(ख) झूठ बोलकर ज्यादा दाम नहीं लेता।

(ग) अन्याय स्वरूप इंसाफ नहीं करता।

(घ) किसी के विरुद्ध झूठा मुकदमा दायर नहीं करता।

(ङ.) झूठी गवाही नहीं देता।

(च) किसी की गुप्त बात को ईर्ष्या अथवा स्वार्थवश प्रकट नहीं करता।

(छ) किसी से कोई चीज अथवा धन आदि लेकर बाद में मुकरता नहीं।

(ज) किसी से विश्वासघात नहीं करता।

(झ) किसी को झूठी अथवा खोटी सलाह नहीं देता।

(ञ) झूठ जिन कारणों से बोला जाता है– क्रोध में, लोभ से, डर से, हँसी में और निन्दा आदि में, उन कारणों से बचता है।

३– अचौर्याणुव्रत :

इस अणुव्रत द्वारा चोरी का त्याग करता है। इसमें ये बातें गर्भित हैं:–

(क) किसी की चीज चोरी के अभिप्राय से नहीं लेता।

(ख) किसी को चोरी करने में सहायता नहीं करता, न किसी को चोरी का उपाय बताता है।

(ग) चोरी का सामान खरीदता-बेचता नहीं।

(घ) कानून में जिसकी मनाही हो, वह व्यापार नहीं करता।

(ङ.) बही–खाता, लेखा-पत्रादिक गलत नहीं बनाता, टैक्स की चोरी नहीं करता।

(च) व्यापार में किसी को नकली या मिलावटी चीज नहीं देता।

(छ) नाप–तोल के साधन नकली नहीं रखता।

(ज) घूस न तो लेता है और न ही देता है।

(झ) किसी ट्रस्ट अथवा संस्था की सम्पत्ति को न तो अपने काम में लाता है और न उसे गलत जगह लगाता है।

४– ब्रह्मचर्याणुव्रतः

इस अणुव्रत का दूसरा नाम है स्व–स्त्री संतोष। अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त शेष समस्त स्त्रियों के प्रति माँ, बहन अथवा बेटी का व्यवहार रखता है। इस अणुव्रत में निम्नलिखित बातें गर्भित हैं:–

(क) पर–स्त्री और वेश्या के संसर्ग का त्याग।

(ख) भोगों की तीव्र लालसा नहीं रखता।

(ग) भोगों के अप्राकृतिक उपाय नहीं करता।

(घ) दुष्चरित्र स्त्रियों के साथ व्यवहार नहीं रखता।

(ङ.) तलाक नहीं करता।

(च) स्त्रियों को रागभाव से नहीं देखता; गान, नृत्य इत्यादि नहीं देखता।

(छ) स्त्रियों के मनोहर अंगों को नहीं देखता। इसके लिए सिनेमा, टेलीविजन आदि पर रागवर्द्धक दृश्यों को नहीं देखता।

(ज) पहले भोगे गए भोगों को याद नहीं करता।

(झ) कामोद्दीपक, गरिष्ठ पदार्थों का सेवन नहीं करता।

(ञ) अपने शरीर का बनाव-श्रृंगार नहीं करता।

(ट) अपने पुत्र-पुत्री के अतिरिक्त अन्य का विवाह कराने के लिए बीच में नहीं पड़ता।

५– परिग्रह-परिमाणाणुव्रतः

तीव्र लोभ को मिटाने के लिए इस अणुव्रत के द्वारा परिग्रह की सीमा निर्धारित करता है। इसमें ये बातें गर्भित हैं:–

(क) गेहूँ, चावल आदि अन्नादिक पदार्थ आवश्यकता के अनुसार ही रखता है, ज्यादा इकट्ठी नहीं करता।

(ख) उपहार आदि नहीं लेता, दहेज नहीं लेता।

(ग) शादी-विवाह की दलाली का काम नहीं करता।

(घ) यदि वह डाक्टर या वैद्य है, तो किसी बीमार के इलाज को नहीं बढ़ाता।

(ङ.) इसी प्रकार यदि वह वकील है तो अपने मुवक्किल को झूठी सलाह नहीं देता, उसके केस को लम्बा नहीं करता।

(च) इस प्रकार वह जिस व्यवसाय में भी है, उसमें या दैनिक व्यवहार में तीव्र लोभ के वशीभूत होकर कोई प्रवृत्ति नहीं करता।

(छ) धन, मकान, वस्त्र-आभूषण, वाहन-गाड़ी, नौकर-चाकर आदि उपभोग्य पदार्थों और भोजन, पेय, फल वनस्पति आदि भोग्य पदार्थों की सीमा

निर्धारित करता है और सीमा के भीतर ही भोग–उपभोग करता है, अधिक नहीं।

इस प्रकार इन पाँच अणुव्रतों के माध्यम से अपनी लालसा, कामना और इच्छाओं की– जिनकी अभी तक कोई सीमा नहीं थी– अब सीमा बनाता है। पंचाणुव्रतों के अतिरिक्त तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों का भी पालन करता है।

गुणव्रत

१. **दिग्व्रतः** व्यापार व्यवसाय के लिए मैं यहाँ–यहाँ तक आऊँगा –जाऊँगा, इस प्रकार क्षेत्र की सीमा बनाता है और उस सीमा के बाहर के क्षेत्र से कोई प्रयोजन नहीं रखता।

२. **देशव्रतः** दिग्व्रत द्वारा निर्धारित किए गए क्षेत्र के भीतर भी सप्ताह–दो सप्ताह के लिए अथवा प्रतिदिन एक अस्थायी सीमा बनाता है। इन दोनों व्रतों के माध्यम से निर्धारित क्षेत्र के बाहर जो जीव–अजीव पदार्थ हैं, उन सम्बन्धी विकल्पों से बचा जाता है।

३. **अनर्थदण्ड व्रतः** बिना प्रयोजन के न तो शरीर की कोई क्रिया करता है, न फालतू बकवास करता है, न फालतू के विचार–विकल्प करता है। दूसरों को जीव हिंसादि के साधनादिक भी नहीं देता। इस प्रकार सब निरर्थक बातों से बचता है।

उक्त तीन गुणव्रतों के साथ ही साथ चार शिक्षाव्रतों का भी पालन करता है। ये शिक्षाव्रत मुनि धर्म को निभाने के प्रशिक्षण (Training) के तौर पर हैं:

शिक्षाव्रत

१. **सामायिक व्रतः** अपना समय आत्म–चिंतवन में लगाने के लिए दिन में कम से कम दो बार, सुबह और शाम को आत्मध्यान करता है।

२. **प्रोषधोपवास व्रतः** अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास करता है और उस दिन अपना सारा समय स्वाध्याय और आत्म–चिंतवन में लगाता है, जिससे वैराग्य भाव की पुष्टि होती है।

३. **भोगोपभोग–परिमाण व्रतः** प्रतिदिन कुछ न-कुछ भोग्य और उपभोग्य पदार्थों का त्याग करता है। अपने रोजाना के कार्यों का भी हर रोज परिमाण करता है।

४. **अतिथिसंविभाग व्रतः** निरंतर यह भावना करता हैं कि कोई धार्मिक व्यक्ति (उत्तम पात्र– मुनि, मध्यम पात्र– आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, जघन्य पात्र–अन्य श्रावकगण) आये तो उसे भोजन कराने के पश्चात् ही स्वयं भोजन ग्रहण करूँ। इसके अतिरिक्त, करुणाबुद्धि के वश दीन-दुखियों की जरूरतों को पूरी करने की चेष्टा करता है।

इस प्रकार अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत मिलाकर कुल बारह (५+३+४=१२) व्रत हैं, जिनका प्रारम्भ दूसरी प्रतिमा से होता है। जैसे-जैसे अन्तरंग में वैराग्य भाव की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, उसी के अनुरूप आगे आगे की प्रतिमाओं के अनुरूप आचरण होता जाता है। अब तीसरी प्रतिमा से शुरू करके शेष प्रतिमाओं का क्या स्वरूप है, यह जानने का प्रयत्न करते हैं।

३. **सामायिक प्रतिमाः** यहां पराधीनता और कम होती है तथा आत्म–चिंतवन की रुचि बढ़ती है। अतः अब प्रतिदिन तीन बार– सवेरे, दोपहर और सन्ध्या के समय– आत्मध्यान करता है और ध्यान का समय भी कम से कम एक मुहूर्त या ४८ मिनट होता है।

४. **प्रोषधोपवास प्रतिमाः** अब अष्टमी, चतुर्दशी को नियम से उपवास करता है। उस दिन घर गृहस्थी का, व्यापार–व्यवसायादि का समस्त कार्य त्याग कर निरंतर आत्म–चिंतवन और स्वाध्याय करता है। यह उपवास सोलह, बारह और आठ प्रहर की अवधि के क्रम से तीन प्रकार का होता है।

५. **सचित्तत्याग प्रतिमाः** जीवों की रक्षा के लिए गर्म अथवा प्रासुक जल लेता है। भोजन-पान की प्रत्येक वस्तु प्रासुक करके ही काम में लेता है जिससे कि उस पदार्थ में कालान्तर में भी जीवों की उत्पत्ति न हो।

६. **रात्रि भोजन त्याग प्रतिमाः** रात्रि भोजन का त्याग तो पहले ही कर दिया था, अब मन–वचन–काय तीनों से इस व्रत को निरतिचार पालता

है। स्वयं तो रात को भोजन करता ही नहीं, दूसरों को भी न तो रात्रि को भोजन कराता है और न उसकी अनुमोदना करता है।

७. **ब्रह्मचर्य प्रतिमाः** परस्त्री के संसर्ग का त्याग तो पहले ही कर दिया था, अब स्वस्त्री से भी भोगों का त्याग करता है। स्वावलम्बन की भावना चूंकि बढ़ रही है, अतः स्व-स्त्री का अवलम्बन भी अब नहीं रहा।

८. **आरम्भत्याग प्रतिमाः** पहले न्याययुक्त व्यापार, व्यवसाय करता था, अब व्यापारादिक का भी त्याग कर देता है। अपने खाने-पीने का प्रबन्ध पहले स्वयं कर लेता था, अब अपना खाना बनाना आदि आरम्भरूप क्रियायें भी छोड़ देता है। कोई घर का सदस्य अथवा बाहर का कोई व्यक्ति खाने के लिए बुलाने आ जाता है, तो जाकर भोजन ग्रहण कर लेता है।

९. **परिग्रह–त्याग प्रतिमाः** परिग्रह का परिमाण तो पहले कर लिया था, अब उसे घटाकर अत्यन्त कम कर देता है। धन, सम्पत्ति जायदाद आदि से भी सम्बन्ध नहीं रखता।

१०. **अनुमति–त्याग प्रतिमाः** पहले संतान को व्यापारादि, सांसारिक कार्यों की सलाह दे देता था, अब वह भी नहीं देता। इस प्रतिमा तक व्रतों का धारक घर में रह सकता है।

११. **उद्दिष्ट– त्याग प्रतिमाः** इस प्रतिमा का धारक घर का त्याग कर देता है और साधु–संघ में रहता है। स्वावलम्बन बढ़ गया है, अतः घर का परावलम्बन भी नहीं रहा। वस्त्रों में केवल एक लंगोटी और एक खण्ड वस्त्र* रखता है। भिक्षा से भोजन करता है। सिर और दाढ़ी-मूंछ के बालों का या तो लौंच करता है अथवा उस्तरे आदि के द्वारा ही कतरवा लेता है। जीव रक्षा के लिए मयूर- पंखों की पीछी और शौचादि के लिए कमण्डलु रखता है। इस प्रकार के साधक को क्षुल्लक कहा जाता है।

परिणामों की विशुद्धि और भी बढ़ जाने पर साधक खण्ड वस्त्र भी छोड़ देता है और मात्र एक लंगोटी रखता है। यह ऐलक की

---

* खण्ड वस्त्र से तात्पर्य ऐसे वस्त्र से है जिसके ओढने पर पूरा शरीर न ढका जा सके-या तो पैर खुले रहें अथवा शरीर का ऊपरी भाग खुला रहे।

अवस्था है। यह साधक दिन भर मन्दिर या किसी सूने स्थान में अथवा किसी मुनि-संघ में रहकर आत्म-चिंतवन, स्वाध्याय आदि में ही अपना समय लगाता है। पांच समितियों का पालन करता है। यातायात के किसी साधन, किसी सवारी का उपयोग नहीं करता। सिर और दाढ़ी-मूंछ के बालों का लौंच ही करता है, उस्तरे आदि द्वारा नहीं कतरवाता है। इस प्रकार सभी प्रकार की आकुलता–पराधीनता रहित होता जाता है, आत्म-बल बढ़ता जाता है। यहाँ तक देश संयम पंचम गुणस्थान है।

**५.० श्रावक प्रतिदिन अपने दुष्कर्मों की आलोचना, प्रतिक्रमण करने एवं श्री जिनेन्द्र भगवान एवं साधुओं की स्तुति–वन्दना करने से अपने पाप क्षय करके अन्ततः, महाव्रत धारण करके श्री जिनेन्द्र भगवान की सम्पत्ति अर्थात मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। इसी सन्दर्भ में कल्याणालोचना अर्थ सहित परिशिष्ट १.०६ प्रस्तुत है, जो भव्य जनों के द्वारा प्रतिदिन पाठ करने योग्य है।

नोट: श्रावक धर्म का विशेष वर्णन "रत्नकरण्ड श्रावकाचार (श्री समन्तभद्राचार्य कृत)" एवं "उपसकाध्ययन" आदि ग्रंथों मे देखें।

६. महाव्रत (छठा–प्रमत्त गुणस्थान)

जब साधक अभ्यास के द्वारा आत्मानुभव का समय बढ़ाता है, तो आत्म बल की वृद्धि के साथ सकल संयम की विरोधी जो प्रत्याख्यानावरण कषाय होती है, उसका मंद–मंद होते अन्ततः अभाव हो जाता है, मात्र संज्वलन कषाय ही शेष रह जाती है। तब साधक आचार्य परमेष्ठी की अनुकम्पा से समस्त अंतरंग एवं बहिरंग परिग्रह त्यागपूर्वक मुनिव्रत धारण करता है तथा अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करता है। इनका संक्षिप्त विवरण परिशिष्ट १.०७ में दिया है।

७. सल्लेखना (समाधि)

साधक (श्रावक / मुनि) जब जरा, असाध्य रोगादि कारणों से मृत्यु के सम्मुख होता है, तो सल्लेखनापूर्वक धर्म की रक्षा करते हुए उच्च गति को प्राप्त होता है। इसका विवेचन परिशिष्ट १.१० में दिया है।

सन्दर्भ: जैन धर्म (परमात्मा होने का विज्ञान) – लेखक श्री बाबूलाल जैन, सन्मति विहार, २ / १० अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–११०००२

परिशिष्ट १.०८ (क)

अभक्ष्य पदार्थ

(१) **ओला,पाला–** ओला में अनन्त जलकायिक जीव होते हैं। पाला में भी अत्याधिक जलकायिक जीव रहते हैं।

(२) **घोरबड़ा –** उन पदार्थों को कहते हैं, जो एक-दो रोज पहले से घोलकर रक्खे हुए (अथवा रखाये गये) मैदा, बेसन, दही आदि से बनाये जाते हैं, जैसे दही बड़ा, जलेबी आदि। इसमें त्रसकाय के जीव होते हैं एवम् ये उनकी हिंसा से बनते हैं।

(३) **द्विदल –** जिन पदार्थों के दो समान भाग हो जाते हैं, ऐसे पदार्थों को दूध, दही या छाछ से निकालकर खाना द्विदल सेवन करना कहलाता है। ऐसे पदार्थों में अनाजों में मूँग, चना, मटर, अरहर आदि तथा काष्ट (जिसमें तेल नहीं निकलता, जैसे मैथीदाना, लालमिर्च के बीज तथा भिंडी, तोरई, ककड़ी, तरबूज, कद्दू, ग्वारफली आदि के बीज)। इन द्विदलों को दूध, दही या छाछ से मिलाकर खाने पर, मुँह की लार के मिल जाने के फलस्वरूप त्रस जीवों की एक बड़ी भारी राशि पैदा हो जाती है तथा खानेवाले को त्रस जीवों की राशि को खा जाने का महान पाप का बंध होता है।

नोट – शरीर शास्त्र से सम्बन्धित रसायनसार प्रदीप में लिखा है –

शीतोष्णं गोरसे युक्तमन्न सार्थद्विकं फलम्।
त्स्मात् भक्ष्यमाण एकं रोगोत्पत्तिः प्रजायते।।

अथात्– जो पुरूष शीत अथवा उष्ण गोरस में मिश्रित द्विदल का सेवन (भक्षण) करता है उसके रोगों की उत्पत्ति हो जाती है।

(४) **बहुबीज –** जिन फलों के बीजों में खड़ी धारी हो, किन्तु आड़ी धारी न हो, वे फल बहुबीजों में माने गये हैं। जैसे पोस्ता (खसखस) के दाने।

(५) **बैंगन –** इनमें चलती फिरती रेंगती द्विन्द्रिय जीव जैसे लटादि देखने में आते हैं।

(६) **संधान** – अर्थात् अचार, मुरब्बा। इसमें से किसी की मर्यादा चार प्रहर और किसी की आठ प्रहर (१ प्रहर = ३ घंटे) की हुआ करती है। इसके पाश्चात् इनमें सूक्ष्म असंख्यात् जीव पैदा हो जाते हैं।

(७)से (११) **पंच उदम्बर फल** – बड़, पीपल, ऊमर (गूलर), कटूमर (कटहल), पाकर–अञ्जीर । ये सब त्रस जीवों से युक्त होते हैं। से सर्वथा असेवनीय हैं।

(१२) **अनजान फल** – स्व स्पष्ट है।

(१३) **कंदमूल** – जो पदार्थ जमीन के भीतर ही भीतर अपने अवयवों की अवस्था पूर्ण करे, जैसे आलू, अरबी (घुइयाँ), शलजम, शकरकन्द, रतालू, मूली की जड़, गाजर की जड़, लहसुन, प्याज, अदरख आदि। ये पदार्थ अनन्तकायिक (एकेन्द्रिय जीव सहित) होते हैं और तामसिक वृत्ति के होते हैं।

(१४) **मिट्टी** – इसमें अनन्तकायिक जीव होते हैं। ये रोग भी पैदा कर सकती है।

(१५) **विष** –जो पदार्थ आत्मा की परणति या उसकी बुद्धि को विकारी बनादे, जैसे संखिया, गांजा, चरस, तम्बाकू, अफीम, तेजाब आदि। यदि संखिया वैद्यों द्वारा रोगादिक को दूर करने के लिए उपयोग में लाए जाते हैं, तो अभक्ष्य नहीं है।

(१६) **मांस** – इसमें अनन्त अदृश्य सूक्ष्म जीव बिलबिलाते रहते हैं। जीव बध व हिंसा का घोर पाप लगता है। यह घोर अभक्ष्य है।

जो मांस भक्षण का त्यागी है, उसको चमड़े के संसर्ग से पाये जाने वाले पदार्थ का सेवन नहीं करना चाहिए, जैसे चमड़े की मसक का पानी, चमड़े के पात्र में रखा घी, तेल, हींग आदि तथा चमड़े का बटुआ, बेल्ट आदि का प्रयोग भी नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार अण्डे का भी सेवन नहीं करना चाहिए, इसमें मांस जैसा ही दोष होता है।

(१७) **मधु (शहद)**– यह मधुमक्खी का वमन मात्र होता है। इसमें बहुत अधिक सूक्ष्म जीव होते हैं। यह घोर अभक्ष्य है।

(१८) ऐसे पुष्पादि जिनसे त्रस जीव अलग नहीं किये जा सकते, जैसे **गोभी का फूल**।

(१९) **मक्खन** – नवनीत अर्थात् लोनी न केवल हिंसाकारक है अपितु विशेषकर कामवासना पैदा करने वाली और विकृतिकारक है।

वह घी जो छाछ से निकले हुए मक्खन की अवधि के अन्दर (निकलने से ४८ मिनट के अन्दर) तपाकर निकाला गया हो, वही वस्तु खाने लायक है। निकलने से ४८ मिनट तक मक्खन में कोई खराबी नहीं होती, अवधि के बाद उसमें कीड़े पैदा होने लगते हैं।

(२०) **मदिरा –** इसमें अनन्त जीव होते हैं। यह मनुष्य के विवेक को हर लेती है। कहते हैं कि यदि एक बूंद में इतने जीव होते है कि यदि वे भ्रमर शरीर को धारण करे, तो तीन लोक में समा जायेंगे। यह घोर अभक्ष्य है।

(२१) **तुच्छ फल –** जो फल पूर्ण रूप से विकास नहीं कर पाये हैं, ऐसी छोटी अवस्था वाले फल जैसे छोटी ककड़ी, कैरी, तोरई, भिंडी, गिलकी आदि। तुच्छ अवस्था में अनन्त सूक्ष्म निगोदिया जीव रहते हैं। बड़े हो जाने पर सप्रतिष्ठित प्रत्येक न होता हुआ वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक हो जाता है, तब उस अर्थात अप्रतिष्ठित प्रत्येक अवस्था में भक्षणीय माना जा सकता है।

(२२) **चलित रस –** जिस पदार्थ की जो मर्यादा है, उसके बीत जाने पर वह चलित रस माना जाता है, इसका स्वाद बिगड़ जाता है।

न कश्चित् कस्य जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति।
अतः श्वः करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान्।।

अर्थात - नीतिकार कहते हैं कि जिस कार्य को तुम कल करना चाहते हो उसे आज ही कर लो, क्योंकि भविष्य का कोई भरोसा नहीं, न जाने इस श्वास का आवन होय या न होय।

कल्याणालोचना

रचियता— अजित ब्रह्मचारी

(प्रेरणास्रोत— मातेश्वरी स्व० अनारदेवी जैन, हाथरस)

परमात्मानं वद्धितमतिं परमेष्ठिनं करोमि नमस्कारं।
स्वकपर सिद्धिनिमित्तं कल्याणालोचनां वक्ष्ये ।।१।।

अर्थ— जिसका ज्ञान अनन्त परिमाण तक बढ़ा हुआ है ऐसे अरिहंत परमेष्ठी को मैं नमस्कार करता हूँ तथा स्वात्म-सिद्धि के लिये और अन्य जीवों के कल्याण की सिद्धि के लिये मैं कल्याणालोचना कहता हूं।।१।।

रे जीव अनंत भवे संसारे संसरता बहुवारम।
प्राप्तो न बोधिलाभः मिथ्यात्व विजृंभित प्रकृतिभिः ।।२।।

अर्थ— रे जीव, मिथ्यात्व कर्म की बढ़ी हुई प्रकृतियों के द्वारा इस अनन्त जन्म-मरणरूप संसार में तूने अनन्त बार परिभ्रमण किया किन्तु तुझे रत्नत्रय की प्राप्ति कभी नहीं हुई।।२।।

संसार भ्रमण गमनं कुर्वन् आराधितो न जिन धर्म।
तेन विना वरं दुःखं प्राप्तोऽसि अनंत वारम् ।।३।।

अर्थ— इस संसार में परिभ्रमण करते हुए तूने जिन धर्म का आराधन कभी नहीं किया और उस जिन धर्म के बिना इस संसार में तुझे अनंतबार महादुःख प्राप्त हुए।।३।।

संसारे निवसन् अनन्त मरणानि प्राप्तोऽसि त्वम्।
केवलिना विना तेषां संख्या पर्याप्तिनं भवति ।।४।।

अर्थ— इस संसार में निवास करते हुए तूने अनन्तबार मरण किये, किन्तु केवल उस एक जैन धर्म के बिना उन मरणों की संख्या पूरी नहीं हुई।।४।।

त्रीणि शतानि षट्त्रिंशानि षट् षष्ठि सहस्र बार मरणानि ।
अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि निगोदमध्ये ।।५।।

अर्थ– हे जीव, तूने निगोद में अन्तर्मुहूर्त काल में ६६३३६ वार मरण किया।।५।।

विकलेन्द्रिये अशीतिं षष्ठिं चत्वारिंश देव जानिहि।
पंचेन्द्रिये चतुर्विंशतिक्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्ते ।।६।।

अर्थ– हे जीव, तूने अन्तर्मुहूर्त काल मे दो इन्द्रिय अवस्था में ८० क्षुद्रभव, तीन इन्द्रिय अवस्था में ६० क्षुद्रभव, चौइन्द्रिय अवस्था में ४० क्षुद्रभव व पंचेन्द्रिय अवस्था में २४ क्षुद्र भव धारण किये।।६।।

अन्योन्यं क्रुध्यन्तो जीवा प्राप्नुवन्ति दारुणं दुखःम।
न खलु तेषां पर्याप्तिः कथं प्राप्नोति धर्ममति शून्यः ।।७।।

अर्थ– परस्पर क्रोध करते हुए ये जीव अत्यन्त घोर दुःख पाते हैं। उनकी कभी पर्याप्ति ही पूरी नहीं होती और धर्मबुद्धि भी नहीं है, अतः वे अनन्तानन्त जन्म–मरण के दुःखों को सहन करते हैं।।७।।

माता पिता कुटुंबः स्वजन जनः कोपि नायाति सह।
एकाकी भ्रमति सदा न हि द्विदीयोऽस्ति संसारे ।।८।।

अर्थ– इस संसार में परिभ्रमण करते हुए इस जीव के साथ माता, पिता, कुटुम्बी जन तथा अपने परिवार के मनुष्यों में से कोई भी साथ नहीं जाता। यह जीव सदा अकेला ही परिभ्रमण किया करता है। इसका साथी कोई दूसरा नहीं होता।।८।।

आयुः क्षयेपि प्राप्ते न समर्थः कोपि आयुर्दाने च।
देवेन्द्रो न नरेन्द्रो मण्यौषधमन्त्र जालानि ।।९।।

अर्थ– जब आयु पूर्ण हो जाती है, तब कोई भी उस आयु को बढ़ा नहीं सकता। न देवों का इन्द्र, न चक्रवर्ती बढ़ा सकता है और न मणि, औषधि एवम् मन्त्रों का समूह ही आयु को बढ़ा सकता है। ।।९।।

सम्प्रति जिनवर धर्म लब्धोऽसि त्वं विशुद्ध योगेन।
क्षमस्व जीवान् सर्वान् प्रत्येक समये प्रयत्नेन ।।१०।।

अर्थ– रे जीव, इस समय मन वचन काय की विशुद्धि होने से तुझे इस जैन धर्म की प्राप्ति हुई है, इसलिये बड़े प्रयत्न के साथ प्रत्येक क्षण (समय) तू समस्त जीवों पर क्षमा भाव धारण कर। विशुद्ध भावों से दया पालन कर।।१०।।

त्रीणि शतानि त्रिषष्ठि मिथ्यात्वानि दर्शनस्य प्रतिपक्षाणि।
अज्ञानेन श्रद्धितानि मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।११।।

अर्थ– मिथ्यात्व सम्यकत्व का प्रतिपक्षी है और उसके तीन सौ त्रेसठ भेद हैं। यदि मैंने अपने अज्ञान से श्रद्धान किया हो, तो मेरे सर्व पाप मिथ्या हों ।।११।।

मधुमांसमद्यद्यूत प्रभृतीनि व्यसनानि सप्तभेदानि।
नियमो न कृतस्तेषां मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१२।।

अर्थ– मद्य, मांस, मधु और जुआ प्रभृति व्यसनों के जो सात भेद हैं, उनके त्याग का नियम यदि मैंने न लिया हो, तो वह मेरा सब पाप मिथ्या हो।।१२।।

अणुव्रत महाव्रतानि यानि यम नियम शीलानि साधु गुरु दत्तानि।
यानि यानि विराधितानि खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१३।।

अर्थ– साधु परमेष्ठी अथवा आचार्य परमेष्ठी आदि पूज्य पुरुषों ने मेरे हित के लिये अणुव्रत, महाव्रत एवं सप्तशील यथायोग्य नियम एवं यम रूप से दिये हों और उनमें से जिन–जिन व्रतों की विराधना हुई हो, वे मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।१३।।

नित्येतर धातु सप्त तरुदश विकलेन्द्रियेषु षट् चैव।
सुर नारक तिर्यक्षु चत्वारश्चतुर्दश मनुष्ये शतं सहस्राणि ।।१४।।
एते सर्वे जीवाश्चतुर शीति लक्ष योनि निवसे प्राप्ताः।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१५।।

अर्थ– नित्य निगोद जीवों, इतर निगोद जीवों की सात–सात लाख, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक की सात–सात लाख, बनस्पतिकायिक की दस लाख, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चौइन्द्रिय की दो–दो लाख, देवों की, नारकियों की, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की चार–चार लाख, मनुष्यों की चौदह लाख योनियों में प्राप्त हुए

जीवों में से जिन-जिन जीवों की विराधना मुझसे हुई हो, मेरा वह सर्व पाप मिथ्या हो।।१४-१५।।

पृथ्वी जलाग्नि वायु तेजो वनस्पतयश्च विकलत्रयाः।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१६।।

अर्थ– पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव जो-जो मुझसे विराधे गये हों, वे मेरे सर्व पाप मिथ्या होंवे।।१६।।

मल सप्तति र्जिनोक्ता व्रत विषये वा विराधना विविधा।
सामायिक क्षमादिका मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१७।।

अर्थ– भगवान जिनेन्द्रदेव ने बारह व्रतों, सम्यक्त्व के और समाधिमरण के जो सत्तर अतिचार बतलाये हैं, उनमें से जो-जो अतिचार मुझे लगे हों या व्रतों की विराधना हो गई हो या सामायिक और क्षमा भावों की विराधना हुई हो, तो वे मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।१७।।

फल पुष्प त्वग्वल्ली अगालित स्नानं च प्रक्षालनादिर्भि।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१८।।

अर्थ– फल, फूल, छाल एवं लता आदि का उपयोग करते हुए जिन-जिन जीवों की विराधिना हुई हो, बिना छने जल से स्नान करने में और बिना छने जल से वस्त्र धोने आदि में जिन-जिन जीवों की विराधना हुई हो तथा जलकायिक जीवों की विराधना हुई हो, तो उन सबसे होने वाला पाप मेरा मिथ्या हो।।१८।।

न शीलं नैव क्षमा विनयस्तपो न संयामोपवासाः।
न कृता न भावनी कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।१९।।

अर्थ– हे भगवन, मैंने जो शील पालन न किया हो, क्षमा भाव धारण न किया हो, देव-शास्त्र-गुरु और धर्मायतनों की विनय न की हो, संयम पालन न किया हो तथा उपवास आदि तपश्चरण न किया हो तथा धारण करने की भावना भी न की हो, तो तत्सम्बन्धी मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।१९।।

कन्द फल मूल बीजानि सचित्त रजनी मोजनाहाराः।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२०।।

अर्थ– हे भगवन, यदि मैंने अपने अज्ञान से कन्द फल मूल बीज खाये हों, अन्य सचित्त पदार्थों का भक्षण किया हो, रात्रि में भोजन बनाया हो तथा खाया हो, तो तत्सम्बन्धी वे मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।२०।।

नो पूजा जिन चरणे न पात्रदानं न चेर्यागमनम्।
न कृता न भाविता मया मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२१।।

अर्थ– मैंने श्री जिनेन्द्र देव के पवित्र चरण कमलों की पूजा नहीं की हो, पात्र को दान नहीं दिया हो, ईर्या समिति पूर्वक गमन न किया हो तथा न इन पवित्र कार्यों के करने की भावना ही की हो, तो तत्संबंधी मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।२१।।

बह्मारम्भ परिग्रह सावद्यानि बहूनि प्रमाद दोषेण।
जीवा विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२२।।

अर्थ– हे भगवन, मैंने अपने प्रमाद से ब्रह्मचर्य व्रत में दोष लगाये हों, बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह के संचय में दोष लगाये हों और इन कार्यों में जीवों की जो विराधना की हो, तो वे मेरे सब पाप मिथ्या हों।।२२।।

सप्ततिशत क्षेत्र भवाः अतीतानगत वर्तमान जिनाः।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२३।।

अर्थ– हे भगवन, १७० कर्मभूमियों में होने वाले भूत, भविष्यत और वर्तमान काल में होने वाले तीर्थंकर परम देवाधिदेवों की जो विराधना (अनादर एवं अश्रद्धा आदि) की हो, तो तत्सम्बन्धी मेरे समस्त पाप मिथ्या हों।।२३।।

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः साधवः पंच परमेष्ठिनः।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२४।।

अर्थ– अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठियों की मैने जो–जो विराधना (अश्रृद्धा, अवज्ञा, अनादर एवं उनकी आज्ञा भंग) की हो, वे मेरे सभी पाप मिथ्या हों।।२४।।

जिन वचनं धर्मः चैत्यं जिन प्रतिमा कृत्रिमा अकृत्रिमाः।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२५।।

अर्थ– जिन वाणी, जिन धर्म, जिन चैत्यालय और कृत्रिम–अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं की मैंने जो जो विराधना की हो, वे मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।२५।।

दर्शन ज्ञान चारित्रे दोषा अष्टाष्ट पंच भेदाः।
ये ये विराधिता खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२६।।

अर्थ– सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान के आठ–आठ दोष हैं और सम्यक्चारित्र के पांच दोष हैं, इन समस्त दोषों में जो–जो दोष मुझसे हुए हों, वे मेरे सब पाप मिथ्या हों।

मतिः श्रुतमवधिः मनपर्ययं तथा केवलं च पंचकम्।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२७।।

अर्थ– हे भगवन, मैंने मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान, इन पांचों ज्ञानों में से जिस जिस ज्ञान की विराधना की हो, मेरे तत्सम्बन्धी सर्व पाप मिथ्या हों।।२७।।

आचारादीन्यंगानि पूर्वप्रकीर्णकानि जिनैः प्रणीतानि।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं ।।२८।।

अर्थ– हे भगवन, श्रुतज्ञान के ग्यारह अंग, चौदह पूर्व और प्रकीर्णक आदि जिनेन्द्र ने कहे हैं, मैने उनके स्वरूप आदि में जो विराधना की हो, वे मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।२८।।

पंच महाव्रतयुक्ता अष्टादशसहस्रशील कृत शोभाः।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।२९।।

अर्थ– हे प्रभो, पांच प्रकार के महाव्रतों से सुशोभित और अठारह हजार शील व्रत से विभूषित ऐसे अयोगि–जिन की जो विराधना (अश्रद्धा, अवज्ञा, अनादर) की हो, तत्सम्बन्धी मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।२९।।

लोके पितृसमाना ऋद्धिप्रपन्ना महगणपतयः।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।३०।।

अर्थ– हे भगवन, अनेक ऋद्धियों के धारण करने वाले गणधर देव इस लोक में पिता के समान हैं, क्योंकि वे सर्व ऋषियों के गुरु हैं। मुझसे उनकी जो–जो विराधना हुई हो, वे मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।३०।।

निर्ग्रंथा आर्यिकाः श्रावकाः श्राविकाश्चः चतुर्विधः संघः।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।३१।।

अर्थ– हे प्रभो, परम दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका– इन चार प्रकार के संघों में से जिस–जिसकी विराधना (मिथ्याभाव एवम् अविनय) की हो, मेरे वे सर्व पाप मिथ्या हों।।३१।।

देवा असुरा मनुष्या नारकाः तिर्यग्योनिगत जीवाः।
ये ये विराधिताः खलु मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु।।३२।।

अर्थ– हे प्रभो, मैंने वैमानिक, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवों की, मनुष्य, नारकी और तिर्यञ्च योनिगत जीवों की जो–जो विराधना की हो, वे मेरे तत्सम्बन्धी सर्व पाप मिथ्या हों।।३२।।

क्रोधो मानो माया लोभ एते राग द्वेषाः।
अज्ञानेन येऽपि कृता मिथ्या मे दुष्कृतं भवतु ।।३३।।

अर्थ– हे प्रभो, मैंने अपने अज्ञान से क्रोध, मान, माया और लोभ रूप जो–जो राग–द्वेष आदि रूप दुर्भाव किये हों, वे मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।३३।।

परवस्त्रं परमहिला प्रमादयोगेनार्जितं पापम्।
अन्येपि अकरणीया मिथ्या मे दुष्कृत भवतु ।।३४।।

अर्थ– हे भगवन, परवस्त्र और पर–स्त्री (पर–पुरुष) आदि के सम्बन्ध में प्रमादयोग पूर्वक जो पाप मैंने किये हों और जो–जो न करने योग्य कार्य किये हों, तत्सम्बन्धी मेरे सर्व पाप मिथ्या हों।।३४।।

एकः स्वभावसिद्धः स आत्मा विकल्प परिमुक्त।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा।।३५।।

अर्थ– जो आत्मा एक है, स्वभाव से सिद्ध है और सर्व विकल्पों से रहित है, मैं ऐसे ही एक परमात्मा की शरण लेता हूँ। ऐसे परमात्मा के सिवाय अन्य कोई भी शरण नहीं है।।३५।।

अरसः अरूपः अगंधः अव्याबाधः अनन्तज्ञानमयः।।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ।।३६।।

अर्थ– जो परमात्मा रस रहित है, रूप रहित है, गंध रहित है, सर्व प्रकार की बाधा से रहित है और अनन्त ज्ञान स्वरूप है, ऐसा एक परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।।३६।।

ज्ञेय प्रमाणं ज्ञानं समयेन एकेन भवति स्व-स्वभावे।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ।।३७।।

अर्थ– ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है। यद्यपि परमात्मा का वह उत्कृष्ट अनन्त ज्ञान अपने स्वभाव में ही स्थिर रहता है, तथापि वह प्रत्येक समय में समस्त ज्ञेय पदार्थों को जानता है, ऐसा वह परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है ।।३७।।

एकानेक विकल्प प्रसाधने स्वकस्वभाव शुद्धगतिः।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ।।३८।।

अर्थ– उस परमात्मा को चाहे एक प्रकार से सिद्ध किया जाये और चाहे अनेक प्रकार से सिद्ध किया जाये, वह सदा अपने ही स्वभाव में शुद्ध बुद्ध स्वरूप से स्थिर रहता है। ऐसा वह परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।।३८।।

देह प्रमाणो नित्यो लोक प्रमाणोऽपि धर्मतो भवति।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ।।३९।।

अर्थ– ये आत्मा नित्य है, शरीर के प्रमाण के बराबर है और केवली समुद्घात की अपेक्षा सर्व लोक व्याप्त करने से लोक प्रमाण (असंख्यात प्रदेशी) है, ऐसा यह आत्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।।३९।।

केवल दर्शन ज्ञाने समयेनैकेन द्वावुपयोगौ।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा।।४०।।

अर्थ– उस परमात्मा के केवल ज्ञान और केवलदर्शन – ये दोनों उपयोग एक ही समय में एक साथ रहते हैं। वह परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।।४०।।

स्वकरूप सहज सिद्धो विभावगुणमुक्त कर्म व्यापारः।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा।।४१।।

अर्थ– जो अपने स्वरूप से सहज सिद्ध है और रागद्वेषादिक वैभाविक गुणों से रहित होने के कारण समस्त कर्मों के व्यापार से रहित है, ऐसा वह परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई भी शरण नहीं है।।४१।।

शून्यो नैवाशून्यो नोकर्मकर्मवर्जितो ज्ञानम्।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा।।४२।।

अर्थ– वह परमात्मा रूप, रस, गंध और स्पर्श से रहित होने के कारण शून्य है तथा ज्ञानमय आत्म-स्वरूप होने के कारण शून्य रूप नहीं भी है। उस परमात्मा का ज्ञान नोकर्मों से रहित है और ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित है, ऐसा वह परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।।४२।।

ज्ञान तो यो न भिन्नः विकल्पभिन्नः स्वभाव सुखमयः।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा।।४३।।

अर्थ– जो परमात्मा अपने केवलज्ञान से कभी भिन्न नहीं होता, किन्तु सब तरह के विकल्पों से सदा भिन्न रहता है और स्वाभाविक सुख स्वरूप है, ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।।४३।।

अच्छिन्नोऽवच्छिन्नः प्रमेयरूपत्वं अगुरुलघुत्वं चैव।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ।।४४।।

अर्थ– जो कभी किसी प्रकार छिन्न-भिन्न नहीं होता है, सदैव अखण्ड स्वरूप है, अवछिन्न है, ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों का ज्ञाता है और अगुरुलघु गुण से सुशोभित है, ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण है, अन्य कोई शरण नहीं है।।४४।।

शुभाशुभ भाव विगतः शुद्धस्वभावेन तन्मयं प्राप्तः।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा।।४५।।

अर्थ– जो शुभ–अशुभरूप दोनों ही भावों से रहित है और जो केवल अपने शुद्ध स्वभाव में ही प्रतिष्ठित है, ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है, अन्य कोई शरण नहीं है।।४५।।

न स्त्री न नपुंसको न पुमान नैव पुण्यपाप मयः।
अन्यो न मम शरणं शरणं स एकः परमात्मा ।।४६।।

अर्थ– जो न स्त्री है, न नपुंसक है, न पुरुष है, न पुण्य–पाप रूप है, ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है, अन्य कोई शरण नहीं है।।४६।।

तव को न भवति स्वजनः त्वं कस्य न बंधुः स्वजनो वा ।
आत्मा भवेत आत्मा एकाकी ज्ञायकः शुद्धः ।।४७।।

अर्थ– हे आत्मन! इस संसार में तेरा कोई कुटुम्बी नहीं है, तथा तू भी किसी का कुटुम्बी नहीं है। यह आत्मा सदा आत्मा ही रहता है, सुस्थिर है, अकेला है, सर्व पदार्थों का ज्ञाता है, सदैव शुद्ध है और अनन्त सुखमय है।।४७।।

जिन देवो भवतु सदा मतिः सुजिनशासने सदा भवतु।
सन्यासेन च मरणं भवे भवे मम सम्पत् ।।४८।।

अर्थ– मैं जिनदेव की ही सदा सेवा करता रहूं। मेरी बुद्धि सदा जिनशासन में अर्थात् धर्म में बनी रहे और मेरा मरण समाधिपूर्वक ही हो, अन्य प्रकार से न हो। यह सम्पति मुझे भव–भव में प्राप्त होती रहे।।४८।।

जिनो देवो जिनो देवो जिनो देवो जिनो जिनः।
दया धर्मो दया धर्मो दया धर्म दया सदा ।।४९।।

अर्थ– इस संसार में देव जिन ही हैं, देव जिन ही हैं, देव जिन ही हैं, जिनेन्द्र देव ही देव हैं अन्य कोई देव नहीं है। धर्म दयामय ही है, धर्म दयामय ही है, धर्म दया मय ही है, धर्म सदा दयास्वरूप ही है। दया बिना धर्म हो ही नहीं सकता।।४९।।

महा साधवः महा साधवः महा साधवो दिगम्बराः।
एवं तत्वं सदा भवतु यावन्न मुक्तिसंगमः ।।५०।।

अर्थ-- दिगम्बर ही महासाधु होते हैं, दिगम्बर ही महासाधु होते हैं, दिगम्बर ही महासाधु होते हैं। हे प्रभो, जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक मेरे हृदय में यही (देव जिनेन्द्र ही हैं, धर्म दया मय ही है और गुरु निर्ग्रन्थ ही हैं) तत्व सदा बना रहे।।५०।।

एवमेव गतः कालोऽनन्तो हि दुःख संगमे।
जिनोपदिष्ट संन्यासे न यत्ना रोहणा कृता ।।५१।।

अर्थ-- हे प्रभो, आज तक का मेरा अनन्तकाल दुख भोगते-भोगते ही व्यतीत हुआ है। मैंने अब तक कभी जिनेन्द्र देव द्वारा कहे हुए समाधिमरण पूर्वक मरण करने का प्रयत्न नहीं किया।।५१।।

सम्प्रति एव सम्प्राप्ताऽराधना जिन देशिता।
का का न जायते मम सिद्धि सन्दोह सम्पतिः ।।५२।।

अर्थ-- अब इस समय मुझे भगवान जिनेन्द्र देव द्वारा कही हुई आराधना प्राप्त हुई है। इसके प्राप्त होने से अब इस संसार में ऐसी कौन सी सिद्धियों की समूह रूप सम्पत्ति है जो मुझे प्राप्त न हो।।५२।।

अहो धर्मः अहो धर्मः अहो मे लब्धि निर्मला।
संजाता सम्पत् सारा येन सुख मनुपमम् ।।५३।।

अर्थ-- श्री जिनेन्द्र देव द्वारा कहा हुआ यह दयामयी धर्म अत्यन्त आश्चर्यकारक है, सर्वोत्कृष्ट है और सर्वोत्तम है। मुझे प्राप्त हुई यह अत्यन्त निर्मल काल लब्धि भी अतिशय आश्चर्य उत्पन्न करने वाली है। इस दयामय धर्म और निर्मल काल लब्धि के प्रसाद से मुझे आराधना स्वरूप सर्वोत्तम सम्पत्ति प्राप्त हुई है। इस आराधना रूप महासम्पत्ति से ही मुझे उपमातीत मोक्ष सुख प्राप्त होगा, यह निश्चय है।।५३।।

एवमाराधयन आलोचना वंदना प्रतिक्रमणानि।
प्राप्नोति फलं च तेषां निर्दिष्टमाजित ब्रह्मणा ।।५४।।

अर्थ– इस प्रकार आलोचना, वन्दना और प्रतिक्रमण की आराधना करने से भगवान जिनेन्द्र देव का कहा हुआ मोक्षफल प्राप्त होता है। अति संक्षेप में यह आलोचना का स्वरूप (देशव्रती) "अजित" ब्रह्मचारी ने कहा है।।५४।।

> जो छोड़ता जायेगा, वह ऊँचा उठता जायेगा।
> जो जोड़ता जायेगा, वह डूबता जायेगा।।
>
> – आचार्य श्री १०८ भरतसागर जी

सल्लेखना

(१) भूमिका

''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' अर्थात शरीर धर्मसाधना का प्रथम साधन है। रत्नत्रय जो मोक्ष की प्राप्ति का साधन है, उसका पालन शरीर की स्वस्थता पर निर्भर है, किन्तु यदि कदाचित् शरीरनाश के अपरिहार्य कारण जैसे उपसर्ग, दुर्भिक्ष, अतिवृद्धता, असाध्य रोग उत्पन्न हो जाये अथवा ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाये जिसमें रत्नत्रय का पालन सम्भव ही न हो सके जैसे अंधा हो जाना, बल का अभाव हो जाना और प्रतीकार करना सम्भव न हो, तो जैन परम्परा में धर्म की रक्षा अथवा रत्नत्रय की रक्षा के लिए शरीर एवम् कषाय त्यागरूप सल्लेखना धारण करने का विधान है। इसके अतिरिक्त मृत्यु के पूर्व होने वाले लक्षण अथवा निमित्तज्ञान से यदि अल्प आयु का निर्णय हो जावे, तब भी सल्लेखना धारण करना चाहिए। यह लक्षण परिशिष्ट १.१० (क) में दिए हैं।

पूज्य श्री उमास्वामी कृत तत्त्वार्थ सूत्र के सप्तम अध्याय में वर्णित है कि

अणुव्रतोऽगारी ।।२०।। दिग्देशानर्थदंडविरतिसामायिक–प्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणतिथिसंविभागव्रत–संपन्नश्च ।।२१।। मारणांतिकीं सल्लेखनां जोषिता ।।२२।।

उक्त तीन सूत्रों के मध्यम सूत्र (२१वें सूत्र) में 'च' का ग्रहण गृहस्थ के लिए सल्लेखना की आराधना का निर्देश करने के लिए किया गया है। तात्पर्य यह है कि जब कोई अव्रती श्रावक व्रती होकर जीवन बिताना चाहता है तो उसे जिस प्रकार बारह व्रतों (५ अणुव्रत, ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत–इनका विवेचन परिशिष्ट १.०८ में दिया गया है) का पालन करना आवश्यक हो जाता है, उसी प्रकार जब व्रती श्रावक मरण के समय अन्त में आत्मध्यान में रत रहना चाहता है तो सल्लेखना की आराधना आवश्यक हो जाती है। यतः सल्लेखना की आराधना का व्रत मरण तक को ग्रहण किया जाता है, अतः इसे मारणान्तिकी सल्लेखना कहा गया है। यद्यपि तत्त्वार्थ सूत्र में इसका उक्त कथन श्रावक धर्म के प्रकरण में लिखा है, तथापि यह मुनि व श्रावक दोनों के लिए है।

(२) सल्लेखना क्या है ?

"सम्यक्कायकषायलेखना, कायस्य बाह्यभ्यन्तराणां कषायाणां तत्कारणहापनक्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना" (पूज्यपाद, सर्वार्थसिद्धि ७–२२)

अर्थात्– सम्यक् प्रकार से काय और कषाय को कृश करने का नाम सल्लेखना है।

भगवती आराधना में आचार्य शिवकोटि कहते हैं–

सल्लेहणा य दुविहा अब्भंतरिया या बाहिरा चेव।
अब्भंतरा कसायेसु बाहिरा होदि हु सरीरे ।।२११।।

अर्थ– सल्लेखना दोय प्रकार है। एक आभ्यंतर सल्लेखना दूजी बाह्य सल्लेखना। तहां जो क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायनि का कृश करना सो आभ्यंतर सल्लेखना है अर शरीर को कृश करना सो बाह्य सल्लेखना।

सर्व जे बलवान रस, तिननै त्याग करिकै अर प्राप्त हुवा जो रूक्ष भोजन वा औरहू रसादिरहित भोजन ताकरिकै शरीरकूं अनुक्रमतैं कृश करै। शरीरनै कृश करने का कारण बाह्य तप १– अनशन २– अवमोदर्य ३– रसत्याग ४– वृत्तिपरिसंख्यान ५– कायक्लेश ६– विविक्तशय्यासन ऐसैं छह प्रकार कहना है। यह बाह्य सल्लेखना है।

क्रोधकूं उत्तमक्षमाकरिके, अर मानकूं मार्दवकरिके, अर मायाकषायकूं आर्जवकरिके, अर लोभकूं सतोषकरिके ऐसे च्यारि कषायनिकूं जीतहु। यह आभ्यंतर सल्लेखना है। कषाय सल्लेखना का प्रमुख साधन शुक्लध्यान, धर्म ध्यान, अनुप्रेक्षायें (वैराग्य भावना) हैं।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, तप, त्याग और संयम आदि गुणों के द्वारा चिरकाल तक आत्मा को भावित करने के बाद आयु के अन्त में अनशनादि विशेष तपों के द्वारा शरीर को और श्रुतरूपी अमृत के आधार पर कषायों को कृश करना ही सल्लेखना है। जिस प्रकार मूल (जड़) से उखाड़ा हुआ विषवृक्ष ही प्रयोजन की सिद्धि करता है, मात्र शाखाओं, डालियों एवमं

पत्रों आदि का काटना नहीं, उसी प्रकार कषायों की कृशता के साथ की हुई कायकृशता ही प्रयोजन की संरक्षिका है, मात्र काय की कृशता नहीं।

(३) सल्लेखना के लिए उपयुक्त स्थान

सागार धर्मामृत में सल्लेखना के इच्छुक व्यक्ति के लिए चार स्थान उपयुक्त माने हैं– (१) जिनेन्द्र देव का जन्म कल्याणक स्थल (२) जिन मन्दिर (३) तीर्थ स्थान (४) निर्यापकाचार्य का सान्निध्य। समाधिमरण का इच्छुक श्रावक यदि समाधिमरण के लिए तीर्थ स्थान अथवा निर्यापकाचार्य के निकट जाने के लिए जाता हुआ बीच में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तब भी वह आराधक ही है, क्योंकि उसकी हार्दिक इच्छा संसार की नाशक होती है।

(४) सल्लेखना की विधि

प्रत्येक श्रावक अपने समस्त जीवनकाल में साम्यभावपूर्वक समाधिमरण की कामना व साधना करता है तथा भावना करता है कि –

ऐसा समय हो भगवन्, जब प्राण तन से निकलें।

शुद्ध आत्मा हमारी, सब दोष मन से निकलें।। टेक।।

मुनिराज मेरे सन्मुख, उपदेश दे रहे हों।
उपदेश सुन कषाय, अन्तःकरण से निकलें।।१।। ऐसा०।।

होवे समाधि पूरी, जब प्राण तन से निकलें।
होवे समाधि पूरी, तब प्राण तन से निकलें।।२।। ऐसा०

अकस्मात मृत्यु के आ पड़ने पर वह साधक तत्काल सल्लेखना को धारण कर शरीर को छोड़ देता है, अन्यथा उत्कृष्ट रूप से बारह वर्ष की समाधि की प्रतिज्ञा धारण कर लेता है। इस प्रकार सल्लेखना की उत्कृष्ट अवधि बारह वर्ष प्रमाण तथा जघन्यावधि अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण है (धवला १/१,२, १/२४)। इस पंचम काल में भक्तप्रत्याख्यान ही होता है। इसमें साधक ऐसी प्रतिज्ञा करता है कि "मैं सर्वप्रथम हिंसादि पांच पापों का त्याग करता हूँ, मेरे सब जीवों में समता भाव है, किसी के साथ मेरा वैर भाव नहीं है, इसलिए मैं सर्व आकांक्षाओं को तोड़कर समाधि परिणाम को प्राप्त होता हूँ। मैं सब अन्नपान

आदि आहार की अवधि को, आहार संज्ञा को, सम्पूर्ण आशाओं का, कषायों का और सर्वपदार्थों में ममत्व भाव का त्याग करता हूँ। जीवित रहने की सन्देह अवस्था में ऐसा विचार करता है कि जब तक उपसर्ग रहेगा तब तक आहारादि का त्याग है, उपसर्ग दूर होने के पश्चात् यदि जीवित रहा तो पारणा करूंगा (मूलाचार गाथा १०६–११२)। इस प्रकार अविरत भी मृत्यु के अकस्मात् उपस्थित होने पर उपुर्युक्तरूप से सल्लेखना धारण कर लेता है तो वह व्रती ही माना जाएगा। जीवन भर किए गए समस्त रत्नत्रय पालन, स्वाध्याय और साधना का फल सल्लेखना में निहित है।

जो समर्थ श्रावक है, वह समस्त परिग्रहों को छोड़ता हुआ, सबको क्षमा करके और सबसे क्षमा करवाकर, किसी आचार्यादि परमेष्ठी के समक्ष समस्त पापों की *दोषरहित आलोचना करे और मरणपर्यन्त रहने वाले महाव्रतों को धारण करने के लिए उनसे निवेदन करे। शास्त्रों के श्रवण से मन को प्रसन्न करे। क्रम क्रम से आहार को छोड़कर दुग्धादिक ही को ग्रहण करे और पीछे दुग्धादिक सच्चिक्कण को छोड़कर छाछ और गरम जल ले। पश्चात उष्ण जलपठन का भी त्याग करके और शक्त्यनुसार उपवास करके पंच नमस्कार मंत्र को मन में धारण करता हुआ अथवा आत्मध्यान में रत होता हुआ शरीर को छोड़े।

जो श्रावक समस्त परिग्रह को छोड़ने में असमर्थ होते हैं, वे वस्त्रमात्र परिग्रह रखकर अवशिष्ट समस्त बाह्य एवं अंतरंग परिग्रहों को छोड़कर अपने ही घर में

---

* दोष दस प्रकार के होते हैं: (१) आकम्पित– इस भय से कि आचार्य अधिक दण्ड न देवें, विविध वचनों, दयनीय मुद्रा बनाकर अथवा क्रियाओं से उनके मन में अपने प्रति अनुकम्पा उत्पन्न कराने की चेष्टा (२) अनुमानित– गुरु की प्रसन्न मुद्रा का अनुमान लगाकर अथवा गुरु के समक्ष अपनी असमर्थता का अनुमान कराना (३) दृष्ट– जो दोष दूसरों की दृष्टि में आगये, केवल उन्हें ही कहना, अन्य अदृष्ट दोषों को गुप्त रखना (४) बादर–स्थूल दोष कहना, किन्तु सूक्ष्म दोष छिपा जाना (५) सूक्ष्म–अधिक दण्ड के भय से केवल सूक्ष्म दोष कहना, स्थूल दोष छिपा जाना (६) प्रछन्न–अन्य साधुओं से दोषों का प्रायश्चित्त पूँछकर अथवा आचार्य से किसी दोष का प्रायश्चित्त पूँछकर तत्पश्चात् प्रायश्चित्त लेना (७) शब्दाकुलित– कोलाहल अथवा किसी पाठ के समय के कोलाहल में दोष इस प्रकार कहना कि गुरु भली प्रकार से श्रवण न कर सकें (८) बहुजन– पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण के बाद जब संघ के अन्य साधु अपने दोष प्रगट कर रहे हों, उसी कोलाहल में अपने दोष कह देना (९) अव्यक्त–अव्यक्त रूप से अपराध प्रगट कर प्रायश्चित्त लेना अथवा अज्ञानी गुरु के समक्ष आलोचना करके मान लेना कि मैंने अपने सर्व दोषों की आलोचना कर ली है और (१०) तत्सेवी– अपराधों के प्रायश्चित्त लेकर, उनकी पुनरावृत्ति करना अथवा मन में यह अभिप्राय रखना कि जब स्वयं ये दोष करते हों, तब दूसरों को क्या प्रायश्चित्त देंगे एवम् अल्प प्रायश्चित्त देंगे। ये सभी दोष आलोचना को मलिन करने वाले हैं तथा इनका त्याग करना चाहिए। आलोचना भय, मायाचारी, असत्यता अभिमान और लज्जा आदि दोषों का त्याग करते हुए विधिपूर्वक करनी चाहिए।

या जिनालय में रहकर[1] गुरु के समीप मन, वचन से अपनी भली प्रकार आलोचना करके पेय के सिवाय शेष तीन प्रकार के आहार (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य) का त्याग कर देता है, उसे सल्लेखना नामक चौथा शिक्षाव्रत कहा है (वसुनन्दि श्रावकाचार २७१–२७२)। तथा जब मृत्यु का समय अति निकट आ जाता है और शरीर की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है, तब वह श्रावक पेयजल का भी त्याग कर देता है। ऐसे श्रावक का मरण बालपण्डित मरण कहा गया है।

(५) सल्लेखना के अतिचार

रत्नकरण्डश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि–

जीवितमरणाशंसि भयमित्रस्मृतिनिदाननामानः।
सल्लेखनातिचाराः पञ्च जिनेन्द्रैः समादिष्टाः ।।१२६।।

भावार्थ– सल्लेखना मरण में समस्त त्याग करि केवल अपना शुद्ध ज्ञायक भाव का अवलम्बन करि समस्त देहादिकतैं ममत्व छाँड़ि सन्यास धार्या फेर हू जीवनेकी–मरने की वाँछा करना, मरने से भय करना, स्वजन पुत्र-पुत्री-मित्रनि में अनुराग करना, आगामी पर्याय में विषय–भोग–स्वर्गादिक की वाँछा करना, ये क्रमशः जीविताशंसा, मरणाशंसा, भय, मित्र स्मृति और निदान नामक अतिचार हैं। इनसे बचना चाहिए। पहले भोगे हुए सुख का स्मरण भी इन्हीं अतिचारों (मित्रस्मृति) के अन्तर्गत है।

(६) मरण के प्रकार

भगवती आराधना में सत्रह प्रकार के मरण बताये गये हैं, ये ही संक्षेपकरि पंचप्रकार करि कहे हैं:

पंडिदपंडिदमरणं पंडिदयं बालपंडिदं चेव।
बालमरणं चउत्थं पंचमयं बालबालं च ।।२६।।

---

[1] यदि गुरु का संयोग न मिले, तो अपने परिणाम में ही भगवान पञ्च परमेष्ठी का ध्यान करि अरहन्तादिक से आलोचना करे (रत्नकरण श्रावकाचार गाथा १२५, पृष्ठ ४२५ से उद्धृत)।

१–	पंडित पंडित मरण	–	केवली भगवान का निर्वाण गमन।
२–	पंडित मरण	–	आचारांग की आज्ञाप्रमाण यथोक्तचारित्र के धारक साधु मुनि का सल्लेखनापूर्वक मरण।
३–	बाल पंडित मरण	–	विरताविरत अथवा देशव्रत सहित श्रावक का सूत्र की अपेक्षा सल्लेखनापूर्वक मरण।
४–	बाल मरण	–	अविरत सम्यग्दृष्टि का व्रत संयम रहित केवल तत्त्वनिकी श्रद्धाकरि सहित मरण।
५–	बाल–बाल मरण	–	मिथ्यादृष्टि का मरण।

(७) गति–

पंडित पंडित मरण	निर्वाण प्राप्ति
पंडित मरण– (ये तीन प्रकार का है– भक्त प्रत्याख्यान, इंगिनी एवम् प्रायोपगमन मरण)	वैमानिक देव (कल्पवासी)/अहमिन्द्र। स्वर्ग के इन्द्र, लौकान्तिक देव– मोक्ष प्राप्ति तीन भव, अधिक से अधिक सात–आठ भव में।
बाल पंडित मरण	स्वर्ग निवासी वैमानिक देव। समाधि मरण के प्रभाव से उत्कृष्टताकरि सप्तम भव विषै सिद्ध होय है। (भगवती आराधना–गाथा २०९५)
बाल मरण (रत्नत्रय से भ्रष्ट साधु का मरण इसमें सम्मिलित है)	मरण के समय के अनुसार– अधिकतम अर्ध पुद्गल परावर्तन काल (देखिए परिशिष्ट १.०४) में निर्वाण प्राप्ति।
बाल बाल मरण	– अनन्तकालीन (अन्तहीन) संसार भ्रमण।

नोट– लेश्या के आधीन ही गति है। ऐसे तो भावानुसार प्रत्येक समय कर्म बंधते रहते हैं, किन्तु आयु कर्म मात्र निम्न कालों में ही बंधता है। माना कि कर्म भूमि के मनुष्य/तिर्यंच की आयु ६५६१ क है अर्थात क = $\frac{\text{भुज्यमान आयु}}{६५६१}$

तो, आगामी गति बंधने की सम्भावना निम्न प्रकार है:

अपकर्ष	अपकर्ष काल (आयु बंधने की योग्यता)
प्रथम	$\frac{१}{३}$ x ६५६१ क = २१८७ क आयु शेष रहने पर प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहुर्त काल तक
द्वितीय	$\frac{१}{३}$ x २१८७ क = ७२९ क " " "
तृतीय	$\frac{१}{३}$ x ७२९ क = २४३ क " " "
चतुर्थ	$\frac{१}{३}$ x २४३ क = ८१ क " " "
पंचम	$\frac{१}{३}$ x ८१ क = २७ क " " "
षष्ठ	$\frac{१}{३}$ x २७ क = ९ क " " "
सप्तम	$\frac{१}{३}$ x ९ क = ३ क " " "
अष्टम	$\frac{१}{३}$ x ३ क = क " " "

यह आवश्यक नहीं कि इन अपकर्षों में आयु बंध हो ही जाए। यदि आठवें अपकर्ष पर भी आयु नहीं बंधती, तो मरणकाल से आवली के असंख्यातवें काल के अवशेष रहने पर पहली अंतर्मुहूर्त काल में आगामी आयु निश्चित तौर पर बंधती हैं इसलिए मनुष्य को रत्नत्रय का सदैव पालन करते रहना चाहिए, ताकि आगामी गति सुधर सके।

(८) उपसंहार – सल्लेखना अथवा समाधिमरण का सर्वाधिक महत्त्व

निराकुल भाव से समाधिमरण को पूर्ण करना जीवन की सम्पूर्ण संचित साधनाओं को सफल बनाना है। समाधिमरण व्रतों की रक्षा के प्रति सावधान रहने की प्रतिज्ञा का निर्वाह है। जो व्रत भंग करके जीवित रहता है, उसको भी मृत्यु पूछ लेती है। तब व्रतों की पालना करते हुए ऊर्ध्व गति को प्राप्त करना सर्वोत्तम पक्ष है. अन्यथा सल्लेखना के अभाव में सम्यक्त्वधारी को भी अर्द्धपुद्गलपरावर्तन काल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ सकता है जो लगभग अनन्त काल सदृश ही है। शाश्वत धर्मपालन को नश्वर देह के लिए नष्ट नहीं करना चाहिए, क्योंकि देह तो फिर मिल सकता है, धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है। समाधि सप्तदशी में कहा है–

सुदत्तं प्राप्स्यते यस्माद् दृश्यते पूर्वसत्तमैः।
भुज्यते स्वर्भवं सौख्यं मृत्योर्भीतिः कुतः सताम् ।।४।।

अर्थात्–पूर्व काल के ऋषि और गणधर आदि सत्पुरुष ऐसा कहते हैं कि अपने किए हुए कर्तव्य तथा चारित्र का फल तो मृत्यु होने पर ही पाया जाता है। स्वर्गसुखों का भोग भी मृत्यु के अनन्तर ही मिलता है। उस तपः परिणामदायी मृत्यु से भय क्या ?

संसारासक्तचिन्तानां मृत्युर्भीत्यै भवेन्नृणाम् ।
मोदायते पुनः सोऽपि ज्ञानवैराग्यवासिनाम् ।।१०।।
पुराधीशो यदा यति सुकृतस्य बुभुत्सया।

अर्थात्– जिन जीवों का चित्त संसार में आसक्तिमान् है, वे अपने आत्मरूप को नहीं जानते, इसीलिए उन्हें मृत्यु भयप्रद प्रतीत होती है; किन्तु जो महान आत्माएँ आत्मस्वरूप को जानती हैं और वैराग्य धारण करती हैं, उनके लिए तो मृत्यु आनन्ददायी है।

सारांश– रत्नत्रयपूर्वक जीवन का सुफल एक मात्र सल्लेखना के माध्यम से ही सम्भव है। अतएव मृत्यु को एक उपकारी मित्र की तरह देखते हुए उत्साहपूर्वक रत्नत्रयपूर्वक सल्लेखना धारण कर निर्वाण प्राप्ति के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिए।

नोट– साधकों को चाहिए कि वे इस सम्बन्ध में भगवती आराधना, रत्नकाण्ड श्रावकाचार आदि ग्रन्थों से विस्तार से अध्ययन करें।

सन्दर्भः

(१) बृहज्जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित उमास्वामीकृत तत्त्वार्थ सूत्र (मोक्ष शास्त्र)

(२) भगवती आराधना– विरचित श्री शिवकोटि आचार्य (शिष्य समन्तभद्राचार्य)

(३) रत्नकाण्ड श्रावकाचार-- विरचित श्री समन्तभद्राचार्य

(४) सल्लेखना दर्शन पुस्तक में प्रकाशित "सल्लेखनाः वीतरागता की कसौटी "लेख --लेखक पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यानन्द जी महाराज।

(५) समाधि दीपक– सम्पादिका श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमती जी

(६) सल्लेखना दर्शन पुस्तक में प्रकाशित "रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्ग में सल्लेखना का महत्त्व" लेख – लेखक डा० सुपार्श्वकुमार जैन।

(७) सल्लेखना दर्शन पुस्तक में प्रकाशित डा० श्रीमती उर्मिला जैन, बड़ौत का "अनुप्रेक्षा, ध्यान एवं सल्लेखना" नामक लेख।

(८) सल्लेखना दर्शन पुस्तक में डा० जय कुमार जैन, मुजफरनगर का "तत्त्वार्थ सूत्र और उसके टीका ग्रन्थों में सल्लेखना" नामक लेख।

(९) सल्लेखना दर्शन पुस्तक में डा० अशोक कुमार जैन, लाड़नूँ (राजस्थान) का "श्रावकाचारों में सल्लेखना की अवधारणा" नामक लेख।

मृत्यु से पूर्व होने वाले लक्षण

मृत्यु से कुछ समय पूर्व शरीर की स्थिति बनाये रखने वाले परमाणुओं में विपर्यास आ जाता है जिससे उसकी इन्द्रिय शक्ति क्षीण हो जाती है और शरीर संघटित परमाणु विघटित होने की ओर अग्रसार होने लगते हैं। तब धैर्य और स्मृति में न्यूनता आने लगती है। यही प्रक्रिया शारीरिक अरिष्टों की सूचक है। अब "भणियं पिण्डस्थं जिणमयणुसारेण" जिनेन्द्र देव के उपदेशानुसार पिण्डस्थ शारीरिक रिष्टों द्वारा आयु निर्णय के कुछ प्रयोग का दिग्दर्शन करते हैं। यथा :–

(क) अरिष्ट लक्षण कितने

	समय पूर्व	लक्षण
१.	तीन वर्ष	पैर न दिखाई दें।
२.	दो वर्ष	जंघा न दिखाई दे।
३.	एक वर्ष	घुटना न दिखाई दे।
४.	दस माह	वक्षस्थल न दिखाई दे।
५.	सात माह	कटि प्रदेश न दिखाई दे।
६.	चार माह	कुक्षि न दिखाई दे।
		धैर्य और स्मृति नष्ट हो जाये। चलने में असमर्थ हो जाये, निद्रा बिलकुल न आवे या अत्यन्त आने लगे।
७.	एक माह	एकाएक मोटे से पतला हो जाये या पतले से मोटा हो जाये, स्थिर होने पर भी काँपता रहे, अपना हाथ सिर पर रखकर सोवे, गले में डालने पर जिसकी उँगलियों का दृढ़ बन्धन न हो, जो दूसरों के केशों

		एवम् सूर्य–चन्द्र के प्रकाश को स्पष्ट न देख सके, जिह्वा इन्द्रिय और लिंग इन्द्रिय (उपस्थ) काले पड़ जायें या विकृत हो जायें, रसना इन्द्रिय को खट्टे–मीठे आदि का ज्ञान न हो, नख ओष्ट व दाँत काले हो जायें और ललाट की बड़ी–बड़ी रेखएँ मिट जायें। (एक साथ सब चिन्ह प्रकट नहीं होते, कोई एकाध चिन्ह प्रकट होता है।)
८.	पन्द्रह दिन	हाथ न दिखाई दें। शरीर कान्तिहीन हो जाए, बाहर निकलने वाला श्वास तेज हो जाए, तेज सुगन्ध या दुर्गन्ध का अनुभव न हो, स्नान करने के बाद पहले वक्षस्थल सूखता हो और सर्व शरीर गीला रहे तथा जो दूसरों का रूप न देख सके।
९.	दस दिन	नख एवम् दाँत आदि विकृत हो जाएं।
१०.	आठ दिन	बाहु न दिखाई दे।
११.	सात दिन	आँखें स्थिर हो जाएं, शरीर कान्तिहीन और काष्ठवत हो जाए, ललाट में पसीना आवे, मुख एकाएक खुल जाए, भौंहें टेढ़ी हो जाएं, आँख की पुतली भीतर धँस जाए, मुख सफेद और विकृत हो जाए, दाँत टुकड़े-टुकड़े होकर गिरने लगें तथा दुर्गन्ध आने लगे, मस्तक में विचित्र प्रकार की सनसनाहट पैदा हो जाए, शब्दों का उच्चारण यथार्थ न हो, हाथ और पैरों की उँगलियों की जोड़ें न कड़के, शरीर अकस्मात ही निर्बल या काला पड़ जाए

		मुखमण्डल कमल सदृश गोल और मनोहर हो जाए एवम् कपोलो में इन्द्रगोप के समान चिन्ह प्रकट हो जाए, सिर के बाल खींचने पर दर्द मालूम न हो, कान में समुद्रघोष सदृश आवाज आए, कानों के भीतर होने वाली ध्वनि न सुने, हथेलियों की चुल्लू न बनने पर अथवा एक चुल्लू बन जाने पर उसे अलग करने में देर लगे।
१२.	तीन दिन	कन्धा न दिखाई दे।

(ख) पदस्थ रिष्ट

प्रकृति हमें इष्टानिष्ट की सूचना दे देती है। जो व्यक्ति विज्ञ है, योग शक्ति से युक्त है तथा जिनकी आत्मा विशेष पवित्र है, वे ही इन प्रकृति के रहस्यमय संकेतों को समझने में समर्थ होते हैं। ये रिष्ट आकाशीय दिव्य पदार्थों में, भूमि पर और कत्ता, बिल्ली, नेवला, सर्प, कबूतर, चींटी, कौआ एवम् गाय, अैल आदि के संकेतों द्वारा जाने जा सकते हैं।

पूर्व भव के पुण्योदय से या इस भव के शुभ कार्यों से जिन व्यक्तियों में प्रमाण मनोवृत्ति वर्तमान है और जो उपपत्ति गुण का प्रयोग करना जानते हैं, वे व्यक्ति यदि जिनेन्द्र भगवान का पूजन कर अथवा स्थिर चित्त होकर "ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं कमले कमले विमले विमले उदरदेवी इटि मिटि पुलिंहिणी स्वाहा" – इस मंत्र का २१ बार जाप करके रिष्ट दर्शन करें तो उन्हें कई वर्ष पूर्व अपनी मृत्यु का बोध हो सकता है।

जो व्यक्ति चन्द्रमा को नाना रूपों में तथा छिद्रों से परिपूर्ण देखता है, अर्ध चन्द्र को मण्डलाकार देखता है, जो सप्तऋषि एवम् ध्रुव आदि ताराओं को नहीं देखता तथा दिन में धूप नहीं देखता, ग्रहण के अभाव में भी चन्द्रमा को ग्रहण सदृश रूप में देखता है, सूर्य बिम्ब को छिद्रपूर्ण और अनेक रूपों में देखता है, वह व्यक्ति एक वर्ष से अधिक जीवित नहीं रहता।

जिसे सूर्य या चन्द्र के मध्य भाग में काले या सुरमई रंग की रेखा दिखाई दे, चन्द्रबिम्ब में लाल रंग के और सूर्य में काले रंग के धब्बे दिखाई दें, सूर्य बिम्ब लोहित वर्ण का और चन्द्र बिम्ब हरित वर्ण का दिखाई दे, सूर्य–चन्द्र के बिम्बों को अथवा उनके किसी अन्त को बाणों से बिद्ध देखे, चन्द्रमा को मंगल और गुरु के मध्य देखे अथवा वह जाज्वल्यमान शुक्र ग्रह के समानान्तर दिखाई पड़े तथा मीन राशि की स्थिति चंचल मालूम हो, वह छह मास से अधिक जीवित नहीं रहता।

इस प्रकार अन्य चार, तीन और दो आदि मासों के अनेक रिष्ट दर्शन है, जिन्हें आगम से जानना चाहिए।

(ग) रूपस्थ रिष्ट

जहाँ रूप दिखाया जाए वहाँ रूपस्थ रिष्ट कहा जाता है। यह छायापुरुष स्वप्नदर्शन, प्रत्यक्ष, अनुमानजन्य और प्रश्न द्वारा देखा जाता है। इसके देखने की विधि एवम् अन्य सभी प्रयोग "रिष्ट समुच्चय" ग्रन्थ से जानने चाहिए।

संदर्भ–

समाधि दीपक – सम्पादिका श्री १०५ आर्यिका विशुद्धमती जी (श्री शिवसागर दिगम्बर जैन पुष्पमाला पुष्प ३०, प्रकाशक– श्री शिवसागर दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, शान्तिवीरनगर, श्री महावीर जी (राजस्थान)

गन्धोदक लेने का मंत्र

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्र, पापनाशकम्।
जिन-गन्धोदकं वन्दे, अष्टकर्म विनाशकम्।।

श्री आदिनाथ प्रभु से प्रार्थना

रचियता– आदरणीया कवियित्री श्रीमती चन्द्रप्रभा जैन (प्रस्तुतकर्ता की बहन), अलीगढ़

राग–द्वेष को दूर करो,निर्मल कर दो मेरा मन।
तेरे ही चरणों में, अर्पित कर दूं अपना तन, मन, धन।।१।।
हृदय सिंहासन पर आ जाओ,ओ मेरे नाभि के नन्दन[1]।
फिर क्या डर है मुझको,जो कर्म बना है दुश्मन ।।२।।
कर्म काटि अर्हन्त कहाए,जग प्रभु करता तुझे नमन।
तीन लोक के नाथ बने तुम,शत इन्द्र करत हैं पद वन्दन ।।३।।
संसार समुन्दर पार करूं,करके तेरा प्रिय दर्शन।
आत्म–जपी बन जाऊँ मैं,करके भक्ति का अवलम्बन ।।४।।
मन की आकुलता मिट जाये,मिट जाये मेरा जनम मरण।
कर्मों का काटूँ तप करके,हो जाए मेरा मोक्ष–गमन ।।५।।
चार गती के दुःख सहे,नहीं कर सकता हूँ वर्णन।
छेदा–भेदा गया नरक में,पशु गति की भारी वेदन ।।६।।
देवगति में झुरसता रहा,लख औरों का वैभव धन।
आधि–व्याधि से ग्रसित रहा,जब पाया मैंने मानुष तन ।।७।।
सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान, चरन, मिल गये जिसको तीन रतन।
भवसागर से हुआ किनारा,मिट गया पंच परावर्तन ।।८।।
भक्ति–नाव पर चढ़ा जो प्राणी,कट गये कर्मों के बन्धन।
सेवक की अरदास यही है, हो जाऊँ निज–निज में मगन ।।६।।

ॐ नमः सिद्धेभ्य।

ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं अर्हं श्री वृषभनाथ तीर्थंकराय नमः।

[1]अन्तिम कुलकर श्री नाभिराय के पुत्र अर्थात तीर्थंकर श्री आदिनाथ

भाग–२

मानव शरीर विज्ञान

PART II

THE SCIENCE OF HUMAN BODY

भाग – २

मानव शरीर विज्ञान

THE SCIENCE OF HUMAN BODY

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं०	विषय		पृष्ठ
१.	प्राक्कथन		२.१
२.	अस्थि पिंजर तंत्र	Skeleton System	२.२
३.	मांस पेशियाँ	Muscles	२.२
४.	त्वचा	Skin	२.२
५.	स्नायु तंत्र / सम्पर्क व्यवस्था	Nervous / Communication System	२.५
६.	मस्तिष्क	Brain	२.६
७.	संवेदनशील अंग (इन्द्रियाँ)	Senses	२.१७
८.	रुधिराभिसरण तंत्र	Blood Circulatory System	२.२०
९.	प्रतिरक्षात्मक तंत्र	Immune System	२.३२
१०.	अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ	Endocrine Glands	२.३३
११.	श्वसन तंत्र	Respiratory System	२.४२
१२.	पाचन तंत्र	Digestion System	२.४५
१३.	परिशिष्ट—भोजन का विभागीकरण	The Classification of Food	२.६१
१४.	उत्सर्जन तंत्र	Excretion System	२.६६
१५.	प्रजनन तंत्र	Reproductive System	२.७१
१६.	जीनी और अनुवंशिकता	Genes and Heredity	२.७३
१७.	शरीर से संबंधित कुछ परिभाषाएं	Vocabulary	२.७५
१८.	सन्दर्भ	References	२.७६

नोट – शरीर के अंगों एवं उसके परिचालन के सम्बन्ध में अनेक शब्द अंग्रेजी भाषा से लिए गये हैं जिनका हिन्दी रूपान्तर अनुपलब्ध था। मास्को से प्रकाशित "मानव : शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान" पुस्तक में यद्यपि कई शब्द हिन्दी में मिलते हैं, किन्तु वे इतने क्लिष्ट हैं और साधारण व्यक्ति के लिए समझने में इतने कठिन हैं कि उनके उपयोग के स्थान पर अंग्रेजी के शब्द इस्तेमाल किए गए हैं।

भाग – २

मानव शरीर विज्ञान

THE SCIENCE OF HUMAN BODY

अध्याय – १

प्राक्कथन

धर्म साधन हेतु शारीरिक एवम् मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होना आवश्यक है। अतएव इसकी समुचित देखभाल करना आवश्यक है और जिसका वर्णन भाग ३ में किया गया है, किन्तु उसको समझने के लिए शरीर के बारे में जानना जरूरी हो जाता है। धर्मग्रन्थों में भी इसी कारण वैयावृत्य का उपदेश मिलता है।

मानव शरीर एक अत्यन्त जटिल कारखाने के समान है, इसमें विभिन्न प्रणालियाँ हैं –

१.	अस्थि पिञ्जर तन्त्र	Skeleton System
२.	माँस पेशियाँ	Muscles
३.	त्वचा	Skin
४.	स्नायु/संचार व्यवस्था	Nervous/Communication System
५.	मस्तिष्क (नियंत्रण व्यवस्था)	Brain (Controlling function)
६.	संवेदनशील अंग	Senses
७.	रूधिराभिसरण तंत्र	Cardiovascular System
८.	प्रतिरक्षात्मक तंत्र	Immune System
९.	अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ	Endocrine Glands
१०.	श्वसन तन्त्र	Respiratory System
११.	पाचन तन्त्र	Digestion System
१२.	उत्सर्जन तन्त्र	Excretion System
१३.	प्रजनन तन्त्र	Reproductive System

सभी प्रणालियों के तन्त्र एक दूसरे के सहयोग से कार्य करते हैं। इन तन्त्रों का संक्षिप्त वर्णन इस भाग में दिया गया है। मानव शरीर का एक दिग्दर्शन चित्र २.२२ में दिया गया है। पाचन तन्त्र के सन्दर्भ में भोजन के विषय में भी जानना आवश्यक प्रतीत होता है, अतएव उसका वर्णन भोजन का विभागीकरण (The classifcation of food) के रूप में क्रम सं० १२ – पाचन तन्त्र के उपरान्त किया गया है।

अध्याय – २

अस्थि पिञ्जर तन्त्र – Skeleton System

पूर्ण विकसित शरीर का ढाँचा चित्र २.०१ में दर्शाया है। शरीर में भिन्न–भिन्न आकार की २०६ हड्डियाँ होती हैं। खोपड़ी मस्तिष्क की, मेरुदण्ड (Spine) के मनके (Vertebrae) सायेटिका नर्व (Sciatica Nerve) की, छाती का पिञ्जरा (Thoracic Cage) फैंफड़ों , हृदय व यकृत (Liver) की रक्षा करते हैं। हड्डियाँ Collagen (प्रोट़ीन फ़ाइबर्स Protein Fibres) का नेटवर्क (Network) होती हैं। इनमें कैल्शियम (Calcium), फासफोरस (Phosphorous) आदि खनिज पदार्थ भरे होते हैं। अधिकांश हड्डियाँ अन्दर से खोखली होती हैं और उनमें स्थित हड्डी के गूदे (Bone Marrow) में अत्यन्त महत्वपूर्ण रक्त के लाल कणों (Red Blood Corpuscles) का उत्पादन होता रहता है। पीले Bone Marrow (अस्थि–मज्जा) में fat (वसा) जमा होती है। यह अस्थि पिंजर माँसपेशियों से ढ़का रहता है।

मेरु दण्ड लगभग ४३ सेन्टीमीटर लम्बा व २ सेन्टीमीटर मोटा होता है। मेरु दण्ड की कोशिकाएं (मनके) को चित्र २.०२ में दर्शाया है। ये सब शरीर के विभिन्न अंगों से जुड़े होते हैं, जैसा कि इस चित्र में दर्शाया है।

अध्याय – ३

मांसपेशियाँ – Muscles

शरीर के वजन का लगभग ४० प्रतिशत माँसपेशियों से बना होता है। माँसपेशियाँ (Muscles of the Skeleton) शरीर में ६०० से अधिक होती हैं। देखिए चित्र २.०३ तथा २.०४

अध्याय – ४

त्वचा – Skin

त्वचा कठोर प्रोटीन (tough protein) तथा कैराटीन (Keratin) से बनी होती है। त्वचा की कई परतें होती हैं और छिद्रालू होती हैं। इसकी मोटाई ०.५ से लेकर ३ मिलीमीटर तक होती है। यह शरीर का सबसे भारी व बड़ा अंग है और इसका

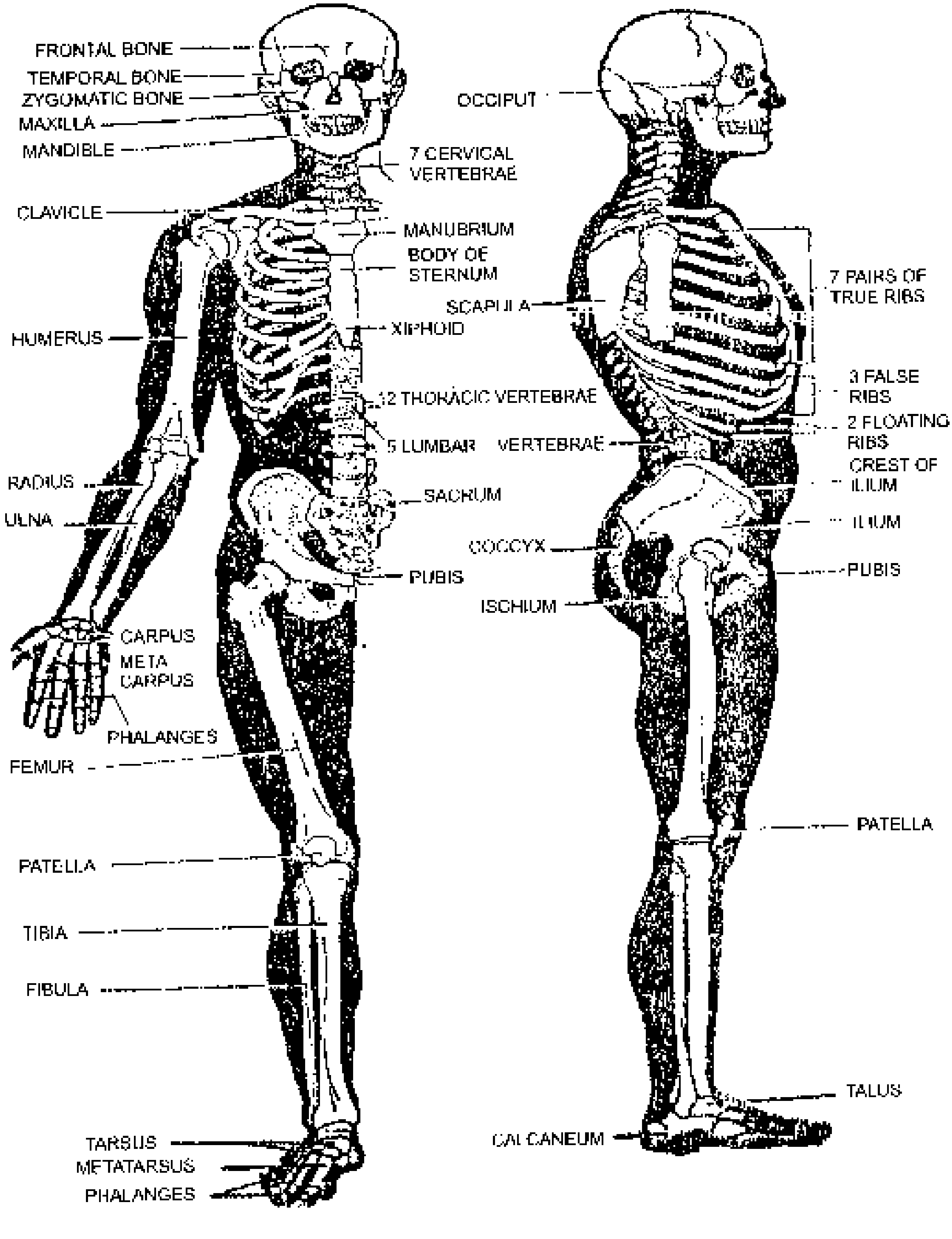

अस्थि तंत्र

THE SKELETON SYSTEM

चित्र २.०१

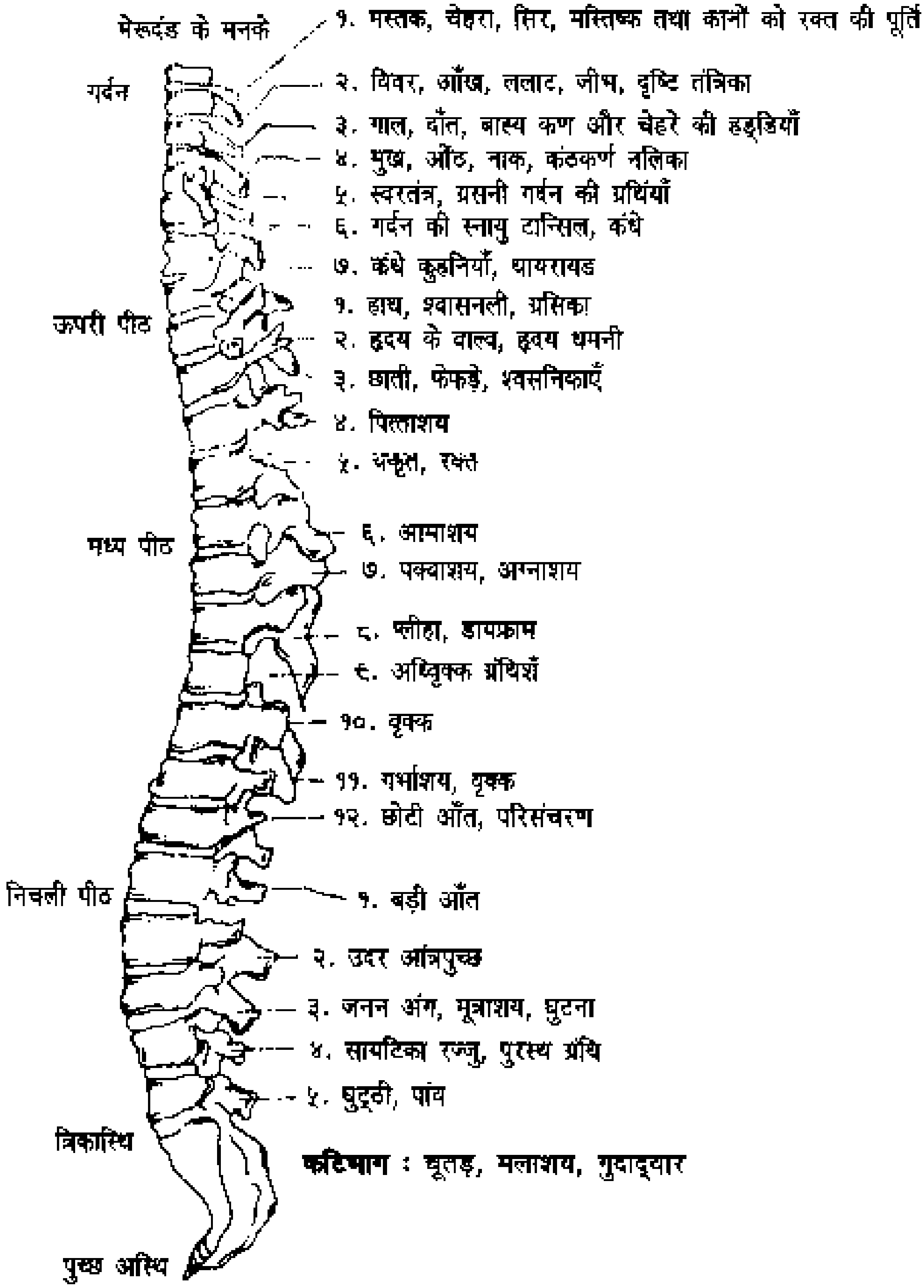

मेरुदंड की कशेरुकाएँ और उनसे जुड़े हुए अंग

THE VERTEBRAE OF THE SPINE AND THE ORGANS CONNECTED THEREWITH

चित्र २.०२

क्षेत्रफल (surface area) २ वर्गमीटर होता है तथा वजन ४.७ किलो ग्राम होता है। इसकी बाहरी पर्त और संवेदन ग्रंथियाँ बहिर्वाहक और अंतर्वाहक चेताओं के साथ जुड़ी होती हैं, जिससे यह गरम, ठंडे, कठोर, दबाव आदि की संवेदन मस्तिष्क को पहुँचा कर उनसे सम्बन्धित आज्ञाएं प्राप्त करती हैं। त्वचा स्नायुओं और चरबी की रक्षा करती है, शरीर में बैक्टिरिया के प्रवेश को रोकती है तथा कुछ विषैले पदार्थों को शरीर से बाहर भी निकालती है। इसके अतिरिक्त वे प्रस्वेदन के माध्यम से कुछ क्षारों के निष्कासन करने के कार्य में सहायता करती हैं। इसमें ३० लाख से अधिक प्रस्वेदन ग्रंथियाँ (sweat glands) होती हैं। सर्दी की ऋतु में त्वचा ठंड को शरीर में प्रवेश करने से रोकती है और गर्मी की ऋतु में शरीर की गर्मी को प्रस्वेद के द्वारा शरीर से बाहर निकालने का काम करती है। इस प्रकार वह शरीर के तापमान के नियंत्रण में सहायता करती है। शरीर पर उगे रोएँ भी शरीर के तापमान को सामान्य रखने में मदद करते हैं और कुछ त्वचा की रक्षा करते हैं। सिर पर लगभग १ लाख बाल होते हैं। इसमें से प्रतिदिन लगभग ८० बाल गिरते हैं।

नाखून हाथ और पैरों की उँगलियों के सिरों की रक्षा करते हैं। ये कैराटिन (Keratin) से बने होते हैं। नाखून एक माह में लगभग ५ मिलीमीटर तक बढ़ते है, तथा जड़ (base) से उपर (tip) तक आने में लगभग ६ माह लगते हैं। त्वचा की संरचना एवम् बाल उगने की प्रक्रिया आगे अध्याय ७ के अर्न्तगत चित्र २.१० में दर्शायी गयी है।

अध्याय – ५

स्नायु तंत्र / सम्पर्क व्यवस्था – Nervous / Communication System

मस्तिष्क, मस्तिष्क दंड (Brain stem), मेरु दंड (Spine), सायेटिका चेता–ये सब मिलकर केन्द्रीय स्नायु तंत्र बनाते हैं। इनसे बाहरी (peripheral) स्नायु जो मीलों लम्बी है, सम्बन्धित रहती हैं। इस प्रकार से पूरे शरीर में स्नायु तंत्र का जाल फैला रहता है। साइटिका नर्व रीढ़ की हड्डी के मनकों (Ventricules) के बीच में से गुजरती है और कोकिलास्थि (Coccyx) के पास से दो भागों में विभक्त होकर पैरों के अंगूठे के सिरे तक जाती है। इस साइटिका चेता – मेरु दण्ड से छोटी-छोटी चेताएँ निकलती हैं जो शरीर के प्रत्येक अवयव के साथ जुड़ी हुई हैं। देखिए चित्र २.०५ तथा २.०६।

शरीर के सभी चेताओं की लम्बाई लगभग ७५ किलोमीटर होती है। इन चेताओं के माध्यम से सिग्नलों की गति लगभग ४०० किलोमीटर प्रति घंटा हो सकती है, किन्तु दर्द के सिग्नलों की गति इससे कम रहती है।

अध्याय – ६

मस्तिष्क – Brain

यह शरीर का मुख्य नियंत्रण कक्ष है। मस्तिष्क खोपड़ी के अन्दर मस्तिष्क-मेरुजल (Cerebrospinal fluid) में अवस्थित होता है, जिसमें मस्तिष्क की आघातीय तरंगों (Shock waves) से रक्षा हो पाती है। मस्तिष्क में २४० से ३३० करोड़ के बीच में कोष होते हैं। मस्तिष्क का कार्य अनेक भागों द्वारा होता है :

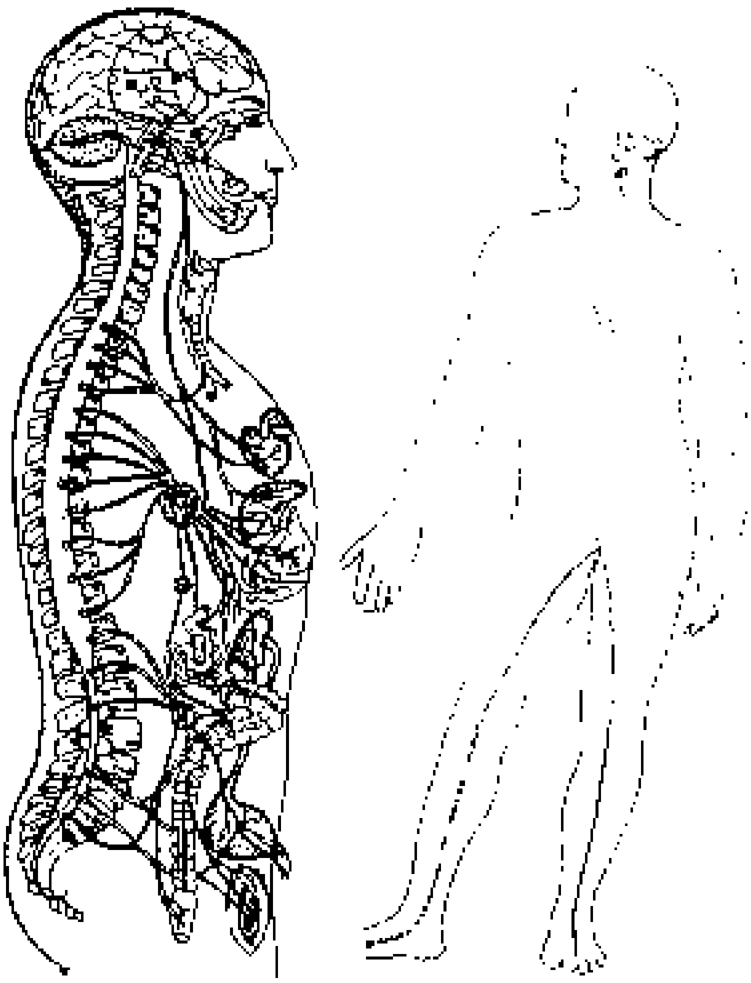

CENTRAL NERVOUS SYSTEM
केन्द्रीय तन्त्रिका तंत्र
चित्र २.०५

सायटिका रज्जू
चित्र २.०६

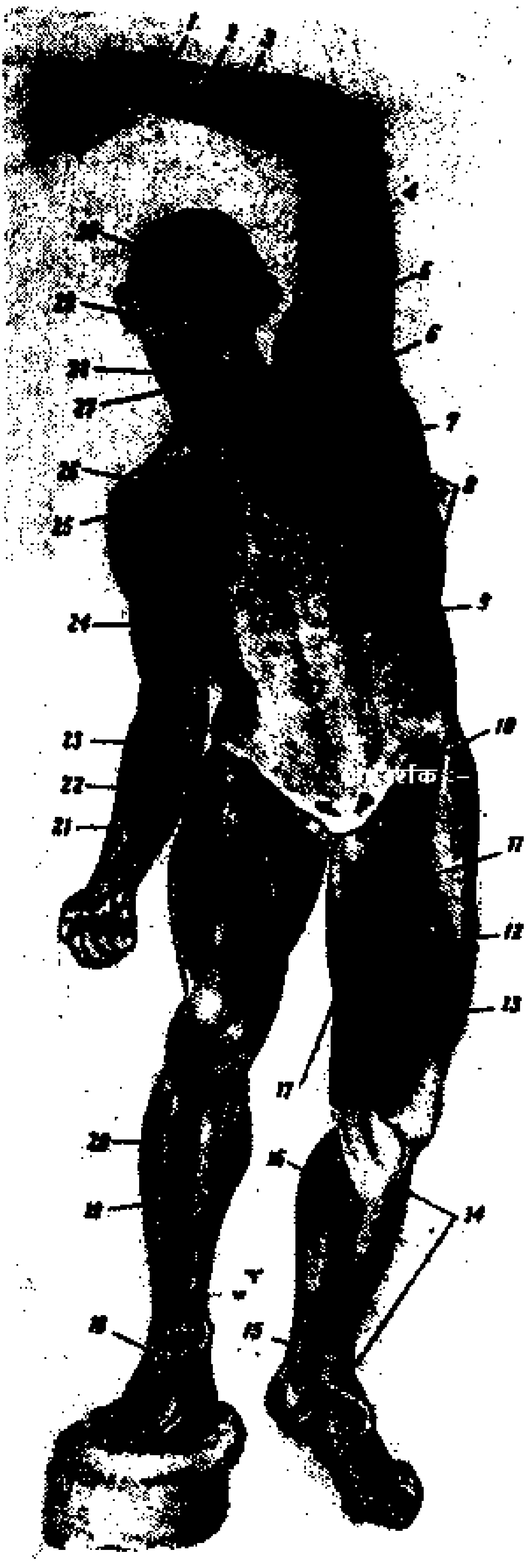

THE MUSCULAR SYSTEM -FRONT VIEW

मांसपेशी तंत्र-अग्रभाग

चित्र २.०३

मानव शरीर की पेशियां (अग्र पक्ष)

1 – पालमारिस लोंगस ; 2 – फ्लेक्सर डिजिटोरम सबलिमिस ; 3 – फ्लेक्सर कार्पी अल्नेरिस ; 4 – बाहु त्रिशिरस्क ; 5 – अंसतुंड बाहुपेशी ; 6 – बृहत अंसाभिवर्तिका ; 7 – लैटिसिमस डॉर्साइ ; 8 – अग्र ककचिनी ; 9– बाह्य तिर्यांक पेशी ; 10 – इलिओसोअस ; 11 तथा 12 – चतु:शिरस्क फेमोरिस ; 13 – सारटोरियम ; 14 – अग्रअंतर्जंघिका धमनी ; 9– बाह्य तिर्यांक पेशी ; 10 – इलिओसोअस ; 11 तथा 13 – चतु:शिरस्क फेमोरिस ; 12 – सारटोरियम ; 14 – अग्रअंतर्जंघिका धमनी ; 15 – पार्ष्णिका कण्डरा ; 16 – गैस्ट्रॉक्निमियम ; 17 – तनुपेशी ; 18 – प्रसारणी को आधार देने वाले अधो: स्नायु ; 19 – अग्रअंतर्जंघिका धमनी ; 20 – पेरोनिअल ; 21 – फ्लेक्सर कार्पी रेडिआलिस ; 22 – बाहु बहि: प्रकोष्ठिकपेशी ; 23 – तंतु पट्ट ; 24 – बाहु द्विशिरस्क ; 25 – अंतछदा ; 26 – बृहत अंसपेशी ; 27 – उरोस्थि कंठिका ; 28– उरोजत्रुक कर्णमूलिका ; 29 – चर्वणी ; 30 – नेत्र मण्डलिका ।

THE MUSCULAR SYSTEM -BACK VIEW

मांसपेशी तंत्र -पिछलाभाग

चित्र २.०४

1 – उरोजत्रुक कर्णमूलिका ; 2 – ममनंविका ; 3–अंसछदा ; 4–बाहु त्रिशिरस्क ; 5–बाहु द्विशिरस्क ; 6–बाहु बहि: प्रकोष्ठिक पेशी ; 7 – प्रसारणी कार्पी रेडियालिस लोंगस ; 8 – (बाहु का) प्रसारणी डिजिटोरम समाजी ; 9–नितंब महापेशी ; 10–फेमोरिस द्विशिरस्क ; 11 – गैस्ट्राक्निमियस ; 13 – सोलियस ; 13 तथा 15 – पेरोनियस लोंगस ; 14 – (पाँव का) (कण्डरा) प्रसारणी डिजिटोरम लोंगस ; 16 – संपट्ट लाता (fascia lata); 17 – संपट्ट लाता प्रदिश ; 18 – बाह्य तिर्यक् पेशी ; 19– लैटिसिमस डॉर्साइ ; 20 – चतुष्कोणी ; 21 – उर्ध्वटेरेस ; 22 – फास्पिनेटस ; 23– बाहु त्रिशिरस्क ; 24 – बाहुपेशी ; 25 – बाहु द्विशिरस्क ।

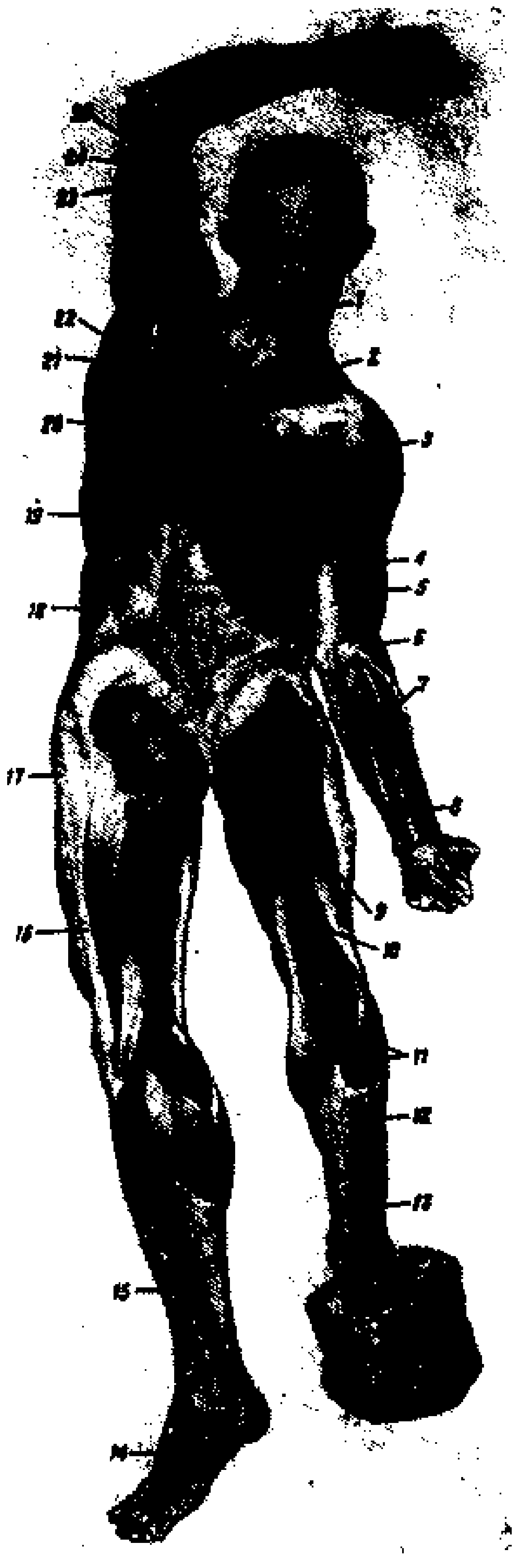

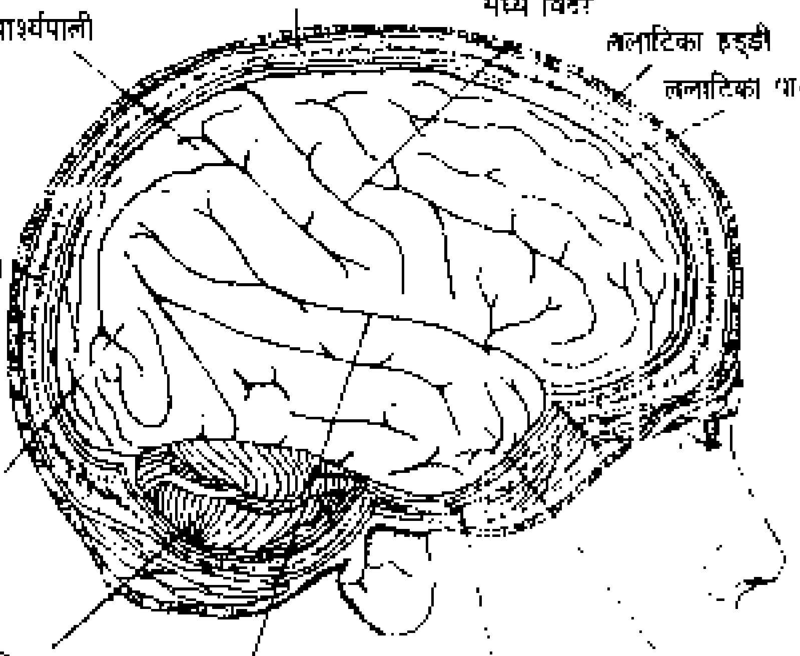

: प्रमस्तिष्क का आंतरिक भाग

चित्र २.०७

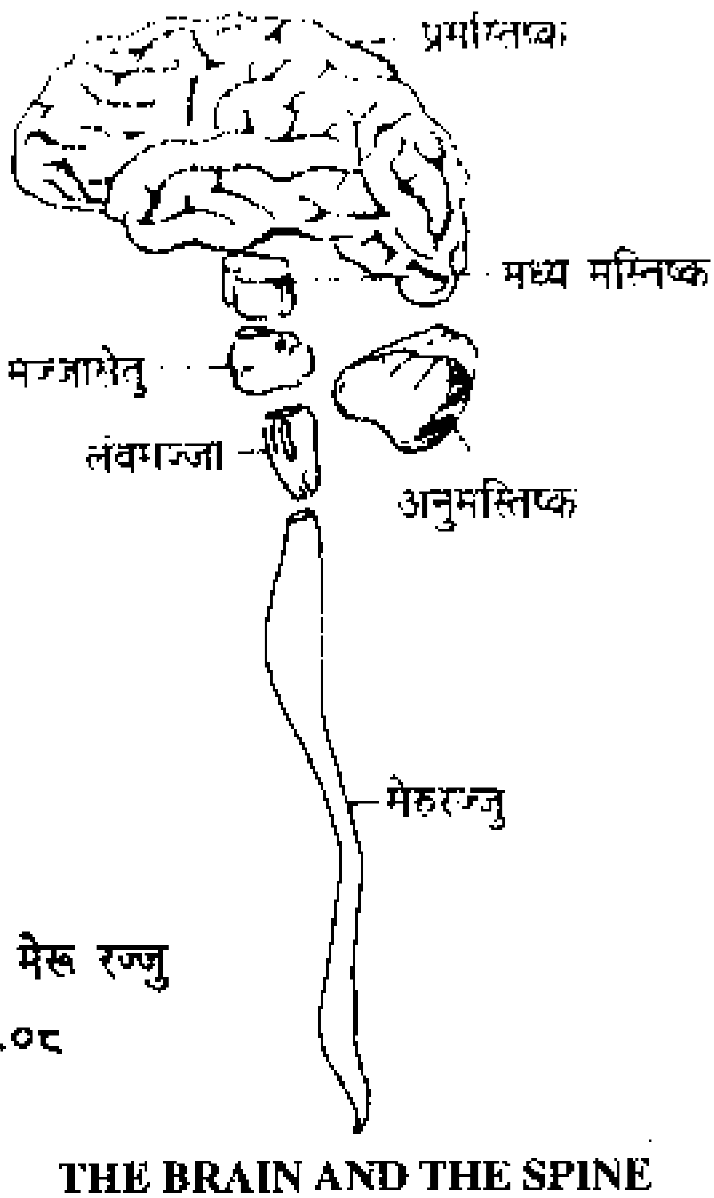

:मस्तिष्क और मेरू रज्जु

चित्र २.०८

THE BRAIN AND THE SPINE

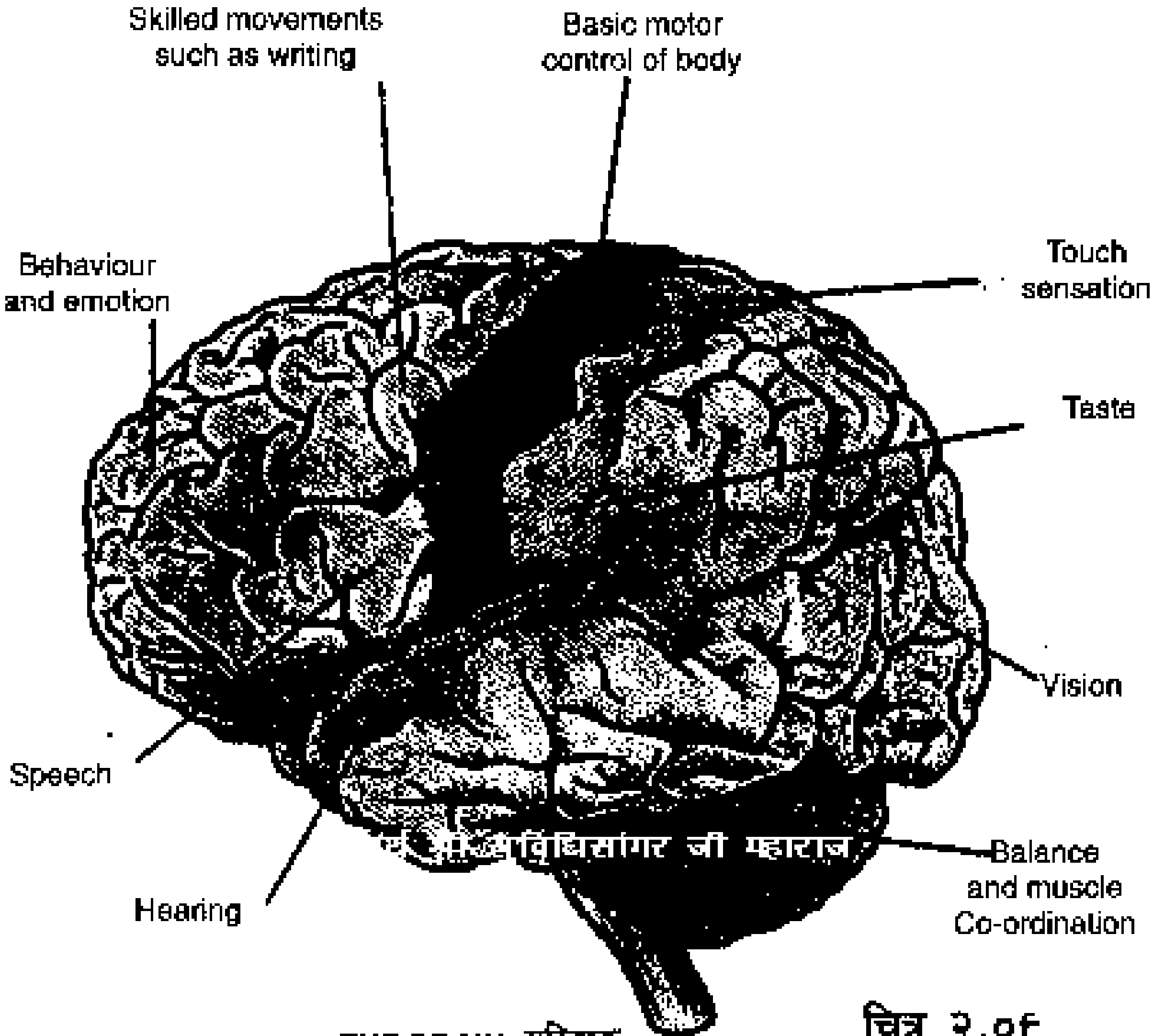

THE BRAIN मस्तिष्क

चित्र २.०९

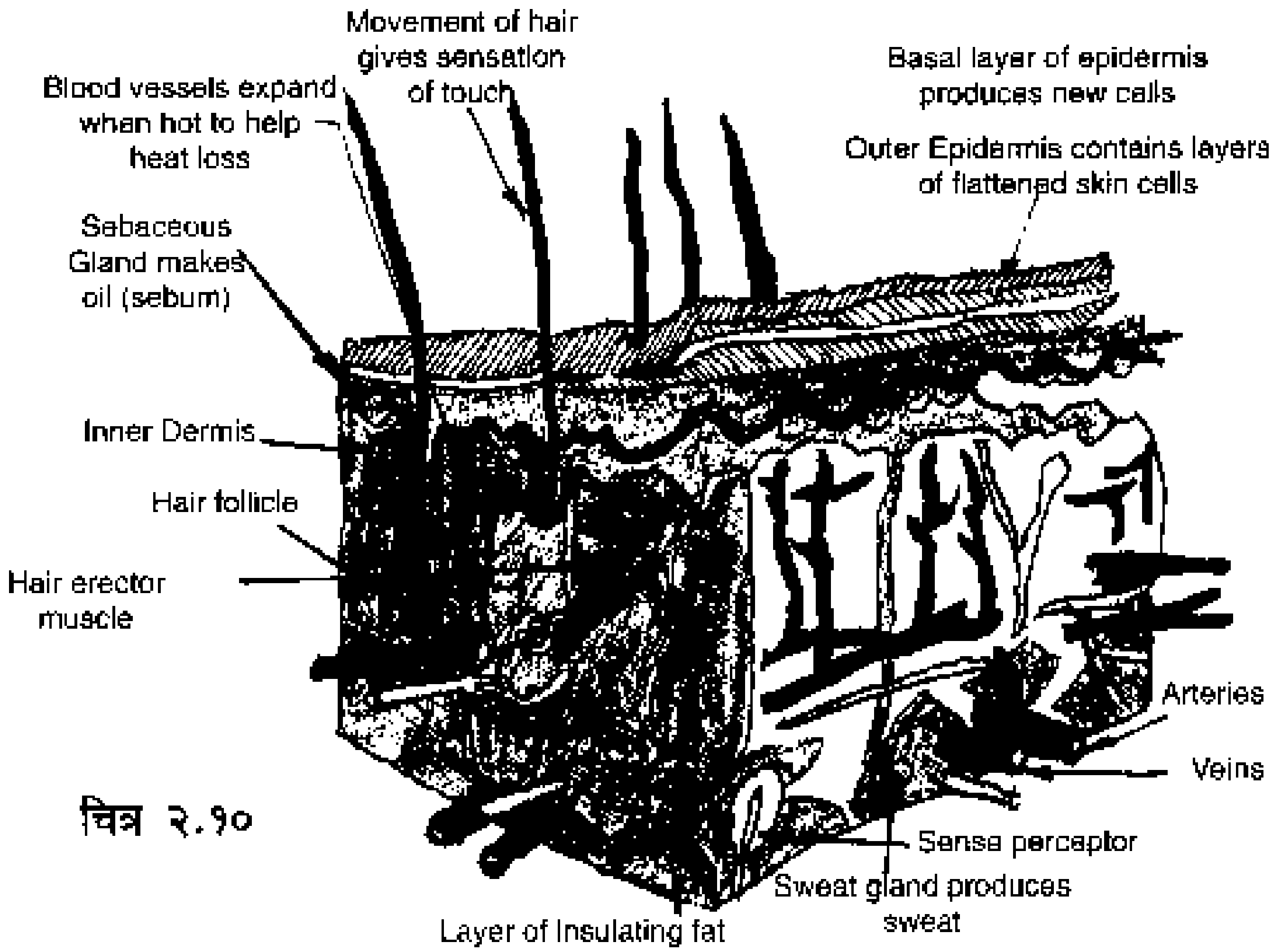

चित्र २.१०

THE SKIN (त्वचा)

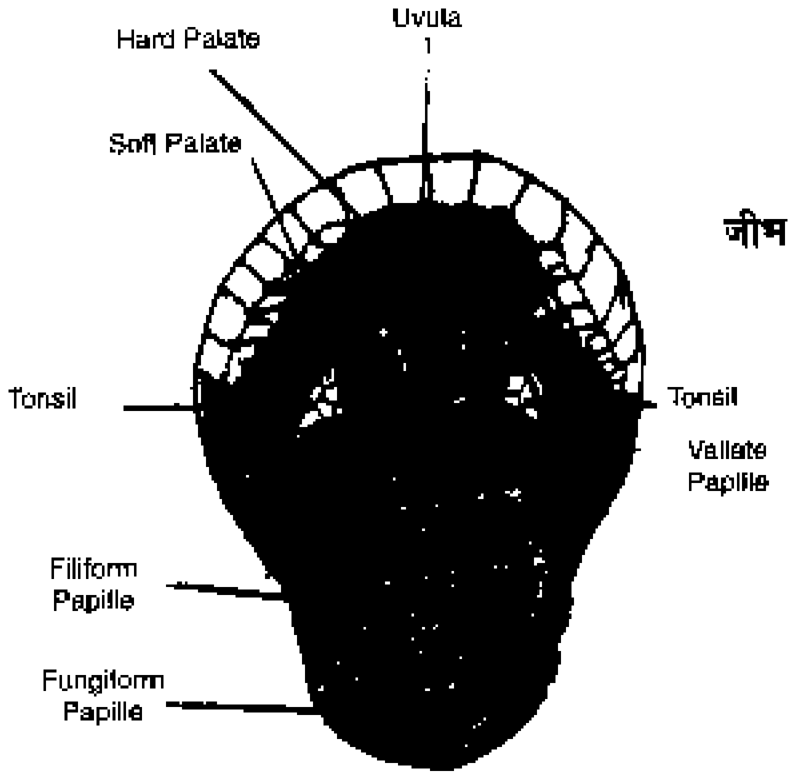

जीभ की ऊपरी सतह

A Diagram of the upper surface (Dorsum) of the Tongue

चित्र २.११

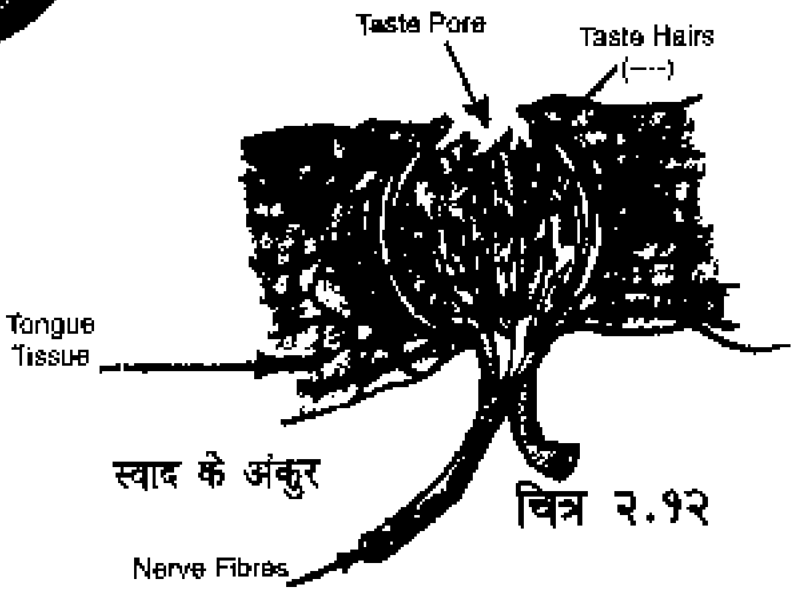

स्वाद के अंकुर

चित्र २.१२

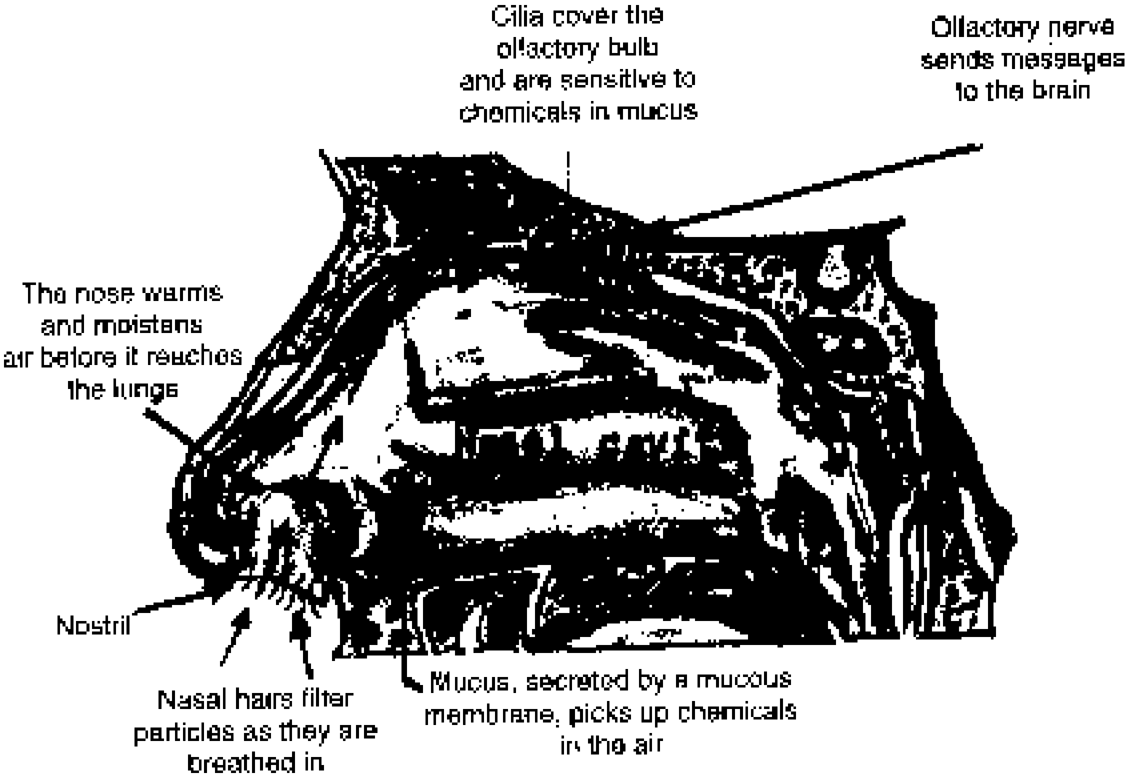

The Nose (नाक) चित्र २.१३

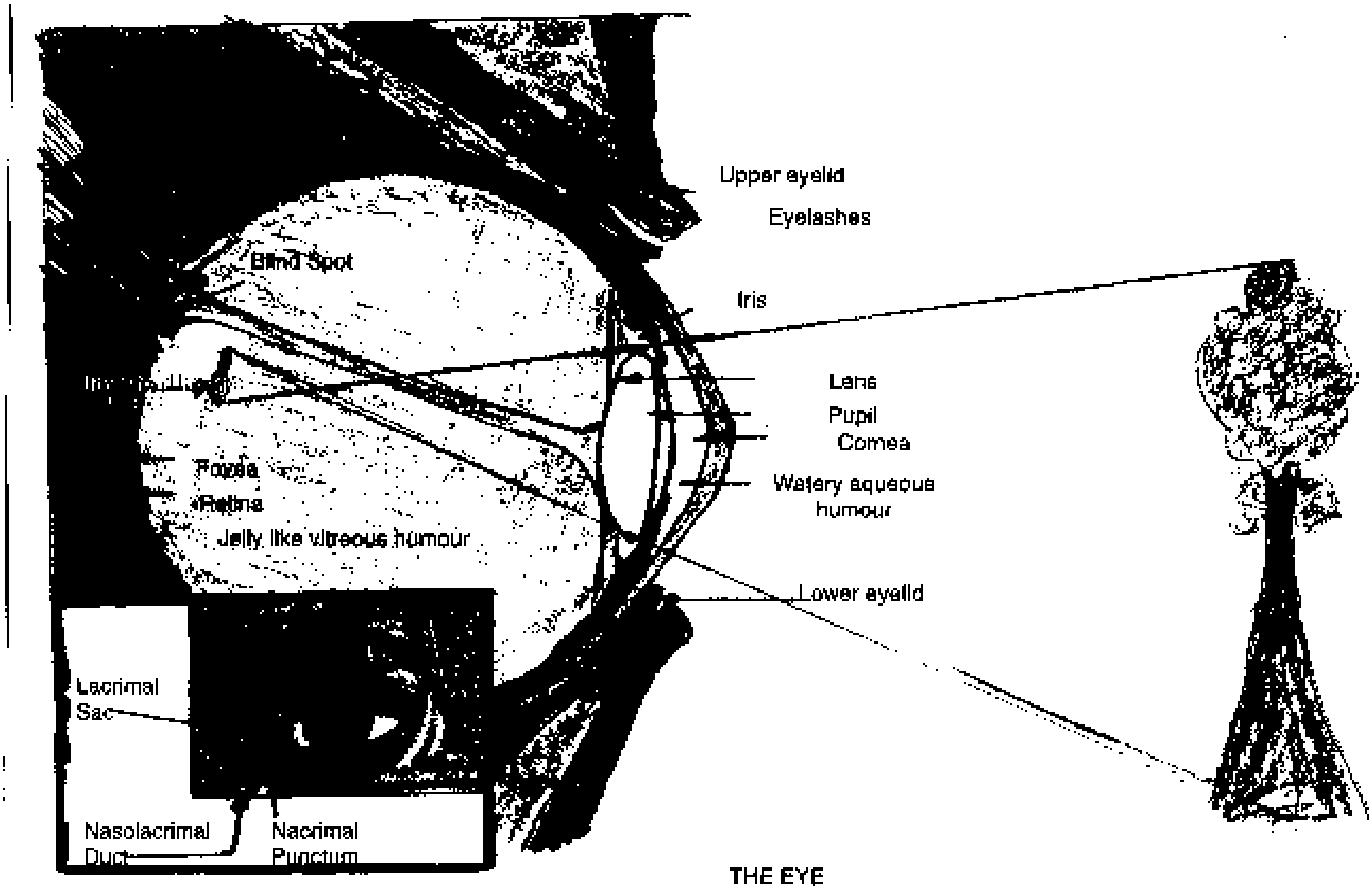

THE EYE
नेत्र

चित्र २.१४

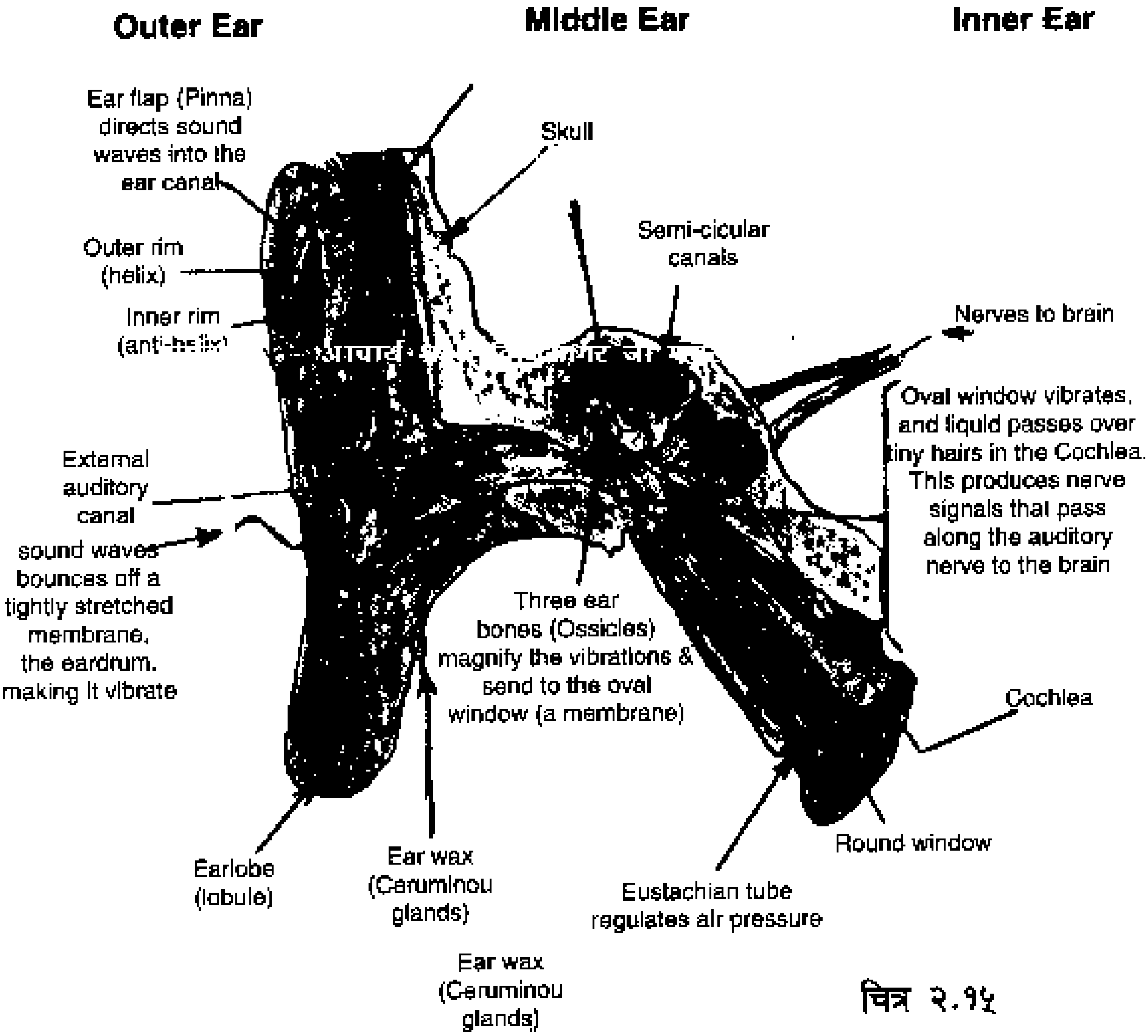

चित्र २.१५

The Ear कान

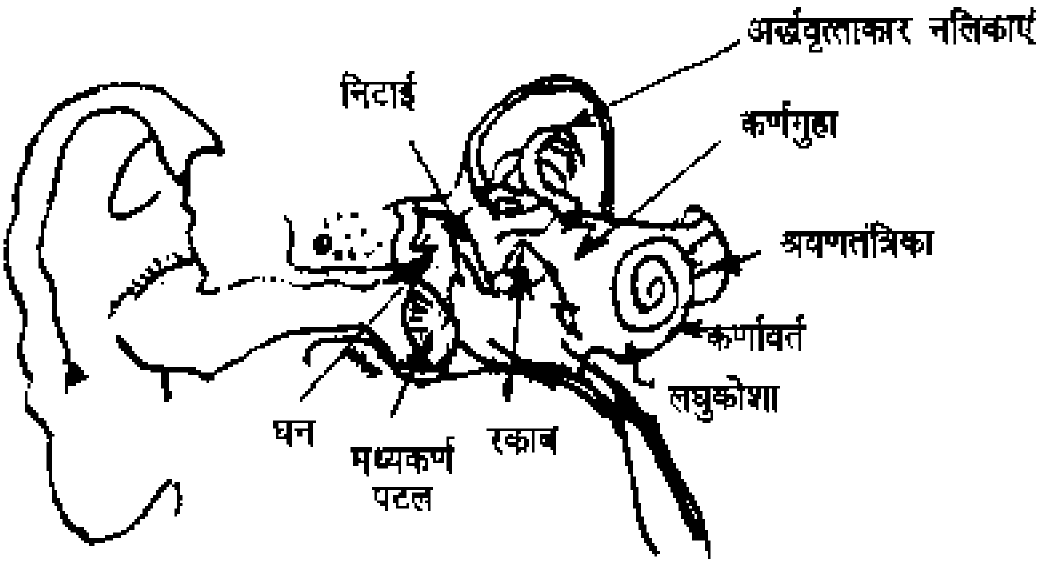

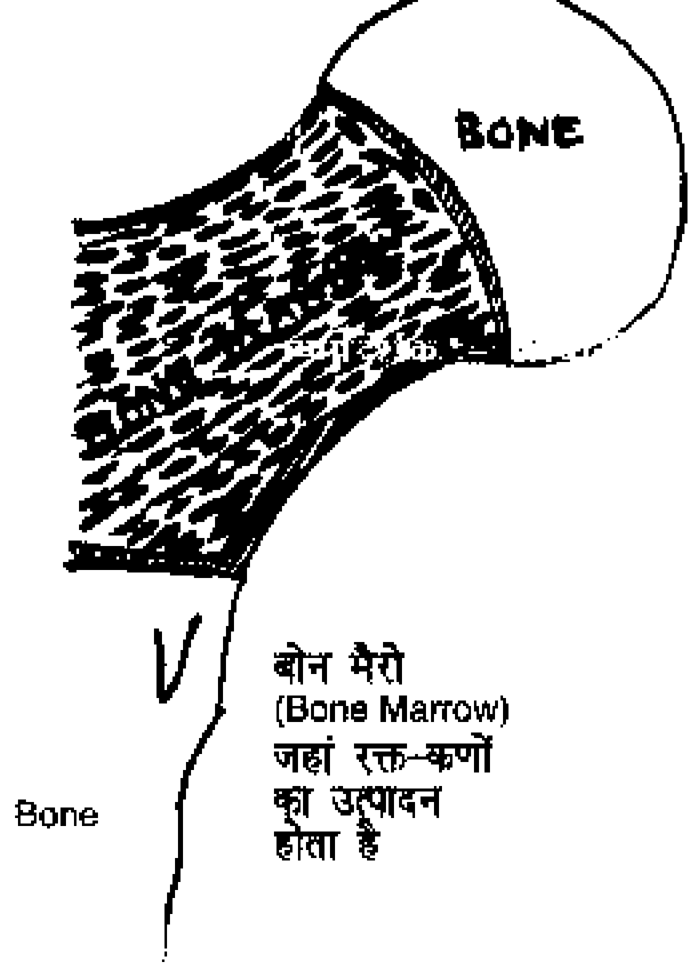

चित्र २.१६

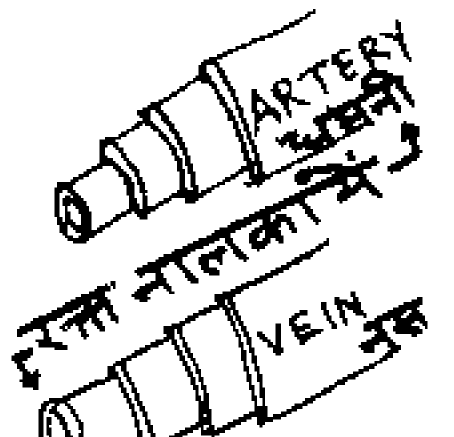

चित्र २.१७

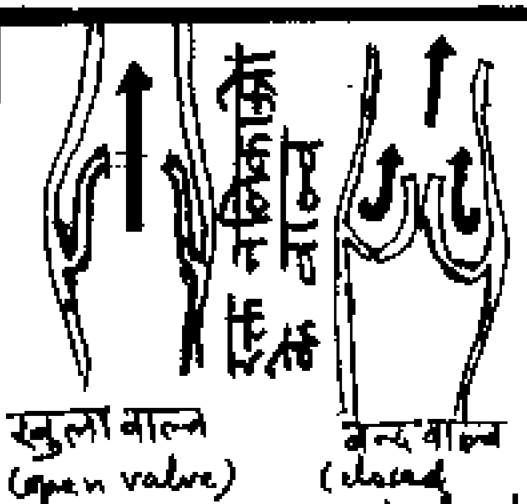

चित्र २.१८

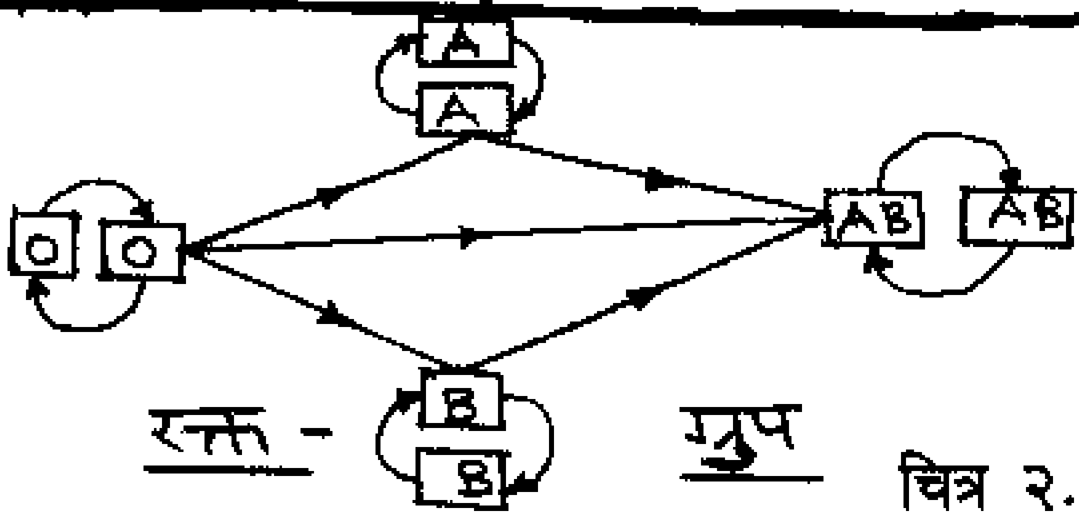

रक्त - ग्रुप

चित्र २.१९

१. अनुमस्तिष्क (Cerebellum अथवा छोटा मस्तिष्क) –विद्युत डायनेमो (Dynamo) के आर्मेचर (armature) की तरह यहाँ चेताएँ होती हैं। जब रुधिर उसमें से गुजरता है, तो विद्युत (Electricity) उत्पन्न होती है। उत्पन्न होने वाले धन (positive) भार को रीढ़ की हड्डी (Spine) के प्रथम मनका (first ventricle) तथा ऋण (negative) भार को द्वितीय मनका द्वारा मस्तिष्क में पहुँचाया जाता है। इन दोनों भारों से मस्तिष्क (शरीर की बैटरी) पुनः चार्ज होती है, जिससे चालक चेताएँ क्रियाशील रहती हैं। शरीर में चलने वाली अज्ञात (अनजान) क्रियाओं का वे नियमन व नियंत्रण करती हैं। ये मस्तिष्क के पिछले भाग में अवस्थित होता है।

२. बृहद मस्तिष्क (Cerebrum अथवा बड़ा मस्तिष्क) – यह सुपर कम्प्यूटर (Super Computer) है। पाँच संवेदन इंद्रियों द्वारा प्राप्त संवेदनों को अन्तर्वाही चेतओं के माध्यम से बृहत मस्तिष्क में भेजा जाता है। यहाँ भूतकाल में प्राप्त ज्ञान व अनुभव के आधार पर उसका विश्लेषण होता है और आवश्यक आज्ञाएं तैयार कर बहिर्वाही चेताओं द्वारा सम्बन्धित अंगों की ओर भेजी जाती हैं। इस प्रकार यह हमारी मध्यवर्ती चेतातंत्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। बड़े मस्तिष्क में दो बड़े अर्ध गोलार्ध विभाग हैं। दाहिना भाग शरीर के बाँए भाग तथा बाँया भाग शरीर के दहिने भाग का नियंत्रण करता है। इस मस्तिष्क के सुपर कम्प्यूटर में लगभग २०,००० चिप्स (Chips) हैं, परन्तु उनमें से हम केवल १० प्रतिशत का ही उपयोग करते हैं। बहुत बुद्धिमान व्यक्ति का कदाचित १५ प्रतिशत तक ही हो पाता है।

मध्यवर्ती चेता तंत्र के विभिन्न विभाग विभिन्न कार्यो का सन्तुलन करते हैं, जो निम्नवत है :–

अग्र खण्ड (Frontal lobe)	–	न्याय-तर्क
पार्श्वक खण्ड (Parietal lobe)	–	हिलने-डुलने की संवेदना
अनुकपाली (Occipetal lobe)	–	दृष्टि – आँख
छोटा मस्तिष्क (Cerebellum)	–	स्नायुओं का संचालन और संतुलन
शंख खण्ड (Temporal)	–	स्मरण शक्ति–श्रवण शक्ति

लंब मज्जा (Medulla oblongata) – स्वयं संचालित हलचल–श्वासोच्छवास

– हृदय की धड़कन आदि

सेतु (Pons) – pH स्तर और मृत्यु

थैलेमस (Thalamus) में सभी क्रियाओं का नियंत्रण उसके बाह्यक (Cerebral cortex) से होता है।

३. **मस्तिष्क दण्ड–स्कंध (Brain Stem) –** इसमें मध्य मस्तिष्क (Mid Brain), सेतु (Pons), लंबमज्जा समाविष्ट हैं।

मध्य मस्तिष्क – यह इस विभाग के ऊपरी भाग में स्थित है। उसमें Hypothalamus, Thalamus, Pituary gland (पिट्यूरी ग्रन्थि) तथा चेता तंत्र (Limbic system) समाविष्ट हैं।

सेतु – (Pons) यहाँ १२ जोड़ी चेताओं का एक सैट है, प्रत्येक का एक सिरा छोटे और बड़े मस्तिष्क के साथ एवम दूसरा सिरा मध्यस्थ चेता तंत्र के साथ जुड़ा हुआ है। इस प्रकार Pons रिले–स्टेशन का कार्य करता है। उसमें से गुजरने वाले मष्तिष्क–मेरुजल से वह विषैले पदार्थों को सोख लेता है। इस प्रकार वह शरीर के pH अंक व मृत्यु को नियंत्रित करता है। अंतर्वाही और बहिर्वाही चेताओं का भी वह नियमन करता है।

लंब मज्जा – (Medulla oblongata) एक ओर सेतु (Pons) और दूसरी ओर मष्तिष्क–दण्ड (Brain- stem) से जुड़कर यह रिले–स्टेशन का कार्य करती है। श्वसन, हृदय–स्पंदन आदि स्वयंवर्ती क्रियाओं का संचालन करने वाली चेताओं का यह नियमन करती है। अतः इसके क्षतिग्रस्त होने पर व्यक्ति की तत्काल मृत्यु होती है।

मस्तिष्क– मेरु जल – मस्तिष्क से सम्पर्क रखने वाली रुधिर कोशिका जाल द्वारा रुधिर से मस्तिष्क मेरुजल बनता है। यह एक चैतन्ययुक्त प्रवाही द्रव है, जो रंगहीन तथा पारदर्शी होता है। वयस्क

व्यक्ति के शरीर में इस द्रव की मात्रा लगभग १५० मिलीलीटर होती है। यह प्रवाही मस्तिष्क व मेरुदण्ड को पोषण प्रदान करता है, तथा शरीर के सभी अवयवों को काम करने की उपयुक्त शक्ति देता है। इसमें प्रोटीन, ग्लूकोज तथा विभिन्न लवण (पोटेशियम, कैलशियम आदि) छोटी मात्रा में विद्यमान होते हैं। १०० मिली लीटर मस्तिष्क – मेरुजल निम्नलिखित तत्वों से बनता है :

प्रोटीन	:	१५–४५ मिलीग्राम
ग्लूकोज	:	४०–५० मिलीग्राम
क्लोराइड	:	७२०–७५० मिलीग्राम
कोष	:	०.५ + भक्षक कोष आदि

मस्तिष्क–मेरुजल रुधिर के साथ घुलमिल नहीं पाता। फिर भी कुछ सिद्ध योगी विशेष यौगिक क्रियाओं से मुँह के ऊपरी भाग (तालु) के द्वारा इस प्रवाही को अल्प मात्रा में सोख लेते हैं। इस क्रिया को "अमृतपान–क्रिया (Drinking of Nectar) कहते हैं।" इस तरह के पान से भूख प्यास एकदम कम हो जाती है।

मस्तिष्क की संरचना व कार्य कलाप के सम्बन्ध में चित्र २.०७, २.०८ तथा २.०६ का अवलोकन करिए।

अध्याय – ७

संवेदनशील अंग (इन्द्रियाँ)– Senses

(क) स्पर्शन – त्वचा –

त्वचा शरीर को बाहरी क्षति एवम् संक्रमण से एक जल-निरोधक अवरोध के द्वारा बचाती है। यह स्पर्शन के लिए संवेदनशील होती है, शरीर के ताप को नियंत्रित करने में सहायक होती है तथा अपनी स्वतः ही मरम्मत करती है। त्वचा में विभिन्न प्रकार की चेताओं के सिरे आते हैं जिससे प्रकाश, स्पर्शन, दबाव, ठंड, गरमी तथा दर्द का ज्ञान होता है। ये मस्तिष्क को विद्युतीय सिग्नल भेजते हैं।

त्वचा में दो मुख्य सतह होती है – एक बाह्य और एक आभ्यन्तर, जैसा कि चित्र २.१० में दर्शाया है। त्वचा शरीर का सबसे बड़ा अंग है। इसके सतह का क्षेत्रफल २ वर्ग मीटर तक होता है। एक औसत जीवन में शरीर लगभग ४० किलोग्राम त्वचा उतारती है।

(ख) स्वाद संवेदन – जीभ

इससे हमें भिन्न-भिन्न स्वाद की जानकारी मिलती है। यह हमारी वाणी का नियंत्रण भी करती है। जीभ के भिन्न-भिन्न भागों से विभिन्न स्वादों की निम्न प्रकार जानकारी होती है :–

पिछला हिस्सा	–	कड़वा
मध्य भाग	–	कोई नहीं
किनारों पर पीछे की ओर	–	खट्टा
किनारो पर सामने की तरफ	–	नमकीन
सामने का भाग	–	मीठा

जीभ के ऊपर १०,००० से अधिक स्वाद-अंकुर होते हैं।

उक्त सम्बन्ध में चित्र २.११ तथा २.१२ का अवलोकन करिए।

(ग) घ्राण–संवेदन – नाक

नाक हमारी श्वास क्रिया में सहायता करती हैं। नाक के नासिका कोटर में स्थित घ्राण प्रदेश हमें गंध की जानकारी देते हैं। नाक की संरचना चित्र २.१३ में दर्शायी गयी है।

(घ) दृष्टि संवेदन – आँख Vision – Eyes

यह हमारे शरीर में स्थित रंगीन कैमरा व प्रोजैक्टर हैं। आँखों के सभी भीतरी भाग एक साथ काम करते हैं। आँख की पुतली से प्रकाश भीतर प्रवेश करता है, तथा पुतलियाँ ही इसका नियमन करती हैं। अँधेरे में पुतलियाँ चौड़ी हो जाती हैं, ताकि प्रकाश भीतर आ सके। यह चौड़ाई एक से आठ मिलीमीटर तक बदलती रहती है, जो कि प्रकाश तीव्रता पर निर्भर करती है। उजाले में पुतलियों का संकोचन

होता है। पुतलियों के स्नायु फ़ोकस (Focus) का काम करते हैं। दृष्टिपटल (Retina) आँख का भीतरी पटल है जिसमें एक करोड़ दह: लाख कोशिकायें (Cells) होते हैं। उसके साथ अनेक ज्ञान-तंतु जुड़े होते हैं। जब उस पर प्रकाश पड़ता है, तब उसके भीतर सूक्ष्म-दंडाकृति (Rods) तथा शंखु-आकृति (Conical) कोष द्वारा उसका संचालन होता है। शंकु (cones) रंग पहचानता है, जब कि दण्ड (rods) हमें अंधेरे में देखने में मदद करते हैं।

दृष्टि चेता (optic nerve) द्वारा आँख को मस्तिष्क से चेतना मिलती है। तथा यही दृष्टि चेता जो किसी पदार्थ की उल्टी छवि (image) रैटीना पर बनती है, उसको ज्यों का त्यों मस्तिष्क तक पहुँचा देती है। मस्तिष्क उसका विश्लेषण करते समय उसको सीधी छवि करके ही करता है। जागृत अवस्था में आँखें एक मिनट में १५ से अधिक बार झपकती हैं।

आँखों में एक आँसू निकलने की नलिका (duct) होती है। यह आँसू जिनमें Lysozyme chemical (लाइसोज़ाइम) होता है, उससे बैक्टीरिया मरते हैं तथा आँखों को साफ, नम तथा रोगमुक्त रखता है।

नेत्रों की संरचना के लिए चित्र २.१४ का अवलोकन करिए।

(ड़) श्रवण – संवेदन Hearing – Ears

आवाज के कारण वायु का स्पन्दन (vibration) होता है। इन स्पन्दनों के कारण हलन-चलन की प्रक्रिया बाह्य श्रोत्रेन्द्रय से लेकर आभ्यन्तर श्रोत्रेन्द्रिय तक चलती है।

मध्य कर्ण के अन्तर्गत तीन छोटी-छोटी हड्डियाँ होती है : hammer (malleus), anvil (incus) और stirrup (stapes) । मध्य कर्ण पटल (ear drum) के अन्तर्गत एक Eustachian tube द्वारा वायु का दबाव नियन्त्रित होता है, जो मध्य कर्ण का गले से सम्बन्ध (link) बनाती है। श्रवण नलिका की लम्बाई ३.५ से ४ सैंटीमीटर तक होती हैं। अन्दरूनी कान अथवा आभ्यान्तर कर्णेन्द्रिय (the labyrinth) में आवाज को पहचानने वाले cochlea (श्रवण तंत्रिका) और तीन

अर्ध-गोलाकार गुहा (semi-circular canals) होते हैं। यहाँ बालों के कक्ष (hair cells) मस्तिष्क को विद्युत तरङ्गे (electric impulses) विश्लेषण हेतु भेजते हैं, जिससे आनी वाली आवाज समझ ली जाती है।

मनुष्य १५०० से अधिक सङ्गतीय ध्वनियों को पहचान सकता है। आवाज ० से १४० डैसीबैल्स (decibels) के बीच के अन्दर सुन सकता है।

कान की संरचना के लिए चित्र २.१५ का अवलोकन करिए।

अध्याय — ८

रुधिराभिसरण तंत्र — Blood Circulatory System

(क) रुधिर — Blood

शरीर के सभी अंङ्गों एवम् कोषों को रुधिर की सप्लाई (Supply) आवश्यक होती है, हड्डियों को भी । रक्त प्लास्मा (Plasma) का बना होता है, जो एक पानी जैसा द्रव होता है। इस प्लास्मा में अनगिनत लाल रक्त कण (Erythrocytes) अथवा लाल रक्त कौर्प्यूसिल्स (RBC - Red Blood Corpuscles), सफेद रक्त कण (Leucocytes) अथवा सफेद रक्त कौर्प्यूसिल्स (WBC – White Blood Corpuscles), रक्त प्लेटलैट्स (Blood Platelets or Thrombocytes) होते हैं। इसके अतिरिक्त प्लास्मा में विभिन्न नमक, हार्मोन्स (harmones), वसा (fats), शर्करा (Sugar) और प्रोटीन (Protein) भी होते हैं। लाल व श्वेत कण तथा प्लेटलैट्स सभी हड्डियों (विशेषकर लम्बी हड्डियों) के अन्दर हड्डी के गूदे (अथवा अस्थि–मज्जा) (Bone -marrow) जो जैली (Jelly) जैसा पदार्थ होता है, में बनते हैं। लाल रक्त कण लगभग ६० प्रतिशत होते हैं। श्वेत कण प्रतिदिन लगभग १० अरब बनते हैं।

RBC, में एक pigmented protein Haemoglobin होता है जो globin protein तथा iron pigment (haeme) से बना होता है। RBC के यह pigment ऑक्सीजन वाहक का काम करते हैं। ये फैफड़ों में जब पहुँचते हैं तो

वहाँ से ऑक्सीजन लेकर oxyhaemoglobin के रूप में शरीर के प्रत्येक कोषों (cells) में पहुँचते हैं। उन कोषों का दूषित पदार्थ oxyhaemoglobin के सम्पर्क में आकर कार्बन डाईऑक्साइड (Carbon dioxide) बनाती है, तथा यह रक्त के कण वापस शुद्धीकरण हेतु फैफड़ों में आते हैं। शरीर में यह कोष ७५ लाख करोड़ से भी अधिक होते हैं। शुद्ध लाल रक्त ले जाने वाली रक्त वाहिनी नलिकायें धमनियाँ artery (आर्टरी) कहलाती हैं और दूषित रक्त वाहिनी नसें veins (Vena cava) कहलाती हैं। सफेद रक्त कण बैक्टीरिया आदि से शरीर की रक्षा करते हैं। बैक्टीरिया आदि को घेरकर अथवा उनको नष्ट करने वाले पदार्थ बनाकर अथवा उनका प्रतिकार करके ये काम करते हैं। रक्त कणों की औसतन जिन्दगी १२० दिन होती है। मृत कणों को यकृत (Liver), प्लीहा (spleen) अथवा हड्डी के गूदे (bone-marrow) में ले जाया जाता है, जहाँ ये नष्ट किये जाते हैं। श्वेत कण Antitoxins बनाकर Toxins को निष्प्रभावी बनाते हैं। इसके अतिरिक्त यह शरीर में प्रतिकार शक्ति (Immunity) प्रत्यारोपण करते हैं, जिससे शरीर में प्रवेश करने वाले सूक्ष्म जीवाणु नष्ट होते हैं।

प्रत्येक स्वस्थ मनुष्य के रुधिर में प्रति घन मिलीमीटर में ४५ से ५० लाख रक्त कण, ५००० से ६००० सफेद रक्त कण तथा २.५ लाख प्लेटलैट्स होते हैं। शरीर में ५ से ६.५ लीटर रक्त होता है।

उक्त सम्बन्ध में चित्र २.१६ व २.१७ का अवलोकन करिये।

रक्त में समूहनिन और समूहजन पदार्थों के आधार पर रचना होती है। अलग अलग लोगों में इनकी मात्रायें अलग-अलग होती है और इसके आधार पर रक्त के चार Blood groups किये गये हैं – O, A, B, AB. चित्र २.१६ में तीर के चिन्हों से यह दर्शाया गया है कि किन व्यक्तियों को ब्लड ग्रुप के आधार पर किन व्यक्तियों द्वारा रक्त प्रत्यारोपण (Blood transfusion) किया जा सकता है।

रक्त कण ले जाने वाली Artery मोटी, लचीली परतों की होती है क्योंकि उनके अन्दर से दबाव (Pressure) में रक्त बहता है, जबकि अशुद्ध रक्त लाने वाली Veins पतली होती है क्योंकि उनके अन्दर रक्त का दबाव कम होता है। जो बड़ी Veins होती है, उनमें रक्त को वापस जाने से रोकने के

वाल्व (Valves) होते हैं, जैसा कि चित्र २.१८ में दर्शाया है। रक्त जब गुर्दो (kidneys) में पहुँचता है, तब छानने की प्रक्रिया में विषाक्त तथा अनुपयोगी पदार्थ मूत्र रूप में बाहर निकल जाता है। रक्त परिभ्रमण चक्र चित्र २.२० में दर्शाया गया है।

फैंफड़ों में ऑक्सीजन प्राप्त होने से रक्त शुद्ध हो जाता है। यदि फैंफड़े ठीक तौर पर काम न करें, तो रक्त में स्थित कार्बन व विजातीय द्रव्यों का पूर्णतः निकास नहीं होता, फलतः गुर्दे (किडनी) को अधिक कार्य करना पड़ता है, जिससे उसकी क्षमता कम हो जाती है। तब अवशिष्ट विजातीय द्रव्य त्वचा द्वारा बाहर निकलते हैं, जिसे चर्मरोग के रूप में पहिचाना जाता है।

जब कोई कोशिका (Tissue) क्षतिग्रस्त हो जाती है, तो उसमें से कुछ रसायन (Chemicals) निकलते हैं जो रक्त प्लेटलैट्स को आकर्षित करते हैं। वे आपस में मिलकर Fibrin Web (अघुलनशील प्रोटीन का जाल) बना देते हैं। इस जाल में रक्त कण बन्द हो जाते हैं, जिससे रक्त का थक्का (Clot) बनकर, सूख जाने पर खुरंट (पपड़ी) (Scab) बन जाता है। इससे बाहर बहने वाला रक्त बन्द हो जाता है। यह प्रक्रिया चित्र २.२१ में दर्शायी गयी है।

रक्त के कार्य –

i) वाहन

क) फैफड़ों से oxyhaemoglobin के रूप में ऑक्सीजन को शरीर कोषिकाओं तक ले जाना और वहाँ से दूषित पदार्थों को फैफड़ों तक लाना।

ख) पाचक अङ्गों से मुख्य पुष्टिकारक पदार्थों को कोषिकाओं तक पहुँचाना।

ग) Metabolism के विभिन्न उत्पादनों जैसे यूरिया (Urea), यूरिक एसिड (Uric acid) इत्यादि को निष्कासन हेतु गुर्दे, फैफड़ों , त्वचा और आँतों तक पहुँचाना।

घ) हार्मोन (harmones), enzyme, खनिज पदार्थों का वाहन।

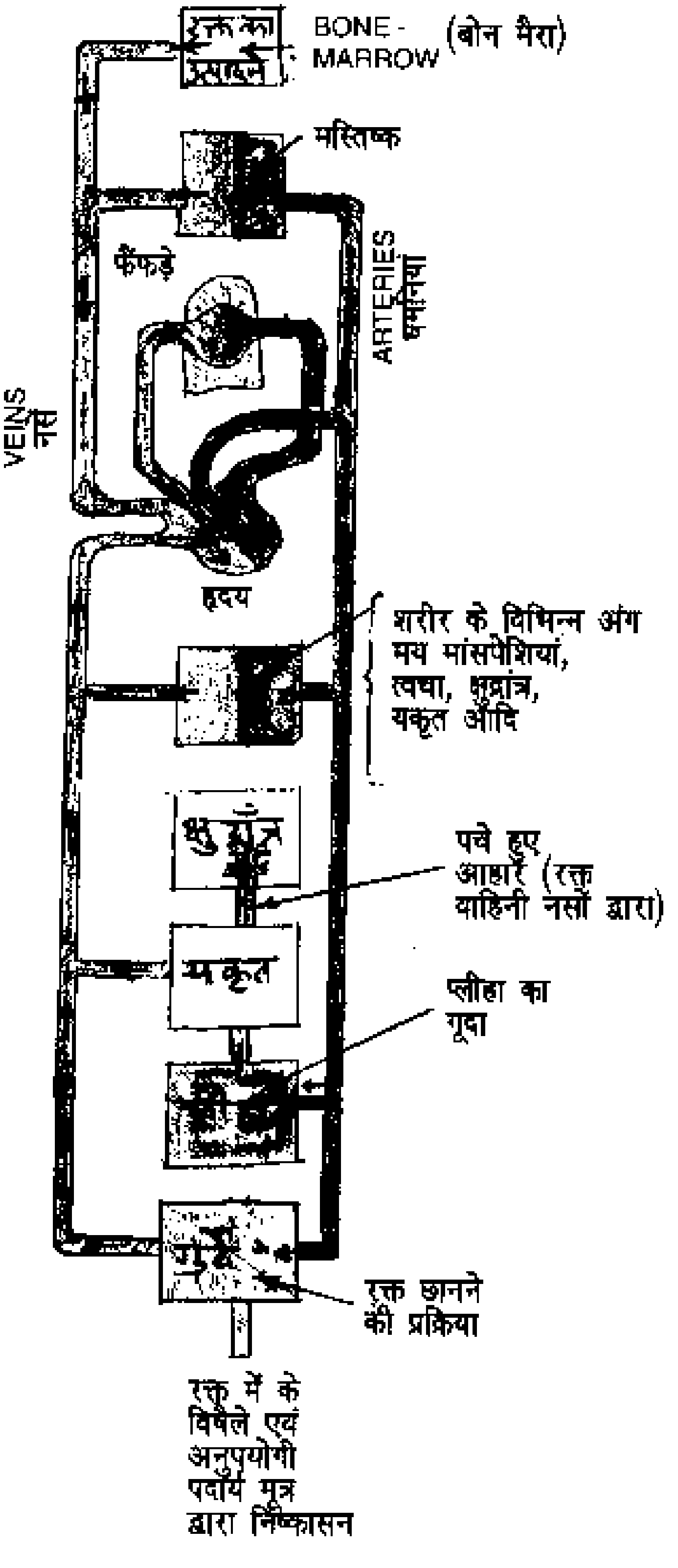

रक्त - परिभ्रमण चक्र चित्र २.२०

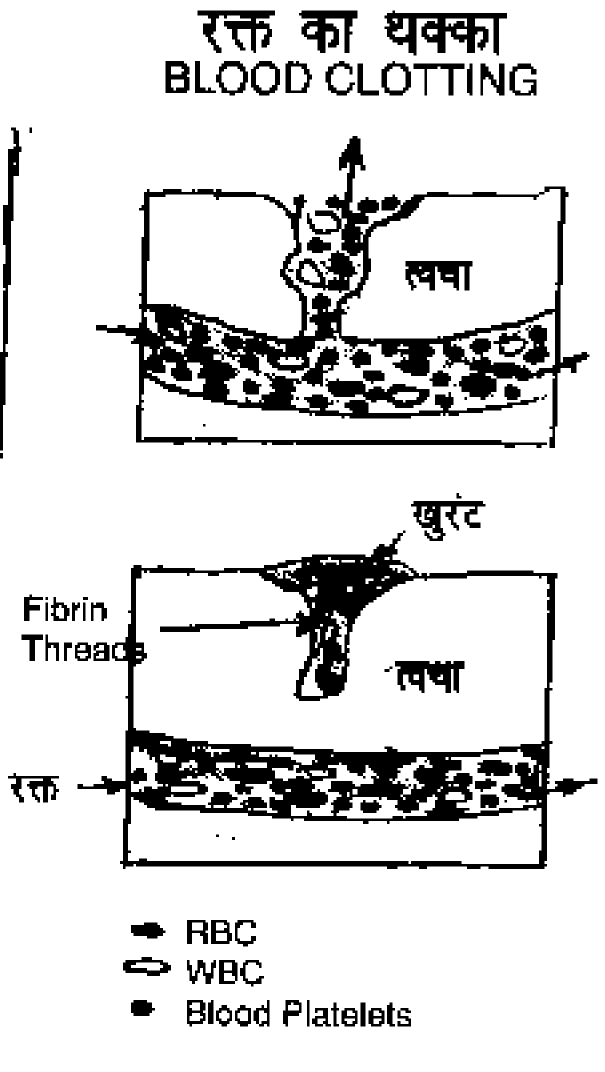

चित्र २.२१

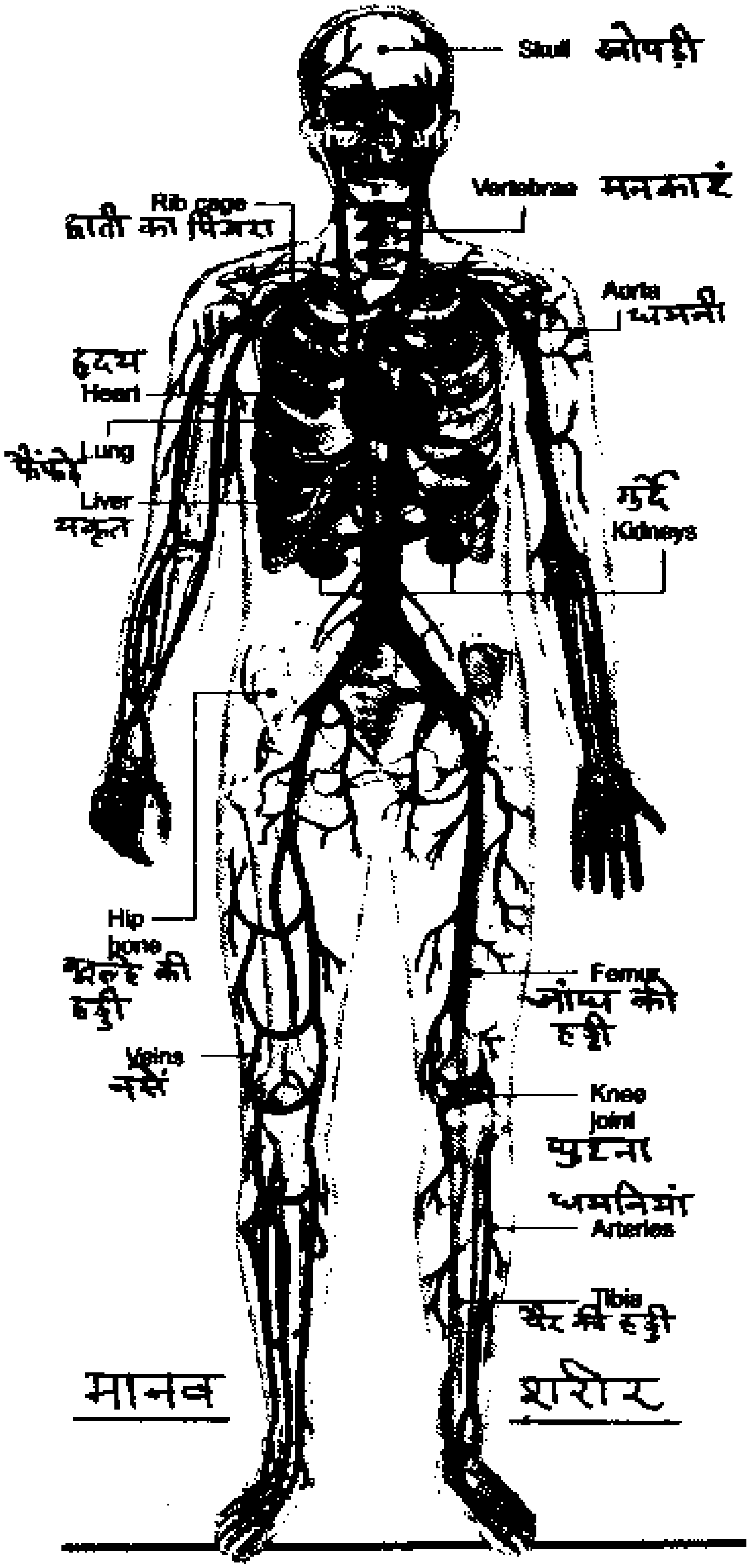

Skull खोपड़ी
Vertebrae मनकाएं
Rib cage
छाती का पिंजरा
Aorta धमनी
हृदय
Heart
Lung
फेंफड़े
Liver
यकृत
गुर्दे
Kidneys
Hip bone
कूल्हे की हड्डी
Femur
जांघ की हड्डी
Veins
नसें
Knee joint
घुटना
धमनियां
Arteries
Tibia
पैर की हड्डी
मानव शरीर

चित्र २.२२

The working of the heart

हृदय की कार्य प्रणाली

◄ The left side of the heart deals with oxygen-rich blood from the lungs; the right side with oxygen-deficient blood from elsewhere. The incoming blood fills the auricles. It is forced into the ventricles, then into the aorta or pulmonary artery. Valves ensure that the blood does not go the wrong way.

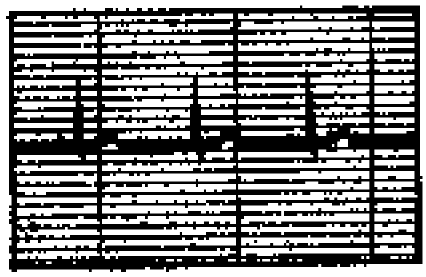

▲ Heart-beat record. The electrocardiogram (ECG) records electric impulses travelling through the heart muscle. ECG records are widely used by doctors to detect heart disease.

◄ Microscopic view of a blood capillary. The red cells carry oxygen; the white cells fight germs; the plasma carries food, wastes and hormones and the platelets help in clotting. From the capillary, oxygen and food pass to the surrounding cells. Part of the blood fluid also seeps out. This fluid, called lymph, bathes the nearby cells then drains back to the capillary or into lymph channels.

The circulation system

रक्त वाहिनी　　　　चित्र २.२३　　　　लिम्फ तंत्र

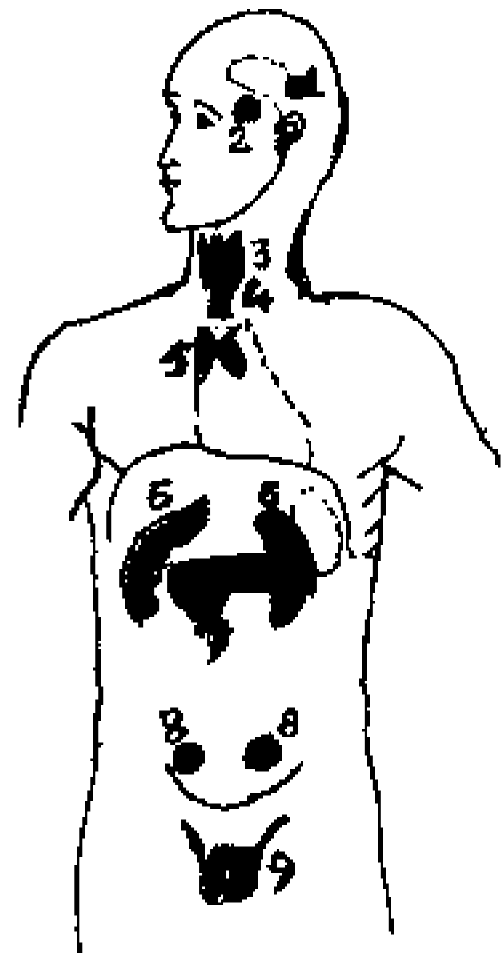

1. पिनीयल ग्रन्थि
Pineal Gland
2. पिट्यूटरी ग्रन्थि
Pituatary Gland
3. थायराइड ग्रन्थि
Thyroid Gland
4. पैराथाइराइड ग्रन्थि
Parathyroid Gland
5. थाइमस ग्रन्थि
Thymus Gland
6. अधिवृक्क ग्रन्थि
Adrenal Gland
7. पैनक्रियास
Pancreas Gland
8. अंडाशय (स्त्रियों में)
Ovary
9. अण्डकोष (पुरुषों में)
Testicles

शरीर में अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों की स्थिति चित्र २.२४

थायराइड ग्रन्थि

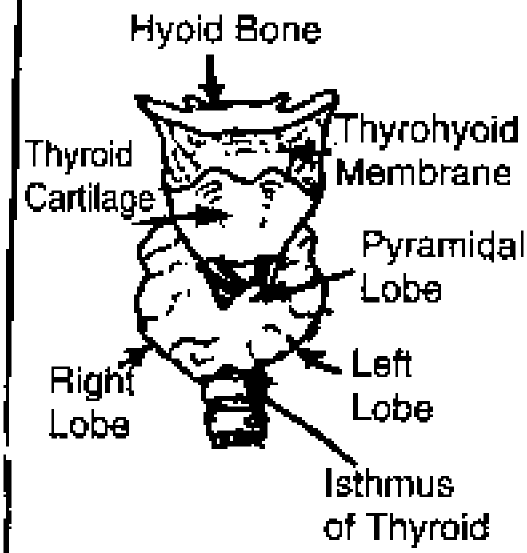

चित्र २.२५

पैराथायराइड ग्रन्थि

Back of Oesophagus

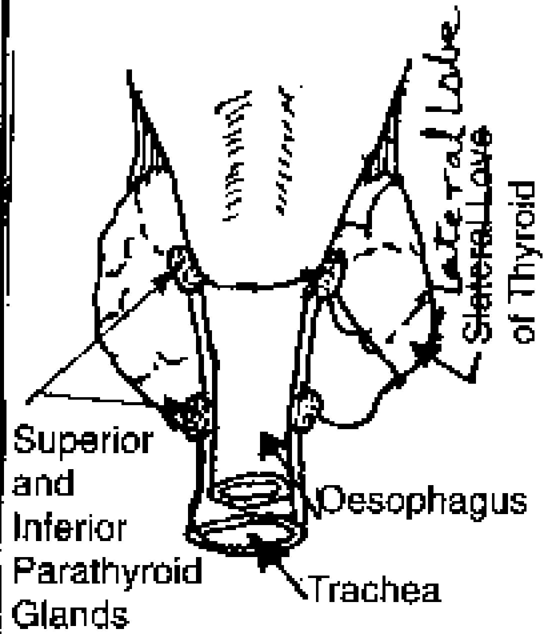

चित्र २.२६

थायमस ग्रन्थि

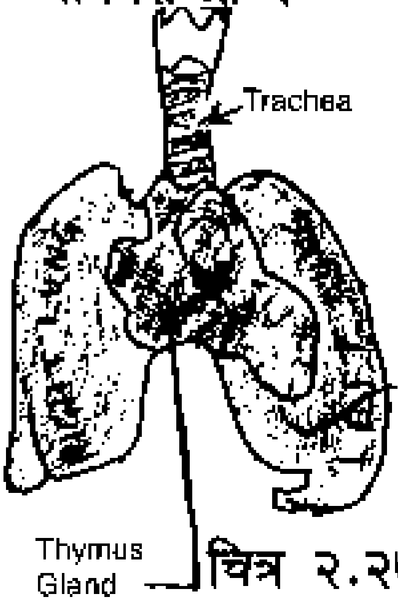

चित्र २.२७

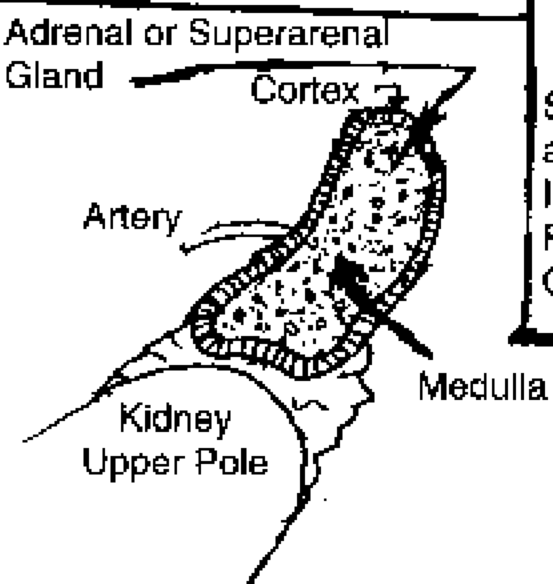

अधिवृक्क ग्रन्थि चित्र २.२८

अग्नाश्य का अन्तःस्त्रावी कार्य
PANCREAS' ENDOCRINE FUNCTION

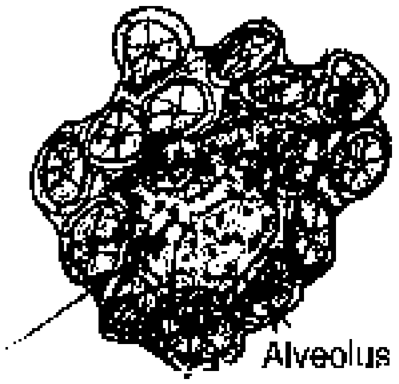

Microscopic section of Pancreas showing Isle of Langerhans surrounded by Alveoli

चित्र २.२६

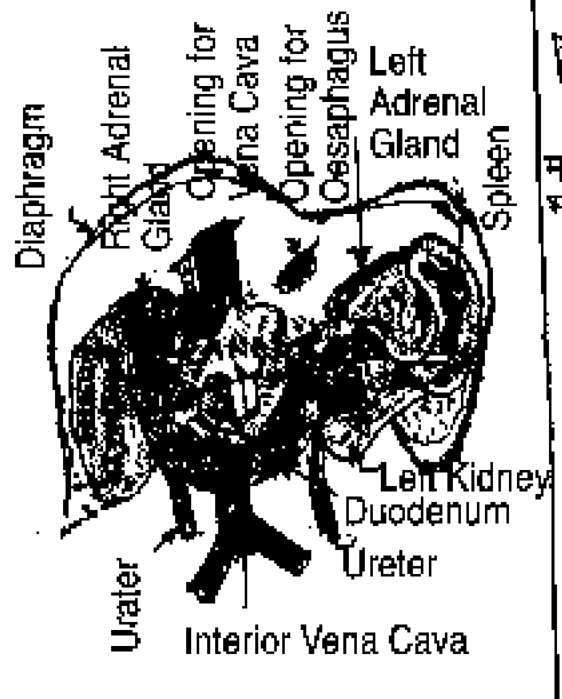

अग्नाश्य
PANCREAS

चित्र २.३०

अण्डाशय OVARY

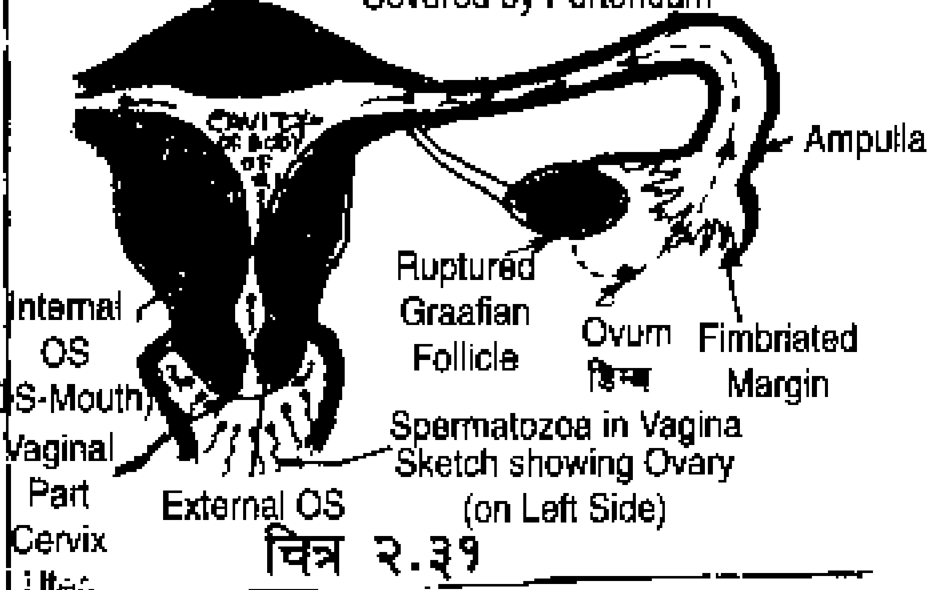

चित्र २.३१

अण्डकोष
TESTES

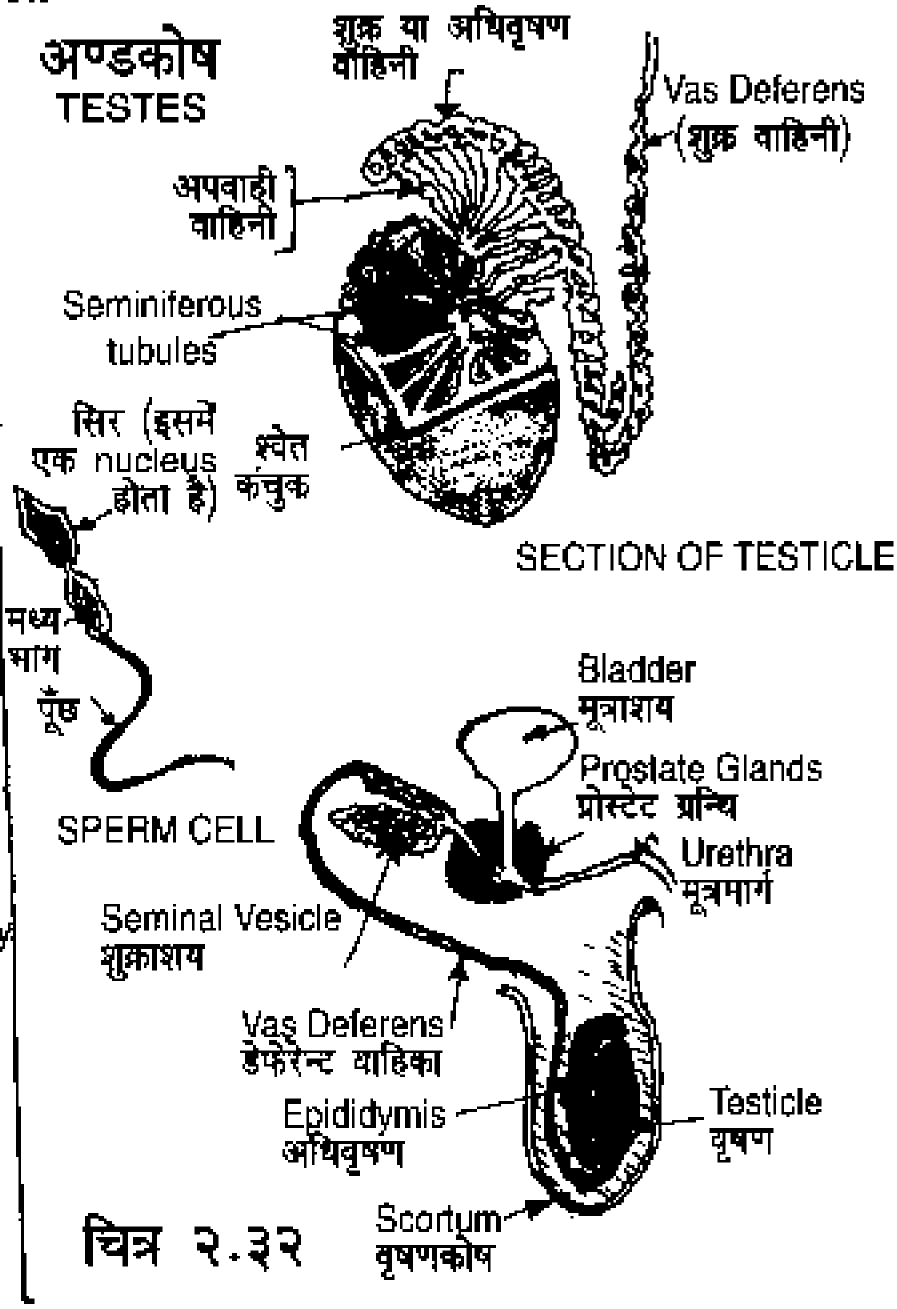

चित्र २.३२

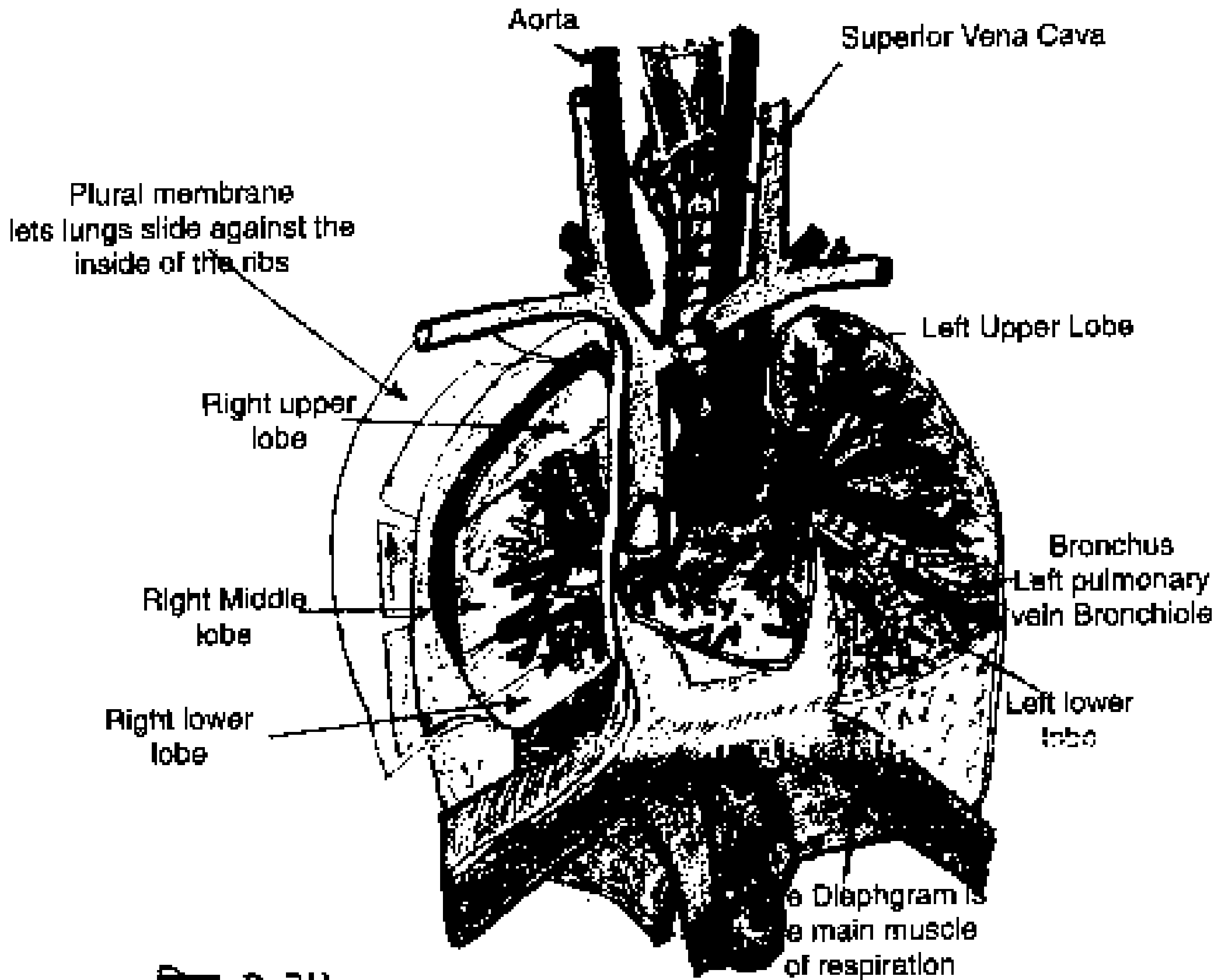

चित्र २.३४

THE LUNGS

The two lungs are shaped like cones with a wide base and a narrow top. The right lung has three lobes; however the left has only two as it is shaped to make room for the heart

फेंफड़े

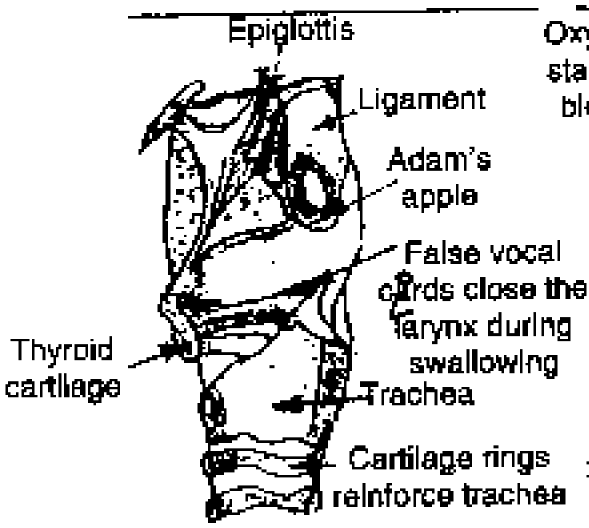

THE LARYNX

चित्र २.३३

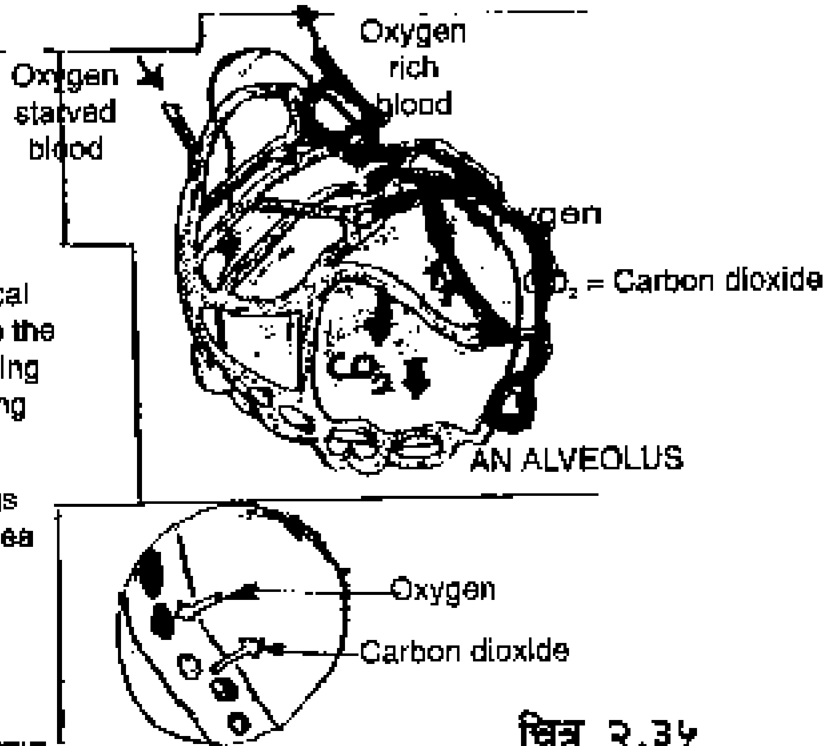

चित्र २.३५

Site of Exchange

Oxygen and Carbon dioxide pass through the thin walls of the alveoli, blood capillaries and red blood cells.

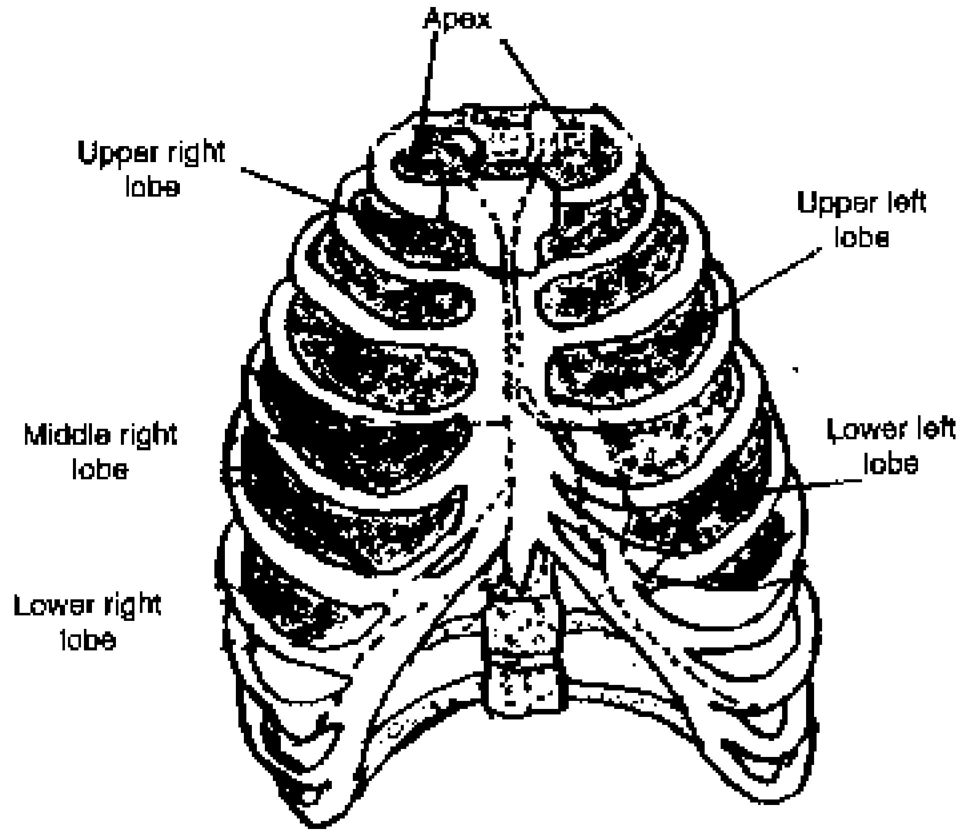

छाती के पिंजरे में फैफड़ों की स्थिति

THE POSITION OF THE LUNGS IN THE THORAX
The black lines indicate the division of lungs into lobes.
The dotted lines indicate the position of the pleura

चित्र २.३६

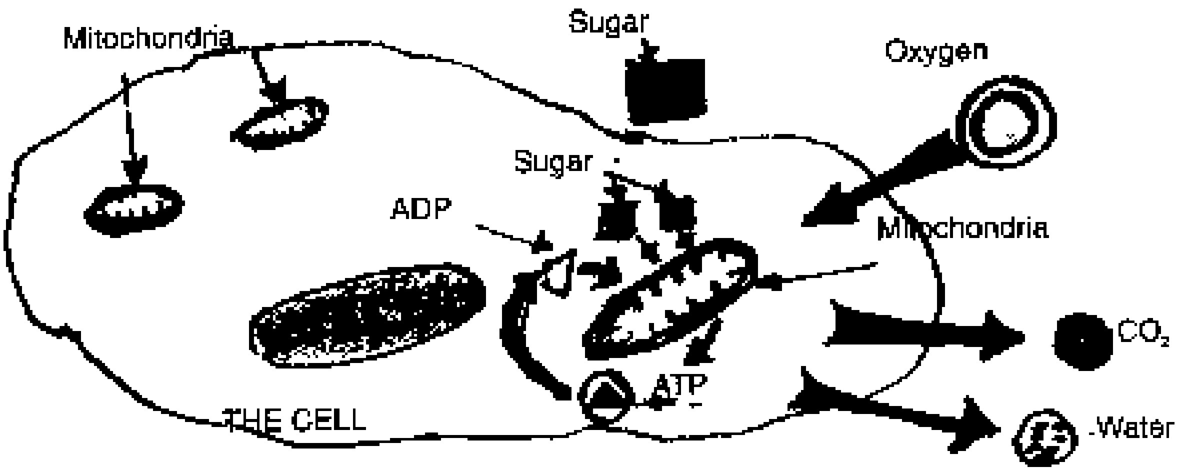

THE CELL कोशिका

चित्र २.३७

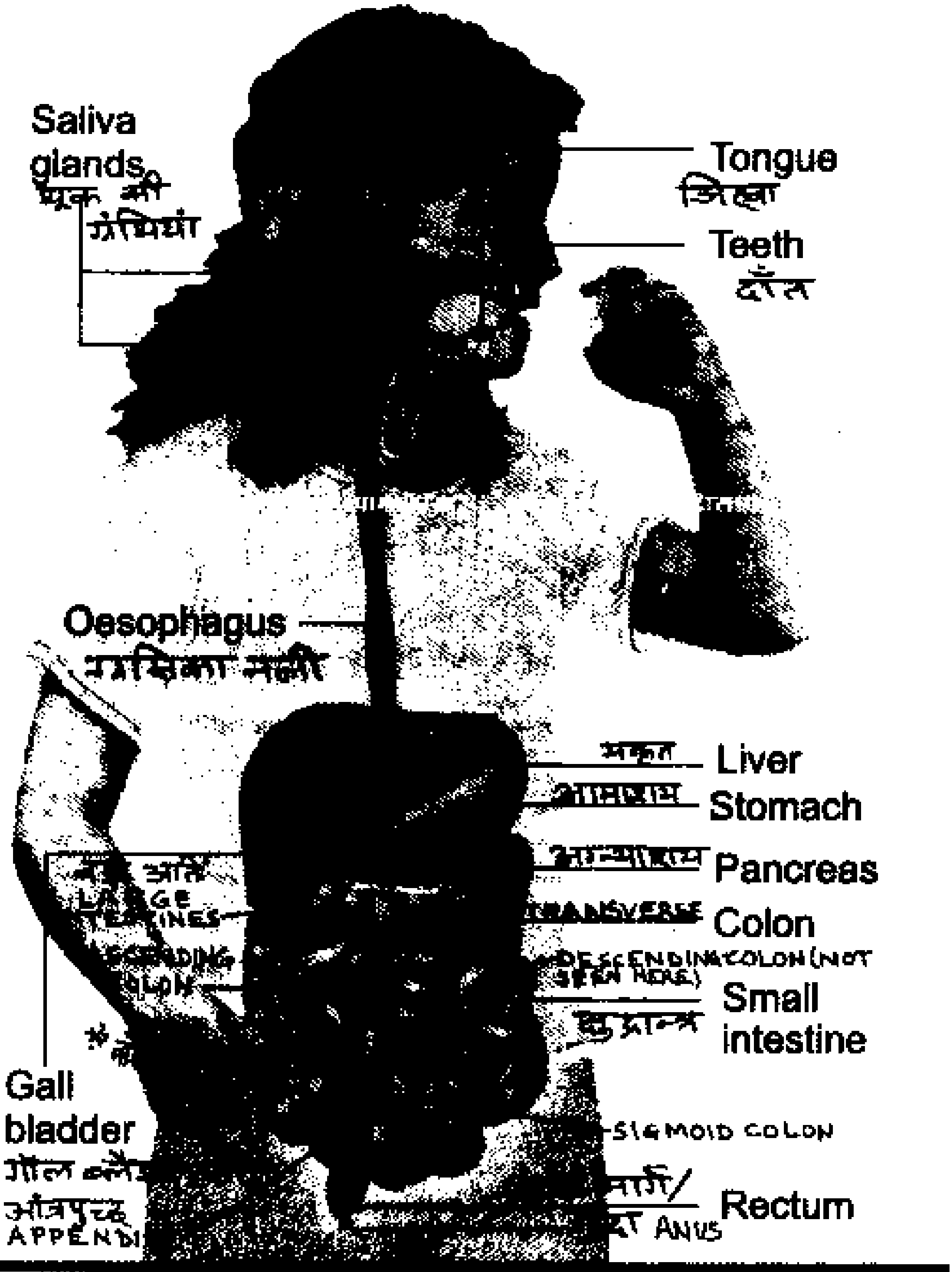

THE DIGESTIVE SYSTEM OF

THE HUMAN BODY

पाचन तंत्र

चित्र २.३८

* ILEOCOLIC OR ILEOCAECAL VALVE CONNECTING THE SMALL INTESTINES WITH THE LARGE INTESTINES.

ii) **रक्षात्मक**

क) Anti-bodies को तैयार करके उनके द्वारा बैक्टीरिया और बैक्टीरिया के उत्पादकों को नष्ट करना।

ख) विदेशी जीवाणुओं को घेरकर नष्ट करना।

ग) आवश्यक्तानुसार रक्त का थक्का बनाकर (blood clotting) द्वारा रक्त का शरीर से बाहर बहने को रोकना।

iii) **नियंत्रण**

क) शरीर के ताप के नियंत्रण में सहायता करना।

ख) थोड़े से क्षार प्रकृति के द्वारा शरीर के pH balance (शरीर में अम्ल और क्षार — Acid और alkali के बीच संतुलन) को सही रखना।

ग) Cells के जलीय भाग को घुले हुए ions तथा proteins के द्वारा नियन्त्रित रखना।

धमनियाँ एवम् नसों का जाल, जिनमें क्रमशः शुद्ध एवम् अशुद्ध रक्त प्रवाहित होता है, चित्र २.२२ में दर्शाया गया है।

(ख) हृदय — Heart (चित्र २.२३)

इसका साइज एक मुट्ठी के बराबर होता है। यह एक पोला, स्नायुयुक्त, चार खानों वाला रक्त को पम्प करने वाला अङ्ग है। इसका वजन पुरूषों में लगभग ३०० ग्राम तथा स्त्रियों में लगभग २५० ग्राम होता है। शारीरिक विश्राम की स्थिति में यह एक मिनट में लगभग ७०-७२ बार धड़कता है और इतने समय में लगभग ५ लीटर रुधिर इसमें से गुजरता है।

जब हृदय सुकड़ता है तो ऊपर के दोनों भाग right and left auricles एक साथ सुकड़ते हैं, तो अशुद्ध रक्त फैफड़ों में तथा शुद्ध रक्त पूरे शरीर में पहुँचता है। हृदय इसको बलपूर्वक धकेलता है और इसको हृदय का संकोचन (Systole) कहते हैं। जब हृदय का विकोचन (expansion or relaxation) होता है तो दायाँ ऊपर के भाग में पूरे शरीर से अशुद्ध रक्त आता है और बाँए भाग में फैफड़े से शुद्ध रक्त आता है। इसको हृदय का विकोचन (diastole) कहते हैं। इसी के आधार पर हृदय के दो प्रकार के सिस्टोलिक प्रैसर (Systolic pressure) और डायस्टोलिक प्रैसर (Diastolic

pressure) होते हैं, जो साधारणतः १२० और ८० होते हैं। यह माप पारे का मिलीमीटर के समतुल्य दबाव (millimeters of mercuric equivalent pressure) बताता है। Systolic pressure वृद्धावस्था में (६०+उम्र) हो सकता है। इस दबाव के अत्याधिक बढ़ जाने से नस फट जाती हैं और पक्षाघात (लकवा) हो सकता है। यदि मस्तिष्क में नस फट जाए, तो रक्तस्त्राव के पश्चात् रक्त का Clot (थक्का) बन जाने के द्वारा मृत्यु तक हो सकती है। Dialostic pressure सामान्यतः ६० से अधिक अथवा ७० से कम नहीं होना चाहिए। इसका अधिक होना इस बात का प्रतीक है कि हृदय को दो धड़कनों के बीच में उपयुक्त विश्राम नहीं मिल रहा है। ७० से कम होने पर sinking effect होता है, अर्थात् व्यक्ति को यह महसूस होता है कि डूबा सा जा रहा है। इस प्रैशर के ज्यादा कम होने पर मृत्यु हो जाती है।

अध्याय – ६

प्रतिरक्षात्मक तंत्र – Immune System

(क) लिम्फ सिस्टम (Lymph System)

हमारे शरीर में एक व्यवस्थित रक्षण-तंत्र भी हैं। इस तंत्र में श्वेत कण (WBC) उत्पन्न होते हैं। वे रोग–प्रतिरोधक द्रव्य उत्पन्न करके शरीर का रक्षण करते हैं।

कुछ रुधिर का द्रव्य रक्त नलियों से रिस (seep) जाता है। यह द्रव्य जो लिम्फ (Lymph) कहलाता है, आसपास के कोषिकाओं को नहलाकर वापस रक्त नलियों में आ जाता है, अथवा लिम्फ चैनलों (Lymph channels) में चला जाता है। देखिए चित्र २.२३

लिम्फ लिम्फ नोड (Lymph node) अथवा लिम्फ ग्रन्थि (Lymph gland) में इकट्ठा होता है, जहाँ वह छाना जाता है। लिम्फोसाइट्स (Lymphocytes), जो एक विशेष प्रकार के श्वेत रक्त के कण (cells) होते हैं, वे उत्पन्न हो जाते हैं जो विशेष तौर पर रोग– कीटाणुओं का प्रतिकार करते हैं। यह Lymphocytes अस्थि–मज्जा अथवा बोन मैरो (bone-marrow) भी बनाते हैं, तथा प्लीहा (Spleen) में यह Lymphocytes स्टोर (Store) किये जाते हैं, तथा निर्माण भी किये जाते हैं।

(ख) प्लीहा – Spleen

शरीर के बाएं अङ्ग में नवीं, दसवीं व ग्यारहवीं पसली के पीछे, यह एक गहरे बैंगनी रङ्ग की ग्रन्थि है। धमनी (artery) रक्त को सीधा ही प्लीहा के अन्दर प्लीहात्मक लुगदी (pulp) में मिला देती है, फिर इसके बाद बाहर जाने वाला रक्त नसों (Veins) के द्वारा चला जाता है। प्लीहा के निम्नवत कार्य हैं :–

i) क्षतिग्रस्त रक्त के कणों को रक्त से अलग करना।

ii) यह लिम्फोसाइट्स Lymphocytes का निर्माण करता है।

iii) यह Retino-Endothelial System का हिस्सा होने के कारण, रोगों से रक्षा करता है। इस सिस्टम के अन्तर्गत कुछ ऐसे सैल्स (cells) होते हैं, जो विदेशी तत्वों व बैक्टीरिया (bacteria) को नष्ट करते हैं। ऐसे सैल्स लिम्फ ग्रन्थियों (Lymph glands), प्लीहा (spleen), यकृत (liver) और बोन मैरो (bone-marrow) में होते हैं। बोन मैरो हड्डियों की खाली जगह में नरम वसायुक्त पदार्थ होता है, जिसमें रक्त के कणों का उत्पादन होता है।

अध्याय – १०

अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ – Endocrine Glands

अन्तःस्त्रावी (आन्तरिक स्त्रावण) ग्रन्थियाँ वे ग्रन्थियाँ है जिनके द्वारा स्त्रवित हारमोन नसों के बजाय, सीधे ही रुधिर में मिल जाते हैं।

इनकी शरीर में अवस्थिति चित्र २.२४ में दर्शायी गयी है। हार्मोन (Harmone) ग्रीक भाषा के शब्द से बना है, जिसका अर्थ है – उत्तेजित करना (to excite)

अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ

क्रम सं०	ग्रन्थि का नाम	शरीर में स्थिति	कार्य	कैफियत
१	पिनीयल Pineal	मतिस्क के अन्दरूनी भाग में	Melatonin बनाता है, जिससे शरीर के लय (Body rhythms) जैसे सोने, जागने का नियमन होता है। यह मस्तिस्क– मेरुजल (अमृत) का संचालन व कामेच्छा का नियमन करता है.।	यह शंकु जैसा छोटा सा पिंड होता है। इसका अधिकतम विकास बाल्यावस्था में होता है। इसके सभी कार्य अभी अज्ञात हैं।
२	पीयूष (पिटुअट्री) Pituatary	खोपड़ी में (मध्य में)	ये निम्न हारमोन बनाता है, जिनके द्वारा सभी अन्य अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों द्वारा उत्पन्न हारमोन्स का नियंत्रण होता है:–	यह एक छोटा सा अंडकार पिंड होता है, जिसका भार ०.५ ग्राम होता है। यह सभी अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों का राजा है।
		(i)	Somatotropic (The Growth harmone)– शरीर के विकास का नियंत्रण	
		(ii)	Thyrotropic – इसके द्वारा थाइराइड ग्रन्थि (Thyroid gland) द्वारा Thyroxin के उत्पादन का नियंत्रण होता है।	
		(iii)	Adrenocorticotropic इसके द्वारा अधिवृक्क ग्रन्थियाँ (Adrenal glands) द्वारा Cortisol के उत्पादन का नियंत्रण होता है।	

		(iv)	Gonadotrophic Harmones a) Follicile--stimulating harmone -- इसके द्वारा अण्डाशय (Ovary) में Graafian Follicles के विकास का उत्तेजन (stimulation) होता है और अंड कोष में शुक्राणु के विकास का उत्तेजन होता है। b) Luteinising harmone -यह अंडाशय में Oestrogens तथा progesterone एवम् अंडकोष में testosterone का नियंत्रण करता है। c) Luteotrophin harmone - यह स्त्री के स्तन ग्रंथियों (Mammal glands) में दूध का नियंत्रण करता है। Antidiuretic harmone -यह गुर्दो द्वारा पानी के निष्कासन का नियंत्रण करता है। Oxytocic harmone –बच्चे के जन्म के समय गर्भाशय के सिकुड़न तथा स्तनों द्वारा दूध के निष्कासन का नियन्त्रण करता है।	
३	थायराइड **Thyroid** (अवटु ग्रन्थि) (चित्र २.२५)	गले के ऊपरी भाग में–ग्रीवा की अग्र सतह पर। श्वास की नली (Trachea) के	यह Thyroxine harmone बनाता है, जो शारीरिक विकास का नियंत्रण करता है। यह Calcitonin भी बनाता है, जिससे रक्त की कैल्शियम स्तर (Calcium level) कम रहती है। इन हार्मोंस में आयोडीन (Iodine) होती है।	इसका भार ३० से ६० ग्राम तक होता है।इसके ठीक प्रकार कार्य न करने से ग्रन्थि के आकार में वृद्धि हो जाती है, जिसे गलगण्ड रोग कहते हैं। इस रोग में शीघ्र थकान, मंदबुद्धि, हृदय

		दोनों ओर यह दो भागों (Lobes) में होता है, जो आपस में Thyroid (थायराइड) Tissue की Strip (Isthmus of the Thyroid) द्वारा जुडे होते हैं जो श्वास नली के सामने होते हैं।		स्पन्दन की गति में वृद्धि, चिड़चिड़ापन, भार का कम होना, हाथ में कम्पन तथा अधिक स्वंद (पसीना) आना होता है। सामान्य तौर पर इस रोग का कारण पेय जल में आयोडीन की कमी होती है, क्योंकि Thyroxine बनने के लिए आयोडीन आवश्यक है। इसके लिए iodised (आयोडाइज़्ड) नमक लेना लाभकारी रहता है।
४	पैराथायराइड Parathyroid (परावटु ग्रन्थि) (चित्र २.२६)	ये ग्रन्थि चार हिस्सों में होती हैं – थायराइड ग्रन्थि के दोनों ओर दो–दो हिस्से	यह Paratharmone बनाता है, जिससे रक्त के कैल्शियम (Calcium) का स्तर बढ़ता है। यह रक्त तथा हड्डी के कैल्शियम के स्तर का नियंत्रण करता है।	
५	थाइमस Thymus (चित्र २.२७)	श्वास नली (Trache	यह माना जाता है कि यह ग्रन्थि यौन– परिवक्वता के पूर्व लिंग–ग्रन्थियों की परिपक्वता को रोकती है। यौन	यह गुलाबी सा भूरे (Pinkish Grey) रंग का होता है।

		a) के दो भागों में बटने वाले स्थान (bifurcation) के पास, Thorax में स्थित होता है। ये दो भागों (Lobes) में होता है।	परिपक्वता के पश्चात् यह ग्रंथि सिकुड़ कर छोटी रह जाती है। यद्यपि इसका कार्य अभी स्पष्ट नहीं है, किन्तु यह समझा जाता है कि इसका कार्य प्रतिरोधात्मक शरीरों (Antibodies) के उत्पादन से सम्बन्धित है।	इस ग्रंथि का अधिकतम विकास ११ से १५ की उम्र में होता है। तब इसका भार लगभग ३५ ग्राम होता है।
६	अधिवृक्क (Adrenal or Suprarenal Glands) (चित्र २.२८)	प्रत्येक गुर्दे (Kidney) के ऊपरी pole (भाग) पर स्थित होते हैं। आगे चित्र २.२६ में भी इसकी स्थिति दर्शायी गयी है।	इसके बाह्य पीले से भाग (Cortex) में Cortisol –(hydrocortisone), aldosterone और corticosterone बनता है। इनका metabolism, विकास, गुर्दों के कार्य कलाप (renal function) और muscle tone (मांस पेशियों के समन्वय) में महत्वपूर्ण भाग हैं, जो जीवन के लिए आवश्यक हैं। अधिवृक्क ग्रंथियों के अन्दर के medullary हिस्से में Adrenaline (epinephrine) और noradrenaline (norepinephrine) उत्पन्न होते हैं। भावना जैसे क्रोध, भय की दशा में तथा घुटन और भुखमरी की दशा में noradrenaline का उत्पादन बढ़ जाता है ताकि आघात को सहने के लिए रक्तचाप के दबाव को बढाया जा सके। Adrenaline यकृत से ग्लूकोज़ का उत्पादन बढ़ाकर	आपातकालीन परिस्थितियों में Adrenaline परामानवीय शक्ति (Superhuman strength) प्रदान करता है।

			Carbohydrate metabolism (Sense of change of position or condition – शरीर की स्थिति / दशा परिर्वतन का तात्पर्य) में सहायता करती है।	
७	अग्न्याशय Pancreas (चित्र २.२९ व २.३०)	यह(i) शिरा पक्वाशय (duodenum) से लगभग घिरा होता है। (ii) मध्य भाग पेट के पीछे और (iii) पूँछ प्लीहा (Spleen) को छूता है। यह लगभग ७ इंच लम्बा होता है।	इसके दो कार्य होते हैं :– (i) बाह्य स्त्रावण – यह अग्न्याशय रस (pancreatic juice) जिसमें Enzymes और electrolytes होते हैं , अन्तःत duodenum में पहुँचता है। ये भोजन के पचाने में काम आता है। कुछ समय पश्चात्, इसके mucosa में दो हार्मोन secretion तथा pancreozymin बनते हैं जिससे अग्न्याशय रस का स्त्रवण बढ़ जाता है। (ii) अन्तःस्त्रावी कार्य (Endocrine function) – अग्न्याशय (Pancreas) के Alveoli के अन्तर्गत Epithelial cells के छोटे–छोटे ग्रुप होते हैं, जिन्हें Isle of Langerhans कहते हैं। यह इंसुलिन (Insulin) का स्त्रवण करता है, जो anti-diabetic harmone होता है। शरीर के ग्लूकोज़ और वसा को जज़्ब करने की क्षमता को यह इन्सुलिन नियंत्रण करता है। यह ग्रंथि हमारे शरीर में शर्करा पचाने का महत्वपूर्ण काम करती है। इंसुलिन तत्व रुधिर में शर्करा की मात्रा का सन्तुलन बनाकर रखता है।	

८–९	यौन ग्रंथियाँ Gonado-trophic glands	ये वे अंग हैं, जिनमें जनन कोशिकायें बनती हैं।	ये ग्रंथियाँ लिङ्ग हार्मोन्स बनाती हैं जो रुधिर में प्रवेश कर जाती हैं। ये अनेक प्रकार के कार्य करती हैं। उदहारण के तौर पर जीव की यौन परिपक्वता लिंग ग्रंथियों के विकास एवम् लिंग हार्मोन के स्त्रावण से सम्बन्धित है। यौन परिपक्वता से आशय है प्राथमिक तथा सहायक लिंग विशेषताओं के साथ प्रगट होना ; ये १२ से १८ वर्ष की आयु में होता है। ये ग्रंथियाँ शरीर की गर्मी को संतुलित रखती हैं और विरूद्ध सैक्स वाले व्यक्ति के प्रति आकर्षण करती हैं। यह अच्छा स्वास्थ्य रखने में सहायता करती हैं। यदि यह ग्रंथि ठीक प्रकार से कार्य न करें तो वासना, क्रोध, स्वार्थ भावना आदि व अन्य मनोवैज्ञानिक / मानसिक (psychological) दोष पैदा करती हैं। सन्तान होने की सम्भावना घटती है। प्रसूति के बाद या बंध्यीकरण के पश्चात् इन ग्रंथियों में गड़बड़ी होने की सम्भावना रहती है। ऐसा होने पर शरीर में चर्बी बढ़ने लगती है। शरीर को बेडौल होने से रोकने के लिए महिलाओं को गर्भावस्था में और प्रसूति के बाद इन ग्रंथियों पर उचित व नियमित उपचार लेना चाहिए। इन ग्रंथियों से हार्मोन्स रिसता है, अतः यदि ये ठीक से काम नहीं करतीं , तो मासिक धर्म बन्द (menopause) होने के समय छोटी–बड़ी तकलीफ़ें खड़ी हो जाती हैं या रोग होते हैं।कभी–कभी यौन व्यवहार में रुचि कम हो जाने पर जीवन शुष्क सा बन जाता है।	पीयूष ग्रंथि (Pituary Gland) Gonadotrophic glands के हार्मोन्स का नियंत्रण करते हैं।

८.	अंडाशय Ovary चित्र २.३१	अखरोट के शक्ल के दो ग्लैंड गर्भाशय (uterus) के दोनों ओर यूटैरीन ट्यूब (uterine or fallopian tube) के नीचे	अंडाशय में काफी तादाद में अपरिपक्व अण्डे (डिम्ब) होते हैं, जो कई nutritive follicile cells के cluster से घिरे होते हैं। प्रत्येक मासिक चक्र पर, इनमें से एक डिम्ब परिपक्व होकर एक vascular ovarian follicile(Graafian follicle) में विकसित हो जाता है । इस समय, यह अंडाशय से बाहर निकलता है और Oestrogens का स्त्रावण होता है। डिम्ब और तरल (fluid) अन्ततः uterine tube में जाते हैं। प्रत्येक २८ दिनों में एक डिम्ब पूरी तौर पर परिपक्व होकर निकलता है, लगभग चौदहवें दिन । यदि इस डिम्ब का शुक्राणु से समागम हो जाता है, तो यह गर्भ के रूप में विकसित होता है,अन्यथा यह नष्ट होकर बाहर निकल जाता है। अंडाशय के तीन कार्य होते हैं :– १. डिम्ब का निर्माण, जिसका वर्णन ऊपर दिया है। २. Oestrogens का निर्माण, यह मासिक स्त्राव का नियंत्रण करते हैं। ३. Progesterone का निर्माण, यह भी मासिक स्त्राव का नियंत्रण करते हैं। इस सम्बन्ध में (२) पीयूष ग्रंथि (Pituatary gland) के हार्मोन्स उक्त क्रम संख्या २ (iv) (a) (b) (c) के अन्तर्गत वर्णन का भी सन्दर्भ करलें। Oestrogens का स्त्रवण बचपन से ही होता है, जब तक मासिक धर्म बन्द नहीं हो जाता (menopause तक) I यह Follicular harmones कहलाते हैं। इनसे स्त्री के जननाङ्गों का विकास होता है और स्त्रियोचित शारीरिक और मानसिक गुणो (qualities) के विकास और उनके अनुरक्षण में सहायक होते हैं। Progesterone Oestrogen के कार्य के आगे बढ़ता है और मासिक धर्म को रोकता है। ये गर्भ के हार्मोन्स भी कहलाते हैं, क्योंकि ये गर्भाशय की श्लेष्मा झिल्ली में होने वाले नियतकालिक परिवर्तनों का नियंत्रण करती हैं जो सगर्भता से पूर्व होते हैं। ४०–५० वर्ष की आयु में अण्डाशयों का अन्तः स्त्रावी प्रकार्य धीरे–धीरे बन्द हो जाता है। इस समय रजोधर्म बन्द हो जाता है तथा अन्तः स्त्रावी ग्रंथियों में परिवर्तन होते हैं। इसे उमदवचंनेम ;मैनोपौजद्ध कहते हैं। इस समय तंत्रिका उत्तेज्यता में वृद्धि, सिरदर्द तथा कभी–कभी अनिद्रा आदि होते हैं।

६.	वृषण Testis यह दो होती हैं (चित्र २.३२)	यह वृषण कोष (Scortum) में Spermatic cords से suspended रहते हैं। यह पुरुष जननाङ्ग का एक अङ्ग है।	Testes में Testosterene harmone का उत्पादन होता है। यह हार्मोन पीयूष ग्रंथि (Pitutary gland) में उत्पादित Luteinising harome के नियंत्रण में होता है। Testosterene का स्त्रावण यौन परिपक्वता के समय काफ़ी बढ़ जाता है और जिसके कारण पुरुषोचित विकास होते हैं, जैसे दाढ़ी, मूँछों का उगना, आवाज का भारी होना, जननाङ्गों का बड़ा हो जाना। वृषण में Sex cells (spermatozoa या Sperm) (शुक्राणुओं) का भी निर्माण होता है, जिनका स्टोरेज अधिवृषण (Epididymus) में होता है। वहाँ से वे शुक्र वाहिनी (Vas deferens) के द्वारा शुक्राशय (Seminal vesicle) में आते हैं। स्पर्म सैल (Sperm cell) के मध्य भाग में ऊर्जा को मुक्त करने (energy release) वाली रचना (structure) होती है, जिसको mitochondria बोलते हैं। इसके द्वारा पूँछ sperm (शुक्राणु) स्त्री के जननांग में आगे बढ़ती है। यह शुक्राणु ०.०५ मिलीमीटर लम्बा होता है, इसको लगभग १० सप्ताह परिपक्व होने में लगते हैं। प्रत्येक अण्डकोष (Testicle) १,५०० शुक्राणु प्रति सैकिन्ड उत्पन्न करते हैं। ये शुक्राणु लगभग ३ मिलीमीटर प्रति घंटे की गति से तैरते हैं। अण्डकोष (Testicle) जो शरीर के बाहर लटके रहते हैं, पेट के निचले हिस्से (Abdomen) से कुछ डिगरी ठंडे रखे जाते हैं। ये शुक्राणु के उत्पादन के लिए आवश्यक होता है। इन अण्डकोषों में लगभग १००० Seminiferous tubules होते हैं जहाँ शुक्राणु का उत्पादन होता है। उनको विशेष कोषों द्वारा पोषण (nourishment) मिलता है, तब वे परिपक्वता के लिए epididymis में जाते हैं, जहाँ उनका स्टोरेज (Storage) होता है जब तक उनकी आवश्यकता नहीं पड़ती।

इन उपरोक्त अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के अतिरिक्त शरीर के कुछ अन्य अङ्ग भी हार्मोन्स उत्पन्न करते हैं। उनका विवरण निम्न प्रकार है :—

मस्तिष्क में	–	Hypothalamus –इसके द्वारा उत्पादित हारमोन्स अन्य ग्रन्थियों को उनके अपने हार्मोंन उत्पन्न करने की प्रक्रिया को उत्तेजित करते हैं।
ह्रदय (Heart) –		यह Atriopeptin नामक हार्मोन उत्पादन करता है, जिससे रक्तचाप और fluid का संतुलन (balance) बनाने में सहायता मिलती है।
गुर्दे (Kidney) –		यह Erythropoietin बनाता है जो अस्थि-मज्जा (bone marrow) पर प्रक्रिया करके,लाल रक्त कोण अधिक उत्पादित करता है।
आमाशय (Stomach)	–	यह वह हार्मोन बनाते है, जिनसे भोजन के पाचन में सहायता तथा (intestines) आँतें मिलती है।

अध्याय – ११

श्वसन तंत्र – Respiratory System

शरीर के पोषण के लिए जिस प्रकार आहार की जरूरत होती है, उसी प्रकार शक्ति प्राप्त करने के लिए और किसी काम को करने के लिए प्राणवायु अथवा ऑक्सीजन (Oxygen) की जरूरत होती है। यह ऑक्सीजन कोषों से विजातीय पदार्थ निकलने में सहायक होती है। जब हम साँस लेते हैं, तो हवा नाक में प्रवेश करती है। वहाँ रजकणों को छाना जाता है एवम् हवा को नमीयुक्त व कुछ गर्म किया जाता है। देखिए चित्र २.१३ । नथुने के बाल हवा को छानते हैं, ततपश्चात् वायु श्लेष्मा (mucus) के सम्पर्क में आती है, जिससे वायु में उपस्थित रासायनिक वस्तुएं वायु से अलग हो जाते हैं।

वायु जब कण्ठ में जाती है (चित्र २.३३) तो Larynx के मध्य हिस्से में False vocal cords जो कि एक फ्लैप (flap) है, में से होकर जाती है। यह खाना निगलते समय बन्द हो जाता है, ताकि खाना श्वास की नली (Trachea) में न चला जाये।

Vocal cords Larynx के अन्दर अवस्थित होते हैं। अन्दर स्थित arytenoid cartilages के movements द्वारा स्वर उत्पन्न होता है जो कि Vocal cords के कम्पन (Vibration) द्वारा होता है।

तत्पश्चात् वायु मुख्य श्वासनली Trachea में आती है जो लगभग ४ इंच लम्बा वायु का पाइप होता है। फिर वायु Trachea के द्वारा फैंफड़ों में प्रविष्ट होती है (चित्र २.३४), जहा Trachea दो भागों में विभक्त हो जाती है। इस Trachea में भी Mucous membrane होते हैं जो ciliated epithelium और goblet cells के बने होते हैं। इसके द्वारा भी वायु से धूल व विजातीय पदार्थ अलग किये जाते हैं। Trachea के दो भाग Bronchi कहलाते हैं, ये फैंफड़े के जड़ तक जाते हैं और उनके शाखाओं में बँट जाते हैं।

दाँया फैंफडा तीन भागों (Lobes) – ऊपरी, मध्य व निचला Lobe में बँटा होता है। बाँया फैंफड़ा केवल दो भागों (Lobes) – ऊपरी व निचला भागों में बँटा होता है, क्योंकि कुछ स्थान ह्रदय को अवस्थित करने के लिए आवश्यक होता है। ये दोनों फैंफड़े एक शंकु की शक्ल के होते हैं।

प्रत्येक Bronchi अनेक छोटे–छोटे भागों में विभक्त हो जाती है जो Bronchioles कहलाते हैं। ये Bronchioles (फुफ्फसपालिका) छोटे-छोटे वायु के Space जो Alveoli (फुफ्फस कूपिका) कहलाते हैं, उनके समूह (Cluster) से सम्बद्ध होते हैं। इन Alveoli को Air sac भी कहते हैं जो अति सूक्ष्म (Microscopic) होते हैं। इनकी बहुत पतली झिल्ली होती है। यह Allveoli रक्त की तंग नलियों (Capillaries) से चारों ओर घिरी रहती हैं। देखिये चित्र संख्या २.४०। यहाँ ऑक्सीजन का दबाव १००–११० मिलीमीटर पारा (Mercury) समतुल्य होता है, बाहर शिरा रुधिर में ४० मि० मी० दाब होता है, इस कारण वायु की ऑक्सीजन (Oxygen) बाहर निकल कर रक्त के साथ मिलकर, उसके (रक्त के) लाल कोणों में विद्यमान Pigmented Protein Haemoglobin, Oxyhaemoglobin बन जाते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड का दाब रुधिर में ४७ मि० मी० और वायु कूपिका में ४० मि०मी० होता है, इस कारण कार्बन डाइआक्साइड बाहर आ जाती है। इस प्रकार अशुद्ध रक्त का शुद्धीकरण पूर्ण होकर शुद्ध रक्त शरीर की कोशिकाओं को जाता है। यह श्वसन प्रक्रिया बाह्य श्वसन (external respiration) कहलाती है। इसको Pulmonary respiration (फैंफड़ों का श्वसन) भी कहते हैं।

दोनों फैंफड़े एक छाती के पिंजरे (Thoracic Cage) के अन्दर अवस्थित होते हैं, जो इनके बाह्य आघात (Shock) आदि से रक्षा करता है। देखिये चित्र २.३६।

प्रत्येक फैफड़ा एक दोहरे Serous membrane जो Pleura कहलाता है, से बँधा होता है।

वयस्क व्यक्ति के फैंफड़ों की क्षमता लगभग ३–४ लीटर वायु होती है। वायु की मात्रा जो श्वास द्वारा ली जाती है, लगभग ६ लीटर प्रति मिनट होती है। फैंफड़ों में ३० करोड़ से अधिक Alveoli होते हैं। फैंफड़ों के अन्दर समस्त वायु मार्गों की लम्बाई लगभग २,४०० किलोमीटर होती है। प्रत्येक फैंफड़े के सतह का क्षेत्रफल लगभग १८० वर्ग मीटर होता है। एक श्वास में मात्र ५०० मिली लीटर वायु ही ली जाती है। Inspired (atmospheric) तथा निष्काषित वायु (Expired Air) का Composition (विश्लेषण) निम्न प्रकार होता है :

	Inspired (वायुमण्डल) की Air	Expired (निष्काषित) Air
नाइट्रोजन	७६ प्रतिशत	७६ प्रतिशत
ऑक्सीजन	२० प्रतिशत	१६ प्रतिशत
कार्बन डाईऑक्साइड	०.०४ प्रतिशत	४.०४ प्रतिशत
वायु का ताप	वातावरण के बराबर	शरीर के ताप के बराबर (शरीर की गर्मी का २० प्रतिशत निष्काषित वायु को गरम करने में खर्च हो जाती है ।)
वायु की नमी (humidity)	वातावरण के बराबर	पानी की वाष्प से भरपूर (saturated)

श्वसन की गति अलग–अलग व्यक्ति में अलग–अलग होती है । साधारणतः १० से २० प्रति मिनट होती है।

आन्तरिक श्वसन – Internal Respiration

शरीर के प्रत्येक कोशिका (Cell) में अनेक "पावर हाउस" अथवा Mitochondria और दो रसायन (Chemicals) ADP और ATP नाम के होते है, जो चार्ज की हुई बैटरियों (charged batteries) की तरह काम करते हैं। देखिये चित्र २.३७। शुगर (Sugar) को कोष (Cell) के मुख्य भाग में तोड़ दिया जाता है, फिर वह

mitochondria में चला जाता है। वहाँ पर इसकी ऊर्जा ADP को charged ATP में परिवर्तित करने के काम आती है। इस प्रक्रिया में ऑक्सीजन काम आ जाती है और कार्बन डाईआक्साइड और पानी के पदार्थों के तौर पर रह जाते हैं। Charged ATP, कोष (Cell) के घेरे हुए भाग (surrounding part) को ऊर्जा सप्लाई करती है। तब जब उसकी ऊर्जा का इस्तेमाल हो जाता है, तो वह वापस ADP में परिवर्तित हो जाता है और mitochondria में रीचार्जिंग (recharging) के लिए वापस लौट आता है। कार्बन डाईआक्साइड और पानी रुधिर के साथ मिल जाता है और शुद्धीकरण के लिए फैंफड़ों में चला जाता है। उपरोक्त वर्णित ऑक्सीजन फैंफड़ों से आये हुए शुद्ध रक्त (जिसमें haemoglobin को Oxygen के saturation द्वारा Oxy-haemoglobin का रूप लिया हुआ है) द्वारा प्राप्त होता है।

उपरोक्त प्रक्रिया आन्तरिक श्वसन कहलाती है, तथा इसके द्वारा कोशिकाएं ऊर्जा छोड़ते हैं ।

अध्याय – १२

पाचन तंत्र– Digestive System

पाचन तंत्र चित्र २.३८ में दिग्दर्शित है। Alimentary Canal (एलीमेन्ट्री कैनाल) में मुँह, Pharynx,* ग्रसिका नली, उदर, पक्वाशय, छोटी और बड़ी आँतें होते हैं। Alimenatary Canal मुख से लेकर गुदा तक के समस्त मार्ग को कहते हैं। इसमें ओठों (lips) से लेकर ग्रसिका नली (Oesophagus) तक श्लेषात्मक झिल्लियाँ (Mucous membrane) होते हैं, जो कि Stratified epithelium होते हैं। आमाशय से शेष भाग में columnar cells होते हैं। पाचन की प्रक्रियाओं में भोजन ऐसे सरल पदार्थों में बदल जाते हैं जिन्हें शरीर के टिशू (body tissues) के cells (कोशिकाएं) अवशोषण कर लेते हैं। यह परिवर्तन विभिन्न पाचक द्रवों में विद्यमान फर्मेंट

* मांसपेशियों और श्लेषात्मक झिल्ली से घिरा हुआ एक ऐसा गड्ढा जो नाक और मुँह के पीछे होता है और उन्हें ग्रसिका नली (Oesophagus) से मिलाता है।

(ferments) या एन्ज़ाइम्स (enzymes) द्वारा होते हैं। एन्ज़ाइम एक रासायनिक पदार्थ होता है जो दूसरे पदार्थों के रासायनिक तत्वों में बगैर स्वयं के परिवर्तित हुए, परिवर्तन लाता है। विभिन्न प्रकार के enzymes (एन्ज़ाइम) की स्वास्थ्यप्रद क्रिया खनिज–नमक (Mineral salts) के उपस्थिति पर और सही अम्लता या क्षारता पर निर्भर करता है। इसे आगे पढ़ने से पहलें संलग्न परिशिष्ट, जिसमें भोजन का विभागीकरण दिया है, देखिये।

पाचन तंत्र निम्न विभागों में विभाजित होता है :

१ मुख – Mouth

चित्र २.३६ व २.४० का अवलोकन करिए। मुख में दाँतो द्वारा भोजन चबाया जाता है। दाँत के ऊपरी सतह में इनैमिल (enamel) होता है। जीभ के नीचे, गर्दन और गले के पीछे के हिस्से में थूक अथवा लार ग्रन्थियां (Saliva glands) होती हैं। इनसे भोजन चबाते समय लार निकलकर भोजन में मिलती है। लार में कुछ अंश ठोस म्यूकिन (mucin) तथा Ptyalin (स्टार्च starch को विभाजित करने वाला ferment) का होता है। यह पानी जैसा क्षारीय द्रव होता है। लार ग्रन्थियां लगभग एक लीटर प्रतिदिन लार उत्पन्न करती हैं। लार निम्न कार्य करता है :

(क) भोजन में कुछ कीटाणुओं को मारता है।

(ख) इसमें एन्ज़ाइम (enzyme) होता है, जिससे भोजन के पाचन की क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

(ग) यह चिकना करने वाले पदार्थ (Lubricant) का काम करता है, जिससे खाना निगलने में सहायता मिलती है।

(घ) इससे भोजन का स्वाद चखने में सहायता मिलती है।

(ङ) इससे भोजन मुलायम और जाली जैसा (Meshy) पदार्थ बनता है, जो पचने के लिए आसान बनता है। यह Bolus (बोलस) कहलाता है। हमारे प्रतिदिन लगभग एक लीटर लार निकलती है।

मुख में स्थित टौन्सिल भोजन में स्थित बैक्टीरिया को मारते हैं। दोनों टौंसिलों के मध्य में ऊपर से शंकु आकार का कौआ (Uvula) होता है।

इसको अधिजिह्वा भी कहते हैं। यह खाना खाते समय नासिका गुहा (Nasal cavity) को बन्द कर सकती है, ताकि खाना नाक में न चला जाये।

२. **ग्रसिका नली – (Oesaphagus)**

भोजन मुख के पश्चात् ग्रसिका नली में जाता है जो लगभग २५ सैंटीमीटर लम्बी और २.५ सैंटीमीटर व्यास की नली होती है। इसकी दीवाल में mucus (एक गाढ़ा, फिसलेवाला तरल पदार्थ) होता है। इससे भोजन आमाशय (Stomach) तक आसानी से पहुँच जाता है। भोजन को श्वास नली (Trachea) में जाने से रोकने के लिए Epiglottis नामक टिश्यू (Tissue) का फ्लैप (Flap) (देखिये चित्र २.३३) श्वास नली को ढ़क देता है।

३. **आमाशय (जठर) – Stomach**

भोजन ग्रसिका से आमाशय में जाता है। आमाशय की भोजन तथा पेय पदार्थ की सम्मिलित रूप से क्षमता लगभग १.५ लीटर होती है। इसमें स्थित ग्रंथियाँ गैस्ट्रिक जूस (Gastric Juice) स्त्रवण करती हैं। यह रंगहीन द्रव होता है, जिसमें ०.४ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक एसिड (hydrochloride acid) होता है, जिससे समस्त भोजन अम्लीय हो जाता है। यह antiseptic और disinfectant का कार्य करता है, भोजन में अनेक कीटाणुओं को नष्ट करता है और भेजन के पाचन का एक medium (आधार) बनता है। इसमें निम्न digestive enzymes विद्यमान रहते हैं :

(क) Pepsin — यह प्रोटीन पर प्रभाव करता है और उसको अधिक घुलनशील Peptones में परिवर्तित करता है।

(ख) Rennin — यह दूध को दही में परिर्वतन करने वाला ferment होता है, जो Caseinogen से Casein बनाता है। Casein दूध की प्रोटीन होती है, तब इस पर Pepsin act करता है।

(ग) Gastric lipase — यह Fat को spilt करने वाला ferment होता है।

उपरोक्त Gastric Juice का स्त्रवण भोजन के देखने तथा सूंघते ही प्रारम्भ हो जाता है, फिर खाना खाने से यह बढ़ जाता है। आमाशय में भोजन आने से आमाशय

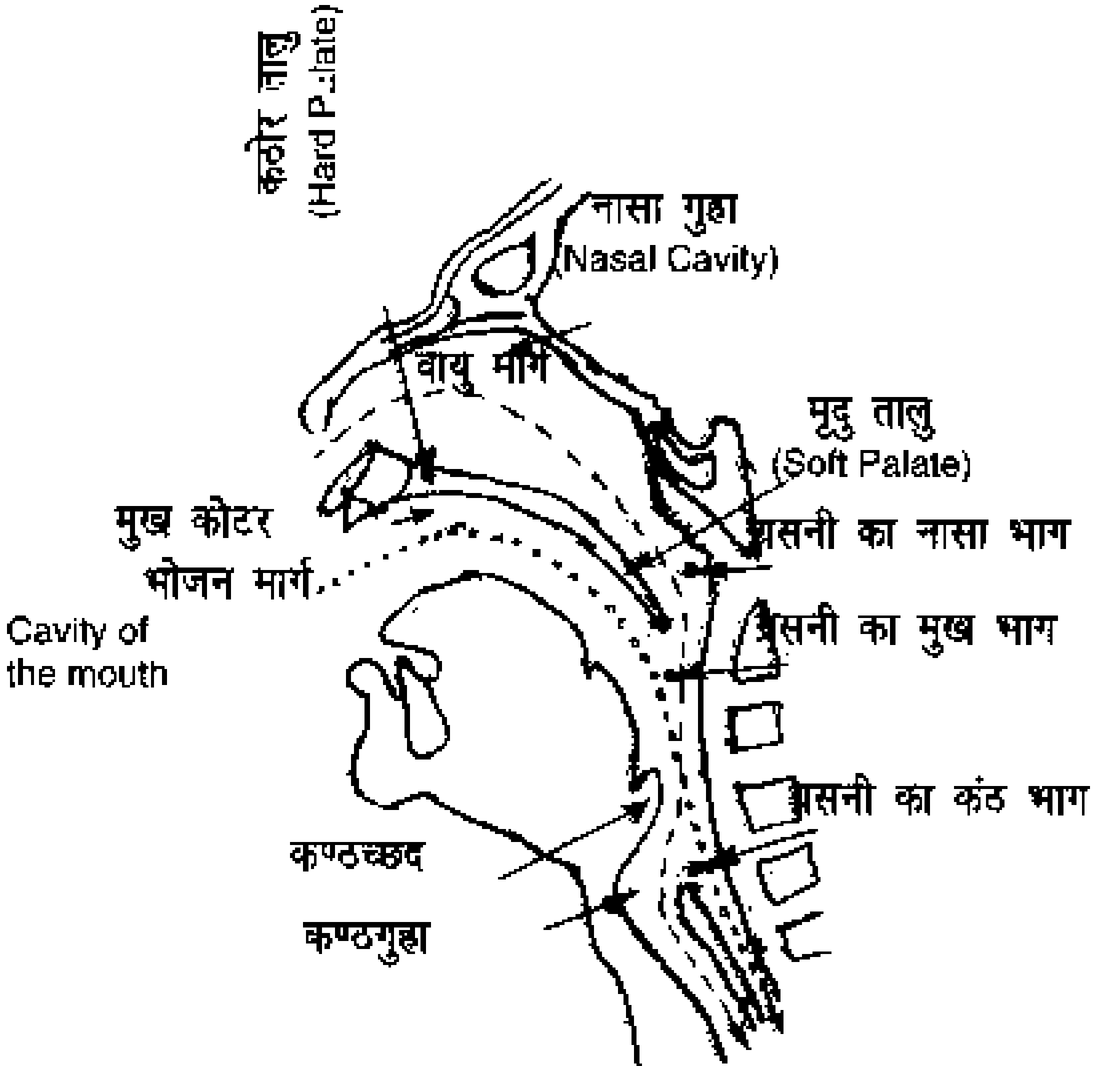

चित्र २.३६ मुख में स्थित भोजन मार्ग एवम् वायुमार्ग

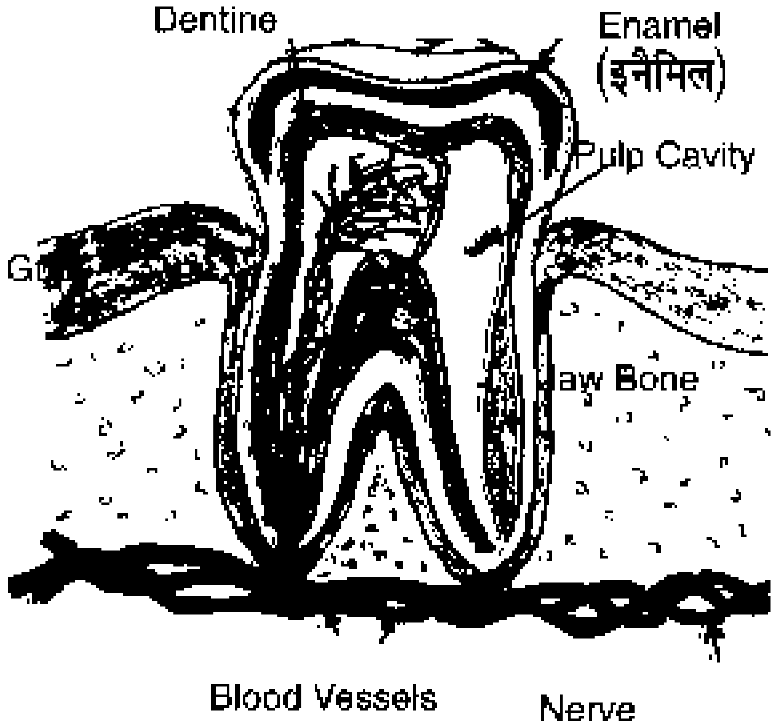

THE TOOTH

चित्र २.४० दाँत

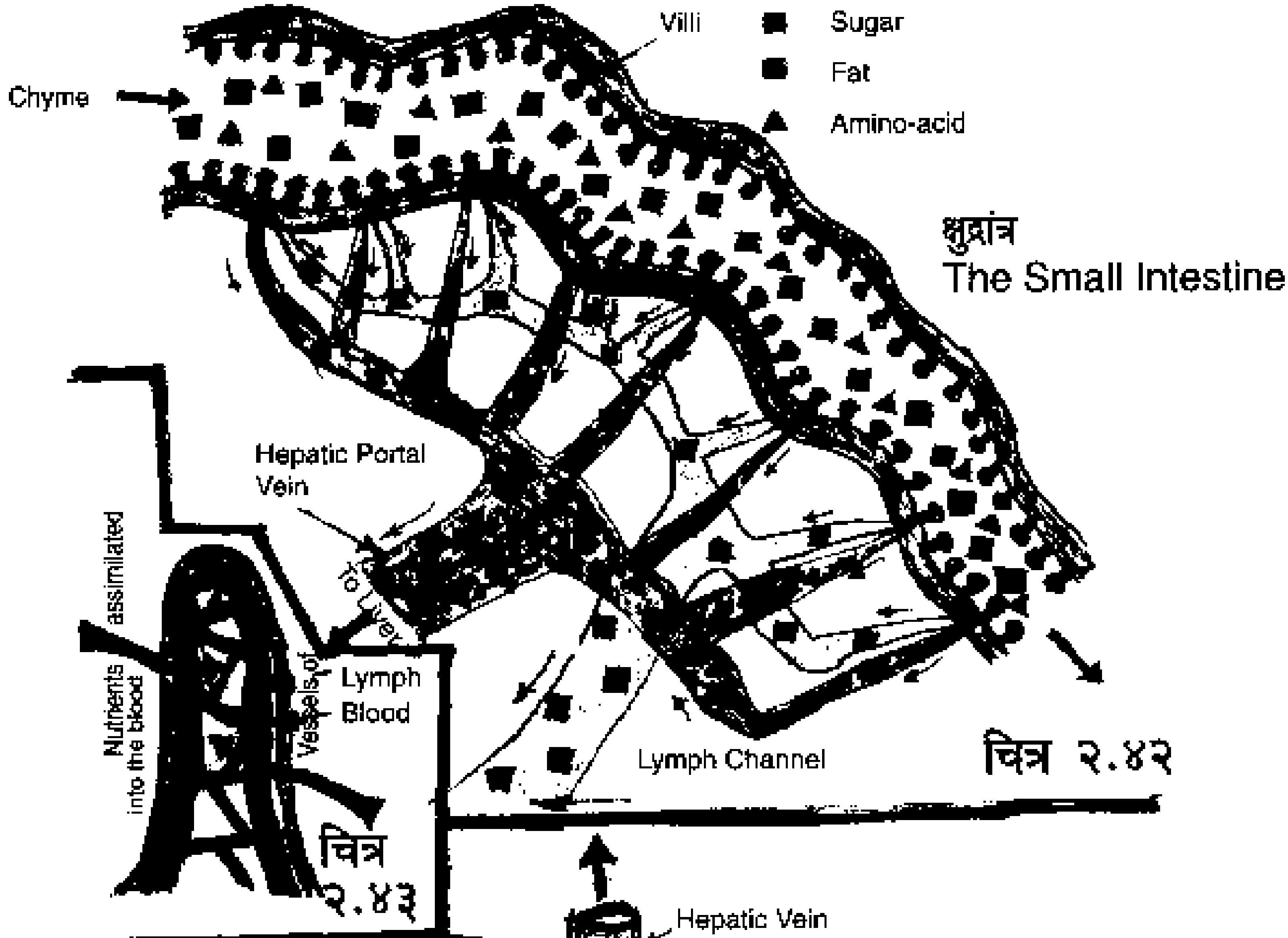

चित्र २.४२

चित्र २.४३

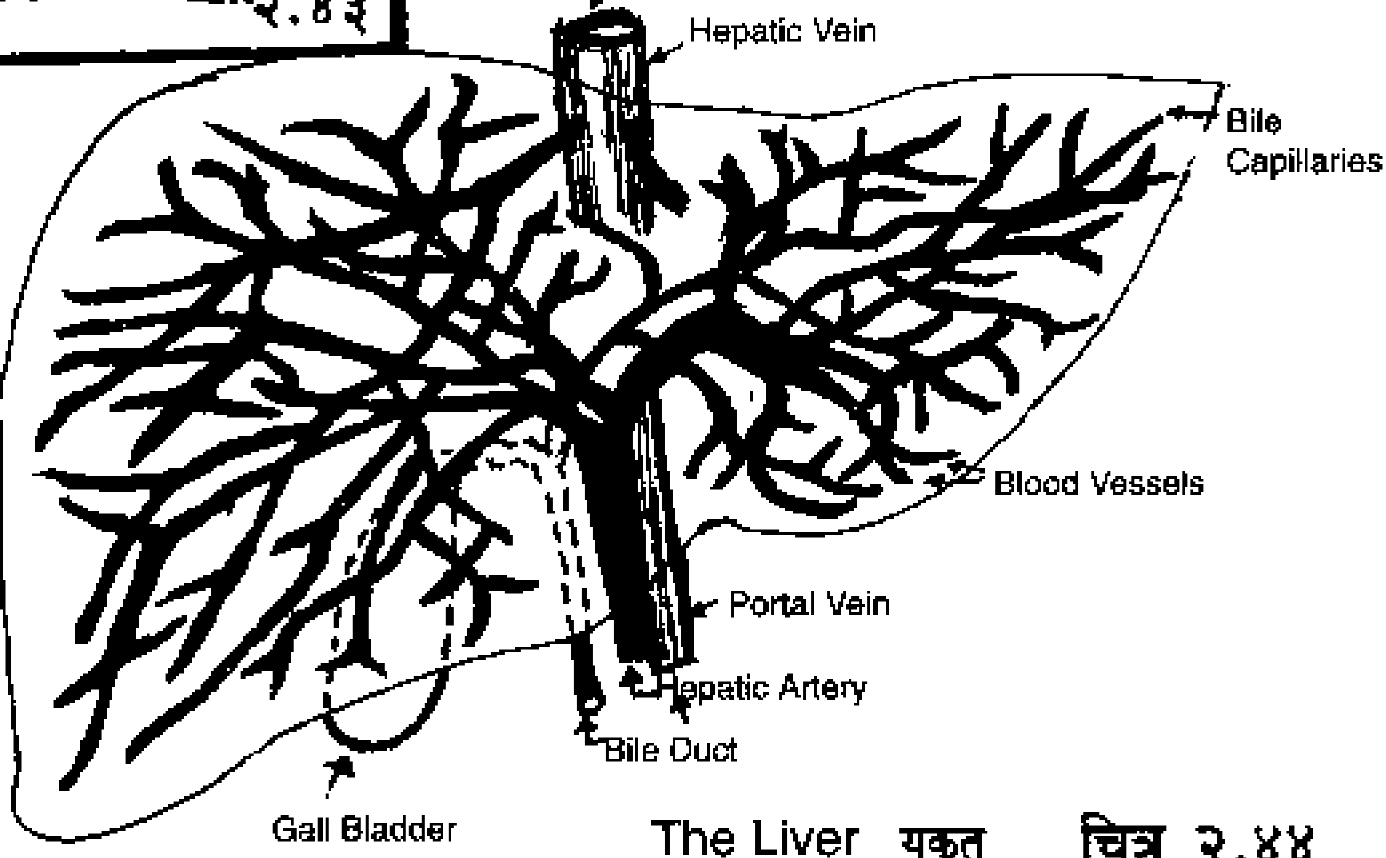

The Liver यकृत चित्र २.४४

की दीवालें Gastrin नामक हारमोन (chemical exciter) का स्त्रवण करती है। Normal Gastric Fluid में इनके अतिरिक्त एक ferment होता है जो Blood forming factor of Castle कहलाता है। यह factor Vitamin B_{12} Cyanocobalamin के absorption के लिए आवश्यक है। इसकी अनुपस्थिति से pernicious anaemia हो जाता है।

इस जठर रस (gastric juice) को स्त्रवण की मात्रा भोजन के अनुपात से होती है। प्रतिदिन लगभग दो लीटर जठर रस बनता है। आमाशय में भोजन ३ से ८ घंटे तक रहता है जो भोजन की संरचना पर निर्भर करता है। आमाशय में यांत्रिकीय (Churning) और रासायनिक क्रियायें होती हैं। ठोस भोजन की अपेक्षा में द्रव भोजन क्षुद्रांत्र में अधिक शीघ्रता से जाता है। प्रोटीन की अपेक्षा कार्बोहाइड्रेट कम समय ठहरता है। वसामय (fats) भोजन सबसे अधिक देर तक ठहरता है।

जठर रस (gastric juice) में विद्यमान हाइड्रोक्लोरिक एसिड आमाशय की दीवालों पर भी क्रिया (act) करता है, जिसके कारण प्रति मिनट आमाशय की लगभग ५ लाख कोशिकाएं (Cells) नष्ट हो जाती हैं, किन्तु उनका प्रतिस्थापन स्वयं होता रहता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड प्रतिदिन लगभग दो लीटर बनता है।

आमाशय के कार्यों का संक्षिप्तीकरण –

(क) यह भोजन ग्रहण करता है और कुछ समय के लिए reservoir (संग्रहालय) का कार्य करता है। इसमें लगभग १.५ लीटर भोजन तथा पेय (drink) आता है और कुछ सीमा तक और भी आ सकता है।

(ख) सभी भोजन को द्रव के रूप में परिवर्तित किया जाता है और हाइड्रोक्लोरिक एसिड से मिश्रण किया जाता है और इस प्रकार आंतों द्वारा हजम करने (intestinal digestion) के लिए तैयार किया जाता है।

(ग) प्रोटीन Peptones में परिवर्तित हो जाते हैं।

(घ) दूध को curdle करके, casein मुक्त हो जाता है।

(ड़) वसा (fat) का पाचन शुरू हो जाता है।

(च) Anti - anaemic factor तैयार होता है।

(छ) Chyme अर्थात् आमाशय का द्रवात्मक contents (अन्तर्वस्तु) को पक्वाशय (duodenum) में भेज दिया जाता है।

४. **पक्वाशय – Duodenum (चित्र २.४१)**

यह क्षुद्रांत्र (small intestines) का ही भाग होता है और लगभग दस इंच लम्बा होता है। यह अग्न्याशय (Pancreas) के शिरीय भाग को घेरे रहता है। पित्त की नली (Bile duct) और अग्न्याशय की नली (Pancreatic duct) इसमें आकर मिलते हैं। पक्वाशय में Bruner's Glands होते हैं जिनसे क्षारीय द्रव (Alkaline fluid) का स्त्रवण होता है, जिससे अम्लीय गैस्ट्रिक तत्व (acid gastric contents) के क्रिया से रक्षा होती है।

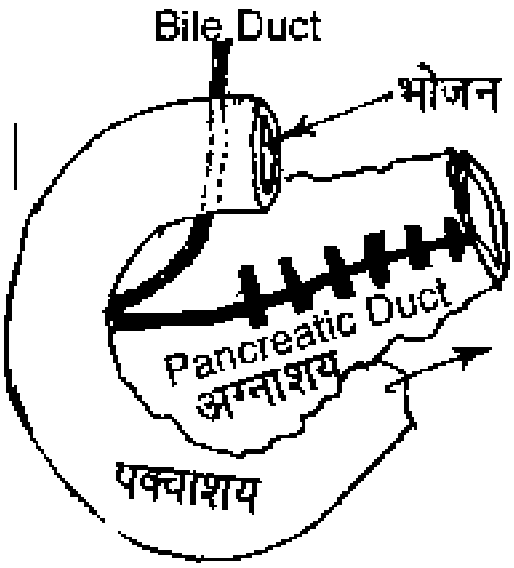

पक्वाशय

चित्र २.४१

पक्वाशय में निम्न fluids आते हैं :–

(क) यकृत liver से bile (पित्त)

(ख) अग्न्याशय से अग्न्याशय रस (pancreatic juice)

पित्त वसा (fat) के पचाने के लिए आवश्यक है, जिसको वह emulsify करता है (अथात् छोटे–छोटे टुकड़ों में तोड़ता है) और इस प्रकार lipase के कार्य में मदद करता है। यह क्षारीय प्रकृति का होता है और आमाशय से प्राप्त भोजन की अम्लीयता को neutralize करता है।

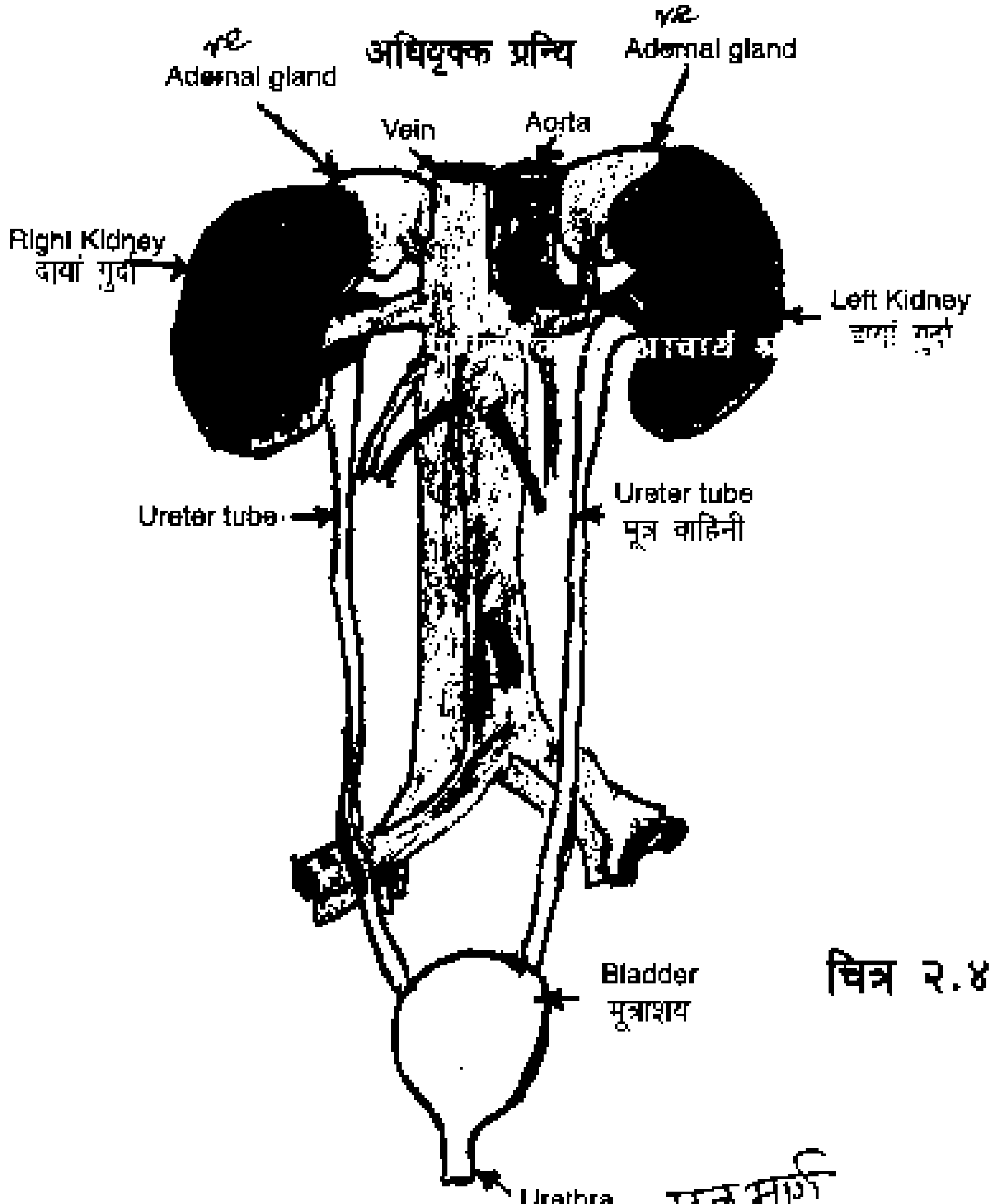

चित्र २.४५

उत्सर्जन तंत्र

THE URINARY SYSTEM

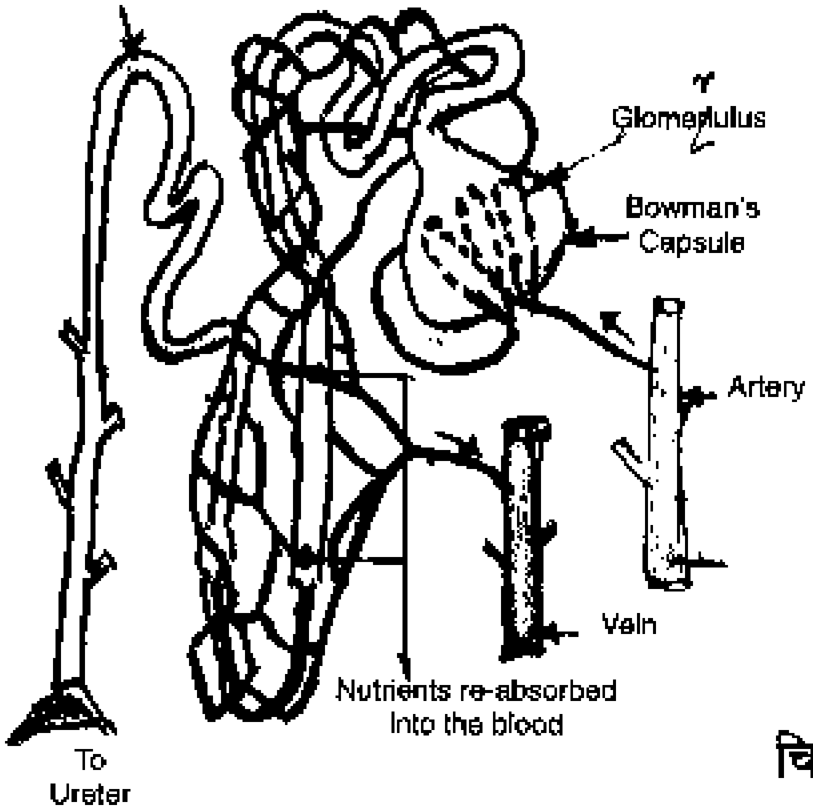

चित्र २.४६

नैफ्रौन

CLOSE UP VIEW OF A NEPHRON

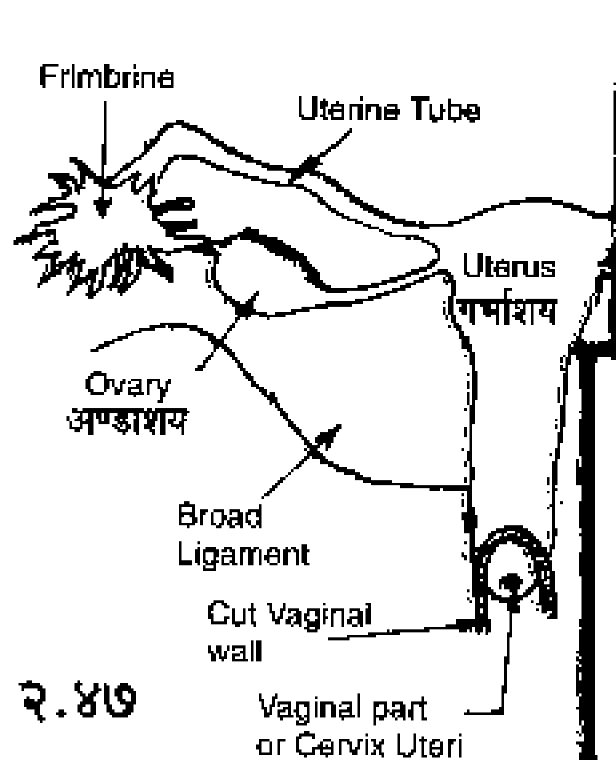

चित्र २.४७

POSTERIOR VIEW OF UTERUS,
RIGHT OVARY AND UTERINE TUBE

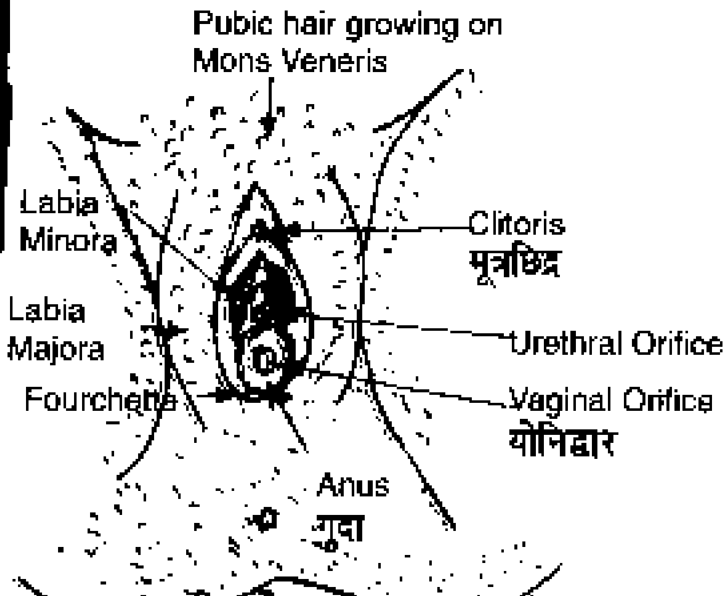

स्त्री के बाह्य जननांग

चित्र २.४८ A DIAGRAM OF THE
FEMALE EXTERNAL GENETALIA

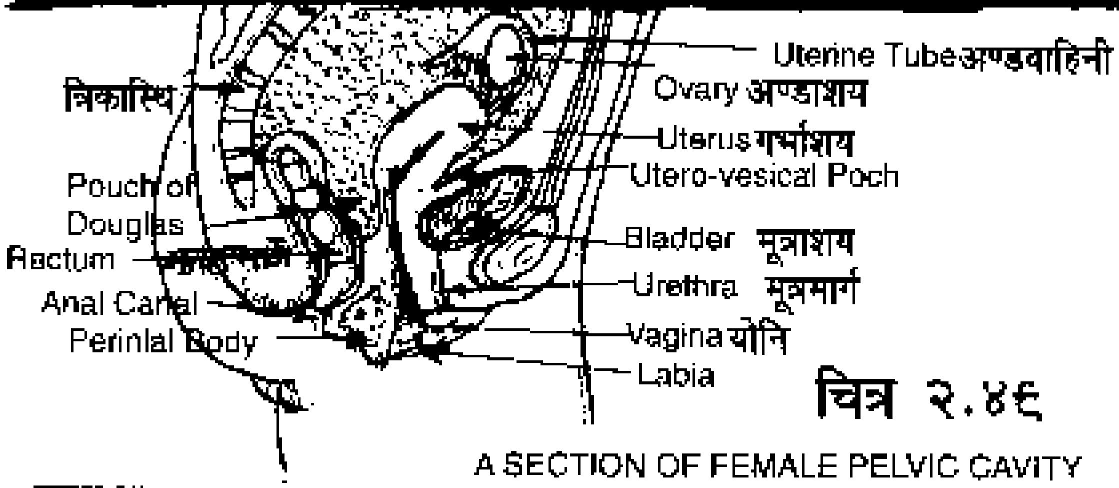

चित्र २.४९

A SECTION OF FEMALE PELVIC CAVITY

पुरुष के जननांग

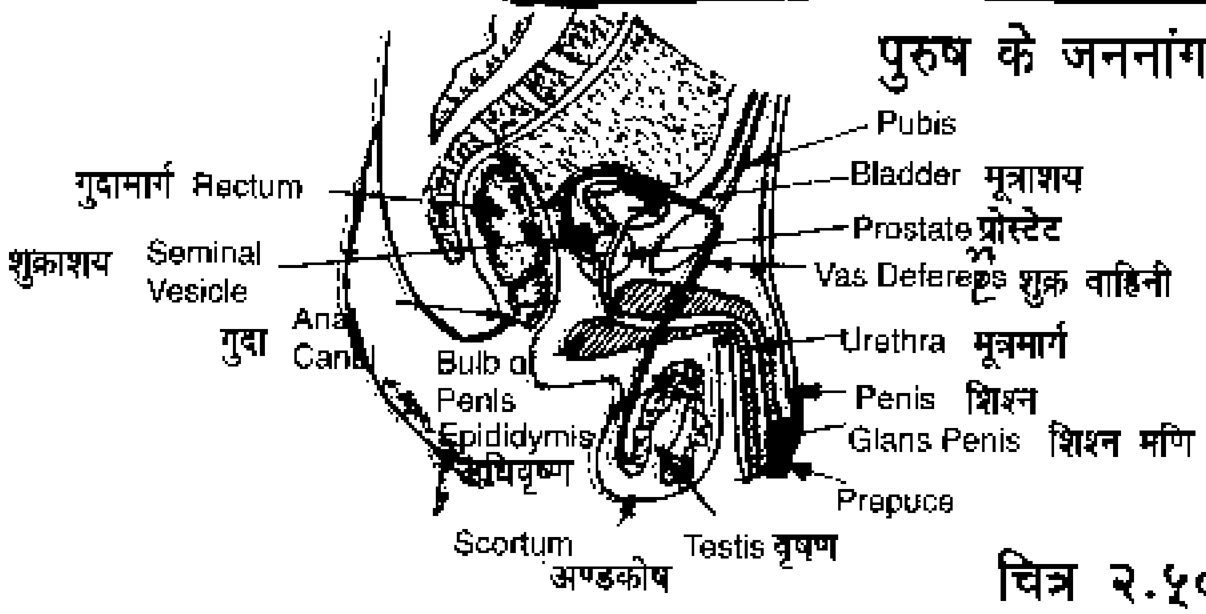

चित्र २.५०

Bile salts intestinal contents के surface tension को कम करता है और पचे हुए वसा के emulsion के बनने में सहायक होता है। Pancreatic Juice जो कि क्षारीय होता है, इसमें तीन पाचकीय enzymes होते हैं जो सभी भोजनों पर act करते हैं :

(१) Amylase — यह कार्बोहाइड्रेट को पचाता है। यह Ptyalin से अधिक शक्तिशाली है और पके व कच्चे दोनों तरह के starch पर act करके उनको disaccharides में बदलता है।

(२) Lipase — यह fats को तोड़ने वाला enzyme है, fats को glycerin और fatty acids में तबदील करता है। जब यह पित्त के साथ होता है, तो बहुत ही शक्तिशाली होता है।

(३) Trypsin — यह प्रोटीन को पचाता है। Gastric Juice के enzyme pepsin की तुलना में इसका action अधिक शक्तिशाली होता है। इसके द्वारा प्रोटीन और Peptones, Polypetide Group में परिवर्तित हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त यह धारणा है कि अग्नाशय रस (pancreatic juice) में एक milk-curdling enzyme भी होता है।

५. क्षुद्रांत्र — Small Intestines

पक्वाशय से chyme (गैस्ट्रिक स्त्रवण द्वारा भोजन का अम्लीय गूदा) लगभग ३.५ सैन्टीमीटर चौड़े क्षुद्रांत्र में प्रवेश करता है। यह लगभग २२ फुट लम्बा होता है। इसके सतह का क्षेत्रफल लगभग ४–५ वर्ग मीटर होता है। शुरू के ७–८ फुट लम्बे आँत के हिस्से को मध्यांत्र (Jejunam) कहते हैं। शेष भाग को शेषांत्र (Ilium) कहते हैं। क्षुद्रांत्र जठर (stomach) के नीचे के भाग में गैंडली के रूप में रखा होता है।

क्षुद्रांत्र में Succus Entericus (Intestinal Juice) (आंत्र रस) का स्त्रवण होता है, जिसमें अनेक एनज़ाइम्स (enzymes) विद्यमान होते हैं। यह पाचन की क्रिया को पूर्ण करते हैं, अर्थात इनके परस्पर क्रिया से (interaction) भोजन पूरी तौर पर पच जाता है।

Enterokinase अग्नाशय के proteolytic enzyme को activate (सक्रिय) करता है। Erepsin पहले से परिवर्तित प्रोटीनों को पूरी तौर पर पचाता है। Polypeptides को विभिन्न Amino-acids में बदल देता है।

Carbohydrates पर तीन प्रकार के Enzymes act करते हैं, जिससे starches का disaccharides monosaccharides में परिवर्तित करने से, पाचन पूर्ण हो जाता है।

Invertase canesugar पर act करता है।

Lactase lactose को glucose में बदलता है और galactose में भी बदलता है। galactose liver में पहुँचकर फिर glucose में बदल जाता है।

Maltase maltose को dextrose में बदलता है।

इस प्रकार मुँह, आमाशय, पक्वाशय और क्षुद्रांत्र में विभिन्न प्रकार के पाचक रस (Saliva, gastric juice, pancreatic juice, bile और succus entericus) के द्वारा विभिन्न प्रकार के भोजन अब सोखने (अवग्रहण) (absorption) के लिए तैयार हो जाता है, जो द्रव रूप में होता है।

Protein —(Gastric and Pancreatic enzymes)→ Peptones —(Succus Entericus)→ Poly peptides / Amino acids

Fats → Fatty acids / Glycerin

Carbohydrates → Monosaccharides

क्षुद्रांत्र के अन्त तक पहुँचने में पचे भोजन को लगभग ४ घंटे लगते हैं। पचा हुआ भोजन का absorption सम्पूर्ण क्षुद्रांत्र में दो Channels द्वारा होता है – (i) Capillary blood vessels जिनमें प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट के products जाते हैं और (ii) Lymphatics of the villi जिसमें वसा (fats) के products (पदार्थ) जाते हैं। देखिये चित्र २.४२ और २.४३। ये absorption villi द्वारा होता है जिनकी लम्बाई लगभग आधी मिलीमिटर होती है। इनकी संख्या लगभग ४० लाख होती है। इसके कारण क्षुद्रांत्र का सतह का क्षेत्रफल बढ़कर लगभग ३५० वर्गमीटर हो जाता है।

६. बृहद्रांत्र — **Large Intestine**

यह लगभग पांच फुट लम्बा होता है। क्षुदांत्र में जिस आहार का पाचन और शोषण नहीं हो पाता, वह Ileocolic Valve के द्वारा इसमें आता है। यह पहले ऊर्ध्वगामी कोलन (ascending colon), फिर अनुप्रस्थ कोलन (traverse colon), फिर अधोगामी कोलन (descending colon) होकर sigmoid (सिगमौइड) नामक हिस्से में होता है। Sigmoid के शेष भाग को मलाशय कहते हैं। इसके बाद लगभग पांच इंच लम्बे वाले मार्ग को गुदा मार्ग (rectum), फिर गुदा (anus) कहते हैं। बृहदांत्र में न तो भोजन का पाचन होता है और न अवशोषण होता है। अपचित टुकड़े मुख्यतः सैलूलोज (cellulose) से बने होते हैं। बृहदांत्र में अनेक जीवाणु होते हैं, जो अपचित टुकड़ों से प्रतिक्रिया (react) करके गैस बनाते हैं। कुछ विषैले पदार्थों का निर्माण होता है, जिनमें से कुछ रुधिर में होकर यकृत (liver) में आ जाते हैं। बृहदांत्र में मुख्यतः जल का अवशोषण होता है। इसके निम्न कार्य हैं :

(क) पानी, नमक और ग्लूकोज़ का अवशोषण

(ख) इसके आन्तरिक सतह (Inner coat) में विद्यमान ग्रंथियों द्वारा म्यूकिन (mucin) का स्त्रवण

(ग) Cellulose का निर्माण

अपचित पदार्थ अन्ततः मल बनकर गुदा द्वारा बाहर निकल जाते हैं। मल में काफी तादाद में बैक्टीरिया (अधिकतर मृत), आंतों से उतरा हुआ epithelium, नाइट्रोजनित पदार्थ की कुछ मात्रा (मुख्यतः mucin), नमक (मुख्यतः Calcium, phosphaste), थोड़ा सा लोहा, सैलूलोज़ (Cellulose), अन्य अपचित भोजन तथा पानी होते हैं।

आँत्रपुच्छ (Appendix) छोटी व बड़ी आँत के Caecum नामक स्थान में लगभग ४ इंच लम्बे नलीयुक्त हिस्से को कहते हैं । जब उस पर अनावश्यक दबाव पड़ता है अथवा संक्रामक जीवाणुओं का आक्रमण होता है, तब उस भाग पर सूजन आती है और असह्य वेदना होती है।

इस सम्बन्ध में चित्र २.३८ का अवलोकन करिये।

७. यकृत — **Liver**

यह शरीर में सबसे बड़ी ग्रन्थि है। इसका भार लगभग १.५ किलोग्राम होता है। यह डायफ्राम (diaphragm) के नीचे पसलियों द्वारा सुरक्षित रहता है। इसके दो भाग (Lobes) होते हैं, दाँया तथा बाँया। ऊपर की सतह convex होती है, नीचे की सतह अनियमित (Irregular) होती है। इसको रक्त की डबल सप्लाई मिलती है :—

(क) Hepatic धमनी (Artery)— यह Aorta से आती है और रक्त का बीस प्रतिशत भाग यकृत को आता है। इसमें ऑक्सीजन ६५ से १०० प्रतिशत तक होती है।

(ख) Portal Vein — यह प्लीहा (Spleen) से आती है। रक्त का अस्सी प्रतिशत भाग आता है। इसमें ऑक्सीजन सत्तर प्रतिशत तक होती है, क्योंकि ऑक्सीजन का कुछ भाग प्लीहा तथा आँतें ले लेते हैं। इसमें वह पोषक तत्व जो क्षुद्रांत्र से अवशोषित किये जाते हैं, होते हैं।

यकृत से जाने वाली Hepatic नस (Vein) रक्त inferior vena cava को लौटाते हैं, तथा पित्त की नलियां यकृत के कोशिकाओं से पित्त (bile) इकट्ठा करते हैं। देखिये चित्र २.४४ ।

यकृत के अनेक कार्य होते हैं :—

(क) क्षुद्रांत्र से प्राप्त रक्त जिसमें पोषक तत्व होते है, उनसे नये रसायन (chemicals) बनाता है।

(ख) यकृत में पोषक तत्व स्टोर रहते हैं। जब शरीर को आवश्यक्ता होती है, तो यह ग्लाईकोजिन (glycogen) पदार्थ में तब्दील हो जाते हैं। जब शरीर को ऊर्जा चाहिए होती है, तब यह फिर glycogen को ऊर्जा देने वाली ग्लूकोज़ (glucose) में परिवर्तित कर देता है और रक्त की सप्लाई में भेज देता है।

(ग) कभी–कभी जब शरीर की आवश्यक्ता से अधिक एमिनो–एसिड (Amino-acid) होते हैं, तो यह कुछ को कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) में बदल देता है जिससे ऊर्जा मिलती है और शेष को यूरिया (Urea) नामक व्यर्थ के पदार्थ (waste) में बदल देता है। यह यूरिया गुर्दों में जाता है, जहाँ से मूत्र में होकर बाहर निकल जाता है।

(घ) यह पुराने, क्षतिग्रस्त लाल रक्त कोषों को इकट्ठा करता है और रक्त प्रवाह (blood stream) से विषैले पदार्थ, drugs, alcohol और अन्य अशुद्ध पदार्थ (impurities) को अलग करता है। कुछ रासायनिक व्यर्थ पदार्थ का पित्त बन जाता है, जो कि गॉल ब्लैडर (gall bladder) में इकट्ठा हो जाता है।

(ङ) रक्त की sugar level (शर्करा स्तर) का ८० से १०० मिलीग्राम प्रति १०० मिली लीटर रक्त, अनुरक्षण (maintain) करने में सहायता करता है, किन्तु यह अग्नाशय के आन्तरिक स्त्रवण इंसुलिन (Insulin) द्वारा नियंत्रित होता है।

(च) Secretion of bile – पित्त के कुछ constituents जैसे bile salts यकृत मे बनते है। अन्य constituents जैसे bile pigments reticulo-endothelial system में बनते हैं, जो यकृत द्वारा पित्त में भेज दिये जाते हैं।

(छ) वसा (fats) को तोड़कर कार्बोनिक एसिड (carbonic acid) तथा पानी बनाता है। bile salts जो यकृत बनाता है, वह fats के पचाने और अवशोषण के लिए आवश्यक है।

(ज) गर्भावस्था में यह लाल रक्त कण बनाता है।

(झ) नये रक्त कण बनाने के लिए, यह haematin का भंडार करता है।

(ञ) यह बहुत से plasma protein बनाता है।

(ट) यह रक्त से bilirubin को अलग करता है।

(ठ) रक्त के clotting (थक्का बनाने) के लिए परमावश्यक prothrombin और fibrinogen का निर्माण करता है।

(ड) बहुत से पदार्थ जैसे glycogen, fats, vitamins और irons का भंडार करता है। Fat-soluble vitamins A तथा D इसमें स्टोर होते हैं।

(ढ़) यह शरीर के तापक्रम को यथावत रखने (maintain करने) में सहायक होता है। इसके आकार (size) के कारण metabolic activities ज्यादा होने के कारण इसमें से बहने वाले रक्त का तापमान बढ़ जाता है।

(ण) बृहदांत्र से प्राप्त विषैले पदार्थ (इंडोल, स्कैटोल इत्यादि) को आविष यौगिकों में रूपान्तरण करके, गुर्दे में भेजकर मूत्र के द्वारा शरीर से बाहर कर दिया जाता है।

८. पित्ताशय – Gall Bladder

यह लगभग ३–४ इंच लम्बा होता है ओर लगभग ६० मिली लीटर क्षमता वाला होता है। यह bile (पित्त) के लिए भंडार (reservoir) का काम करता है तथा पित्त को concentrate करने का भी काम करता है। देखिये चित्र २.४४।

भोजन करने के आधा घंटे के अन्दर यह पित्त को पक्वाशय (duodenum) में भेजता है। पित्त, यकृत द्वारा बनाया गया क्षारीय द्रव होता है, जिसमें ८६ प्रतिशत पानी होता है तथा Bile salts, Bile Pigments, Cholesterol, mucin और अन्य पदार्थ होते हैं।

Bile Pigments reticulo-endothelial system (विशेष तौर पर spleen तथा bone marrow) में नष्ट किये लाल रक्त कणों के haemoglobin से बनता है, जो यकृत को भेज दिया जाता है, जहाँ से पित्त के रूप में बाहर निकलता है। ये क्षुद्रांत्र को जाते हैं। कुछ stercobilin बनते हैं जिनसे मल को रंग मिलता है, कुछ पुनः रक्त–धारा में आ जाते हैं और मूत्र को रंग देने वाले urobilin बन जाते हैं। इनका पाचन सम्बन्धी कोई कार्य नहीं होता है।

Bile salts पाचक होते हैं और fat-splitting ferment lipase को सक्रिय (activate) करते हैं। यह पचे हुए fat (glycerin और fatty acids) को क्षुद्रांत्र से सोखने में भी सहायक होते हैं।

६. **अग्नाशय — Pancreas**

यह पक्वाशय से घिरा रहता है। देखिये चित्र २.४१ । इसके दो कार्य होते हैं :–

(क) Exocrine function— यह कुछ पाचक रस उत्पन्न करता है और पक्वाशय को supply करता है। Amylase, Lipase और Trypsin जो Pancreatic juice में होते हैं, उनका वर्णन क्रम (४) पक्वाशय में दिया है।

(ख) Endocrine function (अन्तःस्त्रावी कार्य) — इसका वर्णन अध्याय १० में अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के क्रम सं० ७ पर दिया है। इसमें उत्पन्न होने वाला इंसुलिन (Insulin) तत्त्व रुधिर में शर्करा की मात्रा का संतुलन बनाये रखता है। जब शरीर को कोई आकस्मिक काम करना पड़ता है, तो Adrenal का स्त्राव बढ़ जाता है, अग्न्याशय का इंसुलिन उत्पन्न करने वाला हिस्सा अपना कार्य मन्द कर देता है और शरीर के जिस अवयव को अधिक शर्करा (Glucose) की आवश्यकता होती है, वह उसे वहाँ जाने देता है।

अध्याय – १३

परिशिष्ट –

भोजन का विभागीकरण – The Classification of Food

शरीर के पाचन तंत्र समझने से पहले भोजन के विभागीकरण की जानकारी आवश्यक है। शरीर की रचना, उसके संरक्षण के लिए तथा गर्मी और ऊर्जा की आवश्यक्ताओं की पूर्ति के लिए भोजन की आवश्यक्ता होती है। भोजन में निम्न तत्व रहते हैं

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
१.	प्रोटीन Protein – ये carbon, hydrogen, oxygen, sulphur और phosphorus से बनते हैं।		ये सबसे जटिल कार्बनिक पदार्थ होते हैं। ये प्रत्येक living cell के basic protoplasmic contents होते हैं।	
		क्लास A		पाचन क्रिया में प्रोटीन पेप्टोन और ऐल्बूमोसिस में वियोजित हो जाते हैं, जो अपनी बारी में कम जटिल पदार्थों – एमिनो – अम्ल (Amino Acids) में वियोजित हो जाते हैं।
		Albumin	दूध	
		Caseinogen	दूध, पनीर	
		Globulin	रक्त ,ग्लोबूलिन	
		क्लास B (वनस्पति–स्त्रोत)		
		Gluten	गैहूँ और अन्य अन्न व दाल	
		Legumen	मटर, फली, मसूर की दाल, सोयाबीन	
		Gelatin	Agar Agar जो मुरब्बा, रस बनाने के काम आता है।	

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
२.	कार्बोहाइड्रेट	<u>SUGARS</u>		इनमें कार्बन होता है।
		Sucrose	ईख से प्राप्त शर्करा, चुकन्दर से प्राप्त शर्करा।	जब यह कार्बन ऑक्सीजन के साथ मिलकर
		Dextrose (Glucose)	फल से प्राप्त शर्करा (Sugar)	कार्बनडाईऑक्साइड
		Maltose (Malt Sugar)	ये starch के hydrolosis द्वारा Disaccharides के रूप में बनता है।	बनाते हैं, तो गर्मी व ऊर्जा निकलती है, जो शरीर के काम आती है।
		<u>STARCHES</u>		
		Cereals	गैहूँ का आटा, मक्का का आटा, जौ, चावल और साबूदाना	सभी पचे हुए कार्बोहाइड्रेट Simple sugar (सरल शर्करा) ग्रुप में परिवर्तित हो
		Root vegetables	विशेष तौर पर परिपक्व आलू।	जाते हैं, तभी उनका उपयोग शरीर के
		Cellulose	पौधों के तने, शाखा, डाली	Tissues कर पाते हैं।
		Mono-Saccharides	Fructose, Galactose	
		Di-Saccharides	Sucrose, Maltose, Lactose	
		Poly-Saccharides	Complex Carbohydrates जैसे Starch और Cellulose	

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
३.	वसा (Fats)	Animal Fats	डेयरी उत्पादन जैसे दूध, मक्खन, पनीर। ये शरीर के लिए आवश्यक होते हैं क्योंकि इनमें विटामिन A और D होते हैं।	ये कार्बन,हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बने होते हैं और Fatty acids और Glycerin के रूप में store रहते हैं।
		Vegetable Fats (वनस्पति वसा)	जैतून का तेल, कड़े Shell वाले फल जैसे सुपाड़ी, नारियल	
		Fats का शरीर में वही उपयोग होता है जो carbohydrates का होता है, क्योंकि वे गर्मी व ऊर्जा उत्पादित करते हैं। शरीर में Fat Adipose Tissue के रूप में Store होता है। यह Energy का मुख्य Reserve store है। प्रति ग्राम पर ६.३ कैलोरी गर्मी देते हैं। एक साधारण वयस्क की खुराक १०० ग्राम लगभग होती है। carbohydrates और fats दोनों ही fuel foods हैं।		
४.	जल Water	यह शरीर के भार (weight) का दो-तिहाई होता है। यह कोशिकाओं का अधिकतम भाग होता है । इसमें अनेक पदार्थ घुल जाते हैं, इस प्रकार पाचक तंत्र में रासायनिक परिवर्तनों में सहायक होता है। यह कोषिकाओं में salt के concentration को maintain करता है। पानी का संतुलन शरीर में हर हालत में बना रहना चाहिए ताकि जो पानी का loss (हानि) होता है, वह पानी के intake (आपूर्ति) के बराबर रहे। ठोस भोजन विशेष तौर पर फल और सब्जियों में पानी विद्यमान रहता है– ७५ प्रतिशत, बहुत से फलों में ८५ प्रतिशत और तरबूज में ९५ प्रतिशत पानी रहता है। भोजन के oxidation से भी कुछ पानी प्राप्त होता है।		

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
		पानी की प्राप्ति		पानी की हानि प्रतिदिन
		–द्रव पदार्थों से –भोजन के अन्दर विद्यमान पानी –भोजन के Oxidation प्रक्रिया से		मूत्र के रूप में – १,५०० मिलीलीटर त्वचा के द्वारा – ६०० " निष्कासित श्वसन वायु में – ५०० " मल के द्वारा – २०० "
५.	Salts (नमक)	Calcium (कैल्शियम)	दूध, पनीर, अनेक सब्जियों में विशेषतौर पर बन्दगोभी और गाजर में।	इसकी आवश्यक्ता सभी कोशिकाओं को होती है। यह हड्डी ossification (कड़ा होने में), दाँत के निर्माण (formation) और रक्त के थक्का बनने में अति आवश्यक है।
		Sulphur (गंधक)	सभी प्रोटीन पदार्थों में होता है।	यह कोशिकाओं के well-being(स्वस्थ रहने) में आवश्यक है।

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
		Iron (लोहा) Sodium Chloride	पनीर, रोटी, हरी सब्जियाँ अधिकतर भोजन पदार्थों में	Haemoglobin के निर्माण में इसकी आवश्यक्ता होती है।
		Potassium (पुटेशियम)	लगभग सभी भोजनों में, विशेषकर उन पदार्थों में जिनमें प्रोटीन होती है।	
		Phosphorus (फौसफोरस)	दूध और हरी सब्जियों में	प्रत्येक कोशिका में यह विद्यमान होता है। muscular and nervous energy (मांसपेशियों और तंत्रिकाओं के ऊजा) के लिए यह आवश्यक है।
		Iodine (आयोडीन)	समुद्रीय पदार्थ और उन भोजनों में जो समुद्र के नजदीक उगाये जाते हैं। इसकी उपस्थिति Thyroid ग्रन्थि द्वारा स्त्रावण से metabolic प्रक्रिया का सन्तुलन रखती है।	समुद्र से दूर स्थानों पर इसकी पूर्ति Iodised table salt या sweets द्वारा की जाती है।

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
६.	Vitamins (विटामिन) —Fat soluble	A	पत्तेदार सब्जियों में, गाजर और कुछ फलों में	इसकी कमी से Night blindness (रात्रि का अंधापन) और आँख की बीमारी Xerophthalima होती है।
		C	यह हड्डी और दाँत के विकास में आवश्यक है क्योंकि इसके द्वारा Calcium का Absorption होता है। यह Anti-rachitic vitamin है।	
		D_2	यह Ergosterol (Ergot आदि में Steroid) पर ultra-violet ray के action से प्राप्त होता है। यह मक्खन में होता है।	
		D_3	त्वचा के सूर्य की किरणों तथा ultra-violet light के exposure से प्राप्त होता है। यह भी मक्खन में होता है।	
		E	Wheat-germ oil, दूध और कुछ हरी सब्जियों में। यह anti-sterility vitamin है।	इसके मनुष्य के उपयोग के विषय में जानकारी नहीं है।

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
		K	Alfalfa (विशेष प्रकार की घास), पालक, सोयाबीन। हमारे आँतों में जो बैक्टीरिया रहते हैं, वे भी विटामिन K बनाते हैं।	यह –prothrombin बनाने के काम आता है जो blood को clot करता है।
	Vitamins -water soluble	B_1 : Aneurin (Thiamine)	छिल्केदार नाज, दाल और खमीर	Vitamin B Complex अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है।
		B_2 Riboflavin	Wheat germ, दूध, सोयाबीन, मटर, मसूर की दाल	
		Niacin (Nicotine acid)	Wheat germ, हरी सब्जियाँ	यह anti-pellagra Vitamin है
		Biotin	Mushroom (कुकुरमुत्ता), दूध, खमीर और nuts	पहले यह vitamin H कहलाता था
		B_6 Pyridoxine	हरी पत्तियाँ, खमीर	यह लाल रक्त कण बनाने से ताल्लुक रखता है।
		Vitamin B Complex के अन्य प्रभेद	Choline, Pantothenic Acid, Folic Acid और Para- amino Benzoic Acid	विटामिन B, DNA बनाने वाले पदार्थ में भी काम आता है।

क्र०सं०	भेद	प्रभेद	कार्य / उदाहरण	कैफियत
		C	अनेक फलों में विशेष तौर पर Citrus fruits (नीबू, मौसमी, सन्तरा, अंगूर), black currants, rose hips और सब्जियों में।	ये सभी connective tissues के स्वस्थ्य विकास के लिए आवश्यक है। संक्रमण (infection) की प्रतिरोध शक्ति (Immunity) बढ़ाता है और घाव तथा फ्रैक्चर के ठीक करने (healing) में मदद करता है।
		P	Citrus fruits, black currants, rose hips और हरी पत्तियाँ	यह साधारण Capillary resistance को maintain करने में सहायता करता है। इसकी कमी से subcutaneous bleeding हो सकती है।

वातावरण और भोजन साथ-साथ ही विचारणीय है। पोषण सम्बन्धी (Nutritional) आवश्यक्ताओं में पूर्वोक्त प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, जल, खनिज (minerals) अथवा salts और विटामिन्स आते हैं और इनका समुचित समायोजन अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। घर में स्वस्थ/प्रसन्न वातावरण भी अच्छे भोजन के साथ-साथ आवश्यक है।

अध्याय — १४

उत्सर्जन तंत्र — Excretion System

शरीर में दो गुर्दे होते हैं– प्रत्येक लगभग ११ सैन्टीमीटर लम्बा, इससे आधा चौड़ा और लगभग ३ सैन्टीमीटर मोटाई में होता है। यह सेम के आकार का होता है और प्रत्येक गुर्दे का भार लगभग १४० ग्राम होता है। इसको घेरे हुए अधिवृक्क ग्रन्थि (Supra-renal gland) होती है। दाँया गुर्दा बाँए गुर्दे के मुकाबले में थोड़ा छोटा और ज्यादा मोटा होता है। यह गहरे बैंगनी रंग का होता है। प्रत्येक गुर्दे में लगभग दस लाख नैफ़रौन्स (Nephrons) होते हैं। गुर्दे की आकृति चित्र २.४५ में दिखायी गई है और Nephron की चित्र २.४६ में। प्रत्येक Nephron की शुरूआत एक Nephron (or Malpighian body या Glomerulus) से होती है। ततपश्चात् tubule (ट्यूब्यूल) जो कि first convoluted या proximal tubule होता है, एक loop (लूप) (loop of Henle) से connect होता है जो दूसरे सिरे पर second convoluted या distal tubule से connect होता है। यह tubule एक connecting tubule से connect होती है, जो अन्ततः ureter tube (मूत्रवाहिनी) बनकर मूत्राशय (bladder) में चली जाती है। गुर्दे में अनेक blood vesels होते हैं।

Glomerulus एक filter होता है। हाई प्रेशर पर लगभग १ लीटर रक्त प्रति मिनट, जिसमें ५०० मिलीलीटर प्लास्मा (Plasma) होता है, आता है और करीब १०० मिलीलीटर फिल्टर हो जाता है। Filtrate (छना हुआ द्रव) तब गुर्दे के Tubules में से गुजरता है, तब कोशिकाएं (Cells) उन पदार्थो का अवशोषण करते हैं, जिनकी शरीर को आवश्यक्ता होती है और अनावश्यक पदार्थों को छोड़ देते हैं। साधारणतः सारा ग्लूकोज (Glucose) सोख (absorb) लिया जाता है। ततपश्चात्, मूत्र मूत्रवाहनियों द्वारा मूत्राशय में इकट्ठा होता रहता है। इसकी अधिकतम क्षमता ३५०–५०० मिलीलीटर की होती है। मूत्र का आपेक्षिक घनत्व (relative density) लगभग १.०१० होता है। glomerulus से छनने के बाद, अन्तिम चरण में मूत्र के निष्कासन के समय, द्रव में रचना (composition) निम्नवत होती है :—

प्रतिदिन	फिल्टर किया हुआ	मूत्र निकलते समय
जल	१५० लीटर	१.५ लीटर
नमक	७०० ग्राम,	१५ ग्राम
ग्लूकोज़	१७० ग्राम	०
यूरिया	५० ग्राम	३० ग्राम

मूत्र लगभग ९६ प्रतिशत पानी होता है और इसके अन्दर विषैले पदार्थ मय यूरिया (Urea) के जो यकृत में बनता है, होते हैं। मूत्र के द्वारा निम्न निरर्थक पदार्थ निकलते हैं–

(i) Urea – यह Protein metabolism का अन्तिम प्रोडक्ट (Product) है। यह Amino-acids से बनता है। Normal blood urea level ३० मिलीग्राम प्रति १०० मिलीलीटर रक्त के होता है।

(ii) Urea Acid – रक्त में साधारण स्तर (Normal level) २ से ३ मिलीग्राम प्रति १०० मिलीलीटर रक्त के होता है – १.५ से २ मिलीग्राम प्रतिदिन मूत्र द्वारा बाहर निकलता है।

(iii) Creatinine – यह muscle में creatin का waste product है।

(iv) Other products of metabolism, जिसमें purine bodies, oxalates, phosphates, sulphates तथा urates शामिल है।

(v) Electrolytes या नमक जैसे Sodium chloride, Potassium chloride.

अध्याय – १५

प्रजनन तंत्र – Reproductive System

१. **स्त्री के जननाङ्ग –**

(क) बाह्य अंग – यह सब मिलाकर Vulva कहलाते हैं। यह चित्र २.४८ में दर्शाये गये हैं।

(ख) आंतरिक अंग – ये चित्र २.४७ तथा २.४६ में दर्शाये गये हैं।

अंडाशय प्रति २८ दिनों में एक अंडा (प्रति अंडाशय) तैयार करता है। अंडे का व्यास ०.१ – ०.२ मिलीमीटर होता है, जो कि शुक्राणु के सिर के भाग से ५० गुना चौड़ा होता है। अंडा यदि Uterine tube में मनुष्य के शुक्राणु द्वारा समागम से गर्भ नहीं बनता, तो नष्ट हो जाता है। अंडाशय के कार्यादि का विवरण अध्याय १० में अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियाँ–क्रम संख्या ८ पर दिया है।

२. **पुरुष के जननाङ्ग –**

पुरुष का मूत्र मार्ग स्त्री के मूत्र मार्ग कर तरह genital tract से अलग नहीं होता। पुरुष का मूत्र मार्ग (Urethra) मूत्राशय (Bladder) के पश्चात् प्रोस्टेट ग्रन्थि (Prostrate gland) के बीच में से होकर जाता है और ७ इंच से लेकर ६ इंच तक लम्बा होता है, तत्पश्चात् ६०° का मोड़ लेकर पैरिनियम (perineum) के मध्य से गुजरकर शिश्न में जाता है।

अण्डकोष (Testes) में Testosterene harmone तथा Sex cells (spermatozoa या sperm) (शुक्राणुओं) का निर्माण होता है। इसका वर्णन अध्याय १० में अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के क्रम संख्या ६ तथा चित्र २.३२ पर दिया है। इन अण्डकोषों में लगभग १,००० seminiferous tubules होते हैं जहाँ शुक्राणु (sperm) का उत्पादन होता है। ये शुक्राणु एक तरल स्त्राव में पाये जाते हैं, जिसके साथ लिकर ये शुक्रीय तरल (वीर्य) बनाते हैं। ये शुक्राणु अण्डकोष से Epididymis में होते हुए एक पतली नली (vas deferns) लगभग ४० से ५० सैन्टीमीटर लम्बी के द्वारा शुक्राशय (seminal vesicle) तक जाते हैं, तथा मूत्र मार्ग (Urethra) से भी connect रहते है। इस शुक्राशय में शुक्रीय तरल (वीर्य) स्टोर रहता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लगभग ४० किलो पचे हुए आहार से एक किलो रुधिर बनता है और एक किलो रुधिर से केवल कुछ ही बूँद वीर्य बन पाता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में ४६ दिन जगते हैं। इसमें पूर्ण रूप से विद्युत, रासायनिक व ऊष्मा की क्रियायें होती हैं। ये सात चरण में बनता है – (१) प्रवाही (२) रुधिर (३) चर्बी (४) स्नायु (५) अस्थि (६) अस्थि मज्जा (Bone marrow) (७) वीर्य (Semen)

शुक्रीय वाहिनी जो मूत्र मार्ग (Urethra) में समायोजित हो जाती है, प्रोस्टेट ग्रंथि (पौरुष ग्रंथि) के मध्य में से गुजरती है। प्रोस्टेट ग्रन्थि (Prostrate gland) बड़े अखरोट के आकार की होती है। यह एक द्रव का स्त्रवण करती है, जो वीर्य में मिलता है। यह वीर्य स्खलन में सहायता करता है तथा उस समय मूत्रीय अवरोधनी का भी कार्य करता है। अधिक आयु में कभी–कभी ये ग्रन्थि बड़ी होकर मूत्राशय के रिक्त होने की क्रिया में रुकावट पैदा कर देती है। देखिए चित्र २.५०

स्त्री और पुरुष के यौन समागम के समय, शिश्न के जरिये प्रत्येक स्खलन में वीर्य के स्खलन में लगभग २० करोड़ शुक्राणु (Spermatozoa) योनि में प्रवेश करते हैं और स्त्री की (Ovary) (अण्डाशय) द्वारा उत्पादित डिम्ब (Ovum) जो Uterine tube (fallopian tube) में होते हैं, की तलाश में दौड़ लगाते हैं। यदि कोई शुक्राणु कभी डिम्ब में प्रवेश पाने में सफल हो जाता है, तो गर्भ धारण हो जाता है। उस दशा में वह एक नये जीव का रूप लेकर गर्भाशय (Uterus) में लगभग ९ मास तक विकसित होता है, तत्पश्चात योनिमार्ग से उल्टा बाहर आकर जन्म ले लेता है।

प्रत्येक स्त्री पुरुष में ४४ autosomes (ordinary Chromosomes) होते हैं तथा दो Sex Chromosomes होते हैं, अर्थात् ४६ Chromosomes होते हैं। Chromosomes का वर्णन आगे दिया है। Sex Chromosomes स्त्री के तो X ही होते हैं, जबकि पुरुष के X तथा Y दोनों प्रकार के होते हैं। उपरोक्त ४४ Autosomes मे से २२ Autosomes माता तथा पिता–प्रत्येक से गर्भस्थ शिशु को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार उपरोक्त दो Sex Chromosomes में से एक Sex Chromosome माता तथा पिता – प्रत्येक से शिशु को प्राप्त होता है। यदि यह X-X (स्त्री–पुरुष) Sex Chromosomes शिशु को मिलते है, तो वह लड़की बनती है और यदि X-Y (स्त्री–पुरुष) Sex Chromosomes मिलते हैं, तो वह लड़का बनता है। इस प्रकार शिशु को माता–पिता दोनों से कुल मिलाकर ४४ Normal तथा दो Sex Chromosomes, अर्थात ४६ Chromosomes मिलते हैं तथा उसका लिङ्ग मात्र पुरुष के Sex Chromosome पर ही निर्भर करता है।

जीनी और अनुवंशिकता — Genetics and Heredity

Genes और DNA — जीनी तथा डी. एन. ए.

प्रत्येक कोशिका (cell) के Nucleus (केन्द्र) में structures होते हैं, जो (क्रोमोसोम) Chromosome कहलाते हैं। इनमें deoxyribonucleic acid (DNA) के molecules होते हैं, जो जीनी (genes) की string (लड़ी) से बने होते हैं। प्रत्येक जीनी इकाई (gene unit) के अन्दर वह सूचना होती है, जिसकी single protein को बनाने के लिए आवश्यक्ता होती है जो कोशिकाओं को बनाने और control करने के उपयोग में आते हैं। किसी व्यक्ति के Characteristics जैसे बाल, आँख का रंग आदि का निर्णय जीनी करते हैं। Sexual reproduction द्वारा sex cells (डिम्ब या शुक्राणु) जीनी को next generation (आगे के वंश) को pass on (प्रेषित) कर देते हैं। Chromosome के दो समान arms होते हैं, जो Chromatics कहलाते हैं।

प्रत्येक कोशिका में ४६ क्रोमोसोम होते हैं। कोशिका विभक्त होने से पूर्व Chromosome अपनी स्वयं की एक नकल, अर्थात स्वयं जैसा दूसरा Chromosome तैयार कर लेता है।

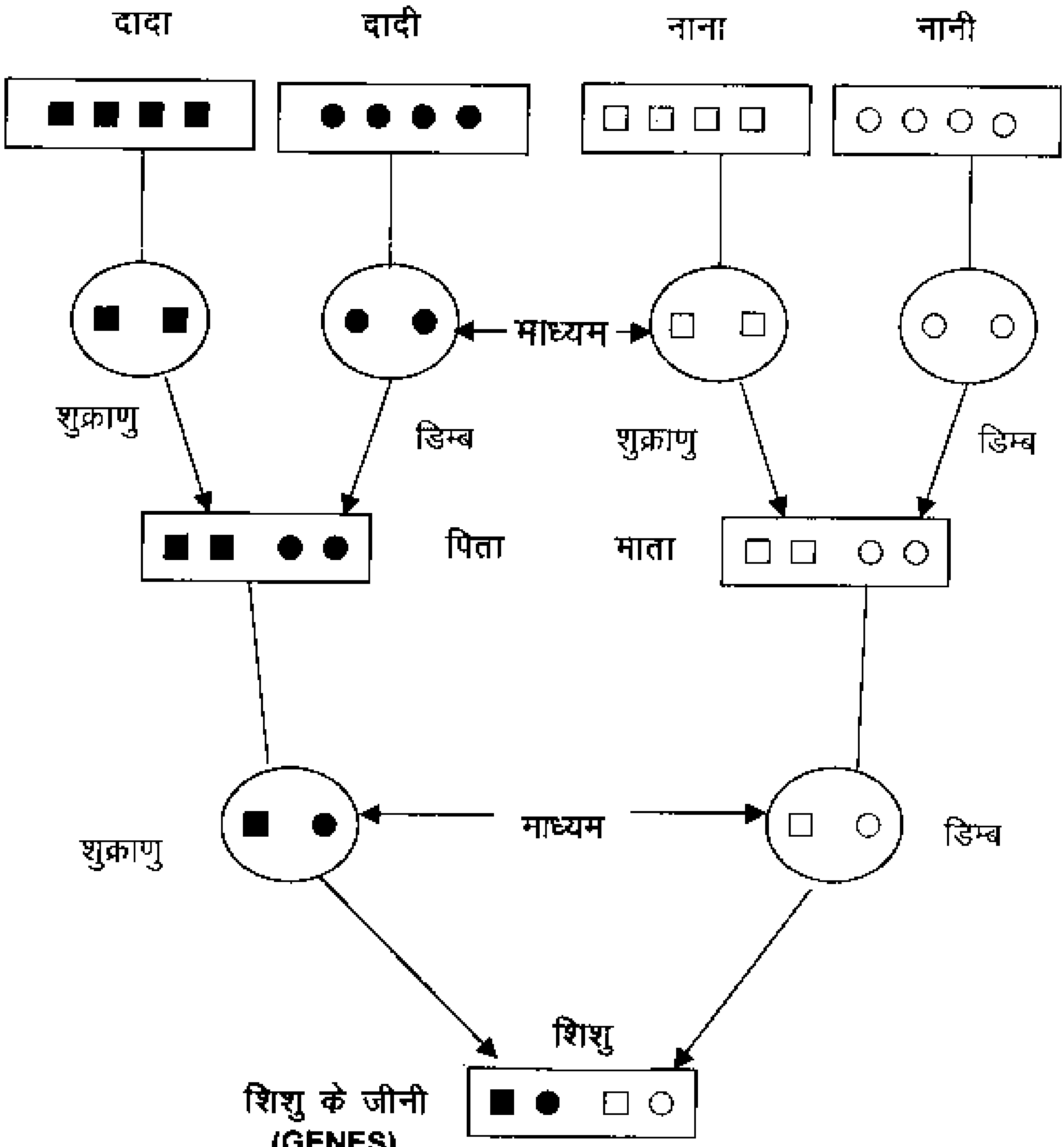

= बाबा, दादी, नाना, नानी – प्रत्येक के एक–एक चौथाई,
अथवा आधे पिता के एवम् आधे माता के

शिशु की आनुवंशिकता

चित्र २.५१

अनुवंशिकता — Heredity

एक शिशु आधे genes पिता से प्राप्त करता है और आधे माता से। चित्र २.५१ से ज्ञात होगा कि इस प्रकार वह चौथाई—चौथाई genes बाबा, दादी, नाना और नानी से प्राप्त करता है।

अध्याय — १७

शरीर से सम्बन्धित कुछ परिभाषायें — Vocabulary

१. **एल्विओली (Alveoli) —** फैफड़ों में स्थित छोटे-छोटे वायु के थैले (sacs) जहाँ रक्त द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण कर ली जाती है तथा कार्बन डाई-ऑक्साइड को फैंफड़े में बाहर निष्कासन हेतु प्रवेशित करा दिया जाता है।

२. **एमीनो एसिड (Amino Acid) —** एक रासायनिक पदार्थ जो प्रोटीन बनाता है।

३. **ब्रौन्कस (Bronchus) —** वह नली जिसके द्वारा फैफड़ों में श्वसन मार्ग (Trachea) से प्रत्येक फैंफडे को वायु जाती है। यह Bronchus अनेक शाखाओं में विभक्त हो जाती है, जो Brochioles (ब्रौन्कियोल्स) कहलाते हैं।

४. **कोशिकाएं (Cells) —** एक नन्हा-सा "Building Block बिल्डिंग ब्लौक" जो प्रत्येक जीव के (मय पौधों के), मनुष्य के शरीर के समस्त टिश्यू (Tissues) बनाता है। रक्त इसको पोषक तत्व और ऑक्सीजन प्रदान करता है, तथा इससे निष्कासित पदार्थ अलग करता है।

५. **एनज़ाइम (Enzymes) —** साधारण तौर पर प्रोटीन का एक प्रकार का पदार्थ, जो रासायनिक प्रक्रियाओं की गति को बढ़ाता है। यह अनेक प्रकार के होते हैं, जो विभिन्न प्रकार के महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करते हैं, जैसे भोजन को पचाने में सहायता करना और उससे ऊर्जा प्राप्त करना।

६. **जीनी (Genes) —** प्रत्येक कोशिका (cell) के (Nucleus) में वर्तमान जिसमें मनुष्य के Characteristics सम्बन्धी निर्देश (Instructions) होते हैं। यह कोशिका (Cell) किस प्रकार के बनते हैं, इसका नियंत्रण करते हैं और इस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व (look तथा Characteristics) का निर्णय करते हैं।

७. **ग्लाइकोजिन (Glycogen)** –एक प्रकार का ग्लूकोज़ (Glucose) जो शरीर के cell के लिये ऊर्जा का प्रधान स्त्रोत है। इसका यकृत में भंडार होता है।

८. **म्यूकस (Mucus)** – एक गाढ़ा, चिपचिपा तरल पदार्थ, जो कई आन्तरिक अंङ्गों की lining coat (आंतरिक सतह पर तह) करता है, मय ग्रसिका नली (Oesophagus) और आमाशय (stomach) के। यह उनको नम करता है और उनकी क्षति होने से रक्षा करता है।

९. **नर्व (Nerve)** – लम्बा और पतले कोशिकाओं (Cell) का ग्रुप, जो मस्तिष्क और शरीर के शेष भाग के मध्य में संचार व्यवस्था का कार्य करता है।

१०. **प्रोटीन (Protein)** – एक प्रकार का भोजन जो " Building Cells" (बिल्डिंग कोशिकाओं) के लिए आवश्यक पदार्थ एमिनो–एसिड (Amino Acid) प्राप्त कराता है।

११. **विटामिन–(Vitamin)** एक आवश्यक रासायनिक तत्व, जिनकी शरीर के सुचारु संचालन में आवश्यक्ता होती है।

सन्दर्भ –

१. आपका आरोग्य आपके हाथ में–
लेखक :– श्री देवेन्द्र वोरा,
नवनीत पब्लिकेशनन्स (इण्डिया) लिमिटेड,
अहमदाबाद / मुम्बई

२. मानव : शरीर और शरीर क्रिया विज्ञान–
लेखक – व. तातारीनोव,
मीर प्रकाशन गृह, मास्को

3- 1001 Facts about the Human Body
by Dr. Sarah Brewer/ Dr. Naomi Craft, Dorling Kindersley,
London / New York / Stuttgart.

४. Anatomy & Physiology for Nurses by Evslyn Pearce.

५. Discoverers – Discover the world of your Body –
Sparrow Books, Arrow Books Ltd.,
London

६. The incredible journey through the Human Body –
Created and produced by Nicholas Harris,
Joanna Turner and Claire Aston,
Orpheus Books Ltd., England

भाग—३

शरीर की रक्षा

PART III

PROTECTION OF THE BODY

भाग – ३

शरीर की रक्षा

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	चक्र	३.१
२.	स्वस्थ जीवन	३.२
३.	शारीरिक एवम् मानसिक सक्रियता	३.६
४.	मुद्रायें	२.२०
५.	नाभि चक्र	२.२४
६.	त्वचा की देखभाल	३.२५
७.	आँखों की देखभाल	३.२६
८.	एक्यूप्रैशर विधि द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण एवम् चिकित्सा	३.२८
६.	भोजन एवम् पाचन	३.३४
१०.	कुछ ज्ञातव्य बातें	३.३७
११.	सन्दर्भ	३.४२

भाग – ३

शरीर की रक्षा

अध्याय– १

आवश्यक्ता–जैसा कि भाग २ में वर्णन किया हैं, धर्म साधन हेतु शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य होना आवश्यक है। शरीर के विषय में संक्षिप्त जानकारी करने के बाद, उसकी सुरक्षा के उपाय भी संज्ञान में होना चाहिये। प्रातः भ्रमण, योग, व्यायाम, स्वास्थ्य परीक्षण, भोजन आदि इससे सम्बन्धित विषयक हैं।

चक्र

योग विद्या के अनुसार शरीर का संचालन उसमें स्थित सात चक्रों द्वारा होता है, इनका अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों (जिनका वर्णन भाग २ के अध्याय १० में दिया है) से गहरा सम्बन्ध है। चित्र ३.०१ में इनकी अवस्थिति दर्शायी गयी है।

इनकी शरीर में स्थिति एवं कार्य निम्नवत् हैं :

चक्र संख्या	चक्र का नाम	शरीर में स्थिति	कार्य
१.	मूलाधार	मेरुदण्ड के अन्तिम मनके (coccyx) के नीचे, गुदा के पास	अस्थियों, माँसपेशियों का नियमन, शक्ति, ओजस्विता, रक्त की गुणवत्ता आदि।
२.	स्वाधिष्ठान	नाभि के नीचे और जननेन्द्रिय से ऊपर	जननांग, पैर, मूत्राशयादि
३.	मणिपुर	नाभि केन्द्र में	आँतें, पेट, जीवन की स्फूर्ति
४.	अनाहत	हृदय के समतल, दोनों स्तनाग्रों के मध्य में	हृदय, फैंफड़े
५.	विशुद्ध	कण्ठ में	गर्दन, कण्ठ

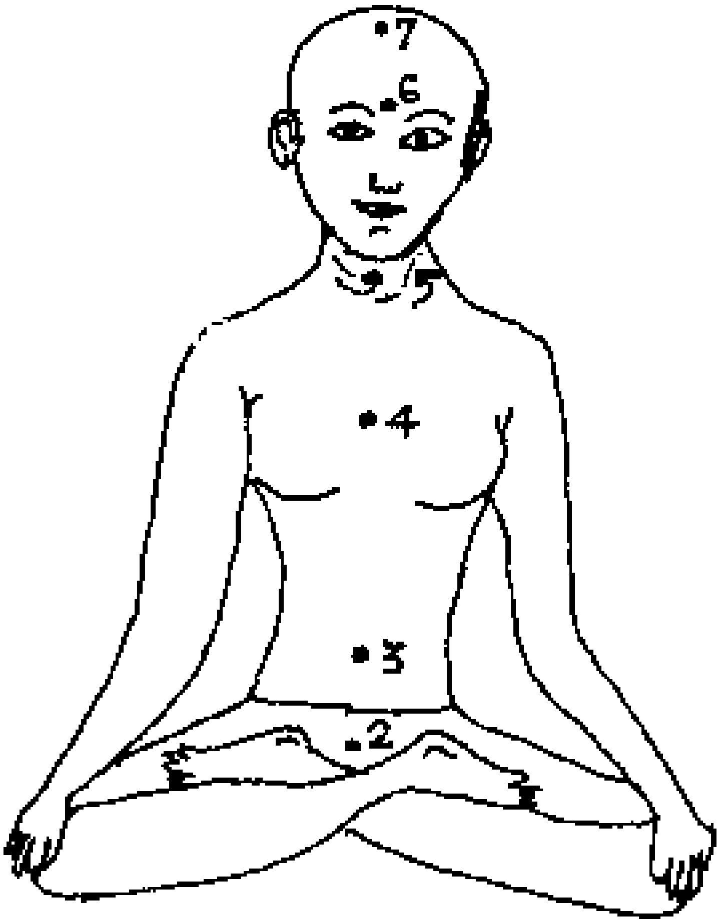

चित्र ३.०१ शरीर के सात चक्र

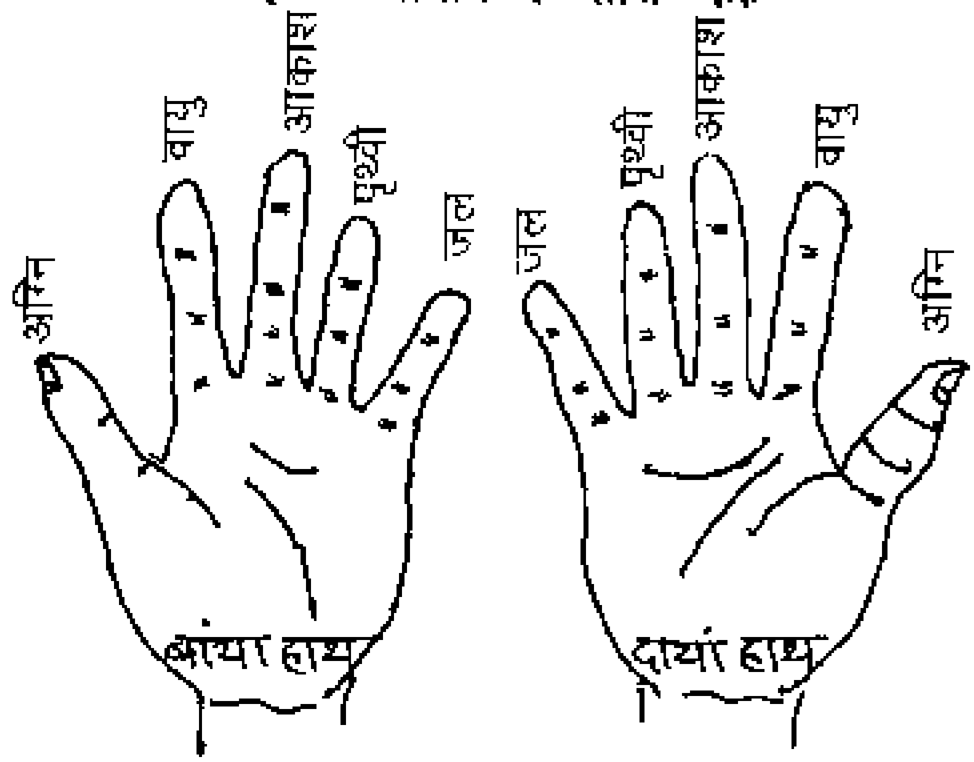

शरीर के पंच महाभूतों को दर्शाने वाली पाँच उँगलियाँ

६.	आज्ञा	दोनों भौहों के मध्य में	ये सभी चक्रों का राजा है। शारीरिक विकास, मस्तिष्क और स्मरणशक्ति का संतुलन। नेत्रादि का नियमन
७.	सहस्त्रार	मस्तिष्क के ऊपर के भाग में, जहाँ चोटी रखी जाती है।	मस्तिष्क मेरुजल का संचालन, मस्तिष्क का नियमन, इसका सभी ग्रंथियों पर प्रभाव पड़ता है। कामेच्छा का नियमन।

अध्याय– २

स्वस्थ जीवन

(१) स्वस्थ वायु–

इस पर शरीर की स्वस्थता अत्यधिक निर्भर करती है। रहने के स्थान में अच्छी हवा के आवागमन का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। वायु में लगभग पाँचवाँ हिस्सा ऑक्सीजन होता है, जो शरीर के लिए अत्यावश्यक है। साधारण तौर पर चार मिनट से अधिक ऑक्सीजन न मिलने पर मस्तिष्क स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त हो जाता है तथा आम–तौर पर मृत्यु हो जाती है।

(२) शारीरिक सक्रियता–

इसके अन्तर्गत टहलना, योग, व्यायाम आदि शारीरिक क्रियायें गर्भित हैं।

(३) स्वस्थ पेयजल–

अनेक स्थानों पर स्वस्थ पेयजल की प्राप्ति में कठिनाई पायी जाती है। खारा, गन्दा, कीटाणु मिश्रित पानी प्राप्त होता है, जिससे अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं, जैसे कब्ज, पीलिया, अतिसार (diarrhoea) आदि। हमारे शास्त्रों में पानी छानकर पीना आवश्यक बताया गया है, जिससे जीव रक्षा भी होती है। हो सकता है कि इससे पानी का सम्पूर्ण दोष दूर न हो पाये। ऐसी दशा में पानी उबालकर अथवा फ़िल्टर (ज़ीरो–बी आदि), अथवा एकुआगार्ड (Aqua Guard) द्वारा शुद्धीकरण करके पानी पीना

चाहिए। पानी पीने की मात्रा दिन भर में न अधिक और न कम होनी चाहिए तथा मौसम के ऊपर भी निर्भर करेगी। अधिक पानी पीने से गुर्दे क्षतिग्रस्त हो सकते हैं एवम कम पीने से गुर्दे/गॉल ब्लैडर में पथरी की और पानी की कमी (dehydration) की समस्या हो सकती है।

(४) स्वस्थ भोजन–

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का विचार कर शुद्ध सात्विक भोजन लेना चाहिए। "चौका" का तात्पर्य इसी से है। साधारण तौर पर दोपहर के भोजन के बाद विश्राम करना चाहिए–पहले बाँए करवट, फिर दाँयें करवट। किन्तु यह सब के लिये व्यवहारिक नहीं है। सांयकाल के भोजन (अर्थात जिनाज्ञानुसार दिन में) के पश्चात थोड़ी देर धीमी गति से टहलना चाहिए। दोनों समय के भोजन के पश्चात मूत्र त्याग अवश्य करना चाहिए। सांयकाल के भोजन और रात के सोने में यदि कम से कम चार घंटे का अन्तराल हो तो उत्तम रहेगा, क्योंकि इतने समय में भोजन लगभग आधा पच जाता है। भोजन में क्या होना चाहिए, इसकी चर्चा आगे की जायेगी।

(५) स्वस्थ मानसिकता–

अपनी भावनाओं को शुभ अथवा शुद्ध रखना चाहिए और उन पर नियंत्रण रखना चाहिए। पं० जुगल किशोर मुख्तार द्वारा लिखित "मेरी भावना" बहुत प्रचिलित और सर्वत्र उपलब्ध है। उसके अनुरूप भावना भाना चाहिए।

मन की स्थिति एवम् मानसिक स्थिति का शरीर के स्वास्थ्य के ऊपर गहरा प्रभाव पड़ता है।

अनेक विषम परिस्थितियाँ जीवन में आती हैं, तब चिन्ता, क्रोध, भय, शोकादि मनोदशा को बिगाड़ देती हैं। इस विषय में उल्लेख करना है कि लम्बे समय तक की ऋणात्मक भावनाओं (जैसे क्रोध, भय, निराशा, हीनता की भावना, घमंड आदि) द्वारा रोगों का कैसे जन्म होता है, इसका विशेष विस्तृत वर्णन भाग ४ में दिया है। इस प्रकार की भावनाओं के कुछ समाधान निम्नवत दिये हैं:–

चिन्ता– परिस्थितियों को देखिये कि आपका इसमें क्या कर्त्तव्य बनता है। यदि किसी को आर्थिक सहायता देना हो, किसी की वैयावृत्य या सेवा करनी हो, कोई औषधि देनी हो अथवा और कोई कार्य करना हो जो आपके वश में हो, तो वह करके यह संतुष्टि कर लीजिए कि जो आप कर सकते थे, वह आपने कर दिया है और फल

आपके वश में नहीं है। यदि आपको कोई स्वयं की हानि हो गयी है, तो संसार दशा का विश्लेषण अथवा तत्त्वों का चिन्तन अथवा आत्मा के आकिञ्चन्य धर्म का मनन करें।

क्रोध– इसको क्षमा द्वारा जीतें। आकिंचन धर्म हमें बताता है कि इस आत्मा का किसी भी अन्य आत्मा या द्रव्य से किंचित भी सम्बन्ध नहीं है, अतएव क्रोध किस पर ?

भय– आत्मा अजर, अमर है। इसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। जीवन–मरण मात्र संसार चक्र है, वह आत्मा के गुणों का घात नहीं कर सकता। शरीर को आत्मा से अलग कर देखें तथा तदनुसार चिन्तवन करें।

शोक– आत्मा के एकत्व गुण को अथवा आकिञ्चन्य धर्म का मनन करें। वैराग्य भावनाओं का चिन्तवन करें।

मन के विषय में पूज्य मुनि श्री १०८ तरूण सागर जी के भोपाल में जामा मस्जिद के सामने सार्वजनिक सभा में दिये गये एक मननीय प्रवचन "मन को कैसे जिएँ" से उद्धृत सारांश भाग १ के परिशिष्ट १.०६ में दिया हैं

(६) स्वस्थ आत्मा–

अपने जीवन को धर्ममयी बनायें। जिस प्रकार दूध–शक्कर आपस में घुल जाते हैं, उसी प्रकार जीवन और धर्म का तालमेल होना चाहिए। धर्म की अनेक परिभाषायें हैं जैसे वस्तु का स्वभाव, दशलक्षण धर्म, सम्यक्दर्शन–सम्यग्ज्ञान–सम्यक्चारित्र अर्थात रत्नत्रय–व्यवहार एवम् निश्चय, अहिंसा परमो धर्म, पंचपरमेष्ठी भक्ति, षोडशकारण भावनायें, आत्म ध्यान आदि। वस्तुतः इनमें कोई विशेष भेद नहीं है। सभी एक दूसरे की पूरक हैं तथा एक दूसरे के बिना अधूरी हैं।

(७) स्वस्थ जीवन यापन–

अपने–अपने कार्य क्षेत्रों में चाहे वह व्यवसायिक हो या नौकरी या अन्य कोई, न्यायपूर्वक धन अर्जित करें। रिश्वतखोरी, अन्याय की कमाई, स्थूल झूठ, मिलावट, कर की चोरी, हिंसात्मक जीवन शैली से बचें।

याद कर जब वक्ते पैदाइश,
सभी हँसते थे, तू रोता।
कुछ ऐसी करनी से रह कि,
मरते वक्त सभी रोते हैं, तू हँसता।।

अध्याय– ३

शारीरिक एवं मानसिक सक्रियता

शारीरिक एवम् मानसिक स्वस्थता के लिये, इनकी सक्रियता अत्यावश्यक है।

(१) जापानी जल पद्धति–

प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच जाने एवम् दाँतों की सफाई से पूर्व, ताजा १.२५ लीटर पानी पी जायें। जाड़े की ऋतु में इसे गुनागुना कर पी सकते हैं अथवा रात्रि को थर्मस में रख सकते है। यदि इतना पानी शुरू में न पी सकें, तो धीरे–धीरे मात्रा को बढ़ाते हुए एक माह में सवा लीटर की मात्रा तक पहुँच जाये। शरीर में जो कोई भी आन्तरिक रोग होगा, उसकी प्रतिकार स्वरूप दवा स्वभावतः प्रकृति द्वारा जीभ के ऊपर मैल के रूप में बनती है। पानी पीने से एक तो वह दवा पेट में पहुँचकर फायदा पहुँचाती है, दूसरे यह पानी आँतों की सफाई करता है और दस्त को ठीक करता है। कब्ज को दूर करने में सहायक होता है। उपरोक्त पानी पीकर ४५ मिनट तक कुछ खाना-पीना नहीं चाहिए।

(२) दाँतों एवम् आँखों की देखभाल–

शौच जाने के पश्चात दाँत और मुँह की सफाई करें। कोई शुद्ध शाकाहारी मंजन/पेस्ट का ही प्रयोग करें। बबूल, नीम, वीको वज्रदन्ती आदि पेस्ट अथवा मंजन इसके अन्तर्गत आते हैं। नीम की दातून अथवा बबूल की दातून का भी उपयोग कर सकते हैं। समुचित लाभ के लिये एक दिन मंजन तथा दूसरे दिन पेस्ट का प्रयोग करें ताकि दाँतों की तथा उनके बीच की जगह अच्छी तरह साफ हो सके। ज्यादा अच्छा होगा कि पहले मंजन/पेस्ट करके तीन–चार मिनट तक छोड़ दें, ताकि उसके द्वारा मसूढ़ों पर स्वस्थकारी प्रभाव पड़ सके, फिर कुल्ला करें। इस दौरान, हजामत बनायी जा सकती है। आँखों को साफ करके २८–३० दफा ताजे पानी से छींटे मारें, इससे प्रौढ़ अवस्था में मोतियाबिन्द (Cataract) का बढ़ना कम होता है अथवा रुकने में सहायता मिलती है। आँखों के देखभाल के विषय में विशेष तौर पर अध्याय ७ में वर्णन देखिए।

(३) प्रातः भ्रमण–

शौच तथा कुल्ला से निवृत्ति के पश्चात प्रातःभ्रमण करें। ऐसी जगह टहलें जहाँ वातावरण में धूल, धुँआ न हो। इस भ्रमण में थोड़ा तेज गति से चलें तथा अपनी क्षमता के अनुसार सीधे रहकर दो से पांच किलोमीटर तक टहलें। इतना ध्यान रखें कि इतना टहलना ज्यादा न हो कि लौटकर थकान महसूस करें। यदि आप दो किलोमीटर भी नहीं चल पाएं, तो अपने क्षमतानुसार टहलें।

उच्च रक्तचाप एवम् ह्रदय रोग से पीड़ित तेज गति से नहीं, बल्कि धीरे–धीरे टहलें। इन व्यक्तियों को यह भी सलाह दी जाती है कि वे जाड़े की ऋतु में अधिक ठंड की दशा में प्रातः भ्रमण न करें, किन्तु दोपहरादि समय में टहल सकते हैं।

(४) प्राणायाम

शब्दावली –	पूरक	–	श्वास अन्दर लेना
	कुम्भक	–	श्वास को अन्दर रोककर रखना
	रेचक	–	श्वास को बाहर छोड़ना
	बाह्य कुम्भक	–	श्वास को बाहर ही रोककर रखना

प्राण का आयाम (नियन्त्रण) ही प्राणायाम है। इससे इन्द्रियों एवम् मन के दोष दूर करने में सहायता मिलती है।

नियम–

(१) प्राणायाम शुद्ध सात्विक निर्मल स्थान पर करना चाहिए। यदि प्रदूषण वातावरण में ही करना हो, तो वहाँ पहले घृत व गुग्गुलादि से उस स्थान को सुगन्धित करें।

(२) श्वास सदा नसिका से ही लेना चाहिए। इससे श्वास फिल्टर होकर अन्दर आता है और विजातीय तत्त्व नासा छिद्रों में ही रुक जाते हैं।

(३) प्राणायाम करने का सर्वोत्तम समय प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर योगासनों से पूर्व का है। यदि अन्य समय करना हो, तो भोजन से कम से कम चार-पाँच घंटे पूर्व करना चाहिए।

(४) प्राणायाम के लिये पद्मासन, वज्रासन, अर्धपद्मासन अथवा सुखासन में बैठना चाहिये, जिसमें आकुलता न हो। यदि किसी भी आसन में बैठना सम्भव न हो, तो कुर्सी पर भी सीधे बैठकर कर सकते हैं, परन्तु रीढ़ की हड्डी सदा सीधी रखें। आसन विद्युत का कुचालक होना चाहिए।

(५) शुरू में पाँच मिनट तक करें, बाद में आधा घंटा तक बढ़ा सकते हैं। प्राणायाम नियत संख्या में करें, कम या ज्यादा न करें।

(६) प्राणायामों को अपनी प्रकृति एवम् ऋतु के अनुकूल करना चाहिए।

(७) प्राणायाम करते हुए यदि थकान अनुभव हो, तो दूसरा प्राणायाम करने से पहले ५-६ सामान्य दीर्घ श्वास लेकर विश्राम कर लेना चाहिए।

(८) गर्भवती महिला, भूख से पीड़ित, ज्वर रोगी आदि व्यक्ति को प्राणायाम नहीं करना चाहिए। रोगी व्यक्ति को प्राणायाम के साथ दी गई सावधानी का ध्यान करते हुए करना चाहिए।

(९) प्राणायाम करने से पूर्व ओऽम् का लम्बा नादपूर्वक उच्चारण करना उचित है। ऐसा करने से मन शान्त एवम् एकाग्र हो जाता है।

(१०) प्राणायाम का अभ्यास धीरे-धीरे, उतावले हुए बगैर, धैर्यपूर्वक, सावधानी के साथ करना चाहिए।

प्राणायाम कई प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु निम्न प्राणायामों की अनुशंसा की जाती है :-

(क) भस्त्रिका प्राणायाम

नाक से श्वास को पूरा अन्दर डायफ्राम तक भरना तथा बाहर भी पूरी शक्ति के साथ छोड़ना होता है। पेट को नहीं फूलना चाहिए। जिनके फैंफड़े व हृदय कमजोर हों अथवा उच्च रक्तचाप या हृदय रोग हो, वे इसको मन्द गति से करें। बाकी लोग मध्यम गति से बढ़ाते हुए तीव्र गति से करें। इस प्राणायाम को ३ से ५ मिनट तक करना चाहिए। इस प्राणायाम को ग्रीष्म ऋतु में अल्प मात्रा में करें। प्राणायाम करते समय आँखें बन्द रखें और मन में श्वास-प्रश्वास के साथ ओऽम् का मानसिक रूप से चिन्तन व मनन करें। श्वास को अन्दर भरते समय यह मन में विचार

करें कि ब्रह्माण्ड में विद्यमान दिव्य शक्ति, ऊर्जा, पवित्रता, शान्ति व आनन्द आदि जो भी शुभ है, वह प्राण के साथ मेरे देह में प्रविष्ट हो रहा है। इस प्रकार से किया हुआ प्राणायाम विशेष लाभप्रद होता है।

लाभ–

(१) सर्दी–जुकाम,एलर्जी (Allergy), श्वास रोग, दमा, पुराना नजला, साइनस आदि समस्त कफ रोग दूर होते हैं। फैंफड़े सबल बनते हैं तथा हृदय व मस्तिष्क को भी शुद्ध प्राण वायु मिलने से आरोग्य लाभ होता है।

(२) थायराइड (Thyroid) व टॉन्सिल आदि गले के समस्त रोग दूर होते हैं।

(३) त्रिदोष सम होते हैं। रक्त परिशुद्ध होता है और शरीर के विषाक्त, विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होता है।

(४) प्राण व मन स्थिर होता है।

(ख) कपाल– भाति प्राणायाम

कपाल अर्थात मस्तिष्क और भाति का अर्थ होता है दीप्ति, आभा, तेज। जिस प्राणायाम के करने से मस्तिष्क याने माथे पर आभा, ओज व तेज बढ़ता हो वह प्राणायाम है कपाल–भाति। इसमें मात्र रेचक अर्थात श्वास को शक्तिपूर्वक बाहर छोड़ने पर ही पूरा ध्यान दिया जाता है। श्वास को भरने के लिये प्रयत्न नहीं करते अपितु सहज रूप से जितना श्वास अन्दर चला जाता है जाने देते हैं, पूरी एकाग्रता श्वास को बाहर छोड़ने में ही होती है। ऐसा करते हुए स्वाभाविक रूप से पेट में भी आकुंचन व प्रसारण की क्रिया होती है। इस प्राणायाम को करते समय मन में ऐसा विचार करना चाहिये कि जैसे ही मैं श्वास को बाहर छोड़ रहा हूं, इस प्रश्वास के साथ मेरे शरीर के समस्त रोग बाहर निकल रहे हैं, नष्ट हो रहे है। जिसको जो शारीरिक रोग हो उस दोष या विकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग–द्वेष आदि को बाहर छोड़ने की भावना करते हुए रेचक करना चाहिए। इस प्राणायाम को तीन से पांच मिनट तक करना चाहिए। प्रारम्भ में पेट या कमर में दर्द हो सकता है। वह धीरे–धीरे अपने आप मिट जायेगा। ग्रीष्म ऋतु में पित्त–प्रकृति वाले करीब दो मिनट ही यह अभ्यास करें।

लाभ–

(१) मस्तिष्क व मुख मण्डल पर ओज, तेज, आभा व सौन्दर्य बढ़ता है।

(२) समस्त कफ रोग, दमा, श्वास, एलर्जी, साइनस आदि रोग नष्ट होते हैं।

(३) हृदय, फैंफड़ों व मस्तिष्क के समस्त रोग दूर होते हैं। हृदय की शिराओं में आए हुए अवरोध (Blockage) खुल जाते हैं।

(४) मोटापा, मधुमेह (diabetes), गैस, कब्ज, अम्ल पित्त, गुर्दे व प्रोस्टेट से सम्बन्धित सभी रोग निश्चित रूप से दूर होते हैं।

(५) मन स्थिर, शान्त व प्रसन्न रहता है। नकारात्मक विचार नष्ट हो जाते हैं जिससे मायूसी (depression) आदि रोगों से छुटकारा मिल जाता है।

(६) समस्त चक्रों का शोधन होता है।

(७) आमाशय, अग्न्याशय (Pancreas), यकृत (Liver), प्लीहा (Spleen), आन्त्र (Intestines), गुर्दे (Kidneys) का आरोग्य विशेष रूप से बढ़ता है। पेट के लिए बहुत से आसन करने पर भी जो लाभ नहीं हो पाता, मात्र इस प्राणायाम के करने से ही सब आसनों से भी अधिक लाभ हो जाता है। दुर्बल आंतों को सबल बनाने के लिए यह प्राणायाम सर्वोत्तम है।

(ग) अनुलोम–विलोम प्राणायाम

दाँये हाथ की तर्जिनी एवम् मध्यमा उंगलियों को दोनों भौंहों के बीच में जहाँ आज्ञा चक्र है (देखिये चित्र ३.०१) पर रखें और प्राणायाम के अन्त तक वहीं रखे रहें। पूरे प्राणायाम के दौरान आंखें बंद रहेंगी। फिर अँगूठे से दाहिने नाक को बन्द करके णमो अरिहंताणं मन में बोलते हुए, अरिहंतों को भाव नमस्कार करते हुए बाँये नाक से पूरक करें। फिर अँगूठा हटाकर बाँये नाक को अनामिका अँगुली से बन्द करके णमो सिद्धाणं मन में बोलते हुए, सिद्धों के चरणों में भाव नमस्कार करते हुए दाँयें नाक से रेचक करें। फिर णमो आइरियाणं मन में बोलते हुए, आचार्यों को भाव नमस्कार करते हुए दाँये नाक से पूरक करें। फिर अनामिका उंगली हटाकर दाँये नाक अंगूठे से बंद करके णमो उवज्झायाणं मन में बोलते हुए, उपाध्यायों के चरणों में भाव नमस्कार करते हुए बाँए नाक से रेचक करें। फिर णमो लोए मन में बोलते हुए सर्व साधु का ध्यान

करते हुए बाँए नाक से पूरक करें। फिर अँगूठा हटाकर बॉये नाक अनामिका उंगली से बंद करके सव्व साहूणं मन में बोलते हुए, सर्व साधुओं के चरणों में भाव नमस्कार करते हुए दाँये नाक से रेचक करें। इसी प्रकार णमोकार मंत्र का ध्यान करते हुए दाँये-बाँये नाक से पूरक-रेचक करते हुए नौ बार णमोकार मंत्र बोलें। फिर इस क्रम को और समयावधि को अधिकतम १० मिनट तक बढ़ावें। ग्रीष्म काल में इस अवधि को अधिकतम ५ मिनट तक करें। ये प्राणायाम कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रिया को प्रारम्भ करने में सहायक होती है।

लाभ–

(१) सम्पूर्ण नाड़ियों की शुद्धि होती है, जिससे देह स्वस्थ, कान्तिमय एवं बलिष्ठ बनता है।

(२) सन्धिवात, आमवात, गठिया, कम्पवात, स्नायु दुर्बलता आदि समस्त वात रोग, मूत्र रोग, धातु रोग, शुक्रक्षय, अम्ल पित्त, शीत-पित्त आदि समस्त पित्त रोग, सर्दी, जुकाम, पुराना नजला, साइनस, अस्थमा, खांसी, टॉसिल आदि समस्त कफ रोग दूर होते हैं। त्रिदोष प्रशमन होता है।

(३) हृदय की शिखाओं में आए हुए अवरोध (blockage) खुल जाते हैं।

(४) कॉलेस्ट्रोल आदि की अनियमितताएं दूर हो जाती हैं।

(५) नकारात्मक चिन्तन में परिवर्तन होकर सकारात्मक विचार बढ़ने लगते हैं। आनन्द, उत्साह व निर्भयता की प्राप्ति होने लगती है।

(६) संक्षेप में कह सकते हैं कि इस प्राणायाम से तन, मन, विचार व संस्कार सब परिशुद्ध होते हैं। देह के समस्त रोग नष्ट होते हैं तथा मन परिशुद्ध होकर पंच परमेष्ठी के ध्यान में लीन होने लगता है। मन ध्यान की उन्नत अवस्था के योग्य बनता है।

(५) व्यायाम

जो व्यायाम आपको अपने अनुभव से लाभप्रद हो, उसको करें। इसके अतिरिक्त प्राणिक व्यायाम जिसका वर्णन भाग ५ के अध्याय ३ में दिया है, करें। इससे शरीर के समस्त अवयव स्वस्थ रहते हैं।

(६) योगासन

शौचादि से निवृत्त होकर, प्राणायाम के पश्चात खाली पेट करना चाहिए। योगासन भोजन के छह घंटे बाद भी किया जा सकता है। वृद्धों एवं दुर्बल व्यक्तियों को योगासन अल्प मात्रा में करना चाहिए। आसन करते समय शरीर पर वस्त्र कम व सुविधाजनक होने चाहिए। गर्भवती महिलायें कठिन आसनादि न करें। जिनके कान बहते हों, नेत्रों में लाली हो, स्नायु एवं हृदय दुर्बल हो उनको शीर्षासन नहीं करना चाहिए। हृदय दौर्बल्य वाले को अधिक भारी आसन जैसे पूर्ण शलभासन, धनुरासन आदि नहीं करना चाहिए। अण्डवृद्धि वालों को भी वे आसन नहीं करने चाहिए जिनसे नाभि के नीचे वाले हिस्से पर अधिक दबाब पड़ता है। उच्च रक्तचाप वाले रोगियों को सिर के बल किये जाने वाले शीर्षासन आदि तथा महिलाओं को ऋतुकाल में ४–५ दिन आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिये। जिनको कमर व गर्दन में दर्द रहता हो, वे आगे झुकने वाले आसन न करें। जिन व्यक्तियों का कभी अस्थि भंग हुआ हो, वे कठिन आसनों का अभ्यास कभी नहीं करें अन्यथा उसी स्थान पर हड्डी दोबारा टूट सकती है।

आसन करते समय शरीर के साथ जबरदस्ती न करें। आसन कसरत नहीं है, अतः धैर्यपूर्वक आसन करें। चटाई, टाट, कम्बल, दरी या कुछ ऐसा ही बिछाकर आसन करें। खुली भूमि पर बिना कुछ बिछाये आसन कभी न करें, जिससे शरीर में निर्मित होने वाला विद्युत प्रवाह नष्ट न हो जाए। आसन करने के बाद ठंड या तेज हवा में न निकलें। यदि स्नान करना हो तो आधा घंटा बाद करें। आसन करते-करते मध्यान्तर में तथा अंत में शवासन करके, शिथिलीकरण के द्वारा शरीर के तंग बने स्नायुओं को आराम दें। आसन के बाद मूत्र–त्याग अवश्य करें, जिससे एकत्रित दूषित तत्त्व बाहर निकल जायें।

दृष्टिः आंखें बन्द करके योगासन करने से मन की एकाग्रता बढ़ती है, जिससे मानसिक तनाव व चंचलता दूर होती है।

योगासनों का अभ्यास किसी योग्य योग शिक्षक की सलाह से ही करें। निम्न योगासन को साधारण तौर पर किये जा सकते हैंः–

(क) सिंहासन

आँखें बन्द कर, मुँह खोलकर जीभ को गोल बनाकर मुँह से श्वास भरें, फिर नाक से धीरे-धीरे श्वास निकालें। इस क्रम को तीन बार करें।

(ख) भ्रमरासन

हाथों की तर्जनी और मध्यमा अंगुलियों को भौंहों के ऊपर-नीचे रखें, मध्यमा और कनिष्ठ अंगुलियों को होठों के ऊपर-नीचे रखें। दोनों अँगूठों को कानों के अन्दर इस प्रकार रखें कि कान हवा बन्द (air-tight) हो जावे। फिर नाक से पूरक करते हुए, बहुत धीरे-धीरे नाक से ही गुंजायमान करते हुए इस प्रकार श्वास निकालें कि लगेगा कि कानों में भौंरे के गूँजने की आवाज आ रही है। यह मन में विचार लावें कि यह मन की शान्ति के लिये एवम् शरीर के समस्त अवयवों (body tissues) के पारस्परिक समन्वय (Harmonious co-ordination) के लिये है। इस प्रक्रिया को तीन बार करें।

(ग) पवन मुक्तासन

पीठ के बल लेटें। अपना ध्यान मणिपुर चक्र में रखें। फिर साँस लेते हुए दाँए पैर के घुटने को पेट पर रखें। फिर दोनों हाथों की सहायता से रेचक करते हुए दाँए घुटने को नाक से छुआने का प्रयास करें। इस स्थिति में १० से ३० सेकेन्ड तक बाह्य कुम्भक करें। फिर श्वास लेते हुए पैर सीधा करें। इस क्रिया को फिर बाएँ पैर से करें, फिर एक-साथ दोनों पैरों से करें। इस समस्त प्रक्रिया को तीन बार करें। यह आसन उदरगत वायु के लिये उत्तम है। इस आसन से पेट की चर्बी कम होती है। कब्ज दूर होकर पेट विकाररहित होता है। यह सम्भव है कि इस आसन को करते हुए आप पेट के किसी अंग में दर्द महसूस करें। इससे यह विदित होगा कि उस अंग में कोई समस्या है। ऐसी दशा में इसी आसन में अधिक देर तक रखते हुए, उस दर्द को बर्दाश्त करें। यही उस अंग की समस्या का समाधान होगा।

(घ) पेट के लिये आसन

पीठ के बल लेट जायें। फिर दाँए पैर को उठाकर ३० डिगरी के कोण पर हल्का सा रुकें, फिर ६० डिगरी के कोण पर हल्का सा रुकें, फिर ९० डिगरी के कोण पर या जहाँ तक पैर ऊँचा उठ सके, हल्का सा रुकें, फिर पैर को नीचे लाते हुए ६० डिगरी के कोण पर हल्का सा रुकें, फिर ३० डिगरी के कोण पर से अत्यन्त ही धीमी

गति से पैर को अधिक से अधिक समय में नीचे लावें। इस क्रिया को फिर बाएँ पैर से दोहरायें, फिर दोनों पैरों से एक साथ। इस तमाम प्रक्रिया को तीन बार करें।

यह जठराग्नि तेज करता है और पेट सम्बन्धी रोग में लाभदायक है।

(ङ) मूल बन्ध

पीठ के बल लेटें। पैरों को चौड़ा कर घुटनों को मोड़कर रखें। अपना ध्यान मूलाधार चक्र में रखें। फिर नाक से श्वास लेते हुए पेट में भरे, फैंफड़ों में हवा न जाये। फिर तीव्रता से रेचक करते हुए, गुदा का अधिक से अधिक अंदर की ओर संकोचन करें। फिर देर तक बाह्य कुम्भक करें। फिर धीरे-धीरे श्वास लेते हुए, गुदा को मूल स्थिति में ले आवें। इस प्रक्रिया को दस बार से प्रारम्भ कर अधिकतम पच्चीस बार तक करें।

यह बवासीर में लाभदायक है। यह जठराग्नि को तेज करता है। ब्रह्मचर्य के लिए बंध महत्वपूर्ण है।

(च) नावासन

पेट के बल लेट जायें तथा दौनों हाथों को पीछे फैलायें तथा पूरक करें। फिर दौनों पैरों और दौनों हाथों को एक साथ उठाते हुए रेचक करें तथा बाह्य कुम्भक करें। फिर पूर्ववत स्थिति में पूरक करते हुए आवें। इस प्रक्रिया को तीन बार करें। यह उच्च रक्तचाप में लाभदायक है।

(छ) भुजंगासन

पेट के बल लेटें और हाथ सीधे रखें। ध्यान रहे कि सिर उत्तर दिशा में न हो। अपना ध्यान विशुद्ध चक्र में रखें। पूरक करते हुए सिर और धड़ को अधिक से अधिक ऊपर उठायें, हाथ यथावत रहेंगे। फिर कुम्भक करें। तत्पश्चात् रेचक करते हुए, यथावत स्थिति में आकर दस सैकिन्ड विश्राम करें। इसी प्रक्रिया को तीन बार करें। अधिक बार नहीं करें। यह रीढ़ की हड्डी के लिये लाभदायक है।

(ज) शलभासन

पेट के बल लेट जायें तथा दोनों हाथों को पीछे ले जाकर एक दूसरे को बांध लें। फिर पूरक करते हुए छाती को और दोनों पैरों को यथासम्भव ऊपर उठायें और कुम्भक करें। मन ही मन २० तक गिनती करें। फिर पूर्ववत स्थिति में आ जायें। इस प्रक्रिया को तीन बार करें। यह मेरुदण्ड के निचले भाग के लिये विशेष लाभदायक है।

(झ) धनुरासन

पेट के बल लेटें। अपना ध्यान मणिपुर चक्र में रखें। पूरक करते हुए, दोनों हाथों से दोनों पैरों को पकड़कर कुम्भक करें। फिर पूर्ववत स्थिति में आ जायें। इसे तीन बार करें। इससे पेट की चरबी कम होती है, गैस दूर होती है, पेट के रोग नष्ट होते हैं, कब्ज में लाभ होता है, भूख खुलती है, छाती का दर्द दूर होता है, हृदय मजबूत बनता है, गले के रोग नष्ट होते हैं, आवाज मधुर होती है, श्वसन प्रक्रिया सुव्यवस्थित चलती है, मुखाकृति सुन्दर बनती है, आँखों की रोशनी बढ़ती है और तमाम रोग दूर होते हैं, हाथ-पैर का कम्पन रुकता है, पेट के स्नायुओं में खिंचाव आने से पेट को अच्छा लाभ होता है, जठराग्नि तेज होती है और पाचन शक्ति बढ़ती है, वायु रोग नष्ट होता है, मेरुदण्ड लचीला व स्वस्थ बनता है। सर्वाइकल स्पाँडेलाइटिस (cervical spondylytis), कमर दर्द एवमं उदर रोगों में लाभदायक है। इसमें भुजंगासन और शलभासन का समावेश होने से दोनों आसनों का लाभ मिलता है। स्त्रियों के लिए ये आसन विशेष लाभकारक है। इससे मसिक धर्म के विकार और गर्भाशय के तमाम रोग दूर होते हैं।

(ञ) ताड़ासन

सीधे खड़े होकर कुम्भक करते हुए दोनों हाथों को पार्श्वभाग से दीर्घ श्वास भरते हुए ऊपर उठायें और पैर के पंजे भी उठायें ताकि पूरा शरीर मात्र दोनों पंजों पर रहे तथा दृष्टि एकदम ऊपर आकाश की ओर रहे। बाद में यथावत पूर्व स्थिति में आ जायें। इस प्रक्रिया को तीन बार करें। यह वृद्धावस्था में शरीर के सन्तुलन बनाये रखने के लिये विशेष लाभदायक है। इससे फैंफड़े मजबूत होते हैं।

(ट) अन्य आसन

यदि कोई अन्य आसन करते हों, तो करें।

(ठ) ओऽम् का उच्चारण

पद्मासन, अर्धपद्मासन, सुखासन अथवा सुविधाजनक आसन में बैठकर दोनों हाथों में अंगूठे के पोटूए से तर्जनी अंगुली के पोटूए को स्पर्श करें। फिर दीर्घ श्वास लेकर ओऽम् की जोर से ध्वनि करते हुए देर तक धीरे-धीरे श्वास निकालें। चिन्तन करें कि इस ध्वनि द्वारा आप त्रिलोक में विराजमान समस्त चैत्यालय व ज़िन विम्बों के चरणों में नमोऽस्तु कर रहे हैं। इस प्रकार तीन बार करें।

(ड) शवासन

समस्त शारिरीक क्रियाओं (प्रातः भ्रमण, प्राणायाम, व्यायाम, योगासन) के पश्चात यह आसन अवश्य करना चाहिये।

पीठ के बल सीधे लेट जायें। दोनों पैरों में लगभग एक फुट का अन्तर रखें, दोनों हाथों को जंधाओं से थोड़ी दूरी पर रखते हुए हथेलियों को ऊपर की ओर खोलकर रखें। आंखें बन्द, गर्दन सीधी, पूरा शरीर तनाव रहित अवस्था में हो। धीरे-धीरे चार-पाँच लम्बे श्वास भरें व छोड़ें। अब मन द्वारा शरीर के प्रत्येक भाग को देखते हुए संकल्प द्वारा एक-एक अवयव को शिथिल व तनाव रहित अवस्था में अनुभव करना है।

बन्द आँखों से ही मन के द्वारा विचार करें कि विश्रान्ति (relaxation) (१) खोपड़ी (Scalp), पिनीयल ग्रंथि (pineal gland), मस्तिष्क (brain) के बाँए भाग में, दाँए भाग में, पिछले भाग में, आगे के भाग में, मध्य भाग में तथा इस प्रकार सम्पूर्ण मस्तिष्क में प्रवाहित हो रही है और खोपड़ी, पिनीयल ग्रंथि व सम्पूर्ण मस्तिष्क आराम कर रहा है और ये सब अंग पूर्ण विश्रान्ति में हैं। इस विश्रान्ति की अनुभूति भी करें। इस प्रकार की भावना क्रमशः (२) मस्तिष्क के पिछले भाग से लेकर रीढ़ की हड्डी से नीचे तक (३) माथा, आंखें, कनपटी, कानों, नाक, पिटूयट्री ग्रंथि (pituitary gland), गाल, तालु, ऊपर के मसूढ़े, ऊपर के दाँत, टौन्सिल, जीभ, नीचे के दाँत, नीचे के मसूढ़े, सम्पूर्ण मुँह एवं सम्पूर्ण सिर (४) गला, थाइराइड ग्रंथि (thyroid gland), पैराथाइराइड ग्रंथि (parathyroid gland), सम्पूर्ण गर्दन (५) कंधे, कंधों का जोड़, बाहु

(arm), कोहनी, हाथ, कलाई, हथेली एवम् उसकी उंगलियाँ (६) कंधे से लेकर पीछे नीचे कमर तक पूरी पीठ (७) हृदय एवम् थाइमस ग्रंथि (thymus gland) (८) फैंफड़े और फैंफड़ों का पिजंरा (thoracic cage) तथा डायफ्राम (diaphragm) (६) ग्रसिका (oesophagus), जठर (stomach), यकृत (liver), पित्ताशय (gall bladder), अग्न्याशय (pancreas), प्लीहा (spleen) (१०) पक्वाशय (duodenum), क्षुद्रान्त, बृहद आँत, मलाशय (rectum), गुदा (anus) (११) गुर्दे (kidneys), तथा अधिवृक्क ग्रंथियाँ (adrenal glands) (१२) मूत्र वाहिनी (ureter tubes), मूत्राशय (bladder), प्रोस्टेट ग्रंथि (prostate gland), मूत्र मार्ग (urethra) (१३)नाभि तथा उसका आसपास का क्षेत्र (१४) समस्त यौनांगों, तथा पैरिनियम (perineum) और पैरिटोनियम (peritonium) (१५) नितम्ब (hips) (१६) जाँघ, घुटने, टाँग, टखना तथा पैर एवं उसकी उँगलियाँ के प्रति भावना करें। से सब भावनायें एवम् विश्रान्ति की अनुभूति उक्त क्रम से अलग-अलग ऊपर सिर से प्रारम्भ करते हुए नीचे पैरों तक करना है। फिर सोचें कि मेरा समस्त शरीर आराम कर रहा है और इसमें पूर्ण विश्रान्ति है एवम् शव के समान हो गया है। इसकी अनुभूति भी करें।

अब विचार करें कि आत्मा शरीर से ऊपर निकल आई है और शरीर मात्र शव पड़ा है। इसको तटस्थ भाव से, निःसंग भाव से देखें। फिर आत्मा को भाव से विदेह क्षेत्र में ले जाकर वहाँ विराजमान सीमंधरादि तीर्थंकरों (देखिए चित्र १.०६) के चरणों में नमोऽस्तु, शिरोनति एवम् आवर्त करें। इसी प्रकार त्रिलोक में समस्त केवली भगवानों, गणधरों, आचार्यों, उपाध्यायों, सर्व साधुओं, जैन धर्म, जिनवाणी, निर्वाण क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र एवं अन्य पुन्य भूमियों, सोलहकारण भावना, दशलक्षण धर्म, रत्नत्रय, चौआराधना, पञ्चाचार, कृत्रिम-अकृत्रिम जिन भवनों, जिन बिम्बों के प्रति नमोऽस्तु, शिरोऽनति, आवर्त करें। समस्त आर्यिकाओं को वन्दामि करें, समस्त ऐलकों, क्षुल्लकों, क्षुल्लिकाओं को इच्छामि एवम् समस्त श्रावक, श्राविकाओं को जय जिनेन्द्र कहें। फिर अपनी आत्मा को सिद्धालय ले जाएं और वहां विराजमान श्री ऋषभादि चतुर्विंशति तीर्थंकरों, श्री बाहुबलि आदि सिद्ध भगवान एवम् समस्त अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठियों के चरणों में नमोऽस्तु, शिरोऽनति और आवर्त करें तथा उनके चरणों में मग्न होकर दिव्य आनन्द का अनुभव करें। ध्यान करें कि उनके चरणों से अनुपम अवर्चनीय अमृत निकलकर आपके समस्त आत्मा में भर रहा है, जिसके अनुपम आनन्द में आप मग्न हैं। इसके पश्चात् जब आपको वापस लौटना हो, तो सिद्ध भगवान से मुक्ति की प्रार्थना करते हुए अपनी

आत्मा को वापस अपने शरीर में प्रविष्ठ करा लें। फिर अपने हाथ व पैर की उँगलियाँ चलाकर, मुस्कराते हुए धीरे-धीरे आँखें खोलिए।

यदि आपके पास समय की कमी है, तो मात्र कुछ मिनटों के लिए उक्त प्रकार से लेटकर अपना शरीर ढीला छोड़ दीजिए।

नोट– (१) उपरोक्त वर्णित प्रातः भ्रमण, प्राणायाम, योगासन, व्यायामादि में काफी समय लगता है, जिसका प्रायः अभाव होता है तथा सबको करना क्षमता से अधिक हो जाता है। अतएव इसके लिए इनमें अपनी सुविधानुसार कमी कर सकते हैं। कभी योगासन न करें, कभी प्रातः भ्रमण में कुछ कटौती कर दें, कभी प्राणायाम की अवधि में कटौती कर दें, कभी शारीरिक व्यायाम न करें, कभी आगे भाग ५ के अध्याय ३ के क्रम (ग) में वर्णित प्राणिक व्यायाम न करें, किन्तु सबको मिलाकर लगभग ४५–६० मिनट तक तो अवश्य ही करें। यह अनुशंसा की जाती है कि प्रातः भ्रमण और प्राणायाम, चाहे अल्प मात्रा में ही क्यों न हो, तो अवश्य ही करें।

(ढ़) वज्रासन

भोजन करने के बाद यह एकमात्र आसन है। ध्यान मूलाधार चक्र में रखते हुए बिछे आसन पर दोनों पैरों को घुटने से मोड़कर दोनों ऐड़ियों पर बैठ जायें, पैर के दोनों अंगूठे आपस में मिले रहें। पैर के तलवों पर नितम्ब रखें। कमर और पीठ बिल्कुल सीधी रहे, दोनों हाथों को घुटनों पर रखें। दृष्टि सामने स्थिर रख दें। पांच से तीस मिनट तक यह आसन करें।

भोजन के बाद इस आसन को करने से पाचन शक्ति तेज होती है, भोजन जल्दी हजम होता है। पेट की वायु का नाश होता है, पेट के रोग नष्ट होते हैं। शरीर में शक्ति बढ़ती है, स्मरण–शक्ति बढ़ती है। शरीर की प्रतिरक्षात्मक शक्ति बढ़ती है। स्त्रियों के मासिक धर्म की अनियमितता जैसे रोग दूर होते हैं। शुक्र दोष, वीर्य दोष, घुटनों के दर्द आदि का नाश होता है। स्फूर्ति बढ़ाने और मानसिक निराशा दूर करने के लिए ये आसन उपयोगी है।

(२) प्राणायाम, योगासन, बंध अनेक प्रकार के होते हैं जिनका वर्णन ऊपर नहीं दिया है जैसे–

प्राणायाम– सूर्यांग, चन्द्रांग, उज्जायी, कर्ण रोगान्तक, शीतली, सीत्कारी, प्लाविनी आदि।

योगासन– सर्वांगासन, उत्तानपादासन, हलासन, बद्धपद्मासन, योगमुद्रासन, मत्स्यासन, पश्चिमतानासन, वक्रासन, गोमुखासन, मकरासन, चक्रासन, मर्कटासन, पूर्ण धनुरासन, नाभि आसन, उष्ट्रासन, अर्धचन्द्रासन, सूर्य नमस्कार, शीर्षासन, सिद्धासन, कुक्कुटासन, मयूर आसन, पर्वतासन, वृश्चिकासन, पादांगुष्ठासन, ब्रह्मचर्यासन, ध्रुवासन, गरुड़ासन, वृक्षासन, पक्ष्यासन, [illegible] आदि।

बंध– जालन्धर बंध, उड्डीयान बंध, महाबंध

यदि आप उपरोक्त प्राणायाम/योगासन/बन्ध में दिलचस्पी रखते हैं, तो किसी योग्य योग शिक्षक से परामर्श करके ही करें, अन्यथा हानि भी हो सकती है।

(३) प्रतिदिन कम से कम भस्त्रिका एवं कपाल भाति प्राणायाम अवश्य ही करें। इनसे जो लाभ प्राप्त होगा, वह अनेक आसनों से भी अधिक होगा।

(४) सप्ताह में सुविधानुसार, यदि चाहें तो योगासन/व्यायामादि से अवकाश ले सकते हैं, किन्तु प्राणायाम तो अवश्य करें।

(५) आसनों में जिस क्रम को ऊपर दिया गया है, उसी प्रकार करें। यदि इनमें से कोई आसन नहीं करना हो, तो उसको छोड़ दें।

(६) उपरोक्त कथन साधारणतः एक स्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा से है। इसमें अपनी परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन कर सकते हैं।

अध्याय– ४

मुद्रायें

मुद्रायें द्वारा शरीर में स्थित "पंच महाभूतों" को नियंत्रण में रखा जा सकता है। कहा जाता है कि शरीर पांच महाभूतों से बना है जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश हैं। ये विभिन्न उंगलियों में दर्शाए जाते हैं (देखिए चित्र ३.०१)।

(१) अंगूठा – सूर्य अथवा अग्नि

(२) तर्जनी (अंगूठे के पास वाली अंगुली) – पवन अथवा वायु

(३) मध्यमा (बीच वाली बड़ी अंगुली) – आकाश अथवा अवकाश

(४) अनामिका (तीसरी अंगुली, अथवा अंगूठी वाली अंगुली) – पृथ्वी

(५) कनिष्ठिका (छोटी अंगुली) – जल

नीचे बताए अनुसार भिन्न-भिन्न उंगलियों को एकत्रित करने से भिन्न-भिन्न मुद्रायें बनती हैं। इन मुद्राओं से हम पंच महाभूतों का संतुलन कर अनेक रोगों को मिटा सकते हैं। ये मुद्रायें किसी भी तरह से सोते, बैठने या खड़े-खड़े की जा सकती हैं, परन्तु पद्मासन या सुखासन में इन्हें बैठकर करने से ज्यादा अच्छा परिणाम निकलता है। दस मिनट से प्रारम्भ करें और फिर तीस से पैंतालीस मिनट तक ये मुद्रायें करें। मुद्राएं दोनों हाथों से एक साथ करनी चाहिए। ये समस्त मुद्राएं चित्र ३.०२ में दर्शायी गयी हैं। ये मुद्राएं प्राणायाम करते समय भी की जा सकती हैं।

(१) ध्यान मुद्रा–

तर्जनी उंगली से बगैर दबाव दिये अंगूठे का स्पर्श करें।

लाभ– मस्तिष्क की शक्ति की वृद्धि, स्मरण शक्ति की वृद्धि, अनिद्रा व तनाव का दूर होना।

(२) वायु मुद्रा–

तर्जनी उंगली को मोड़कर अंगूठे के मूल में शुक्र पर्वत पर रखें और चित्र में दर्शाए अनुसार उसे अंगूठे से दबाकर रखें।

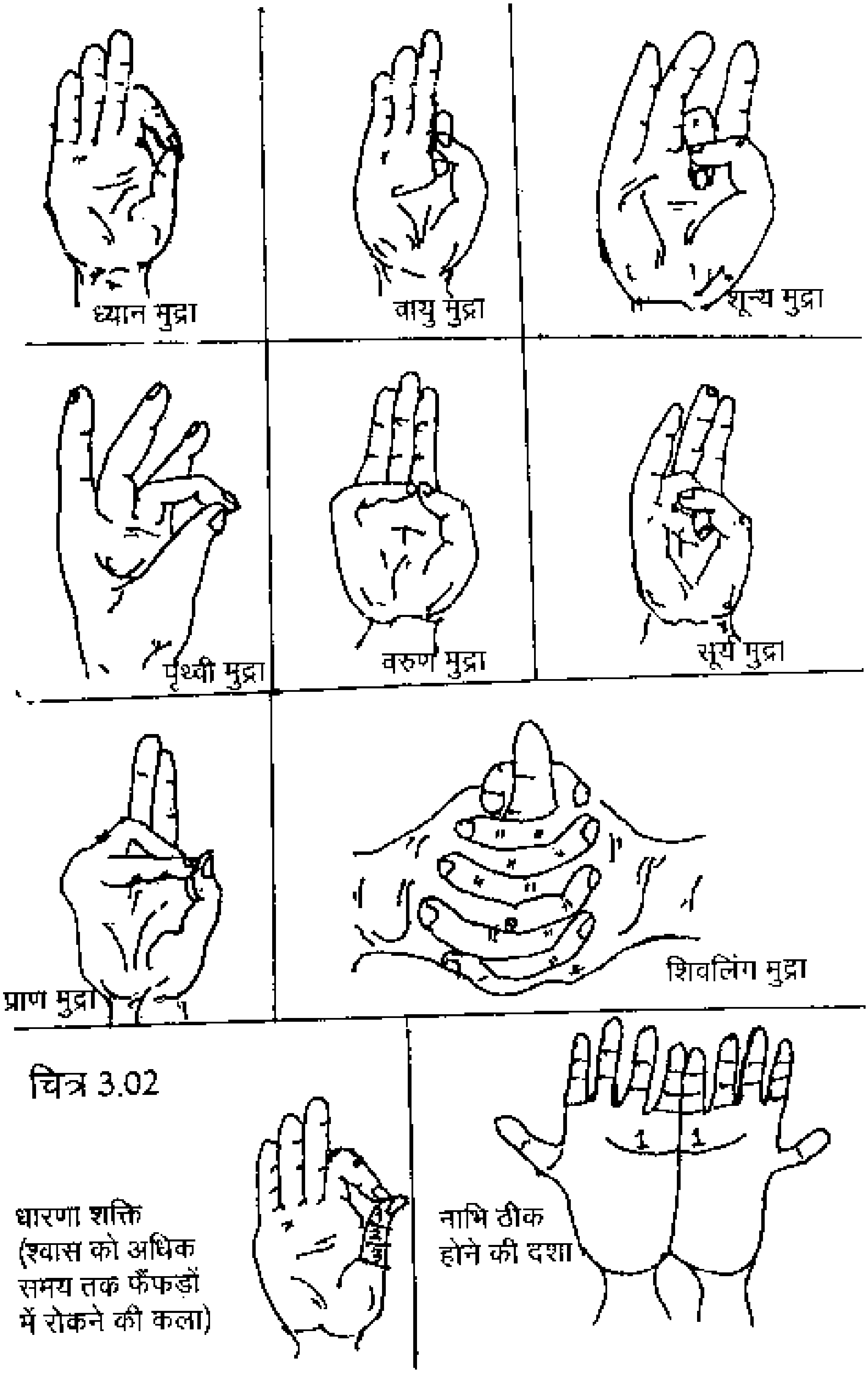
ध्यान मुद्रा
वायु मुद्रा
शून्य मुद्रा
पृथ्वी मुद्रा
वरुण मुद्रा
सूर्य मुद्रा
प्राण मुद्रा
शिवलिंग मुद्रा
धारणा शक्ति
(श्वास को अधिक
समय तक फैंफड़ों
में रोकने की कला)
नाभि ठीक
होने की दशा
1
1

चित्र 3.02

लाभ– संधिवात–आर्थ्राइटिस, पक्षाघात, संधिवात–गाउट, कंपवात और रक्तपरिभ्रमण के दोष का दूर होना। ज्यादा अच्छे परिणाम के लिए इसके बाद प्राण मुद्रा भी करें।

(३) शून्य मुद्रा

मध्यमा उंगली को मोड़कर शुक्र पर्वत पर रखें और चित्र में दर्शाए अनुसार उसे अंगूठे से दबा कर रखें।

लाभ– कानदर्द, बहरापन, चक्कर आना (vertigo) आदि तकलीफों में लाभ। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिये इस मुद्रा को ४० से ६० मिनट तक करना जरूरी है।

(४) पृथ्वी मुद्रा–

अनामिका उंगली से चित्र में दर्शाए अनुसार अंगूठे का स्पर्श करें।

लाभ– तन और मन की कमजोरी दूर होती है, चेतना बढ़ती है। बीमार व्यक्ति को ताजगी मिलती है और मन को शांति मिलती है।

(५) वरुण मुद्रा–

कनिष्ठका उंगली को अंगूठे के नोंक से चित्र में दर्शाए अनुसार स्पर्श करें।

लाभ– रक्त की अशुद्धि दूर होती है। चर्म रोग में फायदा होता है और त्वचा मुलायम होती है। शरीर मे पानी का जमाव करने वाले गैस्ट्रोएन्टेटिस सदृश रोगों में लाभदायी है।

(६) सूर्य मुद्रा (अग्नि मुद्रा)–

अनामिका उंगली को मोड़िए और चित्र में दर्शाए अनुसार उसके बाहरी भाग में दूसरे पोटूए पर अंगूठे से दबाव दें।

लाभ– शरीर में अग्नि–गरमी बढ़ती है। पाचन में मदद मिलती है और चर्बी घटती है।

(७) प्राण मुद्रा (जीवन शक्ति चेतना)–

अनामिका और कनिष्ठका उंगलियों को इस तरह मोड़िए कि उनके सिरे अंगूठे के सिरे को स्पर्श करें।

लाभ– जीवन शक्ति में वृद्धि होती है, शिथिलता व थकान दूर होती है। आँखों का तेज बढ़ता है और चश्मा हटने में मदद मिलती है।

(८) शिवलिंग मुद्रा–

दोनों हथेलियों की सभी उंगलियों को चित्र में दर्शाए अनुसार एक–दूसरे में इस तरह भिड़ाइए कि दाएँ हाथ का अंगूठा ऊपर की ओर खड़ी स्थिति में ऊँचा रहे तथा बाएं हाथ के अंगूठे व तर्जनी अंगुली से उसे घेर ले।

लाभ– सर्दी जुकाम, छाती के रोग, कफ, ऋतु-परिवर्तन से होने वाली सर्दी और बुखार आदि का प्रतिकार करने की शक्ति देती है। फैंफड़ों को शक्ति प्रदान करती है। शरीर में गरमी बढ़ाकर वृद्धिंगत कफ और चरबी को जला डालती है। इस मुद्रा को करने वाले व्यक्ति को प्रतिदिन पानी, हरा रस, फल का रस आदि प्रवाही प्रचुर मात्रा में लेना चाहिए।

यह मुद्रा करते समय यदि प्राणायाम भी किया जाए तो अच्छा परिणाम निकलता है।

श्वास को अधिक समय तक फेफड़ों में रोकने की कला (चित्र ३.०२)

जब आप सांस को भीतर लें तब अपने अंगूठे के ऊपर वाले भाग 1 को उंगली से दबाएँ। ऐसा करने से सांस को ज्यादा समय तक भीतर रोका जा सकेगा। अंगूठे के मध्य भाग (भाग 2) में यदि इस प्रकार दबाव दिया जाए, तो सांस को और भी अधिक समय तक रोका जा सकेगा। अंगूठे के मूल (भाग 3) में भी यदि इसी प्रकार दबाव दिया जाए तो सांस को बहुत अधिक समय तक भीतर सरलता से रोका जा सकेगा।

यदि सांस–प्राण वायु को फैंफड़ों में ज्यादा समय तक रोक सकें, तो उसका पूरा–पूरा उपयोग होता है। रक्त एवम् शरीर को अधिक बल मिलता है।

अध्याय– ५

नाभि चक्र

कभी –कभी नाभिचक्र अपनी स्थिति से हट जाने के कारण अनेक तकलीफें हो जाती हैं, जो दवा आदि से ठीक नहीं हो पातीं। इसके लिए समय–समय पर या जब आवश्यकता हो, नाभि चक्र की परख जरूरी है। इसकी निम्न विधियाँ हैं।

(क) सुबह खाली पेट सीधे लेटकर यदि नाभि पर उंगली या अंगूठे से दबाया जाये, तो वहां ह्रदय की धड़कन महसूस होगी। ऐसी धड़कन महसूस होने पर समझ लें कि नाभिचक्र सही हालत में है।

(ख) सही नाभि चक्र की दशा में नाभि से दाँए एवं बाँए स्तनाग्र की दूरी समान होगी।

(ग) चित्र ३.०२ में दर्शायी गयी दोनों हाथों की कनिष्ठ उंगलियों के पोटुओं के बीच की समस्त लाइनें एवमं हथेली की चिन्हित लाइन 1 एक दूसरे से मिली होती हैं, तो समझें कि नाभि चक्र सही स्थिति में है।

नाभि चक्र खिसकने का कारण अत्यधिक वजन उठाना अथवा अत्यधिक गैस उत्पन्न होना होता है। इसको ठीक करने के लिए निम्न पद्धतियाँ अपनायी जा सकती हैं। ये सभी प्रयोग खाली पेट या भोजन के ३–४ घंटे बाद किए जा सकते हैं।

(क) अंगूठे से नाभि के इर्द–गिर्द दबाव देकर नाभिचक्र को केन्द्र की ओर ठेलना।

(ख) सीधे लेट जाइये और दोनों हाथ शरीर से सटाकर रखिए। किसी से अपने दोनों घुटनों पर दबाव देने के लिए कहिए। पैर का जो अंगूठा निचले सतह पर हो, उस पैर के घुटने पर भी अधिक दबाव दीजिए। यदि आवश्यक हो, तो दूसरा व्यक्ति एक हाथ में दोनों पैरों के अंगूठे पकड़कर रखे और पैर का जो अंगूठा नीचे हो उसे ऊपर खींचने का प्रयास करें। इस पर भी यदि दोनों अंगूठे एक लाइन में न आ पाएं तो यही क्रिया दोबारा कीजिए।

(ग) छोटे चिरागदान में दीया जलाकर नाभि पर रखिए। उसके ऊपर पीतल या स्टील के गिलास को उल्टा रखकर रखिए। इससे गिलास की हवा के जल जाने पर शून्य (vacuum) उत्पन्न हो जावेगा, जो नाभिचक्र को सरका कर केन्द्र में लाएगा। एक मिनट के बाद गिलास को एक तरफ से ऊपर उठा लीजिए। जब तक धड़कन केन्द्र में न आ जाये, तब तक यह प्रयोग तीन–चार बार कीजिए। इसके बाद सौंठ वाला गरम पानी या गरम दूध पीजिए।

(घ) बाएँ हाथ की कोहनी के जोड़ में अन्दर की तरफ दाँए हाथ की हथेली जमाइए और झटके से बाँए हाथ के अंगूठे द्वारा बाँये कंधे का स्पर्श कीजिए। जब तक यह अंगूठा बाँए कंधे का स्पर्श न करे, तब तक यह प्रयत्न जारी रखिए। इसी प्रकार यह क्रिया दाँए हाथ में कीजिए।

जब भी कब्जियत अथवा दस्त की तकलीफ हो, तो इस बात की जाँच कीजिए कि नाभि चक्र सही हालत में है या नहीं। ठीक हालत में न होने पर उसे ठीक कीजिए।

अध्याय– ६

त्वचा की देखभाल

त्वचा में छिद्र होते हैं। इन छिद्रों द्वारा शरीर का विष बाहर निकलता है, अतएव इसकी देखभाल आवश्यक है। इसके लिए –

(१) ६–८ गिलास पानी पीजिए।

(२) ठंडे मौसम में तिल, मूंगफली आदि तैलीय पदार्थ यथेच्छ खाइए। प्रत्येक ऋतु के फल–सब्जी का सेवन कीजिए।

(३) समय –समय पर पूरे शरीर में तेल की मालिश कीजिए।

(४) नियमित प्राणायाम कीजिए व सुविधानुसार सूर्य–स्नान कीजिए।

(५) विरोधी आहार का सेवन करने से विकृति होती है और शरीर व रक्त में खराबी उत्पन्न होती है। इसलिए बिना गरम किये दूध, दुग्ध- निर्मित पदार्थों एवं दही/छाछ के साथ दलहन, एन्टीबायोटिक व खट्टे फलों का सेवन न करें।

अध्याय– ७

आँखों की देखभाल

(१) दिन में स्वस्थ खुले वातावरण में खड़े होकर हाथों को कमर पर रखकर, सामने की ओर देखकर बगैर शरीर अथवा आंखों को हिलाकर, मात्र पुतलियों को घड़ी की दिशा में ३ बार, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में ३ बार, फिर घड़ी की दिशा में ३ बार, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में ३ बार, फिर घड़ी की दिशा में ३ बार, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में ३ बार, फिर घड़ी की दिशा में ३ बार, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में ३ बार, इस प्रकार घड़ी की दिशा में कुल मिलाकर १२ बार और घड़ी की उल्टी दिशा में भी १२ बार आँखों को बड़ा सा गोला बनाते हुए घुमाइये। कुछ अभ्यास के बाद एक साथ ही १२–१२ बार घुमा सकते हैं। इसके बाद हथेलियों से आंखों को दबाकर आँखों को विश्राम दीजिए। यह प्रक्रिया प्रतिदिन कीजिए। इसका वर्णन भाग ५ अध्याय ३ में खुलासा किया गया है।

(२) सुबह कुल्ला करते समय ताजे पानी से २८–३० बार आँखों में छींटे मारिये।

(३) सुबह उगते सूर्य की ओर ८–१० सेकेन्ड तक लगातार बगैर पलक झपकते हुए देखिये।

(४) धूप अथवा धूलयुक्त वातावरण से लौटकर आँखों को पानी से धोइये।

(५) हरी सब्जियाँ व फल खाइये।

(६) विशेषकर प्रौढ़ावस्था में डाक्टर रैकेवैग (Dr. Reckeweg) की सिनेरिया मैरीटीमा (Cineraria Maritima) नामक जर्मन होम्योपैथिक दवा की

एक-दो बूंदें दोनों आँखों में डालते रहिए। इससे मोतियाबिन्द की वृद्धि की गति में काफी कमी आती है। वह अल्कोहोल (alcohol) रहित है। इसमें प्रत्येक 10g isotonic solution में निम्नवत पदार्थ (composition) है;

Senecio (Cineraria maritima) D2	2.500 g
Benzalkonium Chloratum excipients	0.001 g
Aqua ad injectionem	ad 10 g

(७) अनिद्रा से बचें।

(८) आवश्यकतानुसार प्लास्टिक के या कॉच के आई-कप (Eye Cup) में स्वच्छ शीतल जल भरकर उसमें एक-एक करके आँख डुबोकर आई-कप के अन्दर ही पलकों को बार-बार खोलें, बन्द करें।

(९) नयनामृत सुर्मा आँखों के लिये लाभकारी है। यह आँखों को स्वस्थ रखता है। सफेद सुर्मा मोतियाबिन्द को काटता है। यह दोनों सुर्मे निःशुल्क श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रॉतिक सभा, बड़नगर– ४५६७७१ (जिला उज्जैन), मध्य प्रदेश के शुद्ध औषधालय विभाग से प्राप्त किये जा सकते हैं, किन्तु यह अत्युत्तम होगा कि दान स्वरूप इस संस्था को धनराशि दी जाये, क्योंकि यह संस्था औषधालय विभाग से मुनि महाराज या त्यागीवृत्ति यदि अस्वस्थ हों तो, वैद्य उपचार हेतु भेजती है। इसके अतिरिक्त छात्रालय में असहाय बच्चों को शिक्षा देती है, उपदेशकों द्वारा धर्म व संस्कृति का प्रचार करती है तथा जीव-दया, सरस्वती प्रचार, पुरातत्त्व संरक्षण, जीर्ण शीर्ण मंदिरों का जीर्णोद्धार जैसे महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य कराती हैं। इस संस्था का कोई खास फंड नहीं है, मात्र दातारों द्वारा दिये गये दान पर अवलम्बित है। सहायता स्वरूप राशि मनीआर्डर से अथवा चेक/ड्राफ्ट "श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रांतिक सभा, बड़नगर" के नाम से इन्दौर के किसी भी बैंक का बनाकर भेजी जा सकती है। इस संस्था को आयकर की धारा ८० (जी) के अन्तर्गत छूट प्राप्त है।

(१०) टी.वी. को देर तक या देर रात्रि तक न देखें। अधिक नजदीकी से न देखें।

एक्यूप्रैशर (ACUPRESSURE) विधि द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण एवं चिकित्सा

शरीर में चेतनारूपी विद्युत–प्रवाह (bio-electricity) उत्पन्न होता है। इस की भिन्न-भिन्न रेखाएँ मेरीडिअन्स (meridians) कहलाती हैं। ये दाहिने हाथ की उंगलियों और अंगूठे के सिरे से शुरू होकर शरीर के दाँए भागों में होकर दाहिने पैर की उंगलियों और अंगूठे के सिरे तक जाती हैं। उसी तरह बाएँ हाथ की उंगलियों और अंगूठे के सिरे से उत्पन्न प्रवाह शरीर के बाएँ हिस्से में घूमकर बाएं पैर के उंगलियों और अंगूठे के सिरे तक जाता है। जब तक चेतना का यह विद्युत–प्रवाह शरीर में ठीक ढंग से घूमता रहता है, शरीर तंदुरुस्त रहता है। अत्यधिक श्रम, छीज आदि कारणों से जब यह विद्युत–प्रवाह शरीर के किसी भी अवयव तक ठीक से नहीं पहुँचता, तब वह अवयव सुचारु रूप से काम नहीं करता, इसलिये उस हिस्से में दर्द या रोग हो जाता है। अतः इस प्रवाह को यदि उस अवयव तक पहुँचाया जाए, तो वहाँ होने वाला दर्द–पीड़ा अथवा रोग (यदि हुआ हो, तो) दूर हो जाता है। इस प्रकार एक्युप्रेशर एक ऐसा प्राकृतिक विज्ञान है जो हमारे शरीर की भीतरी रचना द्वारा वांछित भाग में आवश्यकतानुसार विद्युत–प्रवाह पहुंचाकर रोगों को दूर करना सिखाता है।

हमारे शरीर में विद्युत प्रवाह का स्विच बोर्ड हाथ के दोनों पंजों एवं पैरों के दोनों तलवों में है। भिन्न–भिन्न स्विचें कहाँ आई हुई हैं; यह चित्र ३.०३ से ३.०८ में दर्शाये गये हैं।

प्रतिदिन हाथों या पैरों के इन बिन्दुओं पर अँगूठे को थोड़ा तिरछा रखते हुए मामूली दबाव देने से स्वास्थ्य का स्वयं परीक्षण किया जा सकता है। दोनों हाथों में इस प्रकार दबाव देने में पांच–पांच मिनट मात्र लगते हैं, जिससे मुफ्त में स्वास्थ्य परीक्षण हो जाता है। यदि किसी बिन्दु पर दबाने से दर्द होता है तो उससे सम्बन्धित अवयव का ठीक प्रकार से काम न करने का संकेत मिलता है। ऐसी परिस्थिति में उस बिन्दु पर दो मिनट तक पम्प की तरह दबाव देना चाहिए– अर्थात् दबाव दीजिये, फिर छोड़ दीजिये– इसी क्रम को बार–बार दो मिनट तक करते रहिये। यह प्रक्रिया

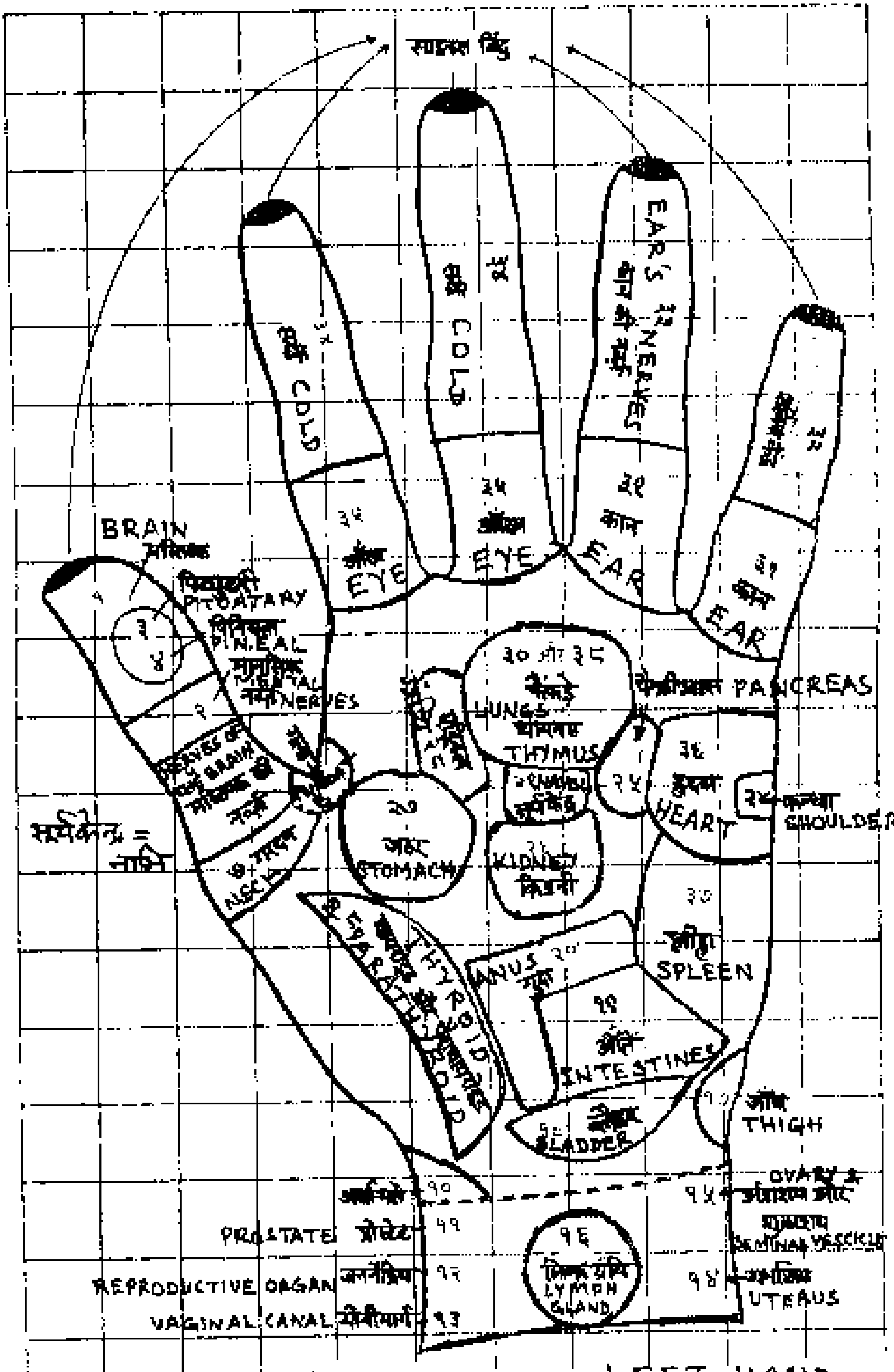

चित्र 3-02 : बायां हाथ LEFT HAND

हथेली पर दर्शाए गए विभिन्न अवयवों तथा अंतःस्रावी ग्रंथियों के बिंदु

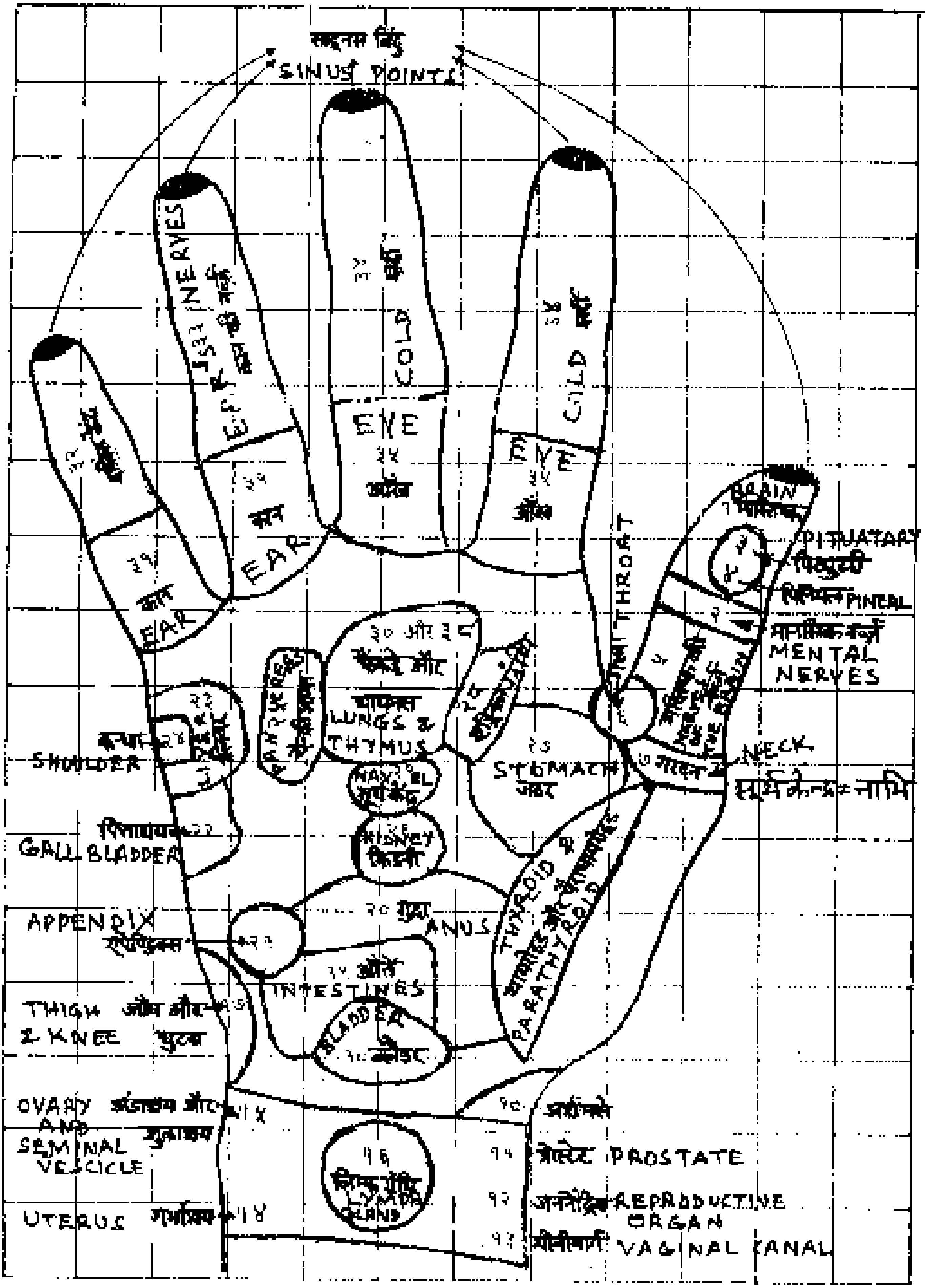

चित्र ३.०४ : दायाँ हाथ RIGHT HAND

उपचार के लिए : दबाव केवल हथेली पर दर्शाए बिंदुओं पर तथा उसके आसपास ही दें।

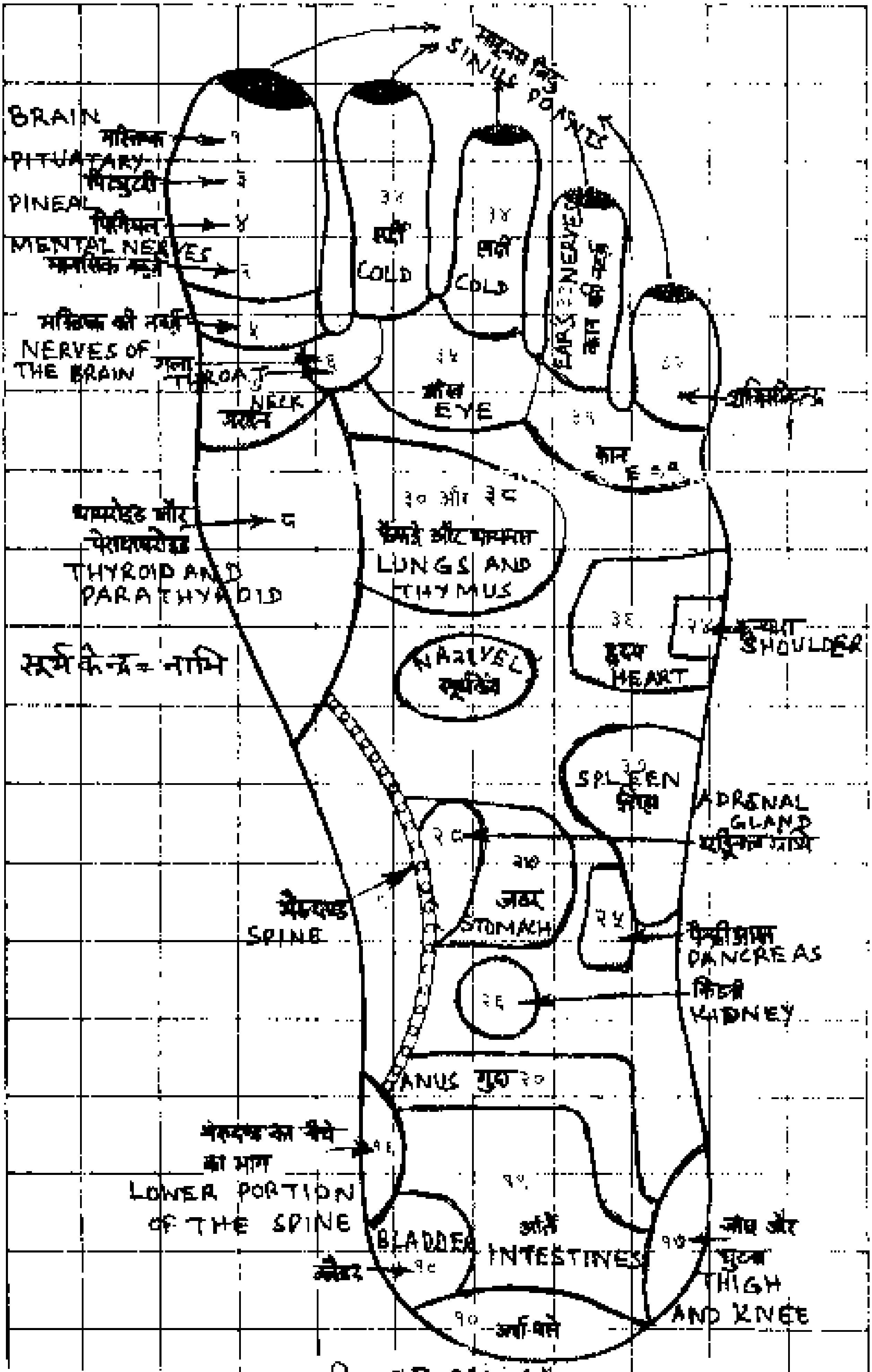

चित्र 3.04 बांया पैर LEFT FOOT

अंतःस्रावी ग्रंथियों व शरीर के विभिन्न अवयवों से संबंधित बिन्दु, उनके क्रम व स्थान।

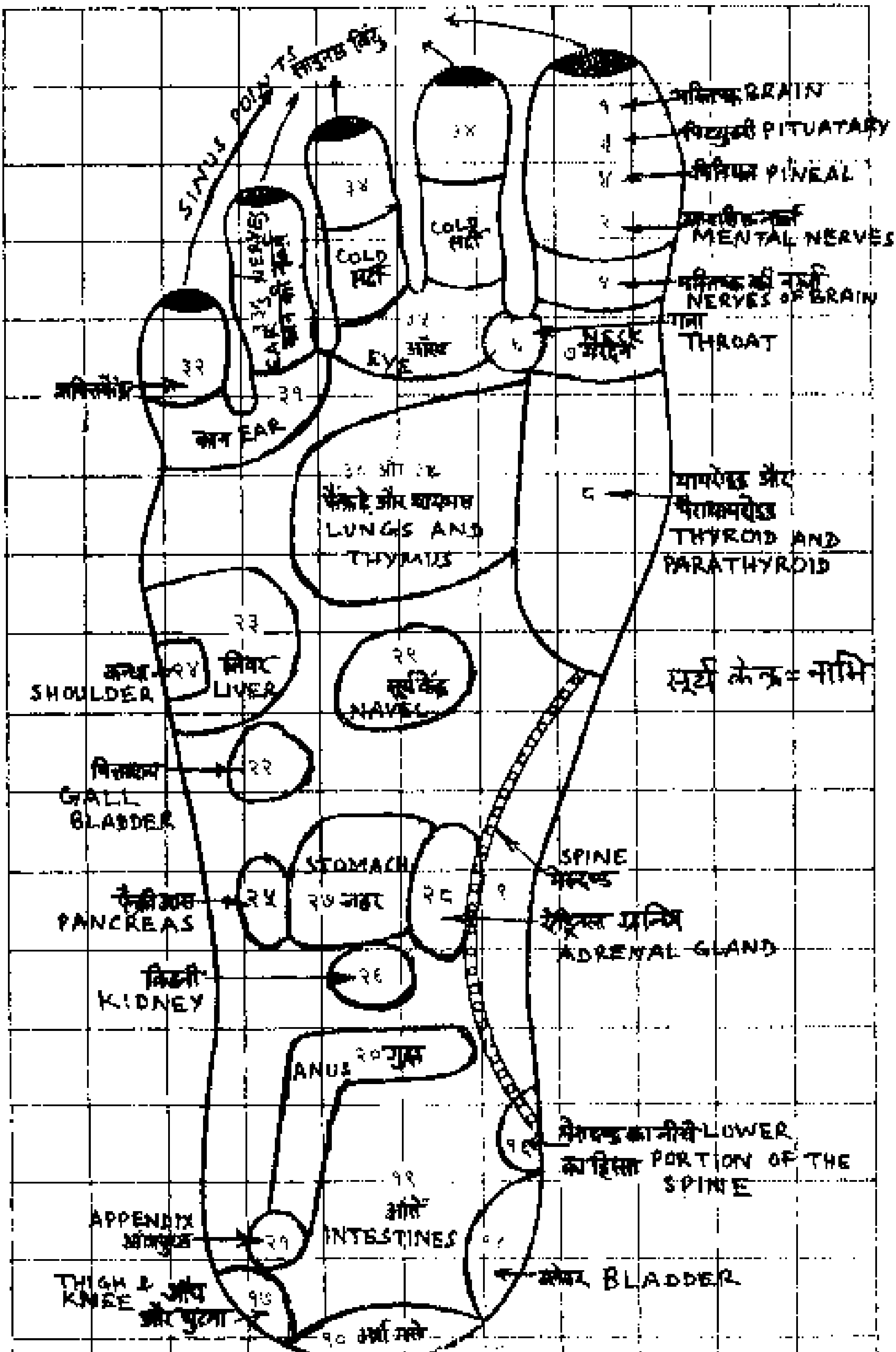

चित्र 3-0E दायाँ पैर RIGHT FOOT

उपचार के लिए : दबाव केवल पैर के तलुवे में दर्शाए बिन्दुओं तथा उसके आसपास ही दें।

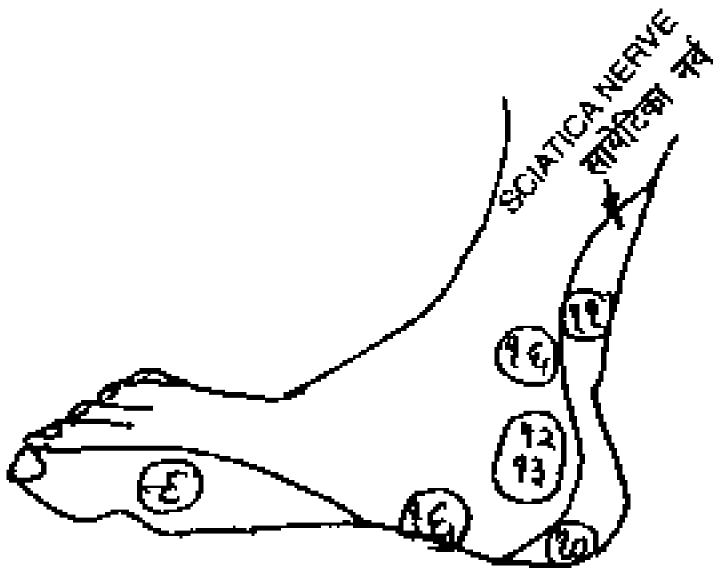

चित्र ३.०७ पैर का भीतरी हिस्सा

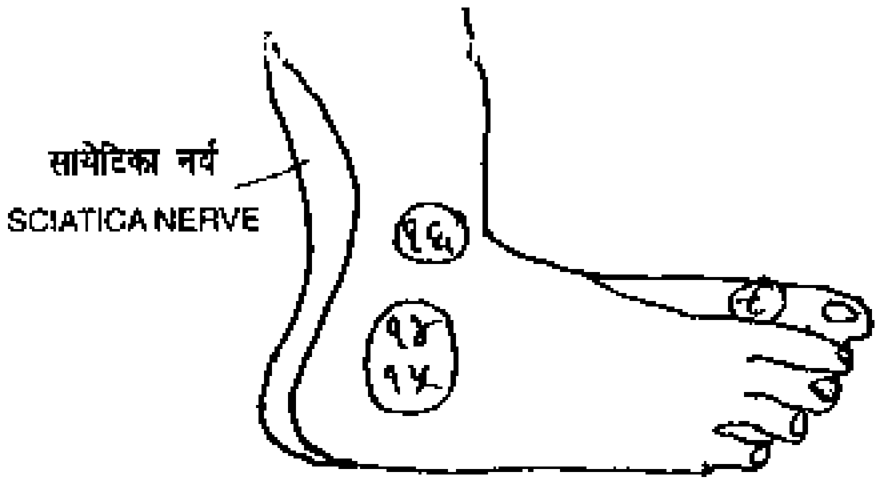

चित्र ३.०८ पैर का बाहिरी हिस्सा

९	मेरुदण्ड	SPINE
१०	अर्श - मसा	
११	प्रोस्टेट	PROSTATE
१२	जननेन्द्रिय	REPRODUCTIVE ORGAN
१३	योनि मार्ग	VAGINAL CANAL
१४	अण्डाशय और शुक्राशय	OVARY SEMINAL VESCICLE
१५	गर्भाशय	UTERUS
१६	लिम्फ ग्रंथि	LYMPH GLAND

२४ घंटे में कम से कम तीन बार कीजिए। यह एक्यूप्रेशर के उपचार की प्राथमिक पद्धति है।

इसके अतिरिक्त चेतना का प्रवाह– जीवनशक्ति का प्रवाह दाँए हाथ से बाहर निकलता है, उसे नियंत्रण में रखने वाला बिन्दु दाएँ हाथ की कोहनी और कलाई के मध्य में एक इंच के गोलाकार में स्थित है। यहां पर इसी प्रकार दो मिनट तक दबाव देने से वृद्धावस्था और उसके कारण होने वाले रोग रुकते हैं, थकान कम लगती है एवम् दीर्घकाल तक यौवन को सुरक्षित रखा जा सकता है। ४०–४५ वर्ष के बाद प्रत्येक स्त्री–पुरुष को यह उपचार अनुशंसनीय है।

अध्याय– ६

भोजन एवम् पाचन

आहार के तीन उद्देश्य शरीर के दृष्टिकोण से हैं: (१) शुद्ध रक्त उत्पन्न करना (२) शरीर में ऊष्मा–शक्ति उत्पन्न करना और (३) स्वाद प्राप्त करना। स्वाद छह प्रकार के हैं: (१) मधुर (मीठा) (२) खारा (३) खट्टा (४) तीखा (५) कसैला और (६) कड़ुआ।

अनुभव से मालुम होता है कि हम अपने आहार में अन्तिम दो रस कम करते जा रहे हैं। फलतः हमारी पाचन–क्रिया मंद पड़ती है, रक्त की संरचना में परिवर्तन होता है और हम अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। कसैला व कड़वा रस यदि पर्याप्त मात्रा में लिया जाए, तो यह मधुर रस के दुष्प्रभाव को रोकता है, रक्त शुद्ध करता है, पाचन शक्ति बढ़ाता है और शरीर में सही अग्नि प्रदीप्त होती है। इन दोनों रसों का समावेश दैनिक आहार में अवश्य करना चाहिए। इसीलिए गांधी जी प्रतिदिन कड़वी नीम के पत्तों की चटनी खाने का आग्रह करते थे।

यदि हम शरीर के लिए उपयोगी पाई जाने वाली वस्तुओं का ही सेवन करें और उन्हें अच्छी तरह चबाकर खाएँ तो आहार की मात्रा घट जाएगी, पाचन में सुधार होगा और मल त्याग सरलतापूर्वक होगा। अच्छी पाचन–शक्ति और अच्छे स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए निम्न बातों का ध्यान रखें–

(१) आहार केवल दिन में ही लें।

(२) ऐसे गैहूं का आटा उपयोग करें, जिससे चोकर न निकाला गया हो। चावल ऐसे हों जो मशीन द्वारा पॉलिश न किए हुए हों।

(३) तली वस्तुओं का उपयोग कम करें।

(४) आहार में दूध, छाछ और दही अधिक मात्रा में लें। दूध और छाछ--दही दोनों एक साथ न लें।

(५) ऋतु के अनुसार फल तथा सब्जी का सेवन करें।

(६) सलाद का सेवन करें।

(७) खाने को अच्छी प्रकार चबाएँ।

(८) दो बार के भोजन के बीच में पांच-छह घंटे का अंतराल रखें।

(९) पेट–जठर भी एक यंत्र है। उसे भी सप्ताह में दो जून पर्याप्त विश्राम दें। उपवास रखें अथवा मात्र फल, फल का रस व कुनकुना गरम पानी लें।

(१०) काली मिर्च, करेला, नीम और मैथी जैसे कडुए पदार्थ व सूर्य स्नान, कसरत बगैर से जठराग्नि प्रदीप्त रहती है, जबकि ठंडे पानी, ठंडे पेय और आइसक्रीम से जठराग्नि मन्द पड़ती है तथा पाचनशक्ति पर बोझ पड़ता है।

(११) छिल्के वाली दाल खाएँ।

(१२) अंकुरित चना, अंकुरित गेहूँ तथा अंकुरित साबुत मूँग का उपयोग करें।

(१३) खाने के समय फ्रिज का पानी न पियें। इससे दाँत व मसूढ़े कमजोर होते हैं एवम् जठराग्नि मन्द पड़ती है।

(१४) खाने के समय कम से कम पानी लें (चौथाई ग्लास)। खाने के समय विभिन्न प्रकार के पाचन रस पानी से पतले हो जाते हैं जिससे उनकी पाचन शक्ति क्षीण पड़ जाती है। खाने के एक–दो घंटे बाद पानी अवश्य पीएं चाहे जितनी मात्रा में लें।

(१५) हड्डी के लिए संतुलित आहार की आवश्यकता होती है। कैल्शियम (calcium) और फॉसफोरस (phosphorus) की विशेष आवश्यकता होती है। इसकी आवश्यकता बड़ों को भी होती है– लगभग एक ग्राम कैल्शियम प्रतिदिन। कैल्शियम का स्रोत दूध, पनीर, पत्ता गोभी और अन्य सब्जियों से है और फॉसफोरस का स्रोत दूध और हरी सब्जियों से है। खाने में सभी प्रकार की आवश्यकता होती है। इसका विशेष वर्णन भाग २– मानव शरीर विज्ञान के अध्याय १३ के "परिशिष्ट– भोजन का विभागीकरण" में दिया है।

(१६) खाने के समय चौका अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का ध्यान रखें। न्यायपूर्वक कमाये हुए धन से प्राप्त शुद्ध तथा साफ किया हुआ आहार, एकान्त में शुद्ध स्थान पर, दिन के समय तथा कषायरहित भावों से शान्त चित्त से खायें। ऋतु के प्रभाव, अपने स्वास्थ्य का विचार एवम् प्रकृति का भी ध्यान रखें।

(१७) नशीले पदार्थों से बचें।

(१८) यदि रात्रि में त्याग न किया हो, तो सोते समय गरम दूध पीकर सोएँ और सोने से पहले पानी पीयें।

(१९) उच्च रक्तचाप के रोगी आम तौर पर वह दवा खाते हैं जिससे प्यास बढ़ती है, फिर पानी ज्यादा पीने से मूत्र अधिक आता है। इससे शरीर का सोडियम तथा पोटेशियम तत्त्व बाहर निकल जाता है। जबकि सोडियम तत्त्व की भरपाई नमक आदि से हो जाती है, पोटेशियम तत्त्व की कमी की भरपाई नहीं हो पाती। इसके लिए दो केले प्रतिदिन तथा कभी–कभी मुसम्मी या मुसम्मी के रस का सेवन करें। मुसम्मी प्रतिदिन लेने से गैस की समस्या हो सकती है।

कुछ ज्ञातव्य बातें

(१) शरीर में गरमी बढ़ाने के लिये सूर्य प्राणायाम करिये। बाँए नथुने को बन्द कर सिर्फ दाँए नथुने से साँस लीजिए और बाहर छोड़िए।

(२) शरीर में शीतलता लाने के लिए चन्द्र प्राणायाम करिये। दाँए नथुने को बन्द कर बाँए नथुने से साँस लीजिए और बाहर छोड़िये।

(३) अनुकूल या प्रतिकूल आहार के विषय में जानने की सरल पद्धति– सीधे खड़े रहिए। बाँए हाथ की मुट्ठी बंद कर हृदय पर दबाइए और दाँया हाथ सीधा समानान्तर रखें। फिर किसी व्यक्ति से अपने दाँए को झुकाने के लिए कहिये और उसे इस तरह करते समय अपनी पूरी ताकत से रोकिये। अब खाद्य पदार्थ को बाँई मुट्ठी में दबाकर पूर्ववत् हृदय पर दबाइये तथा सीधा हाथ को नीचे दबवाइये। यदि खाद्य पदार्थ शरीर के लिये उपयोगी होगा, तो दाँए हाथ की प्रतिकार शक्ति बढ़ेगी और यदि हानिकारक होगा तो प्रतिकार शक्ति घट जाएगी और हाथ नीचे आ जायेगा। यदि तरल वस्तु हो तो ताम्र पात्र में रखकर पात्र को हृदय से सटाकर रखिए। इसी विधि से दवा की उपयोगिता मालूम हो सकेगी।

यह प्रयोग शरीर की विद्युत पर आधारित है। खाने या पीने की उपयोगी वस्तु विद्युत-प्रवाह को वेग देती है (enhances polarization), जिससे प्रतिकार शक्ति बढ़ती है; जबकि शरीर को नुकसान पहुँचाने वाले आहार या पेय लेने से वेग घटता है और प्रतिकार शक्ति घट जाती है (de- polarization)।

(४) सायंकाल के भोजन के पश्चात् अथवा रात्रि को सोने से पहले दंत मंजन अथवा पेस्ट अवश्य करें।

(५) दंत मंजन ४० प्रतिशत् फिटकरी का पाउडर और ६० प्रतिशत सैंधा या साधारण नमक से बना सकते हैं।

(६) आँतों में जमा मल हटाने के लिये समय-समय पर गुनगुने पानी में नीबू को निचोड़कर, उससे एनीमा लें।

(७) भोजन लेने के बाद मूत्र त्याग अवश्य करें।

(८) स्वास्थ्य पेय– ३०० ग्राम आँवले का चूर्ण में १०० ग्राम सौंठ मिलाइये। इसमें से सुबह-शाम एक चम्मच चूर्ण खाकर ऊपर से पानी पीजिए। यह पेय हर एक के लिये उपयोगी है, विशेषतः रोगी, वृद्ध, गर्भवती स्त्री और बढ़ते हुए बच्चे के लिये।

(९) अष्टमी व चतुर्दशी को चन्द्रमा के प्रभाव से शरीर का पानी दूषित होता है। इससे बचने के लिये प्रोषधोपवास करें अथवा उपवास करें अथवा एक बार ही भोजन करें अथवा अधिकतम दो बार भोजन करें। इन दिनों हरी सब्जी व वनस्पति न खाएँ।

(१०) दस्त होने पर आधा कप गरम चाय में आधा कप ताजा पानी मिलाकर पीयें।

(११) निम्नलिखित पद्धतियां बगैर दवा के उपलब्ध हैं:–

(क) एक्यूप्रेशर (Acupressure)

(ख) एक्यूपंक्चर (Acupuncture)। इसमें सुईयों का उपयोग होता है।

(ग) रंग चिकित्सा– श्वेत रंग में विज्ञान की दृष्टि से लाल, केसरी, पीला, हरा, आसमानी, इंडीगो (नील) और जामुनी रंग होते हैं। इनमें से प्रथम तीन गरम प्रकृति के, चौथा समशीतोष्ण और अंतिम तीन रंग ठंडी प्रकृति वाले होते हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर चिकित्सा की जाती है।

(घ) प्राकृतिक चिकित्सा– इसमें मिट्टी, पानी, भाप, वायु, सूर्य, आहार, उपवास द्वारा चिकित्सा की जाती है।

(ङ.) चुम्बक चिकित्सा– इसमें चुम्बक के उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी ध्रुव द्वारा चिकित्सा की जाती है जो रक्त में अवस्थित होमोग्लोबीन को प्रभावित कर रक्त की शुद्धि के माध्यम से रोग को दूर करती है। इसके साथ एक्यूप्रेशर या एक्यूपंक्चर पद्धति नहीं करनी चाहिए, अन्यथा हानि हो सकती है।

(च) प्राणिक ऊर्जा चिकित्सा– इसका विस्तृत वर्णन भाग ५ में किया गया है।

(छ) रेकी (Reiki) – इसका सिद्धान्त व प्राणिक ऊर्जा चिकित्सा पद्धति लगभग एक सा है। रेकी पद्धति में रोगी के शरीर का स्पर्श होता है, जबकि प्राणिक ऊर्जा चिकित्सा रोगी के शरीर को बगैर स्पर्श किये की जाती है।

(ज) शिवांबु-स्वमूत्र चिकित्सा – यह घृणित होने के कारण अनुशंसनीय नहीं है।

(१२) बारह क्षार – बायोकैमिक दवाएँ

समुद्र और हमारे शरीर, दोनों का पानी समान है। हम जो पानी पीते हैं, उसमें शरीर या समुद्री पानी के क्षार नहीं होते। ये क्षार हमें सब्जी फल और आहार से मिलते हैं। शरीर को यदि पर्याप्त मात्रा में ये क्षार न मिलें, तो इसकी कमी से शरीर में कई रोग हो जाते हैं। मगर क्षार लेने से ये रोग मिट जाते हैं। इस विषय पर अनुसंधान करने वाले जर्मनी के डॉ. शुस्लर ने प्रतिपादित किया है कि हमारे शरीर में करोड़ों सूक्ष्म कोष हैं। बारह प्रकार के क्षार सूक्ष्म मात्रा में देने से इन कोषों की क्षति पूर्ति होती है और वे अपना कार्य ठीक से कर सकते हैं।

ये क्षार पहले २०० पावर के और सप्ताह के अन्य छह दिनों में १२ या ३० पावर के देने चाहिए। आवश्यकतानुसार चार से लेकर छह सप्ताह तक का कोर्स करें।

यह पद्धति एकदम निर्दोष है। रोगी इसे समझकर स्वयं इसका प्रयोग कर सकता है। आवश्यक्ता के अनुसार एक से अधिक क्षार दवाओं के संयोजन किए जा सकते हैं। बच्चों के लिए ये उत्तम है। एक्युप्रेशर चिकित्सा के साथ ऐसी दवाएँ लेने से और भी जल्दी लाभ होता है।

इन बारह दवाओं की नामावली, उनके स्थान और किन रोगों में ये **प्रभावी** हैं, इसकी तालिका नीचे दी गई है:–

क्र.सं.	**दवा का नाम**	**किन कोषों में है**	**किन रोगों में प्रभावी है**
१.	कैल्कर फॉस (Calcium Phosphate)	दाँत, हड्डियों, रक्त और कोमल माँसपेशियों में (Tissue)	पिछले कॉलम में दर्शाए कोषों से संबंधित रोग, इन कोशों के रोगों से सम्बद्ध अन्य भागों के रोगों में असरकार, जैसे – शोक, चिंता, चिड़चिड़े स्वभाव, सर्दी, अरुचि, साँस की तकलीफ, रुक–रुककर आने वाली पेशाब की तकलीफ में राहत मिलती है।
२.	कैल्कर सल्फ (Calcium Sulphate)	शिराओं के बीच में स्थित रोग उत्पन्न करने वाले विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में सहायक	जुकाम, खाँसी, क्षय, फोड़े, व्रण, आँतों में पड़े चकत्ते, कान में सूजन, पीव, पेशाब में खून व पीव, संधिवात इत्यादि में राहत।
३.	कैल्कर फ्लोर (Calcium Fluoride)	रेशों और मज्जा -तंतुओं में	इस क्षार का गुणधर्म संकोचन करना है। जिन रेशों–स्नायुओं में शिथिलता आ गई हो, उन्हें मजबूत करने के लिए इस क्षार का उपयोग होता है। पांडुरोग और खून की कमी के कारण होने वाले अनेक प्रकार के रोगों में असरकारक। हर प्रकार के ज्वर में प्रथम उपचार के रूप में इस क्षार का उपयोग हो सकता है।

४.	फ़ैरम फौस (Ferrous Phosphate)	रक्त कणों में	पांडुरोग (एनीमिया) तथा रक्त की कमी से होने वाले अनेक प्रकार के रोगों में असरकारक। हर प्रकार के ज्वर में इस क्षार का प्रथम उपाय के रूप में उपयोग हो सकता है। भुलक्कड़पन और एकाग्रता की कमी में उपयोगी दवा।
५.	कालीम्युर (Potassium Chloride)	रक्त, स्नायु और मज्जा-तंतुओं में	रक्त, स्नायु और मज्जा-तंतुओं से संबंधित रोगों, अजीर्ण, अपच, दस्त, उल्टी और कोमल अवयवों के सूजन में लाभदायक। यकृत को तेज करने वाली दवा। सांस से सम्बद्ध सभी रोगों का उत्तम इलाज।
६.	काली फॉस (Potassium Phosphate)	मस्तिष्क, ज्ञान-तंतुओं तथा मज्जा-तंतुओं में	मस्तिष्क और ज्ञानतंत्र संबंधी सभी रोगों में असरकारक। सभी बारह क्षारों का राजा। मानसिक रोगों में उत्तम कार्य करने वाला।
७.	काली सल्फ (Potassium Sulphate)	त्वचा और शिराओं में	त्वचा संबंधी रोगों, जंतुजन्य ज्वर, संधिवात के रोगों में लाभप्रद। स्त्रियों के लिए सौंदर्यवर्धक।
८.	मैग फॉस (Magnesium Phosphate)	स्नायु, अस्थि, मज्जा-तंतु और रक्तकण में।	यह क्षार विस्तृतीकरण करता है। हर प्रकार के दर्द, पीड़ा, शिरोवेदना, हिचकी, तनाव, लकवा, विभ्रम आदि में लाभदायक।
९.	नैट्रम म्युर (Sodium Chloride)	शरीर के पानी में	लू लगना, पानी का शोषण करने वाले रोगों (Dehydration), अनिद्रा, मस्तिष्क की कमजोरी, हृदय की अनियमित गति वगैरह में प्रभावशाली।

१०.	नैट्रम फॉस (Sodium Phosphate)	शरीर के पानी में	एसिडिटी (Acidity) की खास दवा, कृमिनाशक, स्मरणशक्ति की मंदता एवं हृदय की अनियमितता में लाभदायी
११.	नैट्रम सल्फ (Sodium Sulphate)	शरीर के पानी में	शरीर के पानी का नियमन, मूत्रल
१२.	सिलिशिया (Silica)	शरीर के पानी में	यह एक प्रकार की मिट्टी है और सर्जन का कार्य करती है। फोड़े-फुंसी की बीमारी में अत्यन्त उपयोगी।

१३. यह अनुशंसा की जाती है कि प्रत्येक गृहस्थी में "आपका आरोग्य आपके हाथ में" नामक पुस्तक, जिसके लेखक श्री देवेन्द्र वोरा हैं और जिसको नवनीत पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड ने प्रकाशित किया है, रहनी चाहिए। इसका अँग्रेजी संस्करण "Health in your Hands" भी उपलब्ध है। इसमें मस्तिष्क की कार्यप्रणाली, एक्यूप्रैशर, रोग के मूल कारण और उसको रोकने के उपाय, प्राकृतिक चिकित्सा, स्त्री-पुरुष के रोग, रोगों के उपचार, रंग चिकित्सा आदि विषयों पर दैनिक उपयोग में काम आने वाली सूचनाएँ हैं।

सन्दर्भ–

१. परम पूज्य श्री १०८ तरूण सागर जी मुनि महाराज का प्रवचन
२. आपका आरोग्य आपके हाथ में– लेखक श्री देवेन्द्र वोरा, नवनीत पब्लिकेशन्स, (इण्डिया) लिमिटेड, अहमदाबाद/मुम्बई
३. Anatomy & Physiology for Nurses by Evelyn Pearce
४. डा० चन्द्रा सुब्रामन्यम, अध्यक्ष, प्राणिक ऊर्जा विभाग, विवेकानन्द पॉलीक्लिनिक, लखनऊ द्वारा प्रशिक्षण
५. प्राणायाम रहस्यः लेखक– श्री राम देव, हरिद्वार
६. योग साधना व योग चिकित्सा रहस्यः लेखक– श्री रामदेव, हरिद्वार
७. योगासनः श्री आसाराम जी आश्रम, साबरमती, अहमदाबाद
८. Reiki India Research Centre – Naturopathy & Yoga Health Bulletin Volume- July 1993 में Article on "Water Therapy" published by Japan's Sickness Association.

भाग–४

प्राण ऊर्जा विज्ञान

PART IV

THE SCIENCE OF PRANIC ENERGY

... एक लय में ली गयी साँस और विचारों का नियंत्रण करके आप समुचित मात्रा में प्राणशक्ति (ओजस्वी ऊर्जा) को ग्रहण कर सकते हैं या सोख सकते हैं और आप उसे दूसरे आदमी के शरीर में भी भेज सकते हैं। उसके शरीर के कमजोर भागों या अंगों को उत्तेजित करके बीमार तत्वों को बाहर निकाल कर स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं।

—योगी रामचरक
मनसउपचार विज्ञान
से उद्धृत

भाग – ४

प्राण ऊर्जा (प्राणशक्ति) विज्ञान

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं०	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	भूमिका– जैन शास्त्रादि में ऊर्जा का उल्लेख	४.१
२.	प्राणशक्ति उपचार का इतिहास	४.६
३.	ऊर्जा शरीर	४.७
४.	ऊर्जा शरीर और आभामण्डल	४.१०
५.	जीव द्रव्य शरीर और भौतिक शरीर तथा मन का आन्तरिक सम्बन्ध	४.१३
६.	जीव द्रव्य शरीर के कार्य	४.१५
७.	प्राण ऊर्जा और दैनिक उपयोग	४.१६
८.	प्राण ऊर्जा का स्रोत	४.१७
९.	प्राण ऊर्जा और रंग	४.१९
१०.	ऊर्जा चक्र	४.१९
११.	मुख्य ऊर्जा चक्रों का कार्य एवम् उनका शरीर पर प्रभाव	४.२२
१२.	लघु चक्र	४.४५
१३.	अन्तर्चक्र सम्बन्ध एवम् अन्तर्चक्र ऊर्जा प्रवाह	४.५४
१४.	विभिन्न शारीरिक तंत्रों पर ऊर्जा चक्रों का प्रभाव	४.५६
१५.	सफेद एवम् रंगीन प्राण ऊर्जा	४.६६
१६.	प्राण ऊर्जा के सिद्धान्त	४.६७
१७.	मृत घोषित हो जाने के बाद, कभी-कभी "पुनर्जीवित" हो जाना	४.७१
१८.	सन्दर्भ	४.७२

भाग – ४

प्राण ऊर्जा (प्राणशक्ति) विज्ञान

अध्याय १ – भूमिका– जैन शास्त्रादि में ऊर्जा का उल्लेख

(क) "मंगलमन्त्र णमोकारः एक अनुचिन्तन" शास्त्र जी से उद्धृत

णमोकार मन्त्र– यह नमस्कार मन्त्र है, इसमें समस्त पाप, मल और दुष्कर्मों को भस्म करने की शक्ति है। बात यह है कि णमोकार मन्त्र में उच्चरित ध्वनियों से आत्मा में धन और ऋणात्मक दोनों प्रकार की विद्युत शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जिससे कर्म कलंक भस्म हो जाता है। (पृष्ठ IX)

णमोकार मन्त्र का शुद्ध आगमसम्मत पाठ निम्न है–

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व–साहूणं ।।

श्वेताम्बर आम्नाय में णमो के स्थान पर नमो शब्द है। इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण बात यह है कि भाषा के परिवर्तन से शब्दों की शक्ति में कमी आती है, जिससे मन्त्रशास्त्र के रूप और मण्डल में विकृति हो जाती है और साधक को फल–प्राप्ति नहीं हो पाती है। अतः णमो पाठ ही समीचीन है, इस पाठ के उच्चारण, मनन और चिन्तन में आत्मा की शक्ति अधिक लगती है और फल प्राप्ति शीघ्र होती है। मन्त्रोच्चारण से जिस प्राण-विद्युत का संचार किया जाता है, वह 'णमो' के घर्षण से ही उत्पन्न किया जा सकता है। अतएव शुद्ध पाठ ही काम में लेना चाहिए। (पृष्ठ २५-२६)

इस महामन्त्र के गुण अचिन्त्य हैं। इसमें इस प्रकार की विद्युत शक्ति वर्तमान है जिससे इसके उच्चारण मात्र से पाप और अशुभ का विध्वंस हो जाता है। (पृष्ठ ३५)

इस मन्त्र के निरन्तर उच्चारण, स्मरण और चिन्तन से आत्मा में एक प्रकार की शक्ति उत्पन्न होती है, जिसे आज की भाषा में विद्युत् कह सकते हैं, इस शक्ति द्वारा आत्मा का शोधन–कार्य तो किया ही जा सकता है, साथ ही इससे अन्य आश्चर्यजनक कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं। (पृष्ठ ५१)

(ख) 'णमो'– (सत्यार्थ पाक्षिक पत्र से उद्धृत)

जैन समाज में परमेष्ठी नमस्कार महामंत्र का सर्वाधिक महत्व है।

'णमोकार' महामंत्र पाप रूपी पर्वत को भेदने के लिए वज्र के समान है, कर्म रूपी वन को भस्म करने के लिये दावानल है, दुःख रूपी बादलों को बिखेरने के लिए प्रचण्ड पवन है, मोह रूपी दावानल को शान्त करने के लिए नवीन मेघों के समान है, कल्याण रूपी बेल का उत्कृष्ट बीज है, सम्यक्त्व के उत्पन्न होने के लिये रोहणाचल की धरती के समान है।

मन्त्र साधन है। अच्छे मंत्रों का श्रद्धापूर्वक, लयबद्ध, शुद्ध आत्मनिष्ठा, संकल्प शक्ति के समन्वय के साथ किया गया जाप अत्यन्त शक्तिशाली हो जाता है। मंत्र के निरन्तर जप से होने वाले कम्पन अपने स्वरूप के साथ ध्वनि–तरंगों पर आरोहित होकर पलक झपकें, इतने समय में समस्त भूमण्डल में ही नहीं अपितु १४ राजूलोक में अपना उद्‌देश्य प्रसारित कर देते हैं। जाप के शब्दों की पुनरावृत्ति होते रहने से उच्चारित किये गये शब्दों की स्पन्दित तरंगों का एक चक्र (सर्किल) बनता है।

मन्त्रों के जाप से निकली तरंगों से, मंत्र योजकों द्वारा बताए वांछित कार्य किये जा सकते हैं। जाप क्रिया में साधन को तथा वातावरण को प्रभावित करने की दोहरी शक्ति है।

जाप करने वाला मन के विग्रह से सारे विश्व के प्राण मण्डल में स्पन्दन का प्रसार कर देता है। मन एक प्रेषक यन्त्र की तरह कार्य करता है। मन रूपी प्रेक्षक यंत्र से प्राण शक्ति रूपी विद्युत द्वारा विश्व के प्राण मण्डल में सम्पन्दन फैलाया जाता है, जो उन जीवों के मनरूपी यंत्रों पर आघात करता है जिनमें जाप करने वाले योगी कोई भावना जगाना चाहते हैं। क्योंकि वाणी का मन से, मन का अपने व्यक्तिगत प्राण से और अपने प्राण का विश्व के समष्टि प्राण से उत्तरोत्तर सम्बन्ध है। इसीलिये मंत्रों की रचना में विशेष प्रकार के वर्णों और शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनके प्रभाव से विशेष शक्ति को जगा देने वाले स्पन्दन प्राणमय जगत् में आन्दोलन करते हैं।

साधक को प्रभावित करने की स्थिति होती है, मंत्रों के जाप से मनुष्य की ग्रन्थियों का स्राव सन्तुलित हो जाता है, स्नायु संस्थान व्यवस्थित हो जाता है, भावों

की शुद्धि होती है, एकाग्रता बढ़ती है, कुछ ग्रन्थियां हारमोन्स उत्पन्न करती है जिससे मनुष्य को बीमारियां नहीं होती तथा बीमारियां हों, तो दूर हो जाती हैं। इससे, मनुष्य की बीमारियों व संकटों का अवरोध करने की शक्ति बढ़ जाती है।

मंत्राक्षरों में 'ओम्' शब्द का बहुत उपयोग होता है। इसका जाप भी द्वारा, दीर्घ तथा सुप्त–रूप होता है। साधारणतः इस शब्द का जोरदार, लम्बा मधुर उच्चारण करने से निम्नलिखित स्थिति बनती है :

मूलाधार से अपान वायु व नाड़ियां ऊपर की ओर खिचेंगी, साथ ही प्राण वायु मुख के द्वारा अन्दर ली जायेगी जो छाती में इकट्ठी हो जाएगी। 'ओम्' का पूरा उच्चारण होने पर मुंह बन्द हो जावेगा। मणिपुर चक्र (नाभि) हल्के से पीठ की तरफ दबेगा जो आंशिक उड्डियान बन्ध करेगा तथा अनाहत चक्र के पास छाती में प्राणवायु और अपान वायु का कुम्भक हो जायेगा।

इस क्रिया से भिन्न–भिन्न चक्रों से जागृत होने के साथ, शरीर के अन्दर की भिन्न–भिन्न ग्रन्थियों से जो स्राव होता है उनके फलस्वरूप सारे शरीर में जो प्रभाव होगा, उससे बूढ़ा भी जवान हो जाता है।

नमस्कार महामंत्र में कई महानुभाव 'णमो' शब्द के स्थान पर 'नमो' शब्द का उपयोग करने लग गये है। णमो और नमो का शब्दार्थ एक ही है। इसमें नमन, विनय, समर्पण आदि का भाव है। नमो शब्द भी विनय रूप होने से लौकिक कार्य में सिद्धि का हेतु बन जाता है किन्तु नमस्कार महामंत्र में केवल लौकिक ही नहीं, अपितु शारीरिक एवं पारलौकिक सिद्धि का हेतु भी छिपा है। अतः उस अपेक्षा से उस मंत्र के णमो शब्द का रहस्य, उपयोगिता, परिणाम जानना भी आवश्यक है।

शब्द चाहे किसी भाषा का हो, मंत्र है। अक्षर अथवा अक्षर के समूहात्मक शब्दों में अपरिमित शक्ति निहित है। मंत्रों के वांछित फल प्राप्त करने के लिए मंत्र योजक की योग्यता, मंत्र योजक की शक्ति, मंत्र के वाच्य पदार्थों की शक्ति, उन वाच्य पदार्थों से होने वाले शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सौरमण्डलीय शान्ति का प्रभाव तो है ही, साथ ही मंत्र साधक की शक्ति, आत्मा में स्थित भाव, अखण्ड विश्वास, श्रद्धा, आत्मिक तेज, मंत्र की शुद्धि, मंत्र की सिद्धि आदि का विचार भी आवश्यक है।

भाषा विज्ञान के अनुसार प्रत्येक अक्षर का अपना–अपना स्वरूप होता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के स्वरूप में उसकी शारीरिक रचना, चाल, व्यवहार, चारित्र आदि समाहित होते हैं जिसका अपना विशेष प्रभाव होता है, उसी प्रकार अक्षर के स्वरूप में उसकी समस्त बातें सम्मिलित रहती हैं जिसका अपना प्रभाव रहता है।

योग शास्त्र के अनुसार शरीर का कोई अंग ऋण विद्युत की प्रधानता वाला है और कोई धन विद्युत की प्रधानता वाला है। जीभ ऋण (Negative) विद्युत की प्रधानता वाली है तथा मस्तिष्क धन (Positive) विद्युत का केन्द्र है। तालु मस्तिष्क की निचली परत होने से जीभ के द्वारा तालु पर घर्षण होने से ऋण विद्युत और धन विद्युत का मिलान होने से तरंगे प्रवाहित होकर आज्ञाचक्र को जागृत करती हैं। जीभ को भावना पूर्वक तालु के मध्य भाग में लगाने से आत्म रति जैसा उद्‌देश्य पूरा होता है। इससे एक विशेष प्रकार से आध्यात्मिक स्पन्दन आरम्भ होते हैं। उत्पन्न उत्तेजना से ब्रह्मानन्द की अनुभूति होती है। योग शास्त्र के अनुसार तालु के मूल भूमध्य में आज्ञाचक्र है वहाँ चन्द्रमा का स्थान है, उसका मुख नीचे की ओर है। वह अमृत की वर्षा किया करता है। उस अमृत वर्षा से देह की नाड़ियाँ भर जाती हैं एवं योगी का शरीर दिव्य बन जाता है। उसका आभामण्डल प्रभावशाली हो जाता है। हारमोन्स का भी यही प्रभाव है।

णमोकार महामंत्र में 'ण' शब्द का प्रयोग *१४ बार हुआ है। एक माला में 'ण' शब्द का प्रयोग १५१२ बार लयबद्ध उच्चारण करते रहने से जीभ तालु से लगती रहती है। उसके फल में आज्ञा चक्र को जागृत करती है। इस प्रकार 'ण' शब्द का बार–बार उच्चारण करने से ये लाभ सहज में ही हो जाते हैं। इससे शरीर की आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक पुष्टता के साथ बीमारियों को रोकने की अवरोधक शक्ति बढ़ती है तथा बीमारियां हों तो दूर हो जाती हैं। यही कारण है कि कई महानुभाव कहते हैं कि नमस्कार मंत्र के जाप से उनकी अमुक बीमारी दूर हो गई। जामनगर के शा० गुलाबचन्द खीमचन्द का उदाहरण उल्लेखनीय है। वे कैंसर के रोगी थे। अपने

---

* यह गणना णमोकार मंत्र एवम् मंगलं पाठ की अपेक्षा से है, यथा–

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।
एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावं पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढ़मं हवइ मंगलम्।।

आत्मकथांश में कैंसर की मारक दाहक व्यथा का मर्मभेदी ब्यौरा देकर बताते हैं कि वे विशेषज्ञों के उपचार से निराश हो गये, तब णमोकार महामंत्र के जाप से उन्हें शरण समाधान शान्ति प्राप्त हुई।

***

उक्त उद्धरण इस आशय से दिये गये हैं कि उच्चारण, मनन, चिन्तन जो आत्मा के निमित्त द्वारा पुद्‌गल की क्रियायें हैं, इनमें एक प्रकार से विद्युत शक्ति होती है, जिनसे विभिन्न प्रकार के फल प्राप्त हो सकते हैं। प्राण ऊर्जा भी कुछ इसी प्रकार की विद्युत है, जिसके चित्र किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा विशिष्ट पद्धति से लिये जा चुके हैं, जिसका वर्णन अध्याय ३ में दिया है।

(ग) **जैन मुनि ने चरण स्पर्श करने का वैज्ञानिक पक्ष विश्लेषित करते हुए कहा कि संतों का शरीर ऊर्जा का भंडार है। शरीर के कुछ हिस्से से ऊर्जा का सदा निष्कासन होता रहता है, वे हिस्से हैं पांव व हाथ की अंगुलियां। जब तुम किसी संत की चरण वन्दना करते हो तो उनके चरणों की अंगुलियों की शिराओं से जो ऊर्जा निकलती है, वह तुम्हें प्राप्त हो जाती है। उनके पांव के अंगूठे को आँखों में लगाते हो तो उनके चरणों से निकली ऊर्जा का स्पर्श करंट की भांति मनुष्य को सक्रिय कर देता है। तुम जैसे ही चरण–स्पर्श करते हो तो ऊर्जा का इलेक्ट्रिक शॉक लगता है, जिससे तुम्हारी बुद्धि, विवेक, ज्ञान, इन्द्रियाँ उद्वेलित होकर कार्यरत एवं क्रियाशील हो जाती हैं। संत–चरणों से ऊर्जा मिलती है, जिसे प्राप्त कर आत्मा ऊर्ध्वारोहण कर सकता है।

(घ) मनुष्य तभी तक जीवित रहता है जब तक उसके शरीर में ओजस्वी ऊर्जा होती है। यदि उसमें ओजस्वी ऊर्जा नहीं होती तो वह मर जाता है। इसलिए हमको प्राणायाम करना चाहिए (साँस द्वारा ओजस्वी ऊर्जा या प्राणशक्ति को नियंत्रण करने की कला)।

— हठयोग प्रदीपिका
(योग पर प्राचीन ग्रंथ से उद्धृत)

** (सन्दर्भ– "मैं सिखाने नहीं, जगाने आया हूं" नामक शास्त्र के पृष्ठ ६८–६९, भाषणकर्ता परम पूज्य श्री १०८ तरुण सागर जी, स्थान जामा मस्जिद के सामने, भोपाल, दिनांक १२ जनवरी १९९४– सम्पादक श्री मुकेश नायक, उच्च शिक्षा राज्य मंत्री, मध्य प्रदेश शासन)

उक्त उदाहरण हमें बताते हैं कि जीवन में ऊर्जा का एक विशेष महत्व है। इसका भौतिक शरीर से पृथक अस्तित्व होते हुए भी यह शरीर को तो निरन्तर प्रभावित करती ही है किन्तु आत्मा को भी प्रभावित करती है। जिस प्रकार शरीर से शरीर विज्ञान सृजन हुआ और शरीर को सुचारुपूर्वक सम्हालने के लिए विभिन्न उपाय संसार के सम्मुख प्रस्तुत हैं, उसी प्रकार ऊर्जा से ऊर्जा विज्ञान का सृजन हुआ। इस पुस्तक का सम्बन्ध ऊर्जा के अन्तर्गत "प्राणिक ऊर्जा" से है, इसलिए इस भाग में प्राणिक ऊर्जा (अथवा प्राणशक्ति) विज्ञान का विवरण प्रस्तुत है। इस प्राण ऊर्जा (जिसका शरीर से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है) की विषमताओं (जिसके फलस्वरूप शरीर में रोग पैदा हो जाते हैं) को दूर करने के उपाय एवम् उसके अन्य उपयोग भाग ५ में दिए गए हैं।

अध्याय– २

प्राणशक्ति उपचार का इतिहास

वर्तमान युग में प्राणशक्ति उपचार की पद्धति संसार के सामने फिलिप्पीन्स देश के एक नागरिक श्री चोआ कोक सुई (जो चीनी मूल के हैं) तथा कैमिकल इंजीनियर हैं, ने अपने गुरु (श्री मी लिंग) के मार्गदर्शन एवम् लगभग बीस वर्ष के अथक खोज एवम् प्रयोग करने के पश्चात पुनर्जागरित कर पीड़ित मानवता के समक्ष वैज्ञानिक रूप में रखा है। इस विद्या का मूलतः स्रोत भारत ही प्रतीत होता है जहाँ यह सम्भवतः विद्या लुप्तप्रायः हो गई थी। इसके जो सिद्धान्त हैं, उनसे यह प्रतीत होता है कि यह "परासामान्य उपचार" के अन्तर्गत जैन विद्या रही होगी तथा यह बौद्धों के हाथ लग गयी होगी। श्री अकलङ्काचार्य से शास्त्रार्थों में परास्त होकर जब बौद्ध अनुयायी तिब्बत आदि देशों में पलायन कर गये तो इस विद्या से सम्बन्धित पुस्तकें भी अपने साथ ले गये होंगे। श्री चोआ कोक सुई ने अनेक वर्ष रहस्यात्मक या गूढ़ विज्ञान पर पुस्तकों के अध्ययन करने और शोध करने में बिताया और सम्भवतः इन पुस्तकों को पढ़ा होगा। इसके अलावा इनके योगियों, उपचारकों, चीनी 'की कुंग' (आंतरिक शक्ति को बढ़ाने की कला) की विद्या को जानने वालों और कुछ ऐसे विलक्षण व्यक्तियों, जो अपने आध्यात्मिक गुरुओं के साथ दूरदृष्टि या पारेंद्रिय ज्ञान से संबंध रखते थे, के

साथ घनिष्ठ सम्बन्ध थे। उपचार की तकनीकों के व्यावहारिक पक्ष और उसकी प्रभावशीलता की जांच व खोज में लगाए गए हैं।

श्री चोआ कोक सुई ने इस विद्या को सरल, सुगम और क्रमबद्ध ढंग से पुस्तकों की श्रृंखला में प्रकाशित किया। तदुपरांत वर्ष १९८७ से पूर्वी एशिया और फिर क्रमशः अमेरिका, यूरोप, भारत आदि अनेक देशों के अनेकानेक नगरों में कुशल एवम् अनुभवी उपचारकों (प्राणशक्ति उपचार के चिकित्सक) के माध्यम से प्राणशक्ति उपचार की इस दैवी विद्या को वैकल्पिक उपचार पद्धति के रूप में जन साधारण के सामान्य व जटिल रोगों के प्रभावी उपचार के लिए प्रयोग में लाया जा रहा है। ऐलोपैथी दवाओं के प्रतिकूल पार्श्व प्रभावों से त्रस्त पश्चिमी देशों में भी इस बिना स्पर्श की प्रभावी वैकल्पिक उपचार पद्धति के प्रति निरन्तर आकर्षण बढ़ता जा रहा है। भारत में इस पद्धति का आगमन वर्ष १९९२ में केरल में हुआ, उसके बाद क्रमशः कर्नाटक, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, देहली के उपरान्त वर्ष १९९६ में उत्तर प्रदेश में इसका प्रवेश हुआ।

अध्याय– ३

ऊर्जा शरीर

श्री चोआ कोक सुई के अनुसार मनुष्य का सम्पूर्ण जैविक शरीर मुख्यतः दो भागों से बना होता है। एक दृश्य शरीर, जो दिखाई देता है तथा दूसरा न दिखाई देने वाला ऊर्जा शरीर जिसे जीव द्रव्य शरीर कहते हैं। प्रथम शरीर को भौतिक शरीर भी कह सकते हैं। जीव द्रव्य शरीर अदृश्य रूप से वह चमकदार आभा शरीर है जो दृश्य को भेदकर उसके बाहर चारों ओर साधारणतः चार या पाँच इंच तक फैला होता है। परम्परागत रूप से इस ऊर्जा शरीर को वायवी शरीर या वायवी चोला (etheric double) भी कहते हैं। इसको उपचार से प्राण शब्द से भी सम्बोधित किया जाता है, यद्यपि जैन शास्त्रों में वर्णित ''प्राण'' से इसका तात्पर्य नहीं है।

जीव द्रव्य (bioplasmic) शब्द का निर्माण दो शब्दों से बना है: पहला 'जीव' (बायो) यानी जीवन और दूसरा 'द्रव्य' (प्लास्मा) यानी पदार्थ का चौथा रूप। पदार्थ के

पहले तीन रूप ठोस, द्रव और गैस हैं। द्रव्य एक आयनीकृत गैस (ionized gas) है यानी इस गैस में धनात्मक और ऋणात्मक आवेश के अणु होते हैं। विज्ञान की भाषा में इन्हें प्रोटौन्स (protons) और इलैक्ट्रौन्स (electrons) कह सकते हैं। जीव द्रव्य का अर्थ एक जीवित शक्ति है जो अदृश्य सूक्ष्म पदार्थ या वायवी पदार्थ का बना होता है। किर्लियन (Kirlian) फोटोग्राफी की उच्च आवृत्ति (high frequency) तकनीक के माध्यम से वैज्ञानिक छोटे जीव द्रव्य वस्तुओं जैसे जीव द्रव्य उंगलियों, पत्तियों का अध्ययन करने और उनके चित्र लेने में सफल हुए हैं। इसी जीव द्रव्य शरीर द्वारा प्राणशक्ति या ओजस्वी ऊर्जा ग्रहण कर पूरे भौतिक शरीर में फैलायी या संचारित की जाती है।

(नोट:– यहां 'द्रव्य' शब्द का आशय भाग १, अध्याय २ के अन्तर्गत वर्णित छः द्रव्य, से नहीं है)

सामान्य भौतिक शरीर में जिस तरह रक्त के संचार के लिए नाड़ियां या रक्त नलिकाएं होती हैं, उसी प्रकार जीव द्रव्य शरीर में भी न दिखाई देने वाली बारीक शिरोबिन्दु या नाड़ियां होती हैं जिनके द्वारा प्राणशक्ति और जीव द्रव्य पदार्थ पूरे जीव द्रव्य शरीर में संचारित होता है। कई बड़ी और हजारों छोटी जीव द्रव्य नाड़ियां जीव द्रव्य शरीर में होती हैं। योग विद्या में इन्हें बड़ी और छोटी नाड़ी कहते हैं। इन नाड़ियों द्वारा प्राणशक्ति का संचार होता है जो पूरे शरीर को पोषण और शक्ति प्रदान करता है।

जैन शास्त्रों में पांच प्रकार के शरीर का वर्णन आया है। औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस और कार्माण। मनुष्यों और तिर्यंचों के औदारिक शरीर होता है। देव और नारकियों के वैक्रियक शरीर होता है। आहारक शरीर मात्र ऋद्धिधारी प्रमत्त गुणस्थानवर्ती मुनिराजों के होता है, जो एक हाथ का सफेद पुतला होता है, जिससे आहारक समुद्‌घात होता है। इसका वर्णन भाग १, अध्याय १ के क्रम (६) (झ) (१४) में दिया है। तैजस और कर्माण शरीर सभी सांसारिक जीवों के होता हैं। औदारिक शरीर उपरोक्त वर्णन में भौतिक अथवा दृश्य शरीर को कह सकते हैं। वैक्रियक शरीर मनुष्य, तिर्यंचों के नहीं होता, यद्यपि चतुर्थ काल के कुछ ऋद्धिधारी मुनियों को विक्रिया ऋद्धि प्राप्त हो सकती है। कार्माण शरीर इतना सूक्ष्म है कि वह भौतिक विज्ञान अथवा इन्द्रियों द्वारा गम्य नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मात्र एक तैजस शरीर बचा जिसको उपरोक्त वर्णित जीव द्रव्य अथवा ऊर्जा शरीर कहा जा सकता है। तैजस

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

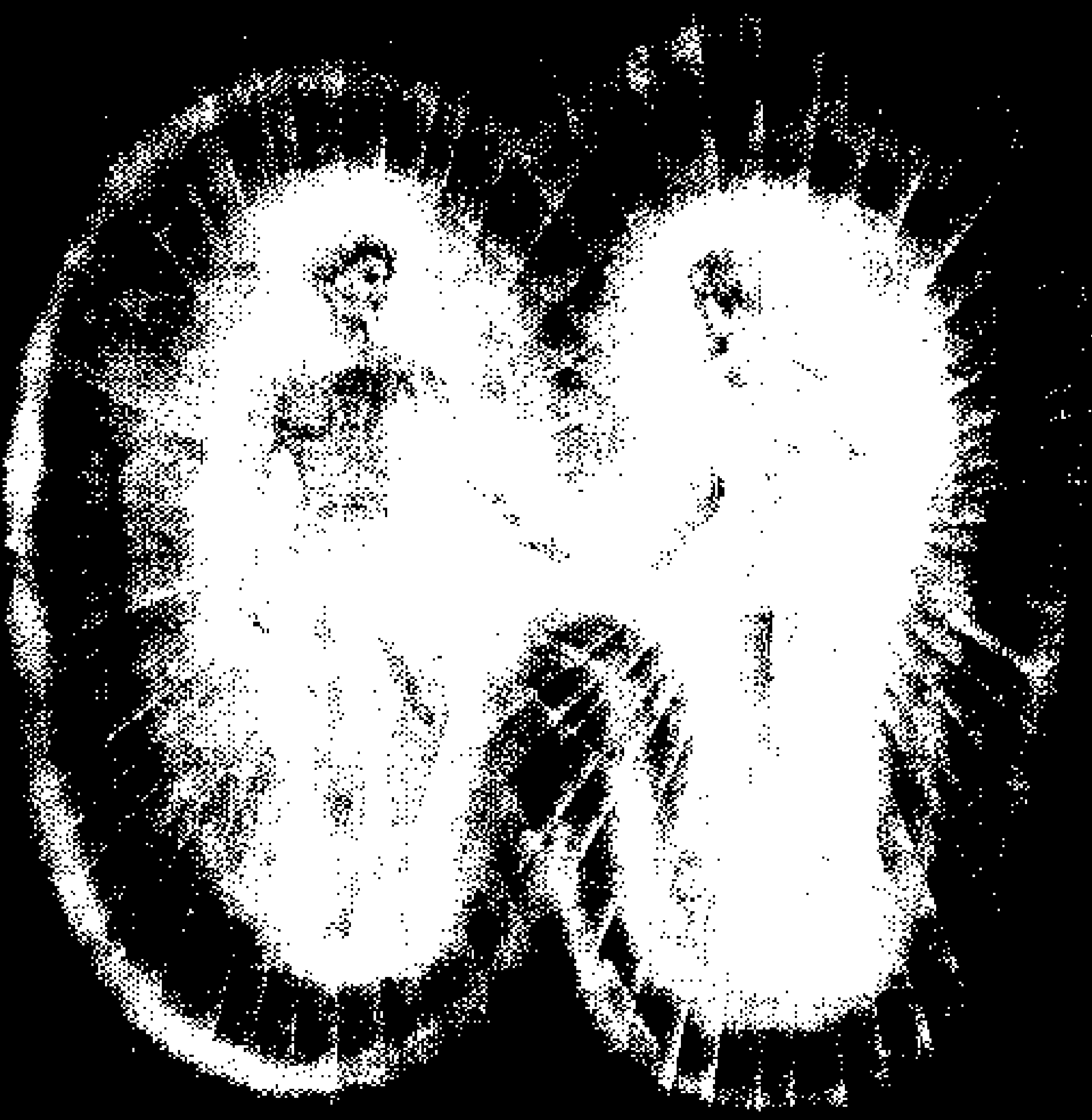

प्रेमी युगल का आंतरिक व बाहरी आभामंडल

चित्र ४.०१

शरीर से तेजमयी शरीर का संकेत मिलता है जो कि ऊर्जा का पर्यायवाची हो सकता है।[1] जीव द्रव्य अथवा ऊर्जा शरीर की किर्लियन फोटोग्राफी द्वारा ली गई फोटो जो सम्बन्धित पुस्तक में उपलब्ध है, उसकी प्रति चित्र ४.०१ में दी गई है। भारतवर्ष में किर्लियन फोटोग्राफी का उपकरण अखिल भारतवर्षीय प्राणिक हीलिंग फाउन्डेशन ट्रस्ट, दूसरा फ्लोर, सौना टॉवर्स ७१, मिलर्स रोड, बंगलौर– ५६००५२ {All India Pranic Healing Foundation Trust (Affiliated to World Pranic Healing Foundation Inc. Manila, Philippines), 2nd Floor, Sona Towers, 71, Millers Road, Bangalore-560052} में उपलब्ध है।

अध्याय ४

ऊर्जा शरीर और आभा मण्डल

जीव द्रव्य शरीर दिखाई देने वाले भौतिक शरीर को भेदकर बाहर की ओर साधारणतः चार से पांच इंच तक फैला रहता है, जिसका आकार भौतिक शरीर के आकार के ही तरह होता है। यह आन्तरिक आभा मण्डल (Inner Aura) कहलाता है। जब जीव द्रव्य शरीर बीमार हो जाता है तब इस शरीर की प्राणशक्ति भी अस्वस्थ हो जाती है, अर्थात रोगग्रस्त ऊर्जा आंशिक तौर पर किसी जगह पर या पूरी जगह पैदा हो जाती है। पीड़ित अंग के पास की आन्तरिक आभा चार-पांच इंच के बजाय कम (depletion) हो जाती है अथवा कभी-कभी अधिक (congestion) भी हो जाती है, अर्थात कहीं खालीपन हो सकता है और कहीं घनापन हो सकता है। उदाहरण के तौर पर नजदीक की वस्तुएं न देख सकने वाले व्यक्ति की आंखों के आसपास की प्राण शक्ति कम होती हैं, यह दो इंच तक छोटी हो सकती है। कुछ केसों में यह आन्तरिक आभा आधा इंच या उससे कम आकार तक भी हो जाती है। आभा को महसूस करने की प्रक्रिया को "जांचना" या स्कैनिंग (scanning) कहते हैं।

---

[1] इस सम्बन्ध में मुझे किसी जैन शास्त्र में कोई वर्णन नहीं मिला है और यह लेख मात्र तर्क से है। यदि किसी विद्वजन ने इस सम्बन्ध में कहीं किसी जैन शास्त्र में कोई वर्णन पढ़ा हो तो उस शास्त्र का नाम, पृष्ठ संख्या तथा वास्तविक वर्णन मुझे बताने की कृपा करें एवम् इस लेख को तदनुसार सुधार लें।

प्राणशक्ति की कमी या घनी होने के कारण चारों ओर फैले जीव द्रव्य शरीर की नाड़ियां या नलिकाएं आंशिक रूप से या अधिक रूप से अवरुद्ध हो जाती हैं, जिसके कारण प्रभावित अंग के चारों ओर अंदर या बाहर की ओर प्राणशक्ति आराम से आ जा नहीं सकती। दिव्यदर्शियों के अनुसार यह प्रभावित क्षेत्र हल्के भूरे से गहरे भूरे रंग तक के दिखाई देते हैं। यदि प्रभावित अंग में जलन हो तो इसका रंग मटमैला लाल होता है, कैंसर रोग में मटमैला पीला, कान की कुछ बीमारियों में इसका रंग मटमैला संतरे का सा और आंत्रपुच्छ के रोग (appendicitis) में मटमैला हरा होता है।

दिखाई देने वाले भौतिक शरीर की सतह से जीव द्रव्य किरणें सीधी खड़े रूप में निकलती हैं, ये किरणें स्वास्थ्य किरणें कहलाती हैं जो आंतरिक आभा (Inner Aura) को भेदकर (पार कर) बाहर आती हैं। इन स्वास्थ्य किरणों का पुंज स्वास्थ्य आभा मंडल (Health Aura) कहलाता है। ये स्वास्थ्य मंडल भौतिक शरीर से लगभग १८ इंच तक होता है और उसी के आकार के प्रकार में होता है और आसपास फैले कीटाणुओं और रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थों को रोकने के लिए एक सुरक्षित आवरण के रूप में कार्य करता है। जैविक विष (जहरीली वस्तुएं), व्यर्थ पदार्थ, कीटाणु और रोग ग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थों को स्वास्थ्य किरणें छोटे-छोटे छेदों द्वारा लगातार बाहर फैंकती रहती है। यदि व्यक्ति बीमार हो तो स्वास्थ्य किरणें भी कमजोरी से थोड़ी-सी नीचे बाहर लटक जाती हैं और पूरा शरीर रोगों से संक्रमित होने योग्य हो जाता है। उपरोक्त दूषित पदार्थों को शरीर से दूर रखने की स्वास्थ्य किरणों की क्षमता में कमी आ जाती है। स्वास्थ्य किरणों को फिर से ताकतवर और कठोर बनाकर उपचार की शक्ति को प्राप्त किया जा सकता है।

स्वास्थ्य आभा मण्डल के चारों ओर एक चमकदार ऊर्जा क्षेत्र होता है जिसे बाहरी आभा (Outer Aura) कहते हैं। यह आंतरिक और स्वास्थ्य दोनों आभाओं को भेदकर बाहर निकला होता है और भौतिक शरीर से लगभग १ मीटर दूर तक फैला होता है। सामान्यतः यह रंगीन और उल्टे अंडे के आकार का होती है। इसका रंग व्यक्ति की भौतिक, भावनात्मक और मानसिक दशा से प्रभावित होता है। बीमारी की दशा में इस बाहरी आभामण्डल में कुछ छेद हो जाते हैं जिनसे प्राणशक्ति रिसती रहती है। इसलिए बाहरी आभा को एक ऐसा शक्ति क्षेत्र माना जा सकता है जो

प्राणशक्ति के रिसाव को रोकने या इसे जमा रखने का कार्य करता है। यानी यह आवश्यक सूक्ष्म ऊर्जा के लिए एक डिब्बे या कवच का कार्य करता है।

उपरोक्त वर्णित आभा मंडलों को भली प्रकार समझने के लिए कृपया चित्र ४.०२ से ४.०७ तक का अवलोकन करें।

आभा मण्डलों का उपरोक्त कथन एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा से है। अधिक बलिष्ठ व्यक्तियों, कुशल प्राणशक्ति उपचारकों, दिव्यदर्शियों, तपस्वी साधुओं एवम् आध्यात्मिक सन्तों का आभा मण्डल काफी अधिक बड़ा होता है एवम् अधिक गुणवत्तावाला होता है। अधिक बलिष्ठ व्यक्ति का आंतरिक आभा मण्डल ८–१० इंच तक, कुशल प्राण शक्ति उपचारक का १० से २४ इंच तक हो सकता है। साधुओं एवम् दिव्य पुरुषों का आभा मण्डल बहुत ही अधिक हो सकता है यानी कई किलोमीटर भी हो सकता है। लेखक को एक बार परम पूज्य आचार्य श्री १०८ दया सागर जी का आंतरिक आभा मण्डल जांच करने की आवश्यकता पड़ी, किन्तु वह इसमें असमर्थ रहा क्योंकि पूज्य श्री का आभा मण्डल उस कमरे में नहीं था जहाँ वे विराजमान थे ओर उस कमरे से काफी बाहर था और पता नहीं कितने दूर तक रहा होगा। इन दिव्यात्माओं की आभा घनी, सुदृढ़ एवम् बहुत अधिक गुणवत्ता वाली होती है और उस आभा मण्डल में आने वाले जीवों पर उनके व्यक्तित्व का गहन प्रभाव पड़ता है। शास्त्रों में वर्णन आता है कि तीर्थंकर भगवान जहाँ विराजमान होते हैं, वहाँ से १०० योजन दूर–दूर तक सुभिक्ष रहता है और शेर–बकरी एक घाट पानी पीते हैं। सम्भवतः यह प्रभाव उनके आन्तरिक आभामण्डल के प्रभाव से अहिंसामयी वातावरण एवं सुभिक्षता का हो जाने के फलस्वरूप होता है, ऐसा वैज्ञानिक स्पष्टीकरण हो सकता है।

अध्याय ५

जीवद्रव्य शरीर और भौतिक शरीर तथा मन का आन्तरिक सम्बन्ध

(१) जीव द्रव्य शरीर और भौतिक शरीर

जीव द्रव्य शरीर और दिखाई देने वाले भौतिक शरीर दोनों का आपसी सम्बन्ध इतना अधिक होता है कि यदि एक को कुछ हो जाए, तो दूसरा भी उससे प्रभावित

चित्र ४.०२
स्वस्थ
व्यक्ति

चित्र ४.०३
रोगी
व्यक्ति

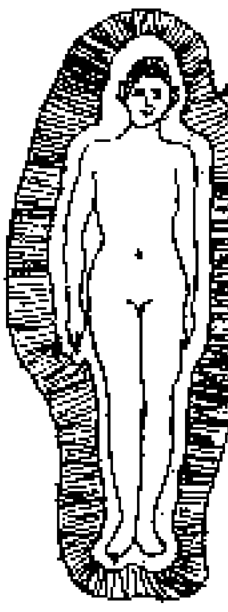

चित्र ४.०४
स्वस्थ
व्यक्ति

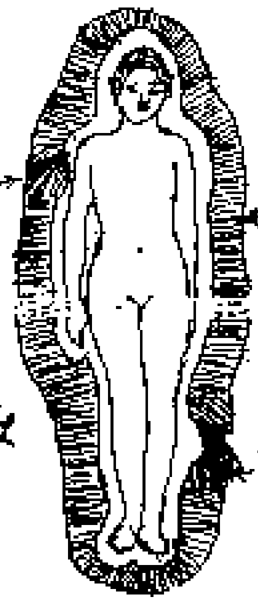

चित्र ४.०५
रोगी
व्यक्ति

चित्र ४.०६
स्वस्थ
व्यक्ति

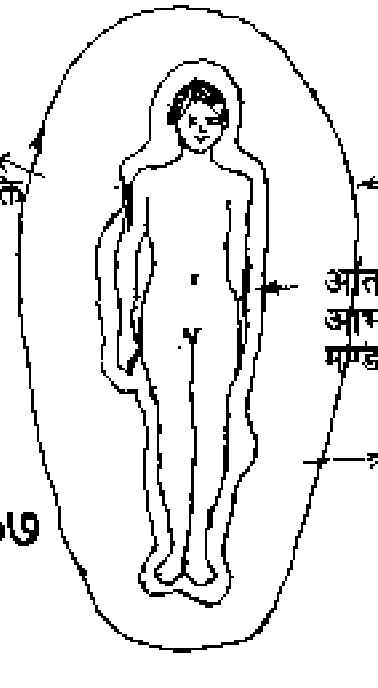

चित्र ४.०७
रोगी
व्यक्ति

हुए बगैर रह नहीं पाता। जैसे यदि जीव द्रव्य शरीर का गला कमजोर हो तो इसका प्रभाव भौतिक शरीर पर खांसी, सर्दी, गले में खराश, टॉन्सिलाइटिस या गले की अन्य बीमारियों के रूप में पड़ता है। किसी दुर्घटना में यदि चमड़ी छिल जाये तो जहां से खून बह रहा होता है वहाँ से प्राणशक्ति का रिसाव होता है। प्राणशक्ति के घने होने या उसमें कमी (depletion) होने से यदि जीव द्रव्य शरीर कमजोर हो जाता है तो भौतिक शरीर या तो ठीक से काम नहीं कर पायेगा या फिर उसके बीमारियों को ग्रहण करने की आशंका बहुत बढ़ जाती है।

सामान्यतः रोग पहले जीव द्रव्य शरीर में प्रवेश करते हैं। रोग के लक्षण उभरने से पहले ही उनके उपचारादि करके बचाव किया जा सकता है। प्राणशक्ति उपचारक जांच द्वारा यह जान सकते हैं कि रोगग्रसित अंग की आंतरिक आभा सामान्य से छोटे या बड़े आकार की हो गई है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति को पीलिया होने वाला हो तो दिव्य दर्शन द्वारा यह देखा जा सकता है कि उस रोगी का सौर जालिका (Solar Plexus) और यकृत भूरे रंग का है। मैडिकल परीक्षण से वह रोगी सामान्य और स्वस्थ दिखाई देगा। यदि इस रोगी का इलाज न किया गया तो बीमारी के लक्षण कुछ समय बाद भौतिक शरीर पर प्रकट हो जायेंगे। यह इलाज जीव द्रव्य शरीर के प्राणशक्ति उपचारक द्वारा अथवा समुचित दवाइयों द्वारा भौतिक शरीर के उपचार द्वारा किया जा सकता है, अथवा दोनों प्रकार के उपचारों द्वारा।

(२) जीवद्रव्य शरीर और मन

दिव्यदर्शियों ने यह देखा है कि जीव द्रव्य शरीर के अनुसार भौतिक शरीर का गठन होता है। मन जानबूझकर या अनजाने में ही जीव द्रव्य शरीर को प्रभावित करता है। गूढ़ विज्ञान के जानकार व्यक्ति अपनी गर्भवती पत्नियों को सुन्दर वस्तुओं को देखने, मनमोहक संगीत सुनने, साकारात्मक सोचने और महसूस करने, गम्भीर अध्ययन करने और विरोध से बचने के लिए प्रेरित करते हैं। ये गतिविधियाँ जन्म लेने वाले शिशु की न केवल शारीरिक संरचना को बल्कि उसी भावनात्मक व मानसिक शक्ति और प्रवृत्तियों को भी प्रभावित करती है। इसको हम एक प्रकार से संस्कार डालना भी कह सकते हैं। पूज्य श्री १०८, कुन्दकुन्दाचार्य जी की सुयोग्य माताश्री द्वारा इस प्रकार संस्कार डालने का उदाहरण प्रासंगिक होगा।

यहाँ अभी इतना उल्लेख ही पर्याप्त होगा। इसका विस्तृत वर्णन अध्याय ११ में ऊर्जा चक्रों के अन्तर्गत क्रम 6– सौरजालिका चक्र के वर्णन में किया गया है।

अध्याय ६

जीव द्रव्य शरीर के कार्य

(१) यह प्राणशक्ति को सोखकर सम्पूर्ण शरीर में उसका वितरण कर उसे ऊर्जित करता हैं। प्राणशक्ति वह ओजस्वी ऊर्जा या जीवनशक्ति है जो पूरे शरीर का पोषण करती है। ऐसा होने पर शरीर अपने विभिन्न अंगों की मदद से ठीक प्रकार से तथा सामान्य ढंग से कार्य कर सकता है। प्राणशक्ति के बिना शरीर मृत हो जाता है।

(२) यह दिखाई देने वाले भौतिक शरीर के सांचे या उसकी अनुकृति की तरह होता है। वर्षों की लगातार चयापचयन की प्रक्रिया के बावजूद यह दिखाई देने वाले भौतिक शरीर के आकार–प्रकार और बनावट को बनाये रखने में सहायता देता है। ठीक प्रकार से कहा जाए तो दिखाई देने वाले शरीर के अनुरूप ही जीव द्रव्य शरीर का निर्माण एक सांचे की तरह होता है। यदि जीव द्रव्य शरीर में कुछ गड़बड़ हो तो दिखाई देने वाले शरीर में भी गड़बड़ी होगी। इन दोनों का आपस में इतना अधिक गहरा सम्बन्ध होता है कि जो चीज एक को प्रभावित करती है वह दूसरे को भी करती है। यदि पहला बीमार होता है तो दूसरा भी रोगग्रस्त हो जाता है। यदि पहला रोगमुक्त होता है तो दूसरा भी निरोगी हो जाता है। कोई बाधा पहुंचाने वाले या रुकावट डालने वाले तत्त्व न हों तो यह प्रक्रिया धीरे–धीरे या लगभग जल्दी ही पूरी होती है।

(३) जीव द्रव्य शरीर चक्रों या तेजी से घूमने वाले ऊर्जा केन्द्रों की सहायता से सम्पूर्ण भौतिक शरीर और उसके विभिन्न भागों व अंगों के ठीक प्रकार से कार्य करने के लिए उत्तरदायी होता है और उन्हें नियंत्रित करता है। इसमें वे अंतःस्त्रावी ग्रंथियां भी सम्मिलित हैं जो कुछ बड़े चक्रों की बाहरी अभिव्यक्ति हैं। बहुत से रोग आंशिक रूप से किसी एक या अधिक चक्रों के ठीक प्रकार से कार्य न करने के कारण होते हैं।

(४) जीव द्रव्य शरीर अपनी स्वास्थ्य किरणों व स्वास्थ्य आभा द्वारा रोगाणुओं और रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ से बचने के लिए एक सुरक्षित आवरण का कार्य करता है। प्रदूषक, बेकार कचरा और रोगाणुओं को स्वास्थ्य किरणों द्वारा बारीक छेदों के माध्यम से बाहर निकालकर पूरे भौतिक शरीर को साफ रखा जाता है।

अध्याय ७

प्राण–ऊर्जा और दैनिक उपयोग

मानसिक शक्ति अथवा हाथ की हथेली में स्थित हाथ-चक्र (ऊर्जा चक्र का वर्णन आगे करेंगे) अथवा आँखों द्वारा ऊर्जा का आदान–प्रदान किया जा सकता है। इसके दैनिक उपयोग के उदाहरण निम्न प्रकार हैं:

१. किसी को आशीर्वाद देना– हाथ की हथेली के माध्यम से आशीर्वाद दिया जाता है। इसमें आशीर्वाद देने वाले व्यक्ति द्वारा उसकी ऊर्जा प्रेषित होती है जिसका प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर पड़ता है।

२. रोगी व्यक्ति की नजर उतारना-- मिर्च, तेल की बत्ती या पत्थर द्वारा रोगी के चारों ओर घुमाकर, मानसिक शक्ति द्वारा रोगी की रोगग्रसित ऊर्जा को बाहर निकालकर तथा उसको उक्त नजर उतारने वाले पदार्थ के द्वारा ग्रहण कराया जाता है। फिर मिर्च या तेल की बत्ती को जलाकर रोगग्रसित ऊर्जा को नष्ट किया जाता है अथवा पत्थर को कहीं दूर फेंक दिया जाता है।

३. ताबीज, गण्डा आदि- इसमें मंत्र को लिखकर ताबीज, गण्डा आदि में रखकर आशीर्वाद सहित दूसरे व्यक्ति के गले या हाथ में पहनाया जाता है। इस प्रकार उस मंत्र में निहित ऊर्जा एवम् आशीर्वाद की ऊर्जा उस व्यक्ति को प्रभावित करती है।

४. रोगी व्यक्ति का पराउपचार, स्वउपचार अथवा दूरस्थ उपचार। इसका विस्तृत वर्णन भाग–५ में किया गया है।

५. रोगी व्यक्ति को आने आने वाले समय में नकारात्मक ऊर्जा व रोगों से बचाने के लिए ऊर्जा का ढाल बनाना (भाग ५, अध्याय २३)।

६. दवा की शक्ति/ क्षमता बढ़ाना तथा वस्तुओं को ऊर्जित करना (भाग ५, अध्याय ३६)।

७. वायवी तौर पर कमरे की सफाई (भाग ५ अध्याय ३६)।

८. पौधों को शीघ्र विकसित करना (भाग ५ अध्याय ३६)।

९. ऊर्जा की ढाल द्वारा किसी की यात्रा को सुरक्षित करना (भाग ५ अध्याय ३६)।

१०. खिलाड़ी की बगैर दवा के अस्थायी तौर पर खेलने की क्षमता बढ़ाना (भाग ५ अध्याय ३६)।

११. आक्रमक पशु के आक्रमण को तुरन्त समाप्त करना (भाग ५ अध्याय ३६)।

१२. नगादि की वायवी सफाई (भाग ५ अध्याय २६)।

अध्याय ८

प्राण ऊर्जा का स्रोत

प्राण शक्ति या आभा या 'की' (Ki) वह ओजस्वी ऊर्जा या जीवन शक्ति है जो शरीर को जीवित व स्वस्थ रखती है। इसके मुख्यतः तीन स्रोत हैं:

(क) सौर प्राणशक्ति– यह सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होती है। धूप स्नान द्वारा अथवा धूप में रखा हुआ पानी पीकर यह ऊर्जा प्राप्त होती है। अधिक सौर ऊर्जा शरीर को हानि पहुंचा सकती है क्योंकि यह बहुत अधिक शक्तिशाली होती है।

(ख) वायु प्राणशक्ति– यह वायु मण्डल में पायी जाती है। श्वसन क्रिया के माध्यम से फैंफड़ों द्वारा एवम् जीव द्रव्य शरीर के ऊर्जा केन्द्रों के माध्यम से वायु प्राणशक्ति ग्रहण की जाती है। विशेषकर यह प्राण–शक्ति प्लीहा ऊर्जा चक्र एवम् हाथ के ऊर्जा

चक्रों द्वारा ग्रहण की जाती है। विशेष प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति अपनी त्वचा के सूक्ष्म छिद्रों द्वारा भी इसे प्राप्त कर सकता है।

(ग) भू-प्राणशक्ति– भूमि में पायी जाने वाली भू-प्राणशक्ति कहलाती है। यह साधारणतः भूमि स्तर से लगभग एक फुट छह इंच ऊपर तक विद्यमान रहती है। इसे पैर के तलुओं से प्राप्त किया जाता है। यह प्रक्रिया बिना ध्यान दिये अपने आप ही होती रहती है। नंगे पैर चलने से शरीर द्वारा ग्रहण किये गये भू–प्राण की मात्रा में वृद्धि होती है। इसकी गुणवत्ता वायु प्राण से अधिक होती है। शायद तपशक्ति के अतिरिक्त, इस कारण हमारे त्यागीगण नंगे पैर भूमि पर काफी दूर तक बगैर थके चले जाते हैं।

सूर्य के प्रकाश, वायु और भूमि के संपर्क में आने वाला पानी इन तीनों से प्राणशक्ति प्राप्त करता है। पेड़-पौधे धूप, वायु, भूमि और पानी से प्राण शक्ति सोखते हैं।

कुछ पेड़ (जैसे चीड़ के वृक्ष या पुराने, बड़े, स्वस्थ पेड़) अधिक मात्रा में प्राणशक्ति का रिसाव करते हैं या छोड़ते हैं। इन पेड़ों के नीचे थके या बीमार व्यक्ति को आराम करने से बहुत अधिक फायदा होता है। यदि पेड़ से शब्दों में बीमार व्यक्ति के स्वास्थ्य लाभ की कामना की जाए तो और अधिक अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। कोई भी व्यक्ति जाग्रत अवस्था में इन पेड़ों से अपने हथेलियों को संवेदनशील करके, पेड़ों से कामना करने से प्राणशक्ति प्राप्त कर सकता है। संवेदनशील करने की विधि भाग ५, अध्याय ४, क्रम ५ (घ) में दी गयी है। अधिक मात्रा में प्राणशक्ति प्राप्त करने से वह अपने शरीर में सिहरन या झुरझुरी और सम्मोहन महसूस करेगा। इस प्रक्रिया को कुछ बार अभ्यास करके सीखा जा सकता है।

कुछ क्षेत्रों में अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक प्राणशक्ति होती है। इनमें से कुछ अत्यधिक ऊर्जा क्षेत्रों में उपचार- केन्द्र खोले जा सकते हैं। कुछ भूमि में नकारात्मक ऊर्जा होती है जहां अधिक रहने से व्यक्ति बीमार हो सकता है, जैसे श्मसान भूमि अथवा किसी कमरे में संक्रामक रोगी की उपस्थिति द्वारा अथवा हस्पतालों, पागलखाना आदि स्थानों पर।

खराब मौसम के कारण कुछ व्यक्ति न केवल बदलते तापमान से बीमार पड़ते हैं, बल्कि सौर और वायु प्राण शक्ति में कमी के कारण भी बीमार पड़ते हैं। दिव्य

दर्शन से यह पता चला है कि रात्रि की अपेक्षा दिन में अधिक प्राण शक्ति पायी जाती है, सम्भवतः रात्रि में दिन की अपेक्षा अधिक मृत्यु इस कारण से होती है।

अध्याय ९

प्राण ऊर्जा और रंग

साधारणतः प्राणशक्ति सफेद रंग की होती है, जो साधारण व्यक्ति को दृष्टिगोचर नहीं होती है। विज्ञान में सफेद रंग की रचना VIBGYOR (Violet, Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange, Red अर्थात बैंगनी, नील, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल) रंगों से होती है। नील और नीला रंग लगभग एक सा ही होता है। प्राण-ऊर्जा के सफेद रंग की रचना छः रंगों से होती है। अर्थात बैंगनी, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल। प्रेम, स्नेह और करुणा की प्राण ऊर्जा गुलाबी रंग की होती है। इसके अतिरिक्त दिव्य ऊर्जा भी होती है जो सामान्यतः आध्यात्मिक व्यक्तियों के होती है। यह अत्यधिक चमकती हुई सफेद रंग अथवा विद्युतीय बैंगनी या सुनहरे रंग की होती है। इसका बिस्तृत वर्णन आगे भाग ५ के अध्याय ८ में किया गया है।

जब विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा जीव द्रव्य के सम्पर्क में आती है, तो वह धीरे-धीरे स्वर्णमयी ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। फिर जब वह सुनहरी ऊर्जा को शरीर सोख लेता है, तो इसका रंग हल्का लाल हो जाता है।

अध्याय १०

ऊर्जा चक्र

भाग ३- "शरीर रक्षा" के अध्याय १ में हमने देखा कि योग विद्या के अनुसार भौतिक शरीर का संचालन सात मुख्य चक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्त्रार) द्वारा होता है जो चित्र ३.०१ में दर्शाये हैं। इसी प्रकार जीव द्रव्य शरीर का संचालन ग्यारह प्रमुख ऊर्जा चक्रों द्वारा होता है। इनमें से प्लीहा चक्र के अतिरिक्त अन्य दस चक्र दो प्रमुख ऊर्जा चैनलों (Channels) जो मैरिडियन्स (Meridians) कहलाते हैं, उन पर अवस्थित होते हैं- एक सामने का और दूसरा पीछे

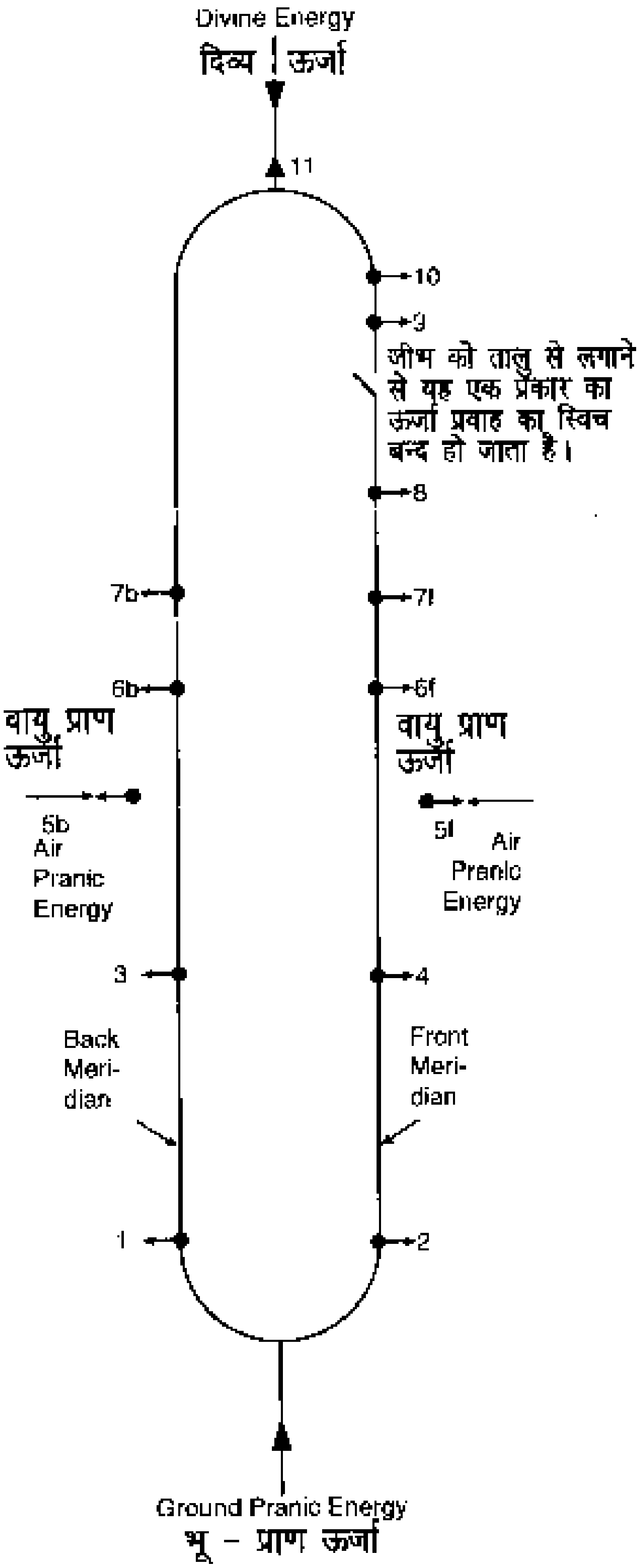

ENERGY CHAKRAS		ऊर्जा चक्र
1	Basic	मूलाधार
2	Sex	काम
3	Meng Mein	कटि
4	Navel	नाभि
5f	Front Spleen	आगे का प्लीहा
5b	Back Spleen	पीछे का प्लीहा
6f	Front Solar Plexus	आगे का सौर जालिका
6b	Back Solar Plexus	पिछला सौर जालिका
7f	Front Heart	आगे का हृदय
7B	Back Heart	पिछला हृदय
8	Throat	कण्ठ
9	Ajna	आज्ञा
10	Forehead	ललाट
11	Crown	ब्रह्म

ऊर्जा के स्रोत

SOURCES OF ENERGY

चित्र ४.०८

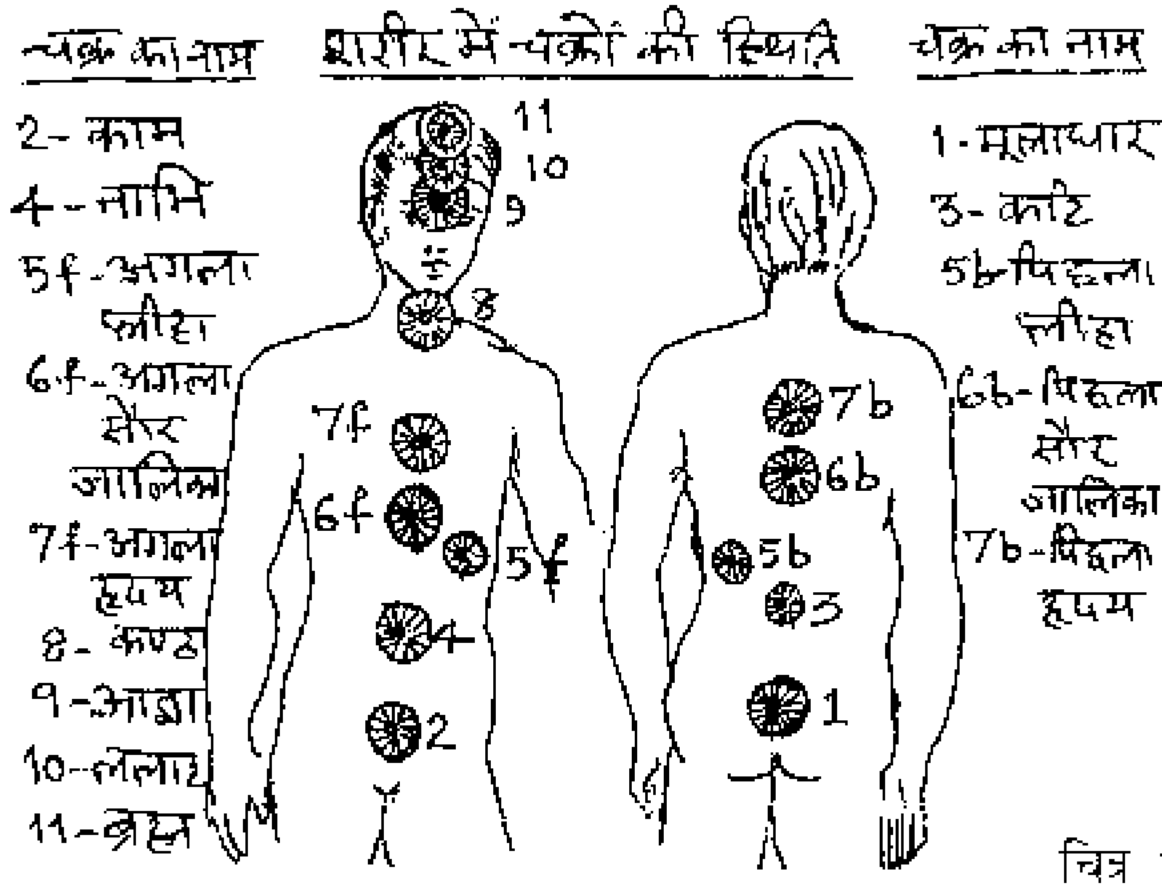

चित्र ४.०९

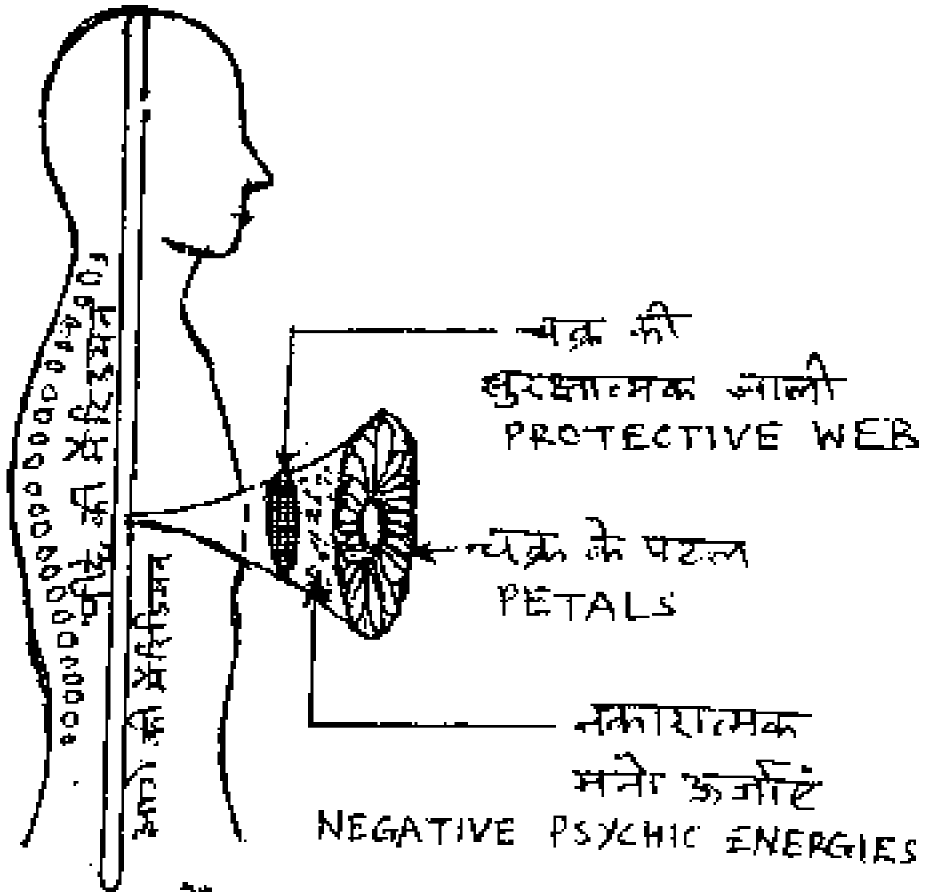

दिग्दर्शन- चक्र और उसकी सुरक्षा जाली नकारात्मक मनो ऊर्जा से भरी हुई

चित्र ४.१०

का जैसा चित्र ४.०८ में दर्शाया है। चक्रों की शरीर में स्थिति चित्र ४.०६ में दी गयी है।

जैसा कि चित्र ४.०८ में दर्शाया गया है, ऊर्जा चक्र मैरिडियन्स से जुड़े होते हैं। इन चक्रों में ऊर्जा की पंखुड़ियां (energy petals) होती हैं। यह चक्र बारी–बारी से घड़ी की विपरीत दिशा तथा घड़ी की दिशा में घूमते रहते हैं। घड़ी के विपरीत दिशा में जब कोई चक्र घूमता है, तो अन्दर से इस्तेमाल हुई ऊर्जा बाहर निकलती है और जब घड़ी की दिशा में चक्र घूमता है तो बाहर से ताजा ऊर्जा चक्र के अन्दर प्रवेश कर जाती है। इस ऊर्जा चक्र के अन्दर एक ऊर्जा की चलनी भी होती है, जिसका व्यास चक्र के व्यास से लगभग एक इंच कम होता है। यह चलनी (filter) बाहर से अन्दर आने वाली ऊर्जा के अन्तर्गत नकारात्मक तथा हानिकारक तत्त्वों को रोकती है। कुविचारों के निमित्त से पैदा हुई नकारात्मक मनो ऊर्जा (negative psychic energies) इस प्रकार ऊर्जा की चलनी (energy filter या web) की जाली पर रुक जाती है। चित्र ४.१० में चक्र की रचना को दर्शाया गया है।

अध्याय ११

मुख्य ऊर्जा चक्रों का कार्य एवम् शरीर पर प्रभाव

चक्र या तेजी से घूमने वाले ऊर्जा केंद्र जीवद्रव्य शरीर के बहुत ही आवश्यक अंग है। जिस प्रकार दिखाई देने वाले शरीर में छोटे और विशिष्टि अंग होते हैं उसी प्रकार जीवद्रव्य शरीर में भी बड़े, छोटे और सूक्ष्म चक्र होते हैं। बड़े चक्र लगभग तीन–चार इंच के तेजी से घूमने वाले ऊर्जा केंद्र होते हैं। ये दिखाई देने वाले भौतिक शरीर के बड़े और आवश्यक अंगों को ऊर्जा देते हैं और उन्हें नियंत्रित करते हैं। ये बड़े चक्र एक प्रकार से ऊर्जा घर जैसा कार्य करते हैं। जब ये ऊर्जा घर ठीक से काम नहीं करते तब अंग विशेष बीमार हो जाता है क्योंकि पूरी तरह ऊर्जा नहीं मिलने के कारण वह ठीक प्रकार से कार्य नहीं कर पाता। छोटे चक्र लगभग एक से दो इंच तक के होते हैं। सूक्ष्म चक्र एक इंच से छोटे होते हैं। छोटे और सूक्ष्म चक्र भौतिक शरीर के

कम जरूरत वाले अंगों को ऊर्जा देते हैं और नियंत्रित करते हैं। ये चक्र दिखाई देने वाले भौतिक शरीर को भेद कर उससे आगे की ओर निकल आते हैं।

इनके निम्नलिखित आवश्यक कार्य होते हैं :

(क) ये प्राणशक्ति को सोखकर, पचाकर उसे शरीर के विभिन्न भागों तक पहुँचाते हैं।

(ख) चक्र सम्पूर्ण भौतिक शरीर तथा उसके विभिन्न अंगों को नियोजित करते हैं, ऊर्जा देते हैं और उनको ठीक प्रकार से कार्य करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। अंतःस्रावी (endocrine) ग्रंथियों का नियंत्रण ओर उनको ऊर्जा प्रदान करने का कार्य कुछ बड़े चक्र करते हैं। अंतःस्त्रावी ग्रंथियों को उत्तेजित करने या निरोधी करने अथवा उनका कार्य कम या अधिक करने के लिए बड़े चक्रों की शक्ति को नियंत्रित या विस्थापित किया जा सकता है। चक्रों के ठीक प्रकार से कार्य न करने के कारण आंशिक रूप से कई प्रकार की बीमारियां होती हैं।

(ग) कुछ चक्र मानसिक क्षमता के केंद्र होते हैं। कुछ विशेष चक्रों (ऊर्जा केंद्रों) को उत्तेजित करने से कुछ मानसिक क्षमताओं का विकास होता है। उदाहरण के लिए हाथ के चक्रों को आसानी से और सुरक्षित रूप से उत्तेजित किया जा सकता है। ये चक्र हथेली के मध्य में स्थित होते हैं। हाथ के चक्रों को उत्तेजित करके व्यक्ति में सूक्ष्म ऊर्जा को महसूस करने की योग्यता आ जाती है और बाहरी, स्वास्थ्य एवं आंतरिक आभा को भी महसूस करने की क्षमता आ जाती है। नियमित रूप से इन पर ध्यान केंद्रित करके आसानी से इसे पूरा किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को "हाथों को संवेदनशील बनाना" कहा गया है।

जीव द्रव्य में स्थित ११ मुख्य ऊर्जा चक्रों का वर्णन निम्नलिखित है। इस पुस्तक में संक्षिप्तीकरण के उद्देश्य से इन चक्रों को क्रमशः उसी संख्या से दर्शाया गया है, जो नीचे दिये गये हैं; जैसे मूलाधार चक्र को संख्या 1 से।

(1) मूलाधार चक्र BASIC CHAKRA

(क) स्थिति– यह चक्र रीढ़ की हड्डी के अन्तिम मनका (coccyx) के अन्तिम छोर में होता है।

(ख) कार्य– यह चक्र पेड़ की जड़ के समान होता है। इस चक्र का दूसरा नाम "जड़ या मूल चक्र है"। यह भौतिक शरीर को नियंत्रित करता है, ऊर्जा देता है और शक्तिशाली बनाता है। यह मांसपेशियों और अस्थि तंत्र, रीढ़ की हड्डी, पीठ, शुद्ध रक्त के निर्माण, अधिवृक्क ग्रंथियों (Adrenal glands), शरीर के ऊतक (Tissues) और आंतरिक अंगों को नियंत्रित करता है और ऊर्जा देता है। यह चक्र जननांगों को तथा काम चक्र को काफी प्रभावित करता है और जननांगों को ऊर्जा प्रदान करता है। यह शरीर को स्फूर्ति प्रदान करता है, शरीर को गर्मी देता है और शिशु व बच्चों के विकास को भी प्रभावित करता है। यह हड्डी के अन्दर खाली जगह में अवस्थित नरम व वसायुक्त पदार्थ जिसको अस्थि–मज्जा (बोन–मैरो) (Bone marrow) कहते हैं और जहाँ लाल व श्वेत रक्त के कण बनते हैं, उसको भी प्रभावित करता है जिससे रक्त का उत्पादन और गुणवत्ता नियंत्रित होते हैं। यह हृदय को भी प्रभावित करता है।

मूलाधार चक्र की ऊर्जा का एक अंश मस्तिष्क को भी पहुंचता है, इसलिये इसके ठीक प्रकार से काम न करने से मस्तिष्क बुरी तरह प्रभावित हो सकता है। यह चक्र स्व–जीवित रहने (self-survival) और स्व–संरक्षण (self-preservation) का केन्द्र है।

वृद्ध व्यक्तियों का मूलाधार चक्र कमजोर हो जाता है, इसलिये उनकी कमर झुक सकती है। घाव व टूटी हड्डी देर में जुड़ती है व जोड़ों का दर्द अथवा संधिवात (arthiritis) होने की संभावना रहती है। यह चक्र स्वस्थ व जवान रहने के लिए अति महत्त्वपूर्ण है। जिनका चक्र अधिक शक्तिशाली व क्रियाशील होता है, वे अधिक स्वस्थ, शक्तिशाली व स्फूर्तिवान होते हैं, किन्तु बहुत अधिक सक्रियता बेचैनी व अनिद्रा पैदा कर सकती है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– संधिवात, रीढ़ की हड्डी की समस्यायें, रक्त के रोग तथा एलर्जी, घाव व टूटी हड्डियों का देर से ठीक होना, स्फूर्ति की कमी, हृदय रोग, मस्तिष्क के रोग, यौन रोग, जीवन शक्ति की कमी, अधिश्वेतरक्तता (leukemia), विकास समस्यायें, कैन्सर, अस्थमा, पीठ की समस्यायें।

मनो– उदासी, मायूसी (depression), आलसीपन, अव्यवहारिक होना, आत्महत्या करने की प्रवृत्ति (पराकाष्ठा की दशा में)।

जो व्यक्ति पैरेनौइड (paranoid) हैं अथवा नशीली चीजों के आदी होते हैं, उनका मूलाधार चक्र सही ढंग से कार्य नहीं करता है (नोट– पैरेनौइड उसको कहते हैं जिसका मस्तिष्क विकृत होकर अवर्तमान दृश्यों को देखता है, दूसरों को कष्ट देता है, दूसरों को अति शंका व अति अविश्वास से देखता है)।

(घ) विविध– यह भू–ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है, जो तलवे के चक्रों द्वारा ऊर्जा ग्रहण करता है। इस चक्र के ४ पटल होते हैं। इस चक्र में मुख्यतः लाल और नारंगी रंग की ऊर्जा होती हैं व कम अंशों में पीले रंग की भी ऊर्जा होती है। अतएव प्राणशक्ति उपचार में लाल, नारंगी, पीला, नारंगी–पीला, नारंगी-लाल रंग की ऊर्जा प्राणशक्ति उपचारक द्वारा इस चक्र से ली जाती है।

इस चक्र के आधीन कार्यरत लघु चक्र (minor chakras) होते हैं। ये चक्र हाथ की हथेली (hand), कोहनी (elbow), कांख (armpit), पैर के तलवे, घुटने, कूल्हे (hip) और मस्तिष्क के पिछले भाग में अवस्थित हैं।

चूंकि इस चक्र की ऊर्जा का एक अंश मस्तिष्क को भी जाता है, इसलिये मस्तिष्क के सुचारुपूर्वक कार्य करने हेतु मूलाधार का सुचारुपूर्वक कार्य करना आवश्यक है।

(2) काम चक्र– SEX CHAKRA

(क) स्थिति– यह चक्र पेडू– जननांग क्षेत्र (pubic area) में होता है।

(ख) कार्य– यह चक्र जननांगों (Sexual organs), मूत्राशय (bladder) और पैरों को नियंत्रित करता है और ऊर्जित करता है। इस चक्र पर मूलाधार चक्र, कण्ठ चक्र व आज्ञा चक्र तीव्र प्रभाव डालते हैं। इसलिये यदि तीन चक्रों में कोई चक्र ठीक प्रकार कार्य नहीं करता, तो काम चक्र भी ठीक प्रकार कार्य नहीं करता।

यह चक्र यौन प्रवृत्ति (sexual instinct) का केन्द्र है। इस चक्र से ऊर्जा का प्रवाह नाभिचक्र में होते हुए ऊपर की ओर होता है। अतएव यदि नाभि चक्र में अधिक जमाव (congestion) हो जाता है, तो यह ऊर्जा नाभिचक्र से टकराकर

वापिस लौटकर काम चक्र पर आती है, जिससे यौन एवम् मूत्र सम्बन्धी समस्यायें पैदा हो जाती हैं।

इस चक्र का कण्ठ चक्र से उच्च सम्बन्ध है। इस चक्र की यौन ऊर्जा का एक अंश प्राण–शक्ति की एक उच्च कोटि की ऊर्जा में परावर्तित होता है, जिसका कण्ठ चक्र और ब्रह्म चक्र के सुचारु रूप से परिचालन में प्रयोग होता है। यह उच्च कोटि की ऊर्जा आत्मिक उत्थान के लिए एक प्रकार से पेट्रोल का कार्य करती है तथा इस प्रकार के परिवर्तन करने की कला 'अर्हत योग (Arhatic Yoga)' के जानकार जानते हैं। इस प्रकार एक प्रकार से ब्रह्मचर्य की शक्ति को आत्मा के उत्थान हेतु प्रयोग करना कह सकते हैं, जिसका सम्भवतः साधु जन अभ्यास करते हैं।

चूंकि काम चक्र से ऊर्जा मस्तिष्क के क्षेत्र में जाती है, अतएव मानसिक रूप से कमजोर व्यक्ति का काम चक्र काफी कमजोर होता है। शक्तिशाली काम चक्र जीवन में व्यक्ति की उन्नति में काफी सहायक होता है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक–यौन सम्बन्धी रोग, नपुंसकता, प्रोस्टेट ग्रंथि का बढ़ जाना, मूत्र व मूत्राशय सम्बन्धी रोग।

मनो– मस्तिष्क का कमजोर होना।

(घ) विविध– इस चक्र में ६ पटल होते हैं और लाल व नारंगी प्राणिक ऊर्जा होती है। यह लाल रंग का प्राण दो प्रकार के शेड (shade) में होता है। जब कोई व्यक्ति मूत्र त्याग रहा होता है, तो यह चक्र व कटिचक्र अधिक नारंगी रंग की ऊर्जा पैदा करते हैं जो इस शरीर से व्यर्थ पदार्थ को बाहर फेंकने में प्रयोग होती है।

यह चक्र निम्न भौतिक सृजनात्मक क्रिया का केन्द्र (centre of lower physical creativity) है। इसलिये शक्तिशाली चक्र वाले व्यक्ति सफल कारीगर– जैसे माली, बढ़ई, लुहार, रसोइया आदि होते हैं।

(3) कटि चक्र– MENG MEIN CHAKRA

(क) स्थिति– यह चक्र नाभि के ठीक पीछे रीढ की हड्डी पर होता है।

(ख) कार्य– इसका आकार अन्य चक्रों से लगभग आधे से दो-तिहाई के बीच होता है। यह गुर्दे (Kidneys) और अधिवृक्क ग्रंथियों (Adrenal glands) को नियंत्रित करने और ऊर्जा पहुंचाने का कार्य करता है तथा रक्तचाप (blood pressure) को भी नियंत्रित करता है। यदि यह अधिक सक्रिय होता है तो उच्च रक्तचाप होता है और यदि यह कम सक्रिय होता है तो निम्न रक्तचाप होता है।

इस चक्र का प्लीहा चक्र (Spleen Chakra) से गहरा सम्बन्ध होता है। यदि प्लीहा चक्र को ऊर्जित किया जाता है या यदि प्लीहा चक्र सक्रिय होता हे, तो कटि चक्र भी आंशिक रूप से स्वयमेव ही ऊर्जित हो जाता है। इस कारण से उच्च रक्तचाप के रोगी का प्लीहा चक्र ऊर्जित नहीं करना चाहिए। कटि चक्र का नाभि चक्र से भी निकट का संबंध होता है।

मूलाधार चक्र से ऊर्जा का ऊर्ध्व प्रवाह कटिचक्र से होकर होता है। जिसके लिए यह एक पम्पिंग स्टेशन (pumping s tation) का कार्य करता है। रीढ़ की हड्डी में भी ऊर्जा का प्रवाह इसी चक्र के माध्यम से होता है।

प्राणशक्ति के प्रारम्भिक उपचारकों को इस चक्र को ऊर्जित नहीं करना चाहिए, अन्यथा उल्टे उच्च रक्तचाप व अन्य समस्यायें पैदा हो सकती हैं। इसका ऊर्जन मात्र अनुभवी उपचारक ही करें। शिशुओं, बच्चों, गर्भवती स्त्रियां व बूढ़े व्यक्तियों का कटिचक्र ऊर्जित नहीं करना चाहिए। जबकि शिशुओं, बच्चों व बूढ़े व्यक्तियों का रक्तचाप बढ़ सकता है, गर्भवती स्त्रियों का गर्भपात भी हो सकता है अथवा गर्भस्थ शिशु मर सकता है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– गुर्दे की बीमारी, उच्च/निम्न रक्तचाप, ओजस्विता या जीवनशक्ति में कमी, पीठ में दर्द आदि। यदि कटि चक्र, सौर जालिका चक्र (Solar Plexus Chakra), मूलाधार चक्र, आज्ञा चक्र एवं हृदय चक्र सभी गलत ढंग से कार्य करने लगें तो इससे शरीर के कोशिकाओं का असाधारण उत्पादन होता है जिससे अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं।

मनो– इसका अपना कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु जो व्यक्ति हिंसात्मक होते हैं, उनका यह चक्र अधिक क्रियाशील होता है और ऐसे लोगों के चक्र को छोटा करना चाहिए। इसकी विधि भाग ५ के अध्याय ६ के क्रम (७) में दी गयी है। इसके अतिरिक्त यह चक्र ऊर्जा का पम्पिंग स्टेशन होने के कारण मनोरोगों में महत्वपूर्ण योगदान करता है, जैसे यह मूलाधार चक्र से भय की ऊर्जा अथवा अन्य नकारात्मक ऊर्जा ऊपर पम्प करके पूरे शरीर में फैला सकता है।

(घ) विविध– इस चक्र में ८ पटल होते हैं। इसमें अधिक मात्रा में नारंगी रंग की ऊर्जा व कम मात्रा में लाल रंग की ऊर्जा होती है। इसके अलावा काफी कम मात्रा में पीले व नीले रंग की भी ऊर्जा होती है।

(4) नाभि चक्र– NAVEL CHAKRA

(क) स्थिति– यह टूंड़ी (Navel) पर अवस्थित होता है।

(ख) कार्य– यह छोटी व बड़ी आंत और आंत्रपुच्छ (appendix) को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। यह व्यक्ति की सामान्य ओजस्विता को प्रभावित करता है। यह शिशु-- जन्म की गति को भी प्रभावित करता है। यह चक्र नीचे काम चक्र से आ रही ऊर्जा को ऊर्ध्व दिशा में प्रवाहित करता है।

नाभि चक्र एक कृत्रिम ऊर्जा (Synthetic ki- ki शब्द का अर्थ जापानी भाषा में ऊर्जा शक्ति है) का उत्पादन करता है। इस कृत्रिम ऊर्जा का भण्डार नाभि चक्र के ठीक नीचे की ओर अवस्थित तीन उप (secondary) नाभि चक्रों द्वारा होता है। यह कृत्रिम ऊर्जा प्राणशक्ति की ऊर्जा से बिल्कुल अलग प्रकार की होती है। इस कृत्रिम ऊर्जा का प्राण ऊर्जा के ग्रहण, वितरण व अवशोषण पर प्रभाव पड़ता है। खराब मौसम में वायु प्राणशक्ति की मात्रा में बहुत कमी आ जाती है। जिन व्यक्तियों की कृत्रिम ऊर्जा कम होती है, उनको वायु से प्राणशक्ति ग्रहण में काफी परेशानी होती है, जिस कारण से साधारण व्यक्ति की अपेक्षा ऐसे व्यक्ति बहुत ज्यादा थकान महसूस करते हैं।

कृत्रिम ऊर्जा (meridians) में प्राण के प्रवाह में एवम् ऊर्जा शरीर द्वारा प्राणशक्ति के ग्रहण करने में सहायक होती है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– कब्ज, एपैंडिसाइटि्स (appendicitis), शिशु-जन्म में कठिनाई, ओजस्विता में कमी, आंत सम्बन्धी रोग, दस्त हो जाना, भोजन के हजम करने की अक्षमता।

मनो– यह चक्र सब प्रकार के आन्तरिक भावना (instinct of knowing) अथवा छठी इन्द्रिय का केन्द्र है। साधारणतः स्त्रियों में यह शक्ति (instinctive power) अधिक होती है। इस चक्र की गड़बड़ी से उदासी एवम् मायूसी (depression) हो जाती है।

(घ) विविध-- इस चक्र में ८ पटल होते हैं। इसमें मुख्यतः पीले, हरे, नीले, लाल और बैंगनी रंग की प्राणिक ऊर्जा होती है, तथा कुछ अंश में नारंगी रंग की भी ऊर्जा होती है।

इस चक्र का अस्थि पिंजर और मांसपेशियों के तंत्र (muscular system) पर प्रभाव पड़ता है क्योंकि इसका शरीर के पाचन, अवग्रहण व उत्सर्जन तंत्रों (digestive, assimilative and eliminative systems) पर गहरा नियंत्रण है। इसके अतिरिक्त इसका मूलाधार एवम् अन्य निम्नस्थित चक्रों के परिचालन एवम् सुव्यवस्थित कार्यशैली पर भी नियंत्रण है। वातसंधि (arthiritis) के रोगियों का नाभिचक्र कमजोर होता है।

इस चक्र का प्लीहा चक्र से निकट का सम्बन्ध है। जब नाभि चक्र अधिक ऊर्जित और कार्यशील होता है, तो प्लीहा चक्र भी काफी ऊर्जित हो जाता है और आंशिक रूप से क्रियाशील हो जाता है, जिसके कारण वह वायु से अधिक वायु प्राण ग्रहण करता है और इस प्रकार समस्त शरीर की प्राणिक ऊर्जा स्तर की वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार किसी व्यक्ति को नाभि चक्र पर ध्यान लगाने से ऊर्जित किया जा सकता है। नाभि चक्र पर ध्यान लगाने से वह क्रियाशील हो जाता है और ऊर्जित हो जाता है, जिसके फलस्वरूप प्लीहा चक्र क्रियाशील और ऊर्जित हो जाता है। इस प्लीहा चक्र के ऊर्जित होने के कारण अन्य चक्र भी ऊर्जित हो जाते हैं और इस प्रकार समस्त शरीर ऊर्जित हो जाता है।

सावधानी– चूँकि नाभिचक्र का कटिचक्र से गहरा सम्बन्ध होता है, इसलिये उच्च रक्तचाप के रोगी को नाभिचक्र पर ध्यान केन्द्रित नहीं करना चाहिये क्योंकि इससे हालत खराब हो सकती है।

(5) प्लीहा चक्र– SPLEEN CHAKRA

(क) **स्थिति–** यह चक्र दो भागों में होता है। अगला चक्र बाँयें छाती के सबसे नीचे वाली पसली के मध्य में होता है। पिछला चक्र अगले चक्र के ठीक पीछे पीठ पर होता है।

(ख) कार्य– यह चक्र वायु प्राण (air vitality globules) के शरीर में प्रवेश का मुख्य बिन्दु है, इसलिये मनुष्य के स्वास्थ्य में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। यह वायु से वायु प्राण या सफेद प्राण ग्रहण करके उसको लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला और बैंगनी रंग के प्राणों में परिवर्तित करके अन्य प्रमुख चक्रों में वितरित कर देता है। दूसरे शब्दों में प्लीहा चक्र अन्य प्रमुख चक्रों को ऊर्जित करता है और इस प्रकार समस्त जीव द्रव्य और भौतिक शरीर को ऊर्जित कर देता है। इसका मतलब यह है कि अन्य प्रमुख चक्र एवं प्रमुख अंग प्राण ऊर्जा के लिए प्लीहा चक्र पर काफी निर्भर है।

इस चक्र का आकार कटि चक्र के समान अन्य चक्रों के आकारों से लगभग आधे से लेकर दो–तिहाई तक होता है। यह प्लीहा, शरीर की ओजस्विता, रक्त की गुणवत्ता और शरीर का प्रतिरक्षात्मक तंत्र (Immunity System) का नियंत्रण करता है। इस चक्र का कुछ वर्णन उक्त (4) नाभि चक्र के वर्णन में प्रसंगवश आया है, अतएव उसको वहाँ से देख लें।

दूरदर्शियों के अवलोकन से ज्ञात हुआ है कि साधारणतः (किन्तु हमेशा नहीं) गम्भीर संक्रमण (severe infection) से पीड़ित व्यक्ति का प्लीहा चक्र प्रभावित होता है। मैडिकल दृष्टिकोण से प्लीहा असाधारण पदार्थ, विशेष तौर पर कीटाणुओं को रक्त से अलग करता है और प्रतिशरीरों (Anti-bodies) को तैयार करता है। प्लीहा का वर्णन भाग २– मानव शरीर के अध्याय ६ में आया है। रिह्यूमैटोइड संधिवात (Rheumatoid arthiritis) के रोगी का प्लीहा चक्र गंदा होता है।

शिशुओं और बच्चों का प्लीहा चक्र को ऊर्जित न करने की सलाह दी जाती हैं क्योंकि प्राणशक्ति के घनेपन से वे बेहोश हो सकते हैं। यदि कभी ऐसा हो जाये, तो सामान्य सफाई करें (सफाई का वर्णन व विधि भाग ५ में दी गई है)। उच्च रक्त चाप या इसका इतिहास रखने वाले रोगियों के लिए भी इस चक्र को ऊर्जित नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे रक्तचाप बढ़ सकता है। फिर भी बहुत बीमार और कमजोर रोगियों का इस चक्र द्वारा इलाज किया जा सकता है, किन्तु इसका उपचार अनुभवी या उन्नत प्राण शक्ति शिक्षा प्राप्त उपचारक द्वारा ही किया जाना चाहिए।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– प्लीहा सम्बन्धी रोग, ओजस्विता की कमी, प्रतिरक्षात्मक स्तर का गिर जाना, गंदा रक्त या रक्त सम्बन्धी रोग, वात संधि, शारीरिक कमजोरी।

मनो– मायूसी एवम् उदासी (depression)

(घ) विविध– इस चक्र में ६ पटल होते हैं।

(6) सौर जालिका चक्र– SOLAR PLEXUS CHAKRA

(क) स्थिति– यह चक्र दो भागों में बटा होता है। सामने की दोनों पसलियों के मध्य में नीचे बीचों–बीच एक प्रकार की हड्डी की नोक होती है, उसके ठीक नीचे अगला चक्र अवस्थित है। उसके ठीक पीछे रीढ़ की हड्डी के ऊपर पिछला चक्र होता है।

(ख) कार्य– यह चक्र छाती के डायफ्राम (diaphragm), पित्ताशय (gall bladder), आमाशय (stomach), जिगर (liver), अग्न्याशय (pancreas), एक हद तक बड़ी व छोटी आंत, आंत्रपुच्छ (appendix), फैंफड़े, हृदय तथा शरीर के अन्य भागों को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। यह चक्र रक्त की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है क्योंकि यह जिगर को नियंत्रित और ऊर्जित करता है जो रक्त में घुले हुए दूषित पदार्थों को साफ करता है। यह शरीर के तापमान को भी नियंत्रित करता है।

सौर जालिका चक्र ऊर्जा सफाई घर की तरह कार्य करता है। सूक्ष्म ऊर्जा निचले चक्रों से ऊपरी चक्रों की ओर इसी चक्र में से होकर जाती है। इस

चक्र द्वारा पूरे शरीर को ऊर्जित किया जा सकता है। कभी-कभी इसकी पूरी तरह सफाई किये बिना ही अधिक मात्रा में ऊर्जित करने पर प्राणशक्ति में घनापन आ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप आंशिक रूप से छाती के डायफ्राम को लकवा मार जाता है और सांस लेने में कठिनाई आ जाती है। प्राणशक्ति के घनेपन को शीघ्र ही दूर किया जाना चाहिए।

सौर जालिका चक्र से कुछ ऊर्जा हृदय चक्र को जाती है, जिससे हृदय चक्र प्रभावित होता है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– मधुमेह (diabetes), घाव (Ulcer) (गैस्ट्रिक अथवा आंतों का), यकृत शोथ (hepatitis) , हृदय रोग, डायफ्राम के सुचारु रूप से कार्य न करने के फलस्वरूप सांस लेने में कठिनाई, अग्न्याशय सम्बन्धी रोग, पाचनशक्ति के रोग, पित्ताशय के रोग, उच्च कोलेस्ट्रोल स्तर (high c holestrol level), गंदा रक्त व रक्त सम्बन्धी रोग, रिह्यूमैटोइड संधिवात (rheumatoid arthiritis), प्रतिरक्षात्मक तंत्र के रोग, Lupus Erythematosus – अल्सर सम्बन्धित रोग, विशेष तौर पर त्वचा का क्षय रोग (tuberculosis), E rythemea (त्वचा पर चिकत्ते पड़ जाना), ग्लूकोमा (glaucoma), माइग्रेन सिरदर्द, तीव्र साइनूसाइटिस (acute sinusitis), थायराइड ग्रंथि का बढ़ जाना (hyperthyroidism), सांस सम्बन्धी रोग जेसे अस्थमा, संक्रामित यकृत, कब्ज, आंतों का मुड़ जाना, गुर्दे का क्षतिग्रस्त होना, उच्च रक्तचाप, कैन्सर, क्षयरोग, अन्दर साधारण घाव होना (peptic ulcer), ulceration colitis (कोलाइटिस), त्वचा सम्बन्धी रोग, अस्थि रोग, सोते में पेशाब निकल जाना आदि।

मनो– यह चक्र रचनात्मक एवम् नकारात्मक भावनाओं का केन्द्र हैं। आम तौर पर स्त्रियाँ नकारात्मक भावनाओं के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। चूँकि यह अन्य समस्त चक्रों को प्रभावित करता है, अतएव सभी मनोरोगों में इसका उपचार परमावश्यक होता है। रचनात्मक भावनाओं के उदाहरण आकांक्षा, साहस, धैर्य, सकारात्मक उद्देश्य के लिये अग्रशील होना, निर्भीकता, उन्नति अथवा विजय पाने की भावना है। नकारात्मक भावनाओं के उदाहरण क्रोध, अहंकार, लालच, घृणा, क्षोभ, चिन्ता, भय, चिड़चिड़ापन, हिंसात्मक प्रवृत्ति, स्वार्थीपन, दूसरों

की भावनाओं को ठेस पहुंचाना, नशीली पदार्थों के प्रति आसक्ति, कठोर व्यवहार, निर्दयता, अविश्वास करना, नष्ट करने की प्रवृत्ति रखना है।

जब कोई व्यक्ति हिंसा पर उतारू हो जाता है, तो आज्ञा चक्र, सौर जालिका चक्र, मूलाधार चक्र और कटि चक्र अत्यधिक उत्तेजित हो जाते है, किन्तु इनमें से सबसे मुख्य सौर जालिका चक है और इस चक्र का उपचार करने पर थोड़े ही समय में व्यक्ति को शान्त किया जा सकता है। जब कोई व्यक्ति अत्यधिक क्रोध करता है, तो उसका सौर जालिका चक्र अनियमित तौर पर कार्य करता है, जिससे डायफ्राम भी अनियमित हो जाता है तथा जिसके परिणामस्वरूप अनियमित और उखड़ी–उखड़ी साँस हो जाती है।

जैसा कि ऊपर लिखा है कि सौर जालिका चक्र भावनाओं का केन्द्र होता है। भावनाओं का सर्वप्रथम इसी चक्र पर प्रभाव पड़ता है– वह किस प्रकार, यह समझना आवश्यक है। चित्र ४.१० में चक्र की रचना दर्शायी गई है। इसमें एक ऊर्जा का फिल्टर भी दर्शाया गया है।

परासामान्य (esoteric) विज्ञान के अनुसार भावनाओं, सोचना और महसूसियत के कारण मानसिक और भावनात्मक ऊर्जा का उत्पादन होता है। जो आप सोचते हैं, महसूस करते हैं और अनुभव करते हैं, उनसे psychic beings उत्पन्न होते हैं जो विचारों के आकार (thought forms) या विचारों की हस्ती (thought entities) कहलाते हैं। दूसरे शब्दों में, आपके विचारों के आकार वास्तविक होते हैं और आपके स्वयं को एवम् दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित कर सकते हैं। यह विचारों के आकार दो प्रकार के– सकारात्मक और नकारात्मक होते हैं। सकारात्मक के उदाहरण क्षमा, मार्दव, आर्जव, संतोष, सत्य, निडरता, सुरक्षा, योग्यता, आशा, साहस, उन्नति की आकांक्षा, मैत्री भाव, उदारता, उच्च्य विचार, सकारात्मक प्रवृत्ति हैं। नकारात्मक के उदाहरण क्रोध, अहंकार, मायाचारी, लोभ, झूठ, भय, असुरक्षा, निरर्थकता, निराशा, उदासी, मायूसी, निराशात्मक प्रवृत्ति, चोरी, निरन्तर खाते रहने की प्रवृत्ति, नशीली पदार्थों की आसक्ति, स्वार्थपरता है। नकारात्मक विचारों के आकार (thought entities) विभिन्न चक्रों में विशेष तौर पर सौर जालिका चक्र में स्थित हो जाते हैं, जो लंबे समय में रहने के फलस्वरूप फ़ोबिया (Phobia) (एक प्रकार का भय जिसकी वास्तविकता नहीं

होती) बन जाता है। इन भावनात्मक आघात के सोच के आकारों (traumatic thought entities) में कुछ अंश तक चेतनता आ जाती है। यह सोच के आकार चक्र के फिल्टर और पटलों के मध्य में अवस्थित हो जाते हैं क्योंकि ऊर्जा फिल्टर इनको अन्दर मैरिडियन्स (meridians) में प्रवेश करने से रोकता है। इनके रंग भूरे (Grey) या गहरे रंग के बादल के तरह के होते हैं तथा आकार में बहुत छोटे होते हैं। इसी प्रकार सकारात्मक विचारों के सोच के आकार भी होते हैं।

नकारात्मक भावनाओं व सोच के लम्बे समय तक रहने से नकारात्मक पदार्थ (Negative elementals) भी उत्पन्न होते हैं, जिनका आकार एक-तिहाई इंच से लेकर कई इंच तक हो सकता है। ये एक प्रकार के ऊर्जा के तिलचट्टे (cockroaches) या परजीवी (parasites) होते हैं जो चक्र के ऊर्जा की जाली के ऊपर अवस्थित हो जाते हैं। अलग-अलग नकारात्मक विचारों के अलग-अलग प्रकार के नकारात्मक परजीवी होते हैं तथा यह नकारात्मक ऊर्जा का भोजन करते हैं। अतएव यह उस व्यक्ति को नकारात्मक सोच के लिये प्रेरित करते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि किसी व्यक्ति के लम्बे समय तक क्रोधित रहने के परिणाम स्वरूप, क्रोध प्रकृत्ति के नकारात्मक परजीवी उत्पन्न होकर उस व्यक्ति के ऊर्जा चक्र में रहते हैं, तो उनको क्रोध प्रकृति के विचारों की ऊर्जा का भोजन चाहिये, जिसके लिये वे परजीवी उस व्यक्ति को क्रोध करने के लिये प्रेरित करते हैं और इससे क्रोध की जो सोच की ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसको वे खाते हैं। इससे वे आकार में धीरे-धीरे बढ़ते भी रहते हैं। उनके विद्यमान रहने से ऊर्जा चक्रों के माध्यम से ऊर्जा शरीर में जाने वाली अच्छी व स्वस्थ ऊर्जा संक्रमित हो जाती है। ये परजीवी चक्र की जाली को काटने का भी प्रयास करते हैं।

ये नकारात्मक सोच के आकार और नकारात्मक परजीवी व्यक्ति को लगातार परेशान करते रहते हैं, उस पर लगातार प्रभाव डालते रहते हैं; यहाँ तक कि उसकी प्रवृत्ति, चरित्र व प्रकृति भी बदल डालते हैं। ऊर्जा के फिल्टर में इनके लगातार लम्बे समय तक रहने से दरार पड़ जाती है और छेद हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त नशीले पदार्थों से उत्पन्न hallucinogenic chemicals द्वारा

भी इस फिल्टर का कुछ भाग जल जाता है। इसके अलावा जब कोई व्यक्ति बहुत ही अधिक क्रोधित होता है, तो सौर जालिका चक्र, आज्ञा चक्र और कभी–कभी ब्रह्म चक्र की जालियां (filter) फट सकती हैं। इससे अत्यधिक क्रोध व अत्यन्त हिंसामयी नकारात्मक परजीवी आकर्षित होते हैं, जो फटे हुए फिल्टर के माध्यम से ऊर्जा के मैरिडियन्स मे प्रवेश कर उस व्यक्ति के साथ चिपक जाते हैं, तब उस समय वह क्रोधित व्यक्ति अस्थायी तौर पर मानसिक रूप से विकृत (insane) हो जाता है और उस समय ऐसे–ऐसे भयानक कार्य कर बैठता है, जो वह साधारण तौर पर नहीं करता। कितने समय तक यह क्रोध के परजीवी उसके साथ रहते हैं, यह उसके चरित्र व प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। यदि वह अक्सर अत्यधिक क्रोधित होता रहता है, तो ये मानसिक विकृति लगभग स्थायी हो जाती है।

नकारात्मक परजीवी कमजोर होते हैं और अनुभवी प्राणशक्ति उपचारकों द्वारा आसानी से नष्ट किये जा सकते हैं। ये इच्छा शक्ति अथवा विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा अथवा नमक के घोल में फेंकने से नष्ट किये जा सकते हैं। इसका कथन भाग ५ में किया है।

किसी भी कारणवश ऊर्जा के फिल्टर में दरार या छेद हो जाने के परिणामस्वरूप नकारात्मक सोच के आकार व नकारात्मक परजीवी चक्र के अन्दर घुसते हुए, जीव द्रव्य शरीर की आगे की व पिछली मैरिडियन्स में फैल जाते हैं और चूँकि चक्र मैरिडियन्स से जुड़े होते हैं, इसलिए ये कुछ समय में चक्रों में घुसकर उनको प्रभावित करते हैं। इस प्रकार अनेक मनोरोग उत्पन्न कर देते हैं, यहाँ तक कि व्यक्ति पागल भी हो सकता है अथवा आत्महत्या कर सकता है।

किसी भी मनोरोग की चिकित्सा में सौर जालिका चक्र का उपचार अत्यावश्यक है, क्योंकि सर्वप्रथम यही चक्र प्रभावित होता है। इस प्रकार तनाव; चिड़चिड़ापन; चिन्ता; शोक; हिस्टीरिया; विभिन्न प्रकार के फोबिया जैसे पानी से भय, अग्नि से भय, कीड़े–मकौड़े से भयादि, मस्तिष्क में अनर्गल बातें घूमते रहना (obsession); सनकीपन; विवशतायें (compulsions)– जैसे न चाहते हुए भी चोरी आदि करना; भावनात्मक आघात (traumas); धूम्रपान, शराब, नशीले पदार्थों

के सेवन की लत; अवर्तमान पदार्थों /दृश्यों का दिखाई देना (hallucination); बेचैनी; मायूसी (depression), उदासी; आत्महत्या की प्रवृत्ति; हिंसक प्रवृत्ति; मानसिक विकृति (paranoid) जिसमें दूसरे से क्रूर व्यवहार करना व अविश्वास करना; क्रोधित होते रहना; पागलपन आदि किसी भी मनोरोग में सौर जालिका चक्र का उपचार परमावश्यक है।

चित्र ४.११

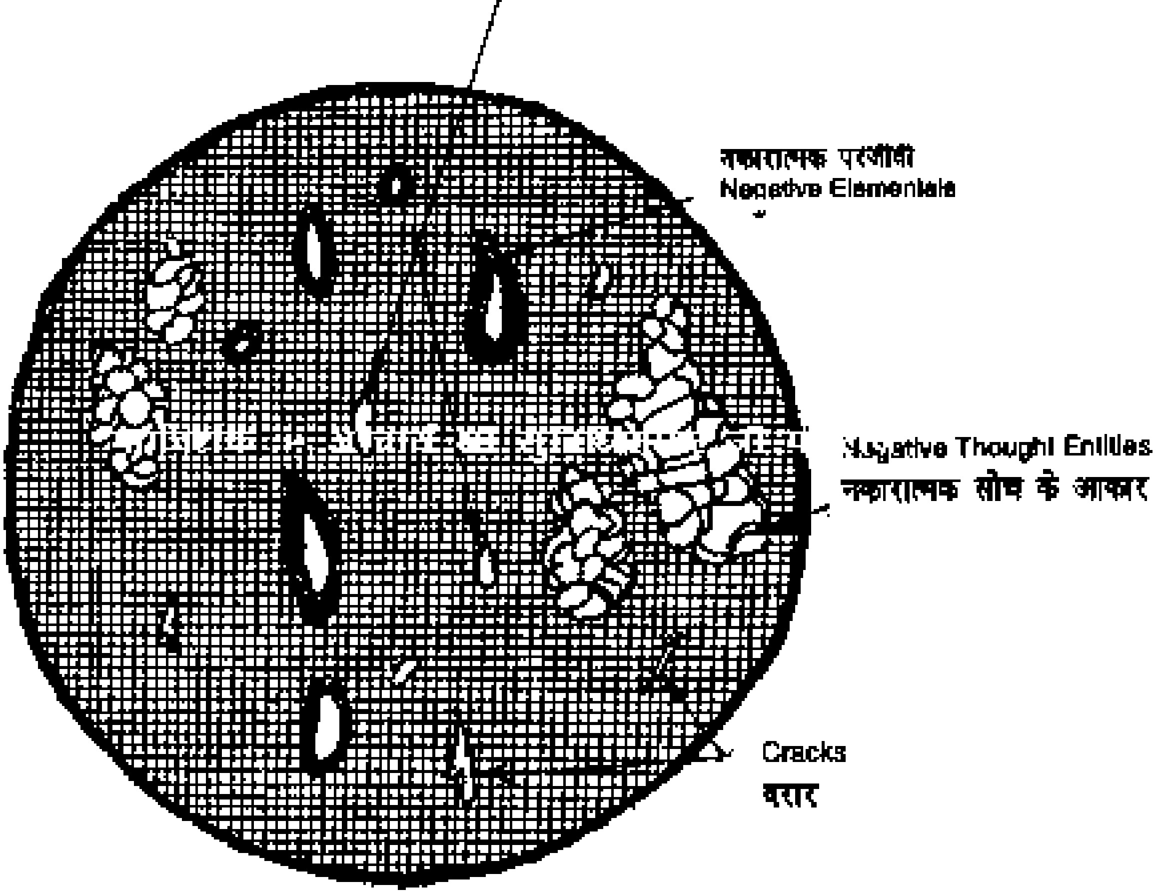

ऊर्जा चक्र में अवस्थित सुरक्षा जाली पर नकारात्मक सोच के आकार, नकारात्मक परजीवी, दरार व छेद

Presence of Negative thought Entities, Negative Elementals, Cracks and Holes on the Proctective Web of the Enrgy Chakra

चित्र ४.११ में चक्र की जाली में प्रतीतात्मक तौर पर नकारात्मक सोच के आकार, नकारात्मक परजीवी, दरार एवम् छेद दर्शाये गये हैं।

नकारात्मक परजीवियों का अस्तित्व

चक्र के अन्तर्गत ऊर्जा फिल्टरों के अतिरिक्त, नकारात्मक परजीवों का अस्तित्व श्मसान भूमियों, कब्रिस्तानों, अस्पतालों, भीड़ भरे स्थानों, कूड़ा स्थानों में

काफी तादाद में पाया जाता है। कभी-कभी ये नकारात्मक परजीवी इन स्थानों से किसी व्यक्ति के साथ–साथ चले जाते हैं और उस व्यक्ति के चक्र के ऊर्जा जालियों पर अवस्थित हो जाते हैं। नकारात्मक सोच के आकार व नकारात्मक परजीवी किसी भी व्यक्ति के शारीरिक एवम् मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। जबकि इसके विपरीत सकारात्मक भावनायें और सकारात्मक सोच के आकार (जैसे कि प्रसन्नता, दया, उत्साह, करुणा आदि) व्यक्ति के शारीरिक एवम् मानसिक स्वास्थ्य पर लाभदायी प्रभाव डालते हैं।

नकारात्मक भावनायें जब उजागर अथवा दबे हुए शारीरिक आक्रमणता के साथ होते हैं, तो शरीर के निम्न भाग में स्थित चक्र जैसे मूलाधार चक्र व कटि चक्र प्रभावित हो जाते हैं, जिस कारण से उच्च रक्तचाप, क्षतिग्रस्त गुर्दे, स्लिप डिस्क (herniated disc), त्वचा रोग, रिह्यूमैटोइड सन्धिवात, रक्तरोगादि हो जाते हैं।

नकारात्मक और सकारात्मक भावनाओं दोनों का आसपास के व्यक्तियों पर भी प्रभाव पड़ता है। तभी यह कहा जाता है कि संगति का असर होता है। यही कारण है कि जब हम किसी साधु के दर्शन करते हैं, तो आत्मा अत्यन्त तृप्त हो जाती है और एक अवर्चनीय आत्मानन्द की प्राप्ति होती है।

(ध) विविध– सौर जालिकाचक्र में दस पटल होते हैं। इस चक्र में लाल, पीले, हरे और नीले रंग की ऊर्जा होती है। इसके अलावा थोड़ी सी नारंगी और बैंगनी रंग की भी ऊर्जा होती है।

(7) हृदय चक्र– HEART CHAKRA

(क) स्थिति– ये दो भागों में होता है। अगला हृदय चक्र छाती के मध्य, दोनों स्तनाग्रों (nipples) के ठीक बीच में। पिछला हृदय चक्र अगले हृदय चक्र के ठीक पीछे रीढ़ की हड्डी के ऊपर होता है।

(ख) कार्य-- अगला हृदय चक्र थायमस ग्रंथि (thymus gland) और रुधिराभिसरण तंत्र (blood circulatory system) को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। पिछला हृदय चक्र मुख्य रूप से फैंफड़ों को तथा कम मात्रा में हृदय व थायमस ग्रंथि को नियंत्रित व ऊर्जित करता है।

अगला ह्रदय चक्र कई बड़े जीवद्रव्य नाड़ियों द्वारा सौर जालिका चक्र से जुड़ा रहता है। यह कुछ मात्रा में सौर जालिका चक्र से भी ऊर्जा प्राप्त करता है। सौर जालिका चक्र भावना, तनाव और दबाव के प्रति बहुत संवदेनशील होता है और ह्रदय व अगले ह्रदय चक्र पर अधिक प्रभाव रखता है। ह्रदय रोग के व्यक्तियों में आम तौर पर सौर जालिक चक्र ठीक प्रकार से कार्य नहीं करता।

अगले ह्रदय चक्र को ऊर्जित करने पर वह शीघ्र ही ह्रदय को ऊर्जा पहुंचाता है। चूंकि प्राणशक्ति ऊर्जा एक जगह स्थिर होती है और वह शरीर के अन्य हिस्सों में आसानी से नहीं फैलती, इस कारण से इससे ह्रदय पर प्राणशक्ति का घनापन बढ़ जाता है जिससे ह्रदय को हानि पहुंच सकती है। इस कारण अगले ह्रदय चक्र को साधारणतः ऊर्जित नहीं किया जाता, अपितु सम्पूर्ण ह्रदय चक्र को पिछले ह्रदय चक्र के माध्यम से ऊर्जित किया जाता है जिससे ह्रदय पर प्राण शक्ति का घनापन नहीं होता। पिछले ह्रदय चक्र द्वारा पूरे शरीर को ऊर्जित किया जा सकता है।

ह्रदय चक्र उच्च भावनाओं का केन्द्र है। इसके क्रियाशील होने से निम्न भावनाएं उच्च भावनाओं में परावर्तित हो जाती हैं। उच्च भावनाओं के उदाहरण शान्ति, सहृदयता, करुणा, मैत्री, भद्रता, धैर्य, दया, क्षमा, उदारता, आनन्द हैं। चूंकि ह्रदयचक्र एवम् सौर जालिका चक्र दोनों ही भावनाओं के केन्द्र हैं, अतएव दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। इसलिये सौर जालिका चक्र के आन्दोलित होने के फलस्वरूप ह्रदय चक्र भी आन्दोलित होता है जिससे लम्बे समय में ह्रदय व ह्रदय चक्र दोनों को आघात पहुंचता है।

ह्रदय चक्र में १२ पटल होते हैं जो ऊपर की ओर ब्रह्म चक्र के १२ पटलों (जो नीचे की ओर होते हैं) के सम्मुख होते हैं। अतएव इस कारण से ब्रह्म चक्र के माध्यम से ग्रहण हुई दैवीय ऊर्जा (divine energy) के लिये ह्रदय चक्र समाप्ति बिन्दु का कार्य करता है, अर्थात् यहां आकर दैवीय ऊर्जा समाप्त हो जाती है। इस कारण से यह चक्र दैवीय ऊर्जा के दूसरे चक्र का भी कार्य करता है तथा इस चक्र द्वारा "द्विह्रदय पर ध्यान–चिन्तन" के अन्तर्गत लोगों की ओर दया, करुणा और इस प्रकार की उच्च भावनाओं को प्रसारित किया जाता है। द्विह्रदय पर ध्यान–चिन्तन के विषय में भाग ५ के अध्याय ३ में वर्णन किया गया

है। द्विहृदय से तात्पर्य ब्रह्म चक्र तथा हृदय चक्र है। ये दोनों ही चक्र दिव्य ऊर्जा को ग्रहण करते हैं।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– हृदय के रोग, रुधिराभिसरण तंत्र के रोग, फैंफड़े के रोग जिससे शरीर के प्रतिरक्षात्मक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण संक्रामक रोगों से लड़ने की क्षमता घटती है। यह थायमस ग्रंथि के सुचारु रूप से न कार्य करने के कारण होता है। थायमस ग्रंथि का वर्णन भाग २, अध्याय १० में दिया गया है।

मनो– मनोरोगों का हृदय चक्र पर भी प्रभाव पड़ता है, अतएव इन सभी रोगों में सौर जालिका चक्र के अतिरिक्त हृदय चक्र का भी उपचार आवश्यक है।

(घ) विविध– जैसा कि ऊपर (ख) में वर्णित है, इसके १२ उर्ध्वमुखी पटल होते हैं। अगले हृदय चक्र में काफी मात्रा में सुनहरे रंग की ऊर्जा (दैवीय ऊर्जा) और थोड़ी सी हल्के लाल रंग की ऊर्जा होती है। पिछले हृदय चक्र में सुनहरे, लाल, नारंगी और पीले रंग की ऊर्जा होती है।

(8) कण्ठ चक्र– THROAT CHAKRA

(क) स्थिति– यह चक्र कंठ के बीच में स्थित होता है।

(ख) कार्य– यह थायराइड ग्रंथि (thyroid gland), गला, स्वर-बक्स (voice box) अथवा larynx, वायु-नली (trachea), पैराथायराइड ग्रंथि (parathyroid gland) और लिम्फेटिक तंत्र (lymphatic system) को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। कुछ हद तक यह काम चक्र को भी प्रभावित करता है।

काम चक्र से आने वाले ऊर्जा का एक भाग ऊर्जा की उच्च श्रेणी में परावर्तित होती है जो कण्ठ चक्र तथा सिर के अन्तर्गत चक्रों के सुचारू रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक होती है।

यह चक्र निम्न का केन्द्र बिन्दु है:

(१) स्व-प्रकटता (self-expression)

(२) उच्च श्रेणी के सृजनात्मक कार्य जिसमें अति सावधानी, सूक्ष्म कार्यशैली होती है (higher creativity requiring meticulours working)। इसके उदाहरण दक्ष रंग करने वाला, मूर्तिकार, पढ़ाई करने वाला नियोजक हैं।

(३) धैर्यपूर्वक विस्तारयुक्त कार्य (working out details requiring perseverance)

(४) निम्न मानसिक क्षमता/योग्यता (Lower mental faculty or the concrete mind) (concrete means 'existing in material form, real, definite')

(५) निम्न श्रेणी की चेतना (Lower consciousness)

(६) चिन्ता, व्यग्रता, उलझन। इस कारण स्त्रियां ज्यादा चिन्तित रहती हैं एवम् आम तौर पर उलझनों/घबराहटों में (confused) रहती हैं।

पुरुष आम तौर पर कम धैर्यशाली होते हैं, जबकि स्त्रियां अधिक धैर्यशाली होती हैं।

जब कण्ठ चक्र शक्तिशाली और क्रियाशील होता है, तो काम चक्र भी काफी क्रियाशील होता है। इसी कारण से रचनात्मक कलाकारों को तीव्र कामाभिलाषा होती है। यह इस कारण है कि जबकि कण्ठचक्र उच्च श्रेणी के सृजनात्मक गतिविधियों का केन्द्र है, काम चक्र निम्न श्रेणी के सृजनात्मक गतिविधियों का केन्द्र होता है और इन दोनों का Higher correspondence (उच्च श्रेणी का सम्बन्ध) होता है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– गले से सम्बन्धित रोग जैसे गलकण्ठ (goiter), गले में खराश, आवाज का चले जाना, अस्थमा।

मनो– हकलाना, खाते रहने की प्रवृत्ति, झूठ बोलने की प्रवृत्ति, चोरी करने की प्रवृत्ति, धूम्रपान करना, शराब की लत, स्व–प्रकटता (self expression) की कमी।

(घ) विविध– इस चक्र में १६ पटल होते हैं। इसमें मुख्यतः नीले रंग की प्राण ऊर्जा, कुछ हरे व बैंगनी रंग के प्राण ऊर्जा के साथ होती है। खाना खाते समय काफी मात्रा में हरे रंग की ऊर्जा पैदा होती है जो खाना पचाने में सहायता करती है।

प्राणशक्ति उपचारक कण्ठ चक्र से नीले रंग, हरे रंग और हरे-नीले रंग की ऊर्जा लेकर उपचार करते हैं।

(9) आज्ञा चक्र (भ्रकुटि चक्र)– AJNA CHAKRA

(क) स्थिति– यह चक्र भौहों के बीच में स्थित होता है।

(ख) कार्य– यह पीयूष ग्रंथि (pituatary gland), अंतःस्त्रावी ग्रंथियों (endocrine glands) को नियंत्रित करता है और ऊर्जित करता है और एक सीमा तक मस्तिष्क को भी ऊर्जित करता है। उपरोक्त ग्रंथियों का वर्णन भाग २, अध्याय १० के अन्तर्गत किया गया है।

आज्ञा चक्र को प्रधान चक्र अथवा मास्टर चक्र भी कहा जाता है क्योंकि यह अन्य सभी बड़े चक्रों और उनसे सम्बन्धित अंतःस्त्रावी ग्रंथियों तथा प्रमुख अंगों को निर्देशित व नियंत्रित करता है। यह आंख व नाक को भी प्रवाहित करता है। इस चक्र को ऊर्जित करना पूरे शरीर को ऊर्जित करने के समान होता है। इसके ऊर्जन की विधि ब्रह्म चक्र और ललाट चक्र के ऊर्जन से भिन्न होती है। एक के बाद दूसरे चक्र को ऊर्जा देने की पद्धति के बजाय, भृकुटि चक्र अन्य चक्रों को एक ऐसी तेज पंक्ति में प्रकाशित करता है जिससे पूरा शरीर ऊर्जित होता है। इसलिए चमत्कारी उपचारक या प्रार्थना द्वारा उपचार करने वाले उपचारक अपनी अंगुली या हथेली से रोगी के ब्रह्म चक्र या ललाट चक्र या भृकुटि चक्र को छूते हैं। सिर में प्राणशक्ति तेजी से जाने से कुछ रोगियों को मूर्छा आ जाती है।

आज्ञा चक्र उच्च अथवा अमूर्त मस्तिष्क/विचारों का केन्द्र (centre of the higher mental faculty or abstract mind) होता है। यह इच्छाशक्ति एवं निर्देशन कार्य विशेष का केन्द्र (centre of the will or directive function) होता है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– मधुमेह (diabetes) तथा अन्तःस्त्रावी सम्बन्धी अन्य रोग, एलर्जी, अस्थमा, कैन्सर।

मनो– चिड़चिड़ापन, तनाव, क्रोध, शोक, चिन्ता, हिस्टीरिया, फोबिया, भावनात्मक आघात, आशंकितता, भयातुरता, मस्तिष्क में अनर्गल बातें घूमते रहना, हकलाना,

धूम्रपान, नशीले पदार्थों की लत, शराब पीने की लत, अवर्तमान पदार्थों/दृश्यों का दिखाई देना, निराशा/मायूसी, मानसिक विकृति (paranoid) जिसमें दूसरे के प्रति क्रूर व्यवहार करना तथा अविश्वास करना है, मल्टिपिल सिनड्रोम (multiple syndrome– concurrent symptoms in disease), स्व प्रकटता का अभाव (lack of self-expression), बिस्तर में मूत्र त्याग आदि। सभी मनोरोगों में इस चक्र का उपचार अत्यन्त आवश्यक है।

इस चक्र का स्व-दृढ़ इच्छाशक्ति एवम् नेताओं/शिष्यों के लिए अत्यन्त महत्व है।

(घ) विविध– इस चक्र में ९६ पटल होते हैं और यह दो भागों (divisions) में बंटा होता है, जिसमें प्रत्येक के ४८ पटल होते हैं। कुछ व्यक्तियों में एक भाग में मुख्यतः हल्के पीले और दूसरे भाग में हल्के बैंगनी रंग की ऊर्जा होती है। कुछ व्यक्तियों में एक भाग में हल्के हरे और दूसरे भाग में हल्के बैंगनी रंग की ऊर्जा होती है। विभिन्न व्यक्तियों के आज्ञा चक्र में अवस्थित ऊर्जा का प्रमुख रंग अलग–अलग होता है। व्यक्ति की मनोदशा के अनुसार यह रंग बदलता रहता है।

(10) ललाट चक्र– FOREHEAD CHAKRA

(क) स्थिति– यह चक्र ललाट यानी माथे के मध्य में होता है।

(ख) कार्य– यह पिनीयल ग्रंथि और तंत्रिका तंत्र (nervouc system) को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। इस चक्र को ऊर्जित करने से ब्रह्म चक्र की भांति एक के बाद दूसरे चक्र के माध्यम से पूरे शरीर में प्राणशक्ति का वितरण होता है।

यह चक्र निम्न श्रेणी के दिव्य ज्ञान (lower Buddhic or cosmic consciousness) का केन्द्र है। इसके अतिरिक्त यह अन्तर्ज्ञान (intution) का स्थान (seat) है अर्थात इस चक्र के माध्यम से बाहरी आयाम अथवा चतुर्थ आयाम (outer dimension or fourth dimension) में झांका जाता है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित रोग, याददाश्त की कमी या लुप्त हो जाना, लकवा, मृगी (epilepsy)।

मनो– अवर्तमान दृश्यों का अवलोकन एवम ध्वनियों का श्रवण (hallucination-both visual and audio), मानसिक विकृति (paranoid) जिसमें दूसरे से क्रूर व्यवहार करना तथा अविश्वास करना है, नशीले पदार्थों की लत, Multiple Syndrome, आशंकितता/भयातुरता (nervousness)।

(घ) विविध– इस चक्र में १४४ पटल होते हैं जो १२ भागों (divisions) में विभाजित होते है– प्रत्येक भाग में १२ पटल होते हैं। ललाट चक्र में अवस्थित ऊर्जा का रंग हल्का बैंगनी, नीला, लाल, नारंगी, पीला और हरा होता है।

(11) ब्रह्म चक्र– CROWN CHAKRA

(क) स्थिति– यह सिर के तालु (crown) पर स्थित होता है।

(ख) कार्य–यह पिनीयल ग्रंथि, मस्तिष्क और पूरे शरीर को नियंत्रित एवम् ऊर्जित करता है। प्राणशक्ति के प्रवेश के लिए यह एक प्रमुख केन्द्र है। ब्रह्म चक्र को ऊर्जित करने पर इसका प्रभाव पूरे शरीर को ऊर्जित करने के समान होता है। यह कुप्पी (funnel) में पानी डालने के समान है जिससे पूरे शरीर में प्राणशक्ति प्रवाहित होकर बहती है। इसलिए कुछ उपचारक शरीर के किसी भी अंग में रोग होने पर, सीधे ब्रह्म चक्र को ऊर्जित करते हैं।

यह चक्र दिव्य ऊर्जा (अत्यन्त चमकीली सफेद अथवा विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा) का एक मात्र प्रवेश केन्द्र है। आध्यात्मिक डोरी (spiritual cord) (अन्तःकरण) से जुड़ा होता है। ब्रह्म चक्र से निकलती हुई डोरी की मोटाई को (scanning) (इसका वर्णन भाग ५, अध्याय ४, क्रम ५ (ङ) में है) की पद्धति से ज्ञात किया जा सकता है। इसकी मोटाई बाल बराबर से लेकर आध्यात्मिक योगी के केस में कई इंच या उससे अधिक या सिर से भी अधिक मोटी होती है। इन कारणों से इस चक्र को दिव्य चक्र भी कहते हैं।

ब्रह्म चक्र उच्च श्रेणी के दिव्यज्ञान (Higher Buddhic or cosmic consciousness) का केन्द्र है, अध्यात्म के उत्थान (spirituality) और दिव्यता का केन्द्र है। दिव्य ज्ञान से यहां तात्पर्य लम्बे समय तक के अध्ययन, तार्किक ज्ञानादि से नहीं है, किन्तु किसी वस्तु का एकदम से ज्ञान का तात्पर्य है।

"द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन" के अन्तर्गत इसको दैवीय हृदय के तौर पर माना गया है। इसका वर्णन भाग ५, अध्याय ३ में किया गया है।

(ग) चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण रोग–

शारीरिक– पिनीयल ग्रंथि से सम्बन्धित रोग, मस्तिष्क से सम्बन्धित रोग।

मनो– जैसा कि (9) आज्ञा चक्र में वर्णित है। सभी मनोरोगों में इस चक्र का उपचार आवश्यक होता है।

(घ) विविध– इस चक्र में ६६० बाह्य एवम् १२ आन्तरिक पटल होते हैं। बाह्य पटल ऊर्ध्वमुखी तथा आन्तरिक पटल नीचे की ओर मुख किये ह्रदय चक्र के पटलों के सम्मुख होते हैं।

बाह्य पटलों में हल्के बैंगनी, नीले, पीले, हरे, नारंगी और लाल रंग की प्राण ऊर्जा होती है। आन्तरिक पटलों में मुख्यतः सुनहरी ऊर्जा होती है। इस चक्र के माध्यम से बैंगनी, नीले-बैंगनी, हरे–बैंगनी, हरे-पीले, सूक्ष्म/गूढ़ पीले रंग की प्राणिक ऊर्जा एवम् अत्यन्त चमकीली सफ़ेद/विद्युतीय–बैंगनी (electric violet) और सुनहरे रंग की दिव्य ऊर्जायें उपचारक उपचार हेतु लेते हैं।

लघु चक्र एवं उनका शरीर पर प्रभाव

उपरोक्त मुख्य चक्रों (major chakras) के अतिरिक्त कई लघु चक्र (minor chakras) भी होते हैं जो इन्हीं मुख्य चक्रों के आधीन रहते हैं। यह निम्नवत हैं:–

क्र. सं.	चक्र का नाम	किस मुख्य चक्र के अधीनस्थ है	स्थिति	किन अंगों का नियंत्रण एवम् ऊर्जन करते हैं
१.	पिछला सिर (Back Head)	11, 10, 9	सिर के पिछले भाग में	समस्त सिर
२.	कनपटी	11, 10, 9	ये दो होते हैं – प्रत्येक कनपटी के मध्य में	आँख (चित्र २.१४)
३.	आँख	11, 10, 9	ये दो होते हैं – प्रत्येक आँख के सबसे नीचे के भाग के मध्य में	आँख (चित्र २.१४)
४.	कान	11, 10, 9	ये दो होते हैं – प्रत्येक कान की लटकन के अन्तिम सिरे पर	कान (चित्र २.१५)
५.	पिनीयल	11, 10	पिनीयल ग्रंथि	पिनीयल ग्रंथि (चित्र २.२४)
६.	पिट्यूटरी	9	पीयूष ग्रंथि (pituitary gland)	पीयूष ग्रंथि (चित्र २.२४)
७.	नथुने (अति लघु चक्र)	9	ये दो होते हैं – प्रत्येक नथुने के ठीक नीचे	नथुने (चित्र २.१३)
८.	जबड़ा (Jaw)	8	जबड़े के सबसे ऊपर के सिरे पर कान के पीछे	मस्तिष्क, सिर, आँख, कान, टॉसिल, दाँत
९.	उप कण्ठ चक्र (कण्ठ चक्र से	8	कण्ठ चक्र के नीचे खोखले स्थान पर	लगभग कण्ठ चक्र के समान

क्र. सं.	चक्र का नाम	किस मुख्य चक्र के अधीनस्थ है	स्थिति	किन अंगों का नियंत्रण एवम् ऊर्जन करते हैं
	सम्बन्धित)			
१०.	थायराइड (दो चक्र)	8	थायराइड ग्रंथि के बॉए व दांये भाग में	थायराइड ग्रंथि (चित्र २.२४ व २.२५)
११.	पैराथायराइड (अति लघु चक्र)	8	बाएं व दाएं भाग में ऊपर व नीचे के भाग में ये– चार अति लघु चक्र होते हैं।	पैराथायराइड ग्रंथि (चित्र २.२४ व २.२६)
१२.	फैंफड़े	7b	बांये फैंफड़े में दो-ऊपर और नीचे, दांये फैंफड़े में तीन– ऊपर, मध्य में और नीचे	फैंफड़े (चित्र २.२२ तथा २.३३ से २.३६ तक)
१३.	हृदय	7	बाँए और दांये भाग में	हृदय (चित्र २.२२ व २.२३)
१४.	थायमस	7	थायमस ग्रंथि के नीचे के मध्य भाग में । इसके अन्य दो अति लघु चक्र बाएं व दाएं भाग में होते हैं।	थायमस ग्रंथि (चित्र २.२४ व २.२७)
१५.	स्तनाग्र (nipples)	7	ये दो होते हैं– बाँयें व दांये स्तनांगों पर	स्तनाग्र
१६.	यकृत	6	इसमें तीन चक्र होते हैं– सीधे भाग के ऊपरी व नीचे के हिस्से में तथा बाँए भाग में	यकृत (चित्र२.२२, २.३८ व २.४४)

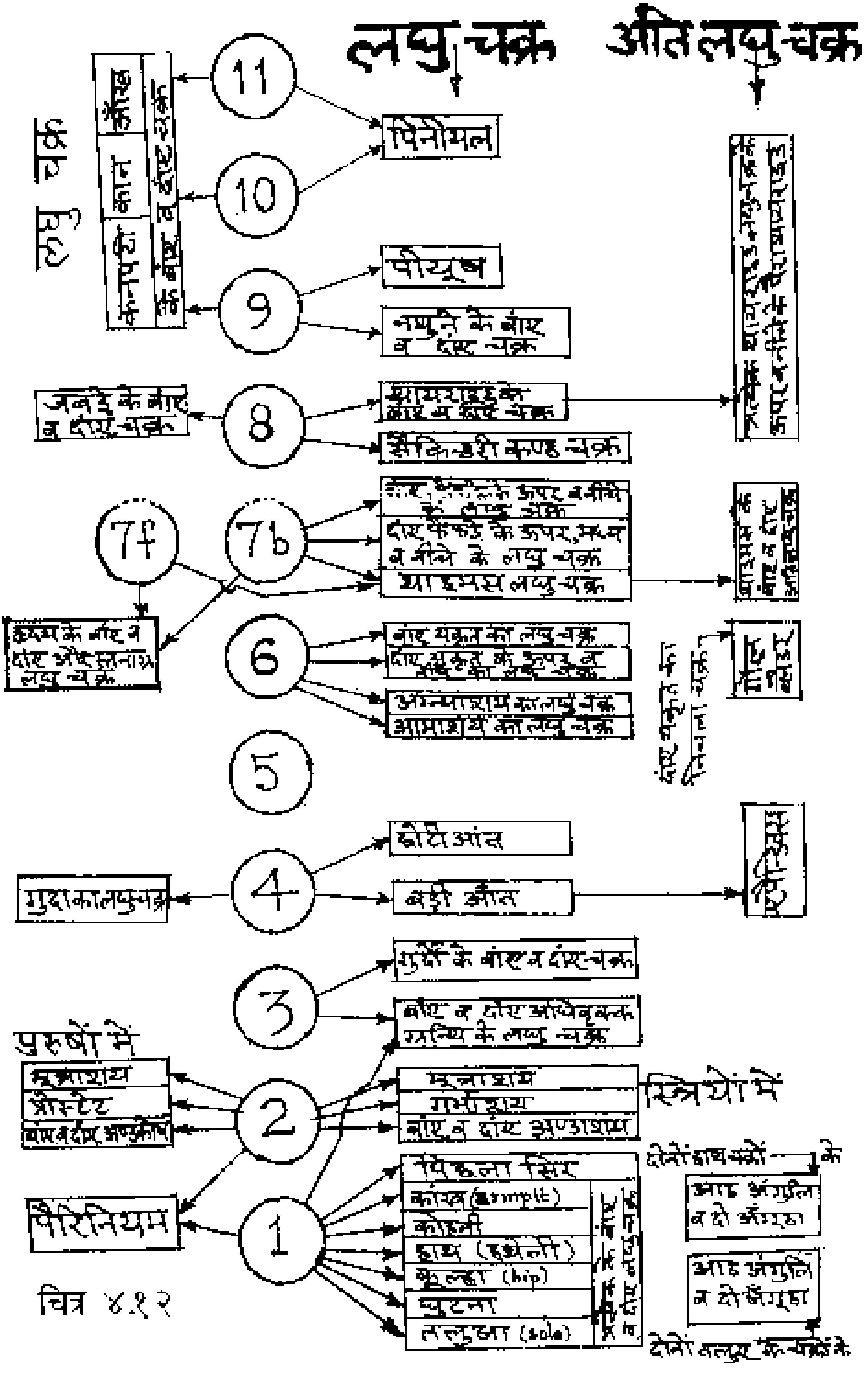

चित्र ४.१२

लघु एवम् अति लघु चक्रों का दिग्दर्शन

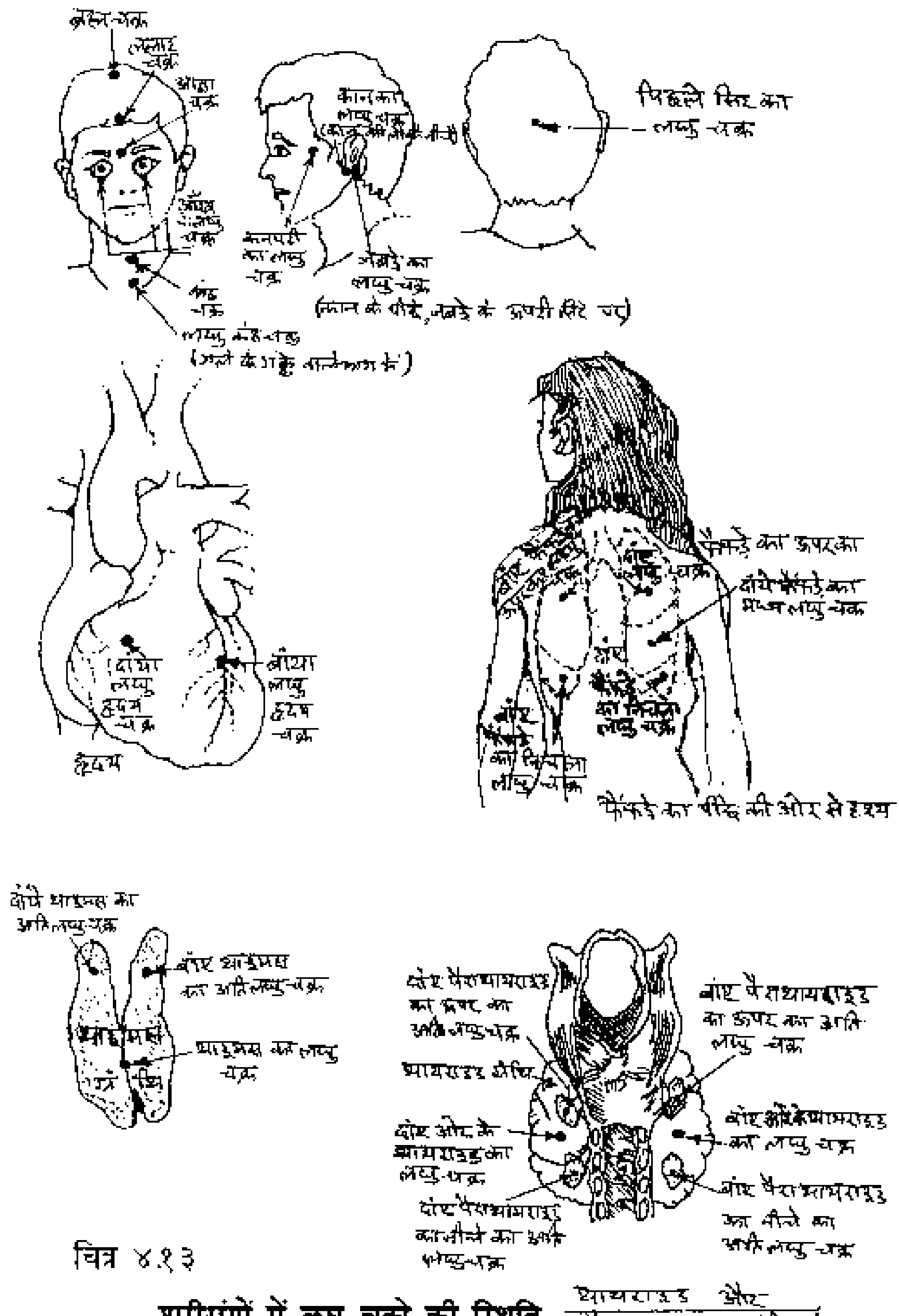

चित्र ४.१३

शरीरांगों में लघु चक्रो की स्थिति

१७.	पित्ताशय (अति लघु चक्र) (यकृत के सीधे भाग के निचले लघु चक्र के अन्तर्गत)	6	पित्ताशय के लगभग मध्य भाग में	पित्ताशय (gall bladder) (चित्र २.३८ व २.४४)
१८.	अग्न्याशय– इसके ऊपरी हिस्से पर दो अति लघु चक्र होते हैं	6	अग्न्याशय के बाँए मध्य भाग में	अग्न्याशय (चित्र २.२६, २.३०, २.३८ व २.४१)
१९.	आमाशय	6	आमाशय के ऊपर के मध्य भाग में	आमाशय (चित्र २.३८)
२०.	छोटी आँत – इसके अन्तर्गत प्रत्येक तीन फुट पर एक अति लघु चक्र होता है	4	छोटी आँत के ऊपरी हिस्से पर	छोटी आँत (चित्र २.३८, २.४२ व २.४३)
२१.	बड़ी आँत– इसके अन्तर्गत प्रत्येक ३ फुट पर एक अति लघु चक्र होता है	4	बड़ी आँत के सीधे भाग के सबसे निचले हिस्से में	बड़ी आँत (चित्र २.३८)
२२.	आंत्रपुच्छ (अति लघु चक्र)	4	आंत्र पुच्छ (बड़ी आँत के लघु चक्र के अन्तर्गत)	आंत्रपुच्छ (appendix) (चित्र २.३८)
२३.	गुदा	4	गुदा के नीचे के हिस्से में	गुदा (anus) (चित्र २.३८, २.४८,२.४९ व २.५०)
२४.	अधिवृक्क ग्रंथि	3, 1	इसमें दो चक्र होते हैं– बाएं व दाएं ओर	अधिवृक्क ग्रंथियां (चित्र २.२४, २.२८ व २.४५)

क्र. सं.	चक्र का नाम	किस मुख्य चक्र के अधीनस्थ है	स्थिति	किन अंगों का नियंत्रण एवम् ऊर्जन करते हैं
२५.	गुर्दा	3	इसमें दो चक्र होते हैं– बाँए व दाँएं गुर्दे के मध्य भाग में	गुर्दे (Kidneys) (चित्र २.२२ व २.४५)
२६	मूत्राशय	2	मध्य से थोड़े से नीचे के भाग में	मूत्राशय (bladder) (चित्र २.३२, २.४५, २.४६ व २.५०)
२७.	अण्डकोष	2	इसमें दो चक्र होते हैं– बाँए व दाँए अण्डकोष के मध्य भाग में	अण्डकोष (testes) (चित्र २.२४, २.३२ व २.५०)
२८.	प्रोस्टेट	2	प्रोस्टेट ग्रंथि के मध्य में	प्रोस्टेट ग्रंथि (चित्र २.३२, २.५०)
२९.	पैरिनियम *(Perineum)	2, 1	मूलाधार चक्र और काम चक्र के अन्तराल के मध्य में शरीर के अन्दर स्थित	प्रोस्टेट ग्रंथि। इसके अतिरिक्त पैरों को ऊर्जा इस चक्र के माध्यम से जाती है (चित्र २.४६)
३०.	गर्भाशय	2	गर्भाशय के मध्य में	गर्भाशय (चित्र २.४७ व २.४६)

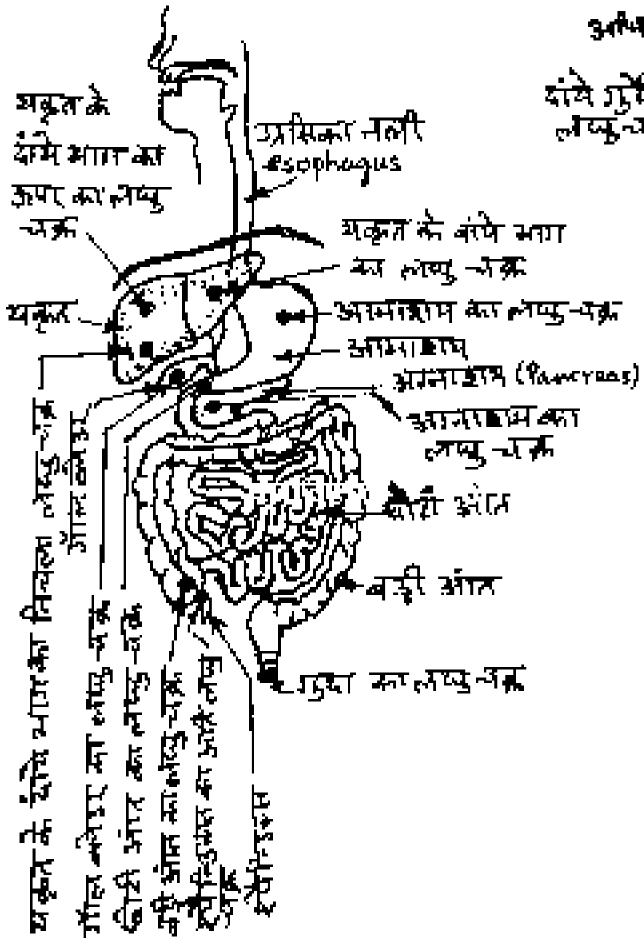

पाचन तंत्र एवम् उत्सर्जन तंत्र
GASTROINTESTINAL SYSTEM

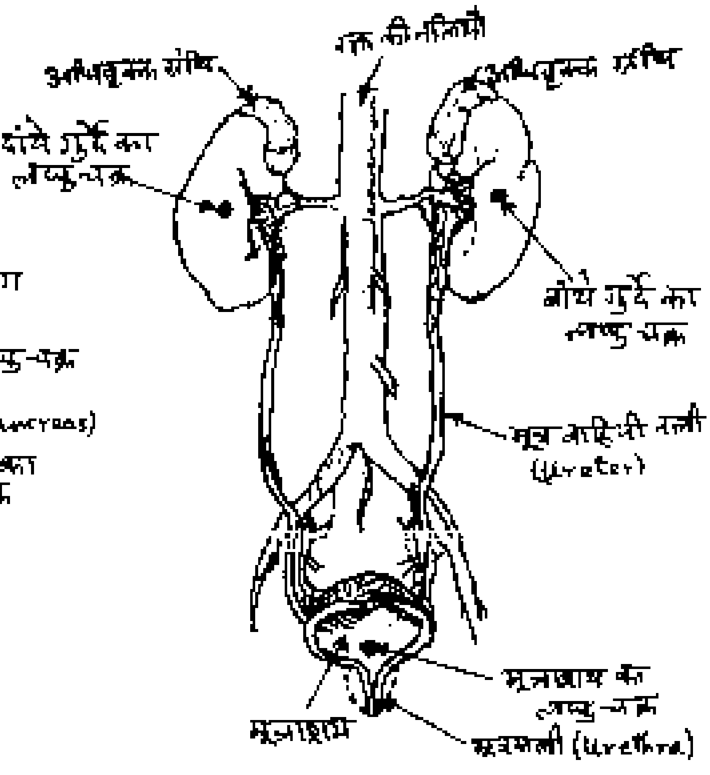

मूत्र तंत्र (उत्सर्जन तंत्र)

चित्र ४.१४ शरीरांगों में लघु चक्रों की स्थिति

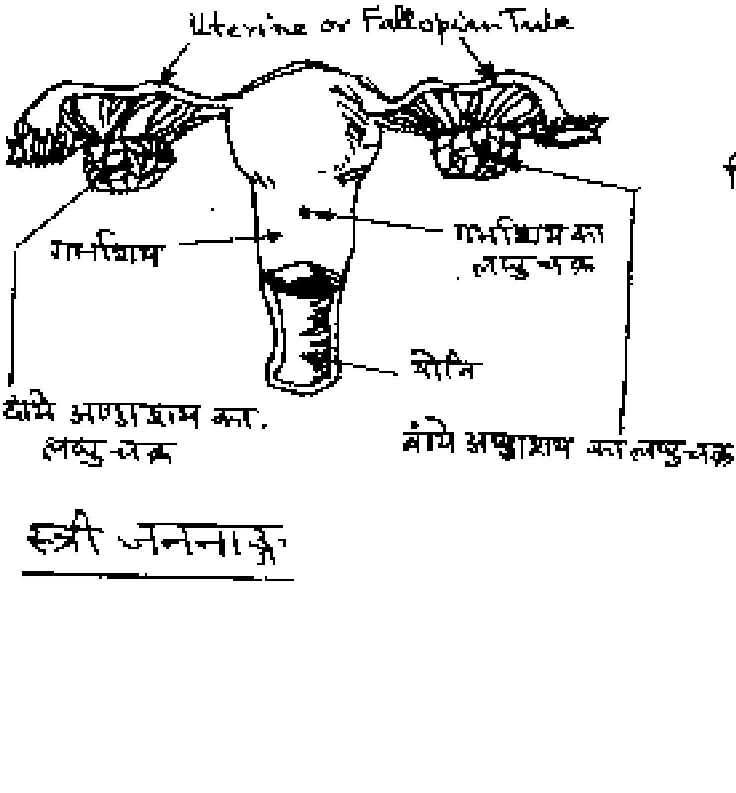

स्त्री जननांग

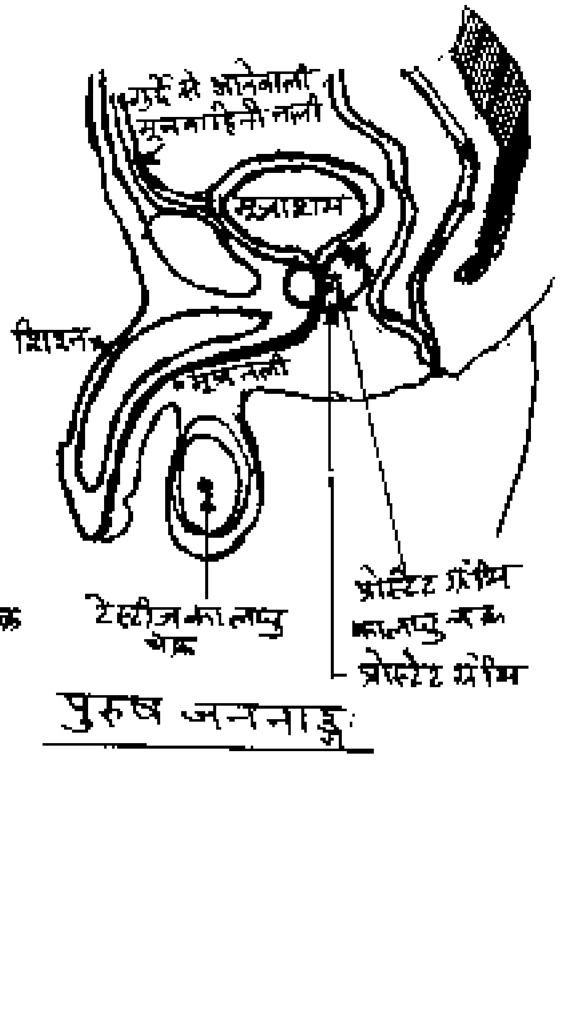

पुरुष जननांग

३१.	अण्डाशय	2	ये दो होते हैं– बांये व दांये अण्डाशय में	अण्डाशय (ovaries) एवम् Uterine or Fallopian Tube (अण्डाशय को गर्भाशय से मिलाने वाली नाली) (चित्र २.२४, २.३१, व २.४७)

टिप्पणी :–

* पैरिनियम धड़ (Tru k) का सबसे नीचे का भाग होता है। दो Ischial tuberosities (जिसके ऊपर हम बैठते हैं) को मिलाने ली लाइन इसको विभक्त करती है। यहाँ उस लाइन से तात्पर्य है जो Urogenital त्रिकोण (जो इस लाइन के सामने होता है) और Anal त्रिकोण (जो इस लाइन के पीछे होता है)। अर्थात् सामने मूत्र-जननांग और पीछे गुदा को मिलाने वाली काल्पनिक रेखा पैरीनियम को दो भागों में विभक्त करती है। केन्द्रीय भाग पैरिनियल बॉडी (Perineal body) कहलाती है, जो शक्तिशाली रेशेदार (muscular structure) का होता है। पुरुषों में यह गुदा मार्ग के सामने व स्त्रियों में योनि के ठीक पीछे होता है। इस सन्दर्भ में चित्र २.४६ देखें।

३२.	कांख	1	ये दो होते हैं– बांये व दांये कांख में	बाँह, बाँह के अन्दर Bone narrow (अस्थि मज्जा)
३३.	कोहनी	1	ये दो होते हैं– बांये व दांये कोहनी के ऊपर	बाँह, बाँह के अन्दर Bone narrow (अस्थि मज्जा).
३४.	हाथ (हथेली)– यह एक इंच व्यास के साधारणतः होते हैं	1	ये दो होते हैं– बांये व दांये हथेली के मध्य में	बाँह, बाँह के अन्दर अस्थि-मज्जा एवं हथेली
३५.	उंगलियां– यह अति लघु चक्र होते हैं	1	ये दस होते हैं– हाथों की प्रत्येक उंगली व अंगूठे पर	हाथों की उंगलियाँ व अंगूठे– ये हथेली के चक्र के अधीनस्थ कार्य करते हैं।
३६.	कूल्हा	1	ये दो होते हैं– बांये	पैर एवम् पैरों के

क्र. सं.	चक्र का नाम	किस मुख्य चक्र के अधीनस्थ है	स्थिति	किन अंगों का नियंत्रण एवम् ऊर्जन करते हैं
			व दांये कूल्हे पर	Bone narrow (अस्थि मज्जा)
३७.	घुटना	1	ये दो होते हैं– बाये व दांये घुटने के पीछे मध्य में	पैर एवम् पैरों के Bone narrow (अस्थि मज्जा)
३८.	तलवा	1	ये दो होते हैं– बांये व दांये तलवे के मध्य में	पैर व पैरों के अन्दर अस्थि-मज्जा एवम् तलवा
३९.	पैरों की उंगली, यह अति लघु चक्र होते हैं।	1	ये दस होते हैं– पैरों की प्रत्येक उंगली व अंगूठे पर	पैरों की उंगलियां व अंगूठा–ये तलवे के चक्र के अधीनस्थ कार्य करते हैं।

उक्त लघु चक्रों (एवम् अति लघु चक्रों) का दिग्दर्शन चित्र ४.१२ में दर्शाया है। इस चित्र से यह भी स्पष्ट है कि कौन लघु चक्र किस मुख्य चक्र के एवम् कौन अति लघु चक्र किस लघु चक्र के अधीनस्थ कार्य करता है। शरीर के विभिन्न अंगों में इनकी स्थिति चित्र ४.१३ व ४.१४ में दिखायी गयी है। इन चक्रों के अतिरिक्त तीन उप नाभि चक्र होते हैं जो नाभि चक्र के ठीक नीचे एक के बाद एक होते हैं। इनमें कृत्रिम ऊर्जा का भण्डार होता है। यह चक्र नाभि चक्र द्वारा नियंत्रित एवम् ऊर्जित होते हैं।

अध्याय— १३

अन्तर्चक्र सम्बन्ध एवम् अन्तर्चक्र ऊर्जा प्रवाह

ऊर्जा चक्रों के वर्णन में ऊर्जा चक्रों में आपस का सम्बन्ध, नियंत्रण, प्रवाह, ऊर्जा का स्रोत आदि का प्रसङ्ग आया है। इसका कुछ दिग्दर्शन चित्र ४.१५ में किया गया है। इस चित्र से यह भी स्पष्ट है कि किन–किन चक्रों का आपस में घनिष्ठ/अति घनिष्ठ सम्बन्ध है, कौन ऊर्जा का पावर हाउस है, कौन चक्र किन प्रकार की ऊर्जा के स्रोत हैं एवम् कौन चक्र एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं।

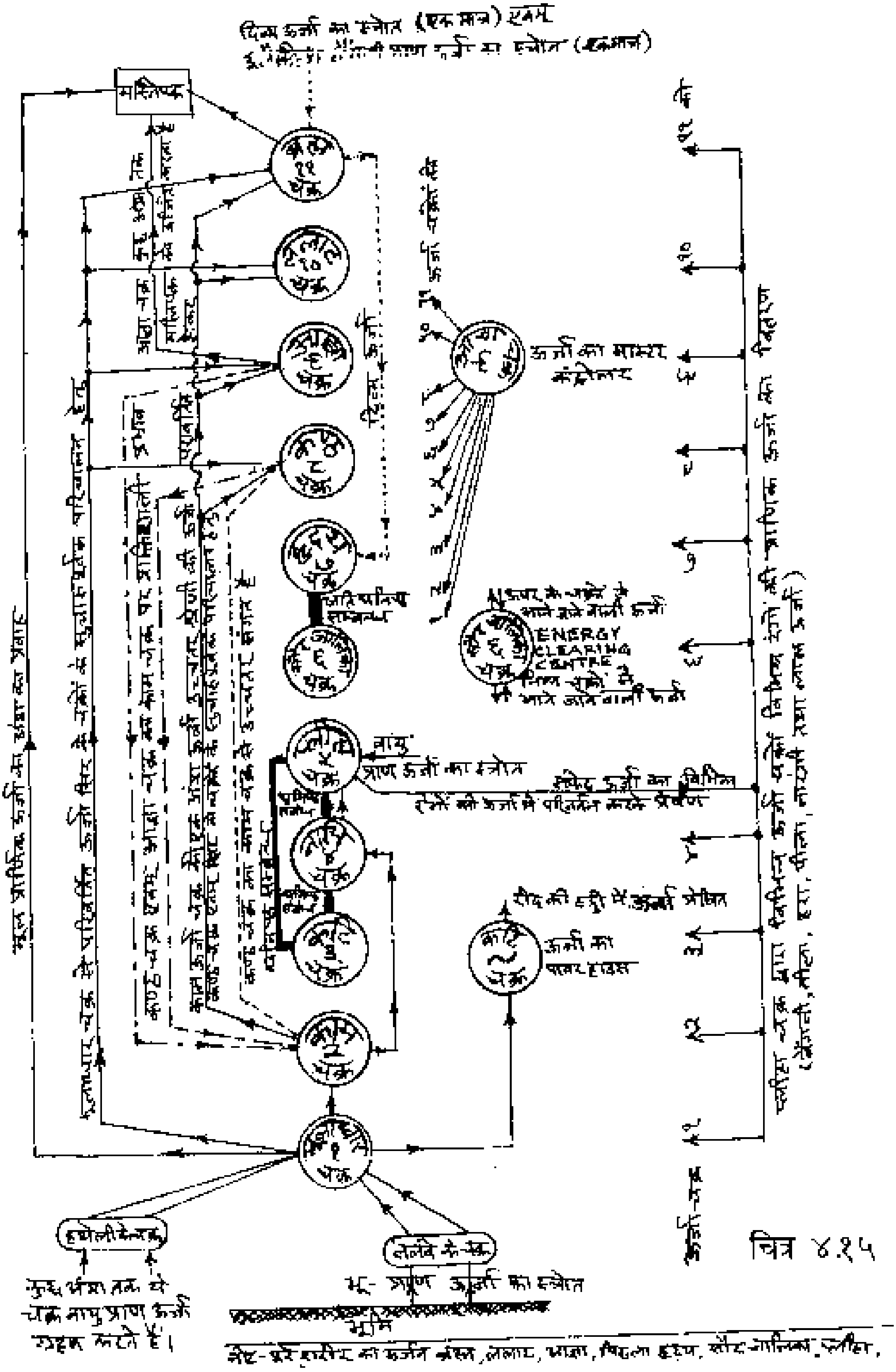

चित्र ४.२५

विभिन्न शारीरिक तंत्रों पर ऊर्जा चक्रों का प्रभाव

यहाँ निम्न चिन्हों द्वारा विभिन्न चक्रों /लघु चक्रों को दर्शाया गया है:

1, 2, 3, ..., 11 मुख्य चक्र जिनका वर्णन अध्याय १० व ११ में किया गया है और उस तंत्र के सुचारुपूर्वक संचालन के लिए उत्तरदायी हैं।

8' उप कण्ठ लघु चक्र (secondary throat chakra)

a काांख (armpit) का लघु चक्र

bh पिछले सिर (back head) का लघु चक्र

e कोहनी (elbow) का लघु चक्र

h कूल्हे (hip) का लघु चक्र

H हाथ की हथेली (Hand) का लघु चक्र

j जबड़े (jaw) का लघु चक्र

k पैर के घुटने (knee) का लघु चक्र

n नाक के नथुने (nostril) का लघु चक्र

p पैरिनियम (perineum) का लघु चक्र

S पैर के तलवे (sole) का लघु चक्र

t कनपटी (template) का लघु चक्र

X X नम्बर का मुख्य चक्र, जो इस तंत्र को नियंत्रित करता है जैसे [1] का तात्पर्य है कि इसको मूलाधार चक्र मुख्यतः नियंत्रित करता है।

➡ चक्र द्वारा नियंत्रण एवम् ऊर्जन

⋯▶ नकारात्मक विचारों द्वारा लम्बे समय तक रहने पर चक्र पर कुप्रभाव

→ प्रभाव

(१) **अस्थि तंत्र एवं मांस पेशियों का तंत्र** – Skeleton and Muscular Systems
(सन्दर्भ – भाग २, अध्याय १, २ व ३ व चित्र २.०१, २.०२, २.०३, २.०४)

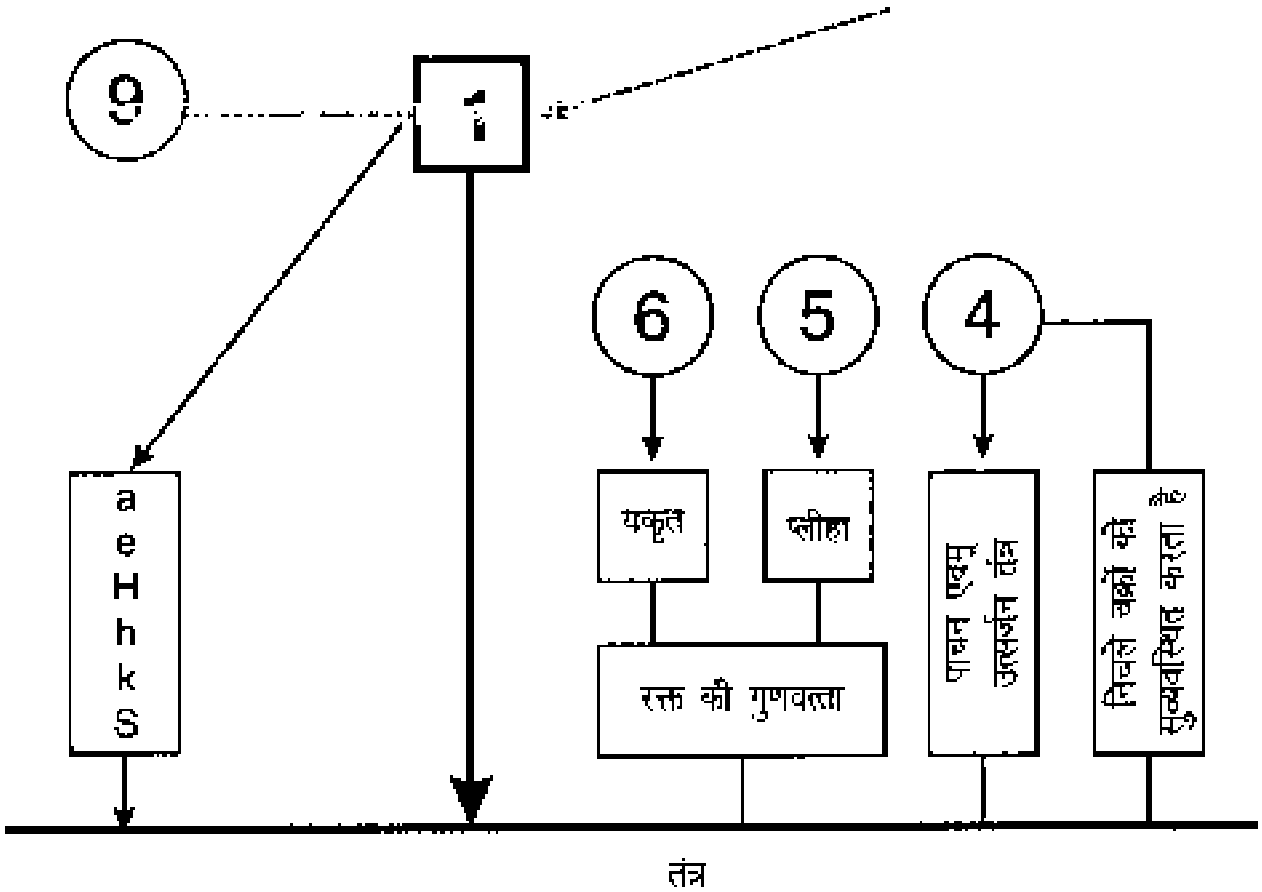

(२) **त्वचा तंत्र** – Skin System
(सन्दर्भ – भाग २, अध्याय ४, एवं चित्र २.१०)

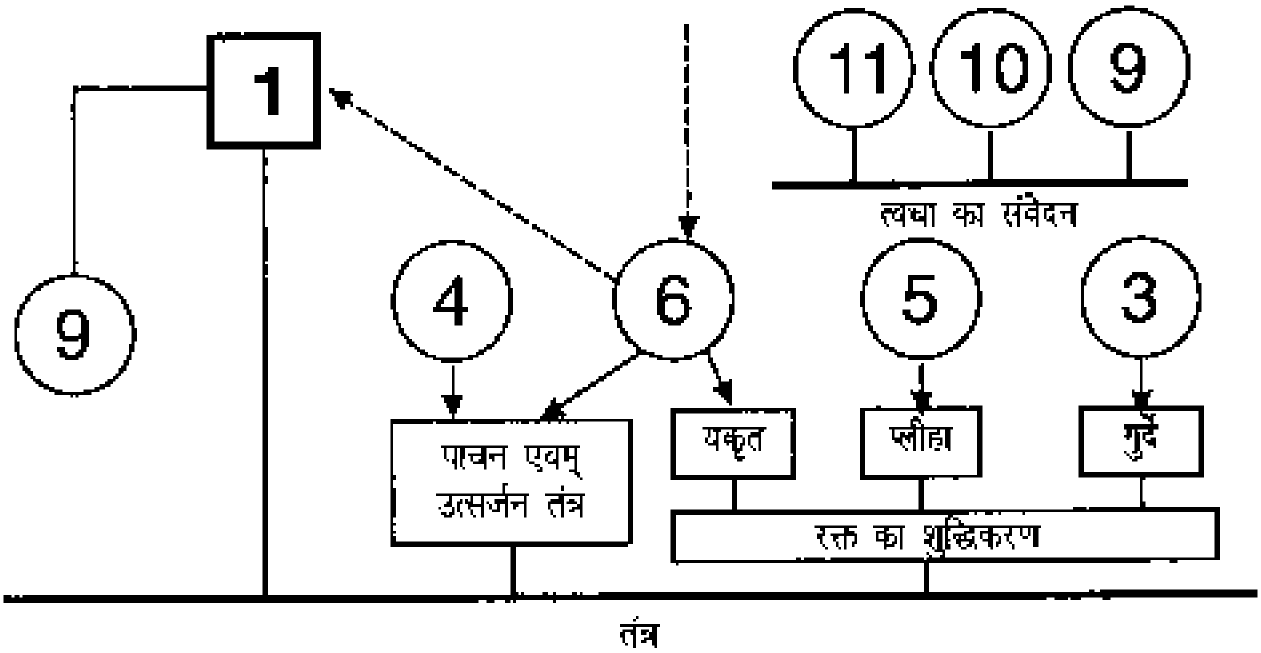

(नोट – चक्र ४ आंतों व उत्सर्जन तंत्र व चक्र ६ यकृत व आमाशय को नियंत्रित करता है)

(३) तंत्रिका तंत्र एवं सिर - Nervous System and Head
(सन्दर्भ - भाग २, अध्याय ५ व ६ एवं चित्र २.०५ से २.०६ तक)

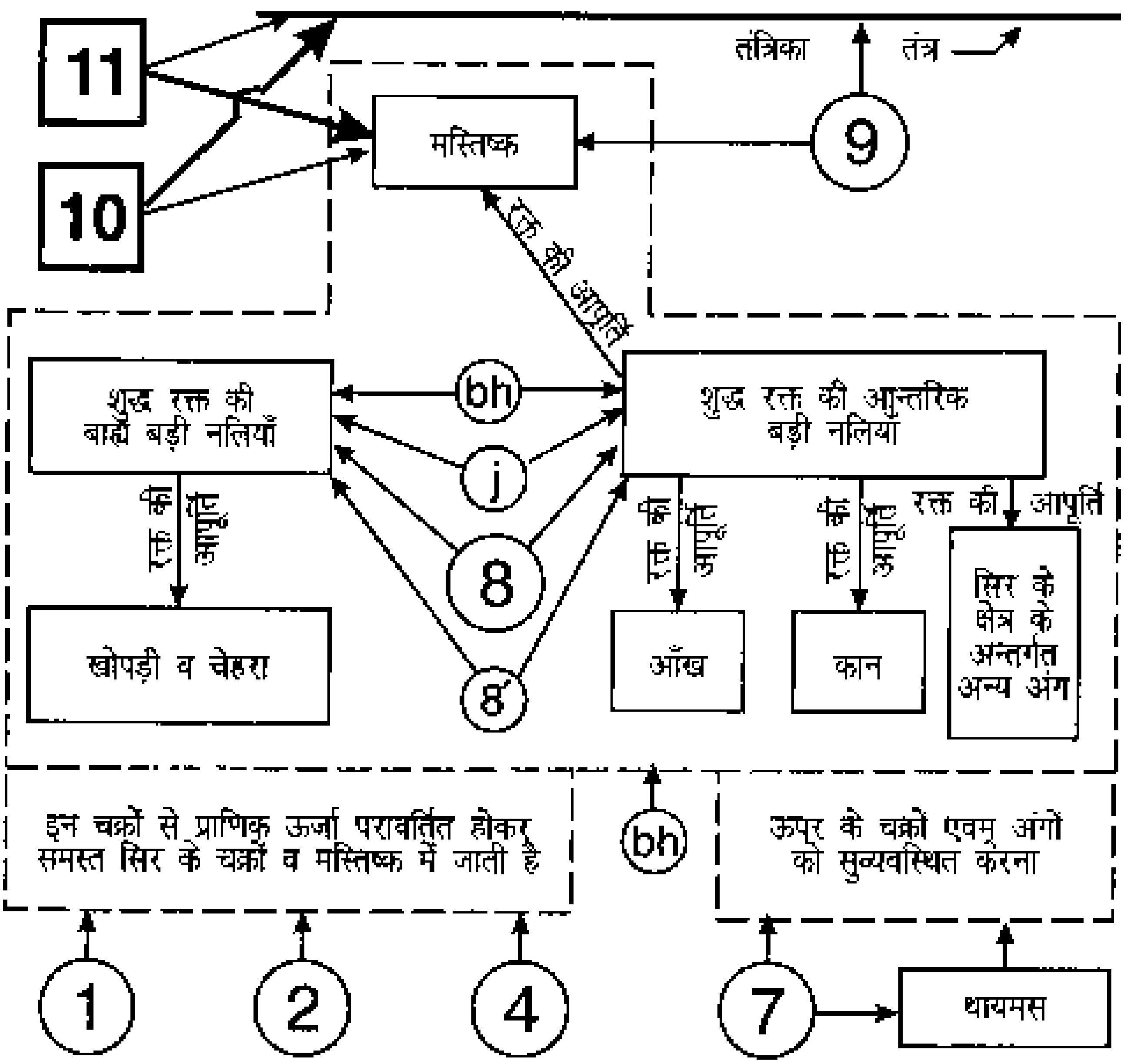

(४) तंत्रिका अंग - Senses
(सन्दर्भ - भाग २, अध्याय ७ एवम् चित्र २.११ से २.१५ तक)

(क) स्पर्शन (त्वचा) - कृपया (२) त्वचा तंत्र देखें
(ख) स्वाद संवेदन - जीभ

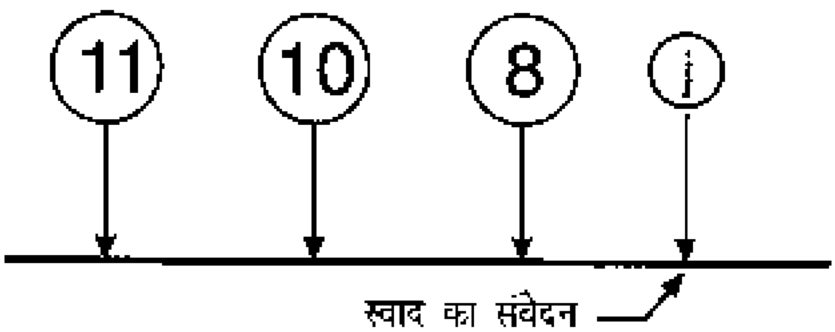

(ग) घ्राण संवेदन - नाक

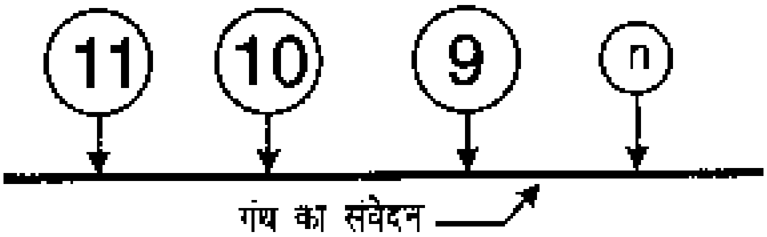

(घ) दृष्टि संवेदन - आँख

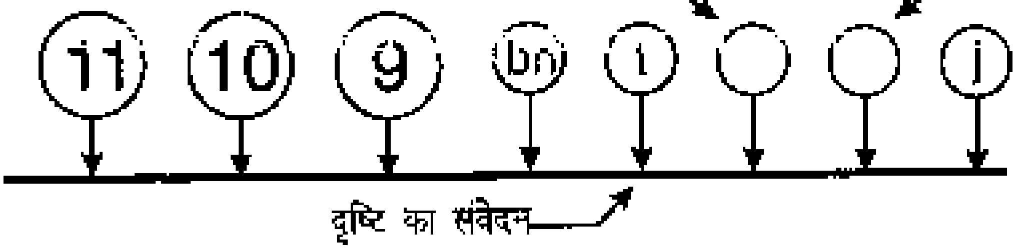

नोट - बांए आँख का ऊर्जन आज्ञा चक्र द्वारा अधिक होता है, जबकि दांए आँख का ऊर्जन ललाट और ब्रह्म चक्रों द्वारा अधिक होता है। तदनुसार इन चक्रों का आँखों पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

(ङ) श्रवण संवेदन - कान

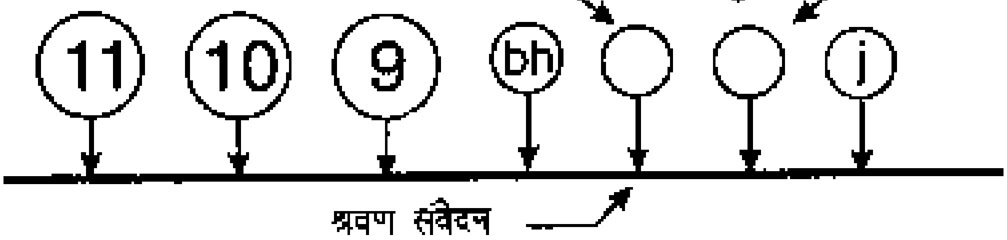

नोट - बांए कान का ऊर्जन आज्ञा चक्र द्वारा अधिक होता है, जबकि दांए आँख का ऊर्जन ललाट और ब्रह्म चक्रों द्वारा अधिक होता है। तदनुसार इन चक्रों का कानों पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

(५) रुधिराभिसरण तंत्र - Circulatory System
(सन्दर्भ - भाग २, अध्याय ८ एवम् चित्र २.१६ से २.२३ तक)

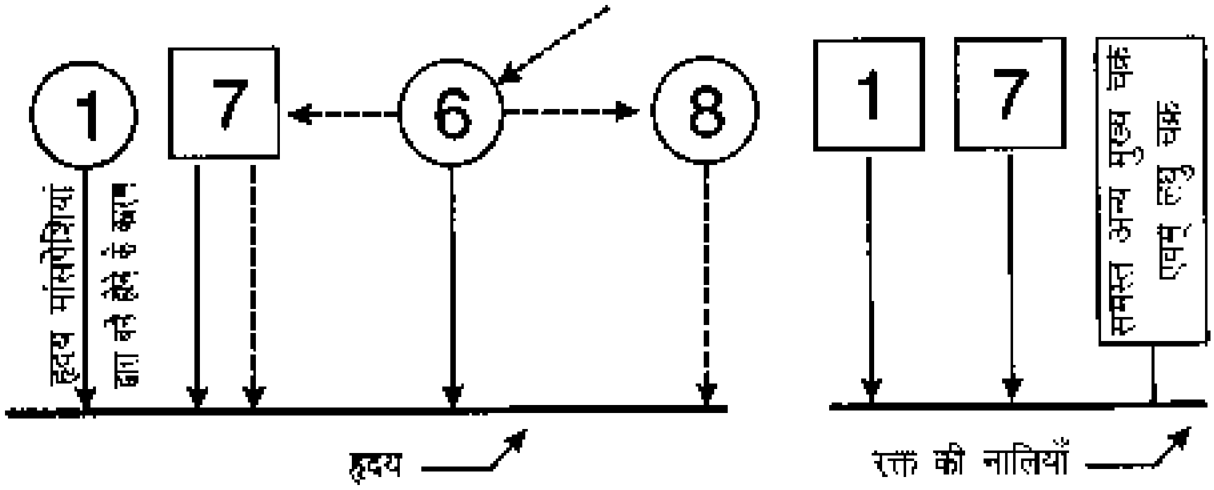

(६) प्रतिरक्षात्मक तंत्र - Defence and Immunity system

(सन्दर्भ – भाग २, अध्याय ६ एवम् चित्र २.२३)

प्रतिरक्षात्मक तंत्र मुख्य तौर पर अस्थि तंत्र (Skeleton System) और लिम्फैटिक तंत्र (Lymphatic System) द्वारा नियंत्रित होता है।

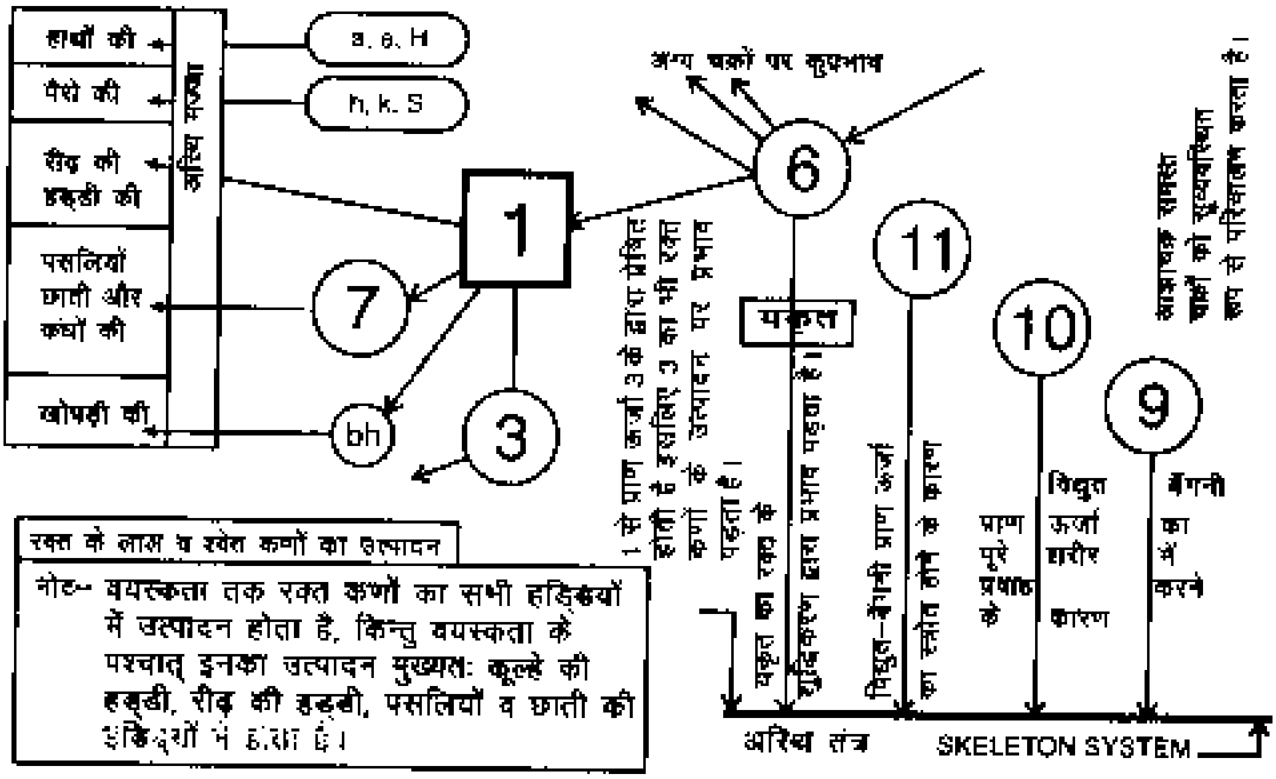

लिम्फैटिक तंत्र विषैले बैक्टीरिया आदि अति सूक्ष्म जीवाणु (Virulent Microbes) को फिल्टर करता है। एवम् नष्ट कर देता है। यह तंत्र प्रतिशरीरों (Anti-Bodies) को बनाता है और एक महत्वपूर्ण प्रकार के श्वेत रक्त कण जो लिम्फोसाइट (Lymphocyte) कहलाते हैं, बनाता है। इन Lymphoytes की एक "याददाश्त" आक्रमण जीवाणुओं (Microbes) के विषय के बारे में होती है। और ये संक्रमण (Infections) से शरीर की रक्षा करने के लिए उत्तरदायी हैं। थायमस ग्रंथि T-lymphocytes अथवा T-cells का उत्पादन करती है जो वायरस (virus), फुंगी (fungi) परजीवी (parasites) कैन्सर की कोशिकायें, बाह्य (foreign) कोशिकाओं आदि से लड़ते है। थायमस शरीर के स्वयं के कोशिकाओं और अंगों के आक्रमण से भी प्रतिरक्षात्मक तंत्र का नियमन करता है। प्लीहा असाधारण कोशिकाओं और रोग पैदा करने वाले कीटाणुओं को फिल्टर करता है और नष्ट करता है।

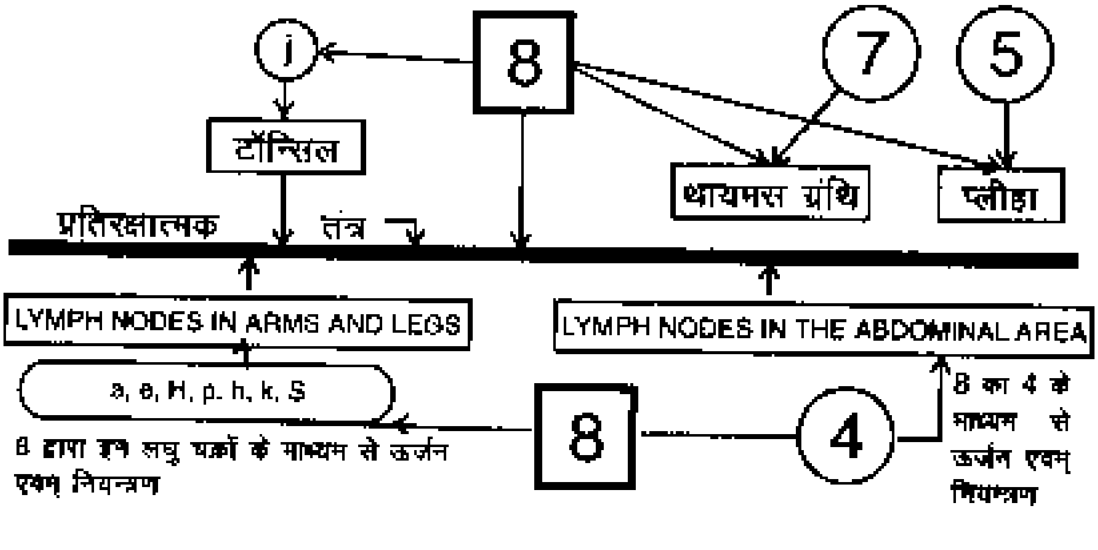

(७) अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ - Endocrine Glands
(सन्दर्भ - भाग २, अध्याय १०, चित्र २.२४ से २.२८ तक तथा २.३१ व २.३२)

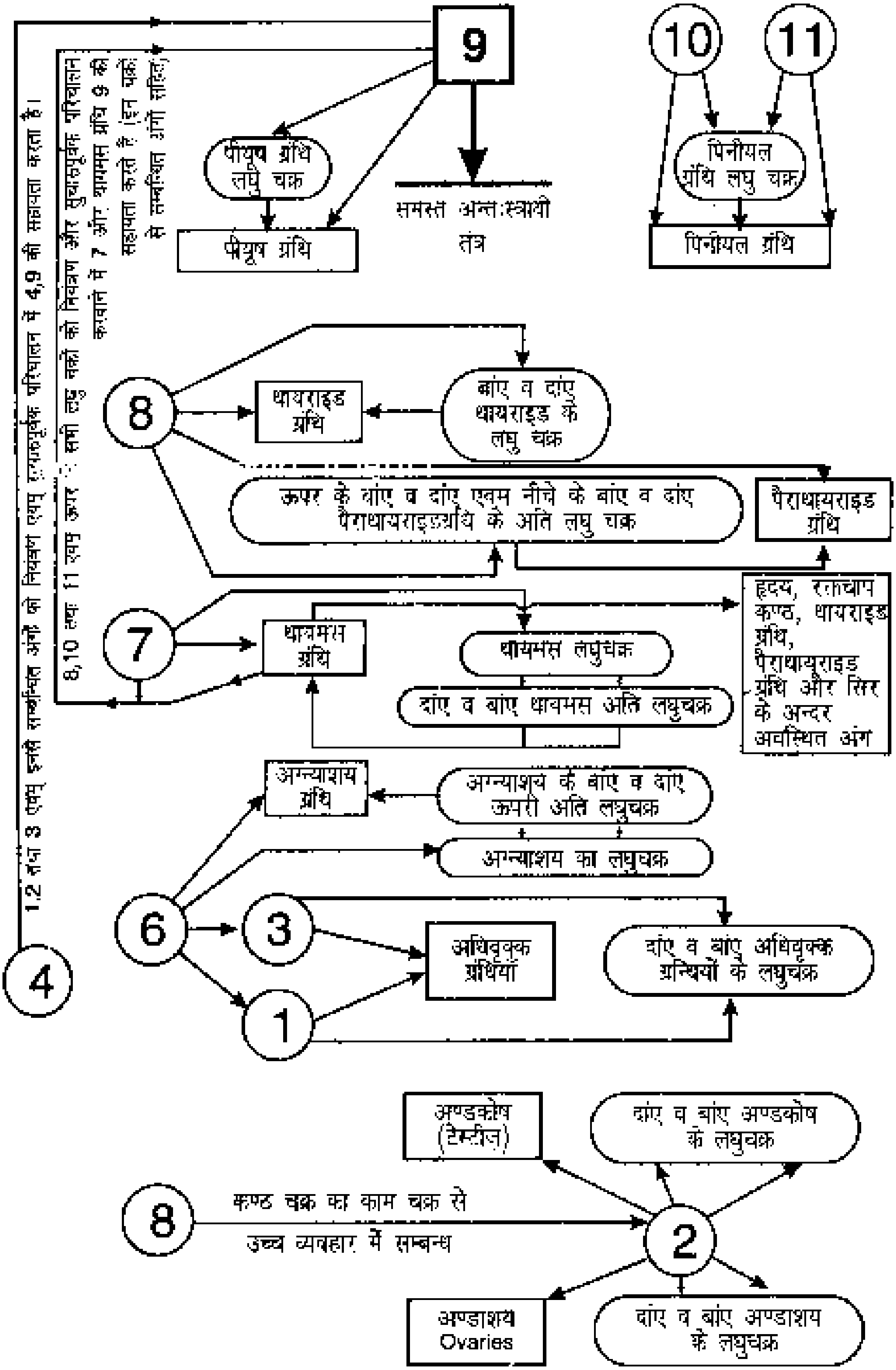

(९) **श्वसन तंत्र - Respiratory System**
(सन्दर्भ - भाग २, अध्याय ११, चित्र २.३४ से २.३६ तक)

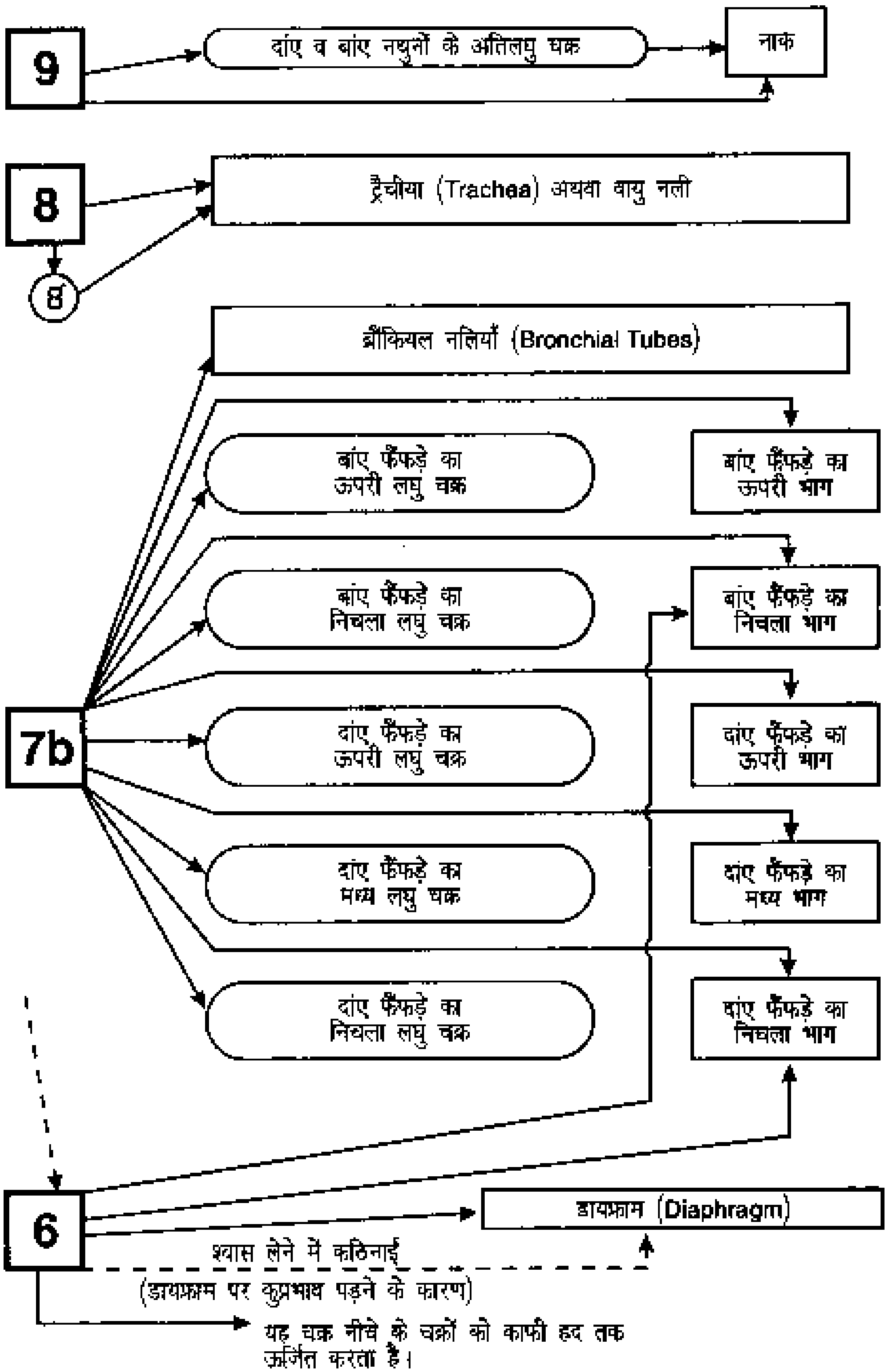

(६) पाचन तंत्र - Digestive System
(सन्दर्भ - भाग २, अध्याय १२, चित्र २.३८ से २.४४ तक)

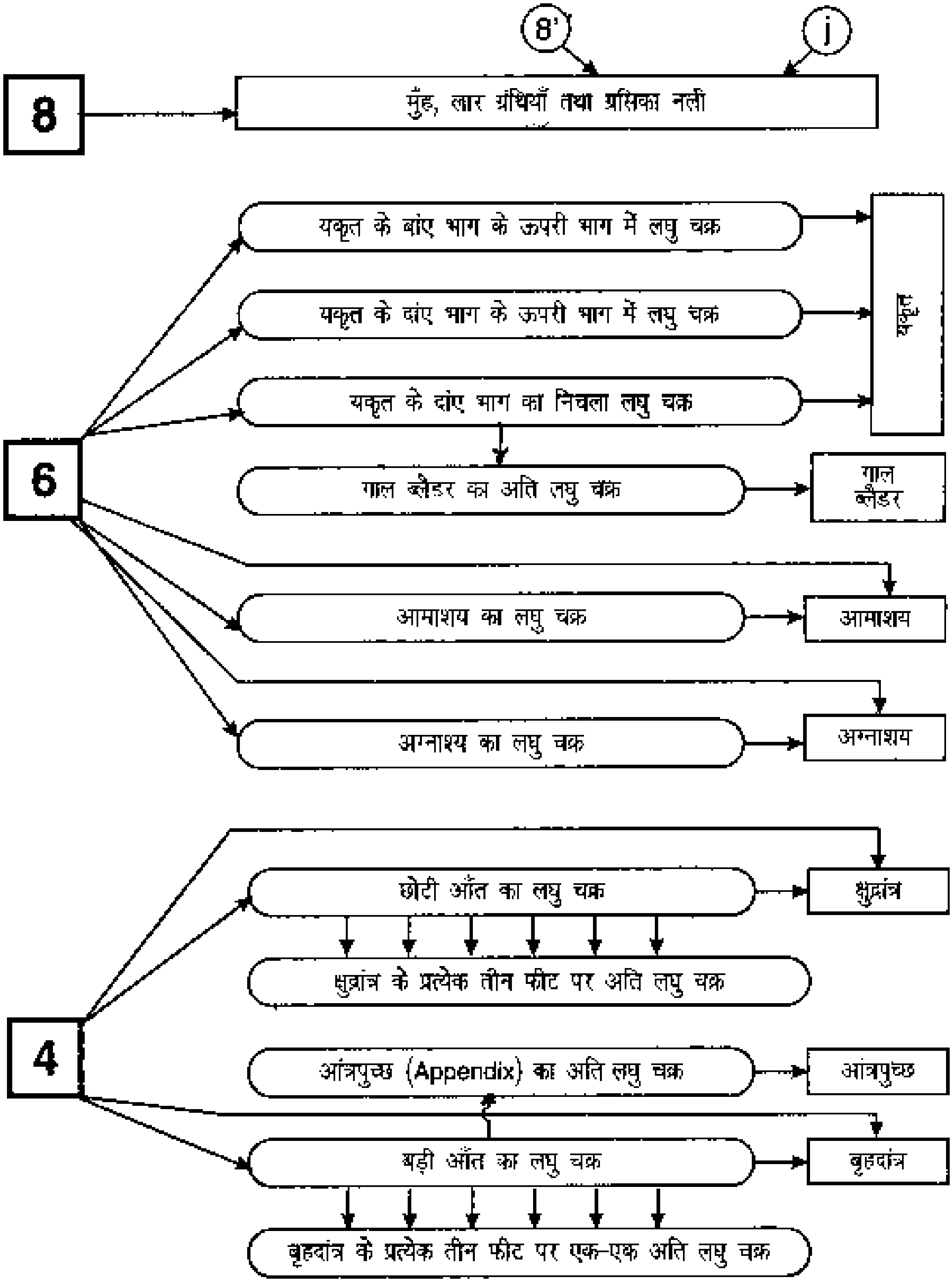

(१०) उत्सर्जन तंत्र – **Excretion System**

(सन्दर्भ – भाग २, अध्याय १४ चित्र २.५५ व २.५६)

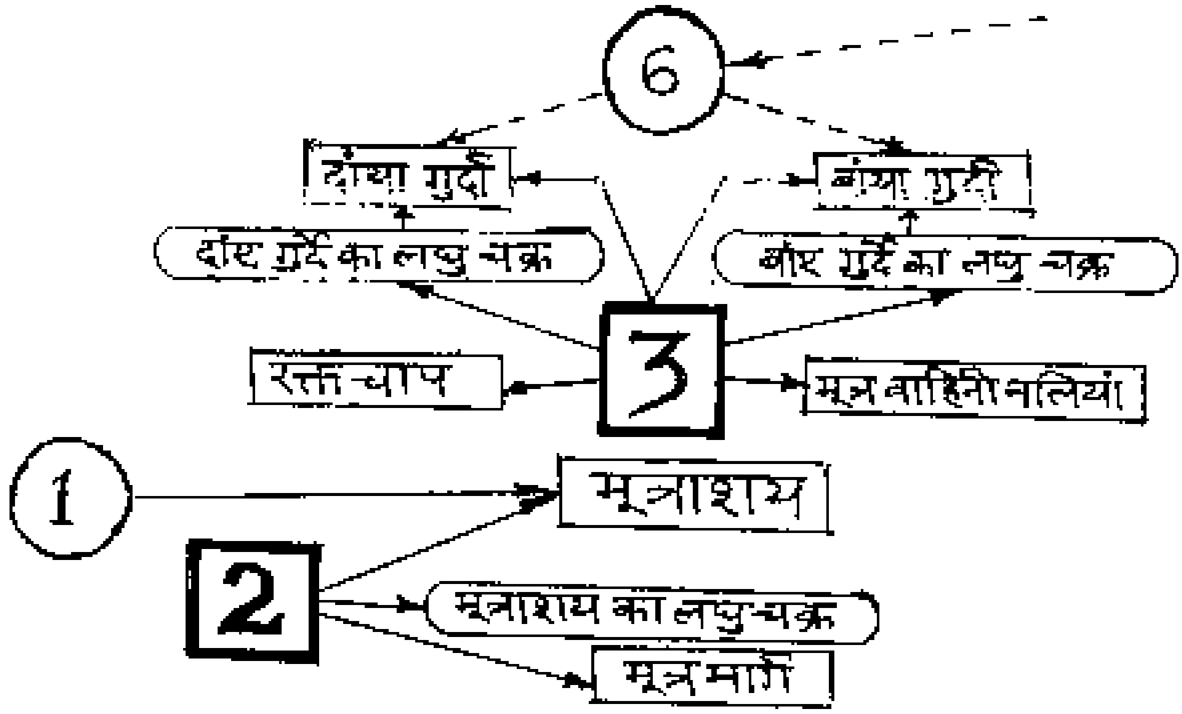

(११) प्रजनन तंत्र – **Reproductive System**

(सन्दर्भ – भाग २, अध्याय १५, चित्र २.३१, २.३२ तथा २.४७ से २.५० तक)

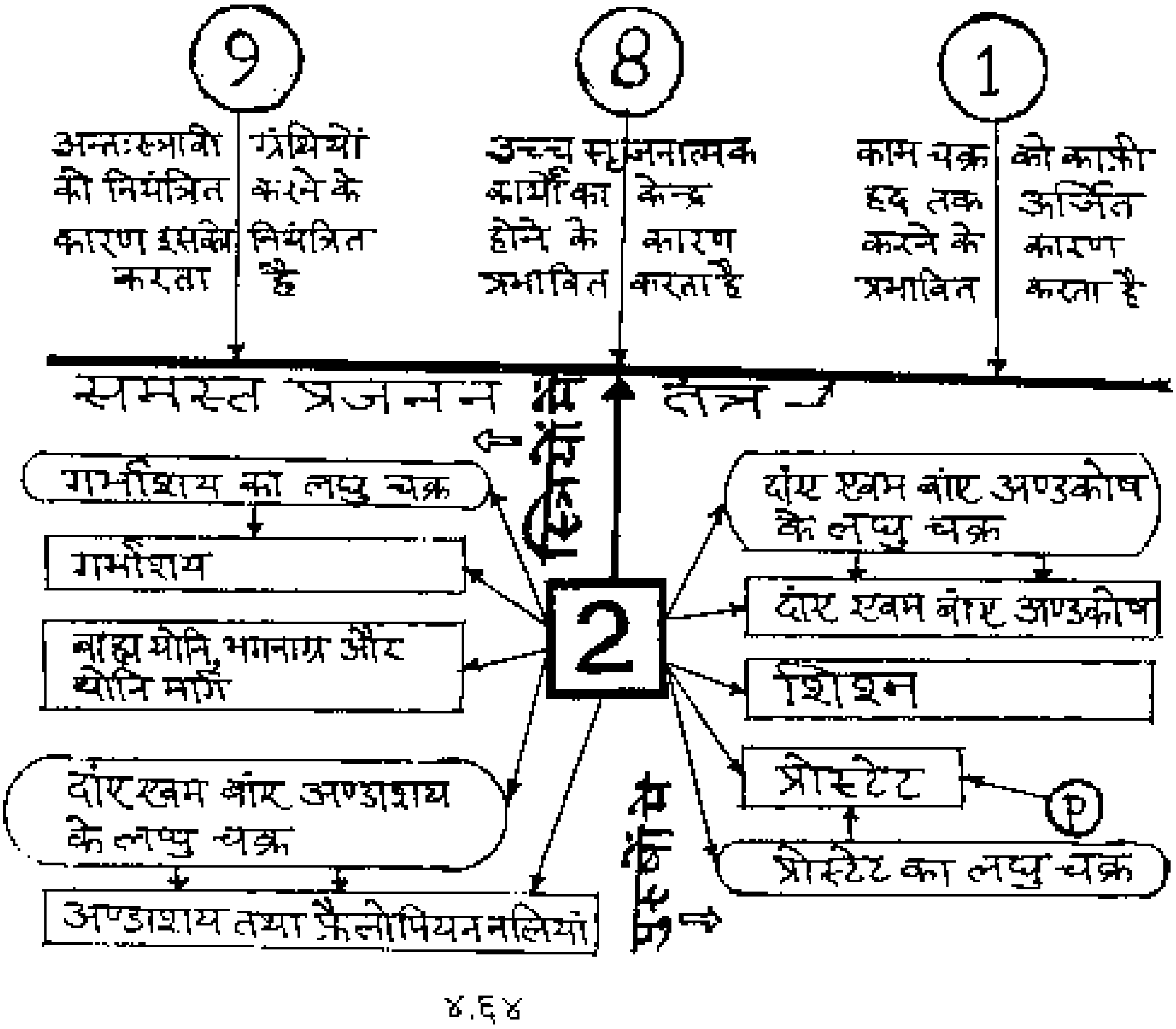

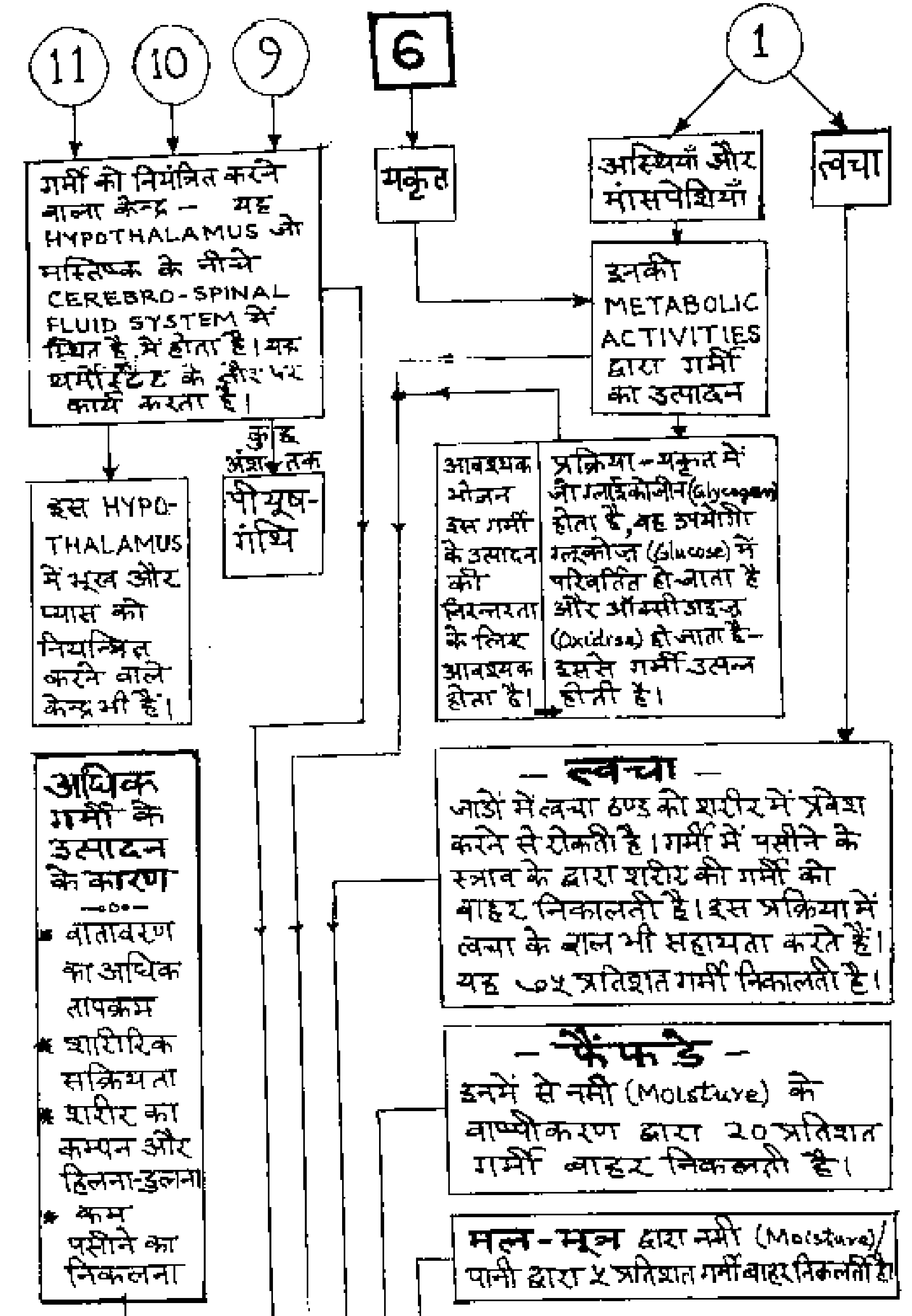
11
10
9
6
1
गर्मी को नियंत्रित करने वाला केन्द्र – यह HYPOTHALAMUS जो मस्तिष्क के नीचे CEREBRO-SPINAL FLUID SYSTEM में स्थित है, में होता है। यह थर्मोस्टैट के तौर पर कार्य करता है।
यकृत
अस्थियाँ और मांसपेशियाँ
त्वचा
इनकी METABOLIC ACTIVITIES द्वारा गर्मी का उत्पादन
कुछ अंश तक
इस HYPOTHALAMUS में भूख और प्यास को नियन्त्रित करने वाले केन्द्र भी हैं।
पीयूष-ग्रंथि
आवश्यक भोजन इस गर्मी के उत्पादन की निरन्तरता के लिए आवश्यक होता है।
प्रक्रिया – यकृत में जो ग्लाइकोजीन (Glycogen) होता है, वह उपयोग ग्लूकोज (Glucose) में परिवर्तित हो जाता है और ऑक्सीडाइज़ (Oxidise) हो जाता है – इससे गर्मी उत्पन्न होती है।
अधिक गर्मी के उत्पादन के कारण
वातावरण का अधिक तापक्रम
शारीरिक सक्रियता
शरीर का कम्पन और हिलना-डुलना
कम पसीने का निकलना
— त्वचा —
जाड़ों में त्वचा ठण्ड को शरीर में प्रवेश करने से रोकती है। गर्मी में पसीने के स्राव के द्वारा शरीर की गर्मी को बाहर निकालती है। इस प्रक्रिया में त्वचा के बाल भी सहायता करते हैं। यह ७५ प्रतिशत गर्मी निकालती है।
— फेंफड़े —
इनमें से नमी (Moisture) के वाष्पीकरण द्वारा २० प्रतिशत गर्मी बाहर निकलती है।
मल-मूत्र द्वारा नमी (Moisture)/पानी द्वारा ५ प्रतिशत गर्मी बाहर निकलती है।

सफेद एवम् रंगीन प्राण ऊर्जा

वायु प्राण, सूर्य प्राण और भू-प्राण सफेद अथवा साधारण प्राण ऊर्जा होते हैं। परादर्शी भाषा (esoteric parlance) में वायु और भू-प्राण ओजस्वी गोले vitality globules कहलाते हैं, क्योंकि जब इनको परादर्शी अथवा अधिक संवेदनशील नेत्रों द्वारा देखा जाता है तो यह प्रकाश के छोटे-छोटे आकाश-मण्डल (globules of light) जैसे भासित होते हैं। ये ओजस्वी गोले अलग-अलग आकार में होते हैं। कुछ में सफेद प्राण अधिक मात्रा में होता है, तो कुछ में कम।

भू-प्राण पृथ्वी से ऊपर कई इंच तक ऊपर वर्तमान होते हैं। ये अधिक घने होते हैं, ज्यादा पास-पास रहते हैं एवम् साधारणतः वायु प्राण के ओजस्वी गोले से अधिक बड़े होते हैं। इनसे कुछ ज्यादा बड़े वायु ओजस्वी गोलों को विशेष तौर पर सूर्यास्त से कुछ मिनट पहले आकाश की ओर घूरते हुए आसानी से देखा जा सकता है। इन वायु ओजस्वी गोलों को देखने के लिये परादर्शी होना जरूरी नहीं है। अधिक अभ्यास से भू-प्राण के ओजस्वी गोलों को भी देखा जा सकता है।

प्राण ऊर्जा द्वारा शारीरिक अंगों की सफाई तथा ऊर्जन किया जा सकता है। इसी प्रकार ऊर्जा चक्रों की सफाई तथा ऊर्जन किया जाता हैं। ऊर्जा चक्रों का संकोचन (inhibition) तथा विस्तृतीकरण (enlargement) भी विशेष रंगीन ऊर्जा द्वारा किया जा सकता है। विद्युतीय-बैंगनी ऊर्जा द्वारा नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकारों एवं नकारात्मक परजीवियों की सफाई एवं उनको नष्ट किया जाता है तथा अंगों/चक्रों को ऊर्जित एवम् सामान्य भी किया जाता है। इन प्रक्रियाओं से शारीरिक एवम् मनोरोगों का उपचार किया जाता है। इन प्राण ऊर्जाओं के अन्य भी उपयोग हैं। इन सबकी विधि आदि की चर्चा भाग ५ में विस्तारपूर्वक की गयी है।

ओजस्वी गोलों को ऊर्जा चक्र सोख लेते हैं तथा उनको पचाते हैं और विभिन्न घटकों में अलग कर देते हैं। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, सफेद प्राण छह रंगों के प्राणों– लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला और बैंगनी रंगों के प्राणों में परिवर्तित हो जाता है। वायु प्राण काफी मात्रा में अगले व पिछले प्लीहा चक्र सीधा ही सोख लेते हैं जहाँ यह रंगीन प्राणों में तबदील हो जाता है और जहाँ से इनका अन्य

चक्रों में वितरण किया जाता है। भू-प्राण तलवे के चक्रों द्वारा सोख लिया जाता है, तब मूलाधार चक्र को जाता है। इस भू–प्राण का एक अंश रीढ़ की हड्डी और अन्य चक्रों को जाता है, जब कि इसका एक बड़ा भाग पैरिनियम लघु चक्र, फिर नाभि चक्र, फिर प्लीहा चक्र को जाता है, जहाँ यह तोड़ा जाता है और अन्य चक्रों को वितरित किया जाता है। ये सब प्रक्रियायें स्वयमेव ही होती रहती हैं अथवा अर्ध चेतना (sub-conscious) स्तर पर होती हैं।

रंगीन प्राण सफेद प्राण से अधिक शक्तिशाली होता है। जैसे शारीरिक रोग के उपचार के लिये साधारण चिकित्सक के बजाय किसी विशेषज्ञ के पास जाया जाता है, उसी प्रकार इसको समझना चाहिए।

इन रंगीन प्राणों के गुण आदि भाग ५, अध्याय ८ में शारीरिक एवम् मनोरोगों के उपचार के प्रसङ्ग में किया गया है।

अध्याय– १६

प्राण ऊर्जा के सिद्धान्त

Principles of Pranic Energy

~~चैपजमत 19. जपदबपचसमे व चतंदपब म्दमतहल~~

जीवन की शक्ति (Life Force) के कुछ मूल सिद्धान्त हैं जो सहज समझने के लिए निम्नलिखित हैं:

१. जीवन शक्ति का सिद्धान्त– Principle of Life Force

किसी भी जीवन की सत्ता के विद्यमान रहने के लिए, उसकी जीवन शक्ति (अथवा ओजस्वी ऊर्जा) होनी चाहिए। (शास्त्रों में दस प्राणों में से मनोबल, वचन बल तथा काय बल को प्राण माने गये हैं।) इस जीवन शक्ति को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जिनमें से एक नाम "प्राण" भी है। यदि इस जीवन शक्ति को अथवा प्रभावित अंग के प्राण–स्तर को बढ़ा दिया जाये, तो उपचार शीघ्र हो जाता है।

२. व्यापकता का सिद्धान्त– **Principle of Pervasiveness**

जीवन–शक्ति (Life Force) अथवा ओजस्वी ऊर्जा (Vital energy) हमारे चारों ओर सर्वत्र विद्यमान है। यह व्यापक है, वास्तव में हम सब इसके महासागर में हैं। इस सिद्धान्त से, उपचारक (healer) आसपास से जीवन शक्ति की प्राण–ऊर्जा ले सकता है और रोगी को बगैर अपने को थकाये हुए दे सकता है।

३. रोग–ग्रस्त ऊर्जा का सिद्धान्त– **Principle of Diseased Energy**

रोग न सिर्फ भौतिक रूप में विद्यमान होता है, बल्कि ऊर्जा के रूप में भी होता है। ऊर्जा के रूप में रोग, रोग–ग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ (bioplasmic matter) कहलाती है। दिव्य दर्शन से देखा गया है कि वह रोगग्रस्त ऊर्जा साधारणतः भूरी सी या अन्धकार पूर्ण होती है।

४. प्रेषण का सिद्धान्त– **Principle of Transmittability**

जीवन शक्ति या ओजस्वी ऊर्जा को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या वस्तु को अथवा किसी एक वस्तु से दूसरी वस्तु या व्यक्ति को प्रेषण की जा सकती है।

५. संक्रमण का सिद्धान्त– **Principle of contamination**

रोग–ग्रस्त ऊर्जा प्रेषित की जा सकती है। उसको एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति या उपचारक को भेजी जा सकती है। किसी व्यक्ति की रोग ग्रस्त ऊर्जा दूसरे व्यक्ति, वस्तु, पशु अथवा/और पौधे को संक्रमित कर सकती है।

इसलिए इस संक्रमण से बचने के लिए, यह अति आवश्यक है कि उपचारक किसी रोगी की रोग-ग्रस्त ऊर्जा की सफाई करते समय और उसका ऊर्जन (energisation) करते समय अपने हाथों को झटकते रहे तथा उपचार के पश्चात् अपने हाथों एवं बाहों को अच्छी तरह धो ले।

६. नियंत्रण का सिद्धान्त– **Principle of Controllability**

जीवनशक्ति (प्राण ऊर्जा) एवम् रोगग्रस्त ऊर्जा को इच्छा शक्ति (will power) अथवा मानसिक भावना (mind-intent) द्वारा नियंत्रित तथा निर्देशित (control and direct) किया जा सकता है।

७. सफाई और ऊर्जन का सिद्धान्त-- Principle of Cleansing and Energising

उपचार करने में मात्र प्राण ऊर्जा देना पर्याप्त नहीं है, रोगग्रस्त ऊर्जा को हटाना भी आवश्यक है। रोग ग्रस्त ऊर्जा को हटाना सफाई (Cleansing) कहलाती है। किसी रोगी या वस्तु को प्राण ऊर्जा देना ऊर्जन (Energising) कहलाता है। उपचार की गति को सफाई और ऊर्जन के सिद्धान्त को लागू करके बढ़ायी जा सकती है।

८. मौलिक प्रक्रिया का सिद्धान्त-- Principle of Radical Reaction

यदि रोग ग्रस्त ऊर्जा को बगैर हटाये हुए ऊर्जन किया जाता है, तो एक ऐसी विषम स्थिति आ सकती है जिसमें अस्थायी तौर पर रोगी की हालत बिगड़ जाती है। इसको मौलिक प्रतिक्रिया कहते हैं। अच्छी प्रकार से सफाई करने पर इससे बचा जा सकता है अथवा कम किया जा सकता है।

९. ग्रहण करने का सिद्धान्त-- Principle of Receptivity

प्रेषित की गयी (projected) प्राण ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए रोगी को ग्रहणशील (receptive) अथवा कम से कम तटस्थ (neutral) होना चाहिए। Relax (ढीला होना, तनाव कम होना, आराम करना) करने से भी ग्रहणशीलता का स्तर बढ़ता है। बगैर ग्रहणशीलता के प्रेषित की गयी ऊर्जा को ग्रहण एवम् अवशोषण (सोखा) नहीं किया जा सकता अथवा बहुत ही कम ऊर्जा अवशोषित हो पाएगी। रोगी के ग्रहणशील न होने के कारण उसके इस प्रकार के उपचार के प्रति गलत धारणा का होना अथवा उपचारक के प्रति नापसन्दगी अथवा ठीक न होने की भावना अथवा किसी के भी प्रति ग्रहणशीलता का न होना हो सकता है।

१०. स्थिरीकरण का सिद्धान्त-- Principle of stabilizing

प्रेषित की गयी प्राण ऊर्जा के रिसने (leak out) की प्रवृत्ति होती है, अगर उसका स्थिरीकरण न किया गया हो तो। स्थिरीकरण करने की विधि आगे भाग ५ के अध्याय १ के अन्तर्गत क्रम (ख) (११) में दी गयी है। यदि स्थिरीकरण न किया जाए, तो ऊर्जा के रिस जाने के फलस्वरूप रोग के लक्षण पुनः उत्पन्न हो जाते हैं।

११. मुक्त करने का सिद्धान्त– Principle of Releasing

प्राण शक्ति उपचार के दौरान एक वायवी डोर (etheric link) स्वयं ही उपचारक और रोगी के बीच में बन जाती है। उपचार होने के लिए, यह आवश्यक है कि उपचार करने के पश्चात् प्रेषित प्राण ऊर्जा को उपचारक अपने से मुक्त कर दे। यह तभी सम्भव होता है, जब इस वायवी डोर को काट दिया जाए और उपचारक रोगी के प्रति तटस्थ हो जाए। इसकी विधि आगे भाग ५ के अध्याय १ के अन्तर्गत क्रम (ख) (१२) में दी गयी है। यदि यह वायवी डोर न काटी जाए, तो उपचारक के दूर चले जाने के बाद भी रोगी की रोग–ग्रस्त ऊर्जा उपचारक को संक्रमित कर सकती है। इसी प्रकार उपचारक यदि रोगी के प्रति तटस्थ नहीं होता है, तो यह वायवी डोर काटने के बावजूद, पुनः जुड़ जाती है। इनसे प्रतिकूल प्रभाव न केवल उपचारक पर पड़ता है बल्कि रोगी के उपचार में भी अवरोध हो सकता है। ये दोनों के लिए हानिकारक है।

१२. समन्वयता का सिद्धान्त– Principle of Correspondence

जो प्राण ऊर्जा अथवा वायवी शरीर को प्रभावित करती है, उसके भौतिक शरीर को भी प्रभावित करने की प्रवृत्ति रहती है। जब ऊर्जा शरीर का उपचार किया जाता है, तो भौतिक शरीर का भी उपचार हो जाता है।

१३. अन्तर्सम्बन्धता का सिद्धान्त– Principle of Interconnectedness

रोगी के शरीर और उपचारक के शरीर दोनों के पृथ्वी के ऊर्जा शरीर (earth's energy body) के अंश होने के कारण, परस्पर अन्तर्सम्बन्ध होता है। अधिक गूढ़ स्तर पर देखा जाए तो इसका यह मतलब निकलता है कि हम सब सौर्य मण्डल (solar system) के भाग हैं। समस्त ब्रह्माण्ड (cosmos) में हम सब अन्तर्सम्बन्धित है। इस अन्तर्सम्बन्धता का सिद्धान्त (एकता) oneness भी कहलाता है।

१४. निर्देशिता का सिद्धान्त– Principle of Directability

जीवन शक्ति (प्राण ऊर्जा) को निर्देशित किया जा सकता है। इस सिद्धान्तानुसार यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां आपका ध्यान (attention) केन्द्रित (focus) किया जाये, प्राण ऊर्जा विचारों की अनुगामी हो जाती है। दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार इसी निर्देशता के एवम् अन्तर्सम्बन्धता के सिद्धान्तों पर आधारित है।

'मृत' घोषित होने के बाद, कभी-कभी 'पुनर्जीवित" हो जाना

कभी-कभी यह सुना जाता है कि अमुक व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात जब उसका दाह संस्कार किया जाने वाला था, तो वह पुनर्जीवित हो गया। ऐसा सुना जाता है कि परम पूज्य आचार्य श्री १०८ आदि सागर जी के शरीर से स्पर्शित वायु द्वारा एक मृत व्यक्ति जो श्मसान दाह संस्कार हेतु ले जाया गया था, पुनर्जीवित हो उठा। विचारणीय है कि ऐसा क्यों कर सम्भव है? मेरी तुच्छ बुद्धि में आया है कि ऐसा भौतिक शरीर (औदारिक शरीर) के मृतप्रायः होने की दशा होने पर कदाचित् कुछ समय तक वायवी ऊर्जा शरीर (अथवा तैजस शरीर) के जीवित बने रहने का कारण यह सम्भव हो सकता है। भाग ५ में वर्णित ऊर्जा शरीर के उपचार के प्रसंग में यह बताया गया है कि इस उपचार के तुरन्त अथवा कुछ समय बाद भौतिक शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार अथवा भौतिक शरीर के उपचार के तुरन्त या कुछ समय बाद ऊर्जा शरीर पर प्रभाव पड़ता है। शायद इसी प्रकार भौतिक शरीर पर की प्रतिभासित मृत्यु के तुरन्त या कुछ समय बाद वायवी (ऊर्जा) शरीर की मृत्यु होती होगी। शास्त्रानुसार किसी जीव की मृत्यु के तुरन्त पश्चात एक समय, दो समय अथवा अधिकतम तीन समय के समय के अन्तर्गत विग्रहप्राप्ति में रहकर, जीव दूसरी गति या उसी गति में जन्म ले लेता है और उसका फिर अपने पिछले जन्म के शरीर में नये जन्म से दुबारा लौटकर आना सम्भव नहीं है।

क्या पाठकगण एवम् विद्वज्जन इस पर विचार, चिन्तन एवं खोज करेंगे?

सन्दर्भ

१) मंगल मंत्र णमोकार– एक अनुचिंतन– लेखक डा० नेमिचन्द ज्योतिषाचार्य

(२) सत्यार्थ प्रकाश पत्रिका– सम्पादक पं० कैलाश चन्द्र जैन, चौक, लखनऊ

(३) मैं सिखाने नहीं, जगाने आया हूं– मुनि श्री १०८ तरुण सागर जी

(४) प्राणशक्ति उपचार– प्राचीन विज्ञान और कला– लेखक श्री चोआ कोक सुई

(५) The Ancient Science & Art of Pranic Healing by Sri Choa Kok Sui

(६) Advanced Pranic Healing by Sri Choa Kok Sui

(७) Pranic Psychotherapy by Sri Choa Kok Sui

(८) Anatomy & Physiology for Nurses by Evelyn Pearce

(९) उन्नतशील प्राणशक्ति उपचार के शिक्षक श्री क्लिफ़ सल्दान्हा (Sri Cliff Saldanha), चेन्नई द्वारा प्रस्तुतकर्ता को प्रारम्भिक प्राण–उपचार, उन्नतिशील प्राण–उपचार एवम् प्राण मनोरोग उपचार का प्रशिक्षण।

भाग – ५

प्राण ऊर्जा के उपयोग

PART –V

APPLICATIONS OF THE PRANIC ENERGY

. . . एक लय में ली गयी साँस और विचारों का नियंत्रण करके आप समुचित मात्रा में प्राणशक्ति (ओजस्वी ऊर्जा) को ग्रहण कर सकते हैं या सोख सकते हैं और आप उसे दूसरे आदमी के शरीर में भी भेज सकते हैं। उसके शरीर के कमजोर भागों या अंगों को उत्तेजित करके बीमार तत्त्वों को बाहर निकालकर स्वास्थ्य प्रदान कर सकते हैं।

—योगी रामचरक

मनस्‌उपचार विज्ञान से उद्धृत

विषयों की आशा नहीं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निश-दिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुःख समूह को हरते हैं।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।

—मेरी भावना

गुरु किसे कहते हैं ?

गुरु शब्द का साधारण अर्थ है जो अन्धकार की ओर से प्रकाश की ओर लाये। गुरु शब्द की निरुक्ति में कहा है कि **"गु"** शब्द अन्धकारपरक है और **"रु"** शब्द उसका निवर्तक है। इस प्रकार अज्ञानान्धकार का निवारण करने से ही **"गुरु"** शब्द की साभिप्राय निष्पत्ति होती है। यही बात इस श्लोक में कही है :

"गु" शब्दस्त्वन्धकारे च "रु" शब्दस्तन्निवर्तक :।
अन्धकारविनाशित्वाद् "गुरु" रित्यभिधीयते ।।

जो संसाररूपी विकट वन में सम्यक्त्वरूपी आँखों से रहित भोले प्राणियों को सम्यग्ज्ञानचक्षु प्रदान कर मुक्तिपथ की ओर प्रेरित करता है, वही सच्चा गुरु है। गुरु सर्वप्रथम अपने अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट कर देता है, और संसार-शरीर-भोगों से विरक्त होकर कर देता है शुरू चलना मुक्तिपथ की ओर।

वैय्यावृत्ति

परम उपकारी वीतरागी, दिगम्बर, महाज्ञानी, ध्यानी गुरुओं, अर्थात् आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधुओं के शरीर में किसी प्रकार की व्याधि हो जाये और भी किसी कारण उनको कष्ट हो रहा हो, उस समय पूर्ण उपचार करके उनके रोग व कष्ट को मिटाना ही हमारा परम कर्तव्य है। इसी प्रकार संयम मार्ग पर चलने वाले पूज्य आर्यिकाएं, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, प्रतिमाधारी श्रावकादि की भी सेवा करनी चाहिए। यह अन्तरङ्ग तप के अन्तर्गत आता है। दर्शन विशुद्धि भावना के साथ वैय्यावृत्य जो कि षोडशकारण भावना के अर्न्तगत है, जीव को तीर्थंकर जैसे सर्वोत्कृष्ट एवम् सर्वोच्च पद को भी प्रदान करने में समर्थ है।

वृद्ध माता-पिता, परिवारादि में किसी दीन दुखी की, किसी आपत्ति में, इन्द्रियाँ शिथिल होने पर उन सबकी भी सेवा अवश्य करनी चाहिए। यह भी एक प्रकार की वैय्यावृत्ति ही है।

यही वैय्यावृत्ति इस पुस्तक का प्रथम प्रधान लक्ष्य है और इस प्रकरण में इस पुस्तक का यह पञ्चम भाग विशेषतः महत्वपूर्ण है।

भाग – ५

प्राण ऊर्जा के उपयोग

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	प्राण ऊर्जा के इस भाग के पाठ्यक्रम की रूपरेखा एवं प्राणऊर्जा के उपयोग के सिद्धान्त– Course Outline for this part and Principles of Applications of Pranic Energy	५.१
२.	प्राण ऊर्जा के उपयोग Applications of Pranic Energy	५.११
३.	ध्यान –चिन्तन– Meditation	५.१३
४.	प्राण-ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार– Basic Pranic Healing	५.३५
५.	प्राण–ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार– Intermediate Pranic Healing	५.८६
६.	प्राण–ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–स्व प्राणशक्ति उपचार– Self Pranic Healing	५.१२६
७.	प्राण–ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार दूरस्थ (अनुपस्थित)– प्राणशक्ति उपचार– Distant Pranic Healing	५.१४१
८.	रंगीन प्राणशक्ति ऊर्जा– Coloured Pranic Energy	५.१४७
९.	ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–सामान्य– General Applications	५.१७६
१०.	ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–प्रतिरक्षात्मक तंत्र– Immunity and defense System	५.२१३

११. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– आँख, कान और गले की खराबियां– Disorders of the Eyes, Ears and Throat ५.२२२

१२. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– उन्नत तकनीक तथा रंगीन प्राण ऊर्जा द्वारा उपचार–त्वचा की खराबियां– Skin Disorders ५.२३२

१३. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन प्राण ऊर्जा उपचार– हृदय तथा रुधिराभिसरण तंत्र– Heart and Circulating Ailments ५.२३७

१४. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन प्राण ऊर्जा उपचार– श्वसन तंत्र के रोग– Respirating Ailments ५.२५२

१५. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–पाचनतंत्र के रोग–Gastro-intestinal Ailments ५.२५६

१६. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–उत्सर्जन तंत्र के रोग–Urinary Ailments ५.२६६

१७. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–जननांगों के रोग– Reproductive Ailments ५.२७६

१८. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों के रोग–Endocrine Ailments ५.२८६

१९. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–अस्थि तथा मांसपेशियों के तंत्रों की खराबियां– Skeleton and Muscular Disorders ५.२९१

२०. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–रक्त की खराबियां– Blood Disorders ५.३०४

२१. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र की खराबियां– Disorders of Brain and Nervous System ५.३११

२२. ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–गिल्टी/गांठ (ट्यूमर) तथा कैंसर–
Tumours and Cancers ५.३१६

२३. प्राण ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार–सामान्य– Pranic Psychotherapy–General (Treatment of Psycho Diseases) ५.३३७

२४. ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार– उदाहरण–
Pranic Psychotherapy- Examples ५.३६३

२५. पूरक उपचार– निदेशात्मक उपचार– Supplementary Healing–Instructive Healing ५.३६८

२६. प्रार्थना द्वारा उपचार– Healing by Prayer ५.४०८

२७. प्राणिक लेसर उपचार– Pranic Laser Therapy ५.४१५

२८. रत्न अथवा पारदर्शी पत्थर द्वारा प्राणशक्ति उपचार–सामान्य
Pranic Crystal (क्रिस्टल) Healing- General ५.४२०

२९. रत्नों का स्वच्छीकरण, ऊर्जन एवम् पवित्रीकरण–
Cleansing, Energizing and Consecration of Crystals ५.४४५

३०. रत्नों द्वारा प्राणशक्ति उपचार–नियम और प्रणाली–
Pranic Crystal Healing ५.४६२

३१. रत्नों का प्राणशक्ति उपचार में उपयोग–उदाहरण–
Pranic Crystal Healing –Examples ५.४९९

३२. जिन्सैंग– Ginseng ५.५१३

३३. दिव्य उपचार– Divine Healing ५.५१८

३४. बेहतर स्वास्थ्य के लिए मार्गदर्शन तथा निवारक चिकित्सा– Guide to better health and Preventive Healing ५.५३३

३५. प्राण ऊर्जा के प्रसंग में अर्हत ध्यान–
Arhatic Meditation in the context of Pranic Energy ५.५४१

३६. प्राण ऊर्जा के अन्य उपयोग (अध्यात्म के अतिरिक्त)–
Other Applications of Pranic Energy (other than Spirituality) ५.५४४

३७. प्राण–ऊर्जा क्षेत्र में खोज व अनुसंधान–
Discovery and Research in the field of Pranic Energy ५.५५१

अध्याय १, २ व ३

प्राणशक्ति उपचार
के
पाठ्यक्रम, सिद्धान्त व नियम
एवं
ध्यान चिन्तन

Chapter I, II and III

Course Outline,
Basic Concepts and Princples of
Pranic Healing and
Meditation

इस भाग के पाठ्यक्रम की रूपरेखा एवम् प्राणऊर्जा के उपयोग के सिद्धान्त

Course outline for this Part and Principles of Applications of Pranic Energy

(क) इस भाग के पाठ्यक्रम की रूपरेखा– Course outline for this part

प्राण शक्ति उपचार के विभिन्न स्तर हैं जो सरल से लेकर जटिल अवधारणा और सुगम से कठिन पद्धति के अनुसार विभाजित हैं। इनके पाठ्यक्रम की रूपरेखा निम्नवत है:

क्रम	विषय	योग्यता	सन्दर्भ अध्याय
१.	प्राण ऊर्जा के उपयोग के सिद्धान्त, उपयोग और ध्यान चिन्तन	अध्याय ४ के क्रम २० में वर्णित	१,२,३
२.	प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार– (अभ्यार्थी किस प्रकार सीखे– यह अध्याय ४ के क्रम २१ में वर्णित है।)		४
३.	माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार	क्रम २ का लगभग दो माह का नियमित अभ्यास	५
४.	**स्व–प्राणशक्ति उपचार**	क्रम २ का लगभग दो माह का एवम् क्रम ३ का लगभग एक माह का नियमित अभ्यास	६
५.	दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार– इसके सीखने की विधि अध्याय ७ में दी है।	क्रम ३ का लगभग दो माह का नियमित अभ्यास	७
६.	उन्नत तकनीक एवम् रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार	–तदैव–	८ से २२ तक

क्रम	विषय	योग्यता	सन्दर्भ अध्याय
७.	प्राण ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार	अध्याय २३ के क्रम १ में वर्णित	२३, २४
८.	निदेशात्मक उपचार	क्रम ६ में दक्षता	२५
६.	प्रार्थना द्वारा उपचार	अध्याय २६ के क्रम ४ में वर्णित	२६
१०.	रत्नों द्वारा प्राणशक्ति उपचार	अध्याय ३० के क्रम २ में वर्णित	२८ से ३१ तक
११.	जिन्सैंग– इसका उपयोग पूरक उपचार के रूप में करें		३२
१२.	दिव्य उपचार	अध्याय ३३ के क्रम २ में वर्णित	३३
१३.	बेहतर स्वास्थ्य के लिए मार्ग दर्शन		३४
१४.	ऊर्जा के अन्य उपयोग (अध्यात्म के अतिरिक्त)	क्रम ६ व ७ में वर्णित उपचार की अर्धदक्षता	३६
१५.	प्राण ऊर्जा क्षेत्र में खोज व अनुसंधान	सभी उपचारों में अर्ध–दक्षता / दक्षता	३७

(ख) प्राण ऊर्जा उपचार में उपयोग के सिद्धान्त– Principles of Application of Pranic Energy

(१) प्राण ऊर्जा के स्वयमेव प्रवाह का वर्णन भाग ४ में दिया है। ऊर्जा विचारों के पीछे चलती है। इस नियम के तहत उपयोगकर्ता इस ऊर्जा का प्रवाह अपनी इच्छाशक्ति द्वारा कर सकता हैं। यदि मन में व्यक्ति यह संकल्प करे कि मैं प्राण ऊर्जा को ग्रहण अथवा प्रेषित कर रहा हू, तो तदनुसार ऊर्जा का प्रवाह होता है। इस सिद्धान्त का उपयोग रोगी के ऊर्जा शरीर में से रोगी ऊर्जा को बाहर निकालने एवम् स्वस्थ ऊर्जा का प्रत्यारोपण करने के लिये किया जाता है।

(२) ऊर्जा शरीर का भौतिक शरीर से अत्यधिक घना सम्बन्ध है। इसलिये यदि रोगी के ऊर्जा शरीर की चिकित्सा कर दी जाए, तो रोगी स्वस्थ हो जाता है।

(३) ऊर्जा (पानी की तरह) उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर बहती है। अतएव यदि उपचारक के स्वयं के ऊर्जा शरीर का ऊर्जा स्तर रोगी के ऊर्जा शरीर के ऊर्जा स्तर से अधिक होगा, तभी वह प्राण ऊर्जा को रोगी के ऊर्जा शरीर में प्रेषण कर पायेगा। यदि कदाचित् उसका ऊर्जा स्तर निम्न हो ओर वह रोगी का उपचार करने का प्रयत्न करे, तो रोगी के ऊर्जा शरीर की रोग ग्रसित ऊर्जा का एक अंश वह स्वयं ग्रहण कर लेगा और वह स्वयं रोगी हो सकता है। इसके अतिरिक्त रोगी को कोई लाभ नहीं पहुंचेगा।

(४) उपचारक के निदेशित किये जाने पर प्राण ऊर्जा तदनुसार कार्य करती है। उदाहरण के तौर पर यदि उसको मूलाधार चक्र की सफाई अथवा शरीर के अस्थि तंत्र को शक्ति प्रदान करने के लिए निदेशित किया जाये, तो वह उसी प्रकार कार्य करेगी।

(५) विद्युतीय–बैंगनी (electric violet) प्राण ऊर्जा की एक अपनी स्वयं की चेतना (consciousness) होती है और यदि उससे निवेदन किया जाये तो उपचारादि सम्बन्धी कार्यों के विषय में स्वयं निर्णय लेकर तदनुसार कार्य कर सकती है।

(६) सामान्य परिस्थितियों में चक्र प्राणशक्ति ऊर्जा को तेज गति से बारी–बारी से खींचते और प्रक्षेपित करते हैं। अंदर खींची गयी और बार भेजी गयी या प्रक्षेपित की गयी प्राणशक्ति की मात्रा लगभग समान होती है। चक्र घड़ी उल्टी दिशा में १८० डिग्री और घड़ी की उल्टी दिशा में १८० डिग्री पर बारी–बारी से तेजी से घूमता है। जब हाथ चक्र मुख्य रूप से प्राणशक्ति प्रक्षेपित करता है तब घड़ी की उल्टी दिशा में ३६० डिग्री पर घूमता है और घड़ी की सीधी दिशा में केवल १८० डिग्री पर घूमता है। जब हाथ चक्र घड़ी की उल्टी दिशा में घूमता है तब वह प्राणशक्ति को प्रक्षेपित करता है और एक क्षण रुककर घड़ी की दिशा में घूमने लगता है और प्राणशक्ति को ग्रहण करता है। इसके बाद फिर एक क्षण के लिए रुक जाता है। यह पूरी प्रक्रिया दोहरायी जाती है। प्राणशक्ति का प्रक्षेपण और उसको प्राप्त करने की प्रक्रिया लगातार नहीं होती। ऐसा केवल दिखाई देता है क्योंकि चक्र बहुत ही तेज गति से और बारी–बारी से घड़ी की उल्टी और सीधी दिशा में घूमता है। इसीलिए प्राणशक्ति को लगातार प्रक्षेपित करने या लगातार ग्रहण करने का आभास होता है। प्रक्षेपित

की गयी प्राणशक्ति की तीव्रता में अंतर चक्र के घूमने की गति पर निर्भर होता है। यदि चक्र तेजी से घूमता है तो प्रक्षेपित प्राणशक्ति की तीव्रता अधिक होगी। यदि धीरे से घूमता है तो प्राणशक्ति की तीव्रता कम होगी। जब हाथ चक्र मुख्य रूप से प्राणशक्ति को सोखता या ग्रहण करता है तब वह घड़ी की दिशा में ३६० डिग्री पर तथा घड़ी की उल्टी दिशा में १८० डिग्री पर घूमता है। जब वह मुख्य रूप से प्राणशक्ति को प्रक्षेपित करता है तो यह क्रिया इसकी उल्टी होती है। प्राणशक्ति को ग्रहण करने या प्रक्षेपित करने की तीव्रता पर चक्र के घूमने के ढंग का कोई प्रभाव नहीं होता बल्कि चक्र की गति पर निर्भर होती है। इसकी गति जितनी तेज होगी उतनी ही तेजी से प्राणशक्ति प्रक्षेपित होगी या ग्रहण की जाएगी।

(७) उपचारक रोगी का उपचार करने में अपने हाथ का इस्तेमाल करता है। इसमें रोगी की रोग-ग्रसित ऊर्जा आने के कारण उपचारक को संक्रमित करने की संभावना रहती है। इससे बचने के लिए उपचारक को उपचार के दौरान लगातार अनेक बार अपने हाथों को झटकने तथा स्वस्थ प्राण ऊर्जा द्वारा साफ करते रहना चाहिए। इसके लिए एक हाथ को साफ करने के लिए, दूसरे हाथ को पहले हाथ के कंधे से लेकर किन्तु उससे लगभग दो इंच दूरी रखकर, अपने दूसरे हाथ में संकल्प शक्ति से स्वस्थ प्राण–शक्ति ऊर्जा को ग्रहण करते हुए, इस ऊर्जा से पहले हाथ की बांह से लेकर नीचे हाथ की उंगलियों के पोरों से भी लगभग छह इंच नीचे तक सफाई करना चाहिए तथा सफाई करने वाले हाथ को झटकते रहना चाहिए। इस क्रिया को सामान्यतः तीन दफा अथवा सन्तोष होने तक करना चाहिए। इसी प्रकार दूसरे हाथ की सफाई पहले हाथ से करें।

(८) प्राण-शक्ति हमारे चारों ओर सर्वत्र विद्यमान है, बल्कि यह कहना ज्यादा न्यायसंगत होगा कि हम प्राणशक्ति के महासागर में हैं। इस सिद्धान्त से उपचारक इससे प्राण शक्ति (बिना किसी सीमा के) लेकर बगैर अपनी प्राण ऊर्जा को खोये हुए अथवा बगैर अपने को थकाये हुए, रोगी को स्वस्थ प्राण ऊर्जा प्रक्षेपित कर सकता है।

(६) यदि रोगग्रस्त ऊर्जा को रोगी से बगैर निकाले हुए, ऊर्जन किया जाये, तो रोगी की हालत खराब हो सकती है। इसको मौलिक प्रतिक्रिया (radical reaction) कहते हैं। इसलिये पहले रोगग्रस्त ऊर्जा की अच्छी तरह सफाई करना चाहिए।

(१०) प्राणशक्ति उपचार के लिए यह आवश्यक है कि रोगी इस प्रकार के उपचार के लिए ग्रहणशील (receptive) हो, अथवा कम से कम तटस्थ हो। यदि रोगी अपना स्वयं का उपचार करवाना ही न चाहे, अथवा उपचारक के प्रति कुण्ठित हो, अथवा प्राणशक्ति उपचार को सन्देह की दृष्टि से देखे या इसको गलत समझे, अथवा किसी भी वस्तु आदि को ग्रहण करने के प्रति विरोध करता हो तो उस व्यक्ति का प्राणशक्ति उपचार संभव नहीं है।

(११) प्राणशक्ति ऊर्जा जो रोगी को प्रेषित की जाती है, उसकी वहाँ से रिसने की प्रवृत्ति होती है। इसको रोकने के लिए उसको वहाँ स्थिर करने (stabilize) की आवश्यकता होती है। इसके लिए घड़ी की दिशा में तीन बार हाथ को ऊर्जित किए हुए चक्र अथवा अंग की ओर करते हुए, स्थिर हो (stabilize) को तीन बार कहते हुए, घुमाना चाहिए तथा इसकी इच्छाशक्ति करनी चाहिए। ततपश्चात् प्रेषित की हुई ऊर्जा को सील (seal) करने के लिए हल्के नीले रंग की ऊर्जा (जिस रंग की ऊर्जा आगे अध्याय ८ के अन्तर्गत चित्र ५.०२ में हल्के नीले रंग से दर्शायी गयी है) द्वारा इच्छाशक्ति से चित्रित (paint) करते हुए करना चाहिए। यदि ऐसा न किया गया, तो प्रेषित की गयी ऊर्जा के रिसाव (leakage) का भय बना रहता है।

(क) उक्त ऊर्जा के स्थिरीकरण की प्रक्रिया या तो उपचार के अन्त में सभी ऊर्जित किये हुए अंगों/चक्रों पर करना चाहिए अथवा उपचार के अन्तराल में जैसे-जैसे अंग/चक्र ऊर्जित किये जायें, वैसे-वैसे प्रेषित की गई ऊर्जा का स्थिरीकरण करते रहिए। स्थिरीकरण न करने की दशा में, तीस मिनट बाद ऊर्जा के रिस जाने की सम्भावना हो जाती है।

(ख) उपचार के दौरान, यदि किसी अंग/चक्र का ऊर्जन करने के बाद, पुनः दुबारा या अनेक बार ऊर्जन करना हो, अथवा स्थानीय झाड़ बुहार करना हो, अथवा

दोनों करना हो, तो अन्तिम विधि, अर्थात अन्त में किये गये ऊर्जन अथवा झाड़ बुहार के पश्चात ही प्रेषित ऊर्जा का स्थिरीकरण करें।

(ग) उपचार के दौरान यदि कभी स्थिरीकरण करने के पश्चात, उस अंग /चक्र का पुनः सफाई या ऊर्जन करना हो, तो अपनी इच्छाशक्ति से की गई सील को खोल दें (unseal) कर दें एवम् स्थिरीकरण को अस्थिरीकरण (destabilization) कर दें। उपचार के अन्त में उक्त विधि द्वारा पुनः ऊर्जा का स्थिरीकरण तथा सील करें।

(घ) स्थिरीकरण सदैव ऊर्जन के पश्चात ही किया जाता है। यदि किसी अंग /चक्र की मात्र सफाई ही की गयी हो और उसका ऊर्जन नहीं किया गया हो, तो उसका स्थिरीकरण करने की आवश्यकता नहीं होती।

(ड.) हथेली का चक्र (H) तथा पैर के तलुवे का चक्र (S) के अन्दर प्रेषित गयी ऊर्जा का कभी स्थिरीकरण तथा सील नहीं किया जाता, क्योंकि ये ताजी प्राणशक्ति के शरीर के अन्दर प्रवेश करने के बिन्दु (द्वार) होते हैं। इनका स्थिरीकरण करने से ताजी प्राणशक्ति के प्रवेश के अवरोध हो जाने के कारण शरीर कमजोर हो सकता है।

(१२) उपचार करते समय रोगी और उपचारक के मध्य एक वायवी डोर (etheric link) (प्राणशक्ति की कड़ी) बन जाती है। यदि उपचार के बाद इसको विच्छेद न किया जाये तो यह कड़ी बनी रहती है, चाहे उपचारक दूर ही क्यों न चला जाये तथा इस कड़ी के माध्यम से रोगी की रोगग्रस्त ऊर्जा उपचारक के शरीर में प्रवेश कर जाती है जो उसको प्रभावित करती है। इसको रोकने के लिए उक्त कड़ी को तोड़ना आवश्यक होता है। यह उन्नतशील उपचारक अपनी संकल्प शक्ति द्वारा अथवा अन्य उपचारक द्वारा काल्पनिक तलवार या काल्पनिक कैंची के द्वारा इस कड़ी को काटकर किया जाता है। इसके लिए अपनी इच्छा शक्ति द्वारा अपने हाथ को तलवार मानकर हाथ को कड़ी के ऊपर तलवार की तरह चलाकर यह कड़ी काटी जाती है। इसी प्रकार की क्रिया कैंची द्वारा कड़ी काटने में की जा सकती है।

यह आवश्यक है कि उपचारक उपचार के दौरान रोगी से किसी भी प्रकार का भावनात्मक सम्बन्ध न रखे, चाहे वह उसका वह अपना बच्चा, पत्नी,

कुटुम्बी अथवा मित्र ही क्यों न हो। इस भावनात्मक सम्बन्ध के कारण उक्त वर्णित दोनों के मध्य प्राणशक्ति की कड़ी बनी रहती है। इसके कारण रोगी का उपचार तेजी से होने के बदले धीरे-धीरे होता है, क्योंकि इस कड़ी के कारण रोगी को प्रेषित ऊर्जा में वापस उपचारक के पास लौट आने के गुण होते हैं। साथ ही इलाज के तुरंत बाद ही उपचारक रोगी के बारे में कुछ न सोचे क्योंकि ऐसा करने से वायवीय सम्बन्ध फिर से जुड़ सकते हैं। बेहतर होगा कि वह रोगी के पास से हट जाये या रोगी को अपने पास से हटा दे।

(१३) रोग ग्रस्त प्राण ऊर्जा जो उपचारक रोगी के शरीर से निकालता है, वातावरण में ही रहती है तथा हवा के हलन-चलन से नहीं जाती। इसके सम्पर्क में जो व्यक्ति आता है, वह रोगग्रस्त हो सकता है। इसके लिये उपचारक द्वारा इस ऊर्जा को नष्ट करना आवश्यक होता है। यह मात्र निम्न विधियों द्वारा नष्ट हो सकती है:-

(क) इच्छा शक्ति द्वारा- यह केवल योगियों, आध्यात्मिक संतों अथवा अति उन्नतशील उपचारकों द्वारा ही हो सकती है, न कि साधारण व्यक्तियों द्वारा।

(ख) नमक के पानी के घोल में- इसके लिये किसी प्लास्टिक या रबड़ के बर्तन जो विद्युत का कुचालक हो, में लगभग १.५ लीटर पानी में तीन चार मुट्ठी नमक के अच्छी तरह घुल जाने पर होता है। इसके लिये उपचारक को अपने इच्छा शक्ति द्वारा हाथ को उपचार के दौरान उस बर्तन की ओर झटककर रोगग्रस्त ऊर्जा को बर्तन की ओर फेंकते हुए, उसको नमक के पानी के घोल में जाने एवं नष्ट होने के आदेश देना होता है। दिव्य दर्शन से देखा गया है कि नमक गंदे जीव द्रव्य पदार्थ के टुकड़े कर देता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त नमक का घोल गंदे जीवद्रव्य फेंकने के फलस्वरूप विषैला होता जाता है। दस रोगियों के उपचार के बाद अथवा प्रथम रोगी के उपचार के ७२ घंटे बाद इस नमक के घोल को फेंक देना चाहिये। यदि इसको किसी नाली आदि अथवा पेड़ों-पौधों में डाला जाये तो विषैले प्रभाव से वहाँ जीव जन्तु को हानि पहुंचती है

अथवा वे मर जाते हैं और पेड मुर्झा सकते हैं। इस कारण इस गंदे नमक के घोल को फ्लश (flush) करना ही श्रेयस्कर है।

(ग) कई सुगन्धित अगरबत्तियों को जलाकर— इसकी विधि का वर्णन आगे अध्याय २६ के क्रम १ (२) में किया गया है।

(घ) हरे रंग की आग का गोला बनाकर— इसके लिए पहले हाथों को संवेदनशील (sensitize) करके, फिर वातावरण से प्राण-शक्ति ऊर्जा एक हाथ से ग्रहण करके, दूसरे हाथ से जमीन की ओर प्रेषण करते हुए उसको यह निवेदन करें कि वह एक हरे रंग की आग का गोला जिसका व्यास तीन फुट से ज्यादा न हो, बनाये। इस निवेदन को तीन बार दोहरायें। चूंकि भू-ऊर्जा भूमि से लगभग डेढ़ फीट रहती है, इसलिए तीन फीट से कम का गोला के जांच में भू-ऊर्जा द्वारा भ्रम उत्पन्न हो सकता है। अधिक व्यास का गोला अव्यवहारिक होगा। फिर जांच द्वारा यह सुनिश्चित करें कि उक्त गोला बन गया है। जांच करने तथा प्राणशक्ति को हाथ द्वारा ग्रहण व प्रेषण करने की विधि आगे अध्याय ४ में दी गयी है। गोला बन जाने के पश्चात् उपचार के दौरान, उपचारक को अपनी इच्छा शक्ति द्वारा रोगी की रोगग्रस्त ऊर्जा को उस आग के गोले की ओर हाथ झटकते हुए फैंकना चाहिए तथा उसको यह आदेश देना चाहिए कि वह उसमें जाकर नष्ट हो जाये।

उपचार करने के पश्चात, वह फिर से वातावरण से उसी प्रकार प्राणशक्ति ऊर्जा को ग्रहण करके, उसको आग का गोला बनाने के लिए धन्यवाद दे तथा उसको निवेदन करे कि अब वह उसको नष्ट कर दे। इसको भी तीन बार उच्चारण करें। फिर जाँच द्वारा यह सुनिश्चित कर ले कि आग का गोला गायब हो गया है। इस प्रकार के उच्चारण वचन द्वारा अथवा मन में बोलते हुए किया जा सकता है।

(ङ) सत्तर प्रतिशत ईथाइल या आइसोप्रोपाइल एल्कोहल (Ethyl or Isopropyl Alcohol) में— यह एक प्रकार की शराब होने के कारण, इसकी अनुशंसा नहीं की जाती है। यह काफी मंहगी भी होती है।

(१४) उपचारक द्वारा रोगी को प्रेषण की हुई प्राण-शक्ति ऊर्जा रोगी के ऊर्जा शरीर अथवा ऊर्जा चक्र में सोखने के लिए सामान्यतः १२ घंटे तक का समय लग सकता है और गंभीर रोगों में २४ घंटे तक समय लग सकता है। इसलिए इतने समय तक रोगी को नहीं नहाना चाहिए, अन्यथा प्रेषित प्राण-ऊर्जा एवं उपचार का प्रभाव कम या नष्ट हो सकता है।

(१५) चमड़ा, रेशमी, हिंसा द्वारा निर्मित पदार्थ एवम् रबड़ प्राण ऊर्जा के कुचालक होते हैं। अतएव उपचार करते समय इनके निर्मित कपड़े अथवा इनके निर्मित पदार्थ (बटुआ, बैल्ट, जूते आदि) रोगी के पास से हटा देना चाहिए।

(१६) उपचारक की प्राण ऊर्जा के परिष्करण-स्तर (degree of refinement) एवम् गुणवत्ता का उपचार से सीधा सम्बन्ध है। यदि वह स्थूल अथवा उच्च गुणवत्ता की नहीं है, तो वह रोगी के शरीर में देर से घुसती है। इसके कारण प्राण ऊर्जा की अल्प मात्रा होने पर भी, रोगी के शरीर पर घनापन (congestion) हो सकता है जिसके कारण मौलिक प्रतिक्रिया (radical reaction) हो सकती है। यदि प्राण ऊर्जा सूक्ष्म है याने अधिक गुणवत्ता की है, तो वह रोगी के शरीर में आसानी से और भीतर गहराई तक घुसती (penetrate) है। यह ऊर्जा काफी अधिक मात्रा में बगैर रोगी के मौलिक प्रतिक्रिया के हुए प्रेषित की जा सकती है और इससे उपचार शीघ्र होता है। इन दोनों के ऊर्जा के उदाहरण गाढ़े तेल एवम् पतले तेल से दिए जा सकते हैं, जैसे गाढ़ा तेल शरीर में आसानी से नहीं घुसता, पतला तेल शीघ्र ही और अधिक मात्रा में घुस जाता है।

किसी व्यक्ति के प्राण-ऊर्जा की गुणवत्ता मुख्यतः उसके चरित्र एवम् अध्यात्म स्तर पर निर्भर करती हैं इसके लिए उसको-

(१) पूर्णतः शाकाहारी होना चाहिए।

(२) मिथ्यात्व, हिंसादि पापों, सप्त व्यसनों, धूम्रपान, नशीले पदार्थों, कषायों जिनका विस्तृत वर्णन भाग १ में दिया है, से बचना चाहिए।

(३) प्राणशक्ति उपचार निरन्तर करते रहना चाहिए, ताकि अभ्यास बना रहे एवम् अनभव व दक्षता बढ़ती रहे।

(४) द्वि-हृदय पर ध्यान-चिन्तन, जिसका वर्णन आगे अध्याय ३ में दिया है, प्रतिदिन करना चाहिए। यदि वह जैन शास्त्रों में वर्णित पिण्डस्थ ध्यान आदि करता है, तो शायद इसकी आवश्यकता न पड़े।

(५) निरन्तर धर्म भावना एवम् पंच परमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए।

(१७) **नकारात्मक कर्म–** कुछ गम्भीर बीमारियां पिछले जन्म/जन्मों और वर्तमान जीवन में होने वाले नकारात्मक कर्मों, विचारों और भावनाओं के कारण होती हैं। प्राण–शक्ति उपचार प्राकृतिक नियमों के अन्तर्गत ही कार्यकारी हैं। इसलिए व्यक्ति के कर्मों के क्षयोपशम या उपशम होने पर जैसे चिकित्सा निमित्त का कारण बनकर आरोग्य करती है, उसी प्रकार प्राण–शक्ति उपचार की कार्यशैली है। हाँ, यदि रोग पिछले कर्मों के कारण हैं तो हम आप यह जानने की स्थिति में नहीं होते कि नकारात्मक कर्म पूरे तरह दूर हुए हैं या नहीं; इसीलिए रोगी का इलाज तो अवश्य होना चाहिये। यदि बीमारी किन्हीं नकारात्मक कर्मों से है तो उसे दूर नहीं किया जा सकता, चाहे आप रोगी का कितना ही इलाज करें और उसे रोग से छुटकारा नहीं मिल सकता। उपचारक रोगी के नकारात्मक कर्मों के फल पर किसी भी प्रकार से रुकावट नहीं डाल सकता, क्योंकि यह प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध होगा।

नकारात्मक कर्मों को सकारात्मक कार्यों द्वारा कुछ सीमा तक निष्क्रिय किया जा सकता है, उसके लिए रोगी को–

(क) अपने चारित्र को दृढ़ करते हुए, धार्मिक कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिए।

(ख) ऊपर वर्णित (१६) का पालन करना चाहिए।

(ग) क्षमा के नियम का प्रयोग करें। इसके लिए –

(१) उन सभी की सूची बनायें जो आपके शत्रु हैं और जिन्होंने आपको कष्ट दिया है।

(२) मन में यह सोचें कि आप उन सभी को क्षमा कर रहे हैं।

(३) मन ही मन उनको सुखी रहने, अच्छे स्वास्थ्य व समृद्धि का आशीर्वाद दें।

(४) मन में ही ईश्वर से दया व क्षमा करने की प्रार्थना करें।

(५) जब तक मन के अंदर में क्षमा के भाव नहीं आते, तब तक इस पूरी प्रक्रिया को बार–बार दोहराते रहें।

(घ) दया के नियम का प्रयोग करें। इसके लिए –

(१) पीड़ितों तथा अन्य जरूरतमंदों व्यक्तियों/पशुओं जो करुणा के पात्र हैं, की सहायता के लिए अपनी आय का एक निश्चित भाग दान करें।।

(२) जीव जंतुओं पर दया व करुणा भाव रखें।

(३) दूसरों को दुःखी करने एवम् निर्दयी होने से स्वयं को बचाएं।

(४) दूसरों के प्रति अपना व्यवहार मृदु रखें।

अध्याय – २

प्राण ऊर्जा के उपयोग

APPLICATIONS OF PRANIC ENERGY

प्राण ऊर्जा का उपयोग निम्न क्षेत्रों में किया जा सकता है:–

(१) रोगग्रसित व्यक्ति के शारीरिक रोगों का उपचार।

(२) रोगग्रसित व्यक्ति के मनोरोगों का उपचार।

(३) आन्तरिक अंङ्गों का शुद्धिकरण।

(४) सम्पूर्ण रक्त का शुद्धिकरण।

(५) रोगी अथवा नीरोग व्यक्ति की प्रतिकार क्षमता को दृढ़ करना अथवा बढ़ाना।

(६) स्व–प्राण चिकित्सा (स्वयं के रोगों की चिकित्सा)।

(७) दूरस्थ प्राण चिकित्सा (दूर बैठे रोगी की चिकित्सा)।

(८) उपचार के निमित्त दवा, भोजन, तेल, मल्हम, पट्टी, पानी आदि को ऊर्जित करना जिससे स्वस्थ होने की गति बढ़ जाये।

(९) किसी कमरे/क्षेत्र को नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकार और नकारात्मक परजीवियों से स्वच्छ करना।

(१०) गर्भस्थ शिशु के चरित्र का निर्माण एवम् सुधार करना।

(११) किसी खिलाड़ी व्यक्ति की ऊर्जा को अस्थायी तौर पर बढ़ा देना, ताकि वह खेल के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन कर सके। इससे चिकित्सक जांच (medical test) में कोई अड़चन नहीं आती। वर्तमान में चोरी छुपे स्टीयरौइड्स (steroids) आदि प्रतिबन्धित दवाइयों द्वारा यह काम कुछ लोग करते हैं और पकड़े जाने पर खेल से लम्बे समय तक के लिए बहिष्कृत कर दिये जाते हैं और यदि वे कोई इनाम भी पाते हैं तो उनसे वह इनाम छीन लिया जाता है।

(१२) किसी हिंसात्मक व्यक्ति को अतिशीघ्र ही शान्त कर देना।

(१३) किसी की यात्रा को सुरक्षित करना।

(१४) रत्नों को उनके अन्दर की नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकार, नकारात्मक परजीवी, पिछले संस्कृति/मनोवैज्ञानिक छाप (previous psychic impressions) और पिछले प्रोग्रामों (previous programmes) से मुक्त करना एवम् उनकी शक्ति बढ़ाना।

(१५) आध्यात्मिक क्षेत्र में (इसकी चर्चा भाग ६ में की गयी है)।

ध्यान – चिंतन

MEDITATION

विषयानुक्रमणिका

अध्याय	विषय		पृष्ठ संख्या
क.	भूमिका		५.१४
ख.	धार्मिक स्थान		५.१४
ग.	द्वि–हृदय पर ध्यान-चिंतन		५.१४
१.	सामान्य		५.१५
२.	द्वि–हृदय पर ध्यान चिंतन की विधि		५.१७
	(क)	वायवी शरीर की सफाई	५.१७
	(ख)	ईश्वर के आशीर्वाद के लिये प्रार्थना	५.२१
	(ग)	हृदय चक्र को उत्तेजित करना	५.२३
	(घ)	ब्रह्म चक्र को उत्तेजित करना	५.२६
	(ड.)	हृदय चक्र और ब्रह्मचक्र से सम्मिलित आशीर्वाद	५.२७
	(च)	प्रकाशन या प्रदीपन प्राप्त करना	५.२८
	(छ)	अतिरिक्त ऊर्जा का त्याग	५.२८
	(ज)	धन्यवाद देना	५.३०
	(झ)	अतिरिक्त ऊर्जा की और अधिक निकासी	५.३०
३.	द्वि–हृदय पर ध्यान–चिन्तन के लाभ		५.३१
	(क)	सामान्य व्यक्ति तथा रोगी के लिए	५.३१
	(ख)	प्राणशक्ति उपचारक के लिए	५.३२
	(घ)	ध्यान मार्ग में प्रयाण– एक वैज्ञानिक विश्लेषण Moving into Meditation- A Scientific Analysis	५.३२

अध्याय – ३

ध्यान – चिंतन

MEDITATION

(क) भूमिका

ध्यान- चिंतन द्वारा ऋषिगण अपने आत्मा की उन्नति करते एवम् कर्मों को भस्म करते हैं। जहाँ इसके धार्मिक क्षेत्र में अनेक लाभ हैं, वहीं इसके द्वारा अनजाने में शरीर की अनेक व्याधियों से रक्षा भी हो जाती है एवम् शरीर के रोग एवम् मनोरोग स्वयमेव ही कुछ अंश तक ठीक हो जाते हैं। इस भाग में रोगों के उपचार के वर्णन में इसका कई जगह जिक्र आया है। ध्यान से ऊर्जा शरीर की एवम् आभा मण्डल की गुणवत्ता और शक्ति काफी बढ़ जाती है। इस अध्याय के (ख) भाग में धार्मिक ध्यान, (ग) भाग में वैकल्पिक रूप में द्वि–हृदय पर ध्यान–चिंतन और (घ) भाग में ध्यान–चिंतन का वैज्ञानिक विश्लेषण दिया है।

(ख) धार्मिक ध्यान

भाग १ के अध्याय ५ में इसका अथवा धर्मध्यान का वर्णन आया है। संस्थान विचय के अन्तर्गत पिण्डस्थ ध्यान की विधि भी बतायी गयी है। परमेष्ठी वाचक मंत्र अथवा पिण्डस्थ धर्म ध्यान के द्वारा, विधिपूर्वक कम से कम लगभग चालीस मिनट इस प्रकार ध्यान करें कि आपको अपनी भी सुध बुध न रहे और दिव्य अलौकिक आनन्द में मग्न हो जाएं। इस प्रकार का आनन्द आप परमेष्ठी के ध्यान या पिण्डस्थ धर्मध्यान की पांचवी तत्त्व धारणा में स्व–आत्मा के चिन्तन के समय प्राप्त कर सकते हैं। मन को किसी भी अन्य विषय में न भटकने दें।

(ग) द्वि–हृदय पर ध्यान चिंतन– Meditation on Twin Hearts

ध्यान का उद्देश्य ईश्वर से तारतम्यता होना चाहिए। याद रखिये कि परमात्मा की सत्ता आपके स्वयं के अन्दर है।

१. सामान्य

द्वि-हृदय पर ध्यान-चिंतन वह पद्धति है जिसमें ब्रह्माण्डीय चेतना या प्रदीपन पर ध्यान दिया जाता है। यह विश्व सेवा का एक रूप भी है क्योंकि सम्पूर्ण विश्व में प्रेम व दया के आशीर्वाद के कारण एक सीमा तक प्रसन्नता व समरसता लायी जा सकती है।

द्विहृदय का चिंतन उस नियम पर आधारित है कि जहाँ कुछ प्रमुख चक्र चेतना के एक विशेष स्तर तक पहुंचने के लिये प्रवेश द्वार का कार्य करते हैं। प्रदीपन या ब्रह्माण्डीय चेतना को प्राप्त करने के लिये ब्रह्म चक्र को समुचित रूप से उत्तेजित करना आवश्यक होता है। हृदय-चक्र भावनात्मक हृदय का केन्द्र होता है और ब्रह्मचक्र दैवी-हृदय का केन्द्र एवम् दिव्य ऊर्जा का स्रोत होता है। इस प्रकार हृदय -चक्र और ब्रह्म -चक्र दोनों को मिलाकर द्वि-हृदय कहते हैं।

जब ब्रह्म चक्र को समुचित रूप से उत्तेजित किया जाता है तो इसकी बारह आंतरिक पंखुड़ियां ऊपर की ओर सुनहरे कटोरे के रूप में खिलती हैं। जब चक्र बहुत अधिक उत्तेजित होता है तब सिर के चारों ओर आभामण्डल का विकास होता है। इसी कारण संतों के सिर के चारों ओर आभामंडल होता है। आध्यात्मिक विकास की अलग-अलग शक्ति होने के कारण आभामंडल की चमक और आकार भी अलग-अलग होते हैं। भगवान का प्रभामण्डल जो करोड़ों सूर्यों से भी अधिक प्रभावाला होता है, कदाचित् इसी सिद्धान्त पर आधारित रहा होगा और प्रतिमा जी के पीछे भामण्डल भी इसी प्रभा के प्रतीक के रूप में स्थापित होता होगा।

जब कोई व्यक्ति द्विहृदय पर ध्यान-चिंतन करता है तब दैवी ऊर्जा उसके शरीर में प्रवेश करती है और उसका शरीर दिव्य प्रकाश, प्रेम और शक्ति से भर जाता है। तब अभ्यासकर्ता इस दिव्य शक्ति का माध्यम बन जाता है। ताओवादी योग में इस दैवी शक्ति को "स्वर्ग की प्राणशक्ति" कहा जाता है, कबाला धर्म में इसे "प्रकाश स्तम्भ" कहा जाता है। यह वही प्रकाश स्तम्भ है जिसे दिव्यदर्शी देख पाते हैं। भारतीय योगी इसको आध्यात्मिक पुल या "अंतःकरण" कहते हैं। ईसाई लोग इसे "पवित्र आत्मा का अवतरण" मानते हैं। देखिये चित्र ५.०१। आध्यात्मिक ज्ञान के इच्छुक जब इस प्रकार का ध्यान चिंतन करते हैं तो वे कुछ समय के लिये अपने चारों ओर कोहरा या धुंधलका या कभी चकाचौंध करने वाला प्रकाश या अपने सिर के

क्षेत्र को धुंधलके प्रकाश से भरा हुआ महसूस कर सकते हैं। यह अनुभव संतों के लिए सामान्य सी बात है।

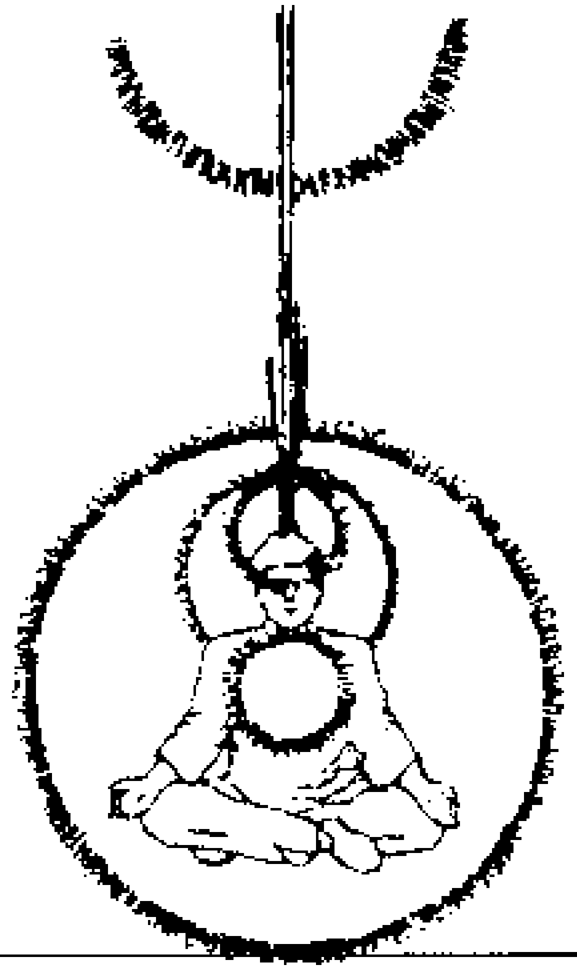

चित्र ५.०१ द्विहृदय पर चिंतन के समय आकाश से उतरती हुई दैवी ऊर्जा
ईसाई परंपरा में इसे पवित्र आत्मा का आगमन, ताओवादी योग में स्वर्ग की प्राणशक्ति या ऊर्जा का आगमन; कबालिक परंपरा में प्रकाश का स्तंभ; भारतीय योग में प्रकाश का आध्यात्मिक सेत या अंतःकरण कहा जाता है।

ब्रह्म चक्र को तभी समुचित रूप से उत्तेजित किया जा सकता है जब पहले हृदय चक्र को पूरी तरह उत्तेजित किया जाय। हृदय चक्र ब्रह्म चक्र की अनुकृति होता हैं। जब आप हृदय चक्र को देखते हैं तब वह ब्रह्म चक्र की तरह दिखाई देता है जिनकी बारह स्वर्णिम पंखुड़ियां होती हैं।

हृदय –चक्र ब्रह्म–चक्र का निचला संदेशवाहक होता है। ब्रह्म चक्र दैवी चमक और दैवी प्रेम अथवा अध्यात्म का केन्द्र होता है, जबकि हृदय चक्र उच्च भावनाओं का केन्द्र होता है जैसे सहानुभूति, प्रसन्नता, प्रेम, करुणा, दया आदि। इन दोनों चक्रों के उत्तेजित करने के कई तरीके हैं जैसे हठयोग, योग–श्वसन, मंत्र या शब्दों की शक्ति

और दृश्यीकरण। ये पद्धतियां यद्यपि प्रभावकारी हैं, किन्तु साधारणतः अधिक तेजी से कार्य नहीं करती हैं। द्विहृदय ध्यान चिंतन प्रभावशाली पद्धतियों में से एक है। इन चक्रों को अधिक प्रभावशाली और तेजी से कार्य करने के लिये प्रेम-दया के आधार पर ध्यान-चिंतन करें तथा पूरे विश्व को प्रेम-दया से आशीर्वाद दें। पूरे विश्व को प्रेम-दया से आशीर्वाद देने के लिये हृदय और ब्रह्म चक्र का प्रयोग करने पर वे आध्यात्मिक शक्तियों के माध्यम बनते हैं और इस प्रक्रिया में उत्तेजित हो जाते हैं। दूसरे को आशीर्वाद देने के फलस्वरूप आपको भी बदले में आशीर्वाद मिलेगा। दूसरों को कुछ देने से ही आपको कुछ प्रापत होगा। यही नियम है।

१८ वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को द्विहृदय पर ध्यान-चिंतन नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका शरीर अधिक मात्रा में सूक्ष्म ऊर्जा को जमा करने के योग्य नहीं होता है। इससे लम्बे समय बाद लकवा भी हो सकता है। हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, ग्लूकोमा से पीड़ित व्यक्ति भी इस ध्यान को नहीं करें क्योंकि इससे उनकी बीमारी और बढ़ सकती है। द्विहृदय पर ध्यान चिंतन करने से न केवल हृदय चक्र और ब्रह्म चक्र उत्तेजित होते हैं बल्कि दूसरे चक्र भी उत्तेजित हो जाते हैं। इससे अभ्यासकर्ता के नकारात्मक व सकारात्मक दोनों प्रकार के चरित्रगुण अधिक विकसित व उत्तेजित होंगे। इस कारण से जो व्यक्ति इस ध्यान का प्रतिदिन अभ्यास करते हैं, उनके लिए यह बहुत जरूरी है कि प्रतिदिन स्व-चिंतन द्वारा अथवा परमात्म-भक्ति द्वारा अपने मन की शुद्धता या चरित्र-निर्माण का भी अभ्यास करें। इस ध्यान की सम्पूर्ण विधि निम्न प्रकार है।

२. द्विहृदय पर ध्यान चिंतन की विधि

उपक्रम (क)- वायवी शरीर की सफाई

शारीरिक व्यायाम द्वारा वायवी शरीर की सफाई करें। वायवी शरीर की सफाई और ऊर्जन के लिए पांच-छह मिनट व्यायाम करें। व्यायाम से रोगग्रस्त हल्का भूरा पदार्थ या उपयोग की हुई प्राणशक्ति वायवी शरीर से बाहर हो जायेगी। शारीरिक कसरत से प्राणशक्ति का घनापन भी कम होगा क्योंकि द्विहृदय पर ध्यान चिंतन करने से वायवी शरीर में बहुत अधिक सूक्ष्म ऊर्जा पैदा होती है अथवा आती है। यदि बगैर वायवी शरीर की सफाई किये हुए, द्विहृदय पर ध्यान चिंतन किया जायेगा, तो हानि हो सकती है और मौलिक प्रतिक्रिया हो सकती है। अपेक्षित शारीरिक कसरतें निम्न हैं

जो इन्हीं क्रम में की जानी चाहिए। यह बन्द कमरे या अधिक अच्छा हो, खुले स्थान अथवा दोनों जगह की जा सकती हैं।

(१) सीधे खड़े होकर अपने दोनों पैरों में सुविधानुसार दूरी रखकर, अपने दोनों हाथों को कमर पर रखें। सामने की ओर देखते हुए अपने आँखों की पुतलियों को घड़ी की दिशा में तीन बार दीवाल पर या आकाश पर बड़े से बड़ा गोल दायरा बनाते हुए घुमाइये, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में इसी प्रकार तीन बार पुतलियाँ घुमाइयें। सावधानी रखें के केवल पुतलियां घूमना चाहिए, न कि आंख, सिर या गर्दन।

फिर उक्त प्रकार से तीन-तीन बार पुतलियों को क्रमशः घड़ी की दिशा तथा उल्टी दिशा में घुमायें। फिर तीन-तीन बार, फिर तीन-तीन बार। इस प्रकार कुल बारह बार-बारह दफा पुतलियाँ घड़ी की दिशा में तथा उल्टी दिशा में घूमेंगी। काफी अभ्यास हो जाने पर, एक ही क्रम में लगातार क्रमशः बारह दफा घड़ी की दिशा में व लगातार बारह दफा घड़ी की उल्टी दिशा में पुतलियां घुमायी जा सकती हैं।

(२) उक्त (१) में वर्णित स्थिति में खड़े रहते हुए, अपनी गर्दन को पूर्णरूपेण घड़ी की दिशा में तीन बार, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में तीन बार घुमायें। फिर उक्त क्रम (१) में वर्णन की तरह ही चार क्रमों में कुल बारह–बारह बार गर्दन क्रमशः घड़ी की दिशा में और घड़ी की उल्टी दिशा में घुमाये। काफी अभ्यास के पश्चात, यह भी लगातार बारह–बारह बार घड़ी की दिशा व घड़ी की उल्टी दिशा में एक ही क्रम में घुमायी जा सकती है।

(३) सीधे खड़े रहते हुए व अपने दोनों पैरों के बीच में सुविधानुसार दूरी रखते हुए, अपने दोनों हाथों को बारह बार लम्बवत स्तर (vertical plane) में घड़ी की दिशा में घुमायें, फिर बारह बार घड़ी की उल्टी दिशा में घुमायें।

(४) उक्त प्रकार खड़े रहते हुए तथा हाथों को सामने की ओर फैलाते हुए, सीधे हाथ की ओर अपनी कमर को जल्दी से घुमायें, फिर एक क्षण रुककर वापस आते हुए बांये ओर की ओर जल्दी से घुमाकर, फिर एक क्षण रुककर वापस आयें। इसी क्रम को कुल बारह–बारह बार करें।

(५) सीधे खड़े रहते हुए, पैरों की दूरी अपनी सुविधानुसार रखते हुए, अपनी कमर को अधिक से अधिक व्यास के गोलाकार आकार में घड़ी की दिशा में बारह बार घुमायें, फिर इसी प्रकार बारह बार घड़ी की उल्टी दिशा में घुमायें।

(६) सीधे खड़े होकर, अपने दांये पैर, को अन्दर की ओर मोड़ें, फिर वापस स्थिति में आ जायें, इस प्रकार कुल बारह–बारह बार करें एवं इसी प्रकार बांये पैर द्वारा इसको करें।

अथवा

किसी कुर्सी या मेज आदि पर बैठकर बारह–बारह बार दोनों पैरों (feet) की उक्त कसरत एक साथ कर सकते हैं।

(७) सीधे खड़े होकर, अपने दांये पैर (foot) को एड़ी को केन्द्रित करते हुए घड़ी की दिशा में बारह बार घुमायें, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में बारह बार घुमायें इसी प्रकार बांये पैर को भी बारह–बारह बार घुमायें।

अथवा

किसी कुर्सी या मेज आदि पर बैठकर बारह–बारह बार दोनों पैरों (feet) को क्रमशः घड़ी की दिशा तथा घड़ी की उल्टी दिशा में एक साथ घुमायें।

(८) खड़े होकर अपने पैरों को आपस में लगभग नगण्य बहुत कम दूरी रखते हुए थोड़ा झुककर अपने हाथों को अपने दोनों घुटनों पर रखकर, अपने दोनों घुटनों को घड़ी की दिशा में सुविधानुसार धीरे–धीरे घुमायें, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में बारह–बारह बार धीरे–धीरे घुमायें।

(९) सीधे खड़े होकर, हाथों को सामने फैलाकर, दोनों हथेलियों को उल्टे रखकर, दोनों हथेलियों को एक साथ अन्दर की ओर मोड़ें, फिर यथावत स्थिति में आ जाएं। ऐसा कुल मिलाकर बारह बार करें।

(१०) उक्त स्थिति में कलाई को केन्द्रित करते हुए दोनों हथेलियों को घड़ी की दिशा में बारह बार घुमायें, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में बारह बार घुमायें।

(११) सीधे खड़े होकर, हाथों को सामने फैलाकर, दोनों हाथों को एक साथ मुठ्ठी बांधते हुए कंधे तक लायें, फिर यथावत स्थिति में आयें। ऐसा कुल मिलाकर बारह बार करें।

(१२) यदि कोई अन्य कसरत अभ्यासकर्ता करना चाहे, तो करे।

(१३) सीधे खड़े होकर अपने पैरों में सुविधानुसार थोड़ी अधिक दूरी रखते हुए सामने हाथों को फैलायें। फिर सांस खींचते हुए, दोनों हाथों को अपने सिर के पीछे ले जायें, साथ ही आप भी पीछे अधिक से अधिक अपने को झुकायें। फिर थोड़ा सा रुककर सांस को निकालते हुए, दोनों हाथों से अपने दोनों पैरों को छूने का प्रयास करें (यदि पैर न छू सकें, तो कोई बात नहीं)। यहाँ पर थोड़ा रुकें। इस स्थिति से प्रारम्भ करते हुए, फिर सांस खींचते हुए दोनों हाथों को पहले के समान सिर के पीछे ले जायें, थोड़ा रुकें, फिर सांस निकालते हुए फिर नीचे पैरों को छूने की कोशिश करें। ऐसा कुल सात बार करें। फिर पहले के समान दोनों हाथों को सिर के पीछे ले जायें, फिर रुके और पूर्ववत् सीधे खड़े हो जायें।

(१४) सात बार उठक-बैठक करें।

नोट– (१) किसी भी अंग में कोई पीड़ा हो अथवा कोई समस्या हो, अथवा उसका इतिहास हो तो उस अंग की कसरत न करें, अन्यथा हानि हो सकती है।

(२) जो क्रम उपरोक्त वर्णित है, उसी क्रम से ही कसरत करें।

(३) गोलाकार गति में घड़ी की दिशा में घुमाने से, समानान्तर स्तर (horizontal plane) गति में दांये ओर घूमने से और लम्बवत (vertical plane) गति में सामने अपनी ओर अंग को लाने से उस अंग अथवा अस्थि संधि (bone joint) से संबंधित वायव्य अंग से खराब एवम् उपयोग हुई प्राण शक्ति ऊर्जा बाहर निकलती है। इसी प्रकार वृत्ताकार गति में घड़ी की उल्टी दिशा में घुमाने से, समानान्तर स्तर गति में बांये ओर घूमने से और लम्बवत स्तर में गति में पीछे की ओर अंग को ले जाने

से उस अंग अथवा अस्थि संधि से संबंधित वायव्य अंग को वातावरण से स्वस्थ ऊर्जा प्राप्त होती है। इस सिद्धान्त के आधार पर उक्त कसरतों द्वारा क्रमशः आंखों, गर्दन, कांख, कमर, पेट के सभी आन्तरिक अंग, पैरों की ऐड़ी, घुटने, हथेलियां, कलाईयाँ, कंधे, कोहनी तथा हाथों की उंगलियाँ, ... फैफड़ों तथा सम्पूर्ण शरीर से संबंधित वायव्य अंगों/शरीर से पहले खराब तथा उपयोग हुई ऊर्जा बाहर निकलेगी, फिर स्वस्थ ऊर्जा इनको प्राप्त होगी। इस तरह एक प्रकार से सभी अस्थि–संधियों व शरीर से संबंधित वायव्य अंग/शरीर की सफाई होकर स्वस्थ दशा में आ जायेंगे। कसरत से हल्का रोगग्रस्त भूरा पदार्थ या प्रयोग की गई प्राणशक्ति वायवी शरीर से बाहर हो जाएगी। शारीरिक कसरत से प्राणशक्ति का घनापन भी कम होगा। इस प्रकार की कसरतें यदि द्वि–हृदय पर ध्यान–चिंतन से हटकर वैसे ही साधारण तौर पर की जाये, तो भव रोगों को छोड़कर अन्य रोगों की समस्या काफी कम हो जायेगी।

ऊपर लिखा वर्णन बहुत लम्बा हो गया है, किन्तु जब आप उक्त कसरतों का अभ्यास करेंगे, तो सभी कसरतों में पांच-सात मिनट से अधिक शायद ही लगे। इन कसरतों को करने के तुरन्त बाद अथवा थोड़े समय बाद भी द्विहृदय पर ध्यान–चिंतन किया जा सकता है।

उपक्रम (ख) ईश्वर के आशीर्वाद के लिये प्रार्थना करना

उक्त कसरतों के बाद लगभग चालीस मिनट का समय द्विहृदय पर ध्यान-चिंतन में लगेगा। इस दौरान आप सभी सांसारिक चिंताएं छोड़ दें। सभी मोबाइल फोन इत्यादि बंद कर दें। किसी भी प्रकार के फोन आदि को न सुनें, किसी दरवाजे की घंटी आदि को अनसुना कर दें। घर में लोगों को कह दें कि चाहे आंधी आये या तूफान, आपके ध्यान में कोई बाधा न डाले। इस ध्यान–चिंतन के दौरान, उच्च स्तर की काफी अधिक मात्रा में ऊर्जा शरीर में प्रवेश करती है, जो उसकी

क्षमता से कहीं अधिक होती है। यदि आप इस दौरान उठ जाते हैं, तो उससे आपके शरीरांगों को हानि पहुंच सकती है, आपका सिर भारी हो सकता है आदि।

सब ओर से निश्चिन्त होने के पश्चात्, आप पद्मासन, अर्ध-पद्मासन, सुखासन अथवा कुर्सी पर आरामपूर्वक बैठें, जिस स्थिति में भी आप निराकुलता महसूस कर सकें, किन्तु प्रत्येक दशा में रीढ़ की हड्डी सीधी रहनी चाहिए और यदि आप कुर्सी पर बैठे हों तो पीठ कुर्सी से नहीं लगनी चाहिए। दोनों हाथों को अपने दोनों जांघों पर रखें और हथेली ऊपर की ओर फैली खुली रहें। हाथ की हथेली के मध्य में हाथ का ऊर्जा चक्र अवस्थित है, जैसा भाग ४ में लिखा है। इस चक्र के माध्यम से बाहर से ऊर्जा प्राप्त होती है। अब जीभ की नोक को तालु से छुये रहें या चिपका लें। इससे दोनों ऊर्जा के मैरिडियन्स (meridians) का अन्तर्सम्बन्ध पूरा (interconnection) होकर, ऊर्जा के प्रवाह की तेज गति हो जायेगी (देखिये चित्र ४.०८ जिसमें दर्शाया गया है कि जीभ को तालु से लगाने से एक प्रकार का ऊर्जा का स्विच बन्द हो जाता है)। अपनी दोनों आंखों को बन्द कर लें और इस ध्यान- चिन्तन के अंत तक बन्द रखे रहिये। इस लेख में जहाँ . . . . ये चिन्ह आया है, वहाँ वहाँ आपको रुकना है।

तीन बार धीमे-धीमे गहरी आरामदायक अथवा ढीले तौर पर सांस लें। इसके लिए,

गहरी सांस लीजिए, धीरे-धीरे सांस निकालिये . . . .।
पुनः, सांस लीजिए, धीरे-धीरे सांस निकालिये . . . .।
पुनः, सांस लीजिए, धीरे-धीरे सांस निकालिये . . . .।

अपने दिमाग को स्थिर कीजिए और मन ही मन ईश्वर के आशीर्वाद के लिए स्तुति या प्रार्थना करें। आप अपनी प्रार्थना या स्तुति स्वयं तैयार कर सकते हैं, अथवा निम्नलिखित स्तुति करें:-

"हे परम पिता, मैं विनम्रता के साथ सुरक्षा, मार्गदर्शन, सहायता और प्रदीपन के लिए आपके दैवी आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

और पूरे-पूरे विश्वास के साथ धन्यवाद देता हूँ।

(ग) हृदय चक्र को उत्तेजित करना

आप गहरी श्वांस लेते रहिए और अपने शरीर को आराम करने अथवा ढीला छोड़ दें। इस आराम की अनुभूति/ ढीलापन (relaxation) का बहाव सिर के ऊपर से मस्तिष्क में आने दीजिए और उसको महसूस कीजिए . . . ., फिर मस्तिष्क के पिछले भाग से रीढ़ की हड्डी के नीचे अन्तिम छोर तक. . . . ., फिर सिर के ऊपर से अपने माथे पर आने दीजिए . . . ., फिर आंखों पर. . . . . फिर नाक, गालों और तमाम चेहरे पर. . . . ., फिर गर्दन पर. . . . ., फिर कंधे और बांहों पर. . . . ., फिर सीने में. . . . ., फिर उदर में. . . . ., फिर कंधों से लेकर नीचे पीछे समग्र पीठ पर. . . . ., फिर जांघों, घुटनों, पैरों और तलवों तक. . . . .।

अब आप पूर्णरूपेण आराम की स्थिति में आ गये। अपने को अच्छा महसूस कीजिए। अब आप आरामपूर्वक सांस लेते हुए एवम् निकालते हुए निम्नलिखित को ग्रहण करें तथा निकालें।

सांस लेते हुए ग्रहण करें		सांस निकालते हुए बाहर निकालें	
१.	ताजा और स्फूर्तिदायक ऊर्जा	१.	रोगग्रस्त एवम् प्रयोग हुई ऊर्जा
२.	अच्छा स्वास्थ्य	२.	जीवन के समस्त दर्द और कष्ट
३.	आरामदायक एवम् थकान मिटाने वाली ऊर्जा	३.	तनाव और थकान
४.	मैत्रीभाव और क्षमाभाव	४.	घृणा और रोष
५.	शांति और विश्वास	५.	भय और चिन्तायें
६.	प्रसन्नता	६.	उदासी और मायूसी

७.	दया	७.	चिड़चिड़ापन और क्रूरता
८.	सकारात्मक और सृजनात्मक विचार	८.	नकारात्मक और हानिपूर्वक विचार
९.	सकारात्मक और अच्छी भावनायें	९.	नकारात्मक और बुरी भावनायें।

अब आप आगे आन्तरिक चिन्तनों का एक क्रम महसूस करने जा रहे हैं। इसके लिए सर्वप्रथम अहिंसा और दया के गुणों का विचार मंथन कीजिए।

आप अपना स्वयं का आंतरिक निरीक्षण कीजिए कि क्या आपने किसी को शारीरिक तौर पर कष्ट दिया है? . . . . स्मरण कीजिए कि क्या आपने अपने वचनों अथवा प्रतिक्रिया से किसी को दुःख दिया है?. . . . . क्या आप अन्य व्यक्तियों के प्रति हानिकारक एवम् नकारात्मक भावनाओं को पनपा रहे हैं? . . . . .यदि हाँ, तो उन सभी से जिनको आपने शारीरिक, वाचनिक एवम् प्रतिक्रियात्मक कष्ट दिये हैं, मानसिक रूप से क्षमा मांगे. . . . .। आप निश्चय करें कि आज से सभी जीवों पर जो आपके सम्पर्क में आते हैं, उनसे दया का व्यवहार करने का अभ्यास करेंगे। इस निश्चय को दृढ़ करने के लिए, जिन्होंने आपको कष्ट दिया है उनको क्षमा करते हुए आप स्वयं का दृश्यीकरण करें। उनको आप जीवन की श्रेष्ठ उपलब्धियों का आशीर्वाद दीजिए। . . . . जिनको आपने कष्ट दिया है, उनके द्वारा आपको क्षमा प्रदान करते हुए अपना स्वयं को दृश्यीकरण करें। . . . .। इस प्रकार के अनुभव को गहराई से ग्रहण करें. . . . .।

दूसरे, उन सभी घटनाओं का स्मरण कीजिए, जब आपने दूसरों की दृश्यमान एवम् अदृश्यमान वस्तुओं को ग्रहण कर लिया है। क्या आपने दूसरे की चीजों, कीर्ति, विचारों आदि की चोरी की है?. . . . . क्या आपने उस प्रेम को चुराया है जिसका कोई दूसरा हकदार था?. . . . . यदि हां, तो मानसिक रूप से उनसे क्षमा मांगे . . . .। निश्चय कीजिए कि आप किसी की कोई वस्तु, कीर्ति आदि नहीं लेंगे जो आपकी नहीं है। . . . . .निश्चय कीजिए कि आप उदारता का व्यवहार करेंगे और आवश्यकतानुसार लोगों / जीवों की सहायता करेंगे. . . . .।

तीसरे, सोचिए कि क्या आप अपनी वाणी और क्रियाओं द्वारा लोगों को भ्रमित तो नहीं कर रहे हैं? . . . . क्या आप जान बूझकर झूठ बोलते हैं या जो आप नहीं है, वह बनने का स्वांग करते हैं? . . . . .क्या आप अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु दूसरों से सत्य को छुपाते फिर रहे हैं?. . . . . .निश्चय कीजिए कि आज से अपनी वाणी और क्रियाओं से अपने और दूसरों के प्रति सत्यता बर्तेंगे। इस निश्चय का दृढ़ीकरण करने के लिए आप अपने जीवन की उन रहस्यों (secrets) का आंतरिक निरीक्षण करें जिनके द्वारा अपने को कसूरवार समझते रहे हों। मानसिक रूप से इसको सम्बन्धित व्यक्ति को बताकर एवम् उससे क्षमा मांगकर, अपने को इस भावना से मुक्त कीजिए । . . . . अपने से एवम् दूसरों से सत्यता का व्यवहार करने के अनुभव द्वारा शान्ति प्राप्त करने का आनन्द महसूस करें . . . . ।

अब इस समय, आप सम्पूर्ण विश्व को एवम् जीवों को स्नेह और दया का आशीर्वाद देने हेतु अपने को तैयार कर चुके हैं . . . .।

अपने हृदय की ऊर्जा के केन्द्र को उत्तेजित करने के लिए, अपने सीने के मध्य भाग पर अगले हृदय चक्र को कुछ पलों के लिये छुएं और कुछ समय तक उस पर ध्यान लगाइये। . . . . जीवन के उन क्षणों का स्मरण कीजिए, जब आपने प्रसन्नता, दया, प्रेम, शान्ति अथवा आनन्द का अनुभव किया हो, जो आनन्द दूसरों की सेवा करने, मित्रों एवम् अन्य की सहायता प्रदान करने, किसी से प्रेम करने, साधु संगति अथवा ईश्वर की भक्ति अथवा निकटता का हो सकता है . . . . !

आप अब दया भाव को विश्व में सबके साथ बांटने जा रहे हैं। अपने सामने विश्व को एक इंच व्यास के गेंद के रूप में दृश्यीकृत कीजिए। इसका दृश्यीकरण कीजिए कि आपके हृदय चक्र से गुलाबी रंग की प्रेममयी ऊर्जा विश्व की ओर जाकर, उसको चारों ओर से लपेट रही है। विश्व को देखकर मुस्कराइये . . . .।

अब निम्नवत प्रार्थना ईश्वर से कीजिए।

"हे सर्वशक्तिमान, कृपया मुझे शान्ति का दैवीय उपकरण बनाईयेगा।"

अपने ह्रदय केन्द्र से विश्व को दैवीय शान्ति का आशीर्वाद दीजिए। जहाँ घृणादि है, वहाँ मैं अपने प्रेम से उसे दूर कर सकूँ . . . . ।

फिर पुनः गुलाबी रंग की ऊर्जा को विश्व को लपेटते हुए दृश्यीकृत करें। फिर निम्न भावना करें :–

जहाँ क्षति हो, (Injury) वहाँ क्षमा हो– विश्व को क्षमा भाव से आशीर्वाद दें। . . . . जहां संशय है, वहाँ विश्वास हो। . . . . जहाँ निराशा हो, वहाँ आशा हो– जरूरतमंद प्राणियों को नवीन आशा एवम् बेहतर जीवन से आशीर्वादित करें। . . . . जहाँ अज्ञान हो, वहाँ ज्ञान हो। . . . . जहाँ उदासी हो, वहाँ प्रसन्नता हो– विश्व को आनन्द से आशीर्वादित करें। . . . . विश्व में लोगों को मुस्कराते हुए एवम् आनन्दमयी होते हुए दृश्यीकरण करें. . . . . ।

फिर पुनः ईश्वर से प्रार्थना करें कि

"हे दैवीय मालिक,? कुछ ऐसा हो कि–
मैं दूसरों को सान्त्वना दूँ, चाहे कोई मुझे सान्त्वना दे या न दे। . . . .
मैं दूसरों को समझ सकूँ, चाहे कोई मुझे समझ सके या न समझ सके। . . . . .
मैं दूसरों से मैत्री भाव रखूँ, चाहे कोई मुझसे मैत्री भाव रखे या न रखे।". . . .

क्योंकि देने से ही हमें प्राप्त होता है। क्योंकि दूसरों को क्षमा करने से ही स्वयं को क्षमा मिलती है। क्योंकि मृत्यु से ही नया जीवन मिलता है।

(घ) ब्रह्म चक्र को उत्तेजित करना

अब आप सिर पर अवस्थित ब्रह्म चक्र को कई पलों तक दबायें और उस पर ध्यान केन्द्रित करके उत्तेजित करें। अपने चक्र से सफ़ेद चमकीली दिव्य रोशनी को विश्व की ओर जाते हुए एवम् उसके चारों ओर से प्रेम व करुणा से लपेटते हुए दृश्यीकृत करें। यह भावना भायें कि –

"समस्त विश्व को प्रेम व करुणा का आशीर्वाद प्राप्त हो।

समस्त विश्व को अत्यधिक आनन्द एवम् दैवीय शान्ति का आशीर्वाद प्राप्त हो। समस्त विश्व को समझदारी, सहिष्णुता, सद्भावना का आशीर्वाद प्राप्त हो और सत्कार्य के लिए प्रेरणा प्राप्त हो। सो ऐसा ही हो, ...ऐसा ही हो, ...ऐसा ही हो।"

आप अपने ब्रह्म चक्र से विश्व को निरन्तर आशीर्वाद देते रहिए, देते रहिए और मुस्कराइये। फिर पुनः आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर की कृपा से सभी प्राणियों के हृदय आनन्द, प्रसन्नता और दैवी शांति से भरें।. . . . . ईश्वर की कृपा से सभी प्राणियों के हृदय समझदारी, सद्भावना, सहिष्णुता से भरें और उन्हें सत्कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हो।. . . . . सो ऐसा ही हो, ... ऐसा ही हो, ... ऐसा ही हो . . . .।

(ङ) हृदय चक्र और ब्रह्म चक्र से सम्मिलित आशीर्वाद

अब आशीर्वाद को और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए, यह दृश्यीकृत कीजिए कि दोनों चक्रों अर्थात हृदय एवम् ब्रह्म चक्रों से एक सुनहरे रंग की दैवी ऊर्जा विश्व की ओर जाकर, उसे चारों ओर से लपेट रही है। यह भावना आयें कि–

समस्त विश्व को प्रेम व करुणा का आशीर्वाद प्राप्त हो। समस्त विश्व को अत्यधिक आनन्द एवम् दैवीय शान्ति का आशीर्वाद प्राप्त हो। समस्त विश्व को समझदारी, सहिष्णुता, सद्भावना का आशीर्वाद प्राप्त हो और सत्कर्म के लिए प्रेरित हो।, ... सो ऐसा ही हो.. . . . . ऐसा ही हो, ... ऐसा ही हो।"

आप अपने दोनों उक्त चक्रों से विश्व को निरन्तर आशीर्वाद देते रहिए, ... देते रहिए एवम् मुस्कराइये। फिर पुनः आशीर्वाद दीजिए कि ईश्वर की कृपा से सभी प्राणियों के हृदय आनन्द, खुशी और दैवी शांति से भरें।, ... ईश्वर की कृपा से सभी प्राणियों के हृदय समझदारी, सद्भावना, सहिष्णुता से भरें और उन्हें सत्कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हो।, ... सो ऐसा ही हो.... ऐसा ही हो, ... ऐसा ही हो। ....

(च) **प्रकाशन या प्रदीपन प्राप्त करना**

अब आप एक अत्यधिक चमकता हुए सफ़ेद सितारा, जिसका तेज करोड़ों सूर्य से भी अधिक हो, अपने सिर के ऊपर ब्रह्म चक्र के स्थान पर दृश्यीकृत करें इसकी ओर देखकर मुस्कराइये तथा गौर से देखिये। ध्यान से देखने पर आप पायेंगे कि यह साक्षात ॐ अक्षर है, साक्षात परमात्मा हैं। इसकी ओर प्रेम, श्रद्धा, विनय एवम् भक्ति भाव से देखें। अपने आपको स्थिर कीजए, अपने आपको संवेदनशील रखिए और प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा कीजिए . . . . ।

(यहाँ काफी समय तक प्रतीक्षा कीजिए)

अपने सिर के ऊपर विराजमान ॐ पर लगातार अपना ध्यान केन्द्रित करना जारी रखिए। आप ओम् शब्द का मानसिक तौर पर (अथवा यह कठिन लगे, तो जोर से) उच्चारण कीजिए और दो ओम् के बीच की शान्ति के समय में ओम् में प्रतिष्ठित पंच परमेष्ठियों[1] पर ध्यान दीजिए। ओम् का उच्चारण ओऽम्.. होना चाहिए, अर्थात इसका लम्बा उच्चारण अधिक से अधिक समय तक जब तक आपकी साँस खाली न हो जाये, तब तक करना चाहिए। फिर उससे कुछ समय बाद तक शान्ति रखिये। पुनः इसी प्रकार ओम् का उच्चारण और शांति। इस प्रकार कुल मिलाकर इक्कीस बार ओम् का उच्चारण तथा उनके अन्तराल में बीस बार शांति। अन्तिम बार ओम् के उच्चारण के पश्चात एक काफी लम्बी शान्ति रखिये. . . . . . .

. . . .

. . . . लगभग पांच मिनट तक।

(छ) **अतिरिक्त ऊर्जा का त्याग**

अपनी आंखें बन्द रखते हुए ही, धीरे-धीरे अपनी सामान्य शारीरिक जागृति की संवेदनशीलता लाइयेगा। धीरे-धीरे अपनी उंगलियों को चलाईये। कल्पना कीजिए कि एक चमकीला रोशनी का द्रव (liquid) आपके सिर के ऊपर से नीचे आपके अन्दर

---

[1] अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु– ये जो पंच परमेष्ठी हैं, इनके अरिहन्त, अशरीर, आचार्य, उपाध्याय व मुनि नाम भी पर्यायवाची हैं। अब प्रत्येक नाम से प्रथम लेकर अ,अ,आ,उ और म अक्षर प्राप्त होंगे। व्याकरण के अनुसार अ+अ= आ, आ+आ=आ, आ+उ= ओ होता है। इस प्रकार अ+अ+आ+उ+म= आ+आ+उ+म= आ+उ+म= ओ+म = ओम् होता है, जिसको मात्र एक अक्षर ॐ द्वारा भी प्रतिपादित किया जाता है।

निरन्तर प्रवाहित हो रहा है। , ... महसूस कीजिए और दृश्यीकरण कीजिए कि वह चमकीला रोशनी का द्रव आपके मस्तिष्क के बांए भाग, दांए भाग, पिछले भाग में, अगले भाग में, मध्य भाग में तथा पिनीयल ग्रंथि में समा रहा है और समस्त मस्तिष्क चमकीला हो गया है और जीवन शक्ति से भर गया है। , ... चमकीला होने का और जीवन शक्ति भरने का एहसास और दृश्यीकरण बारी-बारी से इसी प्रकार क्रमवार मस्तिष्क के पिछले भाग से समस्त रीढ की हड्डी, माथा, पीयूष ग्रंथि , आंखें, कानों , कनपटियां, मुंह के अन्दर, समस्त चेहरे, गला व गर्दन, फैंफड़े, हृदय व थायमस ग्रंथि, आमाशय-अग्न्याशय- यकृत, पित्ताशय व प्लीहा, छोटी व बड़ी आंतें, गुर्दे व अधिवृक्क ग्रंथियां, मूत्राशय व जननांग, कूल्हे, बांये व दांये पैर पर, फिर सिर से पैरों तक, बांह–हाथ व अंगुलियों के पोरों तक करें। , ... महसूस कीजिये एवम् दृश्यीकरण कीजिये कि आपका समग्र शरीर चमक रहा है और जीवन शक्ति से भर गया है। . . . . अब मानसिक रूप से निम्न कहिए:

"मैं दिव्य प्रकाश से भर गया हूँ और मैं जीवन शक्ति से भरा हुआ हूँ , ... । मैं समग्र हूँ . . . . । मैं प्रसन्न हूँ . . . . । मेरा जीवन समस्त अच्छाइयों एवम् सुन्दरता से भरा हुआ है।, ... मैं दिव्य ज्ञानमयी हूँ , ... । मैं दैवीय स्नेहमयी हूँ , ... । मैं दैवीय शक्तिमान हूँ , ... । मैं ईश्वर का बालक हूँ , ... ।

धन्यवाद सहित एवम् पूर्ण विश्वास के साथ।" , ...

. . . .

अब आपको अतिरिक्त ऊर्जा का जो उक्त ध्यान के दौरान आती है, त्याग करना है। इसके लिए पुनः विश्व का पहले के समान अपने सामने दृश्यीकरण करें। अपने दोनों हाथ सीने के स्तर तक लाएं और दोनों हथेलियों को खोलकर विश्व के सामने रखें।, ... विश्व को प्रेम, शान्ति, प्रचुरता एवम् सद्भावना का आशीर्वाद दें। , ... फिर अपने देश को प्रेम, शान्ति, प्रचुरता और सद्भावना का आशीर्वाद दें। , ... फिर अपने धार्मिक समुदाय (community) को प्रेम, शांति, प्रचुरता और आत्मिक उत्थान का

आशीर्वाद दें।. . . . . फिर अपने धार्मिक गुरुओं के प्रति श्रद्धा, भक्ति भाव से नमन करें व उनके आत्मिक उत्थान एवम् निर्वाण प्राप्ति की कामना करें।. . . . . फिर अपनी संस्थाओं आदि को प्रेम, शान्ति, प्रचुरता, सद्भावना और उत्थान का आशीर्वाद दें। . . . . फिर अपने घर, कुटुम्ब, स्नेहीजनों को प्रेम, शांति, सहिष्णुता, प्रचुरता और आत्मिक उत्थान का आशीर्वाद दें।. . . . . इसके अतिरिक्त जिनको आपकी जरूरत हो व उपचार की जरूरत हो, उनको आशीर्वाद दे।* . . . . अब अपने हाथों को नीचे ले आइये। . . . .

(ज) धन्यवाद देना

ध्यान–चिन्तन के बाद दैवी आशीर्वाद तथा ईश्वर की कृपा के लिए उसको अवश्य धन्यवाद दें।

"हे सर्वशक्तिमान ईश्वर, दिव्य ज्ञान, प्रेम और शक्ति के स्रोत, हम आपको दैवीय आशीर्वाद प्रदान करने के लिए धन्यवाद देते हैं। हम आपको दैवीय सुरक्षा, मार्गदर्शन, सहायता और प्रदीपन के लिए धन्यवाद देते हैं।

धन्यवाद सहित और पूर्ण श्रद्धा भाव सहित।". . . . .

(झ) अतिरिक्त ऊर्जा की और अधिक निकासी

अपने पैर के तलुवों से और अपनी रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से से प्रकाश का भूमि के अन्दर लगभग दस फीट तक प्रेषण करें जो वहां पड़ी हुई बर्फ की सिल्लियों में समा रही है। इसका दृश्यीकरण भी करें। . . . .

अब अपनी आंखों को मुस्कुराते हुए खोलिए। आशा है कि आपका ध्यान-चिन्तन अद्भुत हुआ होगा। अब अपने सिर की खोपड़ी की सूखी मालिश कीजिए। फिर अपने यकृत और गुर्दों को थपथपाइये। इससे ध्यान–चिन्तन के दौरान जो अतिरिक्त ऊर्जा यहाँ जमा हो जाती है, निकल जाती है। अब अपने बांहों की, पैरों की व शरीर के अन्य अंगों की सूखी मालिश कीजिए।

---

* सावधानी — चूंकि यह आशीर्वाद अत्यधिक शक्तिशाली होता है, इसलिये शुरू में ही किसी अकेले व्यक्ति व कुटुम्ब को देना उसके लिये असह्य हो सकता है।

अब भी आपके शरीर में कुछ अतिरिक्त ऊर्जा रह गयी होती है। इसको निकालने के लिए पुनः वही सब कसरतें कीजिये जो ("क") – वायवी शरीर की सफाई" में वर्णित हैं। ऐसा न करने पर अत्यधिक सूक्ष्म ऊर्जा रह जाने के कारण लम्बे समय में शरीर को हानि पहुंच सकती है।

उक्त ध्यान–चिन्तन को और भी अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए यह सामूहिक तौर पर अनेक लोगों द्वारा विश्व शांति के लिए एक साथ ही किया जाना चाहिए।

(उक्त ध्यान–चिन्तन श्री चोआ कोक सुई के द्वारा बतायी गई विधि के अनुसार तो है, किन्तु उसमें थोड़ा सा संशोधन किया गया है। इसमें मुख्यतः 'पृथ्वी ग्रह' के स्थान पर 'विश्व' और लोग के स्थान पर 'प्राणी' है।)

नोट– द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन का उक्त विवरण काफी विस्तारमयी हो गया है जो अनिवार्य था। किन्तु इस दौरान आंखें बन्द रहने के कारण, इसको उस समय पढ़ना सम्भव नहीं होगा। इसलिये इसको क्रमवार कण्ठस्थ कर लें, यद्यपि यह थोड़ा सा कठिन हो सकता है। अथवा बेहतर होगा कि इसका किसी ऑडियो टेप (audio tape) पर रिकार्डिंग कर लें। फिर ध्यान-चिन्तन के समय उसका प्ले–बटन (Play Button) दबाकर इस वर्णन को सुनते हुए तद्नुसार ध्यान-चिन्तन करें।

(३) द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन के लाभ

(क) सामान्य व्यक्ति तथा रोगी के लिए

(१) ऊर्जा अथवा वायवी शरीर शक्तिशाली बनता है। उसकी गुणवत्ता बढ़ती है और अधिक शुद्ध हो जाती है।

(२) ऊर्जा के आभामण्डल का आकार (Aura) बड़े हो जाते हैं।

(३) वायवी शरीर का प्रभाव बढ़ता है (its penetrating effect becomes more)

(४) ऊर्जा चक्र अधिक सक्रिय हो जाते हैं, जिसके कारण भौतिक शरीर अधिक स्वास्थ्यकारक होता है और मानसिक योग्यता बढ़ जाती है।

(५) नकारात्मक निम्न भावनाओं को नियंत्रित रखने में सहायता मिलती है। निम्न भावनात्मक ऊर्जा को उच्च भावनाओं में परावर्तित होने में भी सहायता मिलती है।

(६) शरीर के अन्दर छोटे–छोटे रोग स्वयमेव ही ठीक हो जाते हैं।

(७) शरीर का प्रतिरक्षात्मक तंत्र मजबूत होता है।

(८) जीवन में उन्नति करने की योग्यता बढ़ती है।

(९) नकारात्मक कर्मों के फल में सम्भावित कमी होती है।

(१०) भावनात्मक और मानसिक स्थिरता बढ़ती है, छठी इन्द्रिय की शक्ति (intuitional power) भी बढ़ती है।

(११) अपने अन्दर प्रकाश का प्रदीपन एवं दैवी आनन्द की अनुभूति प्राप्त होने में सहायता मिलती है।

(१२) इसका समग्र रुप से (integrated) लाभप्रद प्रभाव होता है।

(१३) इसका उद्देश्य अन्तर्ज्ञान एवं आन्तरिक प्रदीपन की प्राप्ति है, जिसमें यह सहायक होता है। इसके अतिरिक्त यह विश्व सेवा का भी एक रूप है, जिसमें सर्व जीवों के प्रति मैत्री भाव व्यक्त होता है।

(ख) प्राणशक्ति उपचारक के लिए

उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त

(१४) उपचार शक्ति में वृद्धि होती है।

(१५) रोगी से ग्रहण की हुई रोगग्रस्त ऊर्जा, प्राणशक्ति उपचारक के शरीर से पृथक हो जाती है।

(घ) ध्यान मार्ग में प्रयाण– एक वैज्ञानिक विश्लेषण **Moving into Meditation- A Scientific Analysis**

(यह लेख सुश्री वीना मेहरोत्रा द्वारा प्रस्तुत अंग्रेजी भाषा के लेख, जो हिन्दुस्तान टाइम्स, लखनऊ नामक दैनिक अंग्रेजी समाचार पत्र में दिनांक 17.8.2004

को प्रकाशित हुआ, का हिन्दी रूपान्तर है। कुछ अंग्रेजी के शब्दों की सही हिन्दी न बन पाने के कारण, उनका उल्लेख यथावत कर दिया गया है)

जब आप किसी अच्छी पुस्तक (या दूरदर्शन अथवा चलचित्र) में मग्न हो जाते हैं, तो कदाचित् आप मस्तिष्क की अल्फ़ा (Alpha) दशा में होते हैं। इस दशा में आप उस समय इतने मग्न हो जाते हैं कि आपके आसपास जो घटित होता है, उसका आपकी चेतना में कोई संज्ञान नहीं आ पाता। अल्फ़ा प्रतिभायुक्त ज्ञानोपार्जन (super-learning) सीखने की योग्यता तथा अधिक सूचनाओं की विधि, स्टोर तथा स्मरण करने की शीघ्रता तथा सक्षमता पूर्वक प्रक्रियाओं से सम्बद्ध होता है। इसी कारण आप देखे हुए पुस्तक अथवा चलचित्र की कहानी आसानी से विस्तारपूर्वक बता सकते हैं।

इससे धीमी दशा थीटा की तरंगों (theta waves) की होती है। यह नींद में स्वप्न देखते समय मस्तिष्क की तरंगों की दशा में होती है। किन्तु, इसके अतिरिक्त यह अन्य लाभप्रद दशाओं से भी सम्बद्ध होती है, जिसमें सृजनात्मक रचना की वृद्धि, कुछ प्रकार के प्रतिभायुक्त ज्ञानोपार्जन (superlearning), स्मरण-शक्ति की तीव्रता हो जाने की योग्यता और सकारात्मक समग्र (integrated) अनुभव (जिसमें हम अपने आपको व दूसरों को देखने में अथवा विशेष प्रकार की जीने की दशा में सकारात्मक परिवर्तन करते हैं) सम्मिलित हैं। यह मस्तिष्क की वह स्थिति है जब बांया मस्तिष्क विश्राम करता है और किसी समस्या के अंतर्ज्ञान प्रक्रिया द्वारा निदान करने में आपके दांये मस्तिष्क के कार्य में कोई हस्तक्षेप नहीं करता। यही कारण है कि इस दशा में, अत्यन्त जटिल समस्याओं को सुलझाने के सरल कार्यप्रणाली सम्बन्धी विचार अचानक ही हमें आ जाते हैं। इस दशा में अवस्थित रहने से हमारी सोचने की प्रक्रिया की प्रभावी शक्ति बढ़ती है और इस कारण से बुद्धिमान लोग यह परामर्श देते हैं कि अपने कठिन समस्याओं के सही निदान के लिए, उस पर 'सो जायें'।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि थीटा (Theta) तरंगें अत्यधिक तनाव से छुटकारा भी दिलाते हैं। In the slower theta brain wave pattern (अधिक धीमे मस्तिष्क के थीटा तरंगों के नमूने/साँचे की दशा में), मस्तिष्क काफी मात्रा में endorphins (एक रासायनिक पदार्थ) उत्पन्न करता है, जिसमें समस्त तनाव के Pattern घुल (dissolve) जाते हैं, जिसके फलस्वरूप आप अपने को तरोताजा और प्रसन्न पाते हैं।

मस्तिष्क के तरंगों की प्रणाली की सबसे धीमी गति को डेल्टा (Delta) कहते हैं। इसमें स्वप्न रहित निद्रा होती है, जो उपरोक्त दोनों दशाओं से गुजरने के बाद , हम प्राप्त कर सकते हैं। सामान्य तौर पर लोग डेल्टा (Delta) दशा में निद्रा में मग्न रहते हैं, किन्तु योगी और संत यह स्वीकार करते हैं कि इस अति गहन trance (अति विभोरतायुक्त, अति उल्लासमयी) के समान अभौतिक दशा में चौकन्ने रहना सम्भव है। यह वह दशा है जो योगी प्राप्त कर लेते हैं जो कि चेतनापूर्वक योग निद्रा की जागरुकता है। इसमें भौतिक मस्तिष्क का सोचना बिल्कुल ही बन्द हो जाता है, किन्तु ब्रह्माण्ड की ऊर्जाओं में इतना अधिक केन्द्रित हो जाता है कि दोनों के तरंगों के आकार और कम्पन के पहलू का एकीकरण (attunementor oneness) हो जाता है।

उक्त दशा में बहुत से वृद्ध होने सम्बन्धी रोगों का नाश हो जाता है। इसी कारण, हम ऐसे संतों को देखते हैं जो लगभग शतायु होकर भी युवा समान दिखाई पड़ते हैं। इस दशा में पिनीयल व पीयूष ग्रंथियां वृद्धत्व को समाप्त करने वाले (anti-ageing) हारमोनों को शरीर को प्रदान करते हैं, जिससे युवा होने की क्रिया को और गति मिलती है।

यह गहन ध्यान में प्रयाण करने की दशा है। इसमें लाभ यह होता है कि हम Linear-time related thoughts पर विजय पाते हैं और अपने vibrational harmonies को विकसित करके ईश्वर से तारतम्यता कर लेते हैं, चित्त संतुलित हो जाता है; अत्यधिक ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है जो 'पुराने' प्रकार की ऊर्जाओं से यह दशा कभी प्राप्त नहीं होती*।

---

*संक्षेप में कहें कि कदाचित् 'समाधि' की दशा प्राप्त हो जाती होगी।

अध्याय ४

प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार

Chapter- IV

BASIC PRANIC HEALING

प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य	५.३६
२.	हाथ एवं उंगलियों के चक्र	५.३६
३.	उपचार करने के लिए स्थान– प्राणिक जनरेटर	५.४०
४.	रोगी की उपचार ग्राह्यता सुनिश्चित करना	५.४२
५.	प्राणशक्ति उपचारक के लिए निर्देश	५.४५
६.	क्या बिना जांच किये उपचार सम्भव है	५.६२
७.	आध्यात्मिक व्यक्तियों का उपचार	५.६२
८.	प्राणशक्ति उपचार– सार	५.६३
९.	प्रारम्भिक उपचार के कुछ उदाहरण	५.६४
	(१) सिरदर्द और आधे सिर का दर्द (आधासीसी) Headache and Migrane Headache	५.६७
	(२) आँखों का तनाव तथा थकी आंखें– Eye Strain or Tired Eyes	५.६८
	(३) सूनी आँखें– Sore Eyes	५.६८
	(४) नाक से खून बहना– Nose Bleeding	५.६८
	(५) दाँत दर्द– Toothache	५.६८
	(६) गले की सूजन या स्वर यंत्र का रोग –Sore Throat or Laryngitis	५.६८
	(७) सर्दी-खांसी और सूजी नाक –Cold with Cough and Stiffy Nose	५.६८
	(८) कान दर्द– Earache	५.६९

(९) बुखार– Fever ५.६९

(१०) हिचकियां– Hiccup ५.७१

(११) भूख कम लगना– Poor Appetite ५.७१

(१२) पेट दर्द और गैस दर्द– Stomach Pain and Gas Pain ५.७१

(१३) दस्त (अतिसार)– Diarrhoea ५.७१

(१४) कब्ज– Constipation ५.७२

(१५) पराजीवी कृमि– Parasite Worms ५.७२

(१६) मासिक धर्म का दर्द– Dysmenorrhea ५.७२

(१७) अनियमित मासिक धर्म या मासिक धर्म न होना –
Irregular Menstruation or No Menstruation ५.७३

(१८) मांसपेशियों का दर्द और मोच–Muscle Pain and Sprain ५.७३

(१९) पीठ दर्द– Backache ५.७३

(२०) हाथ उठाने में कठिनाई– Frozen Shoulder ५.७३

(२१) गर्दन में खिंचाव– Stiff Neck (Spondylitis) ५.७४

(२२) मांसपेशियों में ऐंठन– Muscle Cramps ५.७४

(२३) साधारण जलने पर– Minor Burns ५.७४

(२४) गूमढ़ और चोट– Contusion and Concussion ५.७५

(२५) कटे हुए और ज्वलनकारी घाव –
Cuts and Inflamed Wounds ५.७५

(२६) धूप से चमड़ी झुलसाना– Sun Burns ५.७५

(२७) दाद-खाज एवम् त्वचा की सामान्य एलर्जी –
Eczema and Minor Skin Allergy ५.७५

(२८) फोड़े फुंसियां– Boils ५.७६

(२६) कीड़ों व खटमलों का काटना– Insect and Bug Bites ५.७६

(३०) मुंहासे– Pimples ५.७६

(३१) अनिद्रा– Insomnia ५.७६

(३२) सामान्य जोड़ों का दर्द या गठिया रोग–
Minor Arthiritis or Rheumatism ५.७७

(३३) सामान्य कमजोरी– General Weakness ५.७७

(३४) थकान– Relieving Tiredness ५.७८

(३५) यदि आप निश्चित न हों तो क्या करें (समस्त रोगों के लिए) ५.७८

१०. उपचार कितने अंतराल पर किया जाये ५.७८

११. उपचार की सम्पूर्ण या समग्र दृष्टि ५.७८

१२. प्राणशक्ति उपचार में इच्छा शक्ति कैसे करें ५.७६

१३. पूर्णोपचार समय के नियम ५.७६

१४. पूर्ण उपचार में कितना समय लगता है ५.७६

१५. दर्द या रोग के लक्षण दुबारा जल्दी उभर आना ५.८०

१६. कुछ रोगियों के ठीक नहीं होने के कारण ५.८०

१७. व्यक्तिगत समस्यायें जो उपचारक को हो सकती हैं ५.८१

१८. जीव द्रव्य के कम्पन की दर ५.८२

१६. प्राणशक्ति उपचार का उपचारक पर प्रभाव ५.८२

२०. प्राणशक्ति उपचार सीखना क्या मुश्किल है? ५.८३

२१. अभ्यार्थी किस प्रकार सीखे ५.८३

२२. परिशिष्टि ५.०१– भारतवर्ष में प्राणशक्ति उपचार के प्रशिक्षण केन्द तथा उपचार केन्द्र ५.८५

प्राण–ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार

BASIC PRANIC HEALING

(१) सामान्य

प्राण ऊर्जा के उपयोग के सिद्धान्त अध्याय १ में दिये हैं, जो सभी प्राणशक्ति उपचार में लागू होते हैं। इसके दो बुनियादी नियम हैं: रोगी के जीवद्रव्य शरीर के रोगग्रस्त व पीड़ित अंग व चक्र से रोगग्रस्त जीव पदार्थ को साफ करना तथा उस अंग व चक्र को ओजस्वी ऊर्जा द्वारा ऊर्जित करना। यह भौतिक शरीर द्वारा सांस निकालते हुए दूषित पदार्थ या कार्बन डाईऑक्साइड आदि के निष्कासन एवम् सांस लेते हुए ताजी हवा व आक्सीजन से ऊर्जन के समानान्तर हैं। ऊर्जन करने से पहले सफाई करने के कारण (१) प्राणशक्ति को सोखने की प्रक्रिया को सरल करना (२) उपचार में कम समय लगना व उपचार के लिए कम प्राण-शक्ति की आवश्यकता (३) संभावित उग्र प्रतिक्रियाओं को कम करना अथवा नगण्य करना एवम् (४) बारीक जीव द्रव्य नाड़ियों या शिरोबिन्दुओं को होने वाले नुकसान के खतरे से कम करना है। कुछ सामान्य केसों में मात्र सफाई द्वारा ही उपचार के लिए काफी होती है।

(२) हाथ एवं उंगलियों के ऊर्जा चक्र

हाथ के चक्र जिनका जिक्र भाग ४ में किया जा चुका है, लगभग एक इंच व्यास के आकार के होते हैं। कुछ उपचारकों का हाथ चक्र दो इंच या इससे अधिक भी होता है। इनका उपचार में विशेष योगदान होता है। इनके द्वारा ही वातावरण से स्वस्थ ऊर्जा तथा रोगी की रोगग्रस्त ऊर्जा सोखी जाती है एवम् स्वस्थ ऊर्जा को रोगी की ओर प्रेषण किया जाता है। हाथों के दोनों ही चक्र इसके योग्य होते हैं। लेकिन दाहिने हाथ से काम करने वाले व्यक्ति को बांए हाथ से सोखना और दाहिने

हाथ से प्रक्षेपित करना आसान होता है। इसी प्रकार बांये हाथ से काम करने वाले व्यक्ति को दांए हाथ से सोखना और बाएं हाथ से प्रक्षेपित करने में आसानी होती है।

प्रत्येक उंगली में एक छोटा चक्र होता है। ये चक्र भी प्राणशक्ति को सोखने व छोड़ने की क्षमता रखते हैं। हाथ चक्र कम और हल्की प्राणशक्ति छोड़ते हैं; जबकि उंगली चक्र गहन और प्रबल प्राणशक्ति छोड़ते हैं। बच्चों, बूढ़ों और कमजोर रोगियों को हाथ चक्र द्वारा धीरे–धीरे और हल्के से ऊर्जित किया जाता है। हाथ चक्रों को उत्तेजित या जाग्रत करने से हाथों में संवेदनशीलता आ जाती है। इससे उनमें सूक्ष्म पदार्थों को अनुभव करने और विभिन्न आभाओं को अच्छी तरह जाँचने की योग्यता विकसित होती है। इसी जाँचने की प्रक्रिया द्वारा उपचारक जीवद्रव्य शरीर में रोगग्रस्त क्षेत्रों को ढूंढ सकता है। इसको जांचना अथवा स्कैनिंग (scanning) कहते हैं।

(३) उपचार करने के लिए स्थान

उपचार बन्द कमरे अथवा खुले स्थान में किया जा सकता है।

प्राणिक जनरेटर (Pranic Generators) (उत्पादक)

चार दिशात्मक अपना तीन दिशात्मक पिरैमिड (Pyramid) तथा शंकु (cone) की आकृतियां अपने अन्दर प्राणिक ऊर्जा का उत्पादन करते हैं, इसलिये ये प्राणिक उत्पादक कहलाते हैं। इस सम्बन्ध में किये गये प्रयोग बताते हैं कि शंकु के आकार का सिर पर आवरण (headgear) से सोचने की शक्ति बढ़ती है और जल्दी से अभ्रमित निर्णय लेने में सहायता मिलती है। शायद इसी कारण से प्राचीन समय में जादूगरादि शंकु आकार की टोपी पहनते थे। इन प्राणिक उत्पादकों में वायु–ऊर्जा, लगभग भू-ऊर्जा के बराबर ही घनी होती है। इन प्राणिक उत्पादकों के अन्दर उपचार करने से उपचार में आसानी और शीघ्रता हो जाती है क्योंकि उसके अन्दर पहले से ही घनी ऊर्जा विद्यमान होती है।

अक्सर करके उक्त प्रकार के तीन–दिशात्मक प्राणिक उत्पादक उपलब्ध नहीं हो पाते। इनके स्थान पर दो–दिशात्मक प्राणिक उत्पादक इस्तेमाल किये जा सकते हैं। समान– केन्द्र वाले सम-चतुर्भुज (square), त्रिकोण एवं वृत्त इनके उदाहरण हैं, जैसा चित्र ५.०२ में दिखाया है। यद्यपि ये तीन–दिशात्मक आकृतियों से कम शक्तिशाली होते हैं, फिर भी काफ़ी शक्तिशाली होते हैं। किसी एक जगह एक ही डिजायन के

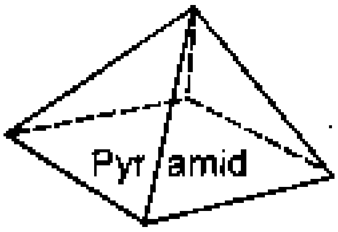

चतुर्भुजी

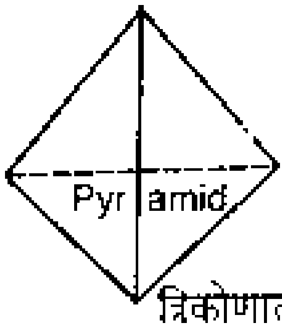

त्रिकोणात्मक

त्रिदिशात्मक प्राणिक उत्पादक

(Three dimensional Pranic Healing)

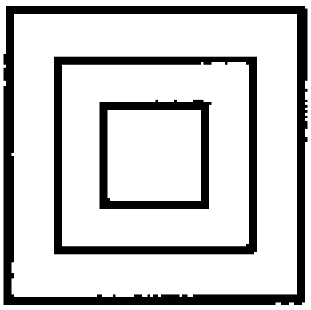

सम–चतुर्भुज साधारण
(Concentric Square)

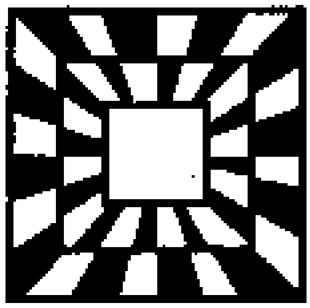

सम–चतुर्भुज
शक्तिशाली

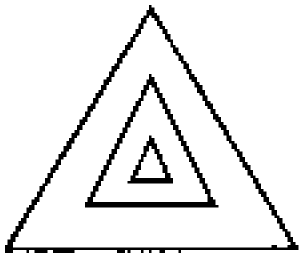

सम–त्रिकोण साधारण
(Concentric Triangle)

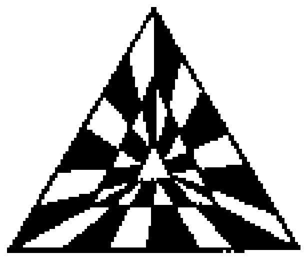

सम–त्रिकोण
शक्तिशाली

Pranic Generator प्राणिक उत्पादक

चित्र ५.०२

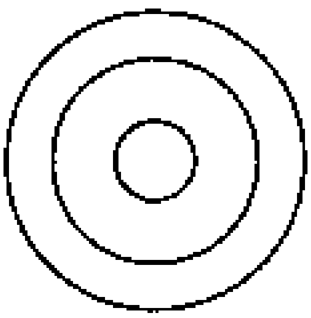

सम–वृत्त साधारण
(Concentric Triangle)

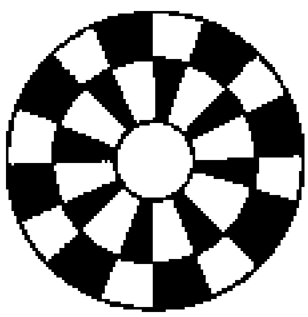

सम–वृत्त
शक्तिशाली

नोट– उपरोक्त आकृतियों में विभाजित भाग प्रतीकात्मक है, वास्तव में ये दर्शाये हुए से कहीं अधिक होंगे।

आकार होने चाहिए, वरना इनमें स्थित वायवी आकृतियों को भ्रम उत्पन्न हो सकता है। कुछ रोगी वृत्ताकार प्राणिक उत्पादक द्वारा उत्पादित प्राण ऊर्जा को सहन नहीं कर पाते, इसलिये सम- चतुर्भुज अथवा त्रिकोण डिजायन ही इस्तेमाल करने चाहिए। देखिए चित्र ५.०२

जिस कमरे में उपचार करना हो, वहाँ समुचित रोशनदान (ventilator) होना चाहिए। ऐसे स्थानों से रोगग्रस्त ऊर्जा से अच्छे प्रकार से निष्कासन हो जाता है। इसके अलावा चन्दन की अगरबत्ती के जलाने से भी इस निष्कासन में सहायता मिलती है।

(४) रोगी की उपचार–ग्राह्यता सुनिश्चित करना

चूंकि प्राण–ऊर्जा जो उपचारक प्रेषित करता है, उसके रोगी के शरीर के अन्दर ग्रहण होने के पश्चात ही वह रोग को दूर करने में कारण होती है, इसलिए यह आवश्यक है कि उसको रोगी ठीक से ग्रहण कर ले एवम् उसके प्रवाह में कोई अड़चन न आवे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए रोगी को निम्नलिखित मार्गदर्शन उपचारक द्वारा दिया जाना चाहिए :–

(क) उपचार के दौरान

(१) सिल्क, चमड़ा, शुद्ध टेरीलीन, रबड़ की और हिंसात्मक वस्तुओं का प्रयोग न किया जाय। ये प्राण ऊर्जा के कुचालक होते है। इसके लिए इन वस्तुओं द्वारा निर्मित मोजे, बटुआ, बैल्ट आदि को हटा देना चाहिए। सबसे अच्छे सूती वस्त्र होते हैं। ऊनी वस्त्रों के पहनने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

(२) जूते, चप्पल आदि उतार दिये जायें। मोजे पहने जा सकते हैं।

(३) जिन आभूषणों व अंगूठी आदि में पत्थर या नग हो, उनको उतार दें।

ये सब प्राण ऊर्जा के अबाधित प्रवाह के लिए आवश्यक हैं।

(ख) उपचार होने से पहले ईश्वर से प्रार्थना

निश्चिन्त होकर शांति के साथ बैठ जाये। णमोकार मंत्र बोलकर एवम् पंचपरमेष्ठी को नमन करके अथवा अपने विश्वासानुसार विनयपूर्वक ईश्वर को नमन करके, निम्न शब्दों का उच्चारण करेः—

"मैं अपनी स्वेच्छा से, पूरी तौर पर और कृतज्ञतापूर्वक समस्त प्राणिक उपचार मय उपचारात्मक ऊर्जाओं को स्वीकार करता हूँ। पूर्ण विश्वास के साथ, तद्नुसार हो।"

(ग) उपचार के दौरान

(१) ऊर्जा ग्रहणात्मक स्थिति में रहिए। इसके लिए रोगी बैठ जाये तथा अपने दोनों हाथों की हथेली को घुटनों पर अथवा सुविधानुसार रखें, किन्तु वे ऊपर की ओर खुली रहें। यह उसके हथेली के चक्र द्वारा ऊपर से ऊर्जा ग्रहण करने हेतु है। उसके बगल थोड़े से खुले रहें। अपनी आंखें बन्द कर ले एवम् बन्द ही रखे।

(२) वह अपनी जीभ की नोक को तालु से लगाये अथवा चिपकाये।

(३) वह अपने एक पैर को दूसरे पैर के ऊपर न रखे।

(४) यदि पानी की ज्यादा प्यास लगे अथवा मूत्र-त्याग की इच्छा हो, तो उपचारक से कहे। उपचारक इसके लिए उसको अनुमति दे दे।

(५) उपरोक्त (ख) में वर्णित स्वीकृति के शब्द अपने मन में दोहराते रहे। साथ-साथ यह भी सोचे कि वह ठीक हो रहा है अथवा ईश्वर से प्रार्थना करे तथा ईश्वर-भक्ति में इतने तन्मय हो जाए कि उसको अपनी सुधि ही न रहे। इनके अतिरिक्त किसी प्रकार के विचार नहीं आना चाहिए।

यदि इस प्रक्रिया में नींद आने लगे तो सो जाए।

(६) अगर उसे भारीपन, सिरदर्द, कमजोरी अथवा अन्य कोई एहसास हो, तो तुरन्त उपचारक से कहे। उपचार की समाप्ति की प्रतीक्षा न करे।

(७) कोई भी बात जो बीमारी से ताल्लुक रखती हो, उपचारक से कहें।

(घ) उपचार के पश्चात्

ईश्वर को पुनः नमन करते हुए, उसके आशीर्वाद के लिए धन्यवाद दे।

(ङ) सावधानी

उपचारित अंग पर लगभग बारह घंटे तक पानी न डाले। इसका यह भी मतलब है कि बारह घंटे तक स्नान नहीं करना चाहिए। जो रोगी गंभीर बीमारियों से पीड़ित हैं या अधिक कमजोर हैं, उनके लिए यह प्रतिबन्ध चौबीस घंटे का है।

यह निर्देश इस कारण से है कि प्राणिक ऊर्जा को शरीर के अन्दर शोषित होने में समय लगता है और उससे पहले पानी के सम्पर्क में आने पर, वह ऊर्जा पानी में घुलकर बह जाती है, जिससे रोगी का समुचित उपचार नहीं हो पाता।

(च) अपने रोग को याद रखने का अथवा लगातार याद रखने का प्रयत्न न करे। ऐसी दशा में रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ रोगी की ओर आकृष्ट हो जाता है, जिससे रोगी का समुचित इलाज होने पर भी रोगी ठीक नहीं हो पाता।

(छ) साधारण निर्देश

(१) मांसाहारी भोजन, अंडे, शराब, धूम्रपान, तम्बाकू, नशीले पदार्थ और भ्रम–उत्पादक (hallucination) पदार्थ (जैसे अफीम, भांग) के सेवन से बचें।

(२) अपने दैनिक प्रयोग में चमड़े आदि हिंसा से उत्पन्न हुई वस्तुओं जैसे बटुआ, बैल्ट आदि का उपयोग न करें।

(३) अपने जीवन में विचार, वचन और क्रिया को धर्ममयी बनायें तथा अपने चरित्र का उत्थान करें।

(४) अपने दैनिक जीवन में दान देने की आदत डालें, किन्तु कुपात्रों एवम् अपात्रों को दान न दें।

(५) जहाँ तक संभव हो, द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन जिसका वर्णन अध्याय ३ में दिया है, किया करें।

(६) नकारात्मक निम्न श्रेणी की सोच जैसे क्रोध, अहंकार, झूठ, लालच, दूसरों की हानि पहुंचाने की भावनादि से बचें। इसके द्वारा सौर जालिका चक्र पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिससे विभिन्न शारीरिक एवम् मानसिक रोग हो जाते हैं। इसका वर्णन भाग ४ में दिया है।

(७) दूसरों को क्षमा करना सीखें। सकारात्मक विचार जैसे दया, करुणा, क्षमा, मैत्री भाव रखें।

(५) प्राणशक्ति उपचारक के लिए निर्देश

(क) उपचार करने से पूर्व

(१) रोगी के लिए निदेश क्रम संख्या ४ (क) (१) व (३) का आप भी पालन करें।

(२) उपचार करने से पहले अति विनयपूर्वक ईश्वर से प्रार्थना करें। णमोकार मंत्र बोलकर एवम् पंचपरमेष्ठी को नमन करके निम्नवत उच्चारण करें:–

"हे परमपिता, मेरी आपसे विनम्र प्रार्थना है कि आप मुझे अपना उपचार का उपकरण बना दें कि मैं आपके प्राणिक उपचार को ....(रोगी के नाम का उच्चारण करें) तक प्रेषित कर सकूँ और अपना आशीर्वाद हम सभी को प्रदान करें। मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि इस उपचार में मेरे द्वारा किये गये किसी प्रकार की मन, वचन, काय की क्रिया का इस रोगी पर विपरीत प्रभाव न पड़े। पूर्ण विश्वास के साथ तद्नुसार हो।"

(ख) **अपने ऊर्जा का स्तर बढ़ायें**

(१) अपने जीभ के नॉंक को अपने तालु से लगायें या चिपकायें।

(२) मुस्कराने से भी ऊर्जा-स्तर बढ़ता है।

(ग) **रोगी की प्राणशक्ति ग्राह्यता बढ़ायें**

(१) यदि रोगी आराम से है, तो उपचार को अच्छी तरह ग्रहण कर सकता है। यदि वह इस प्रकार के उपचार को प्रतिकूलता की दृष्टि से देखता है, अथवा उपचारक को नापसन्द करता है या ठीक होना ही नहीं चाहता हो, तो प्राण–उपचार में काफी कठिनाई आती है। उसके प्रतिरोध को कम करने के लिए, उसके साथ तालमेल बैठाइये, उसकी ओर देखकर मुस्कराइये, शालीनता व भद्रता से पेश आइये। यदि वह इस उपचार के विषय में कुछ न जानता हो, तो संक्षेप में साफ–साफ इसके बारे में उसको बताएं। उसको कहिए कि यदि वह इस उपचार को स्वीकर न करता हो, तो कम से कम इसे अस्वीकार भी तो न करे और तटस्थ रहे। यदि ऐसा कुछ नहीं होता हो और उसका प्रतिरोध सबल हो, तो उपचार न करें।

(२) रोगी के लिए जो क्रम (४) में दिये है, उनका रोगी द्वारा पालन सुनिश्चित करें।

(घ) **हाथों को संवेदनशील बनाना– (Sensitization of Hands)**

ऊर्जा आभा को जांचने के लिए हाथों को संवेदनशील बनाने की आवश्यकता होती है, जो हाथ के चक्रों को सक्रिय एवम् ऊर्जित करके किया जाता है। इसको निम्न प्रकार करें:–

(१) अपने दोनों हाथों को अपने सामने एक–दूसरे के सामने ढाई–तीन इंच की परस्पर दूरी पर समानान्तर रखिये। तनाव में न रहें, आराम से रहें।

(२) अपनी आँखें बन्द करें। फिर अपनी सांस को धीमी गति से एक लय से अंदर खींचें और बाहर छोड़ें और कई मिनट तक अपना ध्यान हथेलियों के बीच के हिस्से को महसूस करते हुए कीजिए। इससे हाथ के चक्र उत्तेजित होते हैं और इससे सूक्ष्म ऊर्जा और पदार्थ को महसूस करने के लिए हाथ संवेदनशील होते हैं या उसके लिए योग्य हो जाते हैं।

इसको सुनिश्चित करने के लिए, पहले एक हथेली के बीच के भाग को दूसरे हाथ के अगूंठे से कुछ पल तक खुजाइये और प्रत्येक उंगली के सभी पोरों को भी थोड़ा–थोड़ा सा खुजाइये। इसी प्रकार दूसरे हथेली के बीच के भाग और हाथ की उंगलियों के पोरों को खुजाइये। इसके बाद आँखें बन्द करके उक्त ध्यान लगाइये। इससे हाथ–चक्र व उंगलियों के चक्र शीघ्रता व सुगमता से ऊर्जित हो जाते हैं और हाथ संवदेनशील बन जाते हैं।

(३) जब आप उक्त ध्यान लगायेंगे तो महसूस करेंगे कि दोनों हथेलियों के बीच में एक प्रकार से चुम्बकीय तरंग स्थापित हो गई है, हो सकता है कि झुरझुरी, कम्पन या गर्मी महसूस हो। ध्यान लगाये रहना जारी रखें और अपने दोनों हाथों की परस्पर दूरी धीरे–धीरे इस प्रकार बढ़ायें कि उक्त तरंग का विच्छेद न हो। अपने हाथों को धीरे–धीरे अधिक से अधिक दूरी तक फैलाकर ले जायें, तब भी उक्त तरंग का विच्छेद नहीं होगा। हाथों को संवदेनशील का लगभग एक महीने तक अभ्यास करें। इससे आपको संवेदनशीलता में दक्षता आ जाएगी।

(४) यदि आप उक्त संवेदनीशलता प्राप्त नहीं कर पाते या बहुत कम कर पाते हैं, तो निराश न हों, इसका लगातार अभ्यास करें जब तक इसकी प्राप्ति नहीं हो जाती। यह भी हो सकता है कि आप चौथे अभ्यास में सूक्ष्म संवेदनाओं को महसूस करने योग्य हो जाएं। मन को खुला रखने और ठीक प्रकार से ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है।

(ङ) जांच प्रक्रिया– (Scanning)

(१) यदि आपके हाथ अति संवेदनशील हो गये हों, तो रोगी के बाह्य आभा मंडल को महसूस कर सकते हैं। अपना हाथ रोगी से लगभग तीन मीटर दूर रखें, फिर धीरे-धीरे हाथ रोगी के नजदीक लेते जाएं। जब आपको बाहरी आभा महूसस हो, तो रुक जायें। रोगी की बाहरी आभा का आकार प्रकार की जांच करिये।

(२) इसके बाद थोड़ा आगे बढ़ें तो आपको स्वास्थ्य आभा जो बाह्य आभा से थोड़ी सी अधिक घनी होगी, महसूस होगी। इसकी जांच कीजिये कि कहीं इस आकार की विकृति तो नहीं हो गई या कहीं छोटा–बड़ा तो नहीं है।

(३) इसके बाद सबसे महत्वूपर्ण आंतरिक आभा की जांच करना है जो सामान्यत: भौतिक शरीर से लगभग पांच इंच पर होता है। रोगी के सिर से पैर तक और आगे से पीछे तक जांच करें। दांये से बांये तक जांच करें। कहां असमानता है। इसी प्रकार विभिन्न ऊर्जा चक्रों के व्यास की जांच करें। गले की जांच करते समय सही व पूरी जांच के लिये रोगी की ठोड़ी ऊपर उठाकर रखनी चाहिए, क्योंकि ठोड़ी की आंतरिक आभा गले की वास्तविक परिस्थिति में बाधा डालती है। चूंकि छाती के स्तनाग्र फैफड़ों के सही जांच करने में बाधा डालती है, इसलिये फैंफड़े की जांच सामने से करने के बजाय बगल से व पीछे की ओर से की जानी चाहिए। मुख्य चक्रों, विशेष एवम् रोगग्रस्त अंगों, रीढ़ की हड्डी की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(४) सौर जालिका चक्र पर विशेष ध्यान दीजिए, इसका भाग ४ में विस्तारपूर्वक वर्णन है।

(५) यहाँ यह ज्ञातव्य हो कि यदि आप विभिन्न चक्रों का पास से माप लेंगे, तो अनेक चक्रों का माप लेना शालीनता के विरुद्ध होगा और उसमें रोगी का प्रतिरोध होना स्वाभाविक है, विशेष तौर पर मूलाधार चक्र, पैरिनियम चक्र, काम चक्र, नाभि चक्र, सौर जालिका

चक्र और हृदय चक्र के मामले में, क्योंकि स्त्रियों में ये चक्र उनके जननांग एवं यौवनांगों के पास अथवा उसी पर अवस्थित होते हैं। पुरुषों में भी कामचक्र, पैरिनियम चक्रादि के विषय में भी यह लागू होता है। इसके लिए आपको अपने हाथों की संवेदनशीलता के बढ़ाने का निरन्तर अभ्यास करना होगा ताकि आप दूर से ही रोगी के इन चक्रों को अपने दोनों हाथों में लेकर महसूस कर सकें। यदि आप इसमें प्रारम्भ में असफल होते हैं, तो कोई घबड़ाने की बात नहीं है। आपको धैर्यपूर्वक अपना संवेदनशीलता का अभ्यास जारी रखना पड़ेगा और यदि आपने दृढ़तापूर्वक निश्चय कर लिया है कि आपको इसमें सफल होना ही है, तो कोई कारण नहीं कि आप सफल न हों, किन्तु हो सकता है कि इसमें कुछ दिन अथवा कुछ सप्ताह लग जायें। इस स्थिति में आपको उक्त (घ) में दी गयी विधि का भी अनुसरण नहीं करना पड़ेगा बल्कि आपके केवल सोचने मात्र से आपके हाथ संवेदनशील हो जायेंगे।

(६) जांच करने में जितनी आपको दक्षता प्राप्त होगी, उतना ही आप सक्षम एवम् कुशल उपचार कर सकेंगे। यह उतना ही आवश्यक है जितना चिकित्सक के लिये मर्ज का निदान करना अथवा किसी मोटर वाहन के चालक के लिये स्टीयरिंग का नियंत्रण करना। यदि रोग का निदान ही न होगा, तो रोग कैसे ठीक होगा और मोटर वाहन का यदि स्टीयरिंग नियंत्रित न हुआ तो वाहन सही दिशा में कैसे चलेगा।

(च) आंतरिक आभा की जांच से प्राप्त परिणामों की व्याख्या

(१) प्राणशक्ति की कमी– यह प्राणशक्ति की कमजोरी या शिथिलता के कारण पैदा होती है। इस प्रकार से प्रभावित अंग में प्राणशक्ति या तो कमजोर होती है या फिर समुचित प्राणशक्ति नहीं होती है। प्राणशक्ति के कमजोर होने पर प्रभावित ऊर्जा चक्र भी कमजोर हो जाते हैं और गंदे बीमार जीवद्रव्य से भर जाते हैं।

(२) प्राणशक्ति का उभार– यह बहुत अधिक प्राणशक्ति और जीवद्रव्य पदार्थ के जमा होने के कारण होता है। यह रोगग्रस्त हो जाता है क्योंकि ताजी प्राणशक्ति आसानी से आ जा नहीं सकती। इससे भी ऊर्जा चक्र रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ से भर जाता है।

(३) एक ही अंग में कमी व उभार की संभावना– यह हो सकती है। उदाहरण के तौर पर जिगर का बांया भाग घना या उभार वाला हो सकता है और दांया भाग खोखला या दबा हुआ और कमजोर प्राणशक्ति वाला हो सकता है।

(४) आंतरिक आभा मंडल जितना छोटा होगा, प्राणशक्ति उतनी ही कमजोर होगी। यह जितना बड़ा उभार वाला होगा, प्राणशक्ति उतनी ही घनी होगी। बीमारी की तीव्रता इसके अधिक छोटापन या अधिक बड़ा आकार पर निर्भर है।

(५) किसी से वाद-विवाद होने पर अथवा किसी थकान आदि के कारण प्राणशक्ति असामान्य हो जाती है, किन्तु कुछ समय बाद स्वयमेव ही ठीक हो जाती है।

(६) किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले रोगी से पूछताछ करनी चाहिये।

(७) अन्त में यह निष्कर्ष निकालिए कि किस अंग व चक्र का उपचार आवश्यक है। उसकी प्राणशक्ति के स्तर एवम् स्वस्थता की क्या स्थिति है। निष्कर्ष निकालें कि कौन सा अंग का एवम् चक्रों का क्या उपचार करना है।

(छ) झाड़–बुहार– (Sweeping)

यह सफाई की एक पद्धति है। इसमें हाथों का उपयोग किया जाता है। यह दो प्रकार की होती है।

(१) सामान्य– इसमें पूरे जीव द्रव्य शरीर की सफाई की जाती है।

(२) स्थानीय– स्थानीय विशेष अंग एवम् चक्र की सफाई को कहते हैं।

(१) **सामान्य झाड़ बुहार– (General Sweeping)**

(क) रोगी को खड़े अथवा बैठी स्थिति में दोनों एड़ियों को परस्पर मिलाने के लिये कहें, पैर खुले रहें।

(ख) आप अपने दोनों हथेलियों को मिलाकर उसे कटोरानुमा आकार देकर लम्बवत स्तर (vertical plane) में रोगी के सिर से लगभग छह इंच ऊपर रखें। फिर मध्य से लेकर उसके शरीर के मध्य भाग में होकर, दोनों पैरों के मध्य में होते हुए दोनों हाथों को नीचे की ओर धीरे से लायें और यह सोचें कि आप रोगी के रोगग्रस्त एवम् उपयोग हो गयी हुई ऊर्जा को रोगी के शरीर से निकालकर अपने हाथों में ले रहे हैं तथा इसको महसूस कीजिये। यदि आपके हाथ संवेदनशील हैं तो इसमें कोई कठिनाई नहीं होगी। पैरों तक पहुंचने के बाद, रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ को फैंकने के लिए हाथों को थोड़ा ऊपर उठाते हुए अपने इच्छाशक्ति द्वारा उस संचित की गयी ऊर्जा को बेकार ऊर्जा निस्तारण की इकाई (waste disposal unit) जैसे नमक का पानी, जिसका वर्णन अध्याय १ क्रम सं. (ख) (१३) में दिया है, की ओर हाथों से तेजी से झटके से फेंकते हुए उसको निदेश दें कि वह इसमें घुलकर नष्ट हो जाये। रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ को फिर से दूषित होने से और स्वयं को भी दूषित होने से बचाने के लिए यह बहुत ही जरूरी है। यदि ऐसा नहीं किया जाये तो इससे न सिर्फ आपकी उंगलियों, हाथों और हथेलियों में दर्द होगा बल्कि आपका शरीर भी कमजोर हो जायेगा और/या रोगी की बीमारी भी आपको लगा सकती है। इसके बाद चित्र ५.०३ में दर्शाये हुए रेखायें ~~२, ३,~~
2,3,4,5 ~~४, ५~~ के सहारे इस क्रिया को दोहरायें।

(ग) इसके पश्चात् अब आप अपने हाथों की उंगलियों को कटोरेनुमा के बदले खुली सीधे कर दें। फिर इसी प्रकार उक्त क्रिया को

दोहरायें, किन्तु इस बार यह संकल्प करें कि आप इससे रोगी के स्वास्थ्य आभा मंडल की स्वास्थ्य किरणों में कंघी करके उसको साफ कर रहे हैं और उसकी उलझी हुई स्वास्थ्य किरणों को सुलझा रहे हैं तथा बाहरी आभा मण्डल में यदि कोई छेद या दरार हो तो उन्हें सील (seal) कर रहे हैं। साथ ही उक्त प्रकार रोगग्रस्त जीवद्रव्य को नमक के घोल की ओर झटकते रहें।

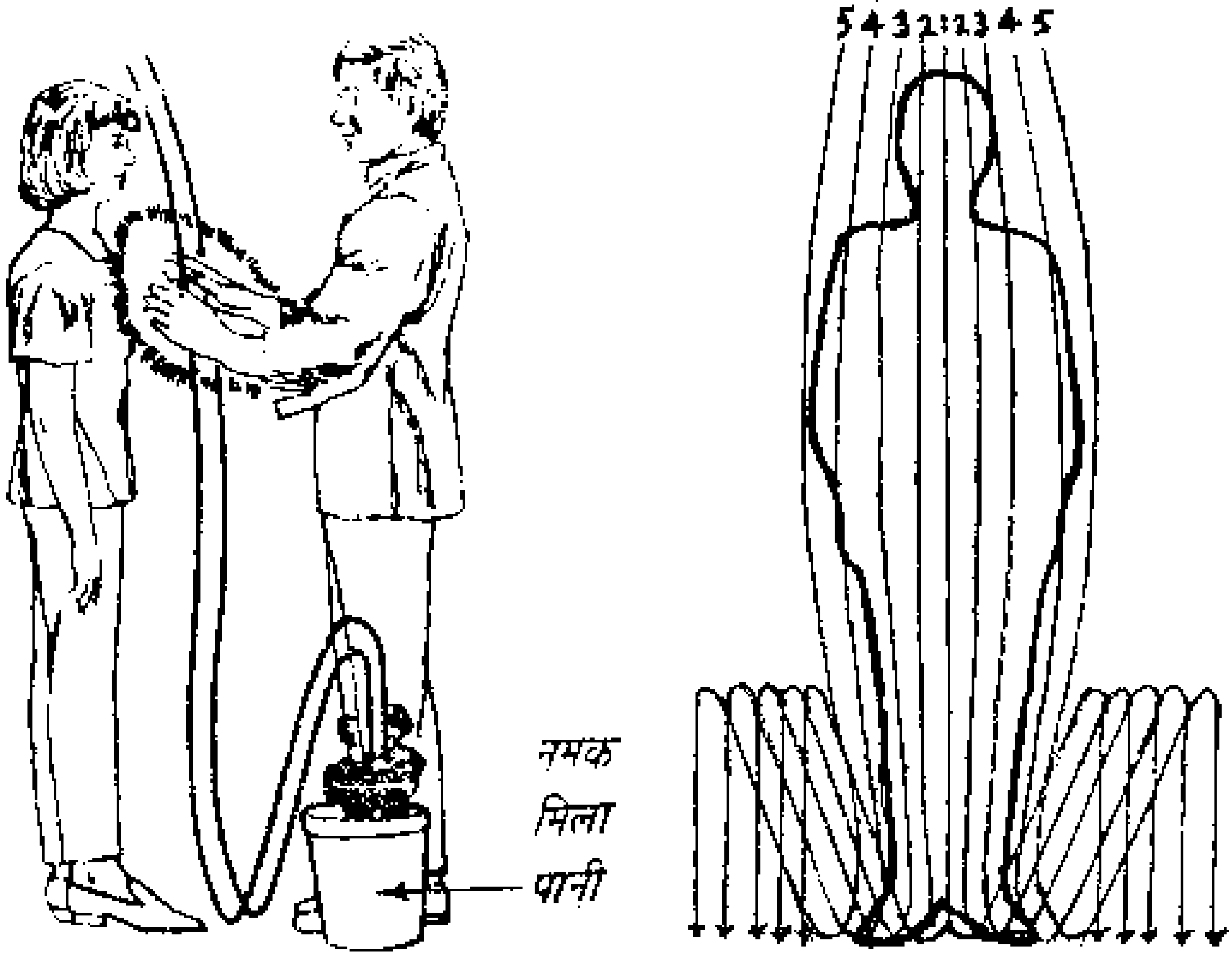

चित्र ५.०३ सामान्य झाड़ बुहार:

बीमार ऊर्जा की सफाई करने या उसे निकाल देने से ओजस्वी ऊर्जा या प्राणशक्ति के बढ़ने–फैलने में वृद्धि होती है जिससे उपचार भी तेजी से होता है। रोगी को खड़े करके, बैठाकर या नीचे लिटाकर भी सामान्य झाड़–बुहार किया जा सकता है। बुखार के इलाज के लिए यह पद्धति बहुत ही उपयोगी है।

(घ) उक्त विधि (ख) और (ग) के वर्णानुसार इसी क्रम से पंक्ति २, ३, ४ और ५ पर दोहराएं। पंक्ति ५ के सहारे जब आप आयेंगे तो हाथ रोगी के दोनों तरफ से लाने पड़ेंगे।

(ङ) अब पुनः समग्र दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को रोगी के पीछे की तरफ से दोहराएं। इसके लिए या तो आप रोगी के पीछे जाकर करें, अथवा रोगी के पीछे के भाग को अपने सामने दृष्टिकृत करते हुए करें, यह आपके सुविधा तथा अभ्यास पर निर्भर है।

(च) ये समस्त सामान्य झाड़-बुहार की प्रक्रिया कितना दफा करना चाहिए, इसका उत्तर यह है कि जितनी दफा जरूरत हो, उतने बार करना चाहिए।

(छ) रोगग्रस्त जीव पदार्थ को हटाने का संकल्प और पूरी विधि पर ध्यान केन्द्रित करना अति आवश्यक है, इसके बिना यह प्रक्रिया कम प्रभावशाली होती है। कभी-कभी केवल इसी प्रक्रिया से रोगी को आराम मिल जाता है।

इस प्रक्रिया से कुछ रोगी को कभी-कभी नींद आ सकती है। ऐसी दशा में उसको जगाए बिना आप अपनी विधि पूरी कीजिए।

सामान्य झाड़-बुहार से निम्नलिखित परिणाम प्राप्त होते हैं:-

(१) यह घने और रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ को साफ करता है। अवरुद्ध हुए शिरोबिंदु और जीवद्रव्य नाड़ियां साफ की जाती हैं और उनकी उलझन को दूर किया जाता है। इससे उपचार की प्रक्रिया पूरी करने के लिए प्राणशक्ति को शरीर के एक भाग से ले जाकर बीमार अंग तक पहुंचाया जा सकता है।

(२) प्रदूषित व बेकार पदार्थ, रोगाणु और रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ को शरीर से दूर करके स्वास्थ किरणों की उलझन को ठीक किया जा सकता है और उन्हें आंशिक रूप से ताकतवर बनाया

जा सकता है। प्राणिशक्ति द्वारा पूरे शरीर को ऊर्जित करके स्वास्थ्य किरणों को और अधिक ताकतवर बनाया जा सकता है।

(३) स्वास्थ्य किरणों की उलझान को दूर करके और उन्हें ताकतवर बनाकर सुरक्षा कवच की तरह काम करने वाले स्वास्थ्य आभा मंडल को सामान्य बनाया जा सकता है। इससे व्यक्ति की रोग संक्रमण की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है।

(४) झाड़ बुहार करने से बाहरी आभा मंडल के छिद्र अपने आप ही बंद हो जाते हैं जिनसे प्राणशक्ति बाहर रिसती है। बाहरी आभामंडल के छिद्रों को बंद नहीं करने से रोगी की प्राणशक्ति को ऊर्जित करने पर भी उपचार बहुत धीमे होता है, क्योंकि प्राणशक्ति इन छिद्रों से रिस जाती है। ऐसी स्थिति में होता यह है कि रोगी का उपचार करने के कुछ मिनट या कुछ घंटों बाद वह बीमारी दुबारा लौट आती है।

(५) झाड़ बुहार या सफाई करने के बाद रोगी में प्राणशक्ति को ग्रहण करने की शक्ति बढ़ जाती है।

(६) झाड़ बुहार का उपयोग इलाज किये गये एक अंग से इलाज के बाद बची हुई प्राणशक्ति को शरीर के दूसरे भाग तक पहुंचाने में भी किया जाता है। इससे प्राणशक्ति के घनेपन की भी समस्या नहीं रहती।

(७) झाड़–बुहार की प्रक्रिया द्वारा शरीर के आसपास के अंगों या चक्र या चक्रों से अतिरिक्त प्राणशक्ति को उन प्रभावित अंगों तक ऊर्जित करने के लिए भेजा जा सकता हैं जहां प्राणशक्ति की मात्रा कम होती है। जैसा कि उंगली के जोड़ के दर्द को सफाई करके और हाथ चक्र से अतिरिक्त प्राणशक्ति को झाड़–बुहार कर या प्रभावित उंगली तक उस अतिरिक्त प्राणशक्ति को भेजकर मिनटों में ही उसका इलाज किया जा सकता है।

(८) रोगी की सामान्य रूप से पूरी तरह झाड़–बुहार करके उग्र प्रतिक्रियाओं को या तो कम किया जा सकता है या रोका जाता है।

झाड़ बुहार प्राणशक्ति उपचार की एक बहुत ही प्रमुख पद्धति है जिसे आराम से सीखा जा सकता है। इससे सफाई होती है, ताकत मिलती है और उपचार की प्रक्रिया सरल बनती है। केवल झाड़–बुहार करने से ही कई छोटी–छोटी बीमारियों का उपचार किया जा सकता है।

(२) स्थानीय झाड़ बुहार

यह प्रभावित अंगों व चक्रों की वायवी सफाई को कहते हैं। इसके लिये अपने हाथों को संवेदनशील बनायें। फिर एक हाथ को फैलाकर तथा उसकी हथेली रोगी की ओर करें। अपनी संकल्पशक्ति से उसके प्रभावित अंगों एवम् चक्रों से अलग–अलग रोगग्रस्त एवम् उपयोग की हुई ऊर्जा को अपने हथेली में ग्रहण करके, नमक के पानी की ओर ऊपर बतायी हुई विधि से फैंके। जब तक आवश्यक हो, इस क्रिया को दोहराते रहें। सामान्य रोगों के लिए २० से ३० बार तक स्थानीय झाड़ बुहार करनी चाहिए। गम्भीर रोगों के लिए अधिक बार करनी पड़ेगी।

(ज) ऊर्जन करना (Energization)

झाड़–बुहार के पश्चात् साधारणतः प्रभावित चक्रों को अथवा अन्य चक्रों को ऊर्जित किया जाता है। बगैर सफाई किये किसी भी अंग/चक्र को ऊर्जित नहीं किया जाना चाहिए। यदि किसी प्रभावित अंग को भी ऊर्जित करना हो, तो सामान्यतः सम्बन्धित चक्र के माध्यम से किया जाता है, जब तक अन्यथा न निर्धारित हो। ऊर्जन करने के लिए, अपने हथेलियों को पुनः संवेदन कीजिए तथा अपनी सुविधानुसार अपने एक हाथ को फैलाकर उसकी हथेली ऊपर की ओर खुली रखें। अब आप अपनी संकल्प शक्ति से वातावरण से ऊर्जा इस हाथ के हाथ चक्र द्वारा ग्रहण करें तथा महसूस करें। फिर दूसरे हाथ के हाथ चक्र से रोगी के सम्बन्धित चक्र/अंग जिसको ऊर्जित करना हो, प्राणशक्ति ऊर्जा प्रेषित

करें तथा महसूस करें। चूंकि यह ऊर्जा उपचारक के शरीर के माध्यम से जाती है, इसलिए यह आवश्यक है कि आपके द्वारा ग्रहण की गयी प्राणशक्ति ऊर्जा रोगी को प्रेषित ऊर्जा से अधिक होनी चाहिए। इसके लिये आप बार-बार यह सोचते रहिए कि मैं प्रेषण की गई ऊर्जा से अधिक ऊर्जा ग्रहण कर रहा हूँ। यदि किसी कारणवश आपके द्वारा अधिक ऊर्जा प्रेषित कर दी जाती है, तो आप कमजोर हो सकते हैं। हाथ चक्रों के माध्यम से ऊर्जा प्रवाह को आसान बनाने के लिए अपनी दोनों बगलें थोड़ा सा खुली रखिये, यह बहुत जरूरी है। जब आप प्राण ऊर्जा द्वारा ऊर्जन करें तो उसको उचित, अत्यन्त स्पष्ट निदेश दीजिए कि उसको रोगी के चक्र/अंग में पहुंचकर क्या करना है तथा इसको कम से कम तीन बार दोहरायें। फिर उसका यथासम्भव दृश्यीकरण करके अथवा महसूस करके उस निर्देश के पालन को सुनिश्चित कीजिए। यदि आपके हाथ में कुछ दर्द या असहजता महसूस हो, तो यह रोगग्रस्त ऊर्जा के कारण होगा, ऐसी दशा में अपना हाथ झटककर उसको फैंकते रहें।

जब तक उपचार किया जा रहा चक्र/अंग अच्छी तरह ऊर्जित नहीं हो जाता, तब तक ऊर्जित करते रहिए। यदि उपचार किये जा रहे स्थान से हल्के से प्राणशक्ति लौटती हुई मालुम पड़े, या आपके द्वारा प्रेषित किये जा रहे ऊर्जा में ठहराव सा आता मालुम पड़े तो समझ लीजिए कि समुचित ऊर्जन हो चुका है और ऊर्जन बन्द कर देना चाहिए। इसके अलावा उपचार किये गये चक्र/अंग की जांच करके यह पता लगाया जा सकता है कि समुचित ऊर्जन हो गया है या नहीं। यदि किसी कारणवश अधिक ऊर्जन हो गया हो तो सफाई के तरीके से इसे कम कर दे।

ऊर्जन उंगलियों के चक्रों से भी किया जा सकता है, किन्तु यह बहुत तीव्र होता है और रोगी को चुभन या दर्द हो सकता है जो ठीक नहीं है। इस प्रक्रिया को अपनाने से पहले उपचारक को हाथ चक्रों द्वारा ऊर्जन करने में दक्ष होना चाहिए।

जब रोगी के भृकुटि चक्र को ऊर्जित करना हो, तो हाथ चक्र से ऊर्जित किये जाने पर उसकी आंखों का सीधा ऊर्जन सम्भव हो जाता है। इसलिए भृकुटि चक्र को ऊर्जन करने के लिए अपने हाथ की तर्जनी व मध्यमा उंगलियों को मिलाकर उन्हें रोगी के भृकुटि चक्र की ओर इंगित करके करना चाहिए और यह सुनिश्चित करिए कि उनकी सीध में रोगी की आंखें न आने पावें।

(झ) अपने हाथों की वायवी सफाई

रोगी के उपचार के दौरान रोगी की रोगग्रस्त ऊर्जा उपचारक द्वारा अनजाने में ग्रहण हो जाती है, इसके लिय उपचारक को बीच-बीच में अथवा दो प्रक्रियाओं के मध्य में अपने हाथों व बाहों को प्राणशक्ति ऊर्जा द्वारा बार–बार साफ करते रहना चाहिए। अपने दांये बांह के ऊपरी भाग से नीचे हाथों की उंगलियों एवम् उसके लगभग छह इंच आगे तक, बांये हाथ से दांयी बांह से लगभग दो इंच दूरी रखकर अपनी संकल्प शक्ति से अपने बांये हाथ के ऊर्जा चक्र से ऊर्जा प्रेषण करते हुए सफाई करना चाहिए। इसी प्रकार अपने बांयी बांह के ऊपरी भाग से नीचे हाथों की उंगलियों एवम् उसके लगभग छह इंच आगे तक, दांये हाथ से बांयी बाह से लगभग दो इंच की दूरी रखकर अपनी संकल्प शक्ति से अपने दांये हाथ के ऊर्जा चक्र से ऊर्जा प्रेषण करते हुए सफाई करना चाहिये। यह सफाई तीन–तीन बार या अपनी तसल्ली हो जाने तक करना चाहिए। ऐसा न करने पर उपचारक द्वारा रोगग्रस्त ऊर्जा ग्रहण करने के कारण हानि हो सकती है।

(ञ) प्राणशक्ति को स्थिर करना एवम् सील करना

इसकी विधि अध्याय १ के क्रम (ख) (११) में वर्णित है। यहां यह उल्लेखनीय है कि हाथ के व तलुओं के लघु चक्रों को कभी स्थिर या सील नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये वायु ऊर्जा को ग्रहण करते हैं और इनके स्थिरीकरण से ये चक्र इस ऊर्जा को ग्रहण करने में अक्षम हो जायेंगे।

(ट) प्राणशक्ति को मुक्त करना

जब आप उपचार पूरा कर चुकें, तो आपके व रोगी के मध्य स्थापित हुई वायवी डोर (etheric cord) को तोड़ना परमावश्यक है। इसकी विधि अध्याय १ के क्रम (ख)(१२) में वर्णित है।

(ठ) प्राणशक्ति को सहानुभूति से प्रेषित करना

यदि उपचारक रोगी को ऊर्जित करने के लिए प्राणशक्ति को सहानुभूति से प्रेषित करता है, तो रोगी उसको शीघ्र ही आसानी से ग्रहण कर लेता है। किन्तु यदि उपचारक अधिक संकल्पशक्ति लगाता है, तो उसका उसके कोशिकाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है और आरोग्य की दर कम हो जाती है या विपरीत प्रभाव भी हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध या चिड़चिड़ेपन की दशा में यदि ऊर्जन किया जाए, तो उसका विपरीत विध्वंसात्मक प्रभाव पड़ता है।

(ड) उपचार करने में कितनी इच्छाशक्ति लगायें

जब आप 'इरादा' या 'इच्छा' करते हैं तो अपनी मांसपेशियों को तनाव में रखने या असाधारण परिश्रम करने की आवश्यक्ता नहीं है। जब आप पूरी समझ, आशा से या ध्यानमग्न होकर कार्य करते हैं, वही आपकी इच्छा को दर्शाती है। एक पुस्तक को पढ़ने में जितना ध्यान लगाया जाता है, बस उतनी ही इच्छा शक्ति प्राणशक्ति उपचार के लिए साधारणतः काफी रहती है।

(ढ) रोगी को भूल जाना

उपचारक को रोगी का उपचार करने के पश्चात् तुरन्त ही भूल जाना चाहिए और न उपचार का परिणाम जानने का प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा जो उसने अपने व रोगी के बीच की वायवी डोर को काटा था, वह पुनः जुड़ सकती है। इस दशा में रोगी व उपचारक दोनों का अहित हो सकता है। रोगी की रोगग्रस्त ऊर्जा उपचारक के शरीर में आकर उसको रोगी बना सकती है।

यह बात हर केस में लागू होती है चाहे रोगी उपचारक का बच्चा, स्त्री, मित्र कोई भी हो। इस सम्बन्ध में अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखिए। इसी कारण से, जो उपचारक ऐसा नहीं कर पाते, वे अपने प्रियजनों का सक्षम उपचार करने में असमर्थ रहते हैं।

(ण) शिशुओं, बच्चों, बहुत कमजोर और बड़े-बूढ़े रोगियों पर बहुत अधिक प्राणशक्ति का उपयोग न करें। शिशुओं व बच्चों के चक्र बहुत छोटे होते हैं और उनमें अधिक ताकत भी नहीं होती। बहुत कमजोर और बड़े-बूढ़ों के चक्र कमजोर होते हैं। अधिक मात्रा में, तीव्रता या सघनता से ऊर्जित होने पर इनके चक्र में संकुचन या खिंचाव होता है, अन्यथा उनको हानि पहुंच सकती है। ऐसे रोगियों को उपचार के दौरान बीच-बीच में आराम करवाते रहिये। शिशुओं व बच्चों का ऊर्जन विशेष तौर पर बहुत ही नरमी से किया जाना चाहिए, जैसी नरमी उनसे हाथ मिलाने में की जाती है।

(त) यदि सौर जालिका चक्र का कदाचित, अधिक ऊर्जन हो जाता है, तो उसके परिणामस्वरूप चक्र में संकुचन या खिंचाव आने के कारण रोगी अचानक पीला पड सकता है या उसके सांस लेने में कठिनाई आ सकती है। ऐसी दशा में स्थानीय झाड़-बुहार कर सामान्य स्थिति करनी चाहिए।

(थ) आंखों को या आंख के चक्रों को सीधे ऊर्जन न करें। बहुत नाजुक होने के कारण उन पर आसानी से प्राणशक्ति का घनापन आ सकता है, जिससे एक लम्बे समय में वे खराब हो सकती हैं। ये पिछले सिर के चक्र से ऊर्जित की जा सकती हैं।

(द) हृदय को एवम् अगले हृदय चक्र को सीधे ऊर्जित नहीं करना चाहिये क्योंकि हृदय बहुत ही संवेदनशील एवम् कोमल होता है। इसको पिछले हृदय चक्र के माध्यम से हृदय व समस्त हृदय चक्र को ऊर्जित किया जाना चाहिये।

(ध) शिशुओं, बच्चों और बूढ़े लोगों के कटि चक्र ऊर्जित नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे रक्तचाप उच्च होकर उनका मस्तिष्क प्रभावित हो सकता है। गर्भवती महिलाओं के लिए भी इस चक्र को ऊर्जित नहीं करना चाहिए, अन्यथा गर्भस्थ शिशु पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। इस चक्र द्वारा उपचार केवल उन्नत और अनुभवी प्राणशक्ति उपचारकों द्वारा ही किया जाना चाहिए।

(न) शिशुओं और बच्चों के प्लीहा चक्र को ऊर्जित नहीं करना चाहिए क्योंकि प्राणशक्ति के घनेपन के कारण वे बेहोश हो सकते हैं। यदि कभी ऐसा हो जाये, तो सामान्य झाड़ बुहार करना चाहिए। जिनको उच्च रक्तचाप हो या उच्च रक्तचाप का इतिहास हो, उनका भी प्लीहा चक्र ऊर्जित नहीं करना चाहिए वरना रोगी की दशा इससे और बिगड़ सकती है। इस चक्र का उपचार उन रोगियों के उपचार के लिए किया जाना चाहिए जो बहुत कमजोर हैं या जिनमें प्राणशक्ति बहुत कम है। प्लीहा चक्र का इलाज केवल उन्नत और अनुभवी प्राणशक्ति उपचारकों द्वारा ही किया जाना चाहिए।

(प) उपचार करने के पश्चात पुनः जांच कर लें कि रोगी का कहीं उपचार करना तो नहीं आवश्यक है।

(फ) उपचारक को सहृदय होकर भी, रोगी से भावनात्मक रूप से उदासीन (detached) रहना चाहिए।

(ब) आरामपूर्वक उपचार करें और बीच-बीच में प्राणिक श्वसन भी करते रहें। प्राणिक श्वसन विधि अध्याय ५ के क्रम २ में दी गयी है।

(भ) कभी-कभी उपचारक न चाहते हुए भी स्वयं अपनी ही आंखों को ऊर्जित कर लेते हैं। चाहे वे ऊर्जन के लिये अपना हाथ चक्र ही का क्यों न प्रयोग कर रहे हों। यह जब होता है जब उपचारक को प्रभावित अंग/चक्र को उपचार करते समय घूरने की आदत होती है।

(म) उपचार के अन्त में अपने दोनों हाथों को बांहों से लेकर हथेलियों तक नमक के पानी से अवश्य धोइये, यह अवशेष रह गयी रोगग्रस्त ऊर्जा

से मुक्ति पाने के लिये अत्यावश्यक है। गम्भीर रोगों और संक्रामक रोगों की दशा में हाथों को कीटनाशक (germicidal) साबुन (जैसे लाइफबॉय, डैटोल, सैवलौन, कार्बोनिक साबुन) से भी धोयें।

(य) उपचार के अन्त में पुनः णमोकार मंत्र बोलकर एवम् पंच परमेष्ठी को नमन करके निम्नवत् उच्चारण करें:–

"हे परमपिता, मैं आपका कृतज्ञ हूं कि आपने अपने उपचार का मुझे उपकरण बनाकर आशीर्वाद प्रदान किया। मेरी प्रार्थना है कि मेरे द्वारा किये गये किसी प्रकार की मन, वचन, काय की क्रिया का इस रोगी पर विपरीत प्रभाव न पड़े। विश्वास के साथ तद्नुसार हो।"

(र) यदि उपचारक चाहे तो उपचार करने के बदले कुछ सामान्य पारिश्रमिक रोगी से प्राप्त कर सकता है, किन्तु किसी रोगी के उपचार के लिए इसलिये मना नहीं करना चाहिए क्योंकि वह निर्धन है और पारिश्रमिक देने में असमर्थ है। इतना पारिश्रमिक भी नहीं रखना चाहिए कि दूसरे को खल जाये। आवश्यक्ता हो, तभी पारिश्रमिक रखना चाहिए, अन्यथा परोपकार की भावना से उपचार करें। यदि उपचारक परोपकार की भावना से उपचार करता है, तो रोगी को (सु)दान हेतु अवश्य निर्देशित करें। इसका कारण है कि साधारणतः जब तक रोगी के जेब से कुछ खर्च नहीं होता, तब तक वह समझता है कि इलाज प्रभावी नहीं होता। मुफ्त के इलाज में वह यह भी सोचता है कि चलो इलाज कराकर देख लें– फायदा हो जाए तो ठीक, अन्यथा हमारा क्या जाता है। इस भावना में इलाज के लिए पूर्ण आस्था नहीं हो पाती, जिसके कारण इलाज अधिक प्रभावी नहीं हो पाता। इसलिए यह आवश्यक है कि रोगी अपने पास से कुछ व्यय करे– अधिक अच्छा होगा कि यह व्यय सुदान में जाए।

(ल) सामान्यतः उपचारक को एक दिन में पांच रोगियों से अधिक का उपचार नहीं करना चाहिए। यदि सम्भव हो सके एक दिन छोड़कर उपचार करना चाहिए तथा अध्याय ६ में वर्णित सप्ताह में एक बार स्व–प्राण चिकित्सा उपचार करना चाहिए, अन्यथा उसके स्वयं के रोग

पकड़ने की सम्भावना हो सकती है। इसके अतिरिक्त उसको प्रतिदिन द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन करना चाहिए।

(व) सम्पूर्ण प्राणशक्ति उपचार में उपचारक को रोगी का स्पर्श करने की आवश्यकता नहीं है।

(६) क्या बिना जांच किये उपचार संभव है

यदि उपचारक जांच नहीं कर पाता है, तो भी बिना जांच किये उपचार सम्भव है। साधारण केसों में आप रोगी से पूछें कि उसके शरीर के कौन सा भाग ठीक नहीं है या पीड़ित हैं। उसके बाद तीन बार सामान्य झाड़ बुहार करें तथा रोगी द्वारा बताये अंगों/भागों एवम् सम्बन्धित चक्रों पर स्थानीय झाड़ बुहार करें। गंभीर रोगों के लिए निर्धारित पद्धतियों को अपना सकते हैं। जैसे यदि रोगी हृदय रोग से पीड़ित है तो अधिकतर उसका हृदय और सौर जालिका चक्र अस्थिर या गलत ढंग से कार्य कर रहा होगा। इसलिए इन दोनों चक्रों की सफाई और ऊर्जित करने से रोगी की स्थिति में अधिक सुधार हो सकता है। हृदय या हृदय चक्र को सदैव पिछले हृदय चक्र द्वारा ही ऊर्जित करना चाहिए।

हालांकि आप बिना जांच किये कदाचित् उपचार कर सकते हैं, फिर भी आपको बहुत ही सटीक, सही और प्रभावी होना चाहिए। कभी-कभी गलत ढंग से कार्य करने वाले चक्र पीड़ित अंग से दूर होते हैं।

(७) आध्यात्मिक व्यक्तियों का उपचार

अध्याय १ के क्रम (ख) (३) में वर्णन किया गया है कि ऊर्जा का प्रवाह उच्च स्तर से निम्न स्तर तक होता है। आध्यात्मिक व्यक्तियों, संत, साधुओं का ऊर्जा स्तर अति विशाल और बड़ा होता है, जिसकी सानी प्राणशक्ति उपचारक नहीं कर सकता, चाहे वह अपना ऊर्जा स्तर विभिन्न उपायों से कितना ही क्यों न बढ़ा ले। इन व्यक्तियों की इसी कारण से समुचित तौर पर जांच करना कठिन होता है। ऐसी परिस्थिति में उपचारक को नौ बार णमोकार मंत्र बोलकर अति विनय एवम् भक्तिपूर्वक उस आध्यात्मिक व्यक्ति के गुरु से उनके चरणों में नमन करके प्रार्थना करनी चाहिए कि वे अपना आशीर्वाद दें कि उस आध्यात्मिक व्यक्ति का वह (उपचारक) उपचार कर सके। इस प्रार्थना को बार-बार करें। यदि गुरु दूरस्थ विराजित हों अथवा उनकी

समाधि हो गयी हो, तब भी उनसे इसी प्रकार मानसिक रूप से प्रार्थना करना चाहिए। गुरु के आशीर्वाद के बगैर उपचार करना कठिन है।

यदि आप फिर भी न सफल हो पावें, तो अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए, उनसे क्षमा माँगते हुए, प्रार्थना करें कि वे अपना स्वयं का इलाज़ स्व-प्राण चिकित्सा पद्धति से करें। इस सम्बन्ध में उनका ध्यान अध्याय ६ में विशेष तौर से उसके क्रम (१), (२), (४), (५), (१०), (११), व (१२) पर दिलाएं। उनसे यह भी निवेदन कर सकते हैं कि जिस प्रकार आहार व औषधि शरीर की रक्षा के लिए ग्रहण करना शास्त्र सम्मत है ताकि धर्म–साधन हो सके, उसी प्रकार चिकित्सा के इस उपाय को समझना चाहिए।

(८) प्राणशक्ति उपचार– सार

प्राणशक्ति उपचार से संबंधित अध्ययन के लिए उपयोगी कुछ खास विचार बिन्दुओं का सार निम्न है:–

(१) वास्तव में पूरा भौतिक शरीर दो प्रकार के शरीर से बना होता है: एक दिखाई देने वाला भौतिक शरीर तथा दूसरा न दिखाई देने वाला वायवी शरीर जो एक महीन, सूक्ष्म पदार्थ से बना होता है जिसे वायवी पदार्थ कहा जाता है। यह वायवी शरीर जीवद्रव्य शरीर के अनुरूप होता है।

(२) प्राणशक्ति के लिए वायवी शरीर वाहन का कार्य करता है।

(३) वायवी शरीर में कई नाड़ियां होती हैं, जिनके द्वारा प्राणशक्ति का संचार होता है। ये वायवी नाड़ियां शिरोबिन्दुओं या जीवद्रव्यी नाड़ियों के समान होती है।

(४) वायवी शरीर का आकार या ढांचा दिखाई देने वाले भौतिक शरीर पर आधारित होता है।

(५) वायवी शरीर में कई चक्र या तेज घूमने वाले वायवी केन्द्र होते हैं जो प्राणशक्ति को सोखते, पचाते और उसका वितरण करते हैं। यह पूरे शरीर को सही ढंग से कार्य करवाने के लिए जिम्मेदार होता है।

(६) कुछ चक्र हमारी मानसिक क्षमता तथा योग्यता के केन्द्र या हमारी मानसिक क्षमता के स्थान होते हैं।

(७) प्राणशक्ति को सूर्य के प्रकाश, वायु तथा पेड़ों से प्राप्त किया जा सकता है।

(८) दिखाई देने वाले भौतिक शरीर और उसके वायवी शरीर का आपस में इतना अधिक गहरा संबंध होता है कि जो चीज पहले को प्रभावित करती है, वह दूसरे को भी प्रभावित करती है। रोगी के वायवी शरीर से रोगग्रस्त वायवी पदार्थ को वहां से निकालकर या हटाकर और उपचारक के वायवी शरीर से प्राणशक्ति को रोगी के वायवी शरीर में स्थानांतरित करके या भेजकर उपचार किया जाता है।

(९) एक ताकतवर स्वस्थ शरीर आभा रोगाणुओं व संक्रमण के विरुद्ध एक सुरक्षात्मक कवच–सा कार्य करता है।

(१०) हाथ या पैर कट जाने के बाद भी कुछ व्यक्ति यह महसूस करते हैं कि उनके हाथ या पैर उसी स्थान में हैं। इसका कारण यह है कि उस अंग के वायवी ढांचे या वायवी रूप को कोई नुकसान नहीं हुआ है।

अब तक वायवी शरीर के अस्तित्व और अन्य आवश्यक बिन्दुओं का जो उल्लेख किया गया है उनको रूसी वैज्ञानिकों द्वारा बाद में जांचा गया या उनकी पुनर्खोज की गई है।

('साइकिक डिस्कवरीज बिहाइंड दि आयरन करटेन– (Psychic discoveries behind the Iron Curtain) – शीला ऑस्ट्रैन्डर ओरलिन श्रेडर। इंगलवुड क्लिफ्स: प्रैंटिक हॉल, १९७०, बैंटम संस्करण, १९७१– इस पुस्तक में रूसी वैज्ञानिकों द्वारा वायवी तथ्यों पर दिये गये गहन वैज्ञानिक खोजों का विवरण है। प्राचीन काल से गूढ़विज्ञान के विद्यार्थी जो भी जानते थे, केवल उन्हीं बातों की पुष्टि की गई है। सभी संदर्भ बैंटम संस्करण में दिये गये हैं।)

(६) प्रारम्भिक उपचार के कुछ उदाहरण

इनके उदाहरण नीचे दिये गए हैं। संक्षिप्तीकरण हेतु कुछ चिन्हों (संदृष्टियों) का इस पुस्तक में उपयोग किया गया है, जिनका ध्यान रखिए।

चिन्ह / संदृष्टि	विवरण
1	मूलाधार चक्र (Basic Chakra)
2	काम चक्र (Sex Chakra)
3	कटि चक्र (Meng Mein Chakra)
4	नाभि चक्र (Navel Chakra)
5	प्लीहा चक्र (Spleen Chakra)–अगला व पिछला दोनों मिलाकर
6	सौर जालिका चक्र (Solar Plexus Chakra)–अगला व पिछला दोनों मिलाकर
7	हृदय चक्र (Heart Chakra)–अगला व पिछला दोनों मिलाकर
8	कण्ठ चक्र (Throat Chakra)
9	आज्ञा चक्र (Ajna Chakra)
10	ललाट चक्र (Forehead Chakra)
11	ब्रह्म चक्र (Crown Chakra)
f	अगला (जैसे 7f का तात्पर्य अगले हृदय चक्र से है)
b	पिछला (जैसे 7b का तात्पर्य पिछले हृदय चक्र से है)
8'	उपकण्ठ चक्र (Secondary Throat Chakra)
a	कांख (armpit) के दोनों लघु चक्र
AP	प्रभावित भाग (Affected Part)
bh	सिर के पिछले भाग में अवस्थित (back head) चक्र
C	स्थानीय झाड़-बुहार करना (localized cleansing)
C'	अच्छी प्रकार स्थानीय झाड़–बुहार करना (thorough localized cleansing)
e	कोहनी (elbow) के दोनों लघु चक्र
E	ऊर्जन करना (to energise)
E'	अच्छी प्रकार ऊर्जन करना (thorough energisation)

GS	सामान्य झाड़–बुहार करना (General Sweeping)
h	कूल्हे (hip) के दोनों लघु चक्र
j	जबड़े (Jaw) के दोनों लघु चक्र
H	हाथ (हथेली) (Hand) के दोनों लघु चक्र
k	घुटने (knee) के दोनों लघु चक्र
K	दोनों गुर्दे (Kidneys)
L	यकृत (Liver)
Lu	फैंफड़े (Lungs)
n	नथुने (nostril) के दोनों लघु चक्र
p	पैरिनियम (perineum) लघु चक्र
PB	प्राणिक श्वसन (Pranic Breathing)
S	तलुवे (Sole) के दोनों लघु चक्र
t	कनपटी (temple) के दोनों लघु चक्र
T	C तथा E की दोनों प्रक्रियाएं (Treatment)
T'	C' तथा E' की दोनों प्रक्रियाएं
~	बारी–बारी से करना

उदाहरण के तौर पर–

(क) C6/E का तात्पर्य सौर जालिका के दोनों चक्रों की स्थानीय झाड़–बुहार करके, उसका ऊर्जन करना है।

(ख) C'5 का तात्पर्य प्लीहा के दोनों चक्रों की अच्छी प्रकार स्थानीय झाड़–बुहार करना है।

(ग) C7/E7 (7b के माध्यम से) का तात्पर्य हृदय के दोनों चक्रों की स्थानीय झाड़-बुहार करके, पिछले हृदय चक्र के माध्यम से दोनों चक्रों का ऊर्जन करना है।

(घ) C'(6,L)/E6f का तात्पर्य सौर जालिका के दोनों चक्रों और यकृत की अच्छी तरह स्थानीय झाड़–बुहार करके, अगले सौर जालिका चक्र का ऊर्जन करना है।

(ङ) C1/E' का तात्पर्य मूलाधार चक्र की स्थानीय झाड़–बुहार करके उसका अच्छी तरह से ऊर्जन करना है।

(च) GS (२ या ३) का तात्पर्य दो या तीन बार सामान्य झाड़–बुहार करने का है।

(छ) T4 का तात्पर्य नाभि चक्र का स्थानीय झाड़–बुहार करके, उसका ऊर्जन करना है अर्थात् C 4 / E है।

(ज) C8~E का तात्पर्य कण्ठ चक्र का बारी–बारी से स्थानीय झाड़–बुहार और ऊर्जन करना है।

(झ) C Lu (Lub के माध्यम से) का तात्पर्य फैंफड़ों की C, फिर फैंफड़ों का पिछले फैंफड़ों के माध्यम से E

उदाहरण

उपक्रम (१) सिर दर्द और आधे सिर का दर्द (आधा सीसी)– Headache and Migraine Headache

(क) 11, 10, 9, सिर के पीछे, पूरा सिर और गर्दन की जांच करें। इन अंगों में खोखलेपन या घनेपन के कारण सिरदर्द हो सकता है। आंखों, कनपटी और ७ की भी जांच करनी चाहिए।

(ख) T (11, 10, 9 सिर के पीछे और सिर के AP)– यदि घनेपन के कारण दर्द है, तो C ही काफी होगी।

(ग) यदि सिर दर्द आंखों के तनाव के कारण है, तो नीचे उपक्रम (२) में वर्णित उपचार करें।

(घ) यदि आधे सिर का दर्द है या भावनात्मक समस्याओं व तनाव के कारण दर्द है, तो C' तथा C' 6 / E, तब सिर के क्षेत्र का T करें।

उपक्रम (२) आँखों का तनाव तथा थकी आँखें– Eye Strain or Tired Eyes

(क) आँखों, 9, कनपटी तथा bh की जांच करें। इनकी प्राणशक्ति सामान्यतः कमजोर या खोखली होती है।

(ख) C' (आँखों), पुनः आंखों की जांच करें। यदि उसका आभा मण्डल बढ़ गया है तो समझें कि C ठीक हुई है।

(ग) T (9, bh, t), जब आप E कर रहे हों तो अपने मन में एक सफेद प्रकाश या प्राणशक्ति ऊर्जा की कल्पना करें कि वह आंखों के अन्दर जा रही है। आंखों को सीधे ऊर्जित न करें।

उपक्रम (३) सूनी आँखें– Sore Eye

(क) GS (२ या ३)

(ख) उपरोक्त उपक्रम (२) में वर्णित इलाज को करें।

उपक्रम (४) नाक से खून बहना– Nose Bleding

(क) T 9

उपक्रम (५) दाँत दर्द– Toothache

(क) AP की जांच करें। सामान्यतः यहां प्राणशक्ति कमजोर या कम होगी।

(ख) C' AP / E जब तक रोगी को आराम नहीं मिल जाता।

(ग) जितनी जल्दी हो सके रोगी को दन्त चिकित्सक से मिलने के लिए निदेश दें।

उपक्रम (६) गले की सूजन या स्वर यंत्र रोग– Sore Throat or Laryngitis

(क) T (8, 8' j)

(ख) जब तक जरूरी हो, इस इलाज को दिन में कई बार दोहरायें।

उपक्रम (७) सर्दी-खाँसी और सूजी नाक– Cold with cough and stuffy nose

(क) 9, 8, 8', 7b, फैंफड़े के चक्र और 6 की जांच करें। इनमें प्राणशक्ति या तो कमजोर या कम होगी या फिर घनी होगी।

(ख) GS

(ग) यदि नाक सूजी हो, तो T 9

(घ) यदि खांसी हो, तो T (8, 8')

(ङ) यदि Lu आंशिक रूप से प्रभावित हो, तो C (Lu तथा 7b) / E Lu (7b के माध्यम से)

(च) T 6, इससे पूरे भौतिक शरीर को ऊर्जा और ताकत मिलेगी।

(छ) उपचार किये गये भाग को पुनः जांच करें। ठीक इलाज होने पर रोगी को आराम मिलना चाहिए।

(ज) चार घंटे बाद पुनः इलाज करें, ताकि पिछला इलाज प्रभावी हो जाये।

(झ) रोगी को आराम करने व कम भोजन करने के लिए कहें।

उपक्रम (८) कान दर्द– Earache

(क) C (प्रभावित कान) / E

(ख) यदि नाक रुंधी हो, तो T 9

(ग) जब तक जरूरी हो तब तक दिन में दो–तीन बार इलाज करें। यदि रोग के लक्षण यथावत रहें, तो रोगी को मेडिकल डॉक्टर से मिलने के लिए कहें।

उपक्रम (९) बुखार– Fever

इसके इलाज के तीन भाग हैं: बुखार को कम करना, बांहों और पैरों की हड्डियां ऊर्जित करके और शरीर में प्राण ऊर्जा शक्ति के स्तर को बढ़ाकर शरीर की प्रतिरक्षा बनावट को ताकतवर बनाना तथा बुखार के कारणों या प्रभावित अंगों का इलाज करना।

(क) पूरे शरीर, मुख्य चक्र, प्रमुख अंग व रीढ़ की हड्डी की जांच करें। इसमें साधारणतः प्राणशक्ति की कमी हो जाती है और आंतरिक आभा मण्डल कम होकर दो इंच (या उससे कम) और 6 में प्राण शक्ति का घनापन बढ़ जाता है।

(ख) GS (३ से ५ बार) कर पूरे शरीर को अच्छी तरह साफ करें।

(ग) C 6 (३० या उससे अधिक बार) / E 6 f

बुखार की तेजी कम करने के लिए उक्त (ख) व (ग) महत्वूपर्ण हैं। सफाई पर ज्यादा ध्यान दें। पूरे शरीर और 6 की अच्छी तरह सफाई करें क्योंकि शरीर गंदी, लाल-गर्म प्राणशक्ति ऊर्जा से भर जाता है और 6 मटमैली लाल-गर्म ऊर्जा से भर जाता है।

(घ) कई केसों में GS और C' 6 से ही बुखार कम हो जाता है।

(ङ) T (4, H, S), प्रतिरक्षा तंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए हाथ और पैर की हड्डियों में सफेद प्रकाश या प्राणशक्ति अंदर जाती हुई की कल्पना कर सकते हैं। इससे भी H और S आंशिक रूप से उत्तेजित होकर उनकी वायु और भूमि प्राण ऊर्जा को सोखने की क्षमता बढ़ जायेगी। इससे धीरे-धीरे और स्थिर रूप से पूरा शरीर ऊर्जित होगा और रोगों से लड़ने के लिए समुचित प्राणशक्ति प्राप्त होगी। H और S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(च) T 11

(छ) सर्दी और खांसी के साथ होने वाला बुखार प्रायः सांस के संक्रमण रोग के साथ मिला होता है। यदि 9, 8, 8', 7 b और Lu प्रभावित हों, तो इनका T करें।

(ज) E 1 न करें, क्योंकि इससे तापमान बढ़ जाता है। E S से 1 स्वयं ही ऊर्जित हो जायेगा।

(झ) इस विधि से अधिकांश रोगी एक घंटे में लाभ पाते हैं। कभी-कभी शुरू में तापमान बढ़ सकता है जो रोग के कीटाणुओं तथा सफेद रक्त कोशिकाओं के परस्पर तीखी झड़प के कारण होता है। इस बढ़े हुए तापमान को C' 6 व GS द्वारा ठीक किया जा सकता है।

(ञ) उपचार की गति को तेजी देने के लिये दिन में दो से तीन बार उपचार करें। एक या दो दिन में ही रोगी ठीक हो सकता है।

(ट) शिशुओं और बच्चों के लिये थोड़ी सी C' 6 कर लें। थोड़े समय में ही तापमान कम हो जायेगा। यदि जरूरत हो, तो इस इलाज को दिन में कई बार करें।

(ठ) यदि रोग के लक्षण यथावत रहें, तो रोगी को मैडिकल डॉक्टर तथा उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

उपक्रम (१०) हिचकियां– Hiccup

(क) T 6, जब तक रोगी ठीक न हो जाए

(ख) यदि रोगी लम्बे समय से पीड़ित है, तो T 4 जब तक रोगी ठीक नहीं हो जाता।

(ग) आवश्यक्तानुसार इलाज कई बार करें।

उपक्रम (११) भूख कम लगना– Poor Appetite

(क) T (6, 4)

(ख) जरूरी हो, तो दुबारा इलाज करें।

उपक्रम (१२) पेट दर्द और गैस दर्द– Stomach Pain and Gas Pain

(क) 6f, 4 और पेट की जांच करें।

(ख) C' (6 f, 4, पेट) /E (6f, 4)- यदि C ठीक नहीं हुई, तो रोगी में उग्र प्रतिक्रिया हो सकती है या उसकी हालत बिगड़ सकती है।

(ग) कई केसों में C' (6f, 4 और पेट के ऊपर के व निचले भाग) से आंशिक या पूरी तौर पर रोगी ठीक हो जाता है।

(घ) रोग के लक्षण यथावत रहने की दशा में रोगी को मैडिकल डॉक्टर तथा उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

उपक्रम (१३) दस्त (अतिसार पानी जैसा दस्त आना)– Diarrhoea

(क) 6f, 4 और पेट की जांच करें।

(ख) GS

(ग) C (6f, 4) तथा C' पेट/ E (6f, 4) – इसके थोड़ी देर बाद रोगी को आराम मिल जाना चाहिए।

(घ) 6 f, 4 और पेट के ऊपरी व निचले भाग पर यदि थोड़ा सा C कर दिया जाये तो साधारणतः आंशिक या पूरे रूप से आराम मिलता है।

(ङ) यदि रोगी बहुत कमजोर है, तो शरीर को ताकत पहुंचाने के लिए T1

(ट) यदि रोगी को दर्द बहुत ही अधिक हो रहा हो और पतले दस्त अधिक मात्रा में हों तो समझना चाहिए कि C ठीक नहीं हुई है। इसके लिए C' (6, 4 और पेट का निचला भाग)।

(ठ) यदि रोग के लक्षण यथावत रहें, तो रोगी को मैडिकल डॉक्टर तथा उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

उपक्रम (१४) कब्ज– Constipation

(क) 6f, 4, पेट और 1 की जांच करें।

(ख) T (6f, 4, 1)

(ग) सामान्य रोगी कुछ ही समय में ठीक हो जाता है। गम्भीर और पुराना कब्ज हो, तो कई घंटे लग सकते हैं। पुराने कब्ज के लिये, इस इलाज के लगातार करने से उत्सर्जन तंत्र (eliminative system) में सुधार होगा और वह ताकतवर भी बनेगा।

उपक्रम (१५) पराजीवी कृमि– Parasite Worms

(क) उक्त उपक्रम (१४) में वर्णित इलाज करें। सप्ताह में कई बार करें।

(ख) रोगी को मैडीकल डॉक्टर से सलाह लेने के लिए कहें।

उपक्रम (१६) मासिक धर्म का दर्द– Dysmenorrhea

(क) 2, 4] पेट का निचला भाग, 1 की जांच करें।

(ख) C' (2, 4, 1)/E

(ग) यदि रोगी थका हो या उसे चक्कर आते हों, तो T6

(घ) बहुत से रोगियों को कम समय में ही आराम हो जाता है।

(ङ) इस दर्द से बचने के लिए मासिक धर्म शुरू होने से तीन दिन पहले ही इलाज किया जा सकता है।

उपक्रम (१७) अनियमित मासिक धर्म या मासिक धर्म न होना–

Irregular Menstruation or No Menstruation

(क) जो इलाज ऊपर उपक्रम (१६) में बताया है।

(ख) T (9, गला)

(ग) जब तक जरूरी हो, सप्ताह में कई बार इलाज करें।

उपक्रम (१८) मांसपेशियों का दर्द और मोच– Muscle pain and Sprain

(क) C (AP) / E' – अधिकांश रोगी थोड़े समय में आंशिक रूप से ठीक हो जायेंगे।

(ख) मोच आ जाने पर E पूरी तरह ठीक होने तक चालू रखें। रोगी को चाहिए कि AP से अधिक काम न करे।

उपक्रम (१९) पीठ दर्द– Backache

(क) साधारणतः प्राणशक्ति की कमजोरी या कमी के कारण पीठ का दर्द होता है, इसलिये रीढ़ की हड्डी की अच्छी तरह जांच करें।

(ख) C' (पूरी रीढ़ की हड्डी)

(ग) T (AP, 6,1)

(घ) E 3 न करें। सामान्यतः इस इलाज से तेजी से लाभ होता है।

(ङ) स्थायी उपचार के लिए अगले कुछ सप्ताह तक इलाज बार-बार करें।

उपक्रम (२०) हाथ उठाने में कठिनाई– Frozen shoulder

(क) यह कठिनाई बगलों और उसके आसपास के भागों में प्राणशक्ति की कमी या घनेपन के कारण हो सकती है। इन अंगों की अच्छी तरह जांच करें।

(ख) C' (कंधे और प्रभावित बगल) / E

(ग) C' a / E, इससे बहुत ही कम समय में सुधार होता है।

(घ) T (6, 4, 1) – इन चक्रों को ताकत पहुँचाने के लिए, 1 अस्थि तंत्र को नियंत्रित करता है।

(ङ) हाथ को उठा पाने की कठिनाई के पीछे हृदय रोग या उच्च रक्तचाप की समस्या भी हो सकती है। यदि रोगी उच्च रक्तचाप से पीड़ित है, तो उक्त (घ) न करे।

उपक्रम (२१) गर्दन में खिंचाव– Stiff Neck (Spondylitis)

(क) सिर के पीछे का निचला भाग, पूरी गर्दन, कंधे और बगलों की जांच करें।

(ख) C' (उक्त अंग) / E

(ग) यदि हृदय रोग या उच्च रक्तचाप के कारण गर्दन में खिंचाव हो, तो मैडिकल डॉक्टर और उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलें।

उपक्रम (२२) मांसपेशियों में ऐंठन– Muscle Cramps

(क) AP की जांच करें।

(ख) जब तक पूरी तरह आराम नहीं मिल जाता, तब तक C (AP) ~ E' करें।

(ग) T 1

उपक्रम (२३) साधारण जलने पर– Minor Burns

(क) यदि गर्म पानी या तेल से शरीर का कोई अंग जल गया हो, तो उसे धीरे से पौंछ दें।

(ख) जब तक समुचित आराम नहीं मिल जाता, तब तक C (AP) ~ E' करें। यदि यह ठीक तरह किया गया, तो छाला या फफोला नहीं पड़ेगा, बल्कि एक लाल निशान आयेगा। इस निशान के गायब होने तक दिन में कई बार इलाज करें।

(ग) यदि कोई भाग को जले कुछ घंटे या दिन हो गये हों, तो E, C' (उस जले भाग, 1) जले भाग का समुचित ऊर्जन सुनिश्चित करें।

(घ) जब तक जरूरी हो, सप्ताह में कई बार इलाज करें।

उपक्रम (२४) गूमढ़ और चोट– Contusion and Concussion

(क) T (AP)

(ख) कई दिनों तक प्रतिदिन तीन या चार बार यह इलाज दोहरायें।

(ग) ठीक प्रकार इलाज होने से नीला या काला निशान नहीं रहेगा।

(घ) यदि सिर पर गूमढ हो, तो शीघ्र ही मैडिकल डॉक्टर और उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

उपक्रम (२५) कटे हुए और ज्वलनकारी घाव– Cuts and Inflamed Wounds

(क) शीघ्र ही C (नये, कटे घाव) / E'

(ख) यदि घाव में जलन हो, तो C' (AP) (५० से १०० बार तक) / E

(ग) उपचार की गति बढ़ाने के लिये T 1

(घ) आवश्यकतानुसार दिन में दो या तीन बार इलाज दोहरायें।

उपक्रम (२६) धूप से चमड़ी झुलसना– Sunburn

(क) GS (३), क्योंकि रोगी और प्राणशक्ति की अधिकता या घनेपन से पीड़ित होता है।

(ख) C (AP), जब तक रोगी समुचित या पूरी तौर से ठीक नहीं हो जाता।

उपक्रम (२७) दाद-खाज एवं त्वचा की सामान्य एलर्जी– Eczema and Minor Skin Allergy

(क) जब तक अच्छी तरह आराम नहीं मिलता, तब तक केवल T (AP)

(ख) C L (आगे, पीछे, दांये व बांये)

(ग) T (6, 1)

(घ) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार इलाज करें।

उपक्रम (२८) फोड़े फुंसियां— Boils

(क) C' (AP)/ E, ठीक तरह इलाज होने की दशा में फुंसियों का रंग गहरे लाल के बदले गुलाबी हो जायेगा।

(ख) यदि फुंसियां बहुत पुरानी हों तो C' L, इसके बाद T 6

(ग) T 1

(घ) यदि आवश्यक हो, तो इलाज दोहरायें।

उपक्रम (२९) कीड़ों व खटमलों का काटना— Insect and Bug Bites

(क) जिस अंग पर कीड़े ने काटा हो, वहां की लालिमा और सूजन कम होने तक C ~ E

(ख) आवश्यक्तानुसार इलाज दोहरायें।

उपक्रम (३०) मुंहासे— Pinplas Pimples

(क) C' (चेहरा) / E', चेहरे की प्राणशक्ति कम होती है और आंतरिक आभामंडल भूरा होता है।

(ख) (9, 8, 6, 4, 2, 1) की जांच करें और इनका T करें।

(ग) चेहरे का उपचार दिन में एक या दो बार किया जा सकता है, जबकि चक्रों का इलाज दो या तीन दिन में एक बार किया जा सकता है।

(घ) रोगी को अपनी खुराक पर ध्यान देना चाहिए और अपना चेहरा साफ करना चाहिए। मुहासों को खुजलाना नहीं चाहिए।

उपक्रम (३१) अनिद्रा— Insomnia

(क) यदि रोगी बहुत ही उत्तेजित है, या उसमें बहुत अधिक ऊर्जा है, तो GS (२ या ३), इससे ही नींद आ जायेगी।

(ख) यदि रोगी में प्राणशक्ति कम हो या कमजोर हो तो, GS कई बार करें। तथा T (4, 6)

(ग) यदि रोगी भावनात्मक रूप से परेशान है, तो GS कई बार करें तथा C' (11, 6,1)/ E

इसके अतिरिक्त 3 और अधिवृक्क ग्रंथियों के दांये और बांयी ओर T करें। इनमें प्राणशक्ति अधिकतर घनी होती है। रोगी के आराम के लिये T 7 b

(घ) जब तक जरूरी हो, सप्ताह में तीन बार इस इलाज को करें।

उपक्रम (३२) सामान्य जोड़ों का दर्द या गठिया— Minor Arthiritis or Rheumatism

(क) जब तक आंशिक या समुचित रूप से आराम न मिले, तब तक C(AP)~ E

(ख) C (रीढ़ की हड्डी)

(ग) C' (6, 4, 1)/ E-- चूंकि 1 शरीर के मांसपेशी और अस्थितंत्र को नियंत्रित व ऊर्जित करता है, इसलिये 1 का उपचार जरूरी है। यदि रोगी उच्च रक्तचाप से पीड़ित हो, तो इस क्रिया को न करें।

(घ) जब तक जरूरी हो, इस इलाज को सप्ताह में कई बार करें।

(ङ) यदि रोगी जाहिरा तौर पर ठीक हो गया है, तो आवश्यक नहीं कि वह पूरी तौर पर ठीक हो गया है। कभी-कभी आंशिक रूप से ठीक होने पर भी ऐसा होता है इसीलिए रोगी का कई बार इलाज करने की जरूरत होती है।

उपक्रम (३३) सामान्य कमजोरी— General Weakness

(क) GS (२ या ३)

(ख) T (1, 2, 6)

(ग) इस विधि का उच्च रक्तचाप, ट्यूमर, रतिज रोग के रोगी या रतिज रोग के इतिहास रखने वाले व्यक्तियों पर न करें।

(घ) जब तक जरूरी हो, तब तक सप्ताह में तीन बार इलाज दोहरायें।

उपक्रम (३४) थकान— **Relieving Tiredness**

(क) जैसा उक्त उपक्रम (३३) में वर्णित है।

(ख) कामकाजी व्यक्तियों के लिये इस पद्धति का उपयोग "ऊर्जा शक्ति को बढ़ाने" के रूप में किया जाता है।

उपक्रम (३५) यदि आप निश्चिंत न हों तो क्या करें (सामान्य रोगों के लिए)

(क) रोगी से उसकी समस्या पूँछें।

(ख) C' (AP) (२०-३० बार) / E

(ग) जरूरत के अनुसार इलाज दोहरायें।

(१०) उपचार कितने अंतराल पर किया जाये

यह निम्न कारकों पर निर्भर करता है :

(१) रोग की गंभीरता और तीव्रता ।

(२) प्राणशक्ति की खपत की दर। जलने, कटने, सूजन, तीव्र संक्रमण रोगों में इसकी ज्यादा खपत होती है।

(३) उपचार किये जा रहे अंग का नाजुकपन और प्रमुखता। नाजुक अंग का इलाज लम्बे अंतराल पर करना चाहिए, क्योंकि इससे प्राणशक्ति के घनेपन से बचा जा सकता है और

(४) रोगी की उम्र व स्वास्थ्य की दशा। बहुत ही कमजोर और बूढ़े व्यक्तियों के लिए हल्के और लम्बे इलाज की जरूरत पड़ती है क्योंकि उनके प्राणशक्ति के ग्रहण करने की शक्ति कम होती है।

(११) उपचार की सम्पूर्ण या समग्र दृष्टि— Integrated Approach

रोग का कारण आंतरिक या बाहरी हो सकता है या दोनों हो सकते हैं। यह बात साफ है कि व्यक्ति का स्वास्थ्य भौतिक शरीर, जीव द्रव्य शरीर और मानसिक स्वास्थ्य के अच्छे होने पर निर्भर करता है। यद्यपि प्राणशक्ति उपचार द्वारा कई सामान्य और गंभीर रोगों का इलाज हो सकता है, फिर भी इलाज को पक्का करने व तेज करने के लिए जड़ी बूटियां या मैडिकल उपचार लेना

भी ठीक होता है। इसके अतिरिक्त एक्यूपंचर, एक्यूप्रेशर, योगासन आदि का भी सहारा लेना चाहिए। कट्टरतावाद या किसी कार्य की अति करने से बचना चाहिए।

(१२) प्राणशक्ति उपचार में इच्छाशक्ति कैसे करें

जब आप "इरादा" करते हैं, "इच्छा" करते हैं तो आपको अपने मांसपेशियों में तनाव लाने या असाधारण मेहनत करने की जरूरत नहीं है। जितना ध्यान एक पुस्तक को पढ़ने में लगाया जाता है, उतना ही प्राणशक्ति के अथवा प्राणशक्ति के उपचार के विषय में लिखा गया है, उसमें आपका विश्वास या अंधविश्वास हो सकता है किन्तु आपसे यह उम्मीद या अपेक्षा अवश्य है कि जो भी नियम या पद्धतियां इस पुस्तक में बताई गयी हैं, उनको खुले और खोजी दिमाग से, पूर्ण रुचि के साथ उनकी योग्यता की जांच करें।

(१३) पूर्णोपचार के समय के नियम

भौतिक शरीर की तुलना में जीवद्रव्य शरीर के उपचार की गति तेज होती है। इस कारण से भौतिक शरीर को रोग ठीक होने के लिए कुछ समय लग सकता है। यह जैविक द्रव्य की टूट फूट या अव्यवस्था और रोगी की उम्र तथा उसकी शारीरिक स्थिति पर निर्भर करता है।

(१४) पूर्ण उपचार में कितना समय लगता है

यह इलाज की आवृत्ति, रोगी की उम्र, उसकी शारीरिक स्थिति, रोगी के इलाज ग्रहण करने की शक्ति, बाधक तत्वों की उपस्थिति या उपचार पूर्ण होने में रुकावट पैदा करने वाले सामान्य कारक, खराबी की मात्रा, रोग की प्रकृति, प्राणशक्ति उपचारक का ज्ञान व मनःस्थिति, रोगी से मिलने वाले सहयोग की मात्रा और कुछ केसों में अन्य सहायक इलाज (मैडिकल आदि) पर निर्भर करता है।

साधारण और गंभीर रोगों के इलाज में लगने वाला समय कुछ मिनट से लेकर कुछ महीनों तक लग सकता है। लेकिन सभी रोगों का इलाज नहीं किया जा सकता। अनेक केसों में मैडिकल इलाज अधिक सफल नहीं पाया है तब प्राणशक्ति उपचार कारगर होता हुआ देखा गया है।

(१५) दर्द या रोग के लक्षण दुबारा जल्दी उभर आना

इसके कई कारण हो सकते हैं :–

(क) C यह E ठीक नहीं किया गया हो

(ख) जिस रोगी के बाहरी आभा मण्डल में छेद हो, उसकी GS न की गयी हो, इससे प्राणशक्ति रिसती रही हो।

(ग) प्राणशक्ति को ऊर्जन के पश्चात ठीक से स्थिर न किया गया हो।

(घ) गंदे जीव पदार्थ द्रव्य को फेंकने के लिये निस्तारण–इकाई (जैसे नमक का घोल) प्रयोग में नहीं लिया हो।

(ङ) समुचित E न हुआ हो, इससे रोगग्रस्त ऊर्जा वापस रोगी के शरीर में चली गयी हो।

(च) यदि रोगी अपने रोग को याद रखने का प्रयत्न करता है तो रोगग्रस्त जीव पदार्थ रोगी की ओर आकृष्ट हो जाता है।

(छ) यदि उपचारक अपने उपचार के परिणाम जानने को ज्यादा उत्सुक है, तो प्रेक्षिपित प्राण ऊर्जा उससे समुचित तौर पर छूटती नहीं और दुबारा उपचारक के पास आ जाती है।

(ज) रोगी ऐसे गंभीर रोग से पीड़ित है जो बहुत तेजी से प्राणशक्ति को ग्रहण करता है (जैसे कैंसर) या प्रक्षेपित प्राणशक्ति समुचित मात्रा में न रही हो। ऐसे में रोगी का उपचार बहुत बार किया जाना चाहिए।

(१६) कुछ रोगियों के ठीक नहीं होने के कारण

(क) उक्त (१५) में वर्णित कारण

(ख) उचित प्राणशक्ति उपचार की कमी

(ग) अधिक दफा इलाज की आवश्यक्ता होने पर पुनः–पुनः उपचार न मिलना।

(घ) अन्य प्रकार के इलाज की आवश्यक्ता, जैसे कुपोषण और समुचित भोजन न करने से होने वाली बीमारियां।

(ङ) रोगी बहुत ही बूढ़ा और बहुत ही कमजोर या बीमार है। कुछ अनजान कारणों से बूढ़े रोगी प्रक्षेपित प्राणशक्ति की अधिक मात्रा अपने शरीर में रोककर नहीं रख पाते। इसका यह अर्थ नहीं कि बहुत बूढ़े बीमार रोगियों का इलाज नहीं करना चाहिए बल्कि इनकी समुचित देख रेख और सहानुभूतिपूर्वक इलाज करना चाहिए।

(च) सम्पूर्ण उपचार का सही समय अभी तक नहीं आया है। रोगी शायद अभी तक यह नहीं सीख पाया है जो उसे सीखना चाहिए।

(छ) नकारात्मक कर्म जिनका वर्णन अध्याय १ के क्रम संख्या (ख) (१७) पर दिया है।

(१७) व्यक्तिगत स्वास्थ्य समस्यायें जो उपचारक की हो सकती है।

(क) कुछ उपचारक अपने उंगलियों के जोड़ों, हाथों और भुजाओं में दर्द महसूस कर सकते हैं। यह रोगी से प्राप्त होने वाले रोगग्रस्त जीव पदार्थ के कारण होता है। इसे GS और C द्वारा दूर किया जा सकता है तथा नमक के पानी से हाथों और भुजाओं को धोना चाहिए एवम् कीटनाशक साबुन से भी धोना चाहिए। इसके लिए स्व–उपचार जिसका वर्णन अध्याय १० में दिया है, किया जा सकता है।

(ख) नकारात्मक भावनाओं एवं थके होने की अवस्था में उपचार करने के कारण।

(ग) उपचार तेज गति से करने के कारण.

(घ) उपचारक का अवचेतन अवस्था में भी रोगी को ऊर्जित करते रहने के कारण।

(ङ) उपचारक के आसपास बहुत से रोगी बैठे रहने के कारण, वे व्यक्ति उपचारक से अवचेतन अवस्था में प्राणशक्ति ग्रहण करते रहते हैं। इस समस्या से बचने के लिए उपचारक को रोगियों को एक खास दूरी पर अथवा अलग कमरे में बिठाना चाहिए।

(च) उपचारक को क्रम संख्या (५) में दिये गये निदेशों का उसके द्वारा समुचित से न पालन करने के कारण

(छ) यदि उपचारक अपने स्वयं के घनिष्ठ और सम्बन्धित कुटुम्बी जन (जैसे स्त्री, माता, पिता, सन्तानादि) अथवा मित्र के उपचार के दौरान/उपचार समाप्त करने के बाद अपने को भावनात्मक तौर पर अलग न कर पा रहा हो अथवा उनके कुशलता की चिन्ता लगातार उसके ध्यान में रहे, तो उपचार के पश्चात दोनों के मध्य वायवी डोर को काटने के पश्चात, वह तुरन्त जुड़ जाती है। ऐसी परिस्थति में रोगी को सलाह देनी चाहिए कि वह ऐसी अन्य प्राणशक्ति उपचारक अथवा डॉक्टर से अपना इलाज करवाये।

(१८) जीव द्रव्य के कम्पन की दर

यह प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होती है। यदि उपचारक की कम्पन की दर रोगी से अधिक होती है, तो रोगी हल्का और अच्छा महसूस करेगा। यदि इससे विपरीत हुआ, तो वह कुछ भारीपन और कठिनाई महसूस करेगा। ऐसे में उपचारक को चाहिए कि वह उस दिन इलाज न करे और आराम करने के पश्चात तथा द्विहृदय पर ध्यान–चिंतन करके किसी अन्य समय रोगी का उपचार करें। यदि रोगी का जीव द्रव्य शरीर उपचारक के तुलना में बहुत उत्तम होता है, तो उपचारक को उसका इलाज नहीं करना चाहिए, अन्यथा विपरीत परिणाम हो सकते हैं। ऐसी दशा में किसी ऐसे उपचारक से जिसका जीव द्रव्य शरीर रोगी से ज्यादा उत्तम हो, से इलाज करवाना चाहिए।

(१९) प्राणशक्ति उपचार का उपचारक पर प्रभाव

जब उपचारक लगातार प्राणशक्ति उपचार का अभ्यास करता है तो उसका जीव द्रव्य शरीर धीरे–धीरे साफ होता है और उत्तम किस्म का बनता है। उसका आंतरिक आभा मण्डल और अधिक घना हो जाता है। वह एक शक्तिशाली उपचारक बन जाता है। उसके स्वास्थ्य पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

(२०) प्राणशक्ति ऊर्जा उपचार सीखना क्या मुश्किल है ?

बिल्कुल नहीं। इसके लिए निम्न बातें होना चाहिए:–

(१) अभ्यार्थी की उम्र १८ वर्ष से कम न हो। अधिकतम आयु कोई नहीं है।

(२) अभ्यार्थी जो सामान्य बौद्धिक क्षमता, ध्यान केन्द्रित करने की सामान्य योग्यता, खुला परन्तु उचित चुनाव करने वाला मन और एक सीमा तक दृढ़ प्रतिज्ञ हो।

(३) अभ्यार्थी का संकल्प हो कि उसे इस विद्या को सीखना है।

(४) यह अधिक श्रेयस्कर होगा कि अभ्यार्थी इस विद्या को निःस्वार्थ व परोपकार की भावना से सीखे।

(२१) अभ्यार्थी किस प्रकार सीखे ?

(क) इस पुस्तक के चौथे व पांचवे भाग के इस अध्याय ४ तक ध्यानपूर्वक पढ़े, मनन करके एवम् चिन्तन करे। कम से कम चार–पांच दफे पढ़ें।

(ख) यदि सम्भव हो सके तो किसी प्राणशक्ति उपचार प्रशिक्षण के केन्द्र में ट्रेनिंग प्राप्त करें। इस केन्द्र से द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन का ऑडियो टेप (Audio Tape) कदाचित् प्राप्त भी हो सकता है, अन्यथा जैसे इस भाग के अध्याय ३ में सुझाव दिया है कि इसका टेप स्वयं बना सकते हैं। आप इस ध्यान को नियमित तौर पर कीजिए।

(ग) वर्तमान में भारत में जो केन्द्र प्रस्तुतकर्ता की जानकारी में हैं, वह इस अध्याय के बाद परिशिष्ट ५.०१ में दिये हैं, उनसे सम्पर्क कर सकते हैं। इसमें समय–समय पर संशोधन हो सकते हैं।

(घ) आप सामान्य रोगों के उपचार से प्रारम्भ कीजिए उससे आपका आत्म–विश्वास बढ़ेगा। एक रिकार्ड रखें कि किस मरीज को क्या रोग था, क्या उपचार किया गया और क्या परिणाम निकला।

(ङ) रोगी के लिये और उपचारक के लिए निदेशों को विशेषतर पर देखें कि उनका समुचित पालन किया जा रहा है।

(च) यह ज्ञातव्य हो कि जांच प्रक्रिया जितनी ज्यादा दक्ष होगी, उपचार उतना ही प्रभावशाली होगा। बगैर समस्या का निदान करके, उपचार करना कठिन होता है इसलिए उपचारक को इसकी दक्षता का अभ्यास निरन्तर करते रहना चाहिए।

(छ) गाड़ी चलाने की तरह इसमें कुशलता प्राप्त करने के लिए नियमित अभ्यास और समय की जरूरत होती है।

(ज) इस विषय पर इस पुस्तक में जो भी लिखा है उसमें आपका विश्वास हो भी सकता है या नहीं भी हो सकता है किन्तु, आपसे यही आशा या अपेक्षा है कि जो भी नियम और पद्धतियां बतायी गई है, उनको खुले और खोजी दिमाग से अपनी पूरी रुचि के साथ उनकी योग्यता की जांच करें।

(झ) आगे अध्यायों में कहीं ऐसा भी हो सकता है कि प्रारम्भ में पढ़ने पर यह भलीभांति समझ में नहीं आए। इसलिए यह अच्छा रहेगा कि आप प्राणशक्ति उपचार में इस अध्याय को पढ़ने के बाद अथवा संभव हो तो प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार का प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद, कुछ अभ्यास कर अनुभव प्राप्त कर लें। जैसे इसके अध्याय ५ में माध्यमिक श्रेणी अध्याय ६ में स्व प्राण चिकित्सा, अध्याया ७ मे दूरस्थ प्राण चिकित्सा, अध्याय ८ से २२ तक उन्नत रंगीन प्राण चिकित्सा, अध्याय २५ में निदेशात्मक अध्याय २६ में प्रार्थना द्वारा, अध्याय २७ में प्राणिक लेसर, अध्याय २८ से ३१ तक रत्नों द्वारा प्राणशक्ति, अध्याय ३२ में दिव्य उपचारों का वर्णन है, जिनमें उत्तरोत्तर अधिक ज्ञान, अभ्यास और अनुभव की आवश्यक्ता पड़ेगी। इनमें कई प्रसंग पहले अनुभव के आधार पर ही ठीक प्रकार समझ में आ सकेंगे और इन्हीं अनुभवों के आधार पर ज्ञान भी विकसित होगा।

परिशिष्ट ५.०१

(क) भारतवर्ष में प्राणशक्ति के प्रशिक्षण केन्द्र एवम् उपचार केन्द्र

१. Sri C. Sundaram, President
Dr. Ramesh Singh Chouhan, Executive Secretary
All India Pranic Healing Foundation Trust,
2nd Floor, Sona Towers,
71, Millers Road,
Bangalore- 560052
Tel: (080) - 2204783, 2204784

२. Sri C. Sundaram
Pranic Healing Foundation of Karnataka,
Address as in (I) above (Tel. 2204783)

३. Sri Sushil Joseph
Pranic Healing Foundation of Tamil Nadu,
Colt Computer Centre, Round Table House,
69, Nungamakkam High Road,
Chennai- 600 034
Tel: (044) - 8257113

४. Sri Swamy Parmananda
Sri Sahaja Foundation for Pranic Healing,
Puranikattu Patti, Valavanthi Nadu,
Namakkal
Koli Hills- 637 411 (Tamil Nadu)
Tel: (04826) – 47459

५. Sri Jayanthi Patel
Pranic Healing Foundation of Maharashtra,
3, Gandhi Bunglaw, First Floor, LBS Marg,
Karnani Line Junction,
Ghatkopar- West,
Mumbai- 400 077
Tel: (022) - 5116914

६. Sri Sharadamba A
Pranic Healing Foundation of Andhra Pradesh,

8-2-676/I/B/5, Deccan Gardens,
Sriram Nagar, Road 12, Banjara Hills,
Hyderabad- 500 034 (A.P.)
Tel: (040) - 3398261

७. Sr. Eliza Kuppozhackel
Pranic Healing Foundation of Kerala,
Bakker Hill
Kottayam- 686 001 (Kerala)
Tel : (0481) 564 119

८. Sri Krishnan Veerappan
Pranic Healing Foundation of Delhi,
B-26, Gitanjali Enclave,
New Delhi – 110 017
Tel : (011) - 4615400

९. Sri Sripat Sharma, President — श्रीपत शर्मा
Pranic Healing Foundation of Uttar Pradesh
39, Sheo Charan Lal Road, — ३९, शिव चरन लाल रोड,
Allahabad- 211 003 — इलाहाबाद– २११००३
Tel: (0532) - 401192, 401690 (Also – 600261)

१०. Sri B.B. Sharma, President (Tel: 0522 - 2380785) — श्री बी.बी. शर्मा
B.B. Goyal, Secretary (Tel: 0522 - 2209188) — श्री बी.बी. गोयल
Pranic Healing Centre (Affiliated to U.P. Foundation),
20/175, Indira Nagar, — २०/१७५, इन्दिरानगर,
Lucknow- 226 016.. — लखनऊ– २२६ ०१६.

(ख) उत्तर प्रदेश में प्राणशक्ति उपचार केन्द्र

१. विद्युत पेन्शनर्स परिषद कार्यालय,
फ्लैट नं १०३, कीर्ति शिखर बिल्डिंग,
विकास दीप के पीछे,
२२, ऑफ स्टेशन रोड, छितवापुर उड़यन,
लखनऊ।
टेलीफोनः (०५२२) २६३६०११

२. मालवीया शिशु मन्दिर,
विवेक खण्ड प्रथम, गोमतीनगर,
लखनऊ।
टेलीफोनः (०५२२) २३६६७८६

३. अली मिशन, ५ कैसर मार्केट
नेपियर रोड कोलोनी– द्वितीय,
चौक, लखनऊ।
टेलीफोनः (०५२२) २२४८८२४

४. हाइडिल ऑफिसर्स क्लब,
विवेकानन्द पुरी,
लखनऊ।

५. विवेकानन्द पॉलीक्लिनिक,
डा० चन्द्रा सुब्रामन्यम,
प्राणिक विभाग, निराला नगर
लखनऊ।
टेलीफोन (०५२२) २३२८४८६

६. भगवान नित्यानन्द ह्यूमन सर्विस सेन्टर,
बी–२१, सेक्टर– K,
पुरनिया चौराहा, टेलीफोन केन्द्र के पास,
अलीगंज,
लखनऊ।
टेलीफोन: (०५२२) २३२३८६१

७. प्राणिक हीलिंग सैन्टर,
भवानीगंज कोआपरेटिव कॉलोनी,
अपट्रान फैक्ट्री के पीछे, टिकैटराय का तालाब,
लखनऊ।
टेलीफोन: (०५२२) २२६३७२२

८. प्राण शक्ति उपचार केन्द्र,
D- १२८, राजाजीपुरम,
पंजाब नेशनल बैंक के पीछे,
लखनऊ।
टेलीफोन: (०५२२) २४१७०५६

९. श्रीमती अनुराधा मेहता,
B- ३७ / ६७ , बिरदोपुर,
महमूरगंज,
वाराणसी
टेलीफोन: (०५४२) २३६०२०१, २३२१७४३

१०. श्री पी.डी. कम्बो और श्री उपकार सिंह
५१ / ५ , विजय नगर,
कानपुर।
टेलीफोन: (०५१२) २२२३१३०, २२१७६११

अध्याय ५

माध्यमिक
प्राण–शक्ति उपचार

Chapter V

Intermediate
Pranic Healing

प्राण ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार

Intermediate Pranic Healing

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	प्राणशक्ति बढ़ाना	५.६४
२.	प्राणशक्ति श्वसन पद्धति	५.६४
३.	भू–प्राणशक्ति प्राप्त करना	५.६५
४.	वायु–प्राण शक्ति प्राप्त करना	५.६५
५.	पेड़ से प्राणशक्ति प्राप्त करना	५.६५
६.	भू, वायु एवं पेड़–प्राणशक्ति प्राप्त होने के बाद	५.६६
७.	उन्नत चिकित्सा पद्धति	
	(१) प्राणशक्ति श्वसन पद्धति द्वारा हाथ व उंगलियों को संवेदनशील बनाना	५.६६
	(२) उंगलियों द्वारा जांच करना	५.६६
	(३) प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया का झाड़-बुहार में उपयोग	५.६७
	(४) प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया द्वारा ऊर्जन करना	५.६७
	(५) ऊर्जित करना: वितरणशील झाड़-बुहार पद्धति	५.६९
	(६) उपचार के लिए भू-प्राणशक्ति का उपयोग	५.६९
८.	चक्रों का आवर्तन	५.१००
९.	सामान्य और गम्भीर केसों का इलाज	५.१०१

उपक्रम संख्या

(१)	ओजस्वी ऊर्जा स्तर बढ़ाकर शरीर के प्रतिरोधी तंत्र को मजबूत करना – Enhancing the Body's Defense System by increasing its vital energy level	५.१०१
(२)	खसरा, जर्मन, मीज़ल्स व छोटी माता Measles, German Measles and Chicken Pox	५.१०२
(३)	कर्णमूल शोथ तथा टॉन्सिलाइटि्स Mums and Tonsillitis	५.१०२
(४)	मसूढ़ों में रक्त का रिसाव – Gum Bleeding	५.१०२
(५)	पायोरिया – Pyorrhea	५.१०३
(६)	मूर्छा आना – Fainting	५.१०३
(७)	निकट दृष्टिवत्ता, दूर दृष्टिवत्ता, दृष्टि वैषम्य व भैंगापन Near Sightedness, Far Sightedness, Astigmatism, Cross-Eyes and Wall Eyes	५.१०३
(८)	तीव्र व दीर्घकालीन ग्लाकोमा – Chronic and Acute Glaucoma	५.१०४
(९)	हृदय रोग-- Heart Ailments	५.१०५
(१०)	उच्च कोलेस्ट्रॉल – High Cholesterol	५.१०६
(११)	उच्च रक्तचाप – High Blood Pressure	५.१०६
(१२)	सूंघने की शक्ति चली जाना – Loss of Smell	५.१०७
(१३)	शिरानाल शोथ – Sinusitis	५.१०८
(१४)	श्वास सम्बन्धी रोग(निमोनिया, क्षय रोग, वातस्फीत आदि) Respiratoty Ailments (Pneummonia, Tuberculosis, Emphysema etc.)	५.१०८
(१५)	दमा – Asthma	५.१०९
(१६)	यकृत शोथ – Hepatitis	५.११०

(१७)	जठरीय व ग्रहणीय अल्सार – Gastric and Duodenal Ulcers	५.१११
(१८)	बवासीर - Hemorrhoid (Piles)	५.१११
(१९)	दीर्घकालीन एपैंडिसाइटिस – Chronic Appendicitis	५.१११
(२०)	लगातार पेशाब आना/बिस्तर में पेशाब करना –Frequent Urination/ Bed Wetting	५.११२
(२१)	प्रोस्टेट ग्रंथि का बढ़ जाना –Enlarged Prostate Gland	५.११२
(२२)	गुर्दे व मूत्राशय के संक्रामक रोग – Kidney and Bladder Infections	५.११२
(२३)	नपुंसकता –Impotence	५.११३
(२४)	बांध्यता – Infertility	५.११३
(२५)	टूटी हड्डी – Broken Bones	५.११३
(२६)	जोड़ों का दर्द और गठिया – Arthiritis and Rheumatism	५.११४
(२७)	हड्डी जोड़ दर्द – Osteoarthiritis	५.११५
(२८)	गठिया – Gout	५.११६
(२९)	गठिया जोड़–दर्द – Rheumatoid Arthiritis	५.११६
(३०)	मेरुदण्ड कुब्जता – Scoliosis	५.११७
(३१)	पक्षाघात के कारण लकवा – Paralysis due to Stroke	५.११८
(३२)	अंतस्त्रावी के रोग – Ailments of the Endocrine Glands	५.११८
(३३)	गर्भवती महिलाएं – Pregnant Women	५.११९
(३४)	गर्भवती महिलाएं जिन्हें प्रसव में कठिनाई होती है	५.११९
(३५)	जिस महिला को प्रसव हुआ हो, उसे शीघ्र ही सामान्य कैसे करें।	५.११९

(३६) गर्भपात का इतिहास रखने वाली महिलाओं का गर्भपात कैसे रोकें ५.११६
(३७) गर्भपात का इतिहास रखने वाली महिलाओं का पेट में दर्द ५.१२०
(३८) शल्य चिकित्सा से पहले और बाद में रोगियों का इलाज Treating patients before and after undergoing surgery ५.१२०
(३९) कैन्सर – Relieving Cancer Patients ५.१२१
(४०) बुढ़ापे की गति को कम करना – Reducing the rate of Aging (Old age) ५.१२३
(४१) तनाव – Stress or Strain ५.१२४
(४२) निश्चित न होने पर क्या करें (कठिन या दुःसाध्य केसों के लिए) ५.१२४
१०. उपचारी देव दूतों की नियुक्ति ५.१२५

प्राण–ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार

माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार– Intermediate Pranic Healing

१. प्राणशक्ति बढ़ाना

इसमें सभी नियम वही हैं, जो पहले वर्णित किये जा चुके हैं। आपने अध्याय ४ में वर्णित प्रारम्भिक स्तर पर अपने हाथ चक्र द्वारा प्राणशक्ति प्राप्त करने का तरीका सीखा। आशा है कि आपने अनेक रोगियों का इस पद्धति से अब तक उपचार किया होगा और आपको थोड़ा अनुभव एवम् आत्मविश्वास भी प्राप्त हुआ होगा। अब माध्यमिक स्तर पर विभिन्न उपायों से अपनी प्राणशक्ति ऊर्जा के स्तर में और अधिक वृद्धि करेंगे, ताकि उपचारक की उपचार –योग्यता और अधिक बढ़ सके। अपनी प्राणशक्ति ऊर्जा बढ़ाने की पद्धतियां निम्नलिखित हैं :

२. प्राणशक्ति श्वसन पद्धति

इस प्रक्रिया में आपको इतनी ऊर्जा प्राप्त होती है कि आपका ऊर्जा आभा मण्डल कुछ समय के लिये शत प्रतिशत या अधिक बढ़ जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान उपचारक अधिक शक्तिशाली हो जाता है । उसका वायवी शरीर चमकदार और घना हो जाता है। इन सभी को जांच करके प्रमाणित किया जा सकता है।

(क) धीरे-धीरे पेट के अन्दर सांस लें, किन्तु फैंफड़ों में सांस नहीं जानी चाहिए। फिर एक गिनने तक रुकें।

(ख) धीरे–धीरे सांस बाहर छोड़ें और फिर एक गिनने तक रुकें।

जब पेट के अन्दर सांस खींचते हैं, तब आपका पेट थोड़ा फूल जाता है और जब आप सांस छोड़ते हैं, तब पेट थोड़ा सिकुड़ जाता है। अपने पेट को न तो अधिक फुलाएं, न ही अधिक सिकोड़ें। इससे सांस लेने में बेकार की कठिनाई होगी।

इस श्वसन प्रक्रिया को उपचार प्रारम्भ करने से ठीक पहले करें। पांच से पन्द्रह बार तक आवश्यकतानुसार करें। उपचार के दौरान भी सुविधानुसार इसको दोहरायें।

प्राणशक्ति श्वसन का अच्छी तरह अभ्यास कीजिए, यह अत्यन्त आवश्यक है।

३. भू– प्राणशक्ति प्राप्त करना

जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है, प्रत्येक पैर में एक–एक छोटा चक्र (तलुवा चक्र) होता है। कुर्सी पर आराम से बैठकर नंगे पैरों को भूमि पर रखें। अब तलुआ चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करके क्रम संख्या (२) में वर्णित प्राणशक्ति श्वसन करें। इससे तलुवा चक्र द्वारा बहुत अधिक मात्रा में भू-प्राण शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। भू–प्राणशक्ति वायु–प्राण शक्ति के तुलना में अधिक प्रभावी होती है। इस प्रक्रिया को प्रारम्भ करने से पहले अपने तलुवों को हाथ के अंगूठे से दबायें या थोड़ा सा खुजायें। इससे आपके तलुवे चक्र अधिक संवदेनशील बन जायेंगे और अधिक मात्रा में भू–ऊर्जा ग्रहण कर सकेंगे। ध्यान रहे कि जिस भूमि से आप ऊर्जा ग्रहण करें, वह गंदी या अशुद्ध न हो जैसे श्मसान भूमि, नाले के ऊपर, मल—मूत्र स्थानादि।

४. वायु से प्राणशक्ति प्राप्त करना

अपने हाथों को संवेदनशील बनाकर, हाथ चक्रों (H) को खुला रखकर उस पर ध्यान केन्द्रित करें और साथ ही प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया करें।

५. पेड़ से प्राणशक्ति प्राप्त करना

अपने हाथों को संवदेनशील बनायें। फिर किसी स्वस्थ व घने पेड़ के पास खड़े होकर या बैठकर, उससे निवेदन करें कि वह अपनी अतिरिक्त स्वास्थ्यमयी ऊर्जा आपको दे दे। इस निवेदन को तीन बार दोहराएं। फिर अपने हाथ चक्रों पर ध्यान केन्द्रित करें और साथ ही प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया करें। श्वसन प्रक्रिया दस बार करें और फिर पेड़ को तीन बार धन्यवाद दें। हो सकता है कि आपमें से कुछ को सुन्न होने का या पूरे शरीर में झुरझुरी का अनुभव हो।

६. भू, वायु एवं पेड़–प्राणशक्ति प्राप्त होने के बाद

प्राप्त प्राणशक्ति को पूरे शरीर में फैला दें। इसके लिए आप अपने मन में इस तरह दृश्यीकरण करें कि मानो एक सफेद प्रकाश या प्राणशक्ति पूरे शरीर में भर गई हो। प्राणशक्ति को पीछे से आगे की और फिर आगे से पीछे की ओर और अपनी इच्छाशक्ति से कई बार लगातार घुमाते रहें।

७. उन्नत चिकित्सा पद्धति

उपक्रम (१) प्राणशक्ति श्वसन पद्धति द्वारा हाथ व उंगलियों को संवेदनशील बनाना

अब तक आप हाथों को भाग ४ में बतायी विधि द्वारा संवेदनशील बनाने में दक्ष या अर्धदक्ष हो गये होंगे। अब प्राणशक्ति श्वसन के दौरान हाथों व उंगलियों के चक्रों पर ध्यान लगायें तथा कुछ समय तक यह श्वसन करते रहें व ध्यान लगाये रखें। इससे आपके हाथ चक्र संवेदनशील बनेंगे। कुछ अभ्यास के पश्चात् आप पायेंगे कि प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया के प्रारम्भ करते ही बहुत ही अल्प समय में ये चक्र ऊर्जित होते हैं और संवेदनशील बन जाते हैं। इससे आप पक्के तौर पर अपनी हथेलियों और उंगलियों द्वारा जांच (Scanning) कर सकते हैं। कुछ और अभ्यास के बाद आप पायेंगे कि बगैर प्राणशक्ति प्रक्रिया किये हुए भी मात्र इन हाथों व उंगलियों पर ध्यान देने से ये संवेदनशील और ऊर्जित हो जाते हैं।

उपक्रम (२) उंगलियों द्वारा जांच करना

यदि कोई व्यक्ति आँख की समस्या से पीड़ित है तो आम तौर पर उसकी आँख की प्राणशक्ति कम होगी जबकि उसके आसपास का आंतरिक आभामण्डल सामान्य हो सकता है। चूंकि हथेली सामान्यतया बड़ी होती है और आँखों के आंतरिक आभामंडल का व्यास लगभग दो इंच का होता है, इसलिए हथेली छोटे रोगग्रस्त भागों को महसूस नहीं कर पाती। अगर जांच करने के लिये केवल एक या दो उंगलियों का उपयोग किया जाये, तो इस समस्या को दूर किया जा सकता है। रीढ़ की हड्डी भी एक या दो उंगलियों की सहायता से जांच करनी चाहिये। इसी प्रकार अन्य अंग भी हो सकते हैं, जिनकी जांच उंगलियां द्वारा हो पाती है, जैसे कान के अन्दर, गले पर इत्यादि।

उपक्रम (३) प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया का झाड़-बुहार में उपयोग

यदि प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया के साथ सामान्य व स्थानीय झाड़-बुहार किया जाये, तो इसका प्रभाव और बढ जाता है क्योंकि इससे एक उचित सीमा तक रोगी की प्राणशक्ति की सफाई और उसे ऊर्जित करने की प्रक्रिया साथ-साथ होती है। इस प्रकार का झाड़ बुहार बहुत ही प्रभावी होता है और सामान्य उपचारों के लिए यही काफी भी हो सकती है। रोगी से कई फीट दूर रहकर और कुछ ही बार में झाड़ बुहार किया जा सकता है।

आप जब रोगी को ऊपर से नीचे की ओर सामान्य झाड़ बुहार कर रहे हों तब एक सफेद चमकदार प्राणशक्ति को दृश्यीकृत कर सकते हैं जो रोगी के सिर से पैर तक झाड़ बुहार और धुलाई कर रही है। यह कल्पना करें कि स्वास्थ्य किरणें तनकर सीधी हो गई है। ऐसा करने से और भी अधिक प्रभावी सफाई होती है।

झाड़ बुहार करते समय जीवद्रव्य नाड़ी या चैनल (meridians) पर अधिक ध्यान रखना चाहिए। प्लीहा चक्र को छोड़कर सभी बड़े चक्र सीधे रूप से इन दो चैनलों से जुड़े रहते हैं। इन दोनों की झाड़ बुहार करने से इनसे जुड़े मुख्य चक्रों की भी सफाई हो जाती है और उपचार अधिक तेजी से होता है।

जब आप स्थानीय झाड़ बुहार करें तो कल्पना करें कि आप की उंगलियां और हाथ रोगी के रोगग्रस्त भाग में जा रहे हैं और भूरा रोगग्रस्त जीव पदार्थ बाहर निकाला जा रहा है।

उपक्रम (४) प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया द्वारा ऊर्जित करना

प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया द्वारा प्राणशक्ति को ग्रहण किया जाता है और एक या दोनों हाथ चक्रों द्वारा प्रक्षेपित किया जाता है। इसकी विधि इस प्रकार है:-

(क) तीन से पांच बार धीरे-धीरे प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया करें और साथ ही अपने मन को शांत व एकाग्र रखें।

(ख) उक्त प्रक्रिया करते रहें और अपने एक या दो हाथों को रोगी के रोगग्रसित अंग के पास रखें। अपनी हथेलियों के बीच ध्यान केन्द्रित करें।

(ग) प्रक्षेपित प्राणशक्ति ऊर्जा को प्रभावित चक्र और फिर प्रभावित अंग की ओर जाने का निर्देश दें। अब श्वसन प्रक्रिया के बदले, हाथ चक्र पर और प्राण शक्ति ऊर्जा को प्रभावित अंग पर भेजने की ओर ध्यान देना चाहिए।

(घ) जब आप अपने सहज ज्ञान से यह समझ लें कि रोगी में समुचित मात्रा में प्राणशक्ति पहुंच गई हैं तब रोगी को ऊर्जित करना बंद कर दें। रोगी में समुचित मात्रा पहुंच गई है या नहीं, इसके लिए उसकी दुबारा जांच करें। प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार में आपको अध्याय ४ के क्रम संख्या ५ (प्राणशक्ति उपचारक के लिए निर्देश) (ज) में यह निर्देश दिया गया था कि यदि आपको ऊर्जा के बहाव में हल्का सा विकर्षण या ठहराव सा मालूम हो, तब ऊर्जित करना बंद कर दें। जैसे-जैसे आप उपचार में उन्नति करने लगें, इस निर्देश की कोई मान्यता नहीं रह जाती क्योंकि आपकी प्राणशक्ति का स्तर रोगी की तुलना में कहीं अधिक ज्यादा होता है। अपनी प्राणशक्ति ऊर्जा के स्तर को रोगी के प्रभावित अंग से समानता करेंगे तो इसके परिणामस्वरूप उस प्रभावित अंग में प्राणशक्ति का घनापन हो सकता है।

(ङ) यदि रोगी को तीव्र संक्रमण रोग, जलने या कटने से घाव हो तो इलाज प्रत्येक आधे या एक घंटे बाद दोहराना चाहिए। इस प्रकार के केसों में प्राणशक्ति ऊर्जा की बहुत अधिक खपत होती है, इसलिए इलाज को एक निश्चित समय के बाद दोहराते रहना चाहिए।

(च) ऊर्जन के साथ-साथ प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया भी करना चाहिए। ऐसा करने से उपचारक में हो सकने वाली सामान्य प्राणशक्ति की कमी को रोका जा सकता है।

(छ) दुगने रूप से ऊर्जित करना–

(१) समानान्तर रूप से-- इसमें रोगग्रस्त अंग के दोनों ओर अपने दोनों हाथों को रखें, जिससे हाथ के दोनों चक्रों के माध्यम से रोगी के रोगग्रस्त अंग को ऊर्जा मिलती है। इस विधि में बहुत ही तेज ऊर्जा क्षेत्र तैयार होता है जिससे हाथ एक लय में

रोगग्रस्त अंग से दूर होते और नजदीक आते हैं। झुरझुरी का अनुभव रोगी को प्रभावित अंग व शरीर के दूसरे भाग में भी होता है।

(२) असमानान्तर रूप से– इसमें दोनों हाथों को रोगग्रस्त के एक ही तरफ रखा जाता है लेकिन दोनों समानान्तर नहीं रखे जाते। इस प्रकार रखना चाहिए कि रोगग्रस्त अंग की ओर दोनों हाथों द्वारा प्रेषित ऊर्जा प्रेषित हो।

(३) उक्त दोनों विधियों में ऊर्जन से पहले सफाई अत्यावश्यक है। यह उन लोगों के लिए की जाती है जहाँ प्राणशक्ति की अधिक जरूरत पड़ती है। अध्याय ४ में बताये गये सामान्य रोगों को जल्दी ठीक करने के लिए भी इस प्रकार से दुगना ऊर्जन किया जा सकता है।

उपक्रम (५) ऊर्जित करनाः वितरणशील झाड़–बुहार पद्धति

इसका अर्थ केवल इतना है कि शरीर के अन्य भागों में स्थित अतिरिक्त प्राणशक्ति को फिर से रोगग्रस्त अंग की ओर भेजने के लिए किया गया झाड़ बुहार। इसके लिये पहले रोगग्रस्त भाग की सफाई करके, आसपास के भागों और चक्रों में स्थिति अतिरिक्त प्राणशक्ति को झाड़ बुहार के द्वारा रोगग्रस्त अंग की ओर ले जाएं। यद्यपि इस प्रकार के ऊर्जन से सामान्य रोग ठीक हो सकते हैं, किन्तु गंभीर रोगों के लिए यह प्रभावकारी नहीं है क्योंकि उसके लिए बहुत अधिक प्राणशक्ति की आवश्यक्ता होती है।

उपक्रम (६) उपचार के लिए भू–प्राण शक्ति का उपयोग

भू-प्राणशक्ति वायु प्राणशक्ति से चार-पांच गुना, भूमि से ऊपर के क्षेत्र में मिलती है। ऊर्जा की यह अधिक मात्रा उपचार के काम में लायी जा सकती है। इसके लिए रोगी को जमीन पर लेटने के लिए कहें। नीचे बिछाने के लिए सूत की दरी या बांस या घास की चटाई का उपयोग किया जा सकता है। चमड़े, रबड़, स्पंज की गद्दी आदि से बचें क्योंकि इनसे भूमि से शरीर की ओर प्राणशक्ति आने में बाधा होती है।

कई बार सामान्य और स्थानीय झाड़ बुहार करें। रोगी को आराम करने दें और धीरे-धीरे भू-प्राण शक्ति को सोखने या प्राप्त करने दें। सफाई की क्रिया करने से रोगी के शरीर में आंशिक रूप से "प्राणशक्ति का खोखलापन" बनेगा। इस खालीपन की ओर स्वाभाविक रूप से भू-प्राण शक्ति तेजी से जाएगी, जिससे ऊर्जन होगा। इसमें लगने वाले समय को कम करने के लिए आप भी ऊर्जन करें।

८ ~~उपक्रम (७)~~ चक्रों का आवर्तन

ऊर्जा चक्र लगातार एक दिशा में घूमने के बजाये, बारी बारी से घड़ी की उल्टी दिशा तथा घड़ी की दिशा में सामान्यतः १८० डिग्री-१८० डिग्री घूमते हैं। घड़ी की उल्टी दिशा में घूमते समय प्राणशक्ति ऊर्जा चक्र से बाहर की ओर निकलती है और घड़ी की दिशा में इसका विपरीत होता है अर्थात् प्राणशक्ति बाहर से अन्दर आती है। प्राणशक्ति उपचारक जब चक्र द्वारा ऊर्जा प्राप्त करता है तो चक्र मुख्य रूप से घड़ी की दिशा में घूमता है और घड़ी की उल्टी दिशा में बहुत कम घूमता है। जब उपचारक प्राणशक्ति प्रक्षेपित करता है तो चक्र मुख्य रूप से घड़ी की विपरीत दिशा में घूमता है और बहुत ही कम मात्रा में घड़ी दिशा में घूमता है।

उपचार के दौरान, वह रोगी की रोगग्रस्त ऊर्जा को ग्रहण करता है, जिससे उसको हानि हो सकती है, इसके लिये उपचारक को उपचार के दौरान अपने हाथों की वायवी सफाई करते रहनी चाहिए जिसकी विधि अध्याय ४ के क्रम संख्या ५ (झ) में बतायी गई है।

चक्र का स्वरूप या उसकी बनावट उसके घूमने की गति पर निर्भर होती है। सामान्य परिस्थिति में तेजी से घड़ी की दिशा या उसकी उल्टी दिशा में घूमने की गति से चक्र कई नोंकदार पंखुड़ियों वाले एक कमल के फूल के समान दिखाई देता है। प्राणशक्ति के घड़ी की दिशा में व उसकी उल्टी दिशा में घूमने के कारण इन नोंकदार पंखुड़ियों का एक "प्रकाशकीय निर्माण" होता है। इसी कारण तिब्बती, चीनी व संस्कृत भाषा की योग पर प्राचीन पुस्तकों में चक्र को आम तौर पर कई नोंकदार पंखुड़ियों वाले कमल के फूल के रूप में दिखाया जाता है। यदि चक्र की गति कम हो तो पंखुड़ियों का सही आकार और उनकी संख्या को साफ-साफ देखा जा सकता है। चक्र के पंखुड़ियों का आकार गोल होता है। जब चक्र तेजी से घूमता है तब उसमें उभार आ जाता है या वह मोटा हो जाता है। जब चक्र बहुत तेज गति से

घूमता है तब वह चकाचौंध करने वाले प्रकाश–बिंदु जैसा दिखाई देता है। जब अध्यात्म का आकांक्षी व्यक्ति ध्यान करता है तब उसके सिर के क्षेत्र की ओर आध्यात्मिक व प्राणशक्ति ऊर्जा आकर्षित होती है । इसीलिए उन्नत या प्रसिद्ध योगियों या साधु–संतों के सिर के चारों ओर चकाचौंध या अंधा कर देने वाला प्रकाश (आध्यात्मिक प्रभामण्डल) दिखाई देता है। क्या श्री अरिहन्त परमेष्ठी के भामण्डल का अति तेजस्वी दिव्य प्रकाश इसी सिद्धान्त पर आधारित है ?

६. सामान्य और गंभीर केसों का इलाज

उपक्रम (१) ओजस्वी ऊर्जा स्तर बढ़ाकर शरीर के प्रतिरोधी तंत्र को मजबूत करना– Strengthening the Body's Defense System by increasing its Vital Energy Level

(क) GS (३ या ४)

(ख) T (S, H) – E के साथ ही आप हड्डियों के अन्दर प्राणशक्ति ऊर्जा या सफेद प्रकाश को जाते हुए दृश्यीकृत करें। इससे हड्डियों को मजबूती मिलेगी। इन चक्रों में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थरीकरण न करें।

(ग) C' (6, L – आगे, पीछे व अगल–बगल से)

(घ) E 6f – इससे L को ताकत और पूरे शरीर को, विशेषकर पेट के अन्दर आंतरिक अंगों को ऊर्जित किया जा सकता है। L खून की गंदगी साफ करता है, और उसे ताकत देने से प्रतिरोधी तंत्र मजबूत होगा।

(ङ) T 4 – इससे आंशिक रूप से 5 भी ऊर्जित होगा, जिससे वह अधिक प्राणशक्ति सोखेगा। इसके अतिरिक्त इससे कृत्रिम ऊर्जा (synthetic Ki) भी बनेगी जिससे वायवी शरीर अधिक शक्तिशाली होगा।

(च) C 1/E 1 (बुखार की दशा में 1 को ऊर्जित न करें, अन्यथा इससे बुखार बढ़ सकता है)।

(छ) जो रोगी रतिज रोग (venereal diseases) से पीड़ित हों या इसका इतिहास रखते हों, उनका इलाज न करें। इसका उचित इलाज अध्याय १७ में वर्णित है तथा उन्नत प्राणशक्ति उपचारक द्वारा किया जाना चाहिए।

उपक्रम (२) खसरा, जर्मन मीज़ल्स व छोटी माता— **Measles, German Measles and Chicken Pox**

(क) GS (३ या ४)

(ख) C' (चेहरा, गला, धड़ के अगली व पिछली ओर, AP और पेट पर विशेष ध्यान)

(ग) C (२० बार) (6, L)/E 6 — शरीर की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ाने के लिए।

(घ) T (4, H, S) – H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) GS तथा C दिन में दो–तीन बार करें।

(च) इलाज की प्रमुखता शरीर को अच्छी तरह सफाई पर देनी चाहिए।

उपक्रम (३) कर्णमूल शोथ तथा टॉन्सिलाइटिस— (Mums and Tonsillitis)

(क) GS (३)

(ख) C' (गला व गर्दन का पूरा हिस्सा)

(ग) C' (8, 8')/E

(घ) T j (दिन में दो बार) (नोट— इसमें E रोगी के आराम मिलने तक करें)

(ङ) उपरोक्त उपक्रम (१) में वर्णित उपचार करें।

उपक्रम (४) **मसूढ़ों में रक्त का रिसाव— Gum Bleeding**

(क) C' तथा E (AP)

(ख) T (8, j)

(ग) आवश्यक्तानुसार इलाज को दोहरायें।

उपक्रम (५) पायोरिया– **Pyorrhea**

(क) GS (२ या ३)

(ख) T (AP) (दिन में २ या तीन बार)

(ग) T (8, j) (दिन में २ या तीन बार)

(घ) उपरोक्त उपक्रम (१) में वर्णित उपचार

(ङ) रोगी को दन्त चिकित्सक से मिलने की सलाह दें।

उपक्रम (६) मूर्छा आना– **Fainting**

(क) C 4 -- इसके उपरान्त E लगातार करें जब तक रोगी को होश न आये।

(ख) यदि भावनात्मक कारणवश मूर्च्छा हो, तो C' (6, 4)/E (6, 4)

(ग) यदि सिर में गूमढ़ हो, तो C (सिर के AP)~E तथा मैडिकल डाक्टर से शीघ्र मिलने की सलाह दें।

उपक्रम (७) निकट दृष्टिवक्ता, दूर दृष्टिवक्ता, दृष्टि वैषम्य व भैंगापन– **Near Sightedness, Far Sightedness, Astigmatism, Cross Eyes and Wall Eyes**

(क) आंखों की अपनी एक या दो उंगलियों से जांच करें।

(ख) C' (आंख)

(ग) T (9, bh, t) (ऊर्जित करते समय सफेद प्रकाश या प्राण शक्ति को आंखों के अन्दर जाते हुए दृश्यीकृत करें)

(घ) आंखों की दुबारा जांच करें और C'

(ङ) यदि रोगी कमजोर या बूढ़ा हो तो T (1, 4, 6) – इससे पूरे शरीर को ताकत मिलेगी। उपचार की गति केवल आंखों की परिस्थिति पर ही निर्भर नहीं होती, बल्कि पूरे शरीर की सामान्य स्थिति पर भी निर्भर होती है।

(च) इलाज को सप्ताह में दो या तीन बार दोहरायें। इस उपचार में ३-४ माह लग सकते हैं। यदि हो सके तो रोगी को चश्मा (ऐनक) पहनने से रोक देना चाहिए – इससे यदि सिर दर्द होता है तो चश्मा पहनने के समय को धीरे-धीरे कम करना चाहिए।

उपक्रम (८) तीव्र व दीर्घ कालीन ग्लाकोमा– Chronic or Acute Glaucoma

इसमें आंख या आंख चक्र, 9, 10, bh और सिर प्रभावित होते हैं। आदत बन चुके तनाव या नकारात्मक भावनाएं ग्लाकोमा को और अधिक बढ़ाते हैं। इस कारण 6 भी प्रभावित होता है।

दीर्घ कालीन ग्लाकोमा में रोगी के सिर व आंखों में बहुत तेज दर्द के साथ सामान्य कमजोरी हो सकती है। कम या अधिक समय के लिये अंधापन भी हो सकता है।

(क) आंखों या आंख चक्र, 9, 10, t, सिर का पूरा भाग, 6 की एक या दो उंगलियों से जांच करें।

(ख) रोगी को शीघ्र ही दर्द से छुटकारा दिलाने के लिए उसकी आंखों और बाद में सिर के पूरे भाग पर C'

(ग) C (9, bh, t)/ E – ऊर्जित करते समय सफेद प्रकाश या प्राण शक्ति को आंखों के अंदर जाते दृश्यीकृत करें।

(घ) आंखों की दुबारा जांच करें। जब तक रोगी को आराम नहीं मिलता, विधि (ख) तथा (ग) को बार-बार करें।

(ङ) यदि रोगी को हृदय रोग हो, तो उसका भी इलाज करें।

(च) सप्ताह में तीन बार इलाज करें। इसे कई महीनों तक या जब तक जरूरी हो, इलाज चालू रखना चाहिए। यदि रोग का मूल कारण भावनात्मक है तो रोगी को मनोरोग उपचारक से मिलने की सलाह देनी चाहिए। अपने भावनात्मक गुणों को सामान्य बनाये रखने के लिए रोगी को आराम करने या ध्यान-चिन्तन करने की विधि सीखनी चाहिए।

(छ) दीर्घ कालीन ग्लाकोमा में यदि रोगी ठीक नहीं महसूस कर रहा हो तो एक या दो घंटे बाद इलाज को दोहराया जा सकता है।

(ज) रोगी को नेत्र विशेषज्ञ और निपुण उन्नतशील प्राणशक्ति उपचारक से मिलने की सलाह दें।

उपक्रम (६) हृदय रोग– **Heart Ailments**

7 पर प्राणशक्ति या घनेपन या फिर दोनों ही स्थिति में हृदय रोग होता है। हृदय की कई बीमारियां जैसे हृदय का बढ़ जाना, उसकी मांसपेशियों का आंशिक रूप से काम न करना, रिह्यूमैटिक हृदय, पेसमेकर के ठीक प्रकार से काम न करने पर होने वाला हृदय–घाव आदि सबके लिए मूल उपचार एक ही है यानी 7 व 6 का T

(क) हृदय की अच्छी तरह जांच करें तथा रोगी से उस मूल स्थान को बताने को कहें, जहां दर्द है।

(ख) C' 7f, C दर्द वाले स्थान (उंगली द्वारा), अपनी उंगलियों को दर्द वाले छोटे स्थान के अन्दर रोगग्रस्त जीव पदार्थ को बाहर निकालते हुए दृश्यीकृत करें।

(ग) C 7b / E हृदय (7b के माध्यम से)। कल्पना करें कि हृदय और 7f चमकीला और साफ हो रहा है।

(घ) रोगी से दुबारा पूछकर, दुबारा जांचकर, पुनः T (उस स्थान की)

(ङ) यदि हृदय में प्राणशक्ति की कमी है या कमजोरी है, तो ऊर्जन पर विशेष ध्यान दें लेकिन अच्छी तरह सफाई भी अत्यावश्यक है।

(च) C' (6, L) / E 6

(छ) यदि 7f व 6f पर गंभीर रूप से घनापन हो तो इनका C', इसको पूरी तौर पर निकालने में ५–१० मिनट लग सकते हैं।

E हृदय (7b के माध्यम से) / C'

E 6 / C'

(ज) यदि रोगी कमजोर हो, तो इस उपचार को शुरू करने से पहले GS– इससे स्वास्थ्य किरणों की उलझन दूर होगी और बाहरी आभा मण्डल के छिद्रों को बन्द किया जा सकेगा।

(झ) 1 (4, 1) – इससे शरीर को ताकत मिलेगी और हृदय के उपचार की गति बढ़ेगी।

इलाज सप्ताह में तीन बार करें। गंभीर रोगों में अगले कुछ दिनों तक दिन में दो या तीन बार इलाज करें। इसमें अपने विवेक से काम लें। हृदय को सामान्य स्थिति में कई सप्ताह से लेकर कई माह तक लग सकते हैं।

उपक्रम (१०) उच्च कोलोस्ट्रॉल– High Cholesterol

यह 6 और L द्वारा नियंत्रित होता है।

(क) C 6 (२० से ३० बार)

(ख) C L (आगे, पीछे व अगल–बगल पर)

(ग) E 6

(घ) C (L का लघु चक्र) / E / C'

(ङ) C 7 / E 7b

(च) जब तक जरूरी हो, सप्ताह में तीन बार इलाज दोहरायें।

(छ) 6 और L का ठीक प्रकार से काम न करना तनाव व नकारात्मक भावनाओं के कारण हो सकता है। इसलिये रोगी को आराम व ध्यान–चिंतन के लिए कहना चाहिए।

उपक्रम (११) उच्च रक्तचाप– High Blood Pressure

इसके कई कारण होते हैं जैसे असंतुलित भोजन, दवायें, रोगग्रस्त गुर्दे, भावनात्मक कारण और ठीक से योग का अभ्यास न करना। अत्यधिक क्रोध, चिड़चिड़ाहट, तनाव के कारण 6 का उत्तेजित होने के कारण भी 3 के उत्तेजित होने के कारण उच्च रक्तचाप हो जाता है। 3 रक्तचाप को

नियंत्रित करता है जैसा भाग ४ में वर्णित है। 1 भूरा व गंदा होता है, अतएव उसका उपचार करना चाहिए। 6 व 1 का प्रारम्भिक व माध्यमिक उपचार पद्धतियों से ऊर्जित नहीं करना चाहिए, अन्यथा हालत और बिगड़ सकती है। उपचार निम्नवत करें।

1 से बहुत अधिक मात्रा में प्राणशक्ति ऊर्जा सिर की ओर जाती है जिससे उस क्षेत्र में बहुत तकलीफ होती है। सिर, विशेषकर उसका पिछला भाग लगभग गंदा होता है, इसलिए उसकी अच्छी करह सफाई करना चाहिए।

(क) GS (३ या अधिक बार)

(ख) C' (11, सिर के पीछे और रीढ़ पर)– जब तक रोगी को आंशिक या पूरी तौर पर आराम नहीं हो जाता।

(ग) C (५० या अधिक बार) (6, 3) – यह तब तक करें जब तक रक्तचाप कम या स्थिर न हो जाये। यदि जरूरी हो, तो कई बार दोहरायें।

(घ) 3 को ऊर्जित न करें। पूरा इलाज उन्नत प्राणशक्ति उपचार में दिया है।

(ङ) C K, यदि गुर्दे ठीक तरह काम नहीं कर रहे हों, तो।

(च) C 1

(छ) C' (11, 10, 9) / E, तदुपरान्त C' (पूरे सिर पर)

(ज) यदि सिर प्रभावित हो तो उसका भी इलाज करें।

(झ) रोगी को शीघ्र ही मैडिकल डाक्टर और उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने की सलाह दें।

उपक्रम (१२) सूंघने की शक्ति चली जाना– Loss of Smell

(क) T (10, 9) — 9 पर विशेष ध्यान दें।

(ख) C n

(ग) यदि कान के व bh लघु चक्र प्रभावित हों, तो इनका T

(घ) जब तक जरूरी हो, सप्ताह में दो दफा इलाज दोहरायें।

उपक्रम (१३) शिरानाल शोथ– Sinusitis

(क) C' (भौंह के ऊपर और गाल की हड्डियों के क्षेत्र पर)

(ख) C' (10, 9) / E – 9 पर विशेष ध्यान दें।

(ग) T n

(घ) जब तक जरूरी हो, सप्ताह में तीन बार इलाज करें। ज्यादा तकलीफ हो, तो इलाज दिन में दो या तीन बार दोहरा सकते हैं।

उपक्रम (१४) श्वास सम्बन्धी रोग– (निमोनिया, क्षयरोग, वातस्फीत आदि)

Respiratory Diseases (Pneummonia, Tuberculosis, Emphysema etc.)

(भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या ८ पर देखें)

(क) GS (२ या 3)

(ख) यदि नाक प्रभावित हो, तो C' 9 / E

(ग) यदि गला प्रभावित हो तो C' (8, 8') / E

(घ) C' Lu (आगे, पीछे और अगल–बगल में और चारों ओर से) / C 7

(ङ) E' (Lu व हृदय) (7b के माध्यम से)

(च) C' 6 / E'

(छ) यदि रोगी बहुत कमजोर है, तो शरीर की ऊर्जा स्तर बढ़ाने और ताक़त देने के लिये T (4, 1)

यदि रोगी को बुखार हो, तो 1 को ऊर्जित न करें अन्यथा बुखार बढ़ जायेगा। ऐसी दशा में T (H ,S) करें। प्रेषित ऊर्जा का स्थिरीकरण न करें।

(ज) सप्ताह में तीन बार इलाज करें।

(झ) क्षय रोग से पीड़ित व्यक्ति के रोग की गंभीरता ध्यान में रखते हुए पांच महीने या उससे अधिक समय तक सप्ताह में तीन बार इलाज दोहरायें।

(ञ) जो रोगी वातस्फीति से पीड़ित हों, उनके फैंफड़े की सफाई बहुत जरूरी है। अगले कुछ दिनों तक दिन में दो बार इलाज करें। जब कुछ ठीक आराम होने लगे तब इलाज दिन में एक बार किया जा सकता है। फिर बाद में लगभग एक वर्ष या अधिक समय तक सप्ताह में तीन बार इलाज करें।

(ट) जो रोगी निमोनिया से पीड़ित हैं, उनका इलाज दिन में तीन से पांच बार करना चाहिए क्योंकि प्राणशक्ति का खर्च तेजी से होता है। मैडिकल डॉक्टर व प्राणशक्ति उपचारकों द्वारा रोगी की तब तक लगातार देखरेख कई दिनों तक करनी चाहिये जब तक कि उसकी हालत ठीक नहीं हो जाती।

उपक्रम (१५) दमा– Asthma

इसका इलाज दो भागों में है– पहले में रोगी को दमे के आक्रमण से बचाना और उसके श्वसन तंत्र का उपचार करना तथा दूसरे भाग में रोग के कारण को धीरे–धीरे खत्म करना है।

(क) GS (कई बार) क्योंकि रोगी के बाहरी व स्वास्थ्य मण्डल कभी-कभी कुछ भूरे हो जाते हैं।

(ख) T' (8, 8')

(ग) C' Lu (आगे, पीछे व अगल-बगल में) / T 7b (Lu को ऊर्जित व ताकत देने के लिए)

(घ) C L (आगे, पीछे व अगल–बगल में) / T 6 — 8, 8', 7b और 6 का उपचार करने से रोगी पूरी तौर पर ठीक होगा। 6 और L का इलाज करने से धीरे-धीरे रक्त भी साफ़ और अच्छा तैयार होगा क्योंकि L रक्त से दूषित पदार्थों को अलग करता है।

(ङ) T (9, 1) — 1 हड्डियों को नियंत्रित व ऊर्जित करता है तथा रक्त की गुणवत्ता को भी नियंत्रित करता है।

(च) C (पूरे पैरों पर) / T (S, H)– ऊर्जित करते समय एक सफेद रोशनी या प्राणशक्ति ऊर्जा हाथ व पैर की हड्डियों के भीतर जाते हुए कल्पना एवम् दृश्यीकृत करें। यह रक्त की गुणवत्ता सुधारने के लिए है। H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(छ) सप्ताह में तीन बार इलाज करें। इलाज दो से तीन माह तक चल सकता है।

उपक्रम (१६) यकृत शोथ– Hepatitis

दिव्य दृष्टि से देखने पर इस रोगी का जिगर का रंग मटमैला लाल दिखाई देता है। उनका आंतरिक स्वास्थ्य व बाहरी प्रभामण्डल भूरापन लिए हुए और कमजोर होता है। जिगर में प्राणशक्ति कमजोर या घनी या दोनों स्थिति एक साथ हो सकती है। 6 भी कमजोर होता है।

(क) GS (३ या ४)

(ख) C L (आगे, पीछे, दांये, बांये)(३० से १०० या उससे अधिक बार)

(ग) C' 6 / E 6f

(घ) T (दांहिनी ओर की सबसे नीचे की पसली के बीच में स्थित L का लघु चक्र) / C' L ((चारों ओर)

(ङ) C' 5 / E

(च) शरीर में ऊर्जा के स्तर को बढ़ाने व प्रतिरोधी तंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए T (1, 4, H, S) – H, S को ऊर्जित करते समय प्राणशक्ति ऊर्जा या सफेद प्रकाश की कल्पना या दृश्यीकृत करें कि वह हड्डियों के भीतर प्रवेश कर रही है। H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें। यदि रोगी को बुखार हो तो 1 को ऊर्जित न करें क्योंकि इससे तापमान बढ़ सकता है।

(छ) जब तक जरूरी हो, सप्ताह में तीन दिन उपचार करें, इसमें कई–कई महीने लग सकते हैं। तीव्र रोग में कुछ दिनों तक दिन में चार या पांच

बार इलाज करें। तीव्र केस में मैडीकल डाक्टर से सलाह लेने के लिए कहें।

उपक्रम (१७) जठरीय व ग्रहणी अल्सर– **Gastric and Duodenal Ulcers**

(क) 6 व पेट के ऊपरी भाग की जांच करें।

(ख) C' 6 / E 6f

(ग) T (AP)

(घ) T 4

(ङ) सप्ताह में दो या तीन बार इलाज करें।

उपक्रम (१८) बवासीर– **Hemorrhoid (Piles)**

गुदा के लघु चक्र पर प्राणशक्ति के घनेपन के कारण यह रोग होता है, इससे 6 व 4 भी प्रभावित होते हैं। गुदा के चक्र दिव्यदृष्टि से देखने पर मटमैला लाल रंग का दिखाई देता है। यह चक्र 1 और गुदा के बीच में, गुदा के थोड़ा ऊपर होता है।

(क) C' गुदा / E

(ख) C (पेट के ऊपर व नीचे)

(ग) C' (6, 4) / E – बड़ी आंत व गुदा इन्हीं प्रमुख चक्रों द्वारा नियंत्रित व ऊर्जित किये जाते हैं।

(घ) सप्ताह में दो या तीन बार इलाज करें।

(ङ) AP से रोगग्रस्त ऊर्जा हटाने के लिए रोगी ठंडे पानी का प्रयोग करे और उस समय यह इच्छा करे कि ठंडा पानी रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ को दूर करता है।

(च) रोगी से समुचित साफ सफाई बनाये रखने के लिए कहें।

उपक्रम (१९) दीर्घकालीन एपैंडिसाइटिस– **Chronic Appendicitis**

(क) T (6f, 4 व एपैंडिक्स)

(ख) सप्ताह में दो बार इलाज दोहरायें।

उपक्रम (२०) लगातार पेशाब आना/बिस्तर में पेशाब करना— Frequent Urination/Bed wetting

(क) रोगी की अच्छी तरह जांच करें।

(ख) T' (2, 4) एवम् T (1, 6)

(ग) सप्ताह में दो या तीन बार इलाज करें।

उपक्रम (२१) प्रोस्टेट ग्रंथि का बढ़ जाना— Enlarged Prostate Gland

(क) जो इलाज उपरोक्त (उपक्रम २०) में निहित है

(ख) इलाज की अवधि में संभोग वर्जित है।

उपक्रम (२२) गुर्दे व मूत्राशय के संक्रामक रोग— Kidney and Bladder Infections

(क) GS (२ या ३)

(ख) यदि गुर्दे संक्रमित हो तो C (1, 3), C' K / E K (3 को बगैर प्रभावित किये) – शिशुओं और बच्चों में यह प्रक्रिया धीमे और थोड़ी सी करनी चाहिए, क्योंकि अधिक E से रक्तचाप बढ़ सकता है।

(ग) E K के बाद रोगी सिर दर्द की शिकायत कर सकता है, यह 3 के आंशिक उत्तेजित होने के कारण होता है। ऐसे केस में C (K, 3 और सिर)

(घ) यदि मूत्राशय प्रभावित हो, तो T 2.

(ङ) सप्ताह में तीन बार इलाज करें। यदि संक्रमण तीव्र हो, तो अगले कई दिनों तक दिन में कई बार इलाज करें।

(च) 3 और K एक शिरोबिंदु बेल्ट द्वारा 4 से जुड़े रहते हैं। कुछ केसों में गंदी रोगग्रस्त ऊर्जा K से पेट के निचले भाग की ओर चली जा सकती है। इस कारण रोगी पीठ के दर्द के बदले पेट के अगले हिस्से में दर्द की शिकायत कर सकता है।

उपक्रम (२३) नपुंसकता– Impotence

(क) C' (2, 4, 1) / E

(ख) यदि रोग का कारण मानसिक हो तो C' 6 / E

(ग) C 7 / E 7b

(घ) T 11

(ङ) इलाज को सप्ताह में तीन बार दोहरायें।

(च) रजित रोग से पीड़ित या इसका इतिहास रखने वालों पर यह इलाज न करें।

उपक्रम (२४) बांध्यता– Infertility

(क) 2, 4, जननांगों के आसपास, 8 व 9 की जांच करें।

(ख) C (2, 4, 8) / E'

(ग) यदि अंडाशय अथवा अंडकोष का लधु चक्र प्रभावित हो, तो उसका T

(घ) T (8, 9)

(ङ) सप्ताह में दो या तीन बार जब तक जरूरी हो इलाज करें।

(च) रजित रोग से पीड़ित या इसका इतिहास रखने वालों पर यह इलाज न करें।

उपक्रम (२५) टूटी हड्डी– Broken Bones

(क) AP और प्रभावित छोटे चक्रों की जांच करें, अर्थात प्रभावित a, e, H, उंगलियों के चक्र, n, k और S

(ख) C' (चोट लगे भाग) / E,

C (चोट लगे भाग के सबसे नजदीक के छोटे चक्र) / E'

(ग) यदि भुजा या हाथ की हड्डी टूटी हो, तो T (a, e, H) । यदि पैर की हड्डी टूटी हो, तो T (h, k, S) – H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(घ) T' 1, क्योंकि 1 हड्डी और मांसपेशियों के तंत्र को नियंत्रित करता है।

(ङ) T (4, 6)

(ट) पहले कुछ दिनों तक इलाज को दिन में एक या दो बार दोहरायें।

(ठ) टूटी हड्डी को ठीक से बिठाने के लिए या प्लास्टिरादि लगाने के लिए मैडीकल डाक्टर से मिलना आवश्यक है।

उपक्रम (२६) जोड़ों का दर्द और गठिया रोग– Arthiritis and Rheumatism

(१) हल्के या सामान्य रोगों में C' (AP) / E, इलाज को कई बार दोहराएं।

(२) गंभीर जोड़ों के दर्द के लिए –

(क) GS (३)

(ख) C' (AP) / E,

(ग) C (L व पेट के ऊपरी व निचला भाग)

(घ) C रीढ़ की हड्डी, क्योंकि यह कुछ हद तक गंदी हो सकती है।

(ङ) C 1/ E' 1 एवं T (4, 5, 6) – यदि रोगी उच्च रक्त दबाव से पीड़ित हो या हाल में ही रहा हो, तो E (1, 5) न करें।

(च) यदि हाथ में दर्द हो तो C (पूरा हाथ), T (a, k, H) – H में प्रेषित प्राणशक्ति को स्थिर न करें।

(छ) यदि पैर में दर्द हो तो C (पूरा पैर), T (h, k, S) – S में प्रेषित प्राणशक्ति को स्थिर न करें।

(ज) दो महीने या उससे अधिक समय तक सप्ताह में तीन बार इलाज करें।

उपक्रम (२७) हड्डी-जोड़-दर्द – **Osteoarthiritis**

(क) रोगी की अच्छी तरह जांच करें।

(ख) GS (२ या ३)

(ग) जब तक थोड़ा आराम न दिखायी दे, तब तक T (AP)

(घ) **दर्द का स्थान**	**इलाज**
(१) घुटना का अगला हिस्सा	T (पूरा घुटना, k)
(२) कोहनी	T (पूरी कोहनी, e)
(३) नितम्ब के क्षेत्र में	T (नितम्ब, h)
(४) कंधे के क्षेत्र में	T (बगल, a)
(५) पैर	C (पूरा पैर), C' (h, k, S) / E, कभी-कभी दर्द एड़ी या पंजों में महसूस होती है लेकिन दर्द का कारण h, k हो सकते हैं। S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें। इसके अलावा T 2 करें, क्योंकि इससे प्राणशक्ति ऊर्जा की बहुत मात्रा पैरों में जाती है।
(६) हाथ	C (पूरा हाथ), C' (a, e, H) / E, कभी-कभी उंगलियों के जोड़ों या कलाई में दर्द हो सकते हैं। H में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) C (पूरी रीढ़)

(च) C' (6, 4) / E

(छ) T' 1, क्योंकि यह अस्थि व मांसपेशी तंत्र को नियंत्रित व ऊर्जित करता है।

लगभग दो माह या आवश्यक्तानुसार इलाज सप्ताह में तीन बार करें।

उपक्रम (२८) गठिया – **Gout**

(क) GS (२ या ३)

(ख) जब तक अच्छी तरह आराम नहीं मिलता, तब तक बारी–बारी से AP पर C और E करें। यदि C अच्छी तरह नहीं किया गया, तो रोगी पर उग्र प्रतिक्रिया हो सकती है या दर्द तेज हो सकता है।

(ग) C' (पेट के ऊपरी व निचला भाग)

(घ) C' (1, 4 , 6) / E-- ये चक्र कुछ गंदे होते हैं जिन्हें ताकतवर बनाना चाहिए। इनके इलाज से आंतों का कार्य तंत्र भी अच्छा विकसित होगा।

(ङ) E K (नोट– E 3 न करें)। यदि इससे रोगी को हल्का सिर दर्द मालूम हो, तो समझिये कि 3 आंशिक रूप से उत्तेजित हुआ है जिससे रक्तचाप बढ़ा है, इस दशा में C' (K, 3)

(च) रोगी को उसके भोजन पर ध्यान देने के लिए कहें।

(छ) अगले कई दिनों तक इलाज को दिन में दो बार करें।

(ज) रोग के दुबारा होने की स्थिति को कम करने के लिए T (1, 4, 6) दो महीनों तक ।

उपक्रम (२९) गठिया–जोड़–दर्द-- **Rheumatoid Arthiritis**

(क) GS (३ या ४)

(ख) जब तक रोगी को आंशिक रूप से आराम नहीं मिल जाता, तब तक C (AP) ~ E

(ग) यदि पैर का कोई भाग प्रभावित या पीड़ित है, तो उक्त (२७) (घ) (५) के अनुसार

(घ) यदि हाथ का कोई भाग प्रभावित या पीड़ित है, तो उक्त (२७) (घ) (६) के अनुसार

(ङ) C' (रीढ़ की हड्डी), यह अधिकतर मैली होती है।

(च) यह दर्द 1 व 6 का काम न करने के कारण होता है। 4 लम्बे समय में नकारात्मक भावनाओं को आंशिक रूप से प्रभावित करता है, जिससे 6 व L पर उल्टा प्रभाव पड़ता है। इसीलिए रोगी को सभी प्रकार की नकारात्मक भावनाओं से दूर रहने या उन्हें कम करने की सलाह देनी चाहिए।

(छ) C' L (आगे, पीछे और अगल–बगल में)

(ज) C' (6, L का दायां निचला लघु चक्र) / E (6f, L का दायां निचला लघु चक्र)

(झ) T (1, 4) – यदि रोगी को उच्च रक्तचाप हो या उसका इतिहास हो, तो E 5 न करें।

(ञ) जब तक दर्द अच्छी तरह कम नहीं होता, दिन में ३ या ४ बार T (AP)

(ट) सप्ताह में तीन बार, दो या तीन माह तक या आवश्यक्तानुसार इलाज करें।

उपक्रम (३०) मेरुदण्ड कुब्जता– Scolisis

इनका 1 कमजोर व 6 घना होता है।

(क) C' (मेरुदण्ड या रीढ़ की हड्डी)

(ख) C' 6 क्योंकि 1 से रीढ़ की हड्डी तक ऊर्जा के बहाव में घना 6 आंशिक रूप से अड़चन करता है।

(ग) पुनः 6 की जांच करें। क्या अभी भी घने हैं। यदि जरूरत हो तो C' 6

(घ) C' 1 / E

(ङ) C' (AP) / E

(च) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार इलाज दोहरायें।

(छ) यदि सम्भव हो तो रोगी को रोज तैरने के लिए निर्देश दें। तैरने से रोगी पर उपचारक प्रभाव पड़ते हैं।

उपक्रम (३१) पक्षाघात के कारण लकवा– Paralysis due to Stroke

(क) रोगी की अच्छी तरह जांच करें।

(ख) (पीड़ित अंग 9, 10, 11, bh) पर विशेष ध्यान देते हुए C' (पूरा सिर) / E

(ग) T 1 (यदि रक्तचाप सामान्य या स्थिर न हो, तो E 1 न करें) – यह शरीर को मजबूत बनाने और उपचार में तेंजी लाने के लिए है।

(घ) C' (पीड़ित हाथ) / T (a, k, H) – H में प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करे।

(ङ) यदि उंगलियां प्रभावित हों, तो उनका T करें।

(च) C (पीड़ित पैर)/ T (h, k, S) – S में प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करे।

(छ) यदि गला प्रभावित हो, तो T (8, 8', j)

(ज) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार इलाज करें।

(झ) रोगी को शारीरिक कसरती उपचार नियमित रूप से करना चाहिए।

उपक्रम (३२) अंतःस्त्रावी रोग– Ailments of the Endocrine Glands

(क) मुख्य चक्रों को जांचे।

(ख) T (जो चक्र ठीक से कार्य नहीं कर रहे हों)

(ग) T 9

(घ) यदि अग्न्याशय प्रभावित हो तो C' 6 / E 6b

(ङ) यदि थॉयराइड ग्रंथियां पीड़ित हों तो C' 8 / E

(च) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार इलाज करें।

(छ) रोगी को किसी विशेषज्ञ और उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से भी मिलने की सलाह दें।

उपक्रम (३३) गर्भवती महिलाएं— Pregnant Women

इनको धीरे से और आराम से ही ऊर्जित करना चाहिए और अधिक देर तक ऊर्जित नहीं करना चाहिए। विशेष तौर पर E (4, 3, 2, 1) नहीं करना चाहिए, वरना गर्भस्थ शिशु पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है या उसकी गर्भ में ही मृत्यु हो सकती है।

उपक्रम (३४) गर्भवती महिलायें जिन्हें प्रसव में कठिनाई होती है

(क) प्रसव के दर्द को कम करने व बच्चे के जन्म को आरामदायक बनाने के लिए C हल्के से (4, 2) / E

(ख) यदि पीठ में दर्द हो तो C (पीठ के निचले हिस्से पर लगभग चार बार)

(ग) इनका 3, 1 ऊर्जित न करें, वरना गर्भस्थ शिशु पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

उपक्रम (३५) जिस महिला को प्रसव हुआ हो, उसे शीघ्र ही सामान्य कैसे करें

(क) GS (३)

(ख) T (1, 4, 6)

(ग) लगभग ५ दिनों तक दिन में दो बार इलाज करें। दो या तीन दिन में रोगी को लाभ मिल जाना चाहिए।

उपक्रम (३६) गर्भपात का इतिहास रखने वाली महिलाओं का गर्भपात कैसे रोकें

इनका 2, 4 और 1 कमजोर होता है। यह उपचार उन महिलाओं के लिए है जो गर्भवती नहीं है लेकिन जिनको गर्भपात होता रहा हो।

(क) GS

(ख) T (2, 4, 6)

(ग) लगभग दो महीने तक सप्ताह में दो बार इलाज करें।

उपक्रम (३७) गर्भपात का इतिहास रखने वाली महिलाओं का पेट में दर्द

(क) अच्छी तरह जांच करें।

(ख) C (4 ,2, 1)

(ग) पेट पर हल्का C

(घ) E 4 (बहुत धीरे और हल्के से)

(ङ) आवश्यकतानुसार इलाज को कई बार दोहरायें।

उपक्रम (३८) शल्य चिकित्सा से पहले और बाद में रोगियों का इलाज– Treating Patients before and after undergoing Surgery

(१) सामान्य शल्य चिकित्सा (Operation) के लिये

(क) T (जिस भाग की शल्य चिकित्सा करना हो)

(ख) T (चिकित्सा किये गये भाग, 6, 4, 1) – ऐसा करने से उपचार की गति में तेजी आयेगी।

(ग) इलाज को दोहरायें ।

(२) बड़ी शल्य चिकित्सा (Operation) के लिये

(क) GS (कई बार)

(ख) शरीर को ताकत देने के लिए T (1, 4, 6)

(ग) T (जिस भाग का इलाज किया जा रहा हो एवम् सम्बन्धित चक्रों) – ऐसा करने से उस भाग को ताकत मिलेगी और रक्त के बहने में कमी होगी। आसपास के चक्रों का T करने से भी लाभ होगा।

(घ) इस इलाज को शल्य चिकित्सा से कुछ दिन या सप्ताह पहले भी किया जा सकता है।

(ङ) शल्य चिकित्सा के बाद उपचार की प्रक्रिया को तेज करने के लिये (क), (ख) व (ग) को अगले कई दिनों या सप्ताह तक दोहरायें।

(च) इस इलाज को शल्य चिकित्सा से कुछ पहले या कई दिन या सप्ताह पहले भी किया जा सकता है।

उपक्रम (३६) कैन्सर– Relieving Cancer Patients

सावधान– जब तक प्राणशक्ति उपचारक ने अच्छी तरह प्राणशक्ति उपचार में दक्षता न हासिल कर ली हो, वे इस उपचार को न करें, क्योंकि इसमें रोगी उपचारक से अत्यधिक प्राण–शक्ति खींचता है।

कैंसर के रोगियों का ऊर्जा शरीर गंदा और कमजोर होता है, लेकिन पीड़ित अंग अत्यधिक प्राणशक्ति के कारण बहुत घने होते हैं। इस प्रकार के क्षेत्रों में जहाँ प्राणशक्ति का घनापन होता है, वहां कैंसर की कोशिकायें बहुत बढ़ती–फलती हैं। कोशिकाओं को तेजी से आगे बढ़ने के लिए बहुत अधिक प्राणशक्ति ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। इस इलाज का उद्देश्य रोगी को तड़पाने वाले दर्द से छुटकारा दिलाने और प्राणशक्ति ऊर्जा की कमी करके कैंसर की कोशिकाओं को फैलने और बढ़ने से रोकना है।

(क) GS (५)

(ख) C (AP) (३०० से ५०० बार तक)– इससे कम C करने से कोई फायदा नहीं होता।

(ग) AP की फिर जांच करें, यदि जरूरत हो तो C' (AP)

(घ) C (6, 3, 1) (५० से १०० बार)– इन चक्रों को ऊर्जित न करें, अन्यथा रोग बढ़ेगा।

(ङ) उपचारक के लिए बहुत आवश्यक है कि स्थानीय C करने से पहले अपने हाथ नमक मिले पानी से हमेशा धोया करें क्योंकि रोगग्रस्त ऊर्जा बहुत ही चिपचिपी और खुजली देने वाली होती है। यदि ऐसा न किया जाए तो हाथों की उंगलियों में जोड़ों का दर्द हो सकता है।

(च) जब तक जरूरी हो, तब तक कम से कम दिन में एक बार इलाज करें। हो सके तो रोगी के पूरे जीवन भर यह इलाज करें।

(छ) रोगी को पनीर तथा मसालेदार भोजन न खाने को कहें क्योंकि ये पदार्थ उसके रोग को बढ़ा सकते हैं। यह बहुत आवश्यक है। इन्हीं कारणों को ध्यान में रखकर विटामिन ई, सी, ए, बी १२ की अधिक मात्रा न लें।

(ज) रोगी की अच्छी तरह सफाई करने के बाद उसे एक बड़े, हरे–भरे पेड़ के नीचे या साफ जमीन पर (ध्यान रहे कि जमीन के नीचे सैप्टिक टैंक न हो) लगभग २० मिनट तक आराम करने को कहें। इससे रोगी आंशिक रूप से ऊर्जित होगा। अत्यधिक प्राणशक्ति सोखने की संभावनाओं से बचने के लिए रोगी जानबूझकर पेड़ या भूमि से प्राणशक्ति न ग्रहण करे, अन्यथा उसकी स्थिति और अधिक बिगड़ सकती है।

(झ) समुद्र के पानी या नमकीन/खारे पानी में सफाई का अच्छा गुण होता है। यदि रोगी समुद्र के किनारे रहता हो तो प्रतिदिन कम से कम बीस मिनट तक समुद्र में तैरने के लिए कहें। यह प्राणशक्ति उपचार का एक विकल्प है। तैरने के बाद रोगी छायादार पेड़ के नीचे लेटकर आसपास के वातावरण से प्राणशक्ति सोख सकता हैं। यह उस समय करना चाहिए जब धूप बहुत तेज न हो यानि सुबह या शाम में यह प्रक्रिया की जानी चाहिए। ऐसे समय में प्राणशक्ति के घनेपन से बचा जा सकता है।

(ञ) यदि क्रिया विधि (झ) सम्भव न हो, तो जीवन भर खारे पानी में १५ से २० मिनट तक रोज नहाना चाहिए। यदि सम्भव हो तो पानी का तापमान ३६–४० डिग्री सेंटीग्रेड तक बनाये रखना चाहिए। यह बहुत जरूरी है क्योंकि यदि तापमान बहुत कम हो तो शरीर कमजोर हो सकता है और अगर बहुत गर्म हो तो कैंसर की कोशिकायें बहुत तेजी से बढ़ सकती हैं।

(ट) बारीक पिसा नमक पैट्रोलियम जैली के साथ मिलाकर प्रभावित अंग पर लगाने से रोगी को आराम मिल सकता है क्योंकि रोगग्रस्त ऊर्जा को साफ करने और उसके घनेपन को दूर करने के गुण नमक में होते हैं।

(ठ) सभी प्रकार के गुस्से, अप्रसन्नता और अन्य नकारात्मकत भावनाओं को त्यागना चाहिए। इनके होने से 6, 3 और 1 में अस्थिरता पैदा हो जाती है।

उपक्रम (४०) बुढ़ापे की गति को कम करना– Reducing the rate of Aging (Old age)

आपने बूढ़े लोगों को देखा होगा कि उनकी रीढ़ की हड्डी झुकने लगती है, उनके पैर कमजोर हो जाते हैं, और अधिकांश को जोड़ों के दर्द की शिकायत रहती है। सभाओं में उन्हें सो जाने की आदत हो जाती है। ऐसा बड़े चक्रों के ठीक प्रकार से काम न करने के कारण होता है, खासकर 1 जो मांशपेशियों व अस्थि तंत्र, रीढ की हड्डी, रक्त व अन्य आवश्यक तंत्र को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। इसलिये 1 की नियमित रूप से देखभाल करनी चाहिए। इस पद्धति के नियमित प्रयोग से बूढ़े व्यक्तियों को ताकतवर और सजग बनाया जा सकता है जिससे वे एक अच्छा जीवन बिता सकें और साथ ही जोड़ों के दर्द या गठिया जैसे रोगों को बढ़ने से रोका जा सकता है।

युवा अथवा प्रौढ़ व्यक्तियों की बढ़ती उम्र की गति कम करने के लिए निम्नलिखित विधिक्रम अपनायी जा सकती है।

(क) GS (२ या ३)

(ख) C (L, K, 3, 5)

(ग) T (1, 2, 4, 6)

(घ) C 7 / E 7b

(ङ) T (8, 9, 10, 11, bh)

(ट) सप्ताह में एक या दो बार अनिश्चितकाल तक इलाज दोहराते रहें।

(ठ) रतिज रोग से पीड़ित या इसका इतिहास रखने वाले या ट्यूमर के साथ अधिश्वेतरक्तता या उच्च रक्तचाप के रोगी पर इस इलाज को न करें। इनका इलाज उन्नत प्राणशक्ति उपचार में बताया गया है।

उपक्रम (४१) तनाव– **Stress or Tension**

यह 6 के ठीक प्रकार कार्य न करने के कारण होता है। स्वास्थ्य किरणें भी आंशिक रूप से प्रभावित होती हैं तथा दिव्य दर्शन से ये किरणें सीधी दिखाई देने के बदले लहरदार दिखाई देती है। बाहरी आभा मंडल कुछ भूरा रंग का होता है।

(क) GS (कई बार)

(ख) C' 6 / E 6, फिर जांच करें; यदि अभी घने हों तो C' 6

(ग) C 7/ E 7b

(घ) T (11, 9)

(ङ) सामान्य केसों में सप्ताह में तीन बार, गम्भीर केसों में दिन में कई बार इलाज दोहरायें।

उपक्रम (४२) निश्चित न होने पर क्या करें (कठिन या दुःसाध्य केसों के लिए)–

(क) GS (कई बार)

(ख) T (AP)

(ग) C (सभी आवश्यक अंग)

(घ) T (1, 2, 4, 6, 8, 9, 10, 11)

(ङ) C (5, 3)

(ट) C 7 / E 7b

(ठ) इस इलाज को प्रतिदिन करें। इस विधि को कई प्रकार के रोगों में इस्तेमाल किया जा सकता है, किन्तु कैंसर, अधिश्वेतरक्तता और रतिज रोगों के लिए इनका प्रयोग नहीं करना चाहिए। रोगी को शीघ्र ही मैडिकल डाक्टर और उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

(१०) उपचारी देवदूतों की नियुक्ति

गंभीर रोगों से पीड़ित व्यक्ति के इलाज के बाद एक देवदूत को रोगी के पास रखने के लिए ईश्वर से निवेदन करें जिससे उपचार की प्रक्रिया में और अधिक गति बनी रहे। इसमें रोगी की स्वीकृति उपचारी देवदूत के कार्य को और आसान कर देती है। इसके लिए उपचारक प्रभु से अपनी स्वयं की अथवा निम्न प्रार्थना कर सकते हैं:–

"हे प्रभु, उपचारी देवदूत की नियुक्ति के लिए और उस देवदूत को रोगी के पूरी तरह ठीक होने तक उसी के पास रुके रहने के लिए आपका धन्यवाद। हे प्रभु, हमें आप पर विश्वास है।"

प्रार्थना आदर, नम्रता व अच्छी भावनाओं के साथ की जानी जरूरी है।

अध्याय — ६

स्व–प्राण शक्ति उपचार

CHAPTER –VI

SELF- PRANIC HEALING

प्राण ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– स्व-प्राणशक्ति उपचार– Self Pranic Healing

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	विधि नं १– अपने आप द्वारा (स्वयं से)	५.१२८
२.	विधि नं २– छिद्रों द्वारा श्वसन पद्धति	५.१२८
३.	ताओ पद्धति या ताओवाद की छह उपचारी ध्वनियां	५.१२९
४.	चक्रों द्वारा श्वसन पद्धति	५.१३०
५.	सामान्य सफाई व ऊर्जन करना	५.१३२
६.	शारीरिक कसरत	५.१३५
७.	नमक मिले पानी का स्नान	५.१३५
८.	नकारात्मक विचारों व भावनाओं का त्याग	५.१३६
९.	कर्णप्रिय संगीत का प्रभाव	५.१३६
१०.	विपथन या मुक्त करने का नियम	५.१३७
११.	स्व–उपचार की समग्र राह	५.१३७
१२.	उच्च रक्तचाप का स्व–उपचार	५.१३९
१३.	स्व-उपचार में होने वाली कठिनाई	५.१३९

प्राण ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार— स्व-प्राणशक्ति उपचार

SELF PRANIC HEALING

यह उपचार दो प्रकार से किया जा सकता है। एक तो स्वयं का स्वयं द्वारा उपचार करके और दूसरे, स्वयं को एक भिन्न उपचारक के रूप में प्रत्यारोपण करके स्वयं के रोग का उपचार करना, अर्थात स्वयं को दो रूपों में— रोगी और उपचारक के रूप में भिन्न-भिन्न मानकर अथवा दृश्यीकृत करके उपचार करना।

इसकी कई विधियाँ हैं। किन्तु दो मूलभूत नियम— सफाई करना और ऊर्जन करने का उपयोग करना सभी में लागू होता है, अन्य कोई नियम नहीं है।

(१) विधि नं १— अपने आप द्वारा (स्वयं से)

(क) PB करें

(ख) T (AP) तथा T (सम्बन्धित चक्र)

इस विधि में अध्याय ४, ५ व ६ में दी गई समग्र नियम, विधियां आदि गर्भित हैं।

(२) विधि नं २— छिद्रों द्वारा श्वसन की पद्धति— Skin Breathing

(क) PB करें

(ख) प्राणशक्ति या सफेद प्रकाश को अंदर की ओर खींचे या AP के छिद्रों से इसे अन्दर जाते हुए महसूस करें।

(ग) कुछ क्षणों तक अपनी सांस रोके रहें और यह महसूस करें कि रोगग्रस्त भूरा पदार्थ धीरे-धीरे सफेद हो रहा है या धीरे-धीरे चमकदार हो रहा है।

(घ) अपनी सांस बाहर छोड़ें और यह महसूस करें कि भूरा रोगग्रस्त पदार्थ छिद्रों से स्वास्थ्य किरणों के रूप में बाहर निकल रहा है तथा यह भी महसूस करें कि स्वास्थ्य किरणें सीधी हो रही हैं। सीधी स्वास्थ्य किरणों द्वारा प्रयोग की गई, 'अतिरिक्त' प्राणशक्ति और रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ को शरीर के बाहर निकाला जाता है।

(ङ) कुछ क्षणों तक अपनी सांस रोकें और महसूस करें कि उपचार किये अंग की चमक बढ़ रही है।

छिद्रों द्वारा सांस लेने की पद्धति में आप ताजी प्राणशक्ति को छिद्रों द्वारा भीतर खींचते हैं और भूरे रोगग्रस्त पदार्थ को बाहर छोड़ते हैं। इसको श्वसन क्रिया के साथ समन्वय (Synchronize) कर लें।

(३) ताओ पद्धति या ताओवाद की छह उपचारी ध्वनियां

यह पद्धति छिद्रों द्वारा सांस लेने की पद्धति की तरह ही है। इसमें किसी खास अंग से रोग ग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ निकालने को बाहर निकालने के लिए विशेष प्रकार की ध्वनियां का इस्तेमाल किया जाता है। जब आप यह महसूस कर लें कि प्रभावित अंग की ठीक प्रकार से सफाई हो चुकी है, तब आप आराम से और धीरे से सांस लें और धीमे से ध्वनि का उच्चारण करें। उपचारी छह ध्वनियां निम्नलिखित हैं (The secrets of Chinese Meditation- लु कु' आन यु)

(क)	प्लीहा	Spleen	–	हु	Hu
(ख)	हृदय	Heart	–	हो	Ho
(ग)	फेफड़े	Lungs	–	जु	Szu
(घ)	पेट	Stomach	–	श ऽ शी	Hsi
(ङ)	जिगर	Liver	–	श ऽ शु	Hsu
(च)	गुर्दे	Kidneys	–	छ्वै	Ch'ui

कुछ लोग स्वयं उपचार में खास अंग के लिए खास ध्वनि पर अधिक ध्यान नहीं भी देते हैं। ताओ की स्व उपचारी पद्धति युद्ध कला के समान ही है। अभ्यास करने वाला जब भी वार करता और सांस बाहर छोड़ता है, वह कोई आवाज

निकालता या चिल्लाता है। रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ को शरीर से बाहर निकालने की आपकी इच्छा और इरादा मुख्य होता है जिसे सांस छोड़ते समय चिल्लाकर प्रस्तुत किया जाता है।

अलग-अलग अध्यापकों और लेखकों के छह उपचारी ध्वनियों पर अलग-अलग विचार है। इनकी पद्धतियां भी अलग-अलग हैं। ज़ब उपचारी आवाज जोर से निकाली जाती है तब वह रोगग्रस्त ऊर्जा पर धमाकेदार प्रभाव डालती है। जब धीरे से या न सुनाई देने जैसी आवाज की जाती है तब वह धीमे से रोगग्रस्त या प्रयोग की गई ऊर्जा को बाहर फैंकती या निकालती है। जो रोगी हैं उनके लिए जोर से चिल्लाकर ध्वनि पैदा करना ठीक होता है और जो स्वस्थ या निरोगी होते हैं तथा जो अपने आंतरिक अंगों की केवल सफाई और ऊर्जन करना चाहते हैं, उनके लिए धीमी व हल्की आवाज़ पैदा करना ही ठीक होता है।

(४) चक्रों द्वारा श्वसन पद्धति

(क) PB करें। सांस को धीरे से खींचे और पीड़ित चक्र पर ध्यान लगायें। ताजी प्राणशक्ति को चक्र के अंदर लेते हुए महसूस करें। कुछ क्षणों तक अपनी सांस रोकें रहें और प्राणशक्ति को आत्मसात होता हुआ दृश्यीकृत करें। अपनी सांस को धीरे-धीरे छोड़ते हुए यह महसूस करें कि चक्र गंदे भूरे पदार्थ के बाहर निकाल या फैंक रहा है। अपनी सांस को कुछ क्षण रोकें और यह महसूस करें कि चक्र चमकदार और स्वस्थ हो रहा है। यह पूरी प्रक्रिया कई बार दोहरायें।

(ख) PB करें। धीरे-धीरे सांस अंदर लें और पीड़ित अंग पर ध्यान लगायें। प्रभावित चक्र और अंग द्वारा प्राणशक्ति को अंदर की ओर खींचते हुए दृश्यीकृत करें। प्राणशक्ति को पहले चक्र में और फिर पीड़ित अंग में से गुजरते हुए दृश्यीकृत करें, अपनी सांस कुछ क्षणों तक रोकें और ऐसा महसूस करें या दृश्यीकृत करें मानो चक्र और पीड़ित अंग चमकीले होते जा रहे हैं। सांस को धीरे-धीरे बाहर छोड़ें और चक्र व पीड़ित अंग द्वारा भूरे गंदे पदार्थ को बाहर फैंकते हुए दृश्यीकृत करें। कुछ क्षणों तक अपनी सांस रोकें और ऐसा महसूस करें मानो चक्र व पीड़ित

अंग चमकदार होते जा रहे हैं। समुचित आराम मिलने तक इस प्रक्रिया को दोहराते रहें। इस पद्धति को चक्रों द्वारा श्वसन पद्धति कहते हैं।

(ग) धीरे-धीरे सांस बाहर छोड़ने के बदले आप तेजी से और जोर लगातार एक आवाज के साथ या बिना आवाज के सांस बाहर छोड़ सकते हैं। सांस को मुंह के द्वारा बाहर छोड़ना चाहिए। साथ ही यह महसूस करना चाहिए कि भूरा रोगग्रस्त पदार्थ चक्र के माध्यम से पीड़ित अंग द्वारा बाहर फैंका जा रहा है।

(घ) उक्त (क), (ख) या (ग) में वर्णित प्रक्रिया करने के बाद यदि आप चक्र या प्रभावित अंग पर कुछ भारीपन या प्राणशक्ति का घनापन महसूस कर रहे हों तो साधारण सांस लेकर बाहर छोड़ते हुए प्राणवायु को चक्र और उससे संबंधित अंग से बाहर निकलते हुए महसूस करें। चक्र को हल्का होते हुए महसूस करें। यह प्रक्रिया तब तक करें जब तक स्थिति सामान्य नहीं हो जाती।

(ङ) चक्रों द्वारा श्वसन पद्धति बहुत ही लाभदायक है और सामान्य रोगों में तुरन्त ही आराम मिलता है। इस पद्धति को अधिक करने से चक्र या/और संबंधित अंग पर प्राणशक्ति का घनापन बढ़ जाता है, जिससे कुछ समय बाद उसका नकारात्मक प्रभाव पड़ने के कारण मानसिक व शारीरिक रोग हो सकते हैं। यह एक प्रकार से अधिक शक्तिवर्द्धक दवा लेने के समान हैं। इसलिए इस पद्धति को मात्र संतुलित रूप से ही करना चाहिए।

(च) सिर के सभी चक्र, 7 और आंख के चक्रों द्वारा श्वसन प्रक्रिया करते समय सावधानी रखनी चाहिए क्योंकि इनसे संबंधित अंग बहुत नाजुक होते हैं और इन पर आसानी से प्राणशक्ति का घनापन हो सकता है। 3, 1, 5 पर चक्र श्वसन प्रक्रिया को अच्छे, कुशल, प्रशिक्षित उपचारक के बिना नहीं करें, अन्यथा पूरे शरीर में कमजोरी आ सकती है, रक्तचाप बढ़ सकता है या पूरे शरीर में एलर्जी हो सकती है।

(छ) गर्भवती महिलाएं 1, 2, 3, 4, 5 पर चक्र श्वसन प्रक्रिया न करें, अन्यथा उनकी दशा और अधिक बिगड़ सकती है।

(ज) रतिज रोग, कैंसर, अधिश्वेतरक्तता रोगों से पीड़ित व्यक्ति को प्रभावित चक्रों पर यह पद्धति नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे उनकी दशा और बिगड़ सकती है।

(५) सामान्य सफाई व ऊर्जित करना

यदि आपका शरीर कमजोर है या किसी रोग से संक्रमित है तो स्वयं ही यह करें। ऐसा करने से न केवल आपके शरीर को ऊर्जा मिलेगी बल्कि स्वास्थ्य किरणों की उलझन कुछ हद तक दूर हो सकेगी और बाहरी आभा मण्डल के छेद भी बंद हो जायेंगे।

(क) **विधि —१ प्राणशक्ति श्वसन प्रक्रिया—** अपनी चेतना को समस्त शरीर में फैला दें। दस बार PB करें। सांस धीरे–धीरे अंदर खींचे। इस बात की इच्छा करें और दृश्यीकृत करें कि प्राणशक्ति शरीर के सभी अंगों में जा रही है। धीरे-धीरे अपनी सांस बाहर छोड़ें और भूरा रोगग्रस्त पदार्थ शरीर के सभी अंगों द्वारा बाहर फैंकते हुए दृश्यीकृत करें। स्वास्थ्य किरणों को सीधा महसूस करें। फिर दस बार PB करने के बाद दस मिनट तक नाभि पर ध्यान केन्द्रित करें। साथ ही सत्र की समाप्ति के पहले PB करें। जब आप कुशल हो जायेंगे तो आपको प्राणशक्ति ऊर्जा शरीर के सभी भागों में जाते हुए महसूस होगी।

(ख) **विधि २— दृश्यीकरण माध्यम—** PB करें। आप स्वयं को या किसी अन्य व्यक्ति को दृश्यीकृत करें। ऐसा महसूस करें कि दृश्यीकृत व्यक्ति आपके शरीर पर GS व C तथा E कर रहा है। ऐसी इच्छा करें और दृश्यीकरण करें मानो आपका शरीर चमकदार हो रहा है, स्वास्थ्य किरणों की उलझन दूर हो रही है और बाहरी आभा मंडल प्रकाशित हो रहा है। इस बात का ध्यान करें कि गंदा रोग ग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ बाहर फैंका जा रहा है।

(ग) **विधि ३— सफेद प्रकाश पर ध्यान चिंतन करना—** यह दो भागों में होती है।

(१) **पहला भाग– सामान्य सफाई व ऊर्जन**

(क) PB करें। और साथ ही सिर के ऊपर तेज चमकदार प्रकाश के गोले का अनुभव करें।

(ख) उस गोले से प्रकाश की धारा निकलकर सिर में जाते हुए और वहां से धीरे–धीरे पैरों तक जाते हुए दृश्यीकृत करें। सभी मुख्य चक्रों; मुख्य अंगों; रीढ़ तथा शरीर की अन्य हड्डियों को इस सफेद प्रकाश द्वारा सफाई करते व ऊर्जित करते हुए दृश्यीकृत करें।

(ग) सफेद प्रकाश को पैरों के रास्ते बाहर आते हुए और भूरा रोग ग्रस्त पदार्थ बाहर फैंकते हुए दृश्यीकृत करें। उपरोक्त क्रिया को तीन बार करें।

(घ) पैरों के नीचे चमकदार प्रकाश की गेंद को दृश्यीकृत करें। इस चमकदार प्रकाश की गेंद के माध्यम से प्रकाश की धारा के रूप में जमीन से प्राणशक्ति खींचें। S द्वारा सिर तक प्राणशक्ति खींचें। अंदर खींची गई इस प्राणशक्ति को 11 द्वारा बाहर छिड़ककर निकालें, ऐसा तीन बार करें।

(२) **भाग २– प्राणशक्ति को शरीर में वितरित करना**

(क) पैरों से लेकर शरीर के पीछे, ऊपर, सिर, चेहरा, शरीर के सामने और बाद में पैरों तक प्राणशक्ति ,फैलाते हुए महसूस करें। प्राणशक्ति को पीछे से आगे की ओर तीन बार वितरित करें या फैलायें।

(ख) प्राणशक्ति को वितरित करने की प्रक्रिया उल्टी करें और उसे आगे से पीछे की ओर फैलायें। ऐसा तीन बार करें।

(ग) प्राणशक्ति को बांये से दांये तीन बार और दांये से बांये तीन बार वितरित करें। प्राणशक्ति के वितरित करने का उद्देश्य यह है कि प्राणशक्ति पूरे शरीर में समान रूप से फैल जायेगी और

शरीर के कुछ भागों में प्राणशक्ति के घनेपन से बचा जा सकता है।

परामर्श--

अपने स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए उक्त प्रकार के ध्यान चिंतन की यह प्रक्रिया प्रतिदिन करना चाहिए। यह प्रक्रिया गूढ़ विज्ञान के विद्यार्थियों द्वारा उन कार्य से पहले की जाती है, जिसमें अधिक प्राणशक्ति की जरूरत होती है। आप ध्यान-चिंतन की इस प्रक्रिया को बहुत लोगों के उपचार से पहले कर सकते हैं।

एक बार इस ध्यान प्रक्रिया में कुशल हो जाते हैं; तब आप स्वयं ही यह महसूस करेंगे कि आपके शरीर में एक प्रकार की चमक आ गई है। आपको ऐसा लगेगा मानो अधिक मात्रा में बिजली आपके शरीर में और शरीर के बाहर दौड़ रही है। आप अतिरिक्त प्राणशक्ति का उपयोग 4 पर कई मिनट तक ध्यान लगाकर, कृत्रिम प्राणशक्ति या नाभि प्राणशक्ति को पैदा करने में कर सकते हैं। आप इस नाभि प्राणशक्ति को नाभि से डेढ़-दो इंच नीचे स्थित तीन छोटे नाभि चक्रों में जमा करें। ऐसा आप तीन मिनट तक इस भाग पर ध्यान चिंतन करके कर सकते हैं। इन निर्देशों के साथ PB भी करना चाहिए। प्रत्येक लघु नाभिचक्र में नाभि प्राणशक्ति जमा करने के लिए बड़े लचीले शिरोबिन्दु होते हैं अर्थात ये तीन लघु नाभि चक्र कृत्रिम प्राणशक्ति के लिए भण्डार-घर के रूप में काम करते हैं। ये लघु नाभि चक्र प्राणशक्ति के सागर कहलाते हैं क्योंकि ये कृत्रिम प्राणशक्ति से भरे होते हैं। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कृत्रिम प्राणशक्ति, प्राणशक्ति से भिन्न होती है। यह नाभि चक्र द्वारा समन्वित होती है और दूधिया सफेद, हल्के लाल, सुनहरे पीले तथा अन्य रंगों की हो सकती है। इसका आकार और घनत्व अलग होता है। आध्यात्मिक व्यक्तियों के अपेक्षा सामान्य व्यक्तियों में कृत्रिम प्राणशक्ति बहुत कम होती है।

आपको सफेद प्रकाश पर ध्यान-चिंतन करने और प्रतिदिन उसका अभ्यास करने की सलाह दी जाती है। इससे आपका जीव द्रव्य शरीर साफ, चमकदार और अधिक घना होता है। इससे आपको एक अच्छा उपचारक बनने में सहायता मिलती है।

(६) शारीरिक कसरत

स्वयं के उपचार तथा स्वयं के स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए शारीरिक कसरत का विशेष योगदान होता है। शरीर गर्म करने की कसरत, नाच, खेलकूद, प्राणशक्ति के शरीर में वितरित करने में मदद करते हैं और ताजी प्राणशक्ति को शरीर के अंदर खींचने तथा उपयोग की गयी प्राणशक्ति या रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करते हैं। दिव्य दर्शन से यह देखा गया है कि कसरत करते समय सफेद ताजी प्राणशक्ति शरीर के भीतर जाती है और भूरा रोगग्रस्त पदार्थ बाहर फैंका जाता है। कसरत करते समय यदि PB भी किया जाये तो और अच्छा रहता है। हठयोग और ताओवादी योग में कुछ खास रोगों के इलाज के लिए विशेष प्रकार की कसरते हैं। शरीर का कौन सा भाग हिलाया जा रहा है, मोड़ा जा रहा है, दबाया जा रहा है– उसे ध्यान से देखकर और विश्लेषण करके यह मालुम किया जा सकता है कि कौन सी मुद्रा स्थिति या कसरत जरूरी है। साथ ही यह भी पता लगाया जा सकता है कि रोगग्रस्त भाग पर कौन सा चक्र है।

सच बात तो यह है कि आप अपने शरीर के उस भाग को हिलाकर, मोड़कर, दबाकर या खींचकर नये-नये तरीके खोज सकते हैं जिस भाग में वह खास चक्र है। स्वयं ही कसरत के नये तरीके या पद्धतियों का विकास कर खास चक्रों की सफाई और ऊर्जन कर सकते हैं। प्राणशक्ति उपचार के बाद प्राणशक्ति को दुबारा जमा करने के लिए भी शारीरिक कसरत उपयोगी होती है। अच्छी कसरत में शरीर के सभी अंगों को खास-खास समय के लिए हिलाने की गुंजाइश होनी चाहिए जिससे हाथ और पैर के सभी बड़े और छोटे चक्रों की सफाई व ऊर्जन हो सके। उदाहरण के तौर पर यह कसरतें अध्याय–३ द्विहृदय पर ध्यान–चिंतन में क्रम (क) "वायवी शरीर की सफाई" के अन्तर्गत वर्णित हैं।

(७) नमक मिले पानी का स्नान

जीव द्रव्य शरीर से रोग ग्रस्त ऊर्जा को निकालने, खासकर कैंसर, अधिश्वेत रक्तता, रतिज रोग, जोड़ों के दर्द, लकवा और कुष्ठ रोग से पीड़ित रोगियों के

लिए समुद्र का पानी या नमक मिले पानी (तापमान ३६–४० डिग्री) से स्नान करना बहुत लाभदायक होता है।

नमक मिले पानी से जीव द्रव्य शरीर की सफाई होती है और उसके प्रतिरोधी तंत्र को ताकत मिलती है। यह इलाज यद्यपि साधारण है लेकिन बहुत ही प्रभावशाली है। इसको प्रतिदिन एक या दो बार करना चाहिए। इलाज के लिये लगभग २० मिनट के स्नान के उपरान्त, शरीर को ऊर्जित करने हेतु किसी छायादार जगह आराम करना चाहिये तथा PB करें। इसके इलाज को पहले दो सप्ताह तक प्रतिदिन, बाद में कई महीनों तक सप्ताह में तीन दिन करें या जब तक जरूरी हो तब तक ऐसा करें।

(८) नकारात्मक विचारों व भावनाओं का त्याग

गम्भीर रोगों से पीड़ित रोगी प्रायः लम्बे समय तक नकारात्मक भावनायें रखे पाये गये हैं। बार–बार गुस्सा करना आदि इसके उदाहरण हैं। इन भावनाओं के कारण 6 ठीक प्रकार काम नहीं करता और जिससे जिगर प्रभावित होता है। इसका विशिष्ट वर्णन भाग ४ के अध्याय ११ के अन्तर्गत (6) सौर जालिका चक्र के वर्णन में सन्निहित है। प्राणशक्ति उपचार के प्रकाशक मास्टर चोआ कोक सुई ने यह महसूस किया है कि जो व्यक्ति गम्भीर गठिया-जोड़–दर्द, खराब गुर्दे से पीड़ित है और जिसके शरीर का प्रतिरोधी सुरक्षा तंत्र ठीक प्रकार से कार्य नहीं करता है, उसमें बहुत गुस्सा होता है। जिन रोगियों की छाती या बगल में रसौली (cyst) होती है उनमें बहुत अधिक तनाव होता है। इनका 6 बहुत घना होता है। तनाव 6, L और कुछ हद तक शरीर के कोलोस्ट्रॉल की मात्रा को भी प्रभावित करता है। इसीलिए सभी रोगियों को और गम्भीर रोगियों को विशेष तौर पर सलाह दी जाती है कि वे नकारात्मक भावनाओं का त्याग कर सकारात्मक आचरण और भावनाएं रखें तथा जीवन में ध्यान–चिंतन की सामान्य विधि अपनायें।

(९) कर्णप्रिय संगीत का प्रभाव

सिर दर्द जैसे साधारण रोग में कर्णप्रिय संगीत को ध्यान से सुनने से अथवा सकारात्मक भावनायें करने से एक प्रकार से उपचार होते देखा गया है। इसका सम्भावित उत्तर यह है कि मन और शरीर को आराम देने से उपचार में

सहायता मिलती है अथवा सकारात्मक भावनाएं जीव द्रव्य शरीर पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। किन्तु प्रभावित अंग पर दुबारा ध्यान देने से रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ जो विमुक्त हो गया था, दुबारा आ जाता है।

(१०) विपथन या मुक्त करने का नियम

(क) मन और शरीर को आराम देने से स्व–उपचार में सहायता मिलती है।

(ख) जीवद्रव्य शरीर मन और भावनाओं द्वारा जल्दी ही प्रभावित होता है। इसलिए जो भी चीज जिसमें सकारात्मक भावनाएं होती हैं, वे जीवद्रव्य शरीर पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं।

(ग) अपना ध्यान किसी मनमोहक या अच्छी वस्तु पर लगाने से रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ शरीर से मुक्त हो जाता है या उसकी स्थिति कमजोर हो जाती है। इससे शरीर को स्वयं ही अच्छी तरह उपचार करने में सहायता मिलती है। इसी कारण भूरा पदार्थ कम हो जाता है और उसका रंग हल्का हो जाता है। ऐसा देखा गया है कि जब रोगी अपना ध्यान दर्द की ओर लगाता है तब रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ उसी स्थान पर जाता है। यह स्थिति उपचार में देरी का कारण बनती है।

(घ) AP पर दुबारा ध्यान देने पर रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ फिर से आ जाता है और AP पुनः भूरा हो जाता है।

(११) स्व–उपचार की समग्र राह

(क) पांच से दस मिनट तक शारीरिक कसरत करें।

(ख) स्व–प्राणशक्ति उपचार करें।

(ग) स्व–प्राणशक्ति जुटाने या जमा करने के लिए कुछ मिनट तक उस चक्र और अंग के लिए शारीरिक कसरत करें। ऐसा शरीर के उस भाग को हिलाकर, मोड़कर, दबाकर, खींचकर या झुकाकर किया जा सकता है जहां वह चक्र स्थित है और बाद में जिसकी सफाई व ऊर्जन किया जाता है।

(घ) ऊर्जित पानी (इसका वर्णन इस भाग के अध्याय ३६ में दिया गया है) या धूप में रखा हुआ पानी पिएं। जमीन से तथा पेड़ से विशेषकर चीड़ या बरगद के पेड़ से प्राणशक्ति प्राप्त करें, जिसकी विधि अध्याय ५ के क्रम संख्या ३ व ५ में दी गयी है। यदि हो सके तो पेड़ से लिपट जायें। इसके बहुत लाभदायक परिणाम होते हैं। पेड़ों के बदलते रहने की सलाह दी जाती है क्योंकि रोगी से बहुत अधिक रोगग्रस्त ऊर्जा सोख लेने के कारण पेड़ बीमार हो सकते हैं या लंबे समय के बाद मर भी सकते हैं।

(ङ) अपने को न थकाने वाली फलदायक गतिविधियों में व्यस्त रखें। अपने रोग या होने वाली भविष्य की बातों में ध्यान न लगायें। इससे रोगग्रस्त ऊर्जा को शरीर से बाहर जाने में मदद मिलती है।

(च) सभी प्रकार की नकारात्मक भावनाओं और विचारों से बचें या कम करें। इस संबंध में अध्याय १ के क्रम संख्या (ख) (१७) का अवलोकन करें।

(छ) ईश्वर से भक्तिपूर्वक प्रार्थना करें।

(ज) दवा भी लेते रहें। जीव द्रव्य और भौतिक शरीर दोनों का एक साथ उपचार करने से उपचार तेजी से होता है। जैसा कि अध्याय ४ के क्रम संख्या ११ में वर्णित है, उपचार की सम्पूर्ण या समग्र दृष्टि होनी चाहिए।

(झ) गंभीर रोगों के लिए अच्छे कुशल प्राणशक्ति उपचारक तथा मैडिकल डॉक्टर से मिलना चाहिए।

(ञ) अच्छा भोजन, समुचित स्वच्छ पानी पीना, ठीक ढंग से सांस लेना, समुचित शारीरिक कसरत करना, अच्छी जीवनचर्या अपनाना और मन को शांत व निर्णायक रखना– ये सब ऐसी चीजें है जो व्यक्ति की शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक स्थिति को हमेशा ठीक बनाये रखने में बहुत ही सहायता करते हैं।

(१२) उच्च रक्तचाप का सुगम स्व--उपचार

पहली विंधि

(क) सोने के समय, लगभग १५ मिनट तक प्राण श्वसन क्रिया करें, तथा साथ–साथ 6 पर चक्र-श्वसन भी किया करें।

(ख) श्वसन करते समय सांस बाहर निकलने के साथ–साथ भूरे से रोग ग्रस्त ऊर्जा को बाहर जाते हुए दृश्यीकृत करें तथा सांस अन्दर लेते हुए स्वस्थ ऊर्जा को अन्दर आते हुए दृश्यीकृत करें।

द्वितीय विधि

(क) अपने 7f तथा थायमस ग्रंथि की ओर अवलोकन करते हुए कई मिनट मुस्कराइये, साथ–साथ उनको प्रसन्नता तथा प्यार भरी ऊर्जा प्रेषित करिए।

(ख) कई केसों में इससे धीरे-धीरे 3 तथा 6 का सामान्यीकरण हो जायेगा।

(ग) नोट– यह ध्यान में रखिए कि हृदय चक्र और थायमस ग्रंथि उच्च चक्रों तथा उनसे सम्बन्धित अंगों के, आज्ञा चक्र द्वारा नियमन में सहायता करते हैं। थायमस ग्रंथि हृदय, रक्तचाप, गला, थायरायड ग्रंथियों, पैराथायराइड ग्रंथियों और सिर के आन्तरिक अंगों को प्रभावित करती है।

(१३) स्व–उपचार में होने वाली कठिनाई

कुछ उपचारकों को अपना उपचार करने में कठिनाई हो सकती है। ऐसी निम्नलिखित कारणों से आ सकती है।

(क) उसका शरीर बहुत कमजोर और दर्द से परेशान हो तो उसे अपनी इच्छा को केन्द्रित करने और उसका उपयोग करने में कठिनाई हो।

(ख) स्व–उपचार के अभ्यास की कमी।

(ग) वह स्वयं के उपचार के लिए आलसी, थका हुआ, कमजोर या स्वयं पर ध्यान न देता हो। ऐसा भी हो सकता है कि उपचारक आराम करना चाहता हो और दूसरे उपचारक से अपना इलाज करवाना चाहता हो।

(घ) द्विहृदय पर ध्यान-चिन्तन न कर सक पाना।

(ङ) प्राण शक्ति उपचार के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार की आवश्यकता हो।

(च) नकारात्मक कर्म जिनका वर्णन अध्याय १ के क्रम संख्या १७ में दिया है।

अध्याय — ७

दूरस्थ
प्राणशक्ति उपचार

Chapter VII

DISTANT
PRANIC HEALING

प्राण ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार

दूरस्थ प्राणशक्ति (अनुपस्थित) उपचार

DISTANT PRANIC HEALING

भेजने वाले के विचारों से गुंथी प्राणशक्ति (ओजस्वी) ऊर्जा दूर बैठे उन लोगों तक प्रक्षेपित की जा सकती है जो उसे प्राप्त करना चाहते हैं इसी से उपचार किया जा सकता है।

योगी रामचरक
The Science of Pranic Healing

दूरस्थ उपचार की क्रियाविधि टेलीफोन की तरह होती है। उपचारक और रोगी के बीच में संबंध वायवी शरीर के कारण होता है जो पृथ्वी के वायवी शरीर का ही भाग होता है। जब उपचारक अपना ध्यान रोगी की ओर लगाता है तब वह रोगग्रस्त ऊर्जा वायवी शरीर से निकालकर प्राणशक्ति (ओजस्वी ऊर्जा) को रोगी के वायवी शरीर में प्रक्षेपित कर सकता है। ऐसा "ऊर्जा का विचारों के पीछे चलने" का नियम (देखिये अध्याय १ का क्रम ख-१) के कारण होता है। सामने बैठे रोगी और दूरस्थ स्थित रोगी के उपचार के नियम, पद्धतियों व सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं है, बस दोनों में अन्तर इतना है कि दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार में उपचारक को लगातार अभ्यास और अचूकता के लिए अपनी मानसिक ताकत का विकास करने या उसे तेज करने की जरूरत होती है। आप में से जो लोग उपचार का कार्य कर रहे हों या उस पर खोज कर रहे हों, वे इतने पक्के हो चुके होंगे कि बिना जांच किये ही बता सकते हैं कि रोगी के शरीर का कौन सा भाग रोगग्रस्त है। कुछ लोगों में ऊर्जित किये जाने वाले अंग के स्वास्थ्य को मोटे तौर पर देखने या महसूस करने की मनःशक्ति विकसित हुई होगी। उपचार में मनःशक्ति का धीरे-धीरे विकास और धीरे–धीरे खुलकर आना एक प्राकृतिक क्रिया है। दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार करने से पहले कम से कम माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार करने में कुशलता प्राप्त करने की सलाह दी जाती है।

इस विधि को सीखने के लिए विभिन्न चरणों में अभ्यास करें।

(१) प्रथम चरण

(क) जब कोई रोगी आपके पास आता है, तो न तो तुरन्त जांच करें और न रोगी से साक्षात्कार करें अर्थात् रोगी से उसके रोग के बारे में न पूछें।

(ख) रोगी को सामने बैठायें। अपनी आंखें बंद करें और मन से रोगी के जीवद्रव्य शरीर और दिखाई देने वाले भौतिक शरीर को देखने व जांचने का प्रयत्न करें। सिर से लेकर पैरों तक चक्रों व मुख्य चक्रों को देखें। बड़े चक्रों पर विशेष ध्यान दें। क्या चक्र भूरे, चमकदार, मटमैले, लाल या काले हैं? इनकी भी जांच करने का प्रयत्न करें। क्या ये मोटे, पतले या सामान्य हैं? आप यह महसूस कर सकते हैं कि आप अपने हाथों से जांच कर रहे हैं। पूरे शरीर पर एक नजर डालें और ऊपर से नीचे तक प्रमुख अंगों की जांच करें। क्या वे अच्छे दिखाई देते हैं? क्या वे बहुत अधिक लाल या नीले दिखाई देते हैं? रीढ़ की हड्डी को ऊपर से नीचे तक महसूस करें। क्या आप उसमें कुछ रुकावट या इसे कुछ सरकी हुई देखते हैं या महसूस करते हैं? आपको सही जानकारी के लिए साफ–साफ, चमकदार देखने की जरूरत नहीं है। मोटे तौर पर देखना या जांचना ही काफी है। यह कार्य आरम्भ से, धीरे–धीरे किन्तु पूरी तरह करना चाहिए। कुछ अधिक समय लगने पर भी रोगी बुरा नहीं मानेगा।

(ग) अपनी आंखें खोलें। खड़े होकर रोगी की पूरी तौर पर जांच करें।

(घ) रोगी से साक्षात्कार करें। रोगी की स्थिति का परीक्षण करें और विधि (ख) के परिणामों से उसकी तुलना करें।

पहली ही बार में आपको कुछ सीमा तक सही–सही परिणाम प्राप्त होना संभव है। जब तक आपको एकदम सही परिणाम नहीं हो जाते, तब तक अपना अभ्यास जारी रखें। यह स्थिति आपको कई सप्ताह या कई महीनों के लगातार अभ्यास से आ सकती है। ठीक–ठीक जांच पर ही सही और प्रभावकारी इलाज निर्भर है। ऐसा न होने पर, न केवल प्रभावकारी इलाज नहीं होगा, अपितु रोगी की स्थिति और बिगड़ सकती है, इसलिए इसमें दक्षता आवश्यक है।

(२) द्वितीय चरण

प्रथम चरण में दक्षता प्राप्त हो जाने के पश्चात् अब आप उन रोगियों का इलाज करें जिनका साक्षात्कार करके पहले इलाज कर चुके हैं। रोगी की एक फोटो प्राप्त करके उपचार करते समय अपने सामने रखें। यदि फोटो उपलब्ध न हो सके, तो रोगी की शक्ल सूरत आपको अच्छी तरह याद होनी चाहिए। रोगी से टेलीफोन द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से उपचार की तारीख व समय निश्चित करें, ताकि उस समय–एकदम ठीक समय पर रोगी उपचार ग्रहणशील अवस्था में अपने स्थान पर स्थित रहे और आप भी उसी निश्चित ठीक समय पर दूरस्थ उपचार प्रारम्भ कर दें। यदि हो सके तो उपचार के पश्चात टेलीफोन या अन्य सम्पर्क से रोगी के हालचाल पूँछें तथा अपने निष्कर्षानुसार परिणामों की तुलना करें। आवश्यकतानुसार पुनः सफाई/ऊर्जन करें। धीरे–धीरे इस प्रकार की दूरस्थ प्राणशक्ति चिकित्सा के अभ्यास से अपनी दक्षता बढ़ायें। अब उपचार निम्न दो में से किसी एक विधि द्वारा कर सकते हैं।

विधि नं १–

दूरस्थ उपचार में वे सभी प्रकार के नियम का पालन व क्रिया में करें जो सामने बैठे रोगी के समक्ष की जाती है। PB भी करें। दूषित रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ को भी नष्ट करते हुए निस्तारण करना है जैसे सामान्य उपचार में करते हैं। तथा उपचार के अन्त में वायवी डोर को काटना न भूलें। साथ ही अपने बाहों व हाथों की वायवी प्राणशक्ति ऊर्जा द्वारा सफाई करें एवम् नमक के पानी से भी धोयें। आवश्यक्तानुसार कीटनाशक साबुन से हाथों को भी धोयें। यह महत्त्वपूर्ण एवम् आवश्यक है।

विधि नं २–

(क) रोगी को अपने सामने बैठे हुए दृश्यीकृत करें।

(ख) अपनी आंखें बंद करके रोगी के ऊपर एक चमकदार गेंद को दृश्यीकृत करें। इसके बाद एक प्रकाश की धारा को दृश्यीकृत करें जो सिर को साफ करती हुई नीचे बह रही है और पूरे शरीर को साफ कर रही है। पूरे रोगग्रस्त जीवद्रव्य पदार्थ को जमा करके उसे ठीक तरह नष्ट कर दें या फैंक दें।

(ग) प्रभावित या पीड़ित अंगों के भूरे पदार्थ को कम होता हुआ और रंग हल्का होता हुआ महसूस करें उसे बाहर आने और तैरते हुए शरीर से दूर चले जाने की इच्छा करें।

(घ) रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ की उसके विखंडन की इच्छा करके भी शीघ्र नष्ट किया जा सकता है या भूरे पदार्थ को लगातार कम होता हुआ भी दृश्यीकृत किया जा सकता है। इसके अलावा आप आग को दृश्यीकृत करें और रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ को उसमें फेंक दें।

(ङ) प्रकाश की गेंद (प्राणशक्ति की गेंद) को बनते हुए और उसे प्रभावित अंगों में जाता हुआ महसूस करें तथा उन अंगों को महसूस करें।

(च) प्रक्षेपित प्राणशक्ति ऊर्जा को स्थिर करें।

(छ) अपनी आंखें खोल लें और दुबारा जांच करें। यदि जरूरी हो तो रोगी का और अधिक इलाज करें।

पहली और दूसरी विधि में अंतर यह है कि पहली विधि में प्राणशक्ति को रोगी के शरीर में भेजने से पहले उपचारक के शरीर में खींची जाती है। दूसरी विधि में आसपास के वातावरण से प्राणशक्ति प्राप्त करके उपचारक के शरीर से गुजरे बिना सीधे रोगी के शरीर में प्रक्षेपित की जाती है। आप इन दोनों विधियों को मिला सकते हैं।

प्रस्तुतकर्ता को ज्ञात है कि विधि नं० १ द्वारा एक कुशल उपचारक ने लखनऊ से बैठकर एक केस में दिल्ली तथा दूसरे केस में हांगकांग में बैठे रोगी का सफलतापूर्वक उपचार किया था।

(३) तृतीय चरण

जब आप द्वितीय चरण में कुशल हो जाते हैं, तो बगैर पहले से निश्चित किये हुए ही, मात्र रोगी की फोटो रखे हुए ही अथवा उसकी शक्ल—सूरत याद करते हुए ही द्वितीय चरण में बताये गये विधि के अनुसार उपचार करने का अभ्यास कर सकते हैं। उपचार के बाद में रोगी से सम्पर्क करके परिणामों की तुलना की जा सकती है और आवश्यक्तानुसार और अधिक उपचार किया जा सकता है। हो सकता है कि और अभ्यास तथा कुशलता प्राप्त करने के पश्चात् इस प्रकार रोगी से सम्पर्क की भी आवश्यकता न पड़े।

(४) चतुर्थ चरण

अब आप उन रोगियों का उपचार करें जिनको आपने पहले न देखा हुआ हो। उनकी फोटो प्राप्त करके सामने रखकर उपचार करने का अभ्यास करें।

अध्याय – ८ से २२ तक

उन्नत चिकित्सा तकनीक

एवम्

रंगीन प्राण ऊर्जा उपचार

CHAPTER- VIII TO XXII

ADVANCED TECHNIQUE

AND

CLOURED PRANIC ENERGY HEALING

५-१४६

रंगीन प्राणशक्ति ऊर्जा–Coloured Pranic Healing

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१	भूमिका	५.१४८
२	उपयोग में आने वाली रंगीन ऊर्जा किस प्रकार की होती है	५.१४८
३	रंगीन ऊर्जा का किस प्रकार उपयोग करें	५.१५३
४	लाल रंग की ऊर्जा	५.१५५
५	नारंगी रंग की ऊर्जा	५.१५७
६	हरे रंग की ऊर्जा	५.१६०
७	पीले रंग की ऊर्जा	५.१६२
८	सूक्ष्म गूढ़ पीले रंग की ऊर्जा	५.१६४
९	नीले रंग की ऊर्जा	५.१६४
१०	बैंगनी रंग की ऊर्जा	५.१६५
११	नारंगी-लाल रंग की ऊर्जा	५.१६८
१२	नारंगी-पीला रंग की ऊर्जा	५.१७०
१३	हरा-नीला रंग की ऊर्जा	५.१७०
१४	हरी-नीली ऊर्जा	५.१७१
१५	नीला- बैंगनी रंग की ऊर्जा	५.१७२
१६	हरा-बैंगनी रंग की ऊर्जा	५.१७२
१७	हरा-पीला रंग की ऊर्जा	५.१७३
१८	अन्य प्रकार की प्राण ऊर्जायें	५.१७३
१९	गुलाबी ऊर्जा	५.१७३
२०	विद्युतीय-बैंगनी ऊर्जा	५.१७४
२१	सुनहरे रंग की ऊर्जा	५.१७६
२२	उपचार के लिए किस चक्र से कौन सी ऊर्जा ग्रहण करें	५.१७६
२३	पाठकगणों के लिए चिन्तन एवं खोज का विषय	५.१७६

रंगीन प्राणशक्ति ऊर्जा

Coloured Pranic Healing

(मूल लेखक श्री चोआ कोक सुई Choa Kok Sui, जिन्होंने अपने गुरु श्री मी लिंग Mei Ling से मार्गदर्शन प्राप्त किया है)

(क) भूमिका

जैसा कि भाग ४ के अध्याय १५ के अन्तर्गत वर्णन किया है कि वायु, सूर्य और भूमि से प्राप्त ऊर्जा प्राण सफेद ऊर्जा अथवा साधारण ऊर्जा होती है जो छोटे-छोटे आकाश मण्डल (Globules of light) जैसे भासित होते हैं। इनके स्रोत का वर्णन भाग ४ के अध्याय ८ में वर्णित है। प्लीहा चक्र वायु का मुख्य स्त्रोत है। भू–प्राण तलुवे के चक्रों के माध्यम से प्राप्त होकर मूलाधार चक्र में जाता है। इसका एक भाग रीढ़ की हड्डी में होकर ऊपर जाता है, जब कि इससे बड़ा भाग पैरिनियम चक्र होते हुए नाभि चक्र, फिर प्लीहा चक्र को जाता है। वायु प्राण एवम् भू–प्राण की सफेद ऊर्जा को प्लीहा चक्र ग्रहण करके उसको छह प्रकार की प्राण ऊर्जा (भाग ४ अध्याय ६) अर्थात लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला और बैंगनी रंग के प्राणों में परिवर्तित करके अन्य प्रमुख चक्रों को वितरित कर देता है। इसके अतिरिक्त विद्युतीय –बैंगनी ऊर्जा दिव्य ऊर्जा के रूप में होती है जो दिव्य आशीर्वाद से प्राप्त होती है और ब्रह्म चक्र द्वारा ग्रहण की जाती है। यह जीव द्रव्य के सम्पर्क में आने के पश्चात् धीरे–धीरे स्वर्णमयी ऊर्जा (भाग ४, अध्याय ६) में परिवर्तित हो जाती है। इस स्वर्णमयी ऊर्जा को जब शरीर शोषण कर लेता है तो इसका रंग हल्का लाल हो जाता है।

(२) उपयोग में आने वाली रंगीन ऊर्जा किस प्रकार की होती है

(क) रंगीन ऊर्जा– सफेद प्राण ऊर्जा से अधिक शक्तिशाली होती है। जैसे कोई एक डाक्टर सामान्य व दूसरा किसी विषय में विशेषज्ञ होता है। उपचार में गहरे रंगों का इस्तेमाल न करें क्योंकि इससे विपरीत प्रभाव पड़ता है और रोगी की उल्टी प्रतिक्रिया हो सकती है। उदाहरण के तौर पर हल्के लाल रंग की ऊर्जा

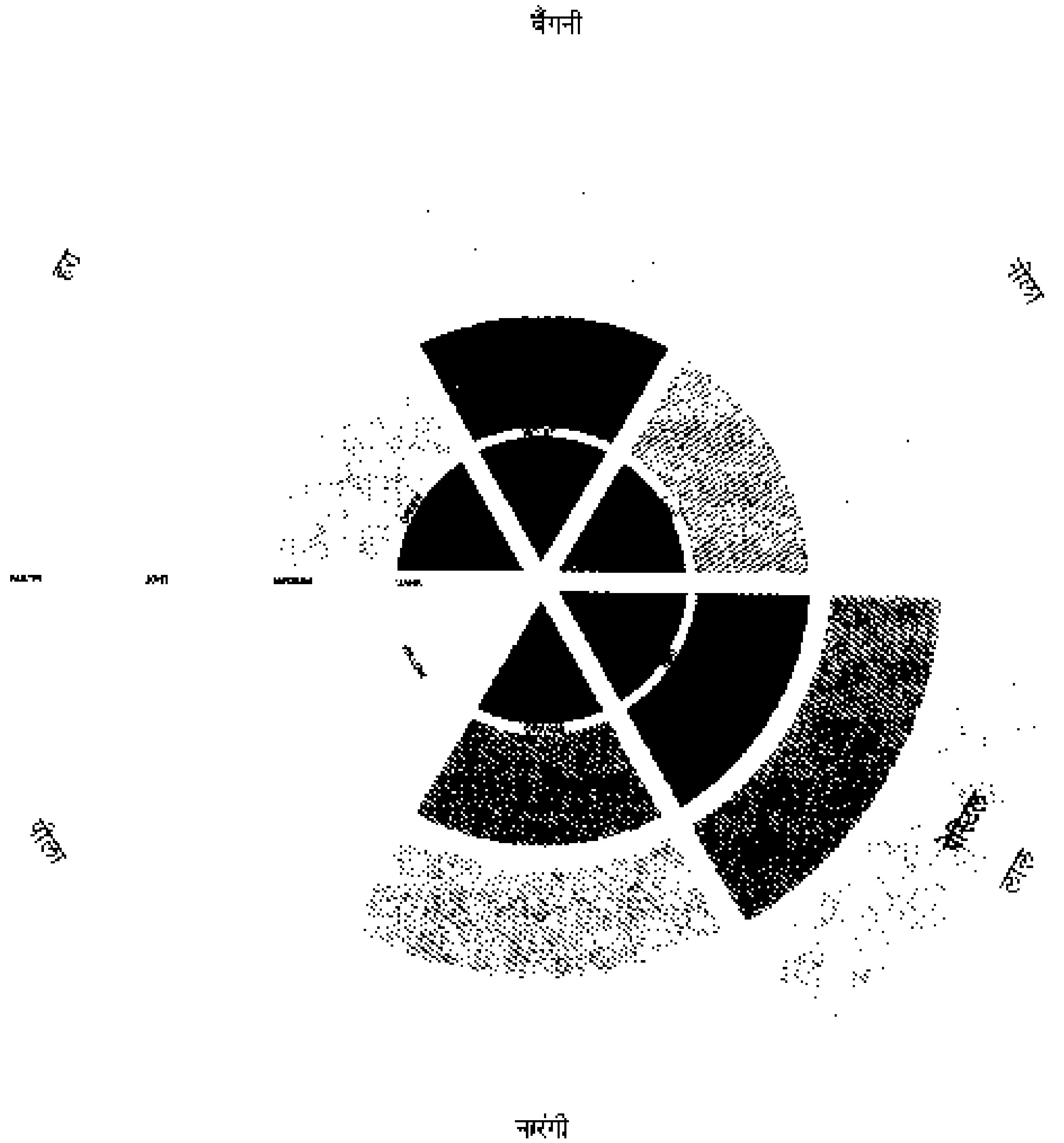

रंगीन प्राण

COLOR PRANAS

चित्र ५.०४

卐 ।। श्री महावीराय नमः।। 卐

महामंत्र णमोकार

णमो अरिहंताणं

णमो आयरियाणं

णमो लोए सव्व साहूणं।।

एसो पंच णमोक्कारो सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं पढम् हवइ मंगलं।

चित्र ५.०५

का शक्तिदायक प्रभाव होता है और गहरे लाल रंग की ऊर्जा उपचारित अंग को कमजोर कर देती है। हल्का या पेस्टिल (Pastel) रंग की ऊर्जा का प्रयोग करना सुरक्षित होता है। रंगों का शेड (shade) चित्र ५.०४ में दर्शाया गया है।

(ख) हल्के रंग की ऊर्जा की तीव्रता (potency) उसको सफेद रंग की ऊर्जा के साथ मिलाकर कम की जा सकती है। उदाहरण के तौर पर, इसके लिए ऊर्जा के केन्द्रीय भाग (core) में प्रकाशवान सफेद (luminous white) प्राण ऊर्जा तथा परिधि (periphery) में हल्के लाल रंग की ऊर्जा को शक्ति प्रदान करने के लिए इस्तेमाल की जाती है। इस प्रकार से ऊर्जा का उपयोग श्रेयस्कर है क्योंकि सफेद प्राण समन्वय करने वाली (harmonious) ऊर्जा होती है। यह समन्वय इस आशय से है कि वह उपचार में आवश्यकतानुसार दूसरे रंग की ऊर्जा प्रस्तुत करती है और उपचारित अंगों से अतिरिक्त ऊर्जा को शरीर के अन्य भागों में पुनः वितरित कर देती है। सामान्यतया हल्के रंग के स्थान पर ७० प्रतिशत सफेद तथा परिधि में ३० प्रतिशत हल्के रंग की ऊर्जा अधिक अच्छा, तीव्र और सुरक्षित प्रभाव करती है। यहां सफेद ऊर्जा से तात्पर्य एक ट्यूब लाइट की जो रोशनी होती है, उतनी प्रकाशवान सफेद ऊर्जा से है। बहुत कम अवसर पर तीव्र प्रभावों के लिए हल्के रंग की ऊर्जा पूर्ण रूप से प्रयोग में आती है।

सफेद रंग की ऊर्जा तीन प्रकार की विधियों द्वारा इस्तेमाल की जा सकती है।

(१) केन्द्र में प्रकाशवान सफेद और रंगीन ऊर्जा परिधि में
(२) केन्द्र में रंगीन ऊर्जा और परिधि में सफेद ऊर्जा
(३) हल्के रंग को सफेद ऊर्जा से मिश्रित करके

विधि (१) के लिए सफेद प्रकाशवान ऊर्जा को प्रेक्षित होते हुए दृश्यीकृत करें, फिर थोड़ी सी रंगीन ऊर्जा को इस प्रकार परिधि पर प्रेक्षित करें कि परिधि पर वह सफेद ऊर्जा के सम्मिश्रण से बहुत हल्की पेस्टिल रंग की हो जाये। विधि (१) और (२) एक सी है क्योंकि दिव्यदर्शियों ने देखा है कि दोनों प्रकार के नमूने एक के बाद एक, लगातार और जल्दी-जल्दी आपस में बदलते रहते हैं। विधि (३) अधिक गूढ़ ऊर्जा है और भली प्रकार सुरक्षित है।

(ग) रंगीन प्राणों से ऊर्जन करते हुए यह आवश्यक है कि रंग बदलने से पहले हाथों को कई बार झटकते रहें। यह सुरक्षा की दृष्टि से जरूरी है। हाथ न झटकने से पहले इस्तेमाल की गयी ऊर्जा का का अवशेष जो हाथों में रह जाता है, वह बाद में की जा रही दूसरे रंग की ऊर्जा में मिलकर, रोगी पर एक तीसरे ही तरह का प्रभाव डाल सकती है क्योंकि दो रंगों से मिश्रित ऊर्जा का गुण इन दोनों गुणों से भिन्न हो सकता है।

(घ) उपचार में साधारणतः उपरोक्त विधि (१) में बतायी गई दृश्यीकृत की जाती है तथा प्रयोग में लाई जाती है। नीचे दी गई तालिका में विभिन्न रंगों में केन्द्र में सफेद ऊर्जा का पतिशत परिधि में हल्के रंगीन ऊर्जा का प्रतिशत जो रोगों के उपचार में इस्तेमाल किया जाता है दर्शाया गया है। विद्युतीय-बैंगनी के केन्द्र में सफेद रंग की ऊर्जा चका चौंध करने वाले सफेद प्रकाश (Dazzling white) की होती है। शरीर के किस-किस चक्र से कौन से रंग की ऊर्जा उपचार के लिये ली जाती है, वह भी दर्शाया गया है। परिधि में हल्के रंग का आशय चित्र ५.०४ में दर्शाये गये हल्के (Light) रंग से है। इसको ध्यानपूर्वक देखें और मनन-चिंतन करें तथा परिधि में इसी तरह के रंग को दृश्यीकृत करें। संक्षिप्तीकरण के लिये इनके चिन्ह भी सामने लिख दिये गये हैं।

क्र. सं.	सफेद सा हल्का ऊर्जा का रंग	संक्षिप्ती करण संदृष्टि	प्रकाशवान ऊर्जा- केन्द्र में (प्रतिशत)	हल्के रंग की रंगीन ऊर्जा- केन्द्र के चारों ओर (प्रतिशत)	हल्के रंग की रंगीन ऊर्जा परिधि में (प्रतिशत)	स्रोत चक्र
१	लाल (Red)	R	७० लगभग	–	३० लगभग	1
२	नारंगी (Orange)	O	८० या उससे अधिक	–	२० या उससे कम	1
३	पीला (Yellow)	Y	८० लगभग	–	२० लगभग	1
४	हरा (Green)	G	७० लगभग	–	३० लगभग	8
५	नीला (Blue)	B	७० लगभग	–	३० लगभग	8

क्र. सं.	सफेद सा हल्का ऊर्जा का रंग	संक्षिप्ती करण संदृष्टि	प्रकाशवान ऊर्जा– केन्द्र में (प्रतिशत)	हल्के रंग की रंगीन ऊर्जा– केन्द्र के चारों ओर (प्रतिशत)	हल्के रंग की रंगीन ऊर्जा परिधि में (प्रतिशत)	स्रोत चक्र
६	बैंगनी (Violet)	V	७० लगभग	–	३० लगभग	11
७	नारंगी–लाल (Orange–Red)	O–R	७०	१५ या उससे थोड़ा सा अधिक–लाल	१५ या उससे थोड़ा सा कम–नारंगी	1
८	नारंगी–पीला (Orange–Yellow)	O–Y	७०	१५ या उससे थोड़ा सा अधिक पीला	१५ या उससे थोड़ा सा कम नारंगी	1
९	हरा सा नीला (Greenish Blue)	G–B	७०	२०–नीला	१० –हरा	8
१०	नीला सा बैंगनी (Bluish Violet)	B–V	७०	२०–बैंगनी	१०–नीला	11
११.	हरा सा बैंगनी (Greenish Violet)	G–V	७०	२०–बैंगनी	१०–हरा	11
१२	हरा सा पीला (Greenish Yellow)	G–Y	७०	१५–पीला	१५–हरा	11

दिव्य ऊर्जा

१	विद्युतीय–बैंगनी (Electric Violet)	eV	चकाचौंध करने वाला सफेद प्रकाश– ७० , लगभग	–	३० लगभग	11
२	सुनहरी (Golden)	g	१०० सुनहरी	–	–	11

नोट : (१) चूंकि eV उच्चतम आत्मा द्वारा कार्यक्रमित होती है; इसलिए उनको, **साधारण प्राण ऊर्जा के केस में पहले सफेद, फिर ऊपर से परिधि पर रंगीन ऊर्जा द्वारा चित्रित करने के बजाय, सीधा ही जैसी दिव्य ऊर्जा होती है, वैसी ही दृश्यीकृत की जाती है।**

(२) इस पुस्तक में उपचार हेतु सफेद हल्की सी रंगीन ऊर्जा (Light whitish coloured pranic energy) का प्राविधान है। कहीं अन्य प्रकार की आवश्यकता महसूस हुई है, तो उसको विशेष रूप से उल्लेखित कर दिया है।

(३) रंगीन ऊर्जा का किस प्रकार उपयोग करें

(क) जैसा कि क्रम सं २ में उपचार के लिये ली जाने वाली वांछित रंगीन ऊर्जा का जिक्र है, वैसा आप चिन्तन करें। सामान्य ऊर्जा के लिए आप वातावरण से सम्बन्धित चक्र द्वारा सफेद ऊर्जा ग्रहण करें और उस चक्र से वांछित रंगीन ऊर्जा का चिंतन करते हुए तथा उस ऊर्जा का वास्तविक रंग वही हो जैसा आप चाहते हैं, इसके लिए ईश्वर से मन ही मन प्रार्थना करें। इस रंगीन ऊर्जा को प्रेषण करने वाले हाथ के चक्र अथवा उंगलियों के चक्र द्वारा दृश्यीकृत करें। साथ ही, यह अपने आप को स्मरण दिलाते रहिए अथवा मन ही मन विचार करिए कि–

"मैं अपने .... चक्र में ऊर्जा ग्रहण कर रहा हूं।
मैं अपने ..... चक्र द्वारा ऊर्जा को प्रेषण कर रहा हूं।
मैं जितनी ऊर्जा प्रेषण कर रहा हूं, उससे अधिक ऊर्जा ग्रहण कर रहा हूँ।"

(ख) उपरोक्त तकनीक ग्रहण चक्र अथवा प्रेषण चक्र के अनुसार उसी प्रकार की कहलाती है, अर्थात् मूलाधार – हाथ (1–H), कण्ठ–हाथ (8–H), ब्रह्म–हाथ (11–H) अथवा मूलाधार (1)– उंगली, कण्ठ (8) –उंगली, ब्रह्म (11)–उंगली चक्र तकनीक।

(ग) दिव्य ऊर्जा ग्रहण करने के लिए, सर्वप्रथम ईश्वर से तीन बार प्रार्थना कीजिए कि उसके आशीर्वाद से आपको दिव्य ऊर्जा प्राप्त हो जाये। यदि आप भक्ति से प्रार्थना करेंगे एवम् सद्चारित्र हैं, तभी आपको यह ऊर्जा मिलेगी। तत्पश्चात्

यह महसूस करने के बाद कि आपके ब्रह्मचक्र में ऊर्जा प्राप्त हो रही है, उसे हाथ अथवा उंगली चक्र से प्रेषित करें।

(घ) उक्त दोनों केसों में, आप यह न सोचें कि ग्रहण किये जाने वाले चक्र से प्रेषण किये जाने वाले चक्र के लिये ग्रहीत ऊर्जा शरीर के अन्दर किस मार्ग से गुजर रही है।

(ङ) प्रत्येक रंगीन ऊर्जा से ऊर्जन करने के बाद वायवी तरीके से दोनों बाहें साफ करें, तभी दूसरी रंगीन ऊर्जा से ऊर्जन करें अन्यथा दो रंगों के संभावित मिश्रण से रोगी को हानि पहुंच सकती है। इसी प्रकार रंगीन ऊर्जा से सफाई करने के बाद बांहें, धोना आवश्यक है।

(च) प्राण की एक अपनी चेतना (consciousness) होती है। जिस समय आप उसको प्रेषित करें, तो इच्छा करें एवम् उससे निवेदन करें कि वह अमुक रोगी के अमुक चक्र अथवा अमुक अंग अथवा अमुक चक्र द्वारा अमुक अंग में जाकर अमुक कार्य करे। इसको तीन बार करें। फिर इसको दृश्यीकृत भी करें कि तदनुसार प्राण ऊर्जा कार्य कर रही है।

(छ) रंगीन प्राण का उपयोग उपचारक की इच्छा के अनुसार सीमित किया जा सकता है एवम् उसका प्रभाव बढ़ाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर किसी चक्र या अंग को नीले रंग द्वारा प्रतिबंधित किया जा सकता है। नीले रंग द्वारा उस चक्र को छोटा किया जा सकता है, तथा उसके द्वारा किसी चक्र या अंग के चारों ओर एक घेरा सा बनाया जा सकता है ताकि दूसरे रंग की ऊर्जा उस घेरे के बाहर न जाये। इसके लिए नीले प्राण का रंग, उस दूसरे रंग की ऊर्जा से जरा सा अधिक गहरा होना चाहिए अथवा इस नीले रंग की ऊर्जा के प्रेषण का समय उस दूसरे रंग की ऊर्जा के प्रेषण के समय से थोड़ा सा अधिक होना चाहिए एवम् नीले रंग की ऊर्जा को इस बारे में स्पष्ट निर्देश देने चाहिए।

लाल रंग की ऊर्जा द्वारा चक्र के आकार को बढ़ाया जाता है। इस सम्बन्ध में इसका कार्य नीले रंग की ऊर्जा से विपरीत है।

(ज) यदि आपको रंगीन ऊर्जा के वांछित रंग का सही दृश्यीकरण करने में कठिनाई होती है, तो ईश्वर से विश्वास के साथ प्रार्थना करें कि प्रेषित ऊर्जा का रंग वही हो जो आप चाहते हैं।

(झ) विभिन्न प्रकार की रंगीन ऊर्जाओं के गुण, उनके उपयोग और इनके उपयोग में सावधानियां जो बर्तनी चाहिए, वे आगे दिये गये हैं।

(ञ) प्रयोग– लाल रंग की प्रकृति उष्ण एवं नीले रंग की ऊर्जा की प्रकृति ठंडी होती है। इसके प्रयोग के लिए आप अपने 1 से लाल ऊर्जा ग्रहण करके हथेली पर यदि महसूस करेंगे तो थोड़ी गर्मी सी लगेगी। और यदि 8 से नीली ऊर्जा ग्रहण करके हथेली पर महसूस करेंगे तो थोड़ी ठण्डक सी लगेगी।

(त) सफेद व विभिन्न प्रकार की ऊर्जाओं को दवा के रूप में प्रयोग करें। जैसे कम दवा या कम शक्ति की दवा ज्यादा प्रभावकारी नहीं होती और अधिक मात्रा में या अधिक शक्ति की दी गयी दवा हानिकारक हो जाती है, इसी प्रकार इन ऊर्जाओं के विषय में समझना चाहिए।

(४) लाल रंग की ऊर्जा – Light Whitish Red Energy (R)

(क) स्रोत– वायु प्राण– माध्यम मूलाधार चक्र (1)

(ख) रचना– केन्द्र में लगभग ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद और परिधि में लगभग ३० प्रतिशत हल्का लाल। हल्के लाल रंग का शेड (shade) चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित है।

(ग) Texture (वस्तु रचना) – उष्ण

(घ) शरीर पर प्रभावीगुण–

(१) शक्तिवर्धक (२) उष्णता पैदा करने वाला (३) विस्तार करने वाला– Expansive, Dilating (४) वितरण में सहायक– Distributive—improves circulation (५) रचनात्मक Constructive – rapid tissue or Cellular repair (६) भौतिक शरीर को स्थिर (sustain) करने में सहायक

(७) रक्त, कोषिकाओं और अस्थि तंत्र को शक्तिदायक (८) उत्तेजना पैदा करने वाला एवम् सक्रियता करने वाला (९) चक्रों को बड़ा करना।

(ङ) शारीरिक उपयोग–

(१) कमजोर और ढीले ढाले अंगों या भागों को शक्ति देना।

(२) रक्त एवम् वायु की नलियों को चौड़ाने वाला– इस गुण का प्रयोग हृदय रोग एवम् अस्थमा रोग में किया जाता है।

(३) परिभ्रमण में सुधार जैसे रक्त blood circulation रुधिराभिसरण

(४) एलर्जी में।

(५) आंतरिक तथा बाह्य घावों में।

(६) लकवा

(७) बेहोश रोगियों को होश में लाना।

(८) मरते हुए रोगियों की जिन्दगी बढ़ाने अथवा उनको जीवित करने की कोशिश में।

(च) मनोवैज्ञानिक प्रभावी गुण–

(१) बहादुरी (२) साहस (३) क्रियाशीलता

(४) प्रगतिशीलता (५) आक्रामक

(छ) मनो रोगों में उपयोग–

(१) दब्बू timid व्यक्तियों का उपचार (२) निराशा, हतोत्साहता दूर करने में

(ज) सावधानी– इस ऊर्जा से सफाई नहीं की जाती।

(झ) चक्रों का उपचार–

छोटे हो गये और धीमे चल रहे चक्रों को सामान्य आकार एवम् सामान्य गति से चलाने के लिए, लाल रंग की ऊर्जा का प्रयोग करके सामान्य तौर पर आने तक इच्छा करें एवम् दृश्यीकृत करें। जांच करके इसको सुनिश्चित करें।

उक्त प्रक्रिया केवल 1, 2, 3, 4 और कभी–कभी ही 6 पर करना चाहिए, न कि उच्च चक्रों पर। उच्च चक्रों के लिए यह प्रक्रिया की

जाये तो इसका हृदय, कण्ठ, फैंफड़े, मस्तिष्क आदि उच्च अंगों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

(५) **नारंगी रंग की ऊर्जा– Light Whitish Orange Energy (O)**

(क) स्रोत– वायु प्राण– माध्यम 1

(ख) रचना– केन्द्र में ८० प्रतिशत या इससे अधिक प्रकाशवान सफेद और परिधि में २० प्रतिशत या उससे कम हल्का नारंगी– हल्के नारंगी रंग का शेड (shade) चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित है।

(ग) शरीर पर प्रभावीगुण–

(१) निष्कासन करना (२) नष्ट करना

(३) घनापन दूर करना (४) अच्छी प्रकार से सफाई करना

(५) ढीला करना– रोगग्रस्त ऊर्जा को ढीली करता है (६) पिघलाना

(७) किसी चीज को खींचकर निकालना

(८) तोड़ना, विस्फोट करना, नष्ट करना

(६) बेकार के पदार्थों को दूर करना

(घ) शारीरिक उपयोग

(१) बेकार की ऊर्जा, टॉक्सिन, कीटाणु और रोगग्रस्त ऊर्जा का निष्कासन करना अथवा नष्ट करना।

(२) एलर्जी–यद्यपि एलर्जी के लिए अन्य रोग की ऊर्जा प्रयोग की जा सकती है, किन्तु तुरन्त और देर तक प्रभावी इलाज के लिये O और R इस्तेमाल किये जा सकते हैं।

(३) गुर्दे और मूत्राशय के रोग।

(४) कब्ज–क्योंकि यह दस्त होने को उत्तेजित करता है।

(५) मासिक धर्म की समस्यायें (६) रक्त थक्का निकालना

(७) सन्धिवात (८) रसौली (Cyst)

(६) सर्दी, कफ और फैफड़े की समस्याएं

(१०) मरते हुए रोगी की चेतना का abstraction (सार) निकालने में सहायता करना।

(ङ) वायवी गुण (etherical property)

रोग ग्रस्त ऊर्जा और इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को शक्ति से खदेड़ना

(च) वायवी उपयोग–

उपरोक्त ऊर्जा की सफाई

(छ) मनोवैज्ञानिक प्रभावी गुण–

(१) उत्साह (२) Fanaticism- उद्दंडता आदि

(ज) मनोरोगों में उपयोग–

(१) निरुत्साहता (२) आलसीपन (३) ढीलापन

(झ) सावधानियां–

(१) चूंकि नारंगी प्राण का अति प्रभावशाली असर होता है, इसलिये इस रंग से नाजुक अंग जैसे सिर, आंखों, मस्तिष्क, सिर के नजदीक क्षेत्र में, हृदय, 7 , प्लीहा और 5 का इलाज नहीं करना चाहिए।

(२) इसका 6 और 4 पर इस्तेमाल सावधानी से करना चाहिए, क्योंकि इसके द्वारा पतले दस्त हो सकते हैं।

(३) इससे एपैन्डाइटि्स का इलाज नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके द्वारा आंत्रपुच्छ फट सकती है।

(४) जब आप फैंफड़ों को फैंफड़ों के पीछे की तरफ से ऊर्जित करें, तो हाथों और उंगलियां सिर की दिशा में इंगित करती हुई नहीं होने चाहिए अन्यथा इससे अनजाने में नारंगी ऊर्जा सिर व मस्तिष्क में पहुंचकर उनको क्षतिग्रस्त कर सकती है।

(ञ) सामान्य

मूत्र त्यागते समय बेकार के पदार्थ को शरीर से बाहर निकालने के लिए 2 और 3 अत्यधिक नारंगी प्राण उत्पन्न करते हैं।

(ट) सफाई के मामले में नारंगी (O) और हरे (G) के इस्तेमाल का सम्मिलित नोट–

सफाई की उन्नत तकनीक में किसी भी चक्र का शरीर के भाग का ऊर्जन करने से पहले अथवा सामान्य झाड़–बुहार में भी रोगग्रस्त

और इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को खींचना, निकालना और उसकी सफाई करने के काम G के द्वारा अवश्य किया जाता है। ढीला करने के पश्चात रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ का स्थानीय झाड़–बुहार द्वारा सफाया किया जाता है। तब उसके बाद ही प्रभावित चक्र/अंग को ऊर्जित किया जाता है।

जिद्दी किस्म की रोगग्रस्त ऊर्जा को किसी खास चक्र/क्षेत्र से ढीला करने और खदेड़ने में O का इस्तेमाल किया जाता है, क्योंकि G पूर्णतया प्रभावी नहीं होता। इसलिये O की तीव्र शक्ति होने के कारण, G का पहले उपयोग किया जाता है। किन्तु O के नष्टकारी प्रभाव को किसी खास जगह या चक्र में सीमित करने के लिए यह आवश्यक है कि G और O के ऊर्जन से पहले उस जगह या चक्र को नीले रंग की ऊर्जा से ऊर्जित किया जावे जिसकी तीव्रता G और O से थोड़ा सी ज्यादा गहरी हो और/अथवा ऊर्जन का समय G और O के ऊर्जन के समय से थोड़ा सा अधिक हो। इस प्रकार के केसों में निम्न विधि प्रयोग में लाई जायेगी।

(१) C G

(२) E B, इसके अतिरिक्त B को यह भी निर्देश दिया जाना चाहिए कि इसके बाद प्रेषित की जाने वाली नष्टकारी ऊर्जा द्वारा ऊर्जित किये जाने के फलस्वरूप उसके हानिकारक प्रभाव से प्रभावित चक्र/अंग की रक्षा करें।

(३) E G — to decongest, disinfect and loosen the diseased and used up energy (रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल की हुई ऊर्जा का घनापन हटाना, निकालना और ढीला करना), संक्षेप में — DDL

(४) E O — to further loosen and expel the diseased and used up energy (रोगग्रस्त ऊर्जा और इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को और अधिक ढीला करना और खदेड़ना), संक्षेप में इस FLE.

इस सबको हम C G / E BGO द्वारा लिख सकते हैं।

(ठ) पहले G, फिर O से ऊर्जन करना रोगग्रस्त ऊर्जा और इस्तेमाल की हुई ऊर्जा तथा अंग/चक्र की सफाई में अत्यन्त प्रभावशाली होता है। किन्तु यह केवल उन्हीं अंगों/चक्रों पर इस्तेमाल की जा सकती है, जो नाजुक न हो। नाजुक अंगों/चक्रों पर यह कार्य बैंगनी रंग की ऊर्जा से लिया जाता है।

यह सलाह दी जाती है कि अधिक शक्तिशाली ऊर्जा जैसे नारंगी, लाल और बैंगनी रंगों की ऊर्जा द्वारा सम्भावित क्षति को बचाने के लिए, पहले हरे रंग की ऊर्जा द्वारा ऊर्जन करें। किसी भाग के भौतिक एवम् वायवी सफाई के लिए पहले हल्के हरे (light green), फिर हल्के नारंगी (light orange) प्राण–ऊर्जा से ऊर्जित करें। हल्के हरे रंग की ऊर्जा से रोगग्रस्त ऊर्जा टूटेगी, फिर हल्के नारंगी रंग की ऊर्जा ढीली हो गयी ऊर्जा को बाहर खदेड़ देगी। इस क्रम का ध्यान रखें। यदि हल्के हरे रंग की ऊर्जा के थोड़े अधिक भाग के साथ हल्के नारंगी रंग की ऊर्जा के थोड़े कम भाग से एक साथ मिलाकर उपयोग किया जाए तो इसका प्रभाव कई गुना हो जाता है, इस कारण से यह आंशिक रूप से नष्टकारी हो जाती है और इसको जमा हुए पदार्थों को घोलने के काम आती है। जब और गहरे रंग की ऊर्जा का उपयोग किया जाता है तो इसका और भी अधिक नष्टकारी प्रभाव हो जाता है और यह कुछ प्रकार के कैन्सर के उपचार के काम में लिया जाता है। किन्तु यह आवश्यक है कि इस नष्टकारी ऊर्जाओं के प्रभाव को सीमित करने के लिए पहले उचित प्रकार के शेड के नीले रंग की ऊर्जा प्रेषित की जाए।

(६) हरे रंग की ऊर्जा – (Light Whitish Green Energy (G)

(क) स्रोत– वायु प्राण– माध्यम 8

(ख) रचना– केन्द्र में लगभग ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद और परिधि में लगभग ३० प्रतिशत लगभग हल्का हरा– हल्के हरे रंग का शेड (shade) चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित है।

(ग) प्रकृति– यह O के तुलना में अधिक सुरक्षित है और उससे कम प्रभावशाली है।

(घ) शरीर पर प्रभावीगुण– साधारणतया सफाई करते समय

(१) तोड़ना (२) हजम करना

(३) घनापन हटाना (४) सफाई करना

(५) विषाक्त पदार्थ से मुक्त करना –detoxifying

(६) disinfection –संक्रमण को दूर करना

(७) घोलना dissolving

(८) रोगग्रस्त जीव द्रव्य पदार्थ को ढीला करना

(९) मृत एवम् रोगग्रस्त कोशिकाओं को तोड़ना एवम् नष्ट करना

कभी–कभी सफाई करने के लिए भी G द्वारा ऊर्जन किया जाता है। ऐसी अवस्था में G को स्पष्ट निदेश दिया जाता है कि वह चक्र अथवा प्रभावित अंग से रोगग्रस्त एवम् इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को अलग करे और उसे घोले अर्थात नष्ट कर दे। विशेष अवस्थाओं में यह भी निदेश दिया जाता है कि वह उस चक्र/ प्रभावित अंग को ज्यादा शक्तिशाली रंगों के हानिकारक प्रभाव (जैसे लाल नारंगी, पीला, बैंगनी) जिनका ऊर्जन बाद में किया जाने वाला है, से रक्षा करें। इस विधि का प्रयोग आंतरिक अंगों की सफाई की तकनीक में किया जाता है। लेकिन फिर भी, इससे पहले नीले रंग की ऊर्जा द्वारा संहारक ऊर्जाओं से रक्षा करने के लिए ऊर्जन करना आवश्यक होगा।

(ङ) शारीरिक उपयोग–

(१) जिद्दी किस्म की रोगग्रस्त ऊर्जा को ढीला करना, घनापन समाप्त करना और उसकी सफाई करना

(२) disinfection संक्रमण को दूर करना

(३) रक्त के थक्का को तोड़ना

(४) सर्दी

(५) बुखार

(६) नाजुक अंगों जैसे आंख और मस्तिष्क से रोगग्रस्त ऊर्जा को निकालना और उनकी सफाई करना

(७) G घाव को गीला करने की कोशिश करता है, इसलिए इसका उपयोग ताजे घावों में नहीं किया जाता

(८) पुराने घावों के शीघ्र उपचार के लिये हरे प्राण का उपयोग किया जाता है। मृत कोशिकाओं को तोड़ने में काफी मात्रा में हरे प्राण की खपत होती है। पुराने घावों को ठीक करने के लिए हरा प्राण (५० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद और ५० प्रतिशत हल्के हरे प्राण) तत्पश्चात् लाल प्राण (५० प्रतिशत प्रकाशवान और ५० प्रतिशत हल्के लाल प्राण) का उपयोग किया जाता है।

(च) मनोवैज्ञानिक प्रभावी गुण—

(१) **Tactfulness** (चतुर, व्यवहारकुशल)

(२) **Diplomacy** (कूटनीति, कार्यकुशलता)

(छ) मनो रोगों में उपयोग –

(१) उजड्डता

(२) आक्रामकता

(ज) नोट– खाना खाते समय, 6 जो कि पाचक अंगों का नियंत्रण करता है, काफी मात्रा में हरे प्राण को उत्पन्न करता है जिससे खाना पचने में सहायता मिलती है।

(७) पीले रंग की ऊर्जा – Light Whitish Yellow Energy (Y)

(क) स्रोत– वायु प्राण– माध्यम 1

(ख) रचना– केन्द्र में ८० प्रतिशत लगभग प्रकाशवान सफेद और परिधि में २० प्रतिशत लगभग हल्का पीला– हल्के पीले रंग का शेड **(shade)** चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित है।

(ग) शरीर पर प्रभावी गुण।

(१) जोड़ना या चिपकाना

(२) हजम करना, बढ़ाना, विकसित करना

(३) नसों को उत्तेजित करना

(४) प्रारम्भ करना

(५) स्वस्थ एवम् शक्तिशाली कोशिकाओं, अंगों और अस्थियों के लिए आवश्यक

(घ) शारीरिक उपयोग–

(१) टूटी हड्डियां (२) त्वचा की समस्यायें

(३) कोशिकाओं की मरम्मत (४) हाजमा शक्ति बढ़ाना

(५) शक्तिशाली कोशिकाओं, अंगों और अस्थियों को विकसित करना

(६) यदि कम मात्रा में इस्तेमाल की जाये तो यह कैटेलेटिक एजेन्ट (Catalytic agent) का काम करता है; किन्तु समुचित मात्रा में इस्तेमाल करने से यह चिपकाने का कार्य करता है।

(७) जब R और Y एक के बाद एक इस्तेमाल किये जाते हैं तो कोशिकायें तेजी से बढ़ती हैं। इसलिये यह बालों के बढ़ने में यह प्रक्रिया की जा सकती है।

(८) शरीर द्वारा नये प्रत्यारोपित अंग को ग्रहण एवं अवशोषित करने के लिए R और Y का प्रयोग किया जा सकता है। इससे उस अंग के अग्राह्यता का खतरा कम हो जाता है।

(९) मात्र Y अकेले का ही उपयोग घाव, जले पर या टूटी हड्डियों के उपचार में नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे घाव का निशान या उभार पैदा हो जायेगा।

(१०) कभी-कभी अति सूक्ष्म जीव द्रव्य चैनलों के आंशिक बन्द हो जाने के कारण बीमारी पैदा हो जाती है। इसके उदाहरण निकट दृष्टिवत्ता अथवा दूर दृष्टिवत्ता है। ऐसे केस में पहले G द्वारा ऊर्जित करके आंखों में की रोगग्रस्त और इस्तेमाल हुई ऊर्जा को ढीला करके अत्यन्त सूक्ष्म टुकड़ों में तोड़ा जाता है। फिर थोड़ी सी Y को प्रेषण करके इन सूक्ष्म टुकड़ों को ग्रुप किया जाता है। तत्पश्चात् स्थानीय झाड़ बुहार द्वारा इनको साफ कर दिया जाता है। B के स्थान पर Y इस्तेमाल किया जाता है क्योंकि B न सिर्फ प्रयोग की हुई ऊर्जा निकालती है, अपितु ताजी प्राणशक्ति को भी निकाल देती है।

नाजुक अंगों जैसे आंखों के लिये Y के बजाय सुनहरी ऊर्जा (g) ज्यादा सुरक्षित रहती है।

(११) मल त्यागते समय 6 और 4 काफी मात्रा में नारंगी प्राणऊर्जा और कुछ मात्रा में पीला प्राण ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। जब Y, O के सम्पर्क में आती है तो लम्बी आंत पर एक बंदूक के घोड़े का सा प्रभाव (Triggering effect) होता है। तभी तो, कब्ज को ठीक करने में O या Y या दोनों का उपयोग किया जाता है।

(ङ) मनोवैज्ञानिक प्रभाव –

उच्च मानसिक सक्रियता

(च) मनोरोगों में उपयोग– निम्न मानसिक सक्रियता पर

(८) **सूक्ष्म अथवा गूढ़ पीले रंग की ऊर्जा – (Subtle Yellow)**

(क) उपलब्धता– 11 में

(ख) शारीरिक प्रभाव– पुनर्रचनात्मक Regenerating

(ग) शारीरिक उपयोग– अति नाजुक अंगों जैसे आंखों के उपचार में

(घ) मनोरोगों में उपयोग– इसका उपयोग नहीं किया जाता।

(९) **नीले रंग की ऊर्जा – Light whitish Blue Energy (B)**

(क) स्रोत– वायु प्राण–माध्यम 8

(ख) रचना– केन्द्र में ७० प्रतिशत लगभग प्रकाशवान तथा परिधि में लगभग ३० प्रतिशत हल्का नीला– हल्के नीले रंग का शेड (Shade) चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित है।

(ग) शरीर पर प्रभावी गुण–

(१) विजातीय पदार्थ को अलग करना और प्रज्वलन को शमन करने वाला

(२) सीमित करना

(३) स्थानीयकरण करना और संकुचित करना

(४) आरामदायक और हल्का सा सुन्न करने वाला

(५) ठंडा करने वाला
(६) लचीलापन करना
(७) रक्त को जमाने वाला अथवा रक्त का थक्का बनाना

(घ) शारीरिक उपयोग

(१) संक्रामकता (infection) के कारण रोग
(२) दर्द दूर करना, चैन पहुंचाना। इसके लिए C G / E GB
(३) सूजन को कम करना
(४) चक्रों और अंगों को संकुचित करना
(५) आराम पहुंचाना एवम् निद्रा लाना
(६) रक्त के बहने को रोकना
(७) बुखार को कम करना
(८) स्थानीयकरण (localization) करना

(क) ताजे घाव जैसे केसों में शीघ्र उपचार हेतु तथा रक्त कम से कम बरबाद हो।
(ख) नष्टकारक ऊर्जाओं के हानिकारक प्रभाव से अंगों को बचाना (इसका खुलासा नारंगी रंग की ऊर्जा में दिया है)
(ग) मनोवैज्ञानिक प्रभावी गुण—
निम्न श्रेणी की मानसिक सक्रियता या concrete विचार
(घ) मनोरोगों में उपयोग—
उन व्यक्तियों के लिए जिनको इनकी आवश्यकता हो।

(१०) बैंगनी रंग की ऊर्जा — Light whitish Violet Energy (V)

(क) स्रोत— वायु प्राण-माध्यम 11

(ख) रचना— केन्द्र में ७० प्रतिशत लगभग प्रकाशवान सफेद ऊर्जा तथा परिधि में ३० प्रतिशत लगभग हल्की बैंगनी ऊर्जा। हल्के बैंगनी रंग का शेड (Shade) चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित है।

(ग) प्रकृति (Texture)— सूक्ष्म होने के कारण इसका सफेद ऊर्जा की तुलना में अधिक भेदने (penetrating) का प्रभाव होता है।

(घ) सामान्य एवम् विशेष गुण–

(१) V में सभी अन्य ५ प्राणों (R, O, Y, G तथा B) के गुण होते हैं और यह शक्तिशाली होता है। W (सफेद) तथा V दोनों में ही सभी रंगों के गुण होते हैं, किन्तु V का ज्यादा गहराई तक घुसने का प्रभाव होता है और आसानी से अवशोषित हो जाता है। इसलिये W के तुलना में V उपचार में ज्यादा प्रभावशाली है।

(२) किसी भी अन्य रंगीन प्राण के प्रेषण के प्रभाव को, चाहे वह पहले किया जाये चाहे बाद में, V कई गुना बढ़ा देता है। इसलिये जब कभी V पहले अथवा बाद में उपयोग किया जाये, तब गहरे रंग के प्राण का उपयोग न करें, अन्यथा उसका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

(३) यदि V को अन्य रंगीन प्राणों के साथ मिलाकर एक साथ प्रेषण किया जाये तो कई गुना प्रभाव अन्य रंगों के गुणों पर पड़ता है।

(ङ) शारीरिक उपयोग–

(१) गम्भीर प्रकृति के रोगों पर

(२) नाजुक अंगों व शरीर के भागों पर अथवा 6 या उससे उच्च चक्रों पर (7, 8, 9, 10, 11) जहाँ वास्तव में O या R के उपयोग की आवश्यक्ता तो होती है, किन्तु उनका उपयोग उनके नष्टकारी प्रभाव के कारण नहीं किया जा सकता। ऐसे केसों में V से इन कार्यों को करने के लिये निवेदन करना चाहिए।

(३) कमजोर अंग को शीघ्र शक्तिशाली बनाने के लिए C G/E RV (यदि गहरा लाल इस्तेमाल किया गया तो प्रभाव नष्टकारक हो जायेगा)

(च) मनोवैज्ञानिक अथवा आध्यात्मिक गुण–

आत्मा से संबंधित, आत्मोन्नति

(छ) मनो रोगों में उपयोग –

आत्मोन्नति हेतु। उदाहरण के तौर पर जो हमेशा केवल धन के बारे में सोचते हैं, उनकी सोच को परिवर्तित करने के लिए।

(ज) चक्रों का उपचार–

धीमे चलने की दशा में उच्च चक्रों को तेज गति से चलाने के लिए एवम् यदि उनके छोटे आकार हो गये हों तो उनको बड़ा करने हेतु, जिस प्रकार R द्वारा निम्न चक्रों का किया जाता है– अर्थात 6, 7, 8, 9, 10, 11 पर।

नोट– मनोरोगों में साधारणतः नकारात्मक विचार, सोच के आकार तथा नकारात्मक परजीवियों को नष्ट करने के लिए विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा (eV) द्वारा सफाई की जाती है, तथा eV द्वारा ऊर्जन किया जाता है। उपचारक द्वारा समुचित मात्रा में eV न ग्रहण करने की दशा में V द्वारा उपचार किया जा सकता है, किन्तु इसका प्रभाव उतना अधिक नहीं होगा जितना कि eV का होता है।

(ञ) सावधानी –

(१) कभी भी V तथा R का एक साथ प्रेषण न कीजिए क्योंकि इसका प्रभाव नष्टकारक होता है। इसके द्वारा कुछ कोशिकाएं ऊर्जित होकर, अत्यधिक गर्म होकर बढ़कर फट सकते हैं।

(१) कभी भी V तथा O का एक साथ प्रेषण न कीजिए क्योंकि इसका प्रभाव अत्यन्त नष्टकारक होता है। कुछ ऊर्जित कोशिकाएं फट सकती हैं।

(३) कभी भी V तथा Y का एक साथ प्रेषण न कीजिए क्योंकि इसके प्रभाव से कोशिकाओं का शीघ्र अव्यवस्थित विकास (irregular growth) होगा।

(४) इसका एक नियम समझें कि जब कभी भी V को प्रेषित करना हो, तो उससे पहले G को प्रेषित करें। यह V का अधिक शक्ति होने के कारण सुरक्षा की दृष्टि से है।

(११) नारंगी-लाल रंग की ऊर्जा — Light whitish Orange-Red Energy (O—R)

(क) स्रोत– वायु प्राण-माध्यम 1

(ख) रचना– केन्द्र में ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद, तत्पश्चात् केन्द्र से लगे हुए मध्य भाग में १५ प्रतिशत या उससे अधिक हल्का लाल एवम् परिधि में १५ प्रतिशत या उससे कम हल्का नारंगी प्राण ऊर्जा

(ग) शरीर पर प्रभावी गुण–

यह सफाई एवम् निष्कासन का प्रभावी तौर पर कार्य करता है। ताजे घाव के केस में अधिक O रक्तस्राव को बढ़ा देता है। R का शक्तिदायक प्रभाव होता है और यह कोशिकाओं को तीव्र गति से बढ़ाता है। W अन्य वांछित रंगों को प्रदान करता है।

(घ) शारीरिक उपयोग–

(१) ताजे घाव के तुरन्त उपचार के लिए। इससे कोशिकाओं का तेज गति से निर्माण होने के कारण तुरन्त उपचार हो जाता है। O कोशिकाओं को तेज गति से विभाजन करती है और R उनको तेज गति से निर्माण और परिपक्व करती है। W भी उतनी ही आवश्यक है जितनी O या R — अन्दर से ताजा घाव अति शीघ्र ही बन्द हो जायेगा और ठीक हो जायेगा, किन्तु बाहर की त्वचा मृत कोशिकाएं होने के कारण बन्द नहीं होगा। इसलिए इस उपचार के द्वारा बाहरी त्वचा पर एक पतली कटी सी रेखा बन जायेगी। यह स्वस्थ व्यक्तियों को बहुत ही शीघ्र आराम पहुंचाती है।

यदि घाव में खाली जगह (Gap) है, तो घाव को सिलवाना पड़ेगा या टेप करना पड़ेगा या उपचार के दौरान केवल अपनी उंगलियों द्वारा ही सिकोड़कर रखना होगा।

इस उपचार की सम्पूर्ण विधि अध्याय ६ में दी गयी है।

नोट : O—R के स्थान पर G—V या B—V भी इस्तेमाल की जा सकती है।

(२) मोच में

(३) फटे हुए स्नायु (एक प्रकार से मांसपेशियों का भाग)

(Torn Tendons— Strong band or cord of tissue forming termination and attachment of fleshy part of muscle)

(ङ) सावधानियां–

(क) इसका उपयोग निम्न स्थानों पर नहीं करना चाहिए :–

(१) नाजुक आंतरिक अंगों पर क्योंकि वे क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

(२) मस्तिष्क और स्नायुतंत्र पर क्योंकि उससे वे फट सकते हैं और असाधारण या मंगोलोइड mongoloid (Mongoloin type yellowish face मंगोल टाइप का पीला सा चेहरा) कोशिकाएं पैदा हो सकते हैं।

(३) नाजुक अंगों के नजदीक के क्षेत्र पर।

(ख) नाजुक अंगों पर एवम् वैसे भी, B—V या G—V का उपयोग किया जा सकता है।

(१२) नारंगी–पीला रंग की ऊर्जा–**Light whitish Orange-Yellow Energy (O-Y)**

(क) स्रोत– वायु प्राण–माध्यम 1

(ख) रचना– केन्द्र में ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद तत्पश्चात् केन्द्र से घिरे क्षेत्र में १५ प्रतिशत या उससे अधिक हल्का पीला रंग तथा परिधि में १५ प्रतिशत या उससे कम हल्के नारंगी रंग की ऊर्जा।

(ग) शरीर पर प्रभावी गुण–

O शक्तिशाली रूप से रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल की गई ऊर्जा को disinpectant (संक्रमण दूर करने वाला) तथा उसको खदेड़ने वाला (expellant) का कार्य करती है, जबकि Y चिपकाने का काम (cementing) करती है।

(घ) शारीरिक उपयोग–

(१) टूटी हड्डियों और फटी हुई मांसपेशियों को शीघ्र ठीक करना।
(२) त्वचा अथवा हड्डी के प्रत्यारोपण में
(ङ) सावधानी–

इसे घावों के उपचार में इस्तेमाल नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे भद्दे घाव के निशान बन जाते हैं।

(१३) हरा–नीला रंग की ऊर्जा – **Light whitish Greenish—Blue Energy (G-B)**

(क) स्रोत– वायु प्राण–माध्यम 8

(ख) रचना– केन्द्र में ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद तत्पश्चात् केन्द्र के चारों ओर २० प्रतिशत हल्के नीले रंग का प्राण तथा परिधि में १० प्रतिशत हल्का हरा प्राण ऊर्जा

(ग) शरीर पर प्रभावी गुण–

G संक्रमण दूर करने वाला और सफाई करने वाला है। B मध्यम शक्ति का संक्रमण दूर करने वाला, आराम व शान्ति देने वाला, संकोचन

गुणवाला है। रक्तस्राव में यह रक्त के थक्के बनाकर रक्तस्राव को रोकता है।

(घ) शारीरिक उपयोग–
   (१) ताजे घाव पर
   (२) संक्रमण
   (३) सूजन
   (४) भोजन का विषमय हो जाना Food Poisoning
   (५) कीड़े के काटने पर
   (६) रक्तस्राव
   (७) Hemophilia – (हैमोफिलिया) – यह Heraditory (वंशगत) बीमारी होती है जिसमें जरा सी चोट से रक्तस्त्राव देर तक होता रहता है क्योंकि रक्त के थक्के आमतौर पर नहीं बन पाते। ऐसे केस में उपचार निम्नवत होगा:
      (क) C (AP) G / E G—B
      (ख) E (1, 4) G / E R

(ङ) सावधानी–

यह GS में इस्तेमाल नहीं होता क्योंकि कुछ रोगियों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ता है।

(च) भोजन विषमयी होने की स्थिति में उपचार–
   (१) C' (पेट के क्षेत्र पर, विशेषकर निचले भाग पर)
   (२) C' (6, 4) / E 6 G—B तथा E 4 G—B
   (३) C'

यदि ठीक न हो, तो तुरन्त मैडिकल डॉक्टर के पास जाना चाहिए।

(१४) हरी–नीली ऊर्जा – **Greenish- Blue Energy**
   (क) स्रोत– वायु प्राण–माध्यम 8
   (ख) रचना– ३० प्रतिशत हल्का हरा तथा ७० प्रतिशत हल्का नीला प्राण ऊर्जा

(ग) शरीर पर प्रभावी गुण–

क्रम (१३) में वर्णित G—B से कई गुनी शक्तिवाली

(घ) शारीरिक उपयोग–

(१) गंभीर संक्रामक रोगों एवम् सूजन पर।

(२) नाजुक अंगों पर सावधानी से प्रयोग करें।

(३) भोजन का विषाक्त हो जाना (food poisioning)

(४) कीड़े काटने पर

(ङ) सावधानियां–

२० वर्ष से कम उम्र तथा 45 वर्ष की उम्र से अधिक रोगियों पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे नाजुक अंगों पर अनिष्टकारी प्रभाव पड़ सकता है।

(१५) नीला–बैंगनी रंग की ऊर्जा – Light Whitish Bluish Violet Energy (B-V)

(क) स्रोत– वायु प्राण-माध्यम 11

(ख) रचना– केन्द्र में ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद ऊर्जा, तत्पश्चात् केन्द्र के चारों ओर २० प्रतिशत हल्का बैंगनी तथा परिधि में १० प्रतिशत हल्का नीला रंग प्राण ऊर्जा

(ग) शारीरिक उपयोग

(१) क्षतिग्रस्त अंग, स्नायु और मस्तिष्क के कोशिकाओं के पुनर्निर्माण में

(२) ताजे घाव के शीघ्र उपचार में

(१६) हरा–बैंगनी रंग की ऊर्जा –Light Whitish Greenish Violet Energy (G-V)

(क) स्रोत– वायु प्राण–माध्यम 11

(ख) रचना– केन्द्र में ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद ऊर्जा, तत्पश्चात् उसके चारों ओर २० प्रतिशत हल्का बैंगनी तथा परिधि में १० प्रतिशत हल्का हरा रंग प्राण ऊर्जा

(ग) शारीरिक उपयोग– जैसा उपरोक्त (१५) (ग) में वर्णित

(१७) हरा–पीला रंग की ऊर्जा –**Light Whitish Greenish Yellow Energy (G-Y)**

(क) स्रोत– वायु प्राण-माध्यम 11

(ख) रचना– केन्द्र में ७० प्रतिशत प्रकाशवान सफेद ऊर्जा, तत्पश्चात् १५ प्रतिशत हल्का पीला तथा परिधि में १५ प्रतिशत हल्का हरा प्राण ऊर्जा

(ग) शारीरिक उपयोग– मस्तिष्क, स्नायु और आंतरिक अंगों की कोशिकाओं के पुनर्निर्माण में

(१८) अन्य प्रकार की प्राण ऊर्जायें

नाम	गुण	उपचार के योग्य	कैफियत
पीला–लाल Y—R	नष्टकारक	अयोग्य	इस्तेमाल करने पर अतिशीघ्र व अव्यवस्थित गति से कोशिकाओं का निर्माण करेगा। पौधों व पेड़ों पर ऊर्जन करने से यह उनको नष्ट कर देगा।
बैंगनी–लाल V—R	नष्टकारक	अयोग्य	
बैंगनी–नारंगी V—O	अति नष्टकारक	अयोग्य	
बैंगनी–पीला V—Y	नष्टकारक	अयोग्य	इस्तेमाल करने पर अति शीघ्र व अव्यवस्थित गति से कोशिकाओं का निर्माण करेगा

(१९) गुलाबी ऊर्जा – **Pink Energy**

(क) **उपलब्धता–** लगातार सकारात्मक भावनाओं के कारण यह हृदय में उत्पन्न होती है। यह ऊर्जा विभिन्न चक्रों एवम् मैरिडियनों (meridians) की गंदी एवम् रोग ग्रस्त ऊर्जा को हटाकर उसको परावर्तित करती है, जिससे प्राण ऊर्जा समस्त शरीर में स्वतंत्रतापूर्वक प्रवाहित होती है,

जिससे विभिन्न चक्र सामान्य होते हैं और शरीर ठीक व स्वस्थ होने लगता है। यह अध्याय ३ में वर्णित द्विहृदय पर ध्यान चिंतन के समय (सकारात्मक भावनाओं के कारण) भी उत्पन्न होती हैं।

गुलाबी रंग की ऊर्जा के अन्य स्रोत कस्तूरी, गुलाब का तेल और रोज़ क्वार्ट्ज़ (Rose Quartz) हैं।

(ख) यह स्नेह की ऊर्जा की द्योतक है।

(ग) उपचारक को इस ऊर्जा का प्रयोग उपचार के लिये नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे उसका 7 पर विपरीत प्रभाव पड़कर हृदय की समस्यायें हो सकती हैं।

(२०) विद्युतीय बैंगनी– Electric Violet Energy (eV)

(क) **स्त्रोत**– दिव्य स्त्रोत– परमात्मा व आध्यात्मिक गुरुओं के आशीर्वाद से– प्रवेश बिन्दु– 11

(ख) **रचना**– केन्द्र में ७० प्रतिशत चकाचौंध करने वाली सफेद ऊर्जा तथा परिधि में हल्के बैंगनी रंग की प्राण ऊर्जा

(ग) गुण–

(१) इसमें सभी रोग की ऊर्जाओं के गुण हैं।

(२) यह V से कई गुना शक्तिशाली है।

(३) इसके द्वारा क्षतिग्रस्त अंगों व स्नायुओं पर शीघ्र पुनर्निर्माण होता है।

(४) यह अति शक्तिशाली संक्रमण दूर करने वाला है।

(५) इसकी अपनी स्वयं की एक चेतना होती है और अनेक रोगों का प्रभावी उपचार करता है।

(६) eV का V के तुलना में अन्य रंगों के गुणों से कई गुना शक्तिशाली प्रभाव पड़ता है।

(७) उसे क्या कार्य करना है, इसका उसको संज्ञान होता है।

(८) गहरे रंग की eV का अधिकतर लोगों पर हानिकारक प्रभाव होता है।

(घ) शारीरिक उपयोग–

गहरे रंग की eV की नष्टकारक गुण के कारण इसका उपयोग ट्यूमर तथा कैंसर में किया जा सकता है, किन्तु उससे पहले इसके प्रभाव को संकुचित करने के लिये गहरे नीले प्राण ऊर्जा से उसको ऊर्जित करना पड़ेगा।

(ङ) मनोरोगों में उपयोग

सभी रोगों पर। इसकी विशेष चर्चा अध्याय २३ व २४ में की गई है। इसके उपयोग करने की विधि भी वहीं बताई गयी है।

(च) सावधानियां

(१) eV का उपयोग कभी भी R, O, Y, G या V के साथ–साथ नहीं करना चाहिए, क्योंकि प्रभाव अति नष्टकारक होता है। इसीलिये यह साधारणतः शारीरिक रोगों के उपचार के काम में नहीं लायी जाती। यदि रोगी ग्रहणशील नहीं है, तो यह नष्टकारक ऊर्जा उपचारक के पास टकराकर लौट आती है।

(२) सामान्य नियम यह है कि eV का उपयोग B के अतिरिक्त किसी भी अन्य रंगीन प्राण ऊर्जा (R, O, Y, G, V) के साथ C अथवा E में नहीं करना चाहिए, किन्तु C (अन्य ऊर्जा द्वारा) तथा EeV या EBeV या EeVB या EmeVB या EdeVB कर सकते हैं। CeV अथवा CBeV कर सकते हैं। यहां B से तात्पर्य B– हल्के, मध्यम अथवा गहरे से है। m व d क्रमशः मध्यम (medium) व गहरे (dark) शेड के द्योतक हैं।

(३) कभी भी eV का 5 पर उपयोग न करें।

(छ) नोट– eV के ग्रहण करने की क्षमता उपचारक के आध्यात्मिक उन्नति एवम् उसकी आध्यात्मिक डोरी की मोटाई पर निर्भर करती है, जो 11 से जुड़ी होती है।

(२१) सुनहरे रंग की ऊर्जा– **Golden Energy (g)**

(क) **स्त्रोत**– दिव्य स्त्रोत– परमात्मा तथा गुरुओं के आशीर्वाद से प्रवेश बिन्दु– 11

(ख) **रचना–** जैसे eV के, किन्तु यह उससे मृदुतर है और उससे सफाई करने में कम प्रभावशाली है।

(ग) शारीरिक उपयोग–

(१) आवश्यक्तानुसार

(२) नाजुक क्षेत्रों /अंगों जैसे आंखों व मस्तिष्क पर शक्तिशाली Y के स्थान पर

(घ) सामान्य तौर पर

(१) यह ज्यादा अच्छा होगा कि eV को सामान्य E और g को स्थानीय E के लिए उपयोग करें।

(२) जो मार्गदर्शन eV के लिए है, वही g के लिए है।

(३) मनो रोगों में g के स्थान पर eV का उपयोग करना चाहिए।

(२२) उपचार के लिए किस चक्र से कौन सी ऊर्जा को ग्रहण करें

(क) 1 से R, O, Y, O—R, O—Y

(ख) 8 से G, B, G—B

(ग) 11 से V, B—V, G—V, G—Y, g, eV तथा दिव्य (divine)

(२३) पाठकगणों के लिए चिन्तन एवम् शोध का विषय

प्रायः आपने णमोकार महामंत्र को चित्र ५.०५ में निहित रंगों सहित लिखा देखा होगा। क्या कभी आपने इसमें निहित रंगों की ओर ध्यान दिया है? इसमें मेरा विश्लेषण इस प्रकार है:–

(क) **सफेद रंग में णमो अरिहंताणं–** इस रंग में सभी रंगीन प्राणों के गुण हैं। चमकदार श्वेत रंग एक दिव्य ऊर्जा का रूप है। अध्याय ३ में द्विहृदय पर ध्यान-चिंतन के वर्णन (घ) के अन्तर्गत एक सफेद चमकीली दिव्य रोशनी का जिक्र आया है।

अरिहंत भगवान की भक्ति से जीव स्वयं अरिहंत बनता है, कदाचित् सफेद रंग की ऊर्जा में सभी रंगों के गुणों के होने के कारण।

इस कारण से "णमो अरिहंताणं" यह संसारी जीव के अनादिकालीन मिथ्यात्व को उपशम /नष्ट करने में समर्थ है। "नवकार मंत्र के माहात्म्य" में वर्णित "यह आतम ज्योति जगाता है" इस कारण से है।

(ख) **लाल रंग में णमो सिद्धाणं–** क्रम संख्या ४ में हमने देखा कि इस रंग की ऊर्जा शक्तिवर्द्धक है। यह आत्म–शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से है। "नवकार मंत्र के माहात्म्य में वर्णित "यह आतम शक्ति बढ़ाता है" इस कारण से है। इस ऊर्जा का अन्य गुण उत्तेजना व उष्णता हैं जो कदाचित भक्ति के लिए प्रेरित करती है।

(ग) **पीले रंग में णमो आइरियाणं–** क्रम संख्या ७ में हमने देखा कि इस रंग की ऊर्जा का कार्य जोड़ना है। आचार्यों के उपदेश से यह जीव परमात्मा से जुड़ता, धर्म से जुड़ता व सम्यग्दर्शन से जुड़ता है। संसार को समझता है, तभी तो दीक्षा के भाव जगते हैं। "नवकार मंत्र के माहात्म्य" में यह दीक्षा में भाव जगाता है, इस कारण से है।

(घ) **हरे या नीले रंग में णमो उवज्झायाणं–** हरे व नीले रंगों की ऊर्जाओं में विजातीय पदार्थ को दूर करने की क्षमता है। यह आत्मा में बैठे हुए मल (मिथ्यात्त्व) को अलग करता है और तभी उसका ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। तभी णमोकार मंत्र के माहात्म्य" में "यह कर्माश्रव को ढीला करता, सम्यग्ज्ञान कराता है" वर्णित है।

(ङ) **काले रंग में णमो लोए सव्व साहूणं–** काले रंग में सोखने का एक अद्‌भुत गुण होता है। इसीलिए जीव के समस्त कषाय, राग–द्वेष–मोह, मिथ्यात्वादि को सोखते अथवा नष्ट करते हुए, यह उसको यथाख्यात चारित्र में अवस्थित कराता है जिससे साक्षात मोक्ष पद मिलता है। ज्ञातव्य हो कि जीव को मोक्ष केवल इसी पद से प्रापत होता है न कि अरिहंत, आचार्य अथवा उपाध्याय पद से। तभी "णमोकार के माहात्म्य" में "दिलवाता है यह ऊंचा पद" वर्णित है।

निवेदन है कि आप इस सम्बन्ध में स्वयं गहन चिंतन व खोज करें।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– सामान्य उपयोग– General Applications

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	चिन्ह– Symbols/Notations	५.१८२
२.	उन्नतशील उपचार की तकनीकें	५.१८५
३.	नियम व पद्धतियां	५.१८६
४.	उपचार में रंगीन ऊर्जा कितने समय तक	५.१८७
५.	यदि आपको यह निर्णय करना मुश्किल हो रहा है कि किस रंग की प्राण ऊर्जा का उपयोग करना चाहिए, तो क्या करें	५.१८७
६.	सामान्य तौर पर, शिशुओं और छोटे उम्र के बच्चों एवम् बूढ़े व्यक्तियों का उपचार	५.१८८
७.	चक्रों को संकुचित करना	५.१८८
८.	अंगों को संकुचित करना	५.१८८
९.	चक्रों को उत्तेजित करना	५.१८८
१०.	रोगों का उपचार– सामान्य उपयोग	५.१८९
उपक्रम		
(१)	अंगों को शक्ति पहुंचाना– सामान्य Strengthening— General	५.१८९
(२)	पैरों की शक्ति पहुंचाना– Strengthening the legs	५.१८९

(३) बाहों को शक्ति पहुंचना– Strengthening the arms ५.१६०
(४) दर्द दूर करना – Relieving Pain ५.१६०
(५) सिरदर्द – Headache ५.१६१
(६) आधासीसी का दर्द – Migrane Headache ५.१६१
(७) दांत का दर्द – Toothache ५.१६२
(८) पायरिया– Pyorrhea ५.१६२
(९) टूटी हड्डी– Broken Bone ५.१६२
(१०) चोट– Concussion ५.१६३
(११) गूमढ़ – Contusion ५.१६३
(१२) पीठ की चोट (क्षति) – Back injury ५.१६३
(१३) ताजा जलना– Fresh Burns ५.१६३
(१४) पुराने जले के सामान्य केस – Old minor burns ५.१६४
(१५) पुराने जले के गम्भीर केस – Old severe burns ५.१६४
(१६) रक्तस्त्राव कैसे रोका जाये– How to stop bleeding ५.१६४
(१७) पुराने घाव – Old wounds ५.१६५
(१८) ताजे घाव को तुरन्त ठीक करना–
Instantaneous healing of fresh wounds. ५.१६५
(१९) पुनर्निर्माण– Regeneration ५.१६६
(२०) त्वचा या हड्डी का प्रत्यारोपण – Skin or bone grafting ५.१६६
(२१) कोशिकाओं का शीघ्र निर्माण– Rapid growth of cells. ५.१६६
(२२) प्रत्यारोपित अंगों के अग्राह्यता का खतरा कम करना–
Reducing the risk of rejection of transplanted organs. ५.१६६
(२३) सर्जरी में प्राणिक उपचार– Pranic Healing in Surgery. ५.१६७
(२४) भोजन का विषाक्त हो जाना– Food Poisoning ५.१६८
(२५) अनिद्रा– Insomnia ५.१६८

(२६) शरीर में जमा विजातीय कठोर पदार्थों को टुकड़े–टुकड़े करना (जैसे पथरी)– Disintegrating Deposits ५.१६८

(२७) रसौली– Cysts ५.१६६

(२८) आंतरिक अंगों की सफाई करने की तकनीक– Cleansing the Internal Organs Technique ५.१६६

(२६) सौर जालिका चक्र की सफाई की तकनीक– Cleansing the Solar Plexus Chakra Technique ५.२००

(३०) रक्त की सफाई की तकनीक– Cleansing the Blood Technique ५.२००

(३१) बुखार– Fever ५.२०१

(३२) मास्टर उपचार तकनीक– मूलाधार चक्र तकनीक– Master Healing Technique- Basic Chakra Technique ५.२०३

(३३) उत्तम उपचार तकनीक– Super Healing Technique ५.२०७

(३४) सम्पूर्ण शरीर में दर्द– Aching of whole body ५.२०८

(३५) निवारक प्राणशक्ति उपचार– Preventive Pranic Treatment ५.२०८

११ प्राणशक्ति उपचार के महत्वपूर्ण चरण ५.२०६

१२ महत्त्वपूर्ण बातें जिनको ध्यान में रखे। ५.२११

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–सामान्य उपयोग
General Applications

(१) **चिन्ह (Symbols/Notations)**

वर्णन के संक्षिप्तीकरण हेतु चिन्हों द्वारा कुछ शब्दों/क्रियाओं आदि का वर्णन किया गया है। इनमें कई चिन्ह अध्याय ४ के क्रम ६ में दिए गए हैं। वे सब यथावत रहेंगे। उनके अतिरिक्त अब आगे कुछ और चिन्हों का उपयोग किया गया है, जो निम्नवत हैं:–

चिन्ह	प्रतिनिधित्व
C" 6	सामान्य उन्नतशील प्राणशक्ति उपचारक के लिए– क्रम संख्या २ (ग) में विधि के द्वारा 6 की सफाई अनुभवी उन्नतशील प्राणशक्ति उपचार के लिए– क्रम संख्या २ (ख) में बताई गई विधि द्वारा सफाई, तत्पश्चात् उचित केसों में क्रम संख्या १० (२६) में वर्णित तकनीक द्वारा द्वारा 6 की सफाई । ज्यादा अनुभवी उन्नतशील प्राणशक्ति उपचारक के लिए– क्रम संख्या २ (ख) में बताई गई विधि द्वारा सफाई, तत्पश्चात् उचित केसों में आन्तरिक अंगों की सफाई की तकनीक द्वारा इन अंगों की सफाई जिसकी विधि क्रमांक १० (२८) में दी गई है, किन्तु B प्राण को बगैर इस्तेमाल किये।

DDL रोग ग्रस्त तथा इस्तेमाल की हुई ऊर्जा का घनापन हटाना, निकालना और ढीला करना– decongest, disinfect and loosen the diseased and used up energy

FLE रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को और अधिक ढीला करना और खदेड़ना– Further loosen and expel the diseased and used up energy

l अध्याय ८ में संदर्भित चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित हल्के शेड (light shade) रंग

m चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित मध्यम शेड (medium shade) की प्राण ऊर्जा

d चित्र ५.०४ में दिग्दर्शित गहरे शेड (dark shade) की प्राण ऊर्जा

V अध्याय ८ के क्रम १० में वर्णित सफेद सी बैंगनी (Violet) रंग की प्राण ऊर्जा

B अध्याय ८ के क्रम ६ में वर्णित सफेद सी नीले (Blue) रंग की प्राण ऊर्जा

G अध्याय ८ के क्रम ६ में वर्णित सफेद सी हरे (Green) रंग की प्राण ऊर्जा

Y अध्याय ८ के क्रम ७ में वर्णित सफेद सी पीले (Yellow) रंग की प्राण ऊर्जा

O अध्याय ८ के क्रम ५ में वर्णित सफेद सी नारंगी (Orange) रंग की प्राण ऊर्जा

R अध्याय ८ के क्रम ४ में वर्णित सफेद सी लाल (Red) रंग की प्राण ऊर्जा

W सफेद (white) रंग की प्राण ऊर्जा

eV विद्युतीय– बैंगनी रंग की ऊर्जा जिसका वर्णन अध्याय ८ के क्रम २० में वर्णित है

meV अध्याय ८ के क्रम में वर्णित eV किन्तु परिधि की ऊर्जा का रंग हल्के बैंगनी के स्थान पर मध्यम बैंगनी

deV अध्याय ८ के क्रम २० में वर्णित eV, किन्तु परिधि की ऊर्जा का रंग हल्के बैंगनी के स्थान पर गहरा बैंगनी

O–R अध्याय ८ के क्रम ११ में वर्णित नारंगी–लाल प्राण ऊर्जा

O–Y अध्याय ८ के क्रम १२ में वर्णित नारंगी–पीली प्राण ऊर्जा

G–B अध्याय ८ के क्रम १३ में वर्णित हरा–नीला प्राण ऊर्जा

B–V अध्याय ८ के क्रम १५ में वर्णित नीली–बैंगनी प्राण ऊर्जा

G–V अध्याय ८ के क्रम १६ में वर्णित हरी–बैंगनी प्राण ऊर्जा

G–Y अध्याय ८ के क्रम १७ में वर्णित हरी–पीली प्राण ऊर्जा

g अध्याय ८ के क्रम २१ में वर्णित सुनहरी ऊर्जा

उदाहरण–

(क) C' (6, 4) G/E G~B का अर्थ होगा कि सौर जालिका चक्र और नाभि चक्र का अच्छी प्रकार से सफेद सी हल्के हरे रंग की ऊर्जा द्वारा स्थानीय झाड़–बुहार करें; इसके बाद इन्हीं दोनों चक्रों को बारी–बारी से सफेद सी हल्के हरे रंग की ऊर्जा तथा सफेद सी हल्के नीले रंग की ऊर्जा से ऊर्जित करते रहें, जब तक वांछित परिणाम नहीं प्राप्त हो जाते अथवा आपको सन्तोष प्राप्त नहीं हो जाता।

(ख) IR का आशय हल्के शेड (light shade) की लाल रंग की ऊर्जा से जिसमें सफेद ऊर्जा का कोई मिश्रण नहीं है। इसी प्रकार का आशय IY, IO, IG, IB, IV से है।

(ग) mR या dR आदि का आशय उक्त (ख) की तरह, किन्तु हल्के रंग के बजाय क्रमशः मध्यम या गहरे रंग के शेड से है।

(२) उन्नतशील उपचार की तकनीकें (Advanced Pranic Healing Techniques)

(क) सामान्य झाड़ बुहार तकनीक

G द्वारा GS करें और यह इच्छा करें तथा G को निदेश दे कि वह रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को ढीला करके बाहर फेंक दे ।

(ख) स्थानीय झाड़ बुहार– Counterclockwise Technique

हाथ/हाथों को एक या दो बार घड़ी की उल्टी दशा में घुमाकर फिर हाथ झटककर किया जाता है। इससे सफाई शीघ्रता से होती है। रोगी से रोगग्रस्त ऊर्जा के सम्भावित ग्रहण की आशंका से हाथ को निस्तारण बर्तन (जिसमें नमक का पानी रखा है) की ओर रोगग्रस्त ऊर्जा को नष्ट करने की इच्छा से हाथ झटकते रहना चाहिए।

(ग) शीघ्र सफाई

उक्त (ख) में वर्णित सफाई G द्वारा करने पर

(घ) कठिन किस्म की रोगग्रस्त ऊर्जा की सफाई

(१) उक्त (ख) में वर्णित C (नाजुक अंगों व 3, 4, 5, 6, 7, 8, 8', j, t, n, bh, 9, 10, 11) को C G~V द्वारा

(२) उक्त (ख) में वर्णित C (1, 2, p, a, e, H, h, k, S) को C G~O द्वारा

(ङ) जिद्दी तथा अति कठिन किस्म की रोगग्रस्त ऊर्जा की सफाई ऋ

(१) C G (DDL) (२) E B (विस्फोटक ऊर्जा जो इसके बाद प्रेषित की जाने वाली है, उसका प्रभाव शरीर के AP तक सीमित करने के लिए) (३) E G (DDL) (४) E O (FLE) (५) पांच मिनट तक प्रतीक्षा करें ताकि E GO की प्रक्रिया पूर्ण हो जाये (६) निकाली गयी रोगग्रस्त ऊर्जा को झाड़ू की तरह, बुहारकर,

इकट्ठा करके निस्तारण हेतु फैंक दें। इसको कई बार दोहरायें, जब तक आप निश्चिंत न हो जायें कि निकाली गई रोगग्रस्त ऊर्जा पूरे तौर पर फैंक दी गयी है। (७) E G रोगी को ठीक (heal) करने तथा शक्ति प्रदान करने के लिए (८) E B रोगी को सकून पहुंचाने और दर्द में आराम पहुंचाने के लिए (९) ऊर्जा का स्थिरीकरण करें।

नोट– O को नाजुक क्षेत्र में उपयोग न करें। इनमें V का प्रयोग करें।

1, 2, p, h, k, S, a, e, H को O द्वारा तथा 4, 6, 7, 8, 8', j, t, bh, 9, 10, 11 को V द्वारा ऊर्जित करना चाहिए (O के स्थान पर) सावधानी– 4 को ऊर्जित करने से पहले दो बार सोचें, क्योंकि यह डायरिया में खतरनाक हो सकता है तथा किन्हीं परिस्थितियों में पतले दस्त हो सकते हैं। 3 तथा 5 के केस में C GV, किन्तु E न करें।

(च) शीघ्र ऊर्जन

ऊक्त (ख) के अनुसार, किन्तु हाथ/हाथों को घड़ी की दिशा में घुमाना पड़ेगा।

(३) नियम व पद्धतियां

प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार एवम् माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार में जो नियमादि वर्णित हैं, वे सभी लागू होते हैं। मात्र उपचार की तकनीकियों में सुधार अथवा उन्नत होता चला गया है, ताकि उपचार की गुणवत्ता अधिक हो तथा उपचार में समय कम लगे। उपचार में विधियां पुनः सहज सन्दर्भ हेतु निम्न वर्णित हैं:–

(क) रोगी की प्राणशक्ति उपचार ग्रहणशीलता सुनिश्चित करना।

(ख) उपचारक द्वारा द्वि–हृदय पर ध्यान–चिंतन करना एवम् सच्चारित्र का पालन करना

(ग) उपचारक द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन सुनिश्चित करना

(घ) रोगी तथा उपचारक द्वारा ईश्वर से प्रार्थना करना।

(ङ) उपचारक द्वारा अपनी ऊर्जा स्तर बढ़ाना

(च) रोगी की जांच करना

(छ) जांच का विश्लेषण करना

(ज) आवश्यक्तानुसार GS करना

(झ) आवश्यक्तानुसार T करना। बीच–बीच में जांच करते रहना। T के पश्चात भी जांच करना और यदि आवश्यक हो, तो उचित T करें। ऊर्जाओं को ऊर्जन के पश्चात् स्थिरीकरण (stabilization) करते रहना, विशेष H तथा S चक्रों पर।

(ञ) स्थिरीकरण किये गये चक्रों तथा अंगों को हल्के नीले रंग की ऊर्जा द्वारा दृश्यीकृत करते हुए सील (seal) करना।

(ट) उपचारक द्वारा उसके और रोगी के मदद की वायवी डोर (etheric cord) को वायवी तरीके से काटना।

(ठ) उपचार के मध्य में तथा अन्त में अपने दोनों बाहों की वायवी सफाई

(ड) रोगी तथा उपचारक द्वारा ईश्वर को धन्यवाद देना

(ढ) उपचारक तथा रोगी द्वारा उपचार के बाद दिये गये निर्देशों का पालन करना।

(ण) उपचार के अन्त में उपचारक द्वारा अपने दोनों बांहों को नमक के पानी से धोना, फिर कीटनाशक साबुन से धोना।

(४) उपचार में रंगीन ऊर्जा का कितने समय तक

इसका कोई स्पष्ट उत्तर नहीं है। यह उपचारक के स्व–विवेक पर आश्रित है। इसमें रोगी की हालत, रोग की तीव्रता, AP द्वारा ऊर्जा का ग्रहण, उपचारक की योग्यता, उपचारक का ऊर्जा स्तर आदि। कुछ उपचारक तीव्रता एवम् शीघ्रता से उपचार करते हैं, कुछ मामूली तौर पर एवम् धीरे–धीरे। उन्नतशील उपचार जिनकी ऊर्जा गूढ़ है, किसी चक्र को कुछ ही सैकिन्डों में ऊर्जित कर देते हैं। कभी–कभी रंगीन ऊर्जा को मात्र ३ या ४ सैकिन्ड के लिये ही प्रेषण

किया जाता है। माध्यमिक रोगों के लिए पूरे इलाज में एक मिनट से कम का भी समय हो सकता है। यह ज्यादा आवश्यक है कि पुनः जांच द्वारा देख लिया जाये कि समुचित ऊर्जन हुआ है या नहीं।

(५) यदि आपको यह निर्णय करना मुश्किल हो रहा है कि किस रंग की प्राण ऊर्जा का उपयोग करना चाहिए तो क्या करें–

(क) मामूली रोगों के लिए – C G, E W

(ख) गंभीर रोगों के लिए – C G, E V

(६) सामान्य तौर पर, शिशुओं और छोटे उम्र के बच्चों एवम् बूढ़े व्यक्तियों का उपचार

W द्वारा करे। कुछ केसों में यदि W समुचित तौर पर प्रभावी नहीं होती, तो सफेद रंग से मिश्रित हल्के रंग की प्राण ऊर्जा का उपयोग करें।

(७) चक्रों को संकुचित करना–

(क) चक्र की जांच करें– सामने तथा बगल से

(ख) C' चक्र– हो सकता है, इसी से अति उत्तेजित चक्र सामान्य हो जाये।

(ग) E IB द्वारा चक्र को संकुचित करने की इच्छा करें एवम् दृश्यीकृत करें।

(घ) चक्र की दुबारा जांच करें।

(८) अंगों को संकुचित करना

यह पाया गया है कि गैस्ट्रिक अल्सर (Ulcer) में 6 के साथ–साथ पेट भी अति उत्तेजित हो जाता है। अंग को उपरोक्त विधि से संकुचित किया जा सकता है। इसके लिए–

(क) C' (AP)

(ख) E (AP) GB'

(ग) E IB द्वारा स्थिरीकरण करें।

(९) चक्रों को उत्तेजित करना–

अध्याय ८ के क्रम संख्या ४ (झ) तथा १० (ज) का अवलोकन करें।

(क) C' चक्र की जांच करें– सामने तथा बगल से

(ख) C' चक्र– हो सकता है कि इसी से धीमे तथा छोटे चक्र सामान्य हो जायें।

(ग) 6 से 11 तक E V अथवा E IV तथा 6 से नीचे के चक्रों को E R अथवा E IR द्वारा ऊर्जित करें

(घ) E IB द्वारा सील करें, ताकि प्रेषित ऊर्जा रिस न जाये।

(१०) रोगों का उपचार– सामान्य उपयोग

उपक्रम (१) अंगों को शक्ति पहुंचाना– सामान्य– Strengthening—General

(क) C' G (DDL) / E G

और अधिक शक्ति के लिए E V' – (कण्ठ एवम् इससे ऊपर के भाग के लिए) या E RV (अन्य भागों के लिए)

(ख) T (संबंधित सबसे नजदीक चक्र, इन्हीं मार्गदर्शनों के अनुसार)

उपक्रम (२) पैरों को शक्ति पहुंचाना– Strengthening the legs

(क) C 1 G (DDL) /E R– (1 को तथा पैरों को शक्ति पहुंचाने के लिए)

(ख) C p G (DDL) /E R– (p को शक्ति पहुंचाने के लिए एवम् इसके द्वारा समुचित मात्रा में 1 से पैरों तक ऊर्जा पहुंचाने के लिए)

(ग) E 4 G (DDL) /E R – (4 को शक्ति पहुंचाने के लिए तथा शरीर की सामान्य तौर पर तथा विशेष तौर पर पैरों की ओजस्वता– Vitality बढ़ाने के लिए)

(घ) E' 2 G (DDL) /E R– (2 को शक्ति पहुंचाने के लिए तथा 2 से समुचित मात्रों पैरों में पहुंचाने के लिए)

(ङ) C (समस्त पैरों का) G (DDL) ~ O (FLE)

(च) C (h,k,S) G (DDL) ~ O (FLE)

E R (पैरों को और इन चक्रों को शक्ति पहुंचाने के लिए)– h,k का स्थिरीकरण करें, किन्तु S का स्थिरीकरण न करें।

उपरोक्त उपचार कमजोर पैरों, पैरों के फ्रैक्चर, संधिवात और लकवा में पैरों को शक्ति प्रदान करने का है। सामान्य केस में O द्वारा उपचार न करें।

उपक्रम (३) बांहों को शक्ति पहुंचाना– Strengthening the Arms

(क) C समस्त बांहों को G (DDL) ~ O (FLE); C (a, e, H) G (DDL) ~ O (FLE)— जब C a करें, तो रोगी का हाथ उठायें।

(ख) E (a, e) R— (a, e तथा बांहों को शक्ति पहुंचाने के लिए), स्थिरीकरण करें।

(ग) E H R (H तथा बाहों को शक्ति पहुंचाने के लिए), किन्तु इसमें प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(घ) C (Nipple चूची का चक्र) G (DDL) /E W— (इस चक्र को तथा a, e, H को शक्ति पहुंचाने के लिए, क्योंकि मैरिडियन द्वारा a, e, H चूची के चक्र से जुड़े होते हैं), स्थिरीकरण करें।

(ङ) C 1 G (DDL)/E R— (इस चक्र को तथा बांहों को शक्ति पहुंचाने के लिए), स्थिरीकरण करें।

(च) E 4 G (DDL)/ E R— (इस चक्र को शक्ति पहुंचाने के लिए तथा शरीर की सामान्य तौर एवं विशेष तौर पर बांहों की ओजस्वता Vitality बढ़ाने के लिए) स्थिरीकरण करें।

उपरोक्त उपचार कमजोर बांहों, बांहों के फ्रैक्चर, संधिवात और लकवा में बांहों को शक्ति प्रदान करने का है। सामान्य केस में O द्वारा उपचार न करें।

उपक्रम (४) दर्द दूर करना– Relieving Pain

(क) यह दो तरीकों में विभक्त है– एक तो दर्द में आराम पहुंचाना और दूसरा दर्द को फोड़कर आराम पहुंचाना। कोई एक तरीका सावधानीपूर्वक चुनना है।

दर्द में आराम पहुंचाना– C (AP)/G (DDL) / E G (DDL)/ C' G (DDL) जब तक आंशिक रूप से आराम न आ जाये / E G (उपचार के लिए) / E B' (सकून पहुंचाते हुए दर्द में आराम पहुंचाने के लिए)

दर्द को फोड़कर आराम पहुंचाना– C G (DDL)~ O (FLE)/ पांच मिनट तक प्रतीक्षा कर, रोगग्रस्त ऊर्जा को झाडू की तरह साफ कर दो / E G (उपचार के लिए) B (सकून पहुंचाते हुए दर्द में आराम पहुंचाना) ।

इसके अतिरिक्त, यदि चाहें तो E R (प्राण तथा रक्त का परिभ्रमण बढ़ाने के लिए)। इससे उपचार और सकून की गति बढ़ती है।

सिर, हृदय व अन्य नाजुक अंगों पर O तथा R के स्थान पर V से उपचार करें।

उपक्रम (५) सिर दर्द – Headache

(क) 11,10, 9, bh, 6, समस्त सिर व गर्दन, आंखों, कनपटियां और रीढ़ की हड्डी की जांच करें।

(ख) यदि आंखों के तनाव के कारण सिरदर्द है, तो C' (आंखों व कनपटियों)

(ग) C' (11, 10, 9, bh तथा प्रभावित सिर का क्षेत्र) / E GBV— यदि प्राणिक घनेपन के कारण दर्द होगा तो C' काफी है।

(घ) अथवा रोगी से पूंछे कि किस हिस्से में दर्द हो रहा है, तो C (AP)~E, जब तक आराम नहीं मिल जाता।

उपक्रम (६) आधासीसी का दर्द – Migrane Headache

यह दर्द अथवा लगातार सिर का दर्द भावनात्मक समस्या या तनाव से होता है, तो 6 बहुत ज्यादा घना होता है। इसमें गंदी लाल रंग की ऊर्जा भरी होती है। इसकी आंशिक ऊर्जा रीढ़ की हड्डी में होती हुई सिर क्षेत्र में जाकर वहां रक्त नलिकाओं को चौड़ा देती है। इससे लगातार सिर दर्द रहता है।

(क) C' (6, L) – अच्छी प्रकार से C करने से रोगी को काफी आराम मिल जाता है।

(ख) E 6 GBV

(ग) C (रीढ़ की हड्डी व पीठ के ऊपरी भाग पर)– गंदी लाल ऊर्जा निकालने के लिए।

(घ) C 7 /E 7b GV – 7 को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें, ताकि इससे रोगी को शान्ति मिले।

(ङ) C' (प्रभावित सिर का क्षेत्र, 9, 10, 11, bh)/E GBV

उपक्रम (७) दांत का दर्द – Toothache

(क) C' (AP) G/ E GB V

(ख) दंत चिकित्सक से मिलने के लिए कहें।

(ग) दांत निकालने अथवा सर्जरी के पश्चात, सूजन कम करने हेतु भी यह उपचार करें।

उपक्रम (८) पायरिया – Pyorrhea

(क) C (AP) G ~V/E GBV

(ख) C' (1, 4, 6)/ E W

(ग) उपचार दिन में एक या दो बार जब तक जरूरी हो करें।

उपक्रम (९) टूटी हड्डी – Broken Bone

(क) C (AP तथा प्रभावित बांह या पैर पर) G ~ O

(ख) E (AP) B— सकून पहुंचाने तथा localize (स्थानीय) करने हेतु।

(ग) E (AP) O—Y (इसमें ७०% W, १५% से थोड़ा कम lO तथा १५% से थोड़ा ज्यादा lY ऊर्जा होनी चाहिए)

(घ) C (a, e, H) अथवा (h, k, S) / E R— शक्ति पहुंचाने को। H अथवा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) C (1, 4) / E R (1 द्वारा शक्ति पहुंचाने के, तथा 4 द्वारा ओजस्विता बढ़ाने के लिए)

(च) सप्ताह में कई बार इलाज दोहरायें, जब तक जरूरी हो। बहुत तेज गति से ठीक करने हेतु, दिन में एक या अधिक बार उपचार करें।

उपक्रम (१०) चोट – **Concussion**

(क) C (AP) G ~ V / E BGV

(ख) ताजा चोट के लिए अगले कुछ घंटों तक इलाज को कई बार दोहरायें।

(ग) पुरानी चोट के लिए, अगले कुछ दिनों तक, इलाज एक या दो बार प्रतिदिन दोहरायें।

उपक्रम (११) गूमढ़ – **Contusion**

(क) ताजा गूमढ़ के लिए, C (AP) G~O/E BGO, अगले कुछ घंटों तक कई बार उपचार करें।

(ख) पुराने गूमढ़ के लिए, C (AP) G~O/E GOR– O को नाजुक अंगों या उनके नजदीक न इस्तेमाल करें। अगले कुछ दिनों तक दिन में एक या दो बार उपचार करें।

उपक्रम (१२) पीठ की चोट (क्षति) – **Back Injury**

(क) C' (रीढ़ की हड्डी, AP) G ~ O – O को सिर पर या उसके नजदीक न इस्तेमाल करें।

(ख) E (AP) BGV'

(ग) C 6 / E W

(घ) C (1, 4)/ E R

(ङ) C 7b G/E BGV (क्योंकि रीढ़ की हड्डी को 7b नियंत्रित करता है)

(च) इलाज को सप्ताह में तीन बार करें।

उपक्रम (१३) ताजा जलना -- **Fresh Burns**

B सकून पहुंचाने और ठंडा प्रभाव के कारण प्रयोग की जाती है, लेकिन B का स्थानीय संकुचन (localizing) का प्रभाव होता है, जिससे गर्म, लाल ऊर्जा बाहर नहीं जा पाती। इसीलिये G को भी लाल ऊर्जा को निकालने के काम में ली जाती है। विधि इस प्रकार है:

(क) C (AP) G ~ B/E' GB'

(ग) C ~ E रोगी के ठीक होने तक दोहराते रहें।

उपक्रम (१४) पुराने जले के सामान्य केस– Old minor Burns

(क) C (AP) G ~ O – O को सिर के क्षेत्र या नाजुक अंग पर या उसके नजदीक इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। नाजुक क्षेत्र में G ही काफी है।

(ख) E (AP) B (सकून के लिए)/ GR (शीघ्र ठीक करने के लिए)– यदि (AP) सिर का क्षेत्र है, तो E R के स्थान पर E V करें।

(ग) C (1, 4)/ E R – उपचार की गति को और अधिक बढ़ाने के लिए।

(घ) इलाज को कई दिनों तक दोहरायें।

उपक्रम (१५) पुराने जले के गम्भीर केस– Old Severe Burns

(क) उपरोक्त उपक्रम १४ (क) के अनुसार

(ख) E (AP) G B V, यह सकून पहुंचाने, रोग–संक्रमण को कम करने तथा शीघ्र ठीक होने के लिए है।

(ग) (क) तथा (ख) को दिन में कई बार दोहरायें।

(घ) कई दिनों के बाद जब दर्द काफी कम हो जाये, तो E (AP) GR– त्वरित ठीक होने के लिए। यदि AP सिर के क्षेत्र में है, तो E R के स्थान पर E V करें।

(ङ) C (1, 4)/ E W– ठीक करने में और तेजी लाने के लिए

(च) जब तक जरूरी हो, दिन में एक या दो दफे इलाज करें।

उपक्रम (१६) रक्तस्त्राव कैसे रोका जाय– How to Stop Bleeding

(क) C (AP)/ E G (सफाई के लिए) B (रक्त बंद करने के लिए)

(ख) C (1, 4) G / E R

(ग) Hemophilia (हैमोफिलिया) अर्थात उन केसों में जिनमें वंशगत कारणों से जरा सी भी चोट पहुंचने पर रक्त देर तक बहता रहता है क्योंकि रक्त का थक्का नहीं बन पाता– (१) इसमें E (AP) G–B (२) C 1 ~ E R– खून बंद होने तक।

उपक्रम (१७) पुराने घाव– Old Wounds

G पुराने घावों के शीघ्र उपचार के लिये इस्तेमाल होता है, क्योंकि इससे सतह (surface) गीली (watery) सी होती है। पुराने मृत कोशिकाओं को तोड़ने में काफी G की जरूरत होती है।

(क) C (AP) G ~ O– यह AP की समुचित सफाई के लिये किया जाता है। O नाजुक अंगों पर या उनके नजदीक इस्तेमाल न करें।

(ख) E (AP) B (स्थानीय– localizing) प्रभाव के लिये /GR– त्वरित ठीक होने के लिए। और अधिक त्वरित ठीक करने के लिये बजाय E (AP) B GR के, E (AP) B तथा E (AP) (५०% IG + ५०% IR)

(ग) C (1, 4)/ E R– और तेजी से ठीक करने के लिए

उपक्रम (१८) ताजे घाव को तुरन्त ठीक करना– Instantaneous healing of Fresh Wounds

यह तभी संभव है जब घाव ताजा हो और रोगी स्वस्थ, थोड़ा सा जवान तथा उपचार के लिये ग्रहणशील हो। कृपया इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण अध्याय ८ के क्रम सं (११) में देखें।

(क) C 1 G / E R– इस चक्र को E के समय धड़कते हुए एवं बड़े होते हुए दृश्यीकृत करें।

(ख) C (AP) / E GB– रक्तस्त्राव कम करने तथा स्थानीयकरण प्रभाव के लिये।

(ग) E (AP)/ E O–R (O–R रक्तस्त्राव रोकता है बगैर निशान छोड़ते हुए)

(घ) साथ ही रोगी के 1 पर शॉर्ट– सर्किट का प्रयोग करें। यह रोगी के 1 से अपने हाथ चक्र में ऊर्जा ग्रहण कर, फिर उसे दूसरे हाथ चक्र से घाव के ओर प्रेषण करके होता है। यह प्रक्रिया शक्तिशाली उपचारकों को करने की आवश्यक्ता नहीं है।

(ङ) घाव को बंद या ठीक होते हुए दृश्यीकृत करें। यह दृश्यीकरण साफ नहीं भी हो, लेकिन आवश्यक है कि इच्छा शक्ति यही होनी चाहिए।

(च) जब तक ठीक न हो जाये, इस इलाज को करते रहिए, बीच में कई बार अल्प विश्राम लेते रहिए।

(छ) नाजुक अंगों या उनके नजदीक के क्षेत्र पर उक्त प्रक्रिया न अपनाये।

(ज) G–V या B–V भी घाव को त्वरित ठीक करने के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है।

उपक्रम (१६) पुनर्निर्माण— Regeneration

मस्तिष्क, स्नायु तथा आंतरिक अंगों की कोशिकाओं के पुनर्निर्माण में G–V और G–Y का उपयोग किया जाता है। जो नाजुक अंग नहीं हैं, उनको धीरे से

E GOR द्वारा किया जाता है। यह तकनीक फैंफड़े, K तथा L कोशिकाओं के पुनर्निर्माण के काम आती है।

(क) C (AP तथा प्रभावित चक्र) GV/E (AP) B (स्थानीयकरण प्रभाव के लिए)

(ख) यदि AP नाजुक है, तो E (चक्र के माध्यम से AP) G–V, G–Y

(ग) यदि AP नाजुक नहीं है, तो E (AP) GOR

(घ) C 6/E GV'

(ङ) C (1, 4)/ E R

(च) उपचार को सप्ताह में तीन बार जब तक जरूरी हो, तब तक दोहरायें। इलाज में ६ मास, एक साल या ज्यादा लग सकता है।

उपक्रम (२०) त्वचा या हड्डी का प्रत्यारोपण— Skin or Bone Grafting

इनमें O–Y का प्रयोग होता है।

उपक्रम (२१) कोशिकाओं का शीघ्र निर्माण— Rapid Growth of Cells

जब R, Y एक के बाद एक इस्तेमाल किये जाते हैं, तो कोशिकाएं तेजी से बढ़ती हैं। यह बाल उगाने के काम आ सकता है।

उपक्रम (२२) प्रत्यारोपित अंगों के अग्राह्यता का खतरा कम करना— Reducing the risk of rejection of Transplanted Organs

C (प्रत्यारोपित अंग)/ E R (६५% मात्रा); E Y (५% मात्रा)– इस केस में E 1 न करें, अन्यथा प्रतिरक्षात्मक तंत्र मजबूत होने के कारण विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

उपक्रम (२३) सर्जरी में प्राणिक उपचार– **Pranic Healing in Surgery**

सर्जरी के पहले तथा बाद में यह किया जाता है। यह रक्तस्त्राव और संक्रमण कम करने के लिए, शरीर और संबंधित अंग को शक्ति प्रदान करने के लिये तथा त्वरित ठीक होने के लिए किया जा सकता है।

(१) **छोटी शल्य चिकित्सा– Minor Surgery**

(क) सर्जरी के पहले C (जिस भाग का आपरेशन होना है)/ E GBV (रक्तस्राव तथा संक्रमण कम करने के लिए)

(ख) सर्जरी के बाद (क) को दोहरायें अथवा उपरोक्त उपक्रम (१८) में वर्णित प्रक्रिया अपनायें।

(ग) C (1, 4) / E R (त्वरित ठीक होने के लिए)

(ग) यदि जरूरत हो, तो अगले कई दिनों तक उपचार दोहरायें।

(२) **बड़ी शल्य चिकित्सा– Major Surgery**

(क) GS (२)

(ख) C' (1, 4, 6)

(ग) E' (1, 4) R

(घ) E 6 W

(ङ) जिस भाग का ऑपरेशन होना है उसको तथा संबंधित चक्र का C/E W

(च) प्रक्रिया (क) से (ङ) तक तुरन्त तथा आपरेशन से कई दिन या सप्ताहों पहले करनी चाहिए। यह शरीर को मजबूत करने के लिए है।

(छ) C (जिस भाग का आपरेशन होना है) / E GV'

सर्जरी के दौरान– (ज) यदि जरूरत हो, उपचारक शरीर में ताकत पहुंचाने तथा रक्तस्राव करने के लिय उपचार कर सकता है।

सर्जरी के बाद– (झ) GS (दिन में कई बार)– समस्त वायवी शरीर की सफाई के लिए, क्योंकि ऑपरेशन के बाद यह भूरा सा हो जाता है।

(अ) C (आपरेशन किया हुआ क्षेत्र) / E GV'

(ट) ठीक होने की गति को और तेज करने के लिए, C' (1, 4, 6) / E (1, 4) R तथा E 6 W

(ठ) खोखले प्राण ऊर्जा वाले (Depleted) ऊर्जा चक्रों का C / E GV'

(ढ) अगले कई दिनों या सप्ताहों तक उपचार को दोहरायें।

उपक्रम (२४) भोजन का विषाक्त हो जाना— Food poisioning

(क) C' (पेट विशेषकर निचला हिस्सा, 6, 4)

(ख) E 6 G—B / E' 4 G – B

(ग) C (6, 4)

(घ) यदि लाभ न हो, तो तुरन्त मैडिकल डॉक्टर से मिलने के लिए कहें।

उपक्रम (२५) अनिद्रा— Insomnia

अनिद्रा के रोगी का 1 अति सक्रिय होता है। यह भावनात्मक कारणों से हो सकता है। 6 भी आम तौर पर अति सक्रिय और घना होता है। 11, 10, 9, 8 आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं।

(क) GS (२)

(ख) C' (6, 1) – कुछ केसों में इसी से नींद आ जायेगी।

(ग) यदि आवश्यक हो तो (1, 6) को संकुचित (inhibit) E B से करें, B प्राण निद्रा लाने वाला और सकून पहुंचाने वाला होता है।

(घ) C (11, 10, 9, 8)

(ङ) C 4 / E W – शरीर को शक्ति प्रदान करने के लिए।

उपक्रम (२६) शरीर में जमा विजातीय कठोर पदार्थों को टुकड़े–टुकड़े करना (जैसे पथरी) – Disintegrating Deposits

(क) C (AP) / E mB (स्थानीयकरण प्रभाव के लिए– यह पर्याप्त मात्र में ऊर्जित करिये, अन्यथा विनाशकारक ऊर्जा शरीर के अन्य भागों में फैल जायेगी), mG, mO – (यह पदार्थों को गलाने तथा तोड़ने के लिय प्रक्रिया है)

(ख) अगले कई दिनों तक उपचार को दोहराइये

उपक्रम (२७) रसौली– Cysts

कई केसों में AP तथा 6 पर घनापन होता है और भूरे से लाल प्राण से भरा होता है। 6 में से यह गंदा लाल प्राण रसौली में जाता है। यह पाया गया है कि लम्बे समय तक कुछ शारीरिक भागों पर घनेपन के कारण, रसौली बनती है और कोशिकाओं का असाधारण उत्पादन होता है।

(क) C' 6 / E GB

(ख) C' (रसौली) GO– यह गंदे लाल प्राण को निकालने के लिये।

(ग) E (AP) IB– स्थानीयकरण प्रभाव के लिये

(घ) E (AP) IG, IO (E IO नाजुक अंगों के नजदीक नहीं करें)

(ङ) सप्ताह में तीन बार इलाज करिये, जब तक आवश्यक हो।

(च) रोगी को मसालेदार भोजन को न खाने के लिए, तथा भावनाओं पर नियन्त्रण के लिए सरल ध्यान लगाने के लिए कहिए क्योंकि रसौली अक्सर नकारात्मक भावनाओं और तनाव से होती है।

उपक्रम (२८) आंतरिक अंगों की सफाई करने की तकनीक– Cleansing the Internal Organs Technique

सावधानी– यह तकनीक केवल अधिक अनुभवी उन्नत प्राणशक्ति उपचारक ही करें, अन्यथा आंतरिक अंगों को हानि पहुंच सकती है।

6 निचले तथा ऊपरले चक्रों द्वारा आने वाली ऊर्जाओं का सफाई घर (clearing house) होता है। यह लगभग सभी आंतरिक अंगों के मध्य में होता है, अतएव इसका उचित उपचार करने से आंतरिक अंगों की सफाई हो जाती है।

(क) GS (२)

(ख) C' 6

(ग) E 6f (कम B) (ज्यादा G) O,

अथवा E 6f GO– यह उक्त से ज्यादा ताकतवर है, लेकिन इसमें अधिक योग्यता की आवश्यकता है और गलत हो जाने से पतले दस्त तथा अन्य विपरीत प्रभाव हो सकते हैं, विशेषकर कमजोर हृदय वाले रोगियों के।

(घ) यदि रोगी में विपरीत प्रक्रिया होती है या दर्द होता है, तो C करें जब तक आराम न आ जाये।

गम्भीर रोगों, विशेषकर गम्भीर संक्रमणों के लिए यह तकनीक बहुत ही उपयोगी है। यह उचित होगा कि आंतों के संक्रमण में इस तकनीक को न इस्तेमाल किया जाये, अन्यथा पतले दस्त या अन्दर खून बहना हो सकता है। इस तकनीक को गर्भवती महिलाओं पर न अपनायें।

उपक्रम (२६) सौर जालिका चक्र की सफाई की तकनीक –

Cleansing Solar Plexus Chakra Technique

बहुत से रोगों की जड़ में भावनात्मक कारण होते हैं। दूसरे शब्दों में 6 पर प्रभाव पड़ता है। C 6 अधिक समय लेता है। इसलिये घड़ी के विपरीत दिशा में हाथ घुमाकर सफाई करने से शीघ्र सफाई की जाती है। रोगी का T' 6 द्वारा उपचार की गति बढ़ाई जा सकती है।

यदि भावनात्मक समस्या दीर्घकालीन है, तो C 6 के बाद भी गंदी लाल ऊर्जा पुनः आ जाती है। ऐसे केस में E 6 BGO– जब कि G और O का सफाई एवम् निष्कासन का प्रभाव पड़ता है, B द्वारा इस विधि को सुरक्षित करने के लिए है। इसके बाद C' 6 – इस विधि को अधिक उन्नत प्राणशक्ति उपचारक ही करें।

और अधिक योग्य उन्नत प्राणशक्ति उपचार केवल E 6 GO, फिर C' 6 करें, ताकि दबी हुई भावनाओं का घनापन दूर हो जाये।

उपक्रम (३०) रक्त की सफाई की तकनीक– Cleansing the Blood Technique

रक्त की सफाई फैंफड़ों को E G तत्पश्चात् O से की जा सकती है। G तथा O को फैंफड़े में से बहता हुआ रक्त शोषित कर लेगा, जिससे रक्त, रक्त की नलियां तथा तमाम शरीर साफ हो जायेगा। O द्वारा रोगी को पसीना आ सकता है। यह तकनीक रक्त की नलियों के बीमारियों व गम्भीर संक्रमणों में बहुत उपयोगी है। इस तकनीक को गर्भवती महिलाओं पर न इस्तेमाल करें।

(क) GS (१ या २)

(ख) C (Lu के आगे, बगल में व पीछे)

(ग) E Lu (Lub के माध्यम से) GO, जब E O करें, तो उंगलियों की दिशा सिर की दिशा से दूर रहनी चाहिए, अन्यथा उंगलियों द्वारा सिर में O पहुंचकर सिर में क्षति कर सकती है।

(घ) यदि रोगी कमजोर है तो E Lu (LuB के माध्यम से)– R (शक्ति देने के लिए)

(ङ) क्योंकि प्लीहा, L, K रक्त की शुद्धि करते हैं, इसलिये C (प्लीहा, L, K) / E W

(च) चूँकि शरीर में समस्त रक्त परिभ्रमण का समय ६० सैकिन्ड होता है, अतएव रक्त की सफाई तभी हो पाएगी, जब E Lu (Lub के माध्यम) में G तथा O का समय अलग–अलग इस समय से अधिक हो।

(छ) यदि रोगी में प्रतिकूल प्रक्रिया हो या दर्द महसूस करें, तो C जब तक आराम न मिल जाये।

उपक्रम (३१) बुखार– Fever

इसमें शरीर कमजोर हो जाता है, किन्तु 6 घना तथा अधिक सक्रिय होता है और गंदी लाल ऊर्जा से भरा होता है। 1 में ऊर्जा का खोखलापन होता है किन्तु चक्र अधिक सक्रिय होता है, किन्तु उसका E नहीं करना चाहिए क्योंकि E करने से बुखार बढ़ सकता है। उपचार में मुख्य बिन्दु शरीर की ठीक प्रकार से सफाई, 6 से घनी गंदी लाल ऊर्जा निकालना, शरीर को ठंडा करना, प्रभावित भाग का उपचार करना और शरीर का प्रतिरक्षात्मक तेज को मजबूत करना है।

(क) GS (अनेक बार) G B

(ख) C" 6, C' L / E 6f GB'– इससे शरीर को चैन मिलता है, संक्रमण दूर होता है और शरीर जल्दी ठंडा होता है।

(ग) E 6f O – यह रोगग्रस्त ऊर्जा को खदेड़ने के लिए है। इस प्रक्रिया को मात्र अनुभवी उन्नत प्राणशक्ति उपचारक करें। यदि रोगी को दस्त हों अथवा आंत से खून बह रहा हो, तो इस प्रक्रिया को न करें।

(घ) C 7 / E 7b GV' इससे थाइमस ग्रंथि सक्रिय होती है जिससे संक्रमण पर आक्रमण में सहायता मिलती है।

(ङ) C' Lu/ E Lu (Lub के माध्यम से) GO – ऐसा करते समय उक्त उपक्रम ३० (ग) में वर्णित सावधानी बरतें। यह प्रक्रिया रक्त को शुद्ध करने व फैंफड़े के संक्रमण हटाने के लिए अच्छी है।

(च) C 5

(छ) C (पेट का निचला हिस्सा, 4)

(ज) E 4 GBV- यह शरीर को ताकत देने व आंतों के संक्रमण दूर करने के लिए है। यदि आंतों से रक्तस्त्राव हो, तो E G न करें।

(झ) C' 1

(ञ) C (H, S) / E V – इससे सफेद रक्त कोशिकायें अधिक उत्पादित होती हैं। इस प्रक्रिया को उसी दिन न दोहरायें, अन्यथा रोगी पर विपरीत प्रक्रिया हो सकती है। प्रेषित ऊर्जा का स्थिरीकरण न करें।

(ट) C (11, 10, 9, bh, j, 8) / E GBV

(ठ) शिशुओं व छोटे बच्चों के केस में, समस्त उपचार W द्वारा करें। GS ज्यादा होना चाहिए तथा E धीरे–धीरे नाजुकपने से करना चाहिए)

(ड) उपचार को दिन में २ या ३ बार दोहरायें। यदि फिर भी बुखार बना रहता है, तो मैडिकल डाक्टर तथा उन्नत प्राणशक्ति उपचारक में तुरन्त मिलने के लिए कहें।

(ढ) यदि बुखार बहुत बढ़ा हुआ है या बार–बार आता है, तो C' 1 / E (कम B), साथ ही 1 को संकुचित करें। इसको सावधानी से करें, अन्यथा अस्थायी रूप से तापक्रम सामान्य से कम भी हो सकता है।

कभी–कभी माता–पिता के अधिक गुस्सा करने या उनके चिड़चिड़ेपन से उनका आभा मण्डल गहरा लाल हो जाता है और उससे क्रोध की ऊर्जा निकलती है। इससे बच्चा गहरी लाल ऊर्जा से संक्रमक हो सकता है, जिसके वजह से उसका शरीर कमजोर हो जाता है और उसे संक्रमण और बुखार हो सकता है।

उपक्रम (३२) मास्टर उपचार तकनीक– मूलाधार चक्र तकनीक – Master Healing Technqiue – Basic Chakra Technique

1 को ऊर्जित और सक्रिय करने से समस्त भौतिक शरीर ऊर्जित होता है, लेकिन इससे शरीर की ऊर्जा स्तर कुछ हद तक ही बढ़ पाता है। चूंकि 3 ऊर्जा को पम्प की तरह काम करता है, इसलिए यदि 1 और 3 दोनों को ही ऊर्जित और सक्रिय किया जाये, तो 1 से ऊर्जा बहुत तेज गति से चलेगी और पिछले मैरिडियन के माध्यम से समस्त शरीर में अच्छी तरह फैल जायेगी। समस्त शरीर और आंतरिक अंग ऊर्जित हो जायेंगे और मजबूत हो जायेंगे और ज्यादा चमकीले और लाल से हो जायेंगे। 1 और 3 दोनों को E और सक्रिय करना मास्टर उपचार तकनीक कहलाती है और अनेक प्रकार के रोगों को दूर करने के काम आ सकती है, लेकिन इसे सावधानी से करना चाहिये। यह शक्तिशाली तकनीक निम्न कार्यों में इस्तेमाल की जा सकती है–

(क) आंतरिक अंगों व पूरे शरीर को ऊर्जित करना तथा मजबूत करना। यह तकनीक उन रोगियों के लिए बहुत उपयोगी है जो बहुत कमजोर है तथा आंतरिक अंगों के रोगों से पीड़ित है। कमजोर रोगियों को ऊर्जा तथा शक्ति लगभग तुरन्त ही मिलती है।

(ख) शरीर के प्रतिरक्षात्मक तंत्र को काफी मजबूत करना। अनेक प्रकार के संक्रमण जैसे फैंफड़ों का क्षय रोग। इस तकनीक को रतिज रोगियों या उसका इतिहास रखने वालों पर प्रयोग नहीं करना चाहिए अन्यथा इसमें अधिक लाल प्राण बनने से उनकी हालत बिगड़ सकती है।

(ग) उपचार को गति को कई गुना बढ़ाना। कई गम्भीर रोगों में भी इस्तेमाल की जा सकती है।

(घ) युवा खिलाड़ियों को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिये। यह तकनीक एक प्रकार से प्राकृतिक तौर पर स्टीयरौइड्स (Steroids) लेने के समान है।

(ङ) बेहोश अथवा बहुत कमजोर रोगियों की चेतना लाने के लिए। यह 1 और 3 से मस्तिष्क तथा पूरे शरीर में ऊर्जा दौड़ने के कारण है।

सावधानी– इसको मृत्यु के समीप व्यक्तियों पर नहीं उपयोग करनी चाहिए, अन्यथा इससे उनका जीवन और कम हो जायेगा।

(च) कोशिकाओं की मरम्मत या उनके विकास दर बढ़ाने के लिए। यह तकनीक सर्जरी के पहले तथा बाद में भी इस्तेमाल की जा सकती है।

सावधानी– प्रत्यारोपण के केस में उसको इस्तेमाल न करें, क्योंकि इससे शरीर का प्रतिरक्षात्मक उत्तेजित होगा, जिससे हालत खराब हो सकती है।

(छ) मुख्य प्राणिक उपचार के साथ–साथ पूरक उपचार हेतु। उदाहरण के तौर फैंफड़ों के उपचार में। यह तकनीक मुख्य उपचार के पहले तथा बाद में की जा सकती है।

इस तकनीक का एक असर यह होता है कि इससे यौनेच्छा बढ़ जाती है। रोगी को यह बता देना चाहिए तथा उन्हें यह बतायें कि उपचार के दौरान यौन क्रिया को ऊर्जा के संरक्षण हेतु बन्द या कम कर दें, ताकि वह प्राणिक ऊर्जा उपचार के काम आ सके।

(ज) निम्न मार्गदर्शन में यह तकनीक सुरक्षित रहती है।

(१) गर्भवती महिलाओं पर इसे न करे, अन्यथा बच्चे के नाजुक चक्र नष्ट हो सकते हैं और गर्भपात या मृत बच्चा पैदा हो सकता है।

(२) उच्च रक्तचाप के रोगी पर न करें, अन्यथा उनकी हालत बिगड़ सकती है।

(३) जिनके प्राणिक ऊर्जा घनी (congested) हो उन पर यह न करें। यह परासामान्य विद्यार्थियों के भी हो सकती है, जो उन्नत प्रकार की ऊर्जा या योग का अधिक अथवा गलत अभ्यास करते हैं।

(४) E 3 अधिक न करें, अन्यथा उच्च रक्त चाप हो सकता है। अगले कुछ दिनों तक रोगी काफी कमजोर और अशांत महसूस कर सकता है क्योंकि इससे प्राण ऊर्जा का घनापन हो जाता है। मस्तिष्क भी आंशिक रूप से प्रभावित हो जाता है और ध्यान केन्द्रित करने में रोगी को कठिनाई हो सकती है।

(५) इस तकनीक को यदि इस्तेमाल करना हो या की गई हो, तो E 5 न करें। इससे शरीर अत्यधिक ऊर्जित होकर, उस पर वही प्रभाव पड़ेगा जैसे कि 1 और 3 के अधिक सक्रियता एवम् E से।

(६) ग्लाकोमा के रोगी पर इसको इस्तेमाल न करें।

(७) कुष्ठ रोगी पर न करें वरना, इससे समस्त शरीर में कुष्ठ रोग शीघ्रता से फ़ैल जायेगा।

(८) कैंन्सर तथा ट्यूमर के रोगियों पर इस तकनीक को न करें, अन्यथा हालत काफी खराब हो जायेगी।

(९) जिगर के सूजन के रोगी पर यह तकनीक न करें अन्यथा कोशिकाओं के तेजी से बढ़ने के कारण cirrhosis (जिगर की एक दीर्घकालीन बीमारी) हो सकती है।

(१०) अतिश्वेतरक्तता (leukemia) रोगियों पर यह तकनीक न करें, वरना उनकी हालत खराब हो जायेगी।

(११) यह उपचार गम्भीर ह्रदय रोगियों पर न करें, वरना प्राणिक घनेपन के कारण, उनकी ह्रदय गति रुक सकती है।

(१२) जिन रोगियों की उम्र १५ से ४५ के बीच में हो, केवल उन्हीं पर यह तकनीक करनी चाहिए। बच्चों के अविकसित अंग तथा वृद्ध लोगों के कमजोर होने के कारण, इस तकनीक द्वारा उत्पादित अधिक प्राण ऊर्जा को वे ग्रहण न कर पाने के कारण इस तकनीक द्वारा उनको हानि पहुंच सकती है। शिशु का मस्तिष्क स्थायी रूप से क्षतिग्रस्त हो सकता है।

(झ) इस उपचार की विधि/प्रक्रिया निम्नवत है:

(१) रोगी को जीभ को तालु लगाने के लिए कहें।
GS (२ या ३)

(२) 1 और 3 की सामने तथा बगल से जांच करें कि ये सामान्य आकार के हैं। 3 का आकार 1 से आधा या दो–तिहाई तक होता है। 3 के आकार को 1 के आकार के बराबर कर लें, यद्यपि इससे रक्तचाप थोड़ा सा बढ़ेगा।

(३) C 1/ E IR, इस चक्र को व्यास से एक या २ इंच बढ़ा होने की इच्छा करें एवम् दृश्यीकृत करें। यदि लाल प्राण की शक्ति घटानी हो, तो IR के स्थान पर R करें।

(४) C 3 / E IR इसका चक्र बड़ा न करें, क्योंकि यह पहले से ही अधिक सक्रिय है। अधिक सक्रियता से उच्च रक्तचाप हो जायेगा। ER से यह स्वयमेव ही बढ़ जाता है। यदि लाल प्राण की शक्ति घटानी हो, तो IR के स्थान पर R करें।

(५) कब तक E (1, 3) करें, इसका कोई निश्चित उत्तर नहीं है। जो ज्यादा शक्तिशाली उपचारक नहीं हैं, उनके लिए यह समय तीन से सात सांस लेने की प्रक्रिया तक और बहुत शक्तिशाली उपचारकों के लिए, यह कुछ ही सैकिन्ड काफी है। E 3 अधिक देर तक नहीं करना चाहिए ।

(६) 1 तथा 3 की सामने और बगल से पुनः जांच करें। रोगी से पूछें। यदि रोगी पीछे सिर में दर्द या अलसाया हुआ महसूस

करे, तो C' (सिर तथा समस्त रीढ़ की हड्डी) / C' (1, 3) जब तक रोगी आराम न महसूस करे।

जो शक्तिशाली उपचारक हैं वे पूरी ताकत से इच्छाशक्ति न करें, अन्यथा 1 तथा 3 के अधिक सक्रियता के विपरीत पार्श्व प्रभाव पड़ सकता है।

(ञ) इस मास्टर उपचार पद्धति की तीव्रता W से कम की जा सकती है। तब E (1, 3) W करें और चक्रों को बड़ा न करें। इससे कमजोर रोगी को शीघ्र ही शक्ति मिल सकती है और तब १२ से ६० वर्ष के रोगियों पर की जा सकती है, किन्तु सावधानी से। बच्चों पर यह पद्धति नहीं करनी चाहिए।

(ट) इस उपचार की तीव्रता सबसे तीव्र से सबसे कम इस प्रकार की जा सकती है।

	E1	E3
(१)	IR	IR
(२)	IR	R
(३)	R	R
(४)	IR	W
(५)	R	W
(६)	W	W

(ठ) यह तकनीक कुशल एवम् अनुभवी प्राणशक्ति उपचारक ही करें, न कि नये उपचारक।

उपक्रम (३३) उत्तम उपचार तकनीक— Super Healing Technique

= उपक्रम (३२) मास्टर उपचार पद्धति + उपक्रम (३०) रक्त की सफाई की तकनीक + उपक्रम (२८) आन्तरिक अंगों की सफाई करने की तकनीक।

यह कई प्रकार के गम्भीर रोगों के शीघ्र उपचार में की जाती है। २८ एवम् (३०) पूरे शरीर की प्रभावी सफाई तथा (३२) अत्यधिक प्राणिक ऊर्जा देने के

लिए यह पूरक उपचार के तौर पर भी की जाती है। सही रोगी पर उपचार करने से कुछ केसों में चमत्कार सा हो जाता है।

आवश्यक नोट–

GS; C (मुख्य चक्रों); C (मुख्य अथवा प्रभावित लघु चक्रों / आन्तरिक अंगों पर) इस तकनीक के प्रयोग से पहले या बाद में आवश्यक है। इससे विपरीत प्रक्रिया नहीं हो पाती।

इस तकनीक को मात्र अनुभवी व कुशल उपचारक ही करें न कि नये उपचारक।

उपक्रम (३४) सम्पूर्ण शरीर में दर्द– Aching of Whole Body

(क) T 1 – ओजस्वी ऊर्जा प्रदान करने, अस्थि तथा मांसपेशियों के तंत्रों को शक्ति प्रदान करने एवम् प्रतिरक्षात्मक तंत्र को सुदृढ़ करने हेतु।

(ख) हालत को देखते हुए, निम्न उपचार अथवा उपचारों को, यदि उचित समझें तो करें :

(१) उक्त उपक्रम (२८) में वर्णित आंतरिक अंगों की सफाई

(२) उक्त उपक्रम (२९) में वर्णित 6 की सफाई

(३) उक्त उपक्रम (३०) में वर्णित रक्त की सफाई

(४) अध्याय १० के क्रम (१) में वर्णित प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करना

(ग) जांच के फलस्वरूप, अन्य कोई उपचार जिसकी आवश्यक्ता हो।

उपक्रम (३५) निवारक प्राण शक्ति– Preventure Pranic Treatment

जैसे–जैसे मनुष्य वृद्ध होता जाता है, उसके चक्र कमजोर होते जाते हैं। और उनमें खोखलापन हो जाता है। इस कारण से शरीर व उसके अंगों का धीरे–धीरे पतन होने लग जाता है। अपने स्वास्थ्य सुधारने, तनाव कम करने और वृद्धत्व की गति कम करने के लिए, यह सलाह दी जाती है कि वह नियमित तौर पर निवारक प्राणशक्ति उपचार करवाता रहे अथवा स्वयं करता

रहे। वृद्ध लोग आवश्यक्तानुसार सप्ताह में एक या दो बार तथा युवा व्यक्ति ज्यादा समय बाद कर सकते हैं।

(क) GS (२)

(ख) C' (6, L– सामने, बगल तथा पीछे से, पेट और अग्न्याशय पर) / E 6 W

(ग) C' (11, 10, 9, bh, मस्तिष्क के बाएं तथा दाएं भाग, आंखों और कानों पर) / E (11, 10, 9, bh) W

(घ) C' (j, 8, 8', गर्दन के पीछे) / E (j, 8, 8') W

(ङ) C' (7, Lu – सामने, बगल और पीछे) / E 7b W

(च) C' 5

(छ) C' (K – दाएं तथा बाए, 3)

(ज) C' (रीढ़ की हड्डी)

(झ) C' (4, पैर का निचला भाग) / E 4 W

(ञ) C 2 / E W

(ट) C' 1 / E W

(ठ) C' (दोनों पैरों पर, h, k, S) / E (h, k, S) W – S का स्थिरीकरण न करें।

(ड) C' (दोनों बाहों पर, a, e, H) E (a, e, H) W – H का स्थिरीकरण न करें।

(११) प्राणशक्ति उपचार के महत्वपूर्ण चरण

रोग के बाह्य कारण तथा आन्तरिक कारण (जैसे नकारात्मक भावनाएं)– दोनों का ही ध्यान रखना चाहिए। निम्न भावनाओं का केन्द्र होने के कारण T' 6 आवश्यक है। हृदय को भी सक्रिय करना जरूरी है, जिससे आन्तरिक शान्ति मिलती है। रोगी को तनाव न करके तथा अपनी भावनाओं के नियन्त्रण द्वारा सहयोग प्रदान करना चाहिए। सहज (simple) प्रकार का ध्यान भी सहायक होता है।

किसी भी अंग के ठीक होने की गति न सिर्फ कि संबंधित, बल्कि अन्य चक्रों के व अंगों के स्वस्थता के स्तर पर निर्भर करती है। इसलिये बेहतर

परिणामों को पाने के लिए अप्रभावित चक्रों का भी T करें, किन्तु 3 और 5 का C करें, किन्तु E प्रत्येक केस में निर्धारित करना पड़ेगा।

उन्नत प्राण शक्ति उपचार में यह जानना ज्यादा आवश्यक है कि अमुक चक्र अथवा अमुक रोग की ऊर्जा क्यों इस्तेमाल की जानी है, बजाय विधियों को याद करके या रटने के। इससे ऊर्जाओं को वांछित निर्देश देने में सहायता मिलती है। अच्छे प्रकार से तेज गति से उपचार करने के लिये, कुशलता आवश्यक है। निम्न क्रियायें आवश्यक हैं:–

(क) रोगी की देखने से जांच करें।

(ख) रोगी से पूछताछ करें एवम् सम्बन्ध स्थापित करें।

(ग) मुख्य चक्रों, संबंधित चक्रों, प्रमुख अंगों, रीढ़ की हड्डी और AP की अच्छी तरह से जांच करें। प्रभावित चक्र AP से दूर भी हो सकता है। अच्छी जांच उचित उपचार के लिए अति महत्वपूर्ण है।

(घ) GS (कई बार)

(ङ) रोगी से कहें कि वह शांति से मन ही मन बार–बार कहें कि मैं उपचारी ऊर्जाओं को पूरी तौर पर ग्रहण करता हूं।

(च) C' (AP), यदि वह घना हो तो।

(छ) C के बाद E' (AP), यदि उस पर खोखलापन हो तो।

(ज) यदि प्रभावित चक्र अधिक सक्रिय हो, तो C' और उसको E B की सहायता से संकुचित करें।

(झ) यदि प्रभावित चक्र कम सक्रिय हो, तो C' और उसको निम्न चक्रों के लिये ER से तथा उच्च चक्रों के लिये E V से सक्रिय करें।

(ञ) उपचार के लिये उचित रंग की ऊर्जा द्वारा प्रयोग करें। यदि आप निश्चित नहीं है, तो सामान्य रोगों में W तथा गंभीर रोगों में GV का उपयोग करें।

(ट) उपचार की गति बढ़ाने के लिए T (अप्रभावित चक्रों) भी करें।

(ठ) प्रेषित की हुई प्राण ऊर्जा का स्थिरीकरण करें किन्तु H तथा S में प्रेषित ऊर्जा का स्थिरीकरण करें।

(ड) उपचार के बाद आपके व रोगी के बीच की वायवी डोर को काटें।

(ढ) मामूली रोगों में उपचार किये हुए हिस्से को रोगी कम से कम १२ घंटे तक न धोये तथा गम्भीर रोगों में यह प्रतिबंध २४ घंटे का है। पानी कुछ प्राणिक ऊर्जा को शोषण कर लेता है।

(ण) उपचारकों को अपनी बांह व हाथ वायवी तरीके से साफ करने चाहिए। फिर कीटनाशक साबुन से धोना चाहिए।

(त) रोगी व उपचारक अन्य निर्देशों का, जो इस अध्याय में अब तक दिये गये हैं, उनका पालन करें।

(थ) यदि आप निश्चित नहीं है तो निम्न प्रक्रिया करें।
   (१) GS कई बार करें।
   (२) C (मुख्य चक्रों, अधिक महत्वपूर्ण लघु चक्रों, प्रमुख अंगों)
   (३) E GV (सभी मुख्य चक्रों ओर अधिक महत्वपूर्ण लघु चक्रों, सिवाय 3 के), E 5 सावधानी से करें।
   (४) उक्त वर्णित निर्देशों का पालन करें।

(ड) उपचार को नियमित रूप से दोहराएं।

अधिकतर रोगों में यह विधि अपनाई जा सकती है।

(१२) महत्वपूर्ण बातें जिनको ध्यान में रखें

(क) ऊर्जा 4 के माध्यम से प्रवाहित होती हैं यदि इसमें घनापन (congestion) हो जाता है, तो आंशिक अथवा समग्र ऊर्जा नीचे वापस आकर पेशाब अथवा यौन समस्यायें पैदा कर सकती हैं।

(ख) उच्च रक्तचाप को तुरन्त ही कम करने के लिये C 3 G/ E B (ठंडा करने, सुकून पहुंचाने हेतु और इस चक्र के संकुचन हेतु)

(ग) 3 (कटिचक्र) K तथा अधिवृक्क ग्रंथियों को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। यह 1 से आने वाली ऊर्जा के लिए पम्पिंग स्टेशन का भी काम करता है, इसीलिये 1 से आने वाली नकारात्मक भावनात्मक psychic ऊर्जा (जैसे भय की ऊर्जा) को यह कटिचक्र समग्र वायवी शरीर में पम्प कर देता है।

(घ) ओजस्विता के दृष्टिकोण से 5 महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वायु प्राण इसके माध्यम से प्रवेश करती है। इसलिये समस्त संक्रमणों में इसका उपचार अत्यावश्यक है।

(ङ) लम्बे समय तक रहने वाली निम्न नकारात्मक भावनायें 6f में समस्या पैदा करते हैं, जो 6b, तदुपरान्त 3 को प्रेषित हो जाते हैं, जिसके कारण उच्च्य रक्तचाप हो जाता है। कुछ 7 को भी चले जाते हैं जो उसके ऊपर विपरीत प्रभाव डालते हैं। 6 के अग्न्याशय को नियंत्रित करने के कारण, पाचनात्मक समस्यायें पैदा हो जाती हैं। 7b (अन्य चक्रों के साथ-साथ) रीढ़ की हड्डी को नियंत्रित करता है, अतएव रीढ़ की हड्डी की समस्यायें पैदा हो जाती हैं।

(च) पैरों को ऊर्जा p के द्वारा मिलती है, अतएव पैरों को शक्ति पहुंचाने के लिए T p आवश्यक है।

(छ) जैन्सिंग (Gensing) – यह अंगों को साफ, सक्रिय तथा ऊर्जित करता है। इसका वर्णन आगे अध्याय ३२ में किया है।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार

प्रतिरक्षात्मक तंत्र–Immunity and Defense System

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	प्रतिरक्षात्मक तंत्र– Immunity and Defense System	५.२१५
२.	लसिका तंत्र– Lymphatic System	५.२१६
३.	संक्रमण तथा सूजन– Infection and Inflammation	५.२१६
४.	अस्थि मज्जा को उत्तेजित करना व शक्तिशाली बनाना– Stimulating and Strengthening the Bone Marrow	५.२१७
५	प्लीहा को उत्तेजित करना व शक्तिशाली बनाना– Stimulating and Strengthening the Spleen	५.२१७
६	थाममस को उत्तेजित करना व शक्तिशाली बनाना– Stimulating and Strengthening the Thymus	५.२१८
७	प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करना– Enhancing the Immunity and Defense System	५.२१९
८	सामान्य संक्रमण – Minor Infections	५.२२०
९	गंभीर संक्रमण – Severe Infections	५.२२०

१० त्वचा के संक्रमण – Skin Infections ५.२२०
११ आँख का संक्रमण – Eye Infections ५.२२०
१२ कान का संक्रमण – Ear Infections ५.२२०
१३ टॉंसिल और मम्पस – Tonsillitis and Mumps ५.२२०
१४ श्वसन संक्रमण – Respiratory Infections ५.२२०
१५ पाचन तंत्र का संक्रमण – Gastro-intestinal Infections ५.२२१
१६ यकृत संक्रमण – Liver Infections ५.२२१
१७ मूत्र संबंधित संक्रमण – Urinary Infections ५.२२१
१८ रतिज रोग – Veneral Diseases ५.२२१

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार प्रतिरक्षात्मक तंत्र–Immunity and Defense System

संदर्भ :

भाग २, अध्याय ६ तथा भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या ६ (इनको ध्यान से देखें)। विभिन्न अंगों में अस्थि मज्जा का उत्पादन एवम् नियंत्रण का विवरण वहाँ दिया गया है।

(१) **प्रतिरक्षात्मक तंत्र– Immunity and Defense System**

(क) C 1 / E (W या R)– इससे अस्थि मज्जा(Bone Marrow) द्वारा लाल व श्वेत रक्त के कण ज्यादा उत्पादित होते हैं।

(ख) E 1– शरीर का प्रतिरक्षात्मक तंत्र मजबूत करने के लिए। इसको E 3 को W या R से बढ़ाया जा सकता है, तभी तो मास्टर उपचार पद्धति काफी शक्तिशाली होती है।

(ग) सीधे ही E अस्थिमज्जा (R या V) से भी रक्त गणों का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। R से V ज्यादा शक्तिशाली है किन्तु R ज्यादा सुरक्षित होती है। अधिक V से विपरीत प्रक्रिया हो सकती है, इसलिये दिन में एक बार से अधिक E V नहीं करना चाहिए।

(घ) बुखार से ग्रसित रोगी का E 1 नहीं करना चाहिए, वरना बुखार बढ़ जायेगा। उनके लिए E S- इससे परोक्ष रूप से 1 का ऊर्जन हो जायेगा और शरीर का प्रतिरक्षात्मक तंत्र बगैर बुखार बढ़े मजबूत होगा।

(ङ) रतिज रोग के रोगी का E 1 नहीं करना चाहिए, जब तक कि उपचारक कुशल एवम् अनुभवी उन्नत न हो, अन्यथा अधिक ऊर्जित होने से अधिक लाल प्राण ऊर्जा द्वारा यौन जीवाणुओं का उत्पादन बढ़ जायेगा।

(च) निम्न भावनाओं का केन्द्र 6 के नकारात्मक कारणों से प्रभावित होने के कारण लम्बे समय में, 1 तथा सभी चक्र कमजोर हो जाते हैं, जिससे शरीर आसानी से संक्रमित हो सकता है। लम्बे समय तक नकारात्मक भावनाओं द्वारा सभी चक्र गलत ढंग से कार्य करते हैं और प्रतिरक्षात्मक तंत्र पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। यह L (जो रक्त को शुद्ध करता है) के माध्यम से (6 के द्वारा) भी प्रभावित करता है।

11, 10, 9 का भी इस तंत्र पर प्रभाव होता है। 11 eV का प्रवेश बिन्दु है, जो प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत बनाता है। eV बहुत शक्तिशाली संक्रमण नाशक होता है। 10, 9 द्वारा शरीर के अन्य भागों को eV भेजने में सहायता मिलती है। 9 यह सुनिश्चित करता है कि अन्य चक्र समन्वयपूर्वक कार्य करें। 11, 10, 9 काफी मात्रा में हरा, नीला, तथा बैंगनी प्राण ऊर्जा उत्पन्न करने हैं, जो संक्रमण नाशक होते हैं।

(२) लसिका तंत्र– Lymphatic System

लसिका तंत्र जो 8 द्वारा नियंत्रित व ऊर्जित होता है अति सूक्ष्म कीटाणुओं (microbes) को फिल्टर कर, नष्ट करता है। लसिका तंत्र antibodies (विपरीत शरीर) तथा सफेद रक्त कणों की एक महत्त्वपूर्ण किस्म जो Lymphocyte (लिम्फोसाइट) कही जाती है, को तैयार करता है। आक्रमक microbes (जीवाणु) इसकी अपनी स्मरण शक्ति (memory) में होते हैं। ये Lymphocyte संक्रमण से शरीर की रक्षा करते हैं। इस संबंध में भी भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या ६ को ध्यान से देखें, जो स्व–स्पष्ट है।

(३) संक्रमण तथा सूजन– Infection and Inflammation

(क) यदि AP सिर, हृदय, 5 या इसके पास न हो तो, C' (AP) G ~ O

(ख) यदि AP सिर, हृदय, 5 या इसके पास हो तो, C' (AP) G ~ V

(ग) E (AP) G B V

(घ) यदि सूजन गम्भीर हो, तो अगले कई दिनों तक इस इलाज को दिन में ३–४ बार करें।

(ङ) यदि संक्रमण गम्भीर हो तो, आगे क्रम (७) में वर्णित उपचार अगले कई दिनों तक दिन में १–२ बार करें।

(च) कुछ सुधार होने पर, सप्ताह में तीन बार इलाज कर सकते हैं।

हरा प्राण रोगग्रस्त ऊर्जा को तोड़ता है, नीला प्राण संक्रमण हटाने, स्थानीयकरण करने एवम् सुकून पहुंचाने का कार्य करता है। गम्भीर संक्रमण में बैंगनी प्राण का प्रयोग करें, क्योंकि इसका सबसे अधिक संक्रमणनाशक प्रभाव होता है, अति गम्भीर संक्रमण तथा सूजन में G– B (३० प्रतिशत हल्का हरा तथा ७० प्रतिशत हल्का नीला प्राण) इस्तेमाल किया जाता है, किन्तु नाजुक अंग पर सावधानी से। इसको २० वर्ष से कम तथा ४५ वर्ष के अधिक उम्र के रोगी पर इस्तेमाल नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे उनके नाजुक अंगों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ज्यादा दिनों तक इस रंग की ऊर्जा के उपयोग से विपरीत प्रभाव पड़ता है, इसलिए इसका केवल सीमित ही उपयोग करना चाहिए।

(४) **(अस्थि – मज्जा) बोन मैरो को उत्तेजित करना व शक्तिशाली बनाना– Stimulating and Strengthening the Bone Marrow**

बोन मैरो रक्त के सफेद कण बनाते हैं।

(क) GS (२) – शरीर की सफाई उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी कि ऊर्जन।

(ख) C 1 / E (W या R)

(ग) C 4 / E (W या R) – शरीर को और अधिक शक्ति देने के लिए

अथवा

C 3 / E (W या R) – E 3 से पहले तथा बाद में जांच कर लें। यह प्रक्रिया केवल अनुभवी उन्नतशील प्राणशक्ति उपचारक ही करें।

(घ) C" 6 / E W, प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करने के लिए ।

(५) **प्लीहा को उत्तेजित करना व शक्तिशाली बनाना – Stimulating and Strengthening the Spleen**

प्लीहा असाधारण कोशिकाओं और रोग के कीटाणुओं को फिल्टर करके नष्ट करता है। ज्यादा संक्रमक रोगियों का 5 गंदा और ढीला होता है। प्लीहा पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसलिये गम्भीर संक्रमक केसों में T 5 जरूरी है। T 5 का शरीर पर शक्तिदायक प्रभाव पड़ता है, किन्तु सावधानी जरूरी है। शिशु व छोटे बच्चों के E' 5 से वे प्राणिक घनेपन के कारण बेहोश हो सकते हैं, यह कभी–कभी बड़ों के साथ भी होता है। उच्च रक्तचाप के रोगी का E 5 से रक्तचाप और बढ़ सकता है। 5 का 3 से निकट संबंध होने के कारण, E 5 से आंशिक रूप से 3 सक्रिय होता है, अतएव 3 व 5 की जांच सामने से तथा अगल–बगल से बार–बार जरूरी है।

(क) GS (२)

(ख) C' 5 G

(ग) C 4 / E (W या R) – इससे 5 भी ऊर्जित हो जायेगा। यह प्लीहा को उत्तेजित व शक्तिदायक करने के लिए प्रभावकारी है तथा अति सुरक्षित भी है। किन्तु जो ज्यादा कुशल व अनुभवी प्राणशक्ति उपचारक हैं, वे बजाय T 4 के, सीधे ही C 5 / E (W या R या V) कर सकते हैं।

(६) थायमस को उत्तेजित करना व शक्ति पहुंचाना– Stimulating and Strengthening the Thymus

थायमस T- **Lymphocytes** बनाता है, जो वायरस, फुंगी और परजीवी कीटाणुओं से लड़ते हैं। थायमस को उत्तेजित करने व शक्तिदायक बनाने से शरीर का प्रतिरक्षात्मक तंत्र मजबूत बनता है। T 6 भी जरूरी है क्योंकि यह 7 से घनिष्ठ संबंध रखता है।

(क) GS (२)

(ख) C" 6 तथा C' L

(ग) E 6 GBV

(घ) C' 7 / E 7b (कम G) V' तथा प्राण ऊर्जा को थायमस में जाते हुए दृश्यीकृत करें। 7 पर प्राण का घनापन न हो, इसलिये 7 का स्थिरीकरण न करें। T 7 से रीढ़ की हड्डी, पसलियां और छाती की हड्डी को अधिक रक्त (मय अधिक श्वेत कण) बनाने की उत्तेजना मिलती है।

(७) **प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करना– Enhancing the Immunity and Defense System**

यह अस्थि तंत्र तथा लिम्फेटिक तंत्र को उत्तेजित व शक्तिशाली बनाकर प्राप्त किया जा सकता है।

(क) GS (२)

(ख) C' (AP)/ E GBV

(ग) C' Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GOV – E के समय उंगलियों की दिशा को सिर की दिशा से दूर रखिए। रक्त शुद्धि से समस्त शरीर मय (AP) काफी शुद्ध हो जायेगा।

(घ) C 1 / E (W या R), यदि रोगी बुखार या रतिज रोग से पीड़ित है तो E न करें, मात्र C' 1 ही करें।

(ङ) C (a, e, H, h, k , S) / E (R या V) – यदि रोगी रतिज रोग से पीड़ित है तो केवल E V — यदि V का प्रयोग किया है, तो उस दिन इस चरण को न दोहरायें। H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ग) और (घ) की क्रिया Bone Marrow में सफेद रक्त कण के अधिक उत्पादन के लिए किया जाता है।

(च) C' (5, 4) / E 4 V — यह शरीर की ऊर्जा बढ़ाने तथा परोक्ष रूप से E 5 करने के लिए है।

(ज) यदि प्लीहा दर्दकारक है , तो E 5 GV / C' 5 – E' से बचें।

(झ) 6 को सामान्य करने हेतु (जो साधारणतः गलत ढंग से कार्य कर रहा होता है) तथा L को शक्ति पहुंचाने व रक्त को शुद्ध करने हेतु, C" 6 तथा C' L, फिर E 6 GBV

(ञ) C' 8 / E GBV -- यह लिम्फेटिक तंत्र को उत्तेजित करने के लिए है।

(ट) C' 7 / E 7b V – यह थायमस ग्रंथि को शक्ति प्रदान करने एवम् उत्तेजित करने के लिए है। इससे यही क्रिया रीढ़ की हड्डी, पसलियां तथा छाती की हड्डी में स्थित अस्थि मज्जा पर हो जायेगी।

(ठ) C' (11, 10, .9, bh) / E (कम G) V

उक्त उपचार बहुत प्रभावशाली है तथा गम्भीर संक्रामक रोगों जैसे यकृत शोथ (hepatitis), ऐड्स (AIDS) तथा अन्य रोगों में इस्तेमाल की जा सकती है।

(८) **सामान्य संक्रमण— Minor Infections**

(क) C' (AP) G ~ O यदि AP नाजुक न हो तो, अन्यथा C' (AP) GV

(ख) E (AP) GBV — जो उपचारक ज्यादा कुशल हैं, वे इसके बजाय E (AP) G Bg करें।

(९) **गंभीर संक्रमण— Severe Infections**

(क) उक्त क्रम (८) में वर्णित प्रक्रिया, किन्तु विशेष तौर पर C' (AP)/ E पूरी तौर पर करें। इस उपचार को दिन में ३–४ दफा करें, जब तक हालत न सुधरे।

(ख) उक्त क्रम (७) में वर्णित उपचार करें।

(१०) **त्वचा के संक्रमण— Skin Infection**

(क) C' (AP) G ~ O — हृदय, सिर, 5 या इनके नजदीक यह न करें, उनमें C (AP) G ~ V करें

(ख) E (AP) G B V

(११) **आंख का संक्रमण— Eye Infection**

(क) C' (आंख / आंखों) G

(ख) C (9, bh) / E G B V — प्राण ऊर्जा को आंखों में जाते हुए दृश्यीकृत करें।

(ग) C' (आंखे)

(१२) **कान का संक्रमण— Ear Infection**

(क) C (प्रभावित कान) G / E G B V

(ख) C (संबंधित j) / E GV

(१३) **टौन्सिल और मम्पस— Tonsillitis and Mumps**

C (j, 8, 8') G ~ V / E G B V

(१४) **श्वसन संक्रमण— Respiratory Infections**

(क) नाक के संक्रमण में, C 9 G ~ V / E G B V

(ख) गले के संक्रमण में, C (j, 8, 8') G ~ V / E G B V

(ग) ब्रौंकल (श्वास की नलियां) व फैंफड़े के संक्रमण में, C Lu G ~ O/E Lu (Lub के माध्यम से) GOV (उंगलियां सिर की ओर नहीं होनी चाहिए)

(१५) पाचनतंत्र का संक्रमण— **Gastrointestinal Infections**

(क) C' (6, 4, पेट का क्षेत्र) G ~ V / E (6f, 4) GBV
डायरिया हो जाने की संभावना से, O का इस्तेमाल नहीं किया जाता।

(ख) ज्यादा गंभीर केस में उक्त (क) के अतिरिक्त,
C' 5 G / E G V

(ग) और अधिक गंभीर केस में जैसे (Amebiasis, टायफायड के बुखार आदि में) उक्त (क) व (ख) के अतिरिक्त क्रम (७) में वर्णित उपचार भी करें।

(१६) यकृत संक्रमण— **Liver Infections**

(क) C'' <u>6</u> G

(ख) C' (L– सामने, बगल व पीछे की ओर से) G ~ V

(ग) E 6f GBV - प्राण ऊर्जा को L में जाते दृश्यीकृत करें।

(घ) L का उपचार दिन में कई बार करें, जब तक पर्याप्त सुधार नहीं होता।

(ङ) C 5 V (सावधानी से), क्योंकि प्लीहा भी प्रभावित होता है।

(च) क्रम (७) में वर्णित उपचार भी अवश्य करें।

यह समस्त उपचार मलेरिया के लिए किया जा सकता है। इसमें अध्याय ६ के क्रम सं १० (३०) में वर्णित रक्त की सफाई क्रिया करें। इसके अतिरिक्त आगे, बगल व पीछे सभी ओर से फैंफड़ों का C' करना तथा पिछले फैंफड़ों के माध्यम से फैंफड़ों का E GO करना पड़ेगा। जो समुचित रूप से अनुभवी उपचारक नहीं हैं, वे बजाय E GO के E (W या V) करें।

(१७) मूत्र संबंधित संक्रमण— **Urinary Infections**

(क) मूत्र मार्ग (Urethra) तथा मूत्राशय के संक्रमण में
C' 2 G ~ O / E GBV

(ख) गुर्दे के संक्रमण में C K G ~ O; C 3 / E GBV / C' 3
यदि 3 अधिक सक्रिय हो, तो उसे E IB से संकुचित करें।

(१८) रतिज रोग— **Veneral Diseases**

(क) E 2 IB / C' G ~ O / E GBV

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–आंख, कान और गले की खराबियां–

Disorders of the Eyes, Ears and Throat

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य	५.२२२
२.	निकट दृष्टिवत्ता, दूर दृष्टिवत्ता, दृष्टि वैषम्य व भैंगापन– Near Sightedness, Far Sightedness, Astigmatism, Cross Eyes and Wall Eyes	५.२२३
३.	आंखों का संक्रमण– Eye Infections	५.२२४
४.	दीर्घकालीन लाल आंखों की बीमारी– Chronic Red Eyes	५.२२५
५.	आंखों में तैरने वाला पदार्थ– Floater	५.२२५
६.	ग्लाकोमा– Glaucoma (काला मोतिया)	५.२२६
७.	मोतियाबिंद– Cataract	५.२२७
८.	बाह्य कान के संक्रमण – Outer Ear Infections	५.२२८
६.	मध्य व आन्तरिक कान के संक्रमण – Middle and Internal Ear Infections	५.२२८
१०.	बहरापन – Deafness	५.२२८
११.	फटा हुआ कान का पर्दा – Ruptured Ear Drum	५.२२६
१२.	चिपका हुआ कान – Glued Ear	५.२२६
१३.	ज्ञान तंतु का बहरापन – Nerve Deafness	५.२३०
१४.	कान में शोर – Noise in the Ear or Tinnitus	५.२३०
१५.	सिर चकराना – Vertigo	५.२३१
१६.	गला खराब होना, लैरिनजाइटिस(Larynx की बीमारी), मम्प और टॉन्सिलाइटिस– Sore Throat, Laryngitis, Mumps and Tonsillitis	५.२३१

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– आंख, कान और गले की खराबियां–

Disorders of the Eyes, Ears and Throat

संदर्भ :

भाग २, अध्याय ७ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या ४ (ध), (ङ) व ६

(१) **सामान्य–** आंख और कान 11, 10, 9 द्वारा ऊर्जित व नियंत्रित होते हैं। इनके अपने–अपने लघु चक्र होते हैं। बांया (आंख व कान) 9 से ज्यादा और दांया (आंख व कान) 10 व 11 से ज्यादा प्रभावित और ऊर्जित होते हैं। bh पूरे सिर को ऊर्जित करता है व आंखों व कानों दोनों को प्रभावित व ऊर्जित करता है। t भी आंखों को प्रभावित करता है। j सिर, आंखों व कानों को ऊर्जित करता है। आंखों व कानों की हालत समस्त शरीर की स्वस्थता पर भी निर्भर करती है। मध्यम व वृद्ध रोगियों के लिये T (अन्य चक्र) भी करना चाहिए।

उक्त सभी चक्रों की स्थिति चित्र ४.१३ में दर्शायी गयी है।

(२) **निकट दृष्टिवत्ता, दूर दृष्टिवत्ता, दृष्टि वैषम्य व भैंगापन– Near Sightedness, Far Sightedness, Astigmatism, Cross Eyes and Wall Eyes**

(क) C' 9

(ख) C' आंखों के चक्र G, यह आंखों की महीन नाड़ियों में रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल की हुई ऊर्जा की सफाई के उद्देश्य से है।

(ग) E आंखें (कम Y)– इससे रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल हुई ऊर्जा को बाहर निकालने में सहायता मिलती है।

(घ) C' आंखें

(ङ) E आंखें (9 के माध्यम से) V (कम B)– प्राण ऊर्जा को आंखों के अन्दर जाते हुए दृश्यीकृत करें। G, Y तथा V के आपस की क्रिया से आंखों में पुनर्निर्माण तथा शक्ति बढ़ाने की क्रियायें होती हैं तथा B आंखों को लचीलापन देता है और प्रेषित ऊर्जा का स्थिरीकरण करता हैं

(च) C (t, 10, 11, मस्तिष्क, bh, j) G ~ V

(छ) E bh (कम G) V' प्राणिक ऊर्जा के अन्दर जाते हुए दृश्यीकृत करें।

(ज) E (10, 11, t, j) GV'

(झ) यदि रोगी मध्यम या अधिक आयु का है, तो C (8, 7, 6, 4, 1) / E W – (E 7 को 7b के माध्यम से)

(ञ) उपचार को सप्ताह में २ या ३ दफे करें।

(ट) रोगी को उपचार के दौरान आंख का चश्मा नहीं लगाना चाहिए या कम लगाना चाहिए, क्योंकि इससे उपचार का प्रभाव नष्ट होता है।

(ठ) यदि उक्त उपचार को भलीभांति किया जाये, तो कुछ रोगी तीन माह में ठीक हो जाते हैं। उपचार की गति रोगी की उम्र, आंखों की हालत तथा उपचारक की कुशलता पर निर्भर है।

(ड) रोगी ठीक होने के पश्चात् आखों का अधिक इस्तेमाल न करे और समय–समय पर उपचार करवाता रहे, विशेष तौर पर, जब आँखें कमजोर होने लगें तो।

नोट– यदि उक्त क्रिया में Y के स्थान पर गूढ़ पीला (Subtle Yellow) प्राण अथवा g का प्रयोग किया जाये, तो उत्तम रहेगा।

(३) आँखों का संक्रमण– Eye Infection

यह दिव्यदर्शन से देखा गया है कि कुछ आंख रोगग्रस्त रोगियों के बाहरी आभा मण्डल में छेद होता है। स्वास्थ्य मंडल प्रभावित हो जाता है और स्वास्थ्य किरणें आपस में उलझ जाती है। कई केसों में शरीर के अन्य भाग भी काफी प्रभावित हो जाते हैं। अक्सर GS द्वारा उपचार की गति तेज हो जाती है

(क) GS (२)

(ख) C' (आंखें) G ~ V

(ग) C 9 / E (आंखें– 9 के माध्यम से) GBO– प्राण ऊर्जा को आंखों में जाते हुए दृश्यीकृत करें। आंखों को दिन में कई बार C तथा E करने से ठीक होने की गति बढ़ाई जा सकती है।

(घ) C bh / E (कम G) V' -- आंखों को ऊर्जित और चमकदार होते दृश्यीकृत करें।

(ङ) C' (j, 8) / E W

(च) C 7 / E 7b GV'

(छ) C Lu – सामने, बगल तथा पीछे से / E Lu (Lub के माध्यम से) GO–

E O करने में उंगलियों को सिर से दूर इंगित करें।

(ज) C (5, 1)

(झ) C (6, 4) / E W

(ञ) समस्त उपचार को अगले कई दिनों तक प्रतिदिन एक बार करें।

(४) **दीर्घकालीन आँखों की बीमारी– Chronic Red Eyes**

साधारणतया 6 घना होता है और काफी अधिक लाल प्राण से भरा होता है। इसका एक भाग 9 और आंखों को जाता है।

(क) C" 6, C' (L) / E 6 G B V

(ख) C 7/ E 7 b (कम G) V'

(ग) C' (आंखें) G ~ V'

(घ) C' 9/ E (आंखें –9 के माध्यम से) GB'

(ङ) C (bh, 10, 11) / E W

(च) इस उपचार को सप्ताह में तीन बार जब तक आवश्यक हो, तब तक करें।

(५) **आँखों में तैरने वाला पदार्थ– Floater**

इस रोग में आंखों में दृष्टि पटल व लैंस के बीच जाली जैसे पदार्थ के आने से देखने में कठिनाई आ जाती है।

(क) C 9 / E (आंखें– 9 के माध्यम से) G – यह आंखों के महीन नाड़ियों में से रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को साफ करने व ढीला करने के लिए किया जाता है।

(ख) E (कम Y) – इससे उक्त (क) में वर्णित ऊर्जा को हटाने में सहायता मिलती है।

(ग) C' (आंखें) / E (आंखें – 9 के माध्यम से) (कम G) Y' V' – प्राण ऊर्जा को आंखों में जाते हुए दृश्यीकृत करें।

(घ) C (t, 10, 11, मस्तिष्क, bh, j) G ~ V

(ङ) E (bh, 11, 10, t, j) GV'

(च) यदि रोगी माध्यम या अधिक आयु का है, तो C (8, 7, 6, 4, 1) / E W – (E 7 को 7b के माध्यम से करें)

(छ) सप्ताह में दो या तीन दफा उपचार करें।

(६) **ग्लाकोमा (काला मोतिया)– Glaucoma**

कई केसों में ग्लाकोमा चिड़चिड़ाहट, निराशा और तनाव से होता है। आँखों के लघु चक्र, 6, 9, bh काफी प्रभावित हो जाते हैं।

(क) C" 6, C' L / E 6 G B V – अनुभवी कुशल प्राणशक्ति उपचारक 6 को साफ करने की तकनीक जो अध्याय ६ के क्रम संख्या १० (२६) में वर्णित है, करें।

(ख) C 7/ E 7b GV' – 7f को बड़ा तथा चमकीला होता दृश्यीकृत करें।

(ग) C' 8/ E GV

(घ) C' (आंखें, t, 9)/ E (आंखे – कनपटियाँ तथा 9 के माध्यमसे) GBV' / C ~ E जब तक काफी आराम न मिल जाये।

(ङ) C (10, 11, bh) G ~ V / E GV

(च) यदि आंखें क्षतिग्रस्त हों, तो E (आंखें– bh के माध्यम से) G –Y, G – V – आंखों को चमकीला होते हुए दृश्यीकृत करें। आंखों के पुनर्निर्माण में छह मास से लेकर एक वर्ष लग सकता है। रोगी का सहयोग बहुत महत्वपूर्ण है।

(छ) C (1 , 4)/ E W– शरीर को ताकत पहुंचाने के लिए।

(ज) सप्ताह में तीन बार उपचार लगभग २--३ माह तक करें।

(७) मोतियाबिंद– Cataract

आम तौर पर यह बढ़ते उम्र की प्रक्रिया ओर कभी–कभी अग्न्याशय के मधुमेह से संबंधित होती है। इसलिये मात्र आंखों का उपचार काफी नहीं होता, अपितु मुख्य चक्रों, विशेष कर निम्न चक्रों का उपचार आवश्यक है।

(क) C' 9/ E (आंखें – 9 के माध्यम से) G – यह आंखों के महीन नाड़ियों में से रोगग्रस्त तथा इस्तेमाल की हुई ऊर्जा को साफ तथा ढीला करने के उद्देश्य से है।

(ग) E आंखें (कम Y) – यह उक्त ऊर्जा को हटाने के उद्देश्य से है।

(घ) C' आंखें/ E (आंखे– 9 के माध्यमसे) GV – प्राण ऊर्जा को आंखों के अन्दर जाते हुए दृश्यीकृत करें।

(ङ) C (1 0, 11, मस्तिष्क, t, bh) / E (आंखें– bh के माध्यमसे) GV – प्राण ऊर्जा को आंखों के अन्दर जाते हुए दृश्यीकृत करें।

(च) E (11, 10, t) GV

(छ) C (j, 8, 8') / E W

(ज) C 7/ 7b (कम G) V'

(झ) C (6, 4, 2, 1) / E W

(ञ) C (5, 3) – इनका E न करें।

(ट) सप्ताह में तीन बार T करें।

विभिन्न रोगियों में अलग–अलग परिणाम प्राप्त होते हैं। कुछ ठीक हो जाते हैं और कुछ केस में कई महीने बाद ही कुछ हद तक सुधार होता है।

(८) बाह्य कान के संक्रमण– Outer Ear Infections

(क) GS (२)

(ख) C' (AP, प्रभावित कान चक्र) G ~ V – यह अति महत्वपूर्ण है / E GBV – प्रभावित कान की C ~ E दिन में कई बार करें, ताकि उपचार गति तीव्र हो सके।

(ग) C (bh, प्रभावित कान से संबंधित j) /E W

(घ) C' (8, 8') / E GV

(ङ) C 7 / E 7b (कम G) V

(च) C (Lu – अगल–बगल से तथा पिछला) E (Lu – Lub के माध्यम से) GO – E O करते समय उंगलियों को सिर से दूर इंगित करें।

(छ) C (5, 1)

(ज) C (6, L, 4) / E (6, 4) W

(झ) अगले कई दिनों तक यह उपचार प्रतिदिन करें।

(९) मध्य एवम् आन्तरिक कान के संक्रमण– Middle and Inner Ear Infutions

कुछ केसों में यह रुंधी हुई नाक द्वारा होता है। इसलिये T 9 करना पड़ेगा।

(क) GS (२)

(ख) C' (प्रभावित कान) G ~ V – यह अति महत्वपूर्ण है / E GBV – प्रभावित कान की C ~ E दिन में कई बार करें, ताकि उपचार गति तीव्र हो सके।

(ग) C 9 / E GBV

(घ) C (bh, प्रभावित कान से संबंधित, j) /E W

(ङ)से (ज) तक– उक्त क्रम (८) (घ) से (झ) तक के अनुसार

(१०) बहरापन– Deafness

यह कान के चक्रों के गलत ढंग से कार्य करने के कारण होता है। कभी–कभी प्रभावित कान चक्र पर मटमैला नारंगी प्राण होता है। सामान्य कान चक्र सफेद सा हल्के लाल रंग का होता है। प्रभावित कान के प्राण का घनापन, खोखलापन अथवा दोनों हो सकता है। कई केसों में bh, j भी प्रभावित होते हैं। आंशिक या पूर्ण बहरेपन के अनेक भौतिक कारण हो सकते हैं, जैसे कान में मोम सा पदार्थ, मध्य

कान में द्रव या चिपचिपा हुआ कान, कान के फटे पर्दे, कान की ज्ञान तंतु का बहरापन और अन्य कारण।

(क) C (प्रभावित कान) / E GV

(ख) C (bh, प्रभावित कान से संबंधित j) / E W

(ग) अधिकतर रोगी इसी से तुरन्त और आंशिक सुधार पायेंगे। कभी–कभी उपचारित कान, दूसरे सामान्य कान से अधिक सुनने लग जाता है, किन्तु यह आमतौर पर अस्थायी रूप से होता है।

(घ) प्राण उपचार को दोहराइये।

(ङ) W अति सुरक्षित है, लेकिन रंगीन प्राण के मुकाबले में अधिक देर तक सुधार टिकता नहीं है।

नोट– श्री चोआ कोक सुई ने एक अजीब केस देखा। एक औरत बचपन में मूलाधार के पास के क्षेत्र पर बुरी तरह गिर पड़ी थी। दिव्य दर्शन से उन्होंने देखा कि उसके 1 का आधा हिस्सा ठीक था, जबकि दूसरे हिस्से पर काफी खोखलापन था। 1 की जड़ केन्द्र से थोड़ी सी हटी हुई थी। वह दांये कान से आंशिक बहरी थी, उसकी दांयी आंख, बांयी से ज्यादा खराब थी। उसका दांया वक्ष बांये से छोटा था, दांया पैर बांये से छोटा था। 2 भी गलत कार्यरत था। इसके लिए T 1 किया गया। इच्छा शक्ति से 1 की जड़ को भी अपने स्थान पर लाया गया। रीढ़ की हड्डी को भी ठीक किया गया।

(११) **फटा हुआ कान का पर्दा– Ruptured Eardrum**

(क) C' (प्रभावित कान) G~V / E GV'

(ख) C' (bh, प्रभावित कान से संबंधित j) /E GV'

(ग) C (6, 4, 1) / E W- यह उपचार की गति को तेज करने के लिए है।

(घ) उपचार को सप्ताह में तीन बार कीजिए।

(१२) **चिपका हुआ कान-- Glued Ear**

यह रुंधी हुई नाक से हो सकता है।

(क) C' (प्रभावित कान) G ~ V / E GV

(ख) मात्र अनुभवी और कुशल प्राणशक्ति उपचारकों के लिए– E (प्रभावित कान) B/ C G ~ (सफेद सी बहुत हल्के नारंगी रंग की ऊर्जा) / E BG (सफेद सी बहुत हल्के नारंगी ऊर्जा)– यह अत्यन्त ही सावधानी से करें क्योंकि कान मस्तिष्क के बहुत पास होता है।

(ग) C' (bh, प्रभावित कान का j) / E GV

(घ) C 9/ E GV

(ङ)से (झ) तक – उक्त क्रम (८) (घ) से (ज) के अनुसार।

(ञ) सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(१३) ज्ञान तंतु का बहरापन– Nerve Deafness

आमतौर पर यह बढ़ती उम्र से संबंधित होती है। इसलिये मुख्य चक्रों का उपचार करना पड़ेगा। यह तेज शोर या तेज संगीत के ज्यादा देर तक सुनने से अथवा नशीले पदार्थ के पार्श्व प्रभाव से भी हो सकता है।

(क) GS (२)

(ख) मात्र अनुभवी, कुशल उपचारक ही के लिए – E (प्रभावित कान) B ~ C (सफेद सी बहुत हल्के नारंगी ऊर्जा) – सावधानी से करें।

(ग) (E प्रभावित कान) GV' (अन्य उपचारक इसके पहले C G करें।)

(घ) C' (bh, प्रभावित कान से संबंधित j) / E GV

(ङ) C' (9, 10, 11) / E GV

(च) C 5

(छ) C (8, 8', 7, 6, 4, 2, 1) / E W

(ज) उपचार को कई दिनों तक सप्ताह में तीन बार करें।

(१४) कान में शोर-- Noise in the Ear or Tinnitus

(क) C' (प्रभावित कान) G ~ V / E GV'

(ख) C' (bh, प्रभावित कान से संबंधित j, 8) / E GV'

(ग) C' (9, 10, 11) / E GV

(घ) C 7 E 7 b GV'

(ङ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(१५) सिर चकराना– **Vertigo**

(क) C' (कान, j, bh) / E GV'

(ख) C' (9, 10, 11) / E GV'

(ग) C (8, 8') / E GV'

(घ) C 7/ E 7 b GV'

(ङ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(१६) **गला खराब होना, लैरिनजाइटिस– (Larynx की बीमारी), मम्प और टौंसिलाइटि्स–**

Sore Throat, Laryngitis, Mumps and Tonsillitis

(क) GS (अनेक बार)

(ख) C' (j, 8, 8') यह अति महत्वपूर्ण है। E GBV – गला खराब और लैरिनजाइटि्स में 8, 8' पर विशेष ध्यान दें। मम्प और टौंसिलाइटि्स में j पर विशेष ध्यान दें। प्रभावित अंगों की दिन में कई बार T करके उपचार की गति बढ़ाई जा सकती है।

(ग) C (9, 10, 11, bh) / E GV'

(घ) C 7/ 7 b (कम G) V'

(ङ) C Lu (अगले, पिछले और बगल से) / E Lu (Lub के माध्यम से) GO – E O के समय अपने उंगलियों को सिर की दिशा से दूर इंगित करें।

(च) C (5, 1)

(छ) C'' 6, C' (L, 4) / E (6, 4) GBV

(ज) समस्त उपचार को कई दिन तक प्रतिदिन एक या दो दफे करें।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–त्वचा की खराबियां

SKIN DISORDERS

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.२३३
२.	खुजली– Itch	५.२३३
३.	एक्जिमा और त्वचा की सूजन– Eczema and Dermatitis	५.२३४
४.	सामान्य मुंहासे– Mild Pimples	५.२३४
५.	दीर्घकालीन गम्भीर मुंहासे– Chronic Severe Pimples	५.२३४
६.	दीर्घकालीन फोड़े– Chronic Boils	५.२३४
७.	त्वचा की एलर्जी– Skin Allergy	५.२३५
८.	खारिश– Psoriasis	५.२३५
९.	बालों का कम होना या झड़ना– Thinning of Hair	५.२३६

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–त्वचा की खराबियां

SKIN DISORDERS

संदर्भ :

भाग २, अध्याय ४ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या २

(१) **सामान्य– General**

त्वचा 1 द्वारा ऊर्जित तथा नियंत्रित होती है। लम्बी बीमारी तथा गंभीर त्वचा के रोगी का 1 आम तौर पर गंदा होता है। 4 और 6 पाचन, अवशोषण एवम उत्सर्जन तंत्रों को नियंत्रित करते हैं, इसलिये वे त्वचा के स्वास्थ्य को भी प्रभावित करते हैं। 6 जिगर के माध्यम से, 5 प्लीहा के माध्यम से तथा 3 गुर्दों के माध्यम से रक्त को शुद्ध करते हैं, इसलिए त्वचा के स्वास्थ्य को काफी प्रभावित करते हैं। कई केसों में 6 के भावनात्मक कारणों से गलत ढंग से कार्य करने के कारण 1 पर विपरीत पड़ता है जिससे त्वचा रोग हो जाते हैं। चूंकि 9 जो मास्टर चक्र है, 1 को नियंत्रित करता है, इसलिये वह भी त्वचा के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

(२) **खुजली– Itch**

(क) C (AP) G ~ O – O (को सिर, हृदय, प्लीहा या इनके नजदीक उपयोग न करें) यदि C उचित हो जाये, तो रोगी को आम तौर पर आंशिक या पूरा आराम मिल जाता है।

(ख) E (AP) GBV

(ग) C "6, C' L / E 6 GBV

(घ) C' 1/ E R

(३) **एक्ज़िमा और त्वचा की सूजन– Eczema and Dermatitis**

(क) C' (AP) G ~O / E (कम B) स्थानीय प्रभाव के लिये, OR– O को सिर, हृदय, प्लीहा या इनके नजदीक उपयोग न करें।

(ख) C'' 6̲, C' (L, 5) / E (6, L, 5) GV'– E 5 सावधानी से करें

(ग) C' (4, 1)/ E R

(घ) उपचार को जब तक जरूरी हो, सप्ताह में तीन बार करें।

(४) **सामान्य मुंहासे– Mild Pimples**

(क) C' (सम्पूर्ण चेहरे पर) G, AP पर विशेष तौर पर

(ख) E (AP) GBV

(ग) C (9, 10, j') / E (कम G) V'

(घ) C 1/ E R

(ङ) आवश्यक्तानुसार उपचार को दोहरायें।

(५) **दीर्घकालीन गम्भीर मुंहासे– Chronic Severe Pimples**

इसमें 1, 2, 6, L, 8, j आमतौर पर काफी गंदे और प्रभावित होते हैं। 9 आंशिक रूप से प्रभावित होता है।

(क) GS (२)

(ख), (ग) उपरोक्त क्रम (४) (क), (ख) के अनुसार

(घ) C' 9 / E (कम G) V'

(ङ) C' (j, 8) / E (कम G) V'

(च) C'' 6̲, C' (L, 5) / E (6, L, 5) GV– E 5 सावधानी से करें।

(छ) C' (4, 2, 1)/ E W

(ज) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार उपचार करें

(६) **दीर्घकालीन फोड़े– Chronic Boils**

कई केसों में दीर्घकालीन फोड़े तनाव के कारण होते हैं। आम तौर पर 6 तथा L पर घनापन और गंदापन होता है। 5 और 1 भी प्रवाहित होते हैं।

(क) C ' (प्रभावित भाग) G~O (सिर, हृदय तथा प्लीहा या इनके नजदीक O का उपयोग न करें) / E GBV

(ख) C" 6, C' L – यह अति महत्त्पूर्ण है। E 6 GBV

(ग) C 5 / E GV– ये सावधानी से करें।

(घ) C' 1 G~O/ E R

(ङ) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(७) **त्वचा की एलर्जी– Skin Allergy**

(क) रोगी को आराम पहुंचाने के उद्देश्य से C (प्रभावित भाग) GO/ E GOR – सिर, हृदय तथा प्लीहा या इनके नजदीक O का उपयोग न करें।

(ख) C Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GOR- यह रक्त को शुद्ध और पुष्ट करने के लिए है। जब E Lu O करें, तो उंगलियां सिर से दूर इंगित होनी चाहिए।

(ग) C' 9/ E (कम G) V'

(घ) C" 6, C' L / E 6 GV, इसके स्थान पर अनुभवी और कुशल उन्नतशील उपचारक C (6, L) / E 6f GO कर सकते हैं।

(ङ) C' 5/ E W

(च) C' 1 G~O / E R

(छ) उपचार सप्ताह में कई बार करें।

(८) **खारिश– Psoriasis**

इन रोगियों का गंदा 6, 3 और 1 होता है। भूरी सी गंदी लाल ऊर्जा 6 और 1 की 3 में जाती है। वहां से वह शरीर के अन्य भागों में फैल जाती है। आमतौर पर, यह मूलतः भावनात्मक कारणों से होता है।

(क) GS (२)

(ख) तुरन्त रोगी को आराम पहुंचाने के लिए C (AP) G~O – सिर, हृदय, प्लीहा के ऊपर या इनके समीप O का प्रयोग न करें।

(ग) C" 6, C' L/ E 6 GBV– अनुभवी और कुशल उपचारक 6 की सफाई की तकनीक, जो अध्याय ६ के क्रम संख्या १० (२६) में दी गयी है, उसका उपयोग कर सकते हैं।

(घ) C' 3 – यह अति महत्वपूर्ण है।

(ङ) C' 1 G~O/ E R

(च) उक्त (ख) से (ङ) तक के उपचारों पर विशेष ध्यान दीजिए।

(छ) C 9 / E GV

(ज) C 7 / E 7b GV – साथ ही 7f को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें, यह आन्तरिक शांति के लिए है।

(झ) उपचार को सप्ताह में तीन बार आवश्यक्तानुसार करें।

(६) **बालों का कम होना या झड़ना– Thinning of Hair**

एक आदमी का 11 और 10 बहुत स्वस्थ हो सकता है, किन्तु फिर भी उसके बाल झड़ सकते हैं या कम हो सकते हैं। यह खोपड़ी पर खालीपन के कारण होता है। दिव्य दर्शन से खोपड़ी का क्षेत्र हल्का भूरा या हल्का पीला सा भूरे रंग का दिखाई देता है।

खोपड़ी की स्वस्थता bh, j और 8 की स्वस्थता पर निर्भर करती है, क्योंकि ये चक्र खोपड़ी को रक्त पहुंचाने वाली नलिकाओं को प्रभावित करते हैं। कई केसों में 6, 2, 1 भी प्रभावित हो जाते हैं। 1 त्वचा और बालों को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। 2 के खालीपन से 8 पर भी आंशिक खालीपन हो जायेगा। अत्यन्त तनाव के कारण 6, 1, 8, j गलत ढंग से कार्य करने लग जाते हैं, जिससे बाल तेजी से झड़ने लगते हैं।

(क) C' (खोपड़ी के AP)/ E B स्थानीय प्रभाव के लिये।

फिर बालों को शीघ्र विकास करने के लिए E (अधिक R) (कम Y) – प्राणिक अनुपात R: Y = ९५% : ५% होना चाहिए। इनको एक साथ कभी नहीं प्रेषण करना चाहिए, अन्यथा काफी प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

(ख) C 9/ E (कम G) V

(ग) C' (bh, j, 8) / E GV- इसका उद्देश्य खोपड़ी में सूक्ष्म रक्तप्रवाह (micro-circulation of the blood) का सुधार करना है।

(घ) C'' 6, C' L / E 6 GBV

(ङ) C (4, 2, 1) / E R

(च) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में कई बार उपचार करें।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–हृदय तथा रुधिराभिसरण तंत्र के रोग– Heart and Circulatory Ailments

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.२३८
२.	हृदय में आंशिक रुकावट– हृदय की रक्त धमनी का रोग– Partial Heart Block – Coronary Artery Disease	५.२४०
३.	अनियमित हृदय धड़कन– Irregular Heart Beat or Arrhythmias	५.२४१
४.	हृदय पर सूजन या रिह्यूमैटिक हृदय– Inflammation of the Heart or Rheumatic Heart	५.२४२
५.	बढ़ा हुआ हृदय–दोषपूर्ण वाल्व– Enlarged Heart– Defective Valve	५.२४२
६.	जन्म से हृदय रोग– Congenital Heart Ailment	५.२४३
७	धमनियों (रक्त नलिकाओं) की दीवाल मोटी तथा कड़ी हो जाना– Arteriosclerosis or Atherosclerosis	५.२४४
८	स्फीत शिरा– Varicose Veins	५.२४५
९	उच्च रक्तचाप– Hypertension	५.२४५
१०	निम्न रक्तचाप– Hypotension	५.२४८
११	स्ट्रोक– Stroke	५.२४९

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–हृदय तथा रुधिराभिसरण तंत्र के रोग– Heart and Circulatory Ailments

संदर्भ :

भाग २, अध्याय ८ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (५)

(१) सामान्य– General

हृदय 7 द्वारा नियंत्रित और ऊर्जित होता है। चूंकि भौतिक हृदय मांसपेशियों का बना होता है, इसलिए 1 द्वारा काफी मात्रा में ऊर्जित तथा नियंत्रित होता है। यह 6 द्वारा भी प्रभावित होता है, जिसके गलत ढंग से कार्यरत होने के कारण यह भी गलत ढंग से चलता है। कई केसों में तनाव और नकारात्मक भावनाओं के कारण हृदय रोग होते हैं। अनेक हृदय रोगी का 6 गलत ढंग से चलता है। 6 की गंदी घनी ऊर्जा का एक भाग 7 में जाता है, जिस कारण हृदय गलत तौर से चलता है और जिससे शरीर के कोलेस्ट्रोल पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और एक लम्बे समय में हृदय रोग हो जाते हैं। कई केसों में 6 गलत तौर पर चलने के कारण, 8 भी गलत रूप से कार्य करता है जिससे हृदय गलत ढंग से चलता है।

रक्त की नलियां प्रमुख तौर पर 7 और 1 ऊर्जित व नियंत्रित करते हैं। अन्य मुख्य व लघु चक्र भी इसको प्रभावित करते हैं। हृदय के दो लघुचक्र – दांया और बांया होते हैं।

उक्त हृदय के चक्रों की स्थिति चित्र ४.१३ में दर्शायी गयी है।

हृदय रोग कई प्रकार के होते हैं। इन रोगों अर्थात हृदय की रक्त नलिकाओं में रुकावट या थक्का बन जाना, हृदय संक्रमण, हृदय का बढ़ जाना, हृदय के वाल्वों का गलत तौर पर कार्य करना, हृदय के दांये तथा बांये भाग के मध्य की दीवाल में जन्म से ही छेद/छेदों का होना, हृदय की अनियमित धड़कन द्वारा हृदय की

मांसपेशियां फेल हो सकती है। हृदय रोग उपचार में 7, हृदय, 6, L, 8, 1 का T करना चाहिए। हृदय पर या तो घनापन या खालीपन या दोनों हो सकते हैं। C' 6 अति महत्वपूर्ण है क्योंकि आमतौर पर रोग का यही कारण होता है। L भी प्रभावित होता है और भूरा सा लाल होता है। 1 में खालीपन या आंशिक रूप से खालीपन होता है।

G सफाई एवम् घोलने, R चौड़ाने और शक्ति पहुंचाने, B संक्रमण व सूजन हटाने के लिए उपयोग की जाती है। यह हृदय की मांसपेशियों के लचीलेपन (pliability) लिये भी आवश्यक है और बढ़े हुक हृदय के उपचार में काम आता है। V का अनेक प्रकार के प्रभाव पड़ता है। हृदय को एक या दो उंगलियों से अच्छी तरह जांच करनी चाहिये, ताकि छोटे–छोटे उत्पीड़न के स्थान ढूंढे जा सके। इसमें मदद के लिए रोगी से बताने के लिए कहें। जिन स्थानों पर खालीपन हो, उन पर उंगलियों द्वारा C G ~ V करें।

C' 6 अति आवश्यक है। अनुभवी कुशल उपचारक के लिए अच्छा है कि वे C 6 की तकनीक जिसका वर्णन अध्याय ६ के क्रम १० (२६) में है, अपनायें। इससे शीघ्र C (6, L) होता है। अधिक सक्रिय 6 को B से संकुचित भी करना पड़ता है।

C (हृदय) के लिये अनुभवी कुशल उपचारक C G ·· O कर सकते हैं। रक्त नलियों को चौड़ाने के लिये C R करें। यदि C ठीक हो जाये तो बहुत तेजी से आराम मिलता है। E O मात्र कुशल उपचारक ही कर सकते हैं, अन्य नहीं क्योंकि यदि O के शेड में गल्ती हुई तो कमजोर हृदय वालों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

आम तौर पर हृदय पर प्रेषित ऊर्जा का स्थिरीकरण नहीं करना चाहिए क्योंकि यदि उपचारक जो कुशल नहीं है उनके द्वारा अति स्थिरीकरण हो जाता है, जिससे हृदय पर घनापन हो जाता है। इस घनेपन से तकलीफ होती है। यदि ऐसा हो जाये, तो C (हृदय) करें।

हृदय रोगी से आशा की जाती है कि वे धूम्रपान न करे, अपनी भावनाओं पर नियंत्रण करे और अपनी खुराक पर ध्यान दे।

(२) **हृदय में आंशिक रुकावट–हृदय की रक्त धमनी का रोग– Partial Heart Block–Coronary Artery Disease**

हृदय के कुछ हिस्सों पर घनापन और कुछ पर खालीपन हो जाता है।

(क) G S

(ख) C" 6, C' L- अति महत्वपूर्ण है।

(ग) C' (7f, हृदय)

(घ) C (प्रभावित हिस्सों पर) G ~ V एक या दो उंगलियों द्वारा। हृदय के बांये नीचे के हिस्सा का C' होना चाहिए।

(ङ) C' 7b

(च) E (हृदय 7b के माध्यम से) GR – G का सफाई व घोलने का प्रभाव होता है और R का शक्ति पहुंचाने व चौड़ाने का प्रभाव होता है।

(छ) C' (7 f और हृदय)

(ज) E 6f GBV- यह 6 और L को सामान्य करने हेतु है। B अधिक सक्रिय 6 को संकुचित करता है।

(झ) C' (6, L)

(ञ) C' Lu (Lub के माध्यम से) GOR – इससे सफाई, घुलनशीलपना तथा चौड़ाने वाला प्रभाव रक्त नलिकाओं पर पड़ता है। E O करते समय उंगलियां सिर से दूर इंगित करें।

(ट) C (1, 4) / E R – हृदय और शरीर को शक्ति पहुंचाने के लिए

(ठ) C (11, 10, 9, 8) / E (कम G) V'

(ड) सप्ताह में तीन बार T करें।

उचित तौर पर T से रोगी आमतौर पर आराम महसूस करता है। यद्यपि एक या दो सप्ताह में काफी सुधार दिखाई देगा, लेकिन लगभग २ या ३ माह या जब तक रोगी पूरी तरह ठीक न हो जाये, तब प्राणिक उपचार करना पड़ेगा। यदि कुछ उपचार के

बाद रोगी अच्छा महसूस करने के कारण उपचार बन्द कर दे, तो वह बहुत बड़ी गलती कर बैठेगा।

अनुभवी व कुशल उपचारक C (हृदय) G ~ O ~ R करें, फिर C 7b / E हृदय (7b के माध्यम से) GOR करें और C 6 तकनीक – अध्याय ६ क्रम संख्या १० (२६) करें। इससे 6, L की शीघ्र सफाई होती है। यदि सही उपचार हुआ, तो रोगी को तुरन्त आराम मिलेगा और आरोग्य की गति बहुत तीव्र होगी।

रोगी उचित खुराक खाये, तनाव या चिड़चिड़ापन की स्थिति से बचें। रोगी को सलाह दें कि वह अपनी भावनाओं को नियंत्रित करे तथा अधिक काम न करें।

(३) **अनियमित हृदय धड़कन– Irregular Heart Beat or Arrhythemias**

इनका 7 व 6 प्रभावित होता है जो गंदी लाल ऊर्जा से भरा होता है। आंतरिक कारण भावनाएं होती हैं। हृदय का दांया ऊपर का भाग का C' करना चाहिए, क्योंकि वहां गंदी लाल ऊर्जा होती है। 8 भी प्रभावित होता है और उसका T करिए।

(क) GS

(ख) C" <u>6</u>, C' L – यह अति महत्वपूर्ण है।

(ग) C' (7f, हृदय) (हृदय के ऊपरी दांये भाग पर विशेष तौर पर) G ~ V– गंदी लाल ऊर्जा हटाने के लिए।

(घ) C 7b / E हृदय (7b के माध्यम से) GBV

(ङ) C' (7f, हृदय) (विशेष तौर पर हृदय के ऊपरी दांये भाग पर)

(च) E 6 GBV

(छ) C' (6, L)

(ज) C' (8, 8') / E GBV

(ञ) C (1, 4) / E R

(ट) C (11, 10, 9)/ E (कम G) V'

(ठ) उपचार सप्ताह में तीन बार करें।

उचित तौर पर T होने पर एक या दो सप्ताह में काफी सुधार दिखाई देगा। काफी या पूरी तौर पर ठीक होने में २ या ३ महीने के लगातार उपचार की जरूरत पड़ेगी।

रोगी से आशा की जाती है कि वह अपने भावनाओं को नियंत्रित करे। चिन्ताएं और आशंकाओं को कम करना चाहिए। तनावपूर्ण स्थितियों से यथासम्भव बचें।

अनुभवी व कुशल उपचारकों के लिए – C (हृदय) (हृदय के ऊपरी दांये भाग पर विशेष तौर पर) G ~ O, फिर C (हृदय का ऊपरी दांये भाग) B- हृदयगति को सामान्य करने हेतु, फिर E हृदय (7b के माध्यम से) GBV– अनियमित हृदय धड़कन में यह तकनीक अत्यधिक प्रभावी है।

(४) **हृदय पर सूजन या रिह्यूमैटिक हृदय– Inflammation of the Heart or Rheumatic Heart**

उपचार लगभग वही है, जो अनियमित हृदय धड़कन (Cardiac Arrhythmias) (क्रम ३ में वर्णित) का है। शरीर का प्रतिरक्षात्मक तंत्र मजबूत करना चाहिए।

(क), (ख) – जैसा क्रम ३ (क), (ख) में वर्णित

(ग) C' (7f, हृदय) G ~ V

(घ) C 7b / E हृदय (7b के माध्यम से) GBV

(ङ) C' (7f, हृदय)

(च) E 6 GBV

(छ) C' (6, L)

(ज) C' 5 / E GV सावधानी से

(झ) C' (1, 4)/ E W– यदि रोगी को बुखार है तो E 1 न करें।

(ञ) C (S, H)/ E V (स्थिरीकरण न करें)– यह प्रतिरक्षात्मक तंत्र को सुदृढ़ करने के लिए है।

(ट) C (11, 10, 9, 8) / E (कम G) V'

(ठ) जब तक रोगी काफी या पूरी तौर पर ठीक नहीं हो जाता, तब तक सप्ताह में ३ या अधिक बार उपचार करें। कुछ ही उपचारों के बाद काफी सुधार दिखाई देगा।

(५) **बढ़ा हुआ हृदय–दोषपूर्ण वाल्व– Enlarged Heart Defective Valve**

7 और 6 पर गेंद घनी लाल गंदी ऊर्जा रहती है। 6 ज्यादा सक्रिय होता है। L में भी काफी गंदी लाल ऊर्जा होती है। कई केसों में रोगी लम्बे समय तक नाराज

रहता है, जिससे 6 में काफी ज्यादा लाल ऊर्जा भर जाती है। इस गंदी लाल ऊर्जा का एक भाग 7 को जाता है और एक लम्बे समय में लाल ऊर्जा के फैलाने के गुण के कारण, हृदय बढ़ जाता है। इसके उपचार में C' (7f, हृदय, 6, L) करना होता है। प्रभावित चक्रों और भाग स्प्रिंग के तरह हो जाते हैं, अर्थात C तथा E के बाद और ज्यादा गंदी लाल ऊर्जा उछलकर आ जाती है इसलिये अधिक C करना पड़ता है।

(क) GS

(ख) C" <u>6</u>, C' L- यह अति आवश्यक है।

(ग) C' (7f, हृदय)

(घ) C 7b / E हृदय (7b के माध्यम से) GBYV – G सफाई के लिये, B मांसपेशियों के लचीलेपन, Y सशक्त हृदय कोशिकाओं के लिए तथा V शक्ति देने तथा पुनर्निर्माण के लिए।

(ङ) C' (7f, हृदय)

(च) E 6f GBV

(छ) C' (6, L)

(ज) C' (1, 4) / E R

(झ) C (11, 10, 9, 8) / E (कम G) V

(ञ) उपचार सप्ताह में तीन बार करें।

यदि उपचार ठीक हुआ, तो रोगी को कुछ ही उपचार बाद ठीक अच्छा मालूम होगा, किन्तु उपचार को कई महीनों तक चलाना पड़ेगा। यदि रोग का कारण भावनात्मक है, तो रोगी को चाहिए कि अपनी पीड़ित भावनाओं को निकाल दे और क्षमा कर दे। इससे ठीक होने में सहायता मिलेगी।

अनुभवी, कुशल उपचारकों के लिए– C (हृदय) G ~ O तथा C 6 की तकनीक – अध्याय ६, क्रम संख्या १० (२६) में वर्णित, अपनायें, जिससे अति शीघ्र 6 का घनापन समाप्त होगा।

(६) **जन्म से हृदय रोग– Congenital Heart Ailment**

(क) GS

(ख) C 7/ E (हृदय) (7b के माध्यम से) GR – अनुभवी और कुशल उपचारक E GOR करें।

(ग) C' 7f

(घ) C" 6 / E GV

(ङ) C (1, 4)/ E R

(च) C (11, 10, 9, 8)/ E (कम G) V'

(छ) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में कई बार उपचार करें।

(७) धमनियां (रक्त नलिकाओं) की दीवाल मोटी तथा कड़ी हो जाना–
Arteriosclerosis or Atherosclerosis

(क) GS (२) G

(ख) C (समस्त मुख्य चक्र एवम् मुख्य अंग) G

(ग) C (9, 10, 11, bh)/ E GV

(घ) C' (j, 8, 8') – यह महत्वपूर्ण है / E GV

(ङ) C 7/ E हृदय (7b के माध्यम से) GR – अनुभवी कुशल उपचारक E O करें।

(च) C' Lu – (सामने, बगल तथा पीछे से) E Lu (Lub– पिछले फैंफड़ों के माध्यम से) GOR – यह महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि G तथा O फैंफड़ों में गुजरते हुए रक्तधारा में अवशोषित हो जायेंगे, जिससे समस्त शरीर में रक्त की सफाई होगी। इस अवशोषण का नियंत्रण, शरीर स्वयमेव ही कर लेगा। E O के समय अपनी उंगलियों को रोगी के सिर की ओर न इंगित करें।

(छ) C" 6, C' L/ E 6 GBV

अनुभवी व कुशल उपचारक इसके स्थान पर आंतरिक अंगों की सफाई की तकनीक – अध्याय ६ क्रम संख्या १० (२८) में वर्णित अपनायें – इससे 6, L तथा अन्य आंतरिक अंगों की शीघ्र सफाई हो जाएगी।

(ज) C' (1, 2, 4) / E R

(झ) C' (बांहों तथा पैरों पर) GO/ E (a, e, H, h, k, S) R – H व S को प्रेषित की गई प्राण ऊर्जा का स्थिरीकरण न करें।

(ञ) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में दो बार इलाज करें।

(८) **स्फीत शिरा– Varicose Veins**

1 पर आंशिक रूप से खोखलापन रहता है। पैर और उसके लघु चक्र काफी गंदे होते हैं। आम तौर पर 6 प्रभावित होता है।

(क) GS (२)

(ख) C (4, 2, 1) / E R

(ग) C (पूरे पैरों पर, विशेष तौर पर h, k, S तथा प्रभावित अंग) G ~ O

(घ) E (h, k, S, प्रभावित अंग) /GV – S को प्रेषित की गई प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) C" 6 / E GBV

(च) C 7 / E 7b GR'

(छ) उपचार को सप्ताह में कई बार करें।

(९) **उच्च रक्तचाप–Hypertension**

3 रक्तचाप नियंत्रित करता है। उसका सामान्य आकार अन्य मुख्य चक्रों से आधा से दो तिहाई तक होता है। इन रोगियों का 3 अधिक सक्रिय होता है। यदि 3 के आकार अन्य चक्रों से १ : १ का होता है, तो मामूली रक्तचाप होता है। यदि यह २ : १ होता है तो उच्च रक्तचाप गम्भीर होता है। यानी यदि 3 का आकार ६ इंच और अन्य चक्रों का आकार ३" हो, तो उच्च रक्तचाप गम्भीर होता है। 3 पर घनापन या खालीपन हो सकता है।

इन रोगियों का 6 अधिक सक्रिय व उस पर अधिक घनापन होता है, जिससे 3 भी अधिक सक्रिय होता है। 6 तथा 3 में गंदी लाल रंग की ऊर्जा भर जाती है। इसके उपचार के लिए पहले C' (6, 3), तब IB से संकुचित करना चाहिए। C' का धीरे–धीरे सामान्यीकरण प्रभाव (6, 3) पर होता है। चक्रों को संकुचित करने से स्थायी परिणाम प्राप्त नहीं होता, क्योंकि थोड़े समय बाद चक्र पुनः अधिक सक्रिय हो जाते हैं।

रीढ़ की हड्डी तथा सिर के क्षेत्र का भी उपचार होना चाहिए, क्योंकि ये गंदी लाल ऊर्जा से भरे होते हैं।

5 का 3 से अति घनिष्ठ संबंध होता है। यदि 5 सक्रिय होता है, तो 3 आंशिक रूप से अधिक सक्रिय हो जायेगा। इसलिये E 5 नहीं करना चाहिए। E' 4 नहीं करना चाहिए क्योंकि यह चक्र 5 तथा 3 से निकटता का सम्बन्ध रखता है।

उच्च रक्तचाप गुर्दों के गलत ढंग से कार्य करने या अन्य बाह्य कारणों से हो सकता है। ज्यादातर केसों में इसका कोई मैडिकल कारण ज्ञात नहीं होता और इस प्रकार का उच्च रक्तचाप आवश्यक (essential) उच्च रक्तचाप कहलाता है। यह नियंत्रित हो सकता है, किन्तु मैडिकल दृष्टि से ठीक नहीं हो सकता। प्राणिक दृष्टि से आवश्यक उच्च रक्तचाप 6 के अधिक सक्रियता के कारण, 3 के अधिक सक्रियता के हो जाने के कारण होता है। दूसरे शब्दों में, यह भावनात्मक कारणों से होता है। बार-बार के उपचार से रक्तचाप सामान्य हो सकता है। इस उपचार में 6 तथा 3 की जाँच सामने तथा अगल–बगल दोनों प्रकार से करनी होती है।

(१) प्रथम विधि

(क) GS (२ या ३)

(ख) C (समस्त सिर का क्षेत्र, विशेषकर पिछले भाग पर एवम् रीढ़ की हड्डी)– यह क्षेत्र भूरे से लाल रंग के होते हैं।

(ग) C" 6, C' 3 – सामने तथा बगल से 6 व 3 की पुनः जांच करें। इनके C' से रक्तचाप धीरे–धीरे सामान्य होगा। यह चरण अति महत्वपूर्ण है।

(घ) E 3 IB द्वारा 3 को संकुचित (inhibit) करें। साथ–साथ इसको अन्य चक्रों से आधे आकार का करने की इच्छा करें तथा इसकी पुनः जांच करे। यदि इसका संकुचन एक दफा सफलतापूर्वक हो जाये, तो रक्तचाप शीघ्रता से कम होगा।

(ङ) E 6 IB द्वारा 6 को संकुचित करें। साथ–साथ इसे अन्य चक्रों के बराबर आकार का करने की इच्छा करें। इसका अति संकुचन न करें, वरना रोगी कमजोरी महसूस करेगा। 6 की पुनः जांच करें।

(च) क्रम (ग), (घ) व (ङ) को एक या दो घंटे बाद पुनः करें, क्योंकि 6 व 3 के पुनः सक्रियता की संभावना रहती है।

(छ) C 7 / E 7b GV- साथ ही 7 को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें। इससे रक्तचाप सामान्य होगा और रोगी को आंतरिक शांति मिलेगी।

(ज) C' (सिर का क्षेत्र)

(झ) यह सुनिश्चित करने के लिए कि मस्तिष्क के क्षेत्र में रक्त की नलियां लचीली व मजबूत रहें, C (11, 10, 9, bh) / जरा सा E GBV– G सफाई के लिए, B लचीलेपन और V शक्ति प्रदान करने के लिए– सिर का ज्यादा E न करें। सिर के क्षेत्र की पुनः जांच करें तथा C' (सिर का क्षेत्र)

(ञ) C' (j, 8, 8') – यह महत्वपूर्ण है / E (कम G) V

(ट) 1 आंशिक रूप से प्रभावित होता है, इसलिए C' 1/ E W

(ठ) सप्ताह में कई बार उपचार करें, यदि आवश्यक हो। रोगी को मैडिकल चिकित्सक से सलाह लेने के लिए कहें, ताकि यह तय हो सके कि क्या ध्यान (Meditation) को कम या बन्द किया जा सकता है।

(२) द्वितीय विधि– उच्च रक्तचाप को तुरन्त कम करने के लिए

(क) C (6, 3, 1) GV/ E B (चक्र का संकुचन हेतु)

(ख) ईश्वर से प्रार्थना करें कि आपका उच्च रक्तचाप कम हो जाए।

(३) तृतीय विधि

(क) C (7, थायमस ग्रंथि) G/ E 7 (7b के माध्यम से) G

(ख) C bh

(ग) E (7 तथा थायमस ग्रंथि– bh के माध्यम से) V, तथा 7 को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें।

(घ) उक्त प्रक्रियाओं से धीरे–धीरे 6 तथा 3 सामान्य हो जाते हैं।

(ङ) तुरन्त प्रभाव के लिये C (6, 3) / E B (संकुचन हेतु)

(३) चतुर्थ विधि– उच्च रक्तचाप को कम करने के लिए

C 3 – B (ठंडा करने, सकून पहुंचाने का व 3 का संकुचन हेतु)

इस विधि का प्रभाव अस्थायी होता है।

(१०) निम्न रक्तचाप– Hypotension

(क) जांच करें, विशेष तौर पर (3, 1, 6, 9) पर

(ख) GS (२) (रीढ़ की हड्डी पर विशेष तौर पर)

(ग) C 3 / E R – साथ ही अन्य चक्रों के तुलना में इसका आकार को आधे से दो–तिहाई तक बड़ा करने की इच्छा करें। कई उपचार के बाद R के स्थान पर IR को 3 पर इस्तेमाल किया जा सकता है। IB से उसे थोड़ा सा ही स्थायीकरण करें। स्थायीकरण आवश्यक है क्योंकि लाल प्राण रिस जायेगा ओर 3 पुनः छोटा हो जायेगा। स्थायीकरण के लिए IB की मात्रा बहुत थोड़ी ही होनी चाहिए, अन्यथा अधिक नीले प्राण से 3 का संकुचन हो जायेगा।

(घ) C 1 / E W

(ङ) C (6, 8, 9, bh) / E GV

(च) उपचार को सप्ताह में कई बार करिये।

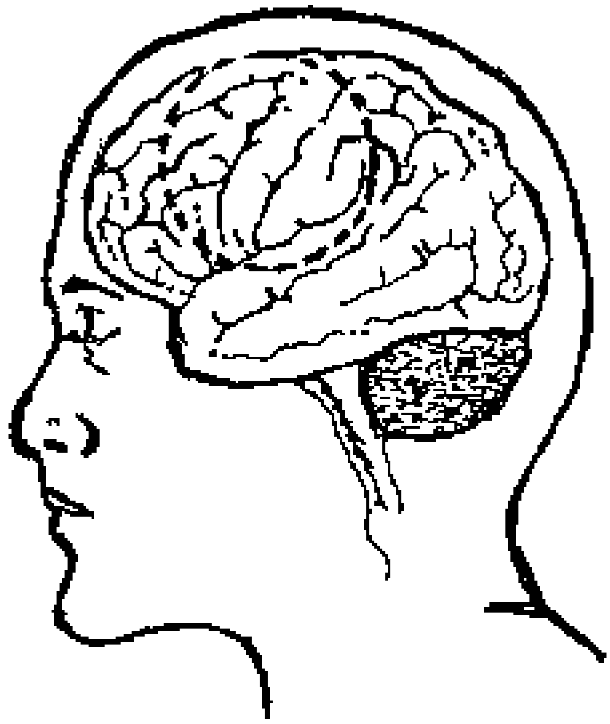

चित्र ५.०६– मस्तिष्क का मध्य क्षेत्र
MIDDLE REGION OF THE BRAIN

(११) स्ट्रोक– Stroke

स्ट्रोक मस्तिष्क में रक्त नलियों के समय के साथ तंग होते–होते, उसके व्यबाधित हो जाने के कारण अथवा तत्न रक्त चाप के फलस्वरूप मस्तिष्क में उनके फट जाने (cerebral hemorrhage) के कारण होता है।

मस्तिष्क की रक्त नलिकाओं के तंग होते रहने के केस में 11, 10, 9, bh, j, 8, 6, L और 1 प्रभावित होते हैं। (bh, j, 8) का C' किया जाता है, क्योंकि मस्तिष्क की रक्त नलियों को यह प्रभावित करते हैं। 6 के गलत ढंग के कार्य करने के कारण 8, j, bh भी गलत तौर पर चलते हैं। दूसरे शब्दों में, नकारात्मक भावनाएं मस्तिष्क की रक्तनलियों पर विपरीत प्रभाव डालती हैं।

C' (AP, समस्त मस्तिष्क विशेष तौर पर उसका मध्य का भाग जहां मोटर एरिया होता है और आम तौर पर प्रभावित हो जाता है) (देखिए चित्र ५.०६) महत्वपूर्ण है। AP पर घनापन हो जाता है और जांच द्वारा ढूंढ लिया जाता है। कुछ केसों में C' (AP, समस्त सिर का क्षेत्र) तथा T (bh, j, 8) द्वारा ही सुधार दिखाई देने लगता है।

(क) मस्तिष्क की रक्त नलियों की रुकावट (Blocking of Cerebral Blood Vessel) के कारण होने वाले स्ट्रोक का निम्नवत उपचार है :–

(क) रोगी की जांच करें, विशेष तौर पर 11, 10, 9, bh, j, 8, 8', L और 1 को। उपचार के दौरान पुनः जांचें।

(ख) GS (२ या ३)

(ग) C' (AP, समस्त सिर का क्षेत्र) G ~ V, पुनः जांचे। C अच्छी प्रकार होनी चाहिए। G का घोलनात्मक प्रभाव होता है।

(घ) C' (11, 10, 9, bh) / E GV, पुनः जांचे। फिर पुनः C' करें –यह महत्त्वपूर्ण है।

(ङ) C (समस्त गर्दन का क्षेत्र), C (j, 8, 8') / E G V- यह चरण काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि j मस्तिष्क और सिर को जाने वाली बाएं एवं दांयी रक्तनलियों को प्रभावित करता है। j की स्वस्थता 8, 8' की हालत पर निर्भर करती है।

(च) C (रीढ़ की हड्डी) G ~ V – यदि मस्तिष्क का बांया भाग प्रभावित है, तो रीढ़ की हड्डी के दांये भाग पर और यदि मस्तिष्क का दांया भाग प्रभावित है, तो रीढ़ की हड्डी के बांये भाग पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(छ) C Lu/ E Lu (Lub के माध्यम से) GOR – इस प्रक्रिया से रक्त नलियों पर सफाई व चौड़ा करने का प्रभाव पड़ता है। यह महत्वपूर्ण है। E O के समय अपनी उंगलियों को रोगी के सिर से दूर इंगित करना चाहिए।

(ज) C 7/ E हृदय (7b के माध्यम से) GV

(झ) C'' 6, C' L/ E 6 GBO – 6 की सफाई बहुत महत्वपूर्ण है।

(ञ) C (1, 4) / E R – यह शरीर की शक्ति बढ़ाने के लिए है।

(ट) C 2/ E R – इससे पैरों को शक्ति मिलने में सहायता मिलेगी।

(ठ) यदि पैर प्रभावित है, तो C (समस्त प्रभावित पैर, h, k, S) G ~ O/ E (h, k, S) GR' – S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ड) यदि बाँह प्रभावित है, तो C (समस्त प्रभावित बाँह, a, e, H) G ~ O/ E (a, e, H) R' – H में प्रेषित प्राण शक्ति का स्थायीकरण न करें। यह प्रक्रिया शक्ति पहुंचाने तथा रक्त का परिभ्रमण सुधारने के लिए है।

(ढ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें। रोगी को शारीरिक उपचार (Physical Therapy) भी करने के लिए कहें। प्रतिफल भिन्न होते हैं – कुछ की हालत अतिशीघ्र सुधर जाती है, कुछ की धीरे-धीरे सुधरती है।

उक्त (घ) से (ञ) तक की प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रकार का स्ट्रोक होने से रोका जा सकता है।

(ख) उच्च रक्तचाप के कारण होने वाला मस्तिष्क की रक्त नली फट जाने (Cerebral Hemorrhage) के कारण होने वाला स्ट्रोक का उपचार निम्नवत है:–

(क) जांच करें। उपचार के दौरान पुनः जांच करें।

(ख) GS (२ या ३)

(ग) यदि रक्तचाप अभी भी स्थिर नहीं हुआ है, तो C' (3, 6) / E 3 IB द्वारा 3 का संकुचन द्वारा करें तथा साथ-साथ उसके चक्रों के औसत आकार के लगभग आधा आकार हो जाने की इच्छा शक्ति करें।

(घ) C' (AP तथा समस्त सिर का क्षेत्र) G ~ V, पुनः जांच करें। यदि शरीर का दांया भाग प्रभावित है तो मस्तिष्क के बांये भाग का उपचार करिये और यदि शरीर का बांया भाग प्रभावित है तो मस्तिष्क के दांये भाग का उपचार करिये। हरे प्राण का घोलनात्मक प्रभाव होता है।

(ङ) C' (11, 10, 9, bh) / E GV, पुनः जांच करे, फिर C'

(च) C (समस्त गर्दन का क्षेत्र, j, 8, 8') / E GV

(छ), (ज) – उक्त (क) के (च), (छ) के अनुसार

(झ) C 7 / E हृदय (7b के माध्यम से) GR

(ञ) C" 6, C' L / E 6 GBO – 6 की सफाई बहुत महत्वपूर्ण है।

(ट) C (1, 4) / E R - यह शरीर की शक्ति बढ़ाने के लिए है। किन्तु, यदि रक्तचाप स्थिर नहीं हुआ है, तो E न करें।

(ठ) C 2 / E R- इससे पैरों को ताकत मिलेगी।

(ड), (ढ) – उक्त (क) के (ठ), (ड) के अनुसार

(ण) उपचार सप्ताह में तीन बार करें। रोगी को शारीरिक उपचार (Physical Therapy) भी करने के लिए कहें। कुछ रोगियों के साथ परिणाम ड्रामा की तरह होते हैं। परिणाम रोगी की हालत तथा उसकी ग्रहणशीलता तथा उपचारक की कुशलता पर निर्भर करती है।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–श्वसन तंत्र के रोग–Respiratory Ailments

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.२५३
२.	दीर्घकालीन सायनूसायटिस– Chronic Sinusitis	५.२५३
३.	दीर्घकालीन कफ– Chronic Cough	५.२५४
४.	श्वास नली में सूजन, इन्फ्लूएन्जा (एक प्रकार का संक्रामक ज्वर) और निमोनिया– Bronchitis, Influenza and Pneumonia	५.२५५
५.	क्षय रोग– Tuberculosis	५.२५६
६.	अस्थमा– Asthma	५.२५६
७.	शरीर ऊतक में असाधारण वायु या गैस का दबाव– Emphysema	५.२५७

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–श्वसन तंत्र के रोग–Respiratory Ailments

संदर्भ :

भाग २, अध्याय ११ तथा भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (८)

(१) सामान्य– **General**

यह तंत्र 9, 8, 7b तथा 6 द्वारा नियंत्रित तथा ऊर्जित होता है। 9 नाक, 8 तथा 8' वायु नली (Trachea), 7b ब्रौंकियल ट्यूबों (Bronchial Tubes) तथा Lu, और 6 डायफ्राम (जिसके द्वारा Lu का हलन–चलन होता है) को नियंत्रित व ऊर्जित करते हैं। भावनात्मक समस्याओं या तनाव द्वारा 6 पर घनापन छा जाता है, जिससे डायफ्राम पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे सांस लेने में कठिनाई होती है।

बांये फैंफड़े के दो लघु चक्र पीछे की ओर – एक ऊपर और एक नीचे की ओर होता है। दांये फैंफड़े के तीन लघु चक्र पीछे की ओर – एक ऊपर की ओर, एक मध्य में और एक नीचे की ओर होता है।

उक्त सभी चक्रों की स्थिति चित्र ४.१३ में दर्शायी गयी है।

(२) दीर्घकालीन सायनूसायटि्स– **Chronic Sinusitis**

तीव्र और दीर्घकालीन सायनूसाइटि्स में आम तौर पर 6 के ऊपर घनापन होता है, उसमें गंदी लाल ऊर्जा भरी होती है तथा यह चक्र अधिक सक्रिय होता है। इस ऊर्जा का एक अंश 9 में जाकर, नाक के सायनसों को संक्रमण और सूजन के प्रति संवेदनशील बना देता है। कई केसों में यह रोग नकारात्मक भावनाओं के कारण होता है।

(क) GS (२)

(ख) C" 6, C' L (L भी गंदा होता है) / E 6 GBV– यह चरण काफी महत्वपूर्ण है। एक दफा यदि 6 सामान्य हो जाता है, तो धीरे–धीरे यह रोग चला जाता है।

(ग) C 7 / E 7b GV– इस चक्र को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें– यह रोगी की आन्तरिक शांति के लिए एवम् उसके द्वारा निम्न भावनाओं को नियंत्रित करने के लिए है।

(घ) C' (9, माथा, गालों पर) ~ E 9 GBV / C' – इस पूरे चरण को तब तक करते रहें, जब तक रोगी को काफी आराम नहीं मिल जाता।

(ङ) C (1, 4) / E W- यह प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करने एवम् शरीर को शक्ति पहुंचाने के लिए है।

(च) सप्ताह में दो या तीन बार करें।

(छ) यदि उपचारक ठीक से हो जाता है, तो रोगी तुरन्त ठीक हो जाता है। आम तौर पर दीर्घकालीन सायनूसाइटिस कई बार के प्राणिक उपचार से ठीक हो जाता है।

(3) दीर्घकालीन कफ– Chronic Cough

6, 8, 8' भूरे रंग से रंग के होते हैं। 1 आंशिक रूप से खोखला (depleted) होता है।

(क) GS (२)
(ख) C" 6, C' L / E 6 GBV
(ग) C 7 / E 7b GV
(घ) C' (8, 8', j) / E GBV
(ङ) C 9 / E GBV

(च) Lu कुछ अंश तक साधारणतया प्रभावित होता है, इसलिए C' (Lu, 7b)/ E Lu (Lub के माध्यम से) GO – जब E O कर रहे हों, तो आपकी उंगलियों रोगी के सिर की तरफ इंगित नहीं होनी चाहिए।

(छ) C (1, 4) / E (W या R) – यह प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करने तथा शरीर को शक्ति पहुंचाने के लिए है।

(ज) आवश्यक्तानुसार उपचार दोहरायें।

(४) **श्वास नली में सूजन, इन्फ़्लूएन्ज़ा (एक प्रकार का संक्रामक ज्वर)***
Bronchitis, Influenza and Pneumonia

(क) GS (२)

(ख) C" 6, C' L – 6 का C करना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे बुखार कम होने में सहायता मिलेगी / E 6 GB (यदि समुचित C 6 नहीं किया, तो बुखार बढ़ जाएगा)

(ग) रोगग्रस्त ऊर्जा को शीघ्र निकालने हेतु E 6f O – यह क्रिया मात्र अनुभवी और कुशल प्राणशक्ति उपचारक ही करें।

(घ) C 7/ E 7b GV

(ङ) C' (Lu, 7b) / E Lu (Lub के माध्यम से) GOV – E O के समय अपनी उंगलियां रोगी के सिर की ओर इंगित न करें।

(च) C (9, 8, 8') / E GBV

(छ) C 5/ E W – सावधानी से

(ज) C (4, 1) / E 4 W

(झ) C (बाहों तथा पैरों पर तथा a, e, H, h, k, S) / E (a, e, H, k, S) V – प्राण ऊर्जा को हड्डियों के अन्दर जाते हुए दृश्यीकृत करें। यह शरीर की प्रतिरक्षात्मक तंत्र को सुदृढ़ करने हेतु है। इस चरण को दिन में एक बार से अधिक न करें, अन्यथा विपरीत प्रक्रिया हो सकती है। H और S में प्रेषित की गयी प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ञ) (क) से (छ) में वर्णित प्रक्रिया आवश्यक्तानुसार दिन में कई बार दोहरायें।

(ट) निमोनिया गम्भीर बीमारी है, अतएव रोगी को इसके अतिरिक्त मैडीकल उपचार भी करना चाहिए।

***नोट–** इन्फ़्लूएन्ज़ा निस्पंदी वायरस द्वारा संक्रामक महामारी को कहते हैं।

(५) क्षय रोग— **Tuberculosis**

(क) GS (२)

(ख) C 7/ E 7b GV

(ग) C' Lu G~O/ C 7b

(घ) E Lu (Lub के माध्यम से) GOV – E O के समय आपकी उंगलियां रोगी के सिर की तरफ इंगित नहीं होनी चाहिए।

(ङ) C" 6 / E GV

(च) मास्टर उपचार तकनीक जो अध्याय ६ के क्रम संख्या १० (३२) में वर्णित है कीजिए– उपचार की गति को शीघ्र करने के लिए

अथवा

C (1, 4) / ER एवम् C 5/ E W

(छ) C (8, 9)/ E GV

(ज) सप्ताह में तीन बार उपचार कीजिए

(६) **अस्थमा— Asthama (दमा)**

8, 8', 7b और 1 प्रभावित होते हैं। वायु नलियां सुकुड़ जाती हैं। कभी–कभी अस्थमा भावनात्मक कारणों से होता है। 6 पर घनापन होता है। यदि रोगी रिश्ते की समस्याओं के कारण खुलकर अपने को नहीं बोल पाता है, तो सम्भावना है कि ट्रैचिया (Trachea) या वायुनली तंग होगी। यदि भावनात्मक कारणों से रोग है, तो घने 6 की सफाई अच्छे प्रकार से होनी चाहिए। यदि भौतिक कारणों से अस्थमा हुआ है, तब उपचार की गति आम तौर पर तीव्र होगी। यदि भावनात्मक कारणों से है, तब उपचार में आम तौर पर ज्यादा समय लगेगा। अपनी दबी हुई भावनाओं को बाहर निकालने की आवश्यक्ता है।

(क) GS (२)

(ख) C' (8, 8') / E GR – R का वायु नली को चौड़ा करने का प्रभाव पड़ता है।

(ग) C' Lu GO/ E Lu (Lub के माध्यम से) GOR – O का निष्कासन का प्रभाव होता है, जिससे R के चौड़ा करने एवम शक्ति प्रदान करने को और

अधिक गति मिलती है। E O करते समय आपकी उंगलियों रोगी के सिर की ओर इंगित नहीं होनी चाहिए। यदि (ख) व यह प्रक्रिया सही हो जाये, तो रोगी को शीघ्र राहत मिलती है।

(घ) C" 6, C' L / E (6, L) GV – 6 की अच्छी तरह सफाई जरूरी है, यदि अस्थमा भावनात्मक कारणों से है तो।,

(ङ) यदि अस्थमा भावनात्मक कारणों से है तो C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) GV – इससे रोगी को आन्तरिक शान्ति मिलती है तथा निम्न भावनाओं को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

(च) धीरे–धीरे और स्थायी तौर पर रोगी को ठीक करने के लिये,

C 1 / E R तथा C 9 / E GV करें।

(छ) रक्त की गुणवत्ता और अधिक सुधारने हेतु,

C (पूरे बांहों तथा पूरे पैरों पर, a, e, H, h, k, S) / E (a, e, H, h, k, S) R – प्राण ऊर्जा को हड्डियों में जाते हुए दृश्यीकृत करें। H तथा S में प्रेषित की गयी प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ज) एक या दो माह तक, सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(झ) यदि उपचार ठीक किया गया, तो रोगी तेजी से ठीक हो जायेगा। प्राणिक उपचार अस्थमा में बहुत प्रभावकारी होता है।

(७) शरीर ऊतक में असाधारण वायु या गैस का दबाव– Emphysema

(क) GS (२)

(ख) C 7/ E हृदय (7b के माध्यम से) GR – यह हृदय को शक्ति पहुंचाने के उद्देश्य से है।

(ग) C' Lu GO (फैंफड़ों के बगल तथा निचले भागों पर विशेष तौर पर)

(घ) E Lu (Lub के माध्यम से) GOR – G तथा O प्राण का सफाई का प्रभाव होता है। O फैंफड़ों से पुरानी वायु का निष्कासन करती है। R तथा O प्राणों की आपस की प्रतिक्रिया (interaction) से पुनर्निर्माण का प्रभाव होता है।

E O करते समय आपकी उंगलियां रोगी के सिर की ओर इंगित नहीं होनी चाहिए।

(ङ) C" 6 / E 6f W

(च) C (1, 4) / E R– यह शरीर को शक्ति प्रदान करने एवम् उपचार प्रक्रिया को सुलभ करने हेतु है।

अथवा

उपचार की गति को अति शीघ्र करने हेतु, ये श्रेयस्कर होगा कि मास्टर उपचार तकनीक जो अध्याय ६ के क्रम संख्या १० (३२) में वर्णित है कीजिए। चूंकि रोगी आमतौर पर ज्यादा उम्र के होते है, इसलिये 1 तथा 3 पर केवल W का प्रयोग करें।

(छ) उपचार प्रथम कुछ दिनों तक कई बार कीजिए, तत्पश्चात् लगभग पांच माह अथवा जब तक जरूरी हो तब तक सप्ताह में कम से कम तीन बार कीजिए।

(ज) यदि उपचार ठीक प्रकार हो जाए, तो रोगी को कुछ ही उपचार बाद आंशिक रूप से राहत मिलती है। सामान्य तौर पर, यह रोग लम्बे प्राण -- उपचार द्वारा ठीक किया जा सकता है।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–गैस्ट्रो–आंत्रिक रोग (पाचन तंत्र से संबंधित)

Gastro –Intestinal Ailments (related with Digestive System)

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.२६०
२.	निगलने में कठिनाई– Difficulty in Swallowing	५.२६१
३.	उल्टी तथा पतले दस्त होना– Vomitting and Diarrhoea	५.२६१
४.	कब्ज – Constipation	५.२६१
५.	पेट का दर्द– Abdominal Pain	५.२६१
६.	बदहजमी– Indigestion	५.२६२
७.	गैस्ट्रो – आंत्रिक फोड़ा– Gastro-intestinal Ulcer	५.२६२
८.	बवासीर – Haemorrhoids (Piles)	५.२६३
९.	किसी अंग का बाहर निकलना– Hernia	५.२६३
१०.	उच्च कोलेस्ट्रोल– High Chloresterol	५.२६४
११.	गैस्ट्रो– आंत्रिक संक्रमण– Gastro-intestinal Infection	५.२६४
१२.	तीव्र एपैन्डिसाइटिस – Acute Appendicitis	५.२६५
१३.	तीव्र पैन्क्रियाटाइटिस– Acute Pancreatitis	५.२६६
१४.	गॉल ब्लैडर के पत्थर– Gall Stones	५.२६७
१५.	यकृत शोथ– Hepatitis	५.२६७
१६.	हाजमे की समस्यायें– Assimilation Problems	५.२६८

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– गैस्ट्रो–आंत्रिक रोग (पाचन तंत्र से संबंधित)

Gastro –Intestinal Ailments (related with Digestive System)

संदर्भ :

भाग २, अध्याय १२ तथा भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (६)

(१) सामान्य– **General**

यह व्यवस्था 8, 6 और 4 द्वारा ऊर्जित एवम् नियंत्रित होती है। 8, 8' और j मुंह, लार ग्रंथियों और ग्रसिका नली को ऊर्जित एवम् नियंत्रित करते हैं। 6 तथा 4 गैस्ट्रो–आंत्रिक तंत्र को नियंत्रित और ऊर्जित करते हैं। 6 यकृत, अग्न्याशय और उदर को तथा 4 छोटी और बड़ी आंतों को नियंत्रित और ऊर्जित करते हैं। गैस्ट्रो–आंत्रिक रोग मात्र T (6, 4) द्वारा ठीक किये जा सकते हैं। E में W या रंगीन प्राण का उपयोग किया जा सकता है।

L के तीन लघु चक्र होते हैं– ऊपरी दांया, ऊपरी बांया तथा निचला दांया लघु चक्र। निचला दांया लघु चक्र गॉल ब्लैडर को भी नियंत्रित और ऊर्जित करता है, जिसके एक सम्बन्धित गॉल ब्लैडर का अति लघु चक्र होता है। उदर (आमाशय, पेट) का तथा अग्न्याशय का अग्न्याशय का एक–एक लघु चक्र होता है। छोटी आंतों का एक लघु चक्र होता है तथा उसके प्रति तीन फीट पर एक–एक अति लघु चक्र होता है। बड़ी आंतों की भी यही व्यवस्था है। एपैण्डिक्स का एक अति लघु चक्र होता है। गुदा (anus) का भी एक गुदा लघु चक्र होता है। उक्त सभी चक्रों की स्थिति चित्र ४.१४ में दर्शाये गये हैं।

(२) **निगलने में कठिनाई— Difficulty in Swallowing**

(क) C' (समस्त गर्दन, 8, 8') / F (8, 8') GV

(ख) C" 6 / E GBV

(ग) आवश्यक्तानुसार उपचार दोहरायें।

(३) **उल्टी तथा पतले दस्त होना— Vomitting and Diarrhoea**

यह गैस्ट्रो–आंत्रिक तंत्र के संक्रमण या सूजन से हो सकते हैं। तनाव या भय के द्वारा पतले दस्त हो सकते हैं।

(क) C" 6, C' (4 तथा पेट के ऊपर के व निचले भाग पर)– कई केसों में रोगी को C' से राहत मिल जायेगी।

(ख) E (6, 4) GBV / C'

(ग) दिन में ३ या ४ बार उपचार करें, यदि आवश्यक्ता हो। साधारणतया एक या दो उपचार काफी होता है।

शिशुओं और छोटे बच्चों में कभी गले के खराबी (irritation) द्वारा उल्टी हो जाती है, इसलिए उनका T (8, 8') करना चाहिए।

(४) **कब्ज— Constipation**

(क) C" 6, C' (4 तथा पेट के क्षेत्र पर)

(ख) E 6 GR / C'

(ग) E 4 GOR / C' — G का सफाई, O का निष्कासन तथा R का शक्ति पहुंचाने का प्रभाव पड़ता है।

(घ) C 1 / E R

(५) **पेट का दर्द— Abdominal Pain**

(क), (ख)— उपरोक्त क्रम (३) (क) व (ख) प्रक्रियाओं के अनुसार

(ख) एक या दो प्राण–उपचार ही काफी होंगे। यदि फिर भी रोग ठीक नहीं होता, तो रोगी को मैडिकल डॉक्टर और उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

(६) बदहज्मी-- Indigestion

यह भौतिक या भावनात्मक कारणों से हो सकती है। तनाव, शोक या जीवन के तनावों को न सह पाने के कारण के द्वारा बदहज्मी हो सकती है।

(क) C" 6, C' 4

(ख) E (6, 4) GV/ C'

(ग) C 7/ E 7 (7b के माध्यम से) GV

(७) गैस्ट्रो–आंत्रिक फोड़ा-- Gastro- intestinal Ulcer

6 में रोगग्रस्त लाल ऊर्जा भर जाती है। 4 भी आंशिक रूप से प्रभावित होता है। कई केस में इसका कारण भावनात्मक होता है।

आमाशय (Stomach) या पक्वाशय (Duodenum) की लाइनिंग (lining) का फोड़ा पैप्टिक फोड़ा (Peptic Ulcrer), आमाशय की लाइनिंग का फोड़ा गैस्ट्रिक फोड़ा (Gastric Ulcer) और पक्वाशय का फोड़ा (Duodenal Ulcer) कहलाता है।

(क) GS

(ख) C" 6, C' (पेट, छोटी आंत, 4)

(ग) E (6, 4) BV

(घ) C (AP) ~ E – जब तक रोगी को राहत न मिले।

(ङ) C 7/ E 7 (7b के माध्यम से) GV -- यह 7 की सक्रियता के द्वारा आंतरिक शांति के लिए है।

(च) C 1/ E R-- यह उपचार की गति को बढ़ाने के लिए है।

(छ) सप्ताह में दो या तीन बार उपचार करें।
ज्यादा गम्भीर केसों में, यदि दर्द काफी तीव्र है तो निम्न प्रक्रिया करें।

(ज) E (6, पेट) B/ C (अनेक बार) GO / C' W – इससे रोगग्रस्त लाल ऊर्जा के निष्कासन द्वारा, जल्दी राहत मिलेगी। यह प्रक्रिया केवल अनुभवी और कुशल उपचारक ही करें और वह भी, जब वास्तव में आवश्यक है। (नोट– रोगग्रस्त लाल ऊर्जा के निष्कासन के लिए साधारण स्थानीय सफाई लम्बा समय लेती है।)

(८) बवासीर– Haemorrhoids (Piles)

6 तथा 4 आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं, उनमें गंदे तथा काफी अधिक लाल ऊर्जा भर जाती है। गुदा लघु चक्र में आमतौर पर भूरी सी लाल ऊर्जा का घनापन हो जाता है। कई केसों में यह तनाव से संबंधित होता है।

(क) GS
(ख) C (6, 4, पेट के क्षेत्र पर – विशेष तौर पर बड़ी आंतों पर)
(ग) E (6, 4) GBV / C'
(घ) यदि गुदा प्रभावित है तो C' (गुदा) / E GB
(ङ) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) (कम G) V – यह 7 को सक्रिय करके आंतरिक शांति पहुंचाने के उद्देश्य से है।
(च) उपचार को सप्ताह में दो या तीन बार करें।
(छ) रोगी को सलाह दें कि वह दस्त के बाद गुदा की सफाई द्वारा, सफाई का पूरा ध्यान (proper hygiene) रखे तथा मसालेदार भोजन से परहेज करे। उपचार के बाद भी गुदा की सफाई का ध्यान रखे।

(९) किसी अंग का बाहर निकलना– Hernia

पेट के कमजोर हुई या फटी हुई दीवाल के कारण इस रोग में निचले पेट में उभार (bulge or protusion) हो जाता है। यह कई प्रकार के होते हैं। अम्बीलीकल हर्निया (umbilical hernia) जो बच्चों में बहुत होता है, उसमें नाभि के क्षेत्र में उभार हो जाता है। Incisional (इनसीज़नल) हर्निया में पेट के घाव के निशान के क्षेत्र में उभार होता है। Inguinal (इनजुइनल) हर्निया में जांघ के पेट से जोड़ में होता है और इसकी अण्डकोष की थैली (Scortum) में जाने की प्रवृत्ति होती है।

4, 2 आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं। AP गंदा लाल होता है।

(क) C' (4, 2, 1) / E W
(ख) C' (AP)/ GBYV – G सफाई करने के लिये, B संकुचित करने तथा लचीलेपन के लिये, Y शक्तिशाली कोशिकाओं के लिए तथा V में सभी रंगीन प्राणों के गुण होने के कारण उपयोग की जाती है।
(ग) उपचार को सप्ताह में दो या तीन बार करें।

(१०) उच्च कोलेस्ट्रोल— **High Cholesterol**

6 पर घनापन होता है तथा L भूरा सा लाल होता है। L शरीर के कोलेस्ट्रॉल स्तर को नियंत्रित करता है। आम तौर पर 4 प्रभावित हो जाता है। कई केसों में यह तनाव से भी संबंधित होता है।

(क) G S

(ख) C" 6, C' L / E 6 GBV– इस चरण की प्रक्रियाओं पर विशेष ध्यान दें।

(ग) C (1, 4) / E R

(घ) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) (कम G) V' – यह 7 को सक्रिय करके रोगी को आंतरिक शांति पहुंचाने के उद्देश्य से है।

(ङ) C (11, 10, 9, bh, 8) / E GV'

(च) आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(११) गैस्ट्रो— आंत्रिक संक्रमण— **Gastro – intestinal Infections**

(क) G S (२ या अधिक बार)

(ख) C" 6, C' (L, 4 पेट के क्षेत्र पर)— यह चरण अति महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यह यदि ठीक प्रकार नहीं हुआ, तो विपरीत प्रक्रिया होगी। बुखार बढ़ सकता है अथवा दर्द और पतले दस्तों से हालत ज्यादा खराब हो सकती है।

(ग) E (6, 4) GBV / C' – आंत्रिक रक्तस्राव होने की दशा में E G न करें, क्योंकि यदि E G ठीक प्रकार नहीं हुआ तो और अधिक रक्तस्राव हो सकता ह। E को धीरे से करें। यदि E अधिक इच्छा शक्ति से किया गया, तो भी रक्तस्राव हो सकता है। चरण (क), (ख) तथा इस चरण पर विशेष ध्यान दें।

(घ) C 7 / E थायमस (7b के माध्यम से) GV'

(ङ) C' Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GO – इससे उपचार को गति मिलेगी क्योंकि इसका रक्त व समग्र शरीर पर सफाई का प्रभाव पड़ता है। E O के समय अपनी उंगलियां रोगी के सिर की ओर इंगित न करें।

(च) C' 5/ E W – प्लीहा संक्रमण से लड़ता है। शिशुओं, बच्चों और उच्च रक्तचाप के रोगियों के केस में या तो E बहुत थोड़ा सा करें या बिल्कुल ही न करें।

(छ) C (11, 10, 9 , bh, 8) / E GV'

(ज) C' 1

(झ) C (बाहों, पैरों, a, e, H, h, k, S)/ E (a, e, H, h, k, S) V– यह प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करने के लिए है। इस क्रिया को विपरीत प्रक्रिया हो जाने की सम्भावना के कारण, दिन में एक बार से अधिक न करें। H तथा S में प्रेषित की गयी प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(१२) तीव्र एपैन्डिसाइट्सि– Acute Appendicitis

6 तथा 4 दोनों प्रभावित होते हैं। 4 बड़ी आंत को (मय एपैन्डिक्स) के नियंत्रित तथा ऊर्जित करता है। एपैन्डिक्स गंदी लाल और गंदी हरी होती है। 6 भी बड़ी आंत (मय एपैन्डिक्स) को प्रभावित और ऊर्जित करता है। इसीलिये शुरू में दर्द एपैन्डिक्स में जाने से पहले सौर जालिका के क्षेत्र पर महसूस होता है। 5 भूरा सा होता है, 1 पर खालीपन (depleted) होता है। पूरा शरीर प्रभावित तथा भूरा सा होता है।

(क) G S (कई बार)

(ख) C'' <u>6,</u> G, C' (L, 4 पेट के क्षेत्र पर और आंत्रपुच्छ पर) G – आंत्रपुच्छ के C पर विशेष ध्यान दें।

(ग) E (6, 4) G B V / C' – C' 6 भली प्रकार करें, अन्यथा बुखार बढ़ सकता है।

(घ) C' आंत्रपुच्छ (G ~ V) / E GBV– जब तक कि रोगी को काफी राहत न मिल जाये। O के उपयोग से एपैन्डिक्स फट सकता है।

(ङ) उक्त क्रम (११) (ङ) के अनुसार करें।

(च) C' 5 / E GV – प्लीहा संक्रमण से लड़ता है। शिशुओं, बच्चों और उच्च रक्तचाप के रोगियों के केस में या तो E बहुत थोड़ा सा करें या बिल्कुल ही न करें।

(छ) C 1 (E न करें, क्योंकि इससे बुखार बढ़ सकता है)

(ज) C (बाहों तथा पैरों पर a, e, H, h, k, S) / E (a, e, H, h, k, S) V– प्राण ऊर्जा को हड्डियों में जाते हुए दृश्यीकृत करें– यह प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करने के लिए है। इस प्रक्रिया को दिन में एक बार से अधिक न करें; वरना प्रतिकूल प्रक्रिया हो सकती है। H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें

(झ) C (11, 10, 9, bh, 8) / E GV

(ट) उक्त चरण (ख), (ग) तथा (घ) पर विशेष ध्यान दें। उपचार को दो–तीन घंटे बाद दोहरायें क्योंकि प्राण ऊर्जा की खपत बहुत तेजी से होती है। पहले कुछ दिनों तक दिन में तीन–चार दफा उपचार करें। हालत सुधर जाने तथा स्थिरीकरण होने पर उपचार की संख्या कम की जा सकती है। यदि सर्जीकल ऑपरेशन की जरूरत हो, तो रोगी को अस्पताल में भरती होना चाहिए। सभी तीव्र प्रकार के एपैंडिसाइटिस प्राण–शक्ति उपचार से ठीक नहीं किये जा सकते, विशेष तौर पर कई दिन पुराना एपैन्डिसाइटिस हो तो।

जो रोगी हाल में ही ठीक हुए हों, उनको अगले कुछ महीनों तक भारी और तनावपूर्ण व्यायाम नहीं करना चाहिए तथा भारी भोजन न करें। उनको प्रतिदिन शौच जाना चाहिए। आंत्रपुच्छ के क्षेत्र में और तनिक सा दर्द होने पर, और ज्यादा उपचार करवाना चाहिए।

दीर्घकालीन एपैन्डिसाइटिस के केस में मात्र C" 6, C (4, आंत्रपुच्छ) एवम्. E (6, 4, आंत्रपुच्छ) GBV ही करें।

(१३) तीव्र पैन्क्रियाटाइटिस– **Acute Pancreatitis**

इस रोग में अग्न्याशय पर तीव्र सूजन होती है। रोगी को सौर जालिका क्षेत्र पर तथा उसके पीछे तीव्र दर्द महसूस होता है। बुखार, ठंडी, ठंडा पसीना, उल्टी और सिर दर्द का अनुभव होता है। रोगी तीव्र झटका (आघात) (Severe shock) की हालत में होता है। यह रोग काफी गम्भीर होता है और रोगी को उचित मैडिकल उपचार मिलना चाहिए।

इस रोग के कारण 6 गम्भीर रूप से गलत ढंग से कार्य करने लगता है एवम् सम्पूर्ण वायवीय शरीर प्रभावित होता है।

(क) G S (कई बार)

(ख) C'' 6 G, C' (अग्न्याशय)/ E 6b BV / C' — B दर्द में सकून देता है और अग्न्याशय द्वारा अधिक पाचक रसों के निकलने का संकुचन करता है। Y का उपयोग न करें, अन्यथा इससे अग्न्याशय अधिक सक्रिय होकर अधिक रस का उत्पादन करने लग जायेंगे जिससे रोगी की हालत और बिगड़ जायेगी।

(ग) C (1, 4) E W – शरीर को मजबूत करने के लिए

(घ) C (11, 10. 9, bh 8)/ E V

(ङ) कुछ दिनों तक प्रतिदिन तीन बार उपचार करें। पहले दिन रोगी को काफी आराम मिल सकता है। ठीक होने की गति आम तौर पर बहुत तेज होती है।

(१४) गॉल ब्लैडर के पत्थर– Gall Stones

(क) C (6, L)/ E 6 GBV

(ख) C' (गॉल ब्लैडर) E ~ O / E lB, lG, lO — हरे और नारंगी प्राण गॉल ब्लैडर के पत्थरों को घोलने के लिए हैं। नीले रंग का प्राण, हरे तथा नारंगी रंग के प्राण को स्थानीयकरण हेतु है। नीले रंग के प्राण की प्रेषित मात्रा हरे व नारंगी रंग के प्राण ऊर्जा की प्रेषित मात्रा के लगभग बराबर होनी चाहिए।

(ग) जब तक जरूरत हो, तब तक सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(१५) यकृत शोथ– Hepatitis

L का सूज जाना या यकृत शोथ वायरस द्वारा अथवा शराब का लम्बे समय तक शराब अधिक मात्रा में पीने के कारण होता है। अधिक समय तक क्रोध का रहना या तनाव 6 तथा L को गलत ढंग से कार्यरत कराते हैं और ये गंदे लाल रंग की ऊर्जा से भर जाते हैं, जिससे यकृत संक्रमण से प्रभावित हो सकते हैं। क्रोध तथा तनाव द्वारा शरीर के ऊर्जा का स्तर कम हो जाता है तथा कुछ चक्र गलत ढंग से काम करने लग जाते हैं, जिससे शरीर का प्रतिरक्षात्मक तंत्र कमजोर हो जाता है।

(क) G S (कई बार)

(ख) C" 6 G

(ग) C' L (सामने, बगल तथा पीछे से) G ~ O – यह L की सफाई तथा सूजन समाप्त करने के लिए है। नारंगी ऊर्जा या तो O हो या सफेद सी बहुत हल्की नारंगी रंग की ऊर्जा हो, अन्यथा इससे पतले दस्त हो सकता है।

(घ) E 6 GBV – प्राण ऊर्जा को L के अन्दर जाते हुए दृश्यीकृत करें।

(ङ) C 7/ E थायमस (7 b के माध्यम से) GV

(च) उक्त वर्णित क्रम संख्या ११ (ङ) में वर्णित क्रिया के अनुसार।

(छ) 5 भूरा सा होता है तथा प्लीहा भी आंशिक रूप से प्रभावित होता है, इसलिए C 5/ E GV — सावधानी से।

(ज) C 4/ E W– यह शरीर का ऊर्जा स्तर और अधिक बढ़ाने के लिए है

(झ) C 1

(ञ) C (बाहों तथा पैरों पर, H, S) / E (H, S) V– इस चरण को उस दिन में न दोहरायें अन्यथा प्रतिकूल प्रक्रिया हो कसती है। H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ट) C' (11, 10, 9, 8, bh)/ E GV'

(ठ) दीर्घकालीन रोग में अगले कुछ दिनों तक उक्त (क), (ख), (ग) तथा (घ) में वर्णित चरण दिन में दो से पांच बार तक करें, जब तक रोगी की हालत सुधर नहीं जाती और स्थिर नहीं हो जाती।

(ड) समस्त उपचार सप्ताह में तीन या अधिक बार करें, जब तक रोगी पूर्ण रूप से ठीक नहीं हो जाता।

(१६) हाजमे की समस्यायें– Assimilation Problems

6 पाचन अंगों को नियंत्रित तथा ऊर्जित करता है। 4 छोटी आंतों को नियंत्रित और ऊर्जित करता है, जहां भोजन के तत्वों को हजम किया जाता है।

(क) C" 6, C' (4 तथा पेट के क्षेत्र पर)

(ख) E (6, 4) (कम G) V'

(ग) C 1 / E R– यह शरीर को शक्ति प्रदान करने के लिए है।

(घ) C (11, 10, 9, bh, 8) / E GV

(ङ) सप्ताह में कई बार यह उपचार करें।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– उत्सर्जन तंत्र (मूत्र सम्बन्धी) रोग

Urinary Ailments

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.२७०
२.	मूत्र नली तथा मूत्राशय की सूजन– Inflammation of the Urinary Tube and Bladder	५.२७०
३.	गुर्दों का संक्रमण और सूजन– Infection and Inflammation of the Kidneys	५.२७१
४.	गुर्दों के पत्थर– Kidney Stones	५.२७२
५.	मूत्र त्याग को उत्तेजित करना– Stimulating Urination	५.२७३
६.	गुर्दों का पुनर्निर्माण– Regenerating the Kidneys	५.२७३

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार– उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– उत्सर्जन तंत्र (मूत्र सम्बन्धी) रोग

Urinary Ailments

संदर्भ :

भाग २, अध्याय १४ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (१०)

(१) सामान्य– General

उत्सर्जन तंत्र 3 तथा 2 द्वारा ऊर्जित तथा नियंत्रित होता है। 3 गुर्दों तथा मूत्रवाहिनी नलियों को ऊर्जित तथा नियंत्रित करता है। यह रक्त चाप को भी नियंत्रित करता है। 2 मूत्राशय और मूत्र मार्ग को ऊर्जित व नियंत्रित करता है। प्रत्येक K का एक लघु चक्र होता है। मूत्राशय का एक लघु चक्र होता है तथा यह 1 द्वारा भी प्रभावित होता है। इन चक्रों की स्थिति चित्र ४.१४ में दर्शायी गयी है।

6 भी K को प्रभावित करता है। कुछ केसों में एक लम्बे समय के नाराजगी आदि के कारण 6 में घनी लाल रंग की ऊर्जा से पैदा हो जाती है जो 6 से नीचे चलकर K में आती है, जिससे K गलत ढंग से कार्य करने लगता है। इसीलिए कुछ केसों में, लम्बे समय के नकारात्मक भावनाओं के कारण गुर्दे भयंकर रूप से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। जांच करने पर पता चलता है कि 6b और K पर काफी घनापन होता है।

(२) मूत्र नली तथा मूत्राशय की सूजन– Inflammation of Urinary Tube and Bladder

(क) GS

(ख) C' (2 तथा आसपास का क्षेत्र) G ~ O

(ग) E 2 GBV / C' - यदि चरण (ख) तथा (ग) ठीक प्रकार किये जायें, तो रोगी को काफी आराम मिलेगा।

(घ) C Lu/ E Lu (Lub के माध्यम से) GO – इससे उपचार गति को बढ़ावा मिलेगा, क्योंकि G तथा O का रक्त एवम् समस्त शरीर पर सफाई का प्रभाव पड़ता है। E O के समय, अपनी उंगलियों को रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(ङ) C (6, 4, 1)/ E W- यह शरीर को शक्ति प्रदान करने तथा प्रतिरक्षात्मक तंत्र को सुदृढ़ करने के लिए है।

(च) चूंकि प्राणशक्ति की खपत की गति काफी तीव्र होती है, अतः अगले कई दिनों तक जरूरत के अनुसार, दिन में दो या तीन बार उपचार करें।

उक्त रोग में प्राणशक्ति उपचार बहुत प्रभावी होता है। ठीक होने की गति बहुत तेज होती है।

(३) गुर्दों का संक्रमण और सूजन– Infection and Inflammation of the Kidneys

(क) GS

(ख) C' 3 - यदि रोगी उच्च रक्तचाप से पीड़ित है तो E I8 करें तथा साथ–साथ उसके आकार को अन्य चक्रों के आकार का लगभग आधा आकार होने की इच्छा शक्ति करें।

(ग) C' K G ~ O / फिर सकून पहुंचाने एवम् संक्रमण खत्म करने हेतु, E K GBV / C'

(घ) E K के बाद रोगी को पिछले सिर के क्षेत्र में थोड़ा सा दर्द महसूस हो सकता है। इसके लिए C' (3, bh, समस्त रीढ़ की हड्डी) करें, जब तक रोगी को आराम न आ जावे।

(ङ) चरण (ख), (ग) तथा (घ) को आवश्यक्तानुसार दिन में कई बार दोहरायें।

(च) उक्त क्रम २ (घ) के अनुसार

(छ) C' 6, C' L / E 6 GBV

(ज) C 5 – इसका E न करें।

(झ) C 1 – इसका E न करें।

(ञ) C (समस्त बांह तथा पैर, a, e, H, h, k, S) / E (a, e, H, h, k, S) V- इस प्रक्रिया को दिन में एक बार से अधिक न करें। E S द्वारा 1 का बगैर अधिक सक्रियता के E होगा। H तथा S में प्रेषित की गयी प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ट) C (8, 9, 10, 11) / E GV

(ठ) इस उपचार में चरण (ख) तथा (ग) पर विशेष ध्यान दें।

(ड) जब तक रोगी ठीक न हो जाये, उपचार को दोहरायें।

(४) **गुर्दों के पत्थर– Kidney Stones**

प्रथम– कई केसों में मैडिकल दृष्टिकोण से इनका कारण अज्ञात रहता है। 6 पर आमतौर पर घनापन होता है। 6b से आंशिक रूप से यह घनी ऊर्जा K को जाती है।

(क) C' 3

(ख) C" 6, / E GB

(ग) C' (प्रभावित K) G ~ O तथा C मूत्रवाहिनी नली (Ureter), यदि वह प्रभावित हो तो

(घ) पत्थरों को धीरे–धीरे तोड़ने हेतु, E (प्रभावित K) IB, IG, IO – नीला स्थानीयकरण, तथा हरा और नारंगी पत्थरों को घोलने या तोड़ने हेतु है। इसके अतिरिक्त यदि मूत्रवाहिनी नली प्रभावित हो, तो उस पर भी E IB, IG, IO

(ङ) E K के बाद, रोगी को पिछले सिर के क्षेत्र में थोड़ा सा दर्द महसूस हो सकता है। इसके लिए C' (3, bh, समस्त रीढ़ की हड्डी)– जब तक रोगी को आराम न महसूस हो। यदि आवश्यक हो, तो E 3 B द्वारा 3 को संकुचित करें।

(च) यदि मूत्र मार्ग (Urethra) प्रभावित हो, तो C 2 GO / E IB, IG, IO

(छ) अगले कई दिनों तक, दिन में कई बार उपचार करें। यदि उपचार सही तौर पर हो गया, तो रोगी को काफी आराम मिल सकेगा और पहले ही उपचार के बाद मूत्र त्याग पहले से बेहतर कर सकेगा।

द्वितीय– चूंकि यह समस्या पुनः हो सकती है, इसलिए यह ज्यादा अच्छा होगा कि रोगी नियमित, समस्या को रोकने वाला (Preventive) उपचार लेता रहे, जो निम्नवत है:–

(क) GS (२)

(ख) C" 6, / E GB/ C'

(ग) C 3

(घ) C K G ~O/ E GOR

(ङ) उपरोक्त (प्रथम) (ङ) के अनुसार

(च) नियमित रूप से महीने में एक बार यह उपचार करें।

(५) मूत्र त्याग को उत्तेजित करना – Stimulating Urination

(क) C 3

(ख) C K G ~O/E GOR

(ग) उक्त क्रम (४) (प्रथम) (ङ) के अनुसार

(६) गुर्दों का पुनर्निर्माण– Regenerating the Kidneys

प्रथम– यह पाया गया है कि उन रोगियों में जिनके गुर्दे धीरे-धीरे काम बन्द कर रहे होते हैं, लम्बे समय की नाराजगी आदि होती है। 6 पर घनापन होता है। 6b से आंशिक गंदी लाल ऊर्जा K को जाती है। लम्बे समय में, K गलत ढंग से कार्य करने लगते हैं। वायवी तौर पर L तथा प्लीहा गंदे होते हैं।

(क) GS (२)

(ख) C Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GOR- इससे रक्त तथा समस्त शरीर पर सफाई तथा शक्ति पहुंचने का प्रभाव होता है। E O करते समय अपनी उंगलियां रोगी के सिर की ओर इंगित न करें।

(ग) C" 6', C' L/ E 6 GBV

(घ) C 7/ E 7b GV' - यह रोगी को आंतरिक शांति प्रदान करने के लिए है।

(ङ) C' (3 तथा समस्त रीढ़ की हड्डी), यदि 3 अधिक सक्रिय है तो उसे E IB द्वारा संकुचित करिये तथा उसके आकार को अन्य चक्रों के आकार से लगभग आधा करने की इच्छाशक्ति करिए।

(च) C' K G~O/ E GOR/ C' –यह K का धीरे–धीरे पुनर्निर्माण करने हेतु है।

(छ) उक्त क्रम (४) (प्रथम) (ङ) के अनुसार

(ज) C 5 GV – सावधानी से

(झ) C' 1/E W

(ञ) C (11, 10, 9, 8)/E GV

(ट) उक्त चरण (च) पर विशेष ध्यान दें।

(ठ) इस उपचार को छह माह से लेकर एक वर्ष तक सप्ताह में तीन बार करें। परिणाम अलग-अलग होते हैं। कुछ रोगियों में सुधार होगा और कुछ में नहीं।

(ण) जो अनुभवी और कुशल उन्नत प्राणशक्ति उपचारक हैं, वे आंतरिक अंगों की सफाई की तकनीक जिसका वर्णन अध्याय ६ के क्रम १० (२८) में दिया है, अपनाएं। इस तकनीक द्वारा रोगी की दबी हुई नकारात्मक भावनाओं, वायवी शरीर और भौतिक शरीर पर सफाई का प्रभाव पड़ेगा, जिससे उपचार गति में तेजी आयेगी।

द्वितीय– यदि भावनात्मक कारणों से रोग है, तो यह आवश्यक है कि रोगी निम्न तरीकों से दबे हुए नकारात्मक भावनाओं को निकाल दे:–

(क) उन लोगों को मानसिक तौर पर क्षमा करे एवम् उनको आशीर्वाद दे, जिनके द्वारा रोगी को वास्तविक अथवा काल्पनिक, जाने में अथवा अनजाने में तकलीफ पहुंची है।

(ख) उन लोगों से मानसिक तौर पर क्षमा मांगे, जिनको रोगी ने तकलीफ पहुंचाई है, तथा उनको आशीर्वाद दे।

(घ) उक्त चरण (क) व (ख) बार-बार दोहरायें, जब तक कि रोगी की भावनात्मक रूप से नकारात्मक भावनायें समाप्त न हो जायें।

(ङ) क्षमा करने और क्षमा मांगने की प्रक्रियाओं का बाह्यीकरण करने हेतु सम्बन्धित व्यक्ति /व्यक्तियों को पत्र लिखें। यह पत्र न भेजे जायें, किन्तु जलाकर उसकी राख छिटका दें। पत्र जलाकर व राख छिटकाना नकारात्मक भावनाओं के निकलने का द्योतक है।

(च) दान दें। यह सुनिश्चित करें कि यह दान धार्मिक कार्यों अथवा सुपात्र को ही दिया जाये। अपात्र अथवा कुपात्र को दान न दें।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– जननांगों के रोग (यौन रोग)

Reproductive Ailments

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१	सामान्य– General	५.२७७
२	ऋतुशूल (मासिक धर्म का दर्द)–Dysmenorrhea	५.२७७
३	अनियमित मासिक धर्म अथवा मासिक धर्म का न होना– Irregular Menstruation or No Menstruation	५.२७८
४	योनि, गर्भाशय तथा अंग ग्रीवा की सूजन– Vulvitis, Vaginitis and Cervicitis	५.२७८
५	डिम्ब ग्रंथि की रसौली– Ovarian Cyst	५.२७८
६	गर्भाशय में रसौली– Myoma	५.२७९
७	गर्भाशय का अपनी जगह से हट जाना– Prolapsed Uterus	५.२८०
८	पौरुष ग्रंथि का बढ़ जाना– Enlarged Postrate	५.२८०
९	नपुंसकता– Sexual Impotence	५.२८१
१०	बांझपन– Sterility or Infertility	५.२८१
११	रतिज रोग– Veneral Diseases	५.२८१
१२	गर्भवती महिलाएं– सामान्य– Pregnant Women– General	५.२८२
१३	गर्भपात से बचना– Avoiding miscarriage	५.२८३
१४	गर्भपात को रोकना– Preventing Miscarriage	५.२८४
१५	प्रसव क्रिया को सुगम करना – Facilitating the Birthing Process	५.२८४
१६	प्रसव के बाद शीघ्र सुधार–Hastening Recovering after giving Birth	५.२८५
१७	घर पर प्रसव– Birthing at Home	५.२८५

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–

जननांगों के रोग (यौन रोग)
Reproductive Ailments

संदर्भ :

भाग २, अध्याय १५ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (११)

(१) **सामान्य**– जननांगों का तंत्र मुख्य रूप से 2 द्वारा नियंत्रित तथा ऊर्जित होता है। यह 9 द्वारा भी नियंत्रित होता है जो अन्तःस्त्रावी तंत्र को नियंत्रित करता है। 8, जो उच्च रचनात्मक गतिविधियों का केन्द्र है, भी इसको प्रभावित करता है तथा 1 द्वारा भी, जो 2 को काफी हद तक ऊर्जा शक्ति प्रदान करता है।

पुरुषों में 2 शिश्न, अंडकोष और प्रोस्टेट को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। अंडकोष, लघु अंडकोष चक्र द्वारा तथा प्रोस्टेट, लघु प्रोस्टेट चक्र एवं p* द्वारा नियंत्रित तथा ऊर्जित होते हैं।

स्त्रियों में– 2 बहिर्योनि (Vulva), योनि शिश्न (योनि द्वार पर एक अति लघु शिश्न जैसा उपस्थि अंग) (clitoris), योनि (vagina), गर्भाशय (Uterus), अण्डाशय की नलिया (uterine or fallopian tubes) तथा अण्डाशयों (Ovaries) को ऊर्जित व नियंत्रित करता है। गर्भाशय लघु गर्भाशय चक्र द्वारा ऊर्जित तथा नियंत्रित होता है। अण्डाशय तथा अण्डाशय की नलियां लघु अण्डाशय चक्र द्वारा ऊर्जित तथा नियंत्रित होते हैं।

उक्त चक्रों की स्थिति चित्र ४.१४ में दर्शायी गयी है।

* पेरिनियम लघु चक्र शरीर के अन्दर 2 और 1 के अन्तराल के मध्य में होता है।

(२) **ऋतुशूल (मासिक धर्म का दर्द)– Dysmenorrhea**

(क) C 2 G ~ O, यदि सफाई भली प्रकार हो जाये, तो रोगी को तुरन्त आराम मिल जाता है।

(ख) E 2 W

(ग) C (1, 4) / E W

(घ) यदि रोगी थका हुआ हो या मूर्छित हो गया हो, तो C" 6 /E R

(ङ) ऋतुशूल को रोकने के लिए इस उपचार को ऋतुस्त्राव से तीन दिन पहले किया जा सकता है।

(३) अनियमित मासिक धर्म अथवा मासिक धर्म का न होना –
Irregular Menstruation or No Menstruation

(क) C 2 G ~O / E GOR

(ख) C (1, 4) / E W

(ग) C' (9, 8) /E GV

(घ) उपचार सप्ताह में तीन बार करें, फिर बन्द कर दें तथा परिणाम की प्रतीक्षा करें। यदि आवश्यक्ता हो, तो उपचार को दोहरायें।

(४) योनि, गर्भाशय तथा अंग ग्रीवा की सूजन– Vulvitis, Vaginitis, Cervicitis

(क) GS

(ख) C' (2 तथा आसपास के क्षेत्र पर) G ~ O – समुचित सफाई के पश्चात रोगी को काफ़ी राहत महसूस होगी।

(ग) E 2 GBV/ C' (2 तथा आसपास के क्षेत्र पर)

(घ) C Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GO – इससे रक्त तथा पूरे शरीर पर सफाई का प्रभाव पड़ेगा। E O के समय अपनी उंगलियों को रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(ङ) C' (1, 4, 5)/ E (1, 4) W – 4 से आंशिक ऊर्जा स्वयमेव ही 5 को चली जायेगी, अतः E 5 न करें।

(च) C (6, L)/ E 6 GBV

(छ) उक्त चरण (ख) तथा (ग) पर विशेष ध्यान दें।

(ज) अगले कुछ दिनों तक उपचार को दोहरायें।

(५) डिम्ब ग्रंथि (अण्डाशय) की रसौली– Ovarian Cyst

2 तथा प्रभावित अंडाशय पर घनापन हो जाता है और ये गंदी लाल ऊर्जा से भर जाते हैं। इनके C' पर विशेष ध्यान दें।

(क) GS

(ख) C (2, उसके समीप का क्षेत्र तथा प्रभावित अण्डाशय) G ~ O

(ग) E 2 G / C'

(घ) C' (प्रभावित अण्डाशय) G ~ O – यह अति महत्वपूर्ण है।

(ङ) E (प्रभावित अण्डाशय) B G' – B स्थानीयकरण तथा G संक्रमण हटाने तथा घोलने के लिए है।

(च) C' (1, 4) / थोड़ा सा E W

(छ) C" 6 / E GBV

(ज) C' (11, 9, 8) /E GV'

(झ) उक्त चरण (ख) से (ङ) तक पर विशेष ध्यान दें।

(ञ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें। इसमें तीन माह या उससे अधिक लग सकता है।

(६) गर्भाशय में रसौली– Myoma

2 पर बहुत घनापन होता है और गंदी लाल प्राण ऊर्जा से भरा होता है। यह रोगी प्रायः यौन क्रिया के प्रति संकुचित होते हैं और उसके प्रति अनुचित प्रवृत्ति रखते हैं। सम्भोग के दौरान भी यौन ऊर्जा समुचित रूप से बाहर नहीं निकल पाती। यौनेच्छा अत्यधिक दबी हुई होती है और स्वस्थ व्यक्तियों की तरह यौन ऊर्जा अन्य चक्रों को स्वतंत्र रूप से नहीं जा पाती। इसके कारण गर्भाशय पर धीरे–धीरे रसौली की उत्पत्ति हो जाती है और वह बढ़ती जाती है। उन स्त्रियों के जो यौन–प्रताड़ित होती हैं, यौन क्रिया के लिए नकारात्मक भावना विकसित हो सकती है, जिसके कारण लम्बे समय में यौन रोग उत्पन्न हो जाते हैं। चेतन या अचेतन अवस्था में यौन ऊर्जा के शोधित न होने की दशा में, सम्भोग की अनुपस्थिति के कारण, यह सन्यासिनियों में रोग हो सकता है।

इस रोग से पीड़ित अथवा डिम्बग्रंथि की रसौली से पीड़ित रोगी के E 2 IO किञ्चित भी न करें। 2 में एक निश्चित गणितीय अनुपात में नारंगी तथा लाल प्राण ऊर्जा रहती है। E 2 (m O अथवा dO) के फलस्वरूप इस गणितीय अनुपात को बनाये रखने के लिए और अधिक लाल प्राण उत्पन्न होगा, जिससे 2

अति सक्रिय तथा और उस पर ज्यादा घनापन हो जायेगा। इससे हालत बिगड़ सकती है अथवा उपचार की गति धीमी हो सकती है।

(क) GS

(ख) C' (2 तथा आसपास का क्षेत्र) G~O

(ग) E 2 BG'– B स्थानीयकरण तथा G संक्रमण हटाने तथा घोलने के लिए है।

(घ) C' (1, 4) / थोड़ा सा E W

(ङ) C" 6, / E GBV

(च) C' (11, 9, 8) /E GV'

(छ) उक्त चरण (ख) व (ग) पर विशेष ध्यान दें।

(ज) सप्ताह में तीन बार, जब तक आवश्यक हो, उपचार करें। इसमें तीन माह या इससे अधिक लग सकता है।

(७) **गर्भाशय का अपनी जगह से हट जाना– Prolapsed Uterus**

(क) GS

(ख) C' (2 तथा आसपास का क्षेत्र) G~O / E 2 GOR

(ग) C' (1, 4) / E R

(घ) C" 6 /E GBV

(ङ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(८) **पौरुष ग्रंथि का बढ़ जाना-- Enlarged Postate**

यह रोग 2 के घनेपन अथवा खालीपन से हो सकता है। 2 पर घनापन अधिकतर कुँवारे, नपुंसक तथा यौन क्रिया रहित व्यक्तियों में होता है और 2 का खालीपन अधिकतर वृद्ध लोगों में होता है।

(क) GS

(ख) C 2 G~O

(ग) E 2 W, अथवा यदि रोग 2 के घनेपन के कारण है, तो इसके स्थान पर E 2 G करें और यदि रोग 2 के खालीपन के कारण है तो इसके स्थान पर E 2 R' करें।

(घ) C (1, 4) / E W

(ङ) C 6/E W

(च) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(९) नपुंसकता– **Sexual Impotence**

(क) GS

(ख) C 2 G ~ O/ E R

(ग) C (1, 4) /E R

(घ) यदि समस्या मनोवैज्ञानिक कारणों से है, तो C" 6 /E GBV

(ङ) C 7/E 7b GV'– 7 को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें।

(च) C (11, 9, 8)/ E GV'

(छ) सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(१०) बांझपन– **Sterility or Infertility**

(क) GS

(ख) C 2 G ~ O/E GOR

(ग) C (1, 4)/ E R

(घ) C" 6 /E GBV

(ङ) C (9, bh, 8)/ E GV'

(च) उपचार को एक माह तक सप्ताह में तीन बार करें, फिर इलाज बन्द कर दें। अगले दो महीने तक प्रतीक्षा करें एवम् निगाह रखें ।

(११) रतिज रोग– **Veneral Diseases**

2 , तथा AP अत्यधिक गंदे होते हैं। सामान्य स्थानीय सफाई अत्यधिक समय लेगी, इसमें G, O सफाई के लिए प्रयोग किये जाते हैं। mR या dR प्राण (1 , 2 तथा AP) पर इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, क्योंकि इससे कीटाणुओं का उत्पादन बढ़ जायेगा। यह 2 से काफी गंदी ऊर्जा बाहर फैलते हुए देखी गयी है। यह अधिक सुरक्षित होगा कि लाल प्राण, यहां तक कि IR का उपयोग न किया जाये। समस्त ऊर्जा शरीर गंदा होता है।

(क) GS (२ या ३) G

(ख) E (2, AP) IB– यह अगली क्रिया द्वारा कीटाणुओं को फैलने से रोकने के लिए है।

(ग) C' (2, AP) G ~ O / E BGV

(घ) C' – 1 इसका E न करें, अन्यथा इससे 1 अधिक सक्रिय होकर, यौन रोग के कीटाणुओं का विकास बढ़ जायेगा।

(ङ) C' (बांहे तथा पैरों पर, a, e, H, h, k, S) / E (a, e, H, h, k, S) V -- E S द्वारा 1 बगैर अधिक सक्रिय हुए ऊर्जित हो जायेगा, जिससे रक्त के सफेद कोशिकाओं का उत्पान बढ़ेगा। इस प्रक्रिया को दिन में एक बार से अधिक न करें। H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(च) C Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GO – इस प्रक्रिया से रक्त तथा पूरे शरीर की सफाई द्वारा उपचार गति को बढ़ावा मिलेगा। E O के समय अपनी उंगलियों को रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(छ) 6 आंशिक रूप से प्रभावित होता हैं, इसलिये C'' 6, C' L / E 6 GBV

(ज) 5 भूरा सा होता है। C' 5 / E GV -- सावधानी से। मीठा कीटाणुओं को हटाने में सहायता करता है।

(झ) C' 7 / E (थायमस ग्रंथि– 7b के माध्यम से) (कम G) V'– यह थायमस को सक्रिय करने तथा शक्ति प्रदान करने के लिए है और रीढ़ की हड्डी, पसलियां तथा छाती की हड्डी में अस्थि-मज्जा (Bone Marrow) को सक्रिय करने के लिए है।

(ञ) C 8 / E GV – 8 लिम्फैटिक तंत्र को नियंत्रित करता है।

(ट) C (11, 10, 9, bh) / E GV'

(ठ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करिये।

(१२) गर्भवती महिलायें– सामान्य-- Pregnant Women – General

गर्भवती महिलाओं का उपचार मृदुता से करना चाहिए। इसका मतलब है कि दोनों C तथा E मृदुता से करना चाहिए। सामान्य तौर पर, रंगीन प्राणों के स्थान पर W अधिक सुरक्षित है। इन महिलाओं पर हरा या नारंगी प्राण का उपयोग न करें, विशेष तौर पर 4 तथा 2 पर। इसका प्रभाव काफी नष्टकारक हो सकता है। पैरों में भी हरा या नारंगी प्राण भेजने में कुछ खतरा हो सकता है, क्योंकि उसका एक अंश गर्भस्थ शिशु तक पहुंच जाता है, विशेष तौर पर जब उपचारक काफी शक्तिशाली

होता है। गर्भवती महिला के शरीर के किसी भी भाग में G तथा O का उपयोग न करना ही अधिक सुरक्षित है।

गर्भवती महिला का E 3 या E 5 न करें, अन्यथा गर्भस्थ शिशु पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

कुछ महिलायें मासिक धर्म के दर्द (Dysmenorrhea), अनियमित मासिक धर्म (Irregular Menstruation) तथा इसी प्रकार की अन्य बीमारियों का नाटक कर सकती हैं, क्योंकि इनके उपचार से गर्भपात हो सकता है। हालांकि इस प्रकार के केस कम ही होते हैं, फिर भी उपचारक को सावधान रहना चाहिए।

गर्भवती महिलाओं का आम तौर पर 6, 4, 2, 1 और 3 शक्तिशाली रहता है। जांच द्वारा यह पाया जाता है कि आम तौर पर अन्य चक्रों की तुलना में यह ज्यादा बड़े और मोटे होते हैं। यदि महिला को कई महीने का गर्भ है, तो ये अधिक सक्रिय होते हैं और 3 अधिक सक्रिय 1 के मुकाबले में थोड़ा छोटा होता है। 9 सक्रिय होकर लाल से रंग का होता है।

उपचारक को उपचार करने तथा जीवन बचाने का हिमायती होना चाहिए और जीवों को मारने में उद्यत नहीं होना चाहिए। इसलिए उपचारक को उन गर्भस्थ शिशुओं को जो अपनी स्वयं कोई रक्षा नहीं कर सकते हैं, को नष्ट नहीं करना चाहिए। शक्ति के दुरुपयोग से कर्मों के गम्भीर दुष्परिणाम होंगे।

(१३) गर्भपात से बचना– Avoiding Miscourage Carriage

यह उपचार उन स्त्रियों के लिए जो यद्यपि गर्भवती नहीं है, किन्तु गर्भपात का इतिहास रखती हों। 2, 4 तथा 1 प्रभावित होते हैं।

(क) GS

(ख) C 2 G~O/ E GOR

(ग) C (4, 1)/ E R

(घ) E" 6/ E GBV

(ङ) C (9, 8)/ E GV'

(च) उपचार को लगभग एक माह तक, सप्ताह में तीन बार करें।

(१४) गर्भपात रोकना— **Preventing Miscourage** Carriage

यह उपचार उन गर्भवती महिलाओं के लिए है जो रक्तस्त्राव के साथ निचले पेट के दर्द की शिकायत करती हों। उपचार के समय इच्छा शक्ति का उपयोग न करें।

(क) GS मृदुता से

(ख) C (4, 2 तथा आसपास के क्षेत्र पर) मृदुता से / जरा सा E (4, 2) W मृदुता से

(ग) C 1 / E (जरा से W से) — मृदुता से

(घ) C 6 मृदुता से / मृदुता से E W

(ङ) C' (9, 8) /E W

(च) ऊर्जित किये हुए चक्रों का स्थिरीकरण सफेद से अति हल्के नीले रंग की प्राण ऊर्जा (Very light whitish blue prana) द्वारा करें।

(छ) आवश्यक्तानुसार, इलाज को दोहरायें।

(१५) **प्रसव क्रिया को सुगम करना— Facilitating the Birthing Process**

(क) C (4, 2) बहुत मृदुता से

(ख) E 4 (W या B — मृदुता से, ताकि गर्भाशय की मांसपेशियों के संकुचन में सहायता मिले।

(ग) E 2 (W या R) — मृदुता से, ताकि गर्भाशय की गर्दन (Cervix) के चौड़ा होने में मदद मिले।

(घ) C 1 /E (W या R)— मृदुता से

(ङ) यदि पीठ में दर्द हो, तो C कई बार करें- E 3 नहीं करें, वरना मृत बच्चा पैदा हो सकता है।

(च) C (9, 8)/ E W- मृदुता से,

(छ) ऊर्जित किए हुए चक्रों का स्थिरीकरण सफेद से अति हल्के नीले रंग की प्राण ऊर्जा (Very light whitish blue prana) द्वारा करें।

(ज) एक या दो घंटे बाद उक्त सभी उपचार की प्रक्रियाओं को दोहरा सकते हैं।

प्रसव की सम्भावित तारीख से दो सप्ताह पहले से, यह सभी उपचार, सप्ताह में तीन दफे भी किया जा सकता है। केवल सफेद प्राण का ही उपयोग करें।

(१६) **प्रसव के बाद शीघ्र सुधार– Hastening Recoving after giving Birth**

(क) GS (२)

(ख) C 2 G ~ O / E(W या V)

(ग) C (1, 4, 6) /E W

(घ) लगभग एक सप्ताह तक दिन में दो बार उपचार करें।

(१७) **घर पर प्रसव– Birthing at Home**

यद्यपि हस्पताल में प्रसव मैडिकल दृष्टिकोण से सक्षम तथा प्रभावी होता है, कभी–कभी वहाँ पर उपेक्षा होती है, चाहे व्यवहार अमानवीय नहीं भी हो। घर पर प्रसव, जहाँ तथा आसपास में, मनुष्यता की गर्माहट होती है वहाँ पर चुनाव करने की भावना सहज प्राकृतिक है और इस पर समुचित विचार करना चाहिए। समय आ गया है कि भावी मांओं को उनके द्वारा मनुष्य समझा जाने के अधिकार को वे प्रयोग करें तथा उनके साथ सम्मान, भावुकता तथा स्नेह से व्यवहार करें, न कि मात्र शरीर समझकर।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों के रोग

Endocrine Ailments

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१	सामान्य– General	५.२८७
२	शरीर द्वारा इन्सुलिन का इस्तेमाल न हो पाने के कारण मधुमेह रोग– Diabetes due to the Body's inability to make use of Insulin	५.२८८
३	अपर्याप्त इन्सुलिन के कारण अग्न्याशय का मधुमेह– Pancreatic Diabetes due to insufficient Insulin	५.२८९
४	थायराइड ग्रंथियों का बढ़ जाना– Hyperthyroidism	५.२८९
५	अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों के रोग– Ailments of the Endocrine Glands	५.२९०

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों के रोग

Endocrine Ailments

संदर्भ :

भाग २, अध्याय १० और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (७)

(१) सामान्य– General

9 अन्तःस्त्रावी तंत्र को नियंत्रित करता है। 11 तथा 10 पिनीयल ग्रंथि को नियंत्रित और ऊर्जित करते हैं। 9 पीयूष (pituatary) ग्रंथि को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। 8 थायराइड तथा पैराथायराइड ग्रंथियों को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। 7 थायमस ग्रंथि को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। 6 अग्न्याशय (Pancreas) को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। 2 यौन ग्रंथियों (Gonads) को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। 8 जो कि 2 के साथ उच्च प्रकार का सम्बन्ध रखता है, वह भी यौन ग्रंथियों को प्रभावित करता है। 3 तथा 1 अधिवृक्क ग्रंथियों (Adrenal glands) को नियंत्रित और ऊर्जित करते हैं। चूंकि 6 का प्रभाव 3 तथा 1 पर पड़ता है, इसलिये उसका प्रभाव अधिवृक्क ग्रंथियों पर भी पड़ता है।

7 तथा थायमस ग्रंथि मिलकर 9 द्वारा उच्च मुख्य तथा लघु चक्रों तथा उनसे सम्बन्धित अंगों का समन्वय तथा नियमिन करने में, उसकी (9 की) सहायता करते हैं। थायमस ग्रंथि का हृदय, रक्तचाप, गला, थायराइड ग्रंथि, पैराथायराइड ग्रंथियों और सिर के अन्दर के अंगों पर प्रभाव पड़ता है। उच्च चक्रों से तात्पर्य 6 से ऊपर वाले चक्रों का है।

रक्तचाप C (7, थायमस ग्रंथि) / E (7 तथा थायमस ग्रंथि – 7b के माध्यम से) G V द्वारा भी कम किया जा सकता है। इस प्रक्रिया से धीरे–धीरे 6 तथा 3 सामान्य हो जाते हैं। अधिक शीघ्र परिणाम C (6, 3) एवम् उनको संकुचित करके प्राप्त किया जाता है।

अपने 7f तथा थायमस ग्रंथि की ओर कई मिनट तक मुस्कराते हुए भी उच्च रक्तचाप की स्व-प्राण चिकित्सा की जा सकती है, अथवा उनको प्रसन्नता तथा प्यार भरी ऊर्जा भेजकर। कई केसों में इससे 6 तथा 3 सामान्य हो जाते हैं।

9 द्वारा निम्न चक्र तथा उनसे सम्बन्धित अंगों का नियमन करने में, 4 मदद करता है। निम्न चक्रों से तात्पर्य 3, 2, 1 तथा निम्न लघु चक्रों का है।

पिनीयल ग्रंथि का अपना लघु चक्र, पीयूष ग्रंथि का अपना लघु चक्र, थायराइड ग्रंथि के अपने बांए तथा दाएं लघु चक्र, पैराथायराइड ग्रंथि के अपने चार अति लघु चक्र (दांया ऊपर का, बांया ऊपर का, दांया नीचे का, बांया नीचे का), थायमस ग्रंथि का अपना लघु चक्र (मय बांए तथा दांए अति लघु चक्रों के), अग्न्याशय ग्रंथि का अपना लघु चक्र (मय उसके ऊपरी भाग पर दो अति लघु चक्र), अधिवृक्क ग्रंथियों का अपना बांया तथा दांया लघु चक्र, अण्डकोषों का अपना बांया तथा दांया लघु चक्र और अण्डाशयों के अपना बांया तथा दांया लघु चक्र होते हैं। इनकी स्थिति चित्र ४.१३ तथा ४.१४ में दर्शायी गयी है।

(२) **शरीर द्वारा इन्सुलिन का इस्तेमाल न हो पाने के कारण मधुमेह रोग–**
Diabets due to the Body's inability to make use of Insulin

अग्न्याशय का (Pancreatic) मधुमेह इन्सुलिन की कमी अथवा शरीर द्वारा इंसुलिन का उपयोग न कर पाने के कारण होता है। अधिकतर केसों में, यह शरीर द्वारा इंसुलिन का उपयोग न कर पाने के कारण होता है। आमतौर पर 6 पर घनापन होता है। साधारणतया अग्न्याशय पर थोड़ी सी सूजन होती है। दिव्य दृष्टि से अग्न्याशय पर गंदी भूरे से लाल रंग की रोगग्रस्त ऊर्जा दिखाई पड़ती है। L तथा K पर आंशिक प्रभाव पड़ता है। 9, 4 तथा 1 भी आंशिक रूप से प्रभावित हो जाते हैं।

(क) GS (२)

(ख) C" 6, C' (L तथा अग्न्याशय)

(ग) E (6 तथा अग्न्याशय) GBV

(घ) C' 9 / E GV'– यह चरण महत्वपूर्ण है।

(ङ) C' 3

(च) C K G ~O

(छ) C (1, 4) / E R

(ज) उक्त (ङ) से (छ) तक की प्रक्रियाओं पर विशेष ध्यान दें।

(झ) C 7/E 7 (7b के माध्यम से) (कम G) V'

(ञ) C (8, 10, 11, bh)/E GV'

(ट) सप्ताह में दो बार उपचार करें।

(३) **अपर्याप्त इन्सुलिन के कारण अग्न्याशय का मधुमेह–**
Pancreative Diabetes due to insufficient Insulin

6 पर खालीपन होता है। 9, 4 और 1 प्रभावित होते हैं।

(क) GS (२)

(ख) C" <u>6</u>, C' (L, अग्न्याशय)

(ग) E (6b, अग्न्याशय) G R'

(घ) C' (1, 4) / E R

(ङ) C 9 / E (कम G) V'

(च) उक्त (ख) से (ङ) तक की प्रक्रियाओं पर विशेष ध्यान दें।

(छ) C 7/ E 7b V

(ज) C (8, 10, 11, bh) / E GV'

(झ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(४) **थायराइड ग्रंथियों का बढ़ जाना– Hyperthyroidism**

6 पर घनापन होता है, यह गंदे लाल रंग की ऊर्जा से भरा होता है। इस रोगग्रस्त ऊर्जा का आंशिक भाग 8 को जाता है, जिससे वह अधिक सक्रिय और लाल सा हो जाता है। 9 आंशिक रूप से प्रभावित होता है और इसमें गंदी लाल ऊर्जा आ जाती है। 8 की जांच से उपचार को यह महसूस होगा कि वह तुलनात्मक तौर पर छोटा तथा कम सक्रिय है। यह रोगी द्वारा कुछ समय तक दवा लेने के परिणामस्वरूप 8 का संकुचन होने के कारण होता है। इसलिये कभी–कभी बढ़ी हुई थायराइड ग्रंथि का रोगी, अन्त में थायराइड ग्रंथि की छोटी हो जाने का रोगी बन जाता है।

(क) GS (२)

(ख) C" <u>6</u>, C' L – अनुभवी तथा कुशल उपचारक 6 की सफाई तकनीक जिसका वर्णन अध्याय ६, क्रम संख्या १० (२६) में दिया है, अपना सकते हैं। यह अति महत्वपूर्ण है।

(ग) E 6 GBV

(घ) हृदय को सक्रिय करने के लिए, C 7 / E 7b (कम G) V' – 7 को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें।

(ङ) E 8 IB – इसके बाद आगे इस्तेमाल होने वाली O का स्थानीयकरण करने हेतु

(च) C 8 G ~O – साधारण C' 8 द्वारा अच्छी प्रकार सफाई करने में काफी समय लगेगा।

(छ) E 8 GB – इसके साथ ही इस चक्र को छोटा करने की इच्छाशक्ति करें।

(ज) C' 9 / E GV'

(झ) चरण (ख) से (ज) तक पर विशेष ध्यान दें।

(ञ) C (10, 11, bh) / E GV'

(ट) C (1, 4) / E W

(ठ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(५) **अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों के रोग— Ailments of the Endocrine Glands**

(क) यदि प्रभावित चक्र अधिक सक्रिय हैं, तो C' (प्रभावित चक्र) / E G, IB – साथ ही उसको छोटे करने की इच्छाशक्ति करें।

(ख) यदि प्रभावित चक्र कम सक्रिय हैं तो, C' (प्रभावित चक्र) / E GR', यदि प्रभावित चक्र 6 या उससे नीचे है, तो। साथ ही उसको बड़ा करने की इच्छाशक्ति करें।

(ग) चूंकि 9 अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों का नियंत्रण करता है, इसलिए C' 9 / E G V'

(घ) चूंकि आमतौर पर 6 रोग का कारण होता है अथवा गलत ढंग से कार्य करता है, इसलिए T 6 करें।

(ङ) चूंकि 7 ऊपर के चक्रों तथा उनके सम्बंधित अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों को नियमन करने में सहायता करता है, और 4 निचले चक्रों एवम् उनसे संबंधित अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों के नियमन करता है, इसलिये T (7, 4) करना आवश्यक है।

(च) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–अस्थितंत्र तथा मांसपेशियों के तंत्रों की खराबियां

Skeleton and Muscular Disorders

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१	अस्थि तथा मांसपेशियों के तंत्र– साधारण	५.२६३
२	निचले पीठ का दर्द, साइटिका तथा हरनियेटैड डिस्क (स्लिप डिस्क) – Sciatica and Herniated Disk	५.२६३
३	कुबड़ा होना– Scoliosis (Lateral Curvature of the Spine)	५.२६४
४	जोड़ों व तंतु पेशियों का दर्द– Arthiritis or Rheumatism	५.२६५
५	मांसपेशियों और स्नायुओं की सूजन– Inflammation of the Muscles and Tendons	५.२६६
६	कड़ी गर्दन (सर्वाइकल स्पौंडिलाइटिस)– Stiff Neck (Cervical Spondylitis)	५.२६६
७.	कंधे में दर्द – Painful Shoulder	५.२६७
८.	गठिया– Gout	५.२६७
९.	पतनकारी संधिवात– औस्टीयोआर्थिराइटिस– Degenerative Arthiritis- Osteoarthiritis	५.२६८
१०.	रिह्यूमैटोइड संधिवात– Rheumatoid Arthiritis	५.२६९

११. Systematic Lupus Erythematosus (यह रोग बहुधा महिलाओं में पाये जाना वाला विकार है, जिसमें त्वचा पर तितली की तरह निशान पड़ जाते हैं) ५.२९९

१२. खेलकूद की चोट– Sports Injuries ५.३०१

१३. मांसपेशी की ऐंठन– Muscle Cramps ५.३०२

१४. बरसा की सूजन– Bursitis ५.३०२

१५. तनाव– Strain ५.३०२

१६. मोच– Sprain ५.३०२

१७. स्नायुओं का फटना– Torn Tendons ५.३०३

१८. हड्डी का सरक जाना– Dislocation ५.३०३

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार–अस्थितंत्र तथा मांसपेशियों के तंत्रों की खराबियां

Skeleton and Muscular Disorders

संदर्भ :

भाग २, अध्याय २ तथा ३ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (१)

(१) अस्थि तथा मांसपेशियों के तंत्र

यह तंत्र मुख्य तौर पर 1 तथा बांहों तथा पैरों पर के स्थित लघु चक्रों द्वारा नियंत्रित और ऊर्जित किया जाता है। 1 का समुचित रूप से कार्यान्वयन काफी हद तक 9 पर निर्भर करता है।

इस तंत्र पर 6 का L के द्वारा तथा 5 का प्लीहा द्वारा (जो रक्त की गुणवत्ता को प्रभावित करता है) भी प्रभाव पड़ता है । लम्बे समय तक अनुचित भावनाओं द्वारा 1 गलत ढंग से कार्य कर सकता है, जिससे अस्थि तथा मांसपेशियों के तंत्र का अनियमन (disorder) हो जाता है।

4 भी इस क्षेत्र को प्रभावित करता है, क्योंकि यह काफी हद तक पाचन, अवशोषण तथा उत्सर्जन तंत्रों को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। यह निम्न चक्रों (मय 1 के) का नियमन करने में सहायता करता है। संधिवात (Arthiritis) के रोगियों का आमतौर पर 4 कमजोर होता है।

(२) निचले पीठ का दर्द, साइटिका तथा हरनियेटैड डिस्क (स्लिप डिस्क) – Lower Back Pain, Sciatica and Herniated Disk

निचले पीठ का दर्द K की समस्या या रीढ़ की हड्डी की खराबी के कारण हो सकता है। 1 रीढ़ की हड्डी को नियंत्रित और ऊर्जित करता है। रीढ़ की हड्डी की खराबी में 1 प्रभावित होता है। कई केसों में निचले पीठ का दर्द भावनात्मक

कारणों से होता है। 6 गंदी लाल ऊर्जा से घना हो जाता है । इस ऊर्जा का एक अंश रीढ़ की हड्डी में जाता है, जिसके कारण एक लम्बे समय में डिस्क हट जाती है। अति घनी लाल रंग की ऊर्जा चौड़ाने तथा कमजोर करने का प्रभाव डालती है।

(क) GS

(ख) C (रीढ़ की हड्डी) G

(ग) C" 6 – C' L – यह अति महत्वपूर्ण है।

(घ) C 6 GBV/ C'

(ङ) आंतरिक शांति के लिए, 7 को सक्रिय करें। इसके लिए C 7/ E 7b GV' – 7 को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें।

(च) C (रीढ़ की हड्डी का प्रभावित निचला हिस्सा) G ~ O – इसकी अच्छी तरह सफाई महत्वपूर्ण है / E GBY – इसका प्रभावित फ़ाइब्रस रिंग (Fibrous ring) पर संकुचन तथा दृढ़ीकरण का प्रभाव पड़ता है।

(छ) C 1/ E R

(ज) उक्त चरण (ग), (च) तथा (छ) महत्वपूर्ण हैं। यदि उपचार सही हो जाये, तो रोगी आंशिक रूप से राहत महसूस करेगा और कुछ केसों में पूरी तरह ठीक हो भी सकता है।

(झ) C 4/ E W

(ञ) पहले कुछ दिनों में, दिन में दो या तीन दफे, विशेषकर AP पर उपचार किया जा सकता है।

नोट – हरनियेटैड डिस्क में रीढ़ की हड्डियों के बीच गद्देदार कुशन की तरह की डिस्क अपनी जगह से सरक जाती है।

(३) कुबड़ा होना– Scoliosis (Lateral Curvature of the Spine)

6 पर घनापन तथा 1 पर आंशिक खालीपन होता है। गंदे 6 द्वारा 1 से ऊपर की ओर प्राण ऊर्जा के सीधे प्रवाह में रुकावट आती है, जिससे प्राण ऊर्जा दांये या बाएं तरफ लहर की तरह जाती है। Law of correspondence के आधार पर प्राण ऊर्जा के पथ का अनुसरण करते हुए, रीढ़ की हड्डी एक तरफ मुड़ जाती है।

(क) GS (२)

(ख) C" 6, C' L – यह महत्वपूर्ण है।

(ग) E 6 GBV / C'

(घ) C' (रीढ़ की हड्डी) G ~ O

सिर के ... या गर्दन के आ.ो O का प्रयो. न करें।

(ङ) C' (AP) G ~ O/E R/C'

R का आसपास की मांसपेशियों पर आरामदायक प्रभाव पड़ता है।

(च) C' 1/ E R–रीढ़ की हड्डी को सीधी होते हुए दृश्यीकृत करें।

(छ) सप्ताह में तीन बार उपचार करें। आमतौर पर पहले उपचार के बाद रोगी काफी राहत महसूस करेगा।

(४) जोड़ों व तंतु पेशियों का दर्द– Arthiritis or Rheumatism

यद्यपि संधिवात कई प्रकार का होता है, उनमें कुछ बातें सभी में होती हैं। गंभीर संधिवात में रोगी के 1 पर खालीपन होता है। 1 अस्थितंत्र तथा मांसपेशियों को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। इसमें जोड़ भी सम्मिलित हैं। आमतौर पर 4, 6, L, 5 और प्लीहा पर प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, अधिकांश निचले चक्र प्रभावित हो जाते हैं। साधारणतया, संधिवात के केसों में 6, 5, 4 और 1 प्रभावित होते हैं।

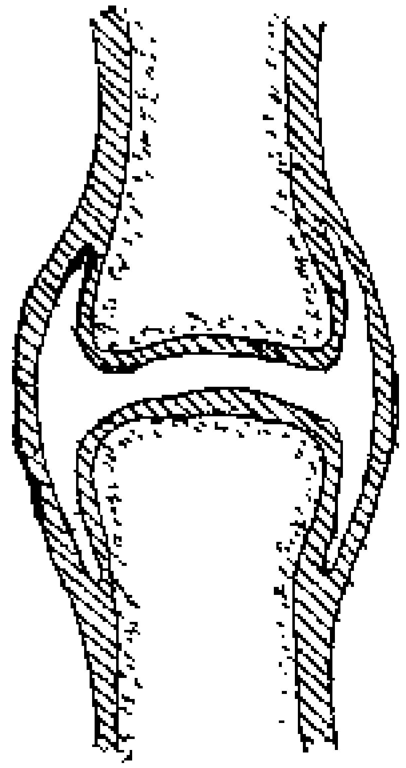

चित्र ५.०७ जोड़ की संरचना
Anatomy of a Joint

कई केसों में लम्बे समय से रह रहे नकारात्मक भावनाओं द्वारा 6 के गलत ढंग से कार्य करने के फलस्वरूप 1, 4 तथा 5 गलत ढंग से कार्य करने लग जाते हैं, जिससे गम्भीर किस्म की संधिवात हो जाती है।

आमतौर, "उत्तम उपचार की तकनीक" जिसका वर्णन अध्याय ६ के क्रम १० (३३) में है, सामान्य तथा गम्भीर प्रकार की संधिवात के उपचार में बहुत प्रभावकारी होती है। 6 की अच्छी तरह सफाई करनी पड़ती है। यदि यह अति सक्रिय है, तो उसका संकुचन करना पड़ता है। यदि रोगी अधिक उम्र का है, तो ज्यादा सुरक्षित होगा यदि मास्टर उपचार तकनीक (अध्याय ६ के क्रम १० (३२) में वर्णित) में W–W का उपयोग करें।

मैडिकल दृष्टिकोण से, संधिवात निम्न कारणों से हो सकती है।

(क) मांसपेशियों और स्नायुओं (Tendons) की सूजन (inflammation)

(ख) बुढ़ापे के कारण जोड़ों का पतन हो जाना (degeneration)

(ग) जोड़ों की झिल्ली (membrane) पर सूजन

(घ) अधिक यूरिक एसिड (uric acid) और यूरेट्स (Urates) के कारण जोड़ों की सूजन

(५) **मांसपेशियों और स्नायुओं की सूजन– Inflammation of the Muscles and Tendons**

(क) C' (AP) G ~ O / E GBV

(ख) जरूरत हो, तो उपचार दोहरायें। आमतौर पर प्रथम उपचार में ही वह आंशिक अथवा पूर्ण रूप से ठीक हो सकता है।

(६) **कड़ी गर्दन (सर्वाइकल स्पौन्डिलाइटिस)– Stiff Neck (Cervical Spondylitis)**

यह रोग गलत सोने के ढंग से, हृदय रोग, रक्तचाप तथा अन्य कारणों से हो जाता है। कई केसों में यह भावनात्मक कारणों से होता है। आम तौर पर व्यक्ति अपने नकारात्मक भावनाओं को वचनों द्वारा जाहिर नहीं कर पाता। 6 दबी हुई भावनात्मक– गंदी लाल ऊर्जा के घनेपन से सम्बद्ध रहता है। नकारात्मक भावनाओं का 6 में रह जाने के कारण, ये भावनात्मक गंदी लाल ऊर्जा 8 तथा j में फंस जाती है, जिसके फलस्वरूप एक लम्बे समय में कड़ी गर्दन (stiff neck) बीमारी हो जाती है। कई केसों में कन्धा भी प्रभावित हो जाता है। इस प्रकार के रोगी गले

के संक्रमण से पीड़ित हो सकते हैं। अति गम्भीर केसों में 8, 8', 1 इतने ज्यादा प्रभावित हो जाते हैं कि रोगी ब्रौंक्रियल (Bronchial) अस्थमा से पीड़ित हो जाते हैं।

(क) GS

(ख) C" 6, C' L- यह महत्वपूर्ण है।

(ग) E 6 GBV/ C'

(घ) C' (रीढ़ की हड्डी)

(ङ) C' 3

(च) C' (8, 8', प्रभावित) G ~ V/E GBV

(छ) C' (AP) G ~ V /E GBV/ C'

(ज) C (1, 4)/ E R

(७) **कंधे में दर्द-- Painful Shoulder**

(क) C' (बगल में तथा AP) G ~ O – सिर के नजदीक C O नहीं करें। सुचारु रूप से C ... के पश्चात्, आम तौर पर रोगी को काफी अथवा पूर्ण राहत मिल जायेगी)/ E GBV

(ख) कभी–कभी कंधे का दर्द तनाव या भावनात्मक कारणों से होता है, जिससे 6 तथा 8 प्रभावित हो जाते है। 8 के गलत ढंग से चलने के कारण a पर प्रभाव पड़ता है, जो कंधे के दर्द का कारण बनता है।
C" 6/E GBV

(ग) C' 8/E GBV

(घ) उक्त चरण (क) से (ग) तक विशेष ध्यान दें।

(ङ) C 3

(च) C (1, 4)/ E R

(छ) कंधे का दर्द उच्च रक्तचाप या हृदय रोग से भी हो सकता हैं

(ज) आवश्यक्तानुसार, उपचार को दोहरायें।

(८) **गठिया– Gout**

1 तथा 4 पर खालीपन हो जाता है। 6 भी प्रवाहित होता है। बड़ी आंतें वायवी तौर पर गंदी होती हैं। K आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं। AP पर सूजन हो जाती है। उपचार दो भागों में विभाजित होता है– एक तो रोगी को राहत

पहुंचाना और दूसरे, प्रभावित 1, 4 और 6 को सामान्य करके गठिया को ठीक करना।

(क) GS

(ख) C' (पैरों तथा AP पर h, k, S) G~O

(ग) E (h, k, S) W – S में प्रेषित ऊर्जा का स्थिरीकरण न करें।

(घ) E (AP) GBO

(ङ) चरण (ख) तथा (घ) को दिन में कई बार करिये, जब तक कि रोगी को काफी अथवा पूर्ण राहत नहीं मिल जाती।

(च) C" 6/ E GBV

(छ) C' (1, 4) / E R

(ज) C 3

(झ) C K G~O/ E W

(ञ) यदि रोगी को पिछले सिर के क्षेत्र में दर्द या तकलीफ महसूस हो, तो C' (पिछले सिर का क्षेत्र, रीढ़ की हड्डी तथा 3)

(ट) उपचार को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए, ऊपर के चक्रों का T करिए, अर्थात C 7/E 7b GBV तथा C (8, 9, 10, bh)/ E GV'

(ठ) अगले कई दिनों तक समस्त उपचार प्रतिदिन एक बार करें।

(६) **पतनकारी संधिवात–औस्टीयो आर्थिराइटिस– Degenerative Arthiritis- Osteo arthritis**

1 अस्थितंत्र (मय जोड़ों) को नियंत्रित व ऊर्जित करता है। बढ़ती उम्र के साथ 1 तथा अन्य चक्रों में का लचीलापन खत्म हो जाता है और धीरे–धीरे उन पर ऊर्जा का खालीपन हो जाता है। इस कारण से रीढ़ की हड्डी का कुबड़ापन तथा जोड़ों के कार्टिलेज (Cartilage) का पतन होता है। इस कारण से वृद्ध लोगों की टूटी हड्डी जुड़ने में ज्यादा समय लगता है। 1, 4, 6 और 5 आमतौर पर प्रभावित होते हैं।

(क) GS

(ख) C (प्रभावित बांहों या पैरों पर तथा AP पर)/ GO

(ग) E (AP) GBV' अथवा E (AP) G, B, O–Y (तेजी से घिसे हुए कार्टिलेज को पुनर्निर्माण करने हेतु O–Y का उपयोग)

(घ) यदि बांह प्रभावित है, तो C (a, e, H) / E R और यदि पैर प्रभावित है, तो C (h, k, S) / E R – H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) C (1, 4) / E R

(च) C" 6 / E W

(छ) C 5 / E W – सावधानी से

(ज) उक्त क्रम ८ (ट) के अनुसार

(झ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करिए।

(१०) **रिह्यूमैटोइड संधिवात– Rheumatoid Arthiritis**

1, 4, 5 और 6 प्रभावित होते हैं। L तथा प्लीहा वायवी तौर पर गंदे होते हैं। बहुत से केसों में मालूम पड़ता है कि इस रोग का भावनात्मक कारण होता है। 6 गलत ढंग से कार्य करता है, जिससे 1, L तथा प्लीहा प्रभावित हो जाते हैं। मैडिकल दृष्टिकोण से, इस प्रकार की संधिवात जोड़ के अंदरूनी झिल्ली (inner membmace called synovium) पर सूजन हो जाने का नाम है, जिससे लम्बे समय में जोड़ का कार्टिलेज (Cartilage) क्षतिग्रस्त हो जाता है।

(क) GS

(ख) C" 6, C' L / E 6 GBO

(ग) C' (प्रभावित पैर या बांह तथा उसके समस्त लघु चक्र तथा AP) G ⁓ O (यदि समुचित सफाई हो जाये, तो रोगी को आंशिक आराम मिलता है)

(घ) E (AP) GBV

(ङ) E (प्रभावित पैर या बांह के समस्त लघु चक्र) (W या R) – H अथवा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(च) C' (1, 4) / E R

(छ) C' 5 / E W– यदि रोगी को उच्च रक्तचाप है, तो E 5 न करें।

(ज) उक्त क्रम ८ (ट) के अनुसार

(झ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करिए।

(११) **Systematic Lupus Erythematosus- (यह रोग बहुधा महिलाओं में पाये जाने वाला विकार है, जिससे त्वचा पर तितली की तरह निशान पड़ जाते हैं)**

इसमें रिह्यूमैटोइड संधिवात की तरह ही वायवी दशा होती है, किन्तु ज्यादा गम्भीर हालत होती है। वायवी तौर पर सम्पूर्ण शरीर प्रभावित होता है और उस पर खालीपन होता है। 1 पर बहुत ज्यादा खालीपन होता है। 4, 5, 6 भी प्रभावित होते हैं। 6 पर काफी घनापन होता है तथा गंदा होता है। L और प्लीहा वायवी तौर पर गंदे होते हैं। 9, 7 और 8 भी प्रभावित हो जाते हैं। 8 लिम्फैटिक तंत्र को नियंत्रित तथा ऊर्जित करते हैं। 8 तथा 7 थायमस को नियंत्रित तथा ऊर्जित करते हैं।

यदि 6b से गंदी घनी ऊर्जा K को जाती है तो K प्रभावित हो जाते हैं। जांच करने पर K पर घनापन मालुम पड़ता है। दिव्य दृष्टि से देखने पर रक्त काफी गंदा होता है।

जोड़ों में दर्द होता है और इस दशा के बाद साधारणतः पूरे शरीर में त्वचा पर चकत्ते पड़ जाते हैं। रोगी की ऊर्जा पर बहुत ज्यादा खोखलापन (depletion) होता है। यदि उपचारक तुलनात्मक तौर पर अधिक शक्तिशाली नहीं है, तो रोगी प्राणशक्ति के शीघ्र खपत हो जाने के कारण, उसके (रोगी) द्वारा उपचारक से प्राणशक्ति खींच लेने के कारण उपचारक के आंशिक रूप से खालीपन (depletion) हो सकता है।

(क) GS (२)

(ख) C" 6, C' L/E 6 GBO/ C' (6, L) —
इस क्रिया से समस्त शरीर की सफाई होती है। रोगी को पसीना आ सकता है।

(ग) C' Lu/ E Lu (Lub के माध्यम से) GOR – इसका रक्त पर सफाई तथा ताकत पहुंचने का प्रभाव पड़ता है। E O के समय, अपनी उंगलियां रोगी के सिर से दूर इंगित करिए।

(घ) C' (पैरों तथा बांहों पर तथा a, e, H, h, k, S) G ~ O — यदि सफाई ठीक हो जाये, तो दर्द कम हो जायेगा तथा चकत्ते हल्के पड़ जायेंगे।

(ङ) E (प्रभावित जोड़ों पर) G BO — कई उपचारों बाद या कई सप्ताहों के बाद जब दशा सुधर जाये, तब E (जोड़ों पर) GV'

(च) E (a, e, H, h, k, S)/E R – H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(छ) C K G~O/E W

(ज) C' (1, 4)/ E R

(झ) C' 5/ E W -- यदि रोगी को उच्च रक्तचाप हो, तो तब E न करें।

(ञ) C 7/ E थायमस (7b के माध्यम से) GV'

(ट) C' (8, 8')/ E GBV

(ठ) C' (9, 10, 11, bh)/ E GBV'

(ड) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें। प्राण उपचार कई महीनों अथवा लगभग एक साल तक चल सकता है।

(ढ) इस रोग का उपचार करने के लिए काफी शक्तिशाली तथा उन्नत कुशल उपचारक की जरूरत पड़ती है। यदि उपचार ठीक तरह हो, तो कई उपचारों बाद दिखाई देने वाला अथवा काफी सुधार होगा। रोगी को भी अपने नकारात्मक भावनाओं और विचारों को कम से कम करके सहयोग प्रदान करना होगा। इसके लिए उसका शाकाहारी भी होना आवश्यक है।

(१२) खेलकूद की चोट– Sports Injuries

खेलकूद की चोटों में यदि प्राणशक्ति उपचारक एक विशेषज्ञ उन्नत प्राणशक्ति उपचारक हो और रोगी ग्राह्यशील हो, तो प्राण शक्ति उपचार बहुत प्रभावी होता है। कई केसों में अनाड़ी के दृष्टिकोण से परिणाम चमत्कारी होते हैं।

यह आवश्यक होगा कि प्रमुख खेल की टीमों में एक प्राणशक्ति उपचारक रहे, जो खेलकूद की चोटों का विशेषज्ञ हो। इसका प्रतिपक्षी टीम के मुकाबले में बहुत बड़ा लाभ होगा। चीन में कुछ राष्ट्रीय खेलों की टीम में खेलकूद की चोटों को वहीं पर ठीक करने के लिए प्राणशक्ति उपचारक अथवा मैडिकल ची–कुंग (Chi-Kung) उपचारक रखा जाता है। यह उनको आवश्यक्तानुसार प्राणशक्ति का बढ़ावा (Boost) दे सकता हैं। इसका वर्णन आगे अध्याय ३६ में किया गया है।

(१३) **मांस पेशी की ऐंठन– Muscle Cramps**

(क) यदि AP पैरों पर है, तो C (पूरे पैरों पर, विशेष तौर पर h, k, S) G~O/ E(h, k, S) E R – S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ख) C (AP) G ~O /E GOR'

(ग) C (1 ,4) /E R

(१४) **बरसा की सूजन– Bursitis**

बरसा एक स्लिपरी ऊतक होता है, जो तंतु पेशियों को हड्डी को ऊपर करने की सुविधा देता है। इसमें की सूजन का यह रोग होता हैं । इसका उपचार उपरोक्त क्रम ५ में वर्णित उपचार की भांति करें।

(१५) **तनाव– Strain**

(क) C' (AP) G~O / E B (सुकून पहुंचाने तथा स्थानीयकरण प्रभाव हेतु) (O – R)' (ठीक होने की गति में तेजी लाने के लिए) – यदि यह पूरी प्रक्रिया ठीक से हो, तो रोगी को तुरन्त आराम मिलता है।

(ख) C (1, 4) / E R

(ग) रोगी को उपचार किये भाग को आराम देना चाहिए तथा वह अधिक श्रम न करे।

(१६) **मोच– Sprain**

(क) C' (AP) G ~O / E B (सुकून पहुंचाने तथा स्थानीयकरण प्रभाव हेतु)

(ख) उपचार की गति में तेजी लाने के लिए, E (AP) O – R, O – Y

(ग) यदि उक्त चरण (क) और (ख) ठीक हो जाये, तो तुरन्त ही आराम मिल जाता है।

(घ) C (1, 4) / E R

(ङ) रोगी को उपचार किये भाग को आराम देना चाहिए तथा वह अधिक श्रम न करे।

(१७) स्नायुओं का फटना— **Torn Tendons**

Tendon is strong band or cord of tissue forming termination and attachment of fleshy part of muscle.

यदि स्नायु (Tendon) पूरी तौर पर फट गया है, तो उसे परस्पर सिलवाना चाहिए। उपचार की गति को तेज करने के लिए प्राणशक्ति उपचार किया जा सकता है।

(क) व (ख) — उपरोक्त क्रम १५ (क) व (ख) के अनुसार करें।

(ग) C 6/ E W

(घ) उपचार सप्ताह में तीन बार करें।

(१८) **हड्डी का सरक जाना— Dislocation**

(क) दर्द कम करने अथवा सुन्न करने के लिए, C' (AP) G ~ O / E G B'

(ख) हड्डियों को अपने स्थान पर लाना चाहिए। यह विशेषज्ञ द्वारा किया जाना चाहिए।

(ग) उपचार की गति को तेज करने के लिए, E (AP) O – Y, O – R

(घ) C (1, 4)/E R

(ङ) C 6 /E W

(च) उपचार सप्ताह में तीन बार करें।

अध्याय – २०

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– रक्त की खराबियां

Blood Disorders

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.३०५
२.	लाल रक्त कण एवम् हीमोग्लोबीन की कमी हो जाना– Anemia (एनीमिया)	५.३०६
३.	तीव्र एलर्जी– Acute Allergy	५.३०७
४.	प्रतिरक्षात्मक रोग– Auto- Immune Ailment	५.३०८
५.	अधिश्वेतरक्तता– Leukemia	५.३०८

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– रक्त की खराबियां

Blood Disorders

संदर्भ :

भाग २, अध्याय ८ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (६)

(१) **सामान्य– General**

कौन चक्र किसका नियंत्रण और ऊर्जन करता है :–

चक्र	किसका
1 (इसका ठीक कार्यरत होना 9 पर, पीयूष ग्रंथि के माध्यम से निर्भर करता है)	अस्थि–तंत्र मय अस्थि-मज्जा, जो रक्त कण बनाते हैं, इस कारण से रक्त कणों का उत्पादन।
1 (a, e, H, h, k, S के माध्यम से)	बाहों और पैरों में स्थित अस्थि-मज्जा
1	रीढ़ की हड्डी में स्थित अस्थि–मज्जा
1 (7 के माध्यम से)	पसलियां, छाती की हड्डी, कंधे की हड्डियों में स्थित अस्थि-मज्जा
1 (bh के माध्यम से)	खोपड़ी में स्थित अस्थि–मज्जा

वयस्कता से पहले, रक्त कण सभी हड्डियों में स्थित अस्थि–मज्जा में बनता है। वयस्को में, यह मुख्यतया कूल्हे की हड्डियों, रीढ़ की हड्डी, पसलियां तथा छाती की हड्डी में बनते हैं।

रक्त की गुणवत्ता पर निम्न चक्रों का प्रभाव पड़ता है।

चक्र	किसके माध्यम से
6 मुख्य तौर पर	L तथा आमाशय
5	प्लीहा
3	K
4	छोटी और बड़ी आंतें

L, प्लीहा, K तथा बड़ी आंते रक्त को शुद्ध करते हैं।

(२) **लाल रक्त कण एवम होमोग्लोबीन की कमी हो जाना— Anemia**

यह आम तौर पर मासिक धर्म के रक्तस्त्राव अथवा आंतों के रक्तस्त्राव के कारण होता है। यह लौह तत्वों के लेने से ठीक किया जाता है। एनीमिया अन्य कारणों से भी होता है।

इसके 1 का रक्त कोण के उत्पादन, 5 का पुराने क्षतिग्रस्त रक्त कोशिकाओं को नष्ट करने, 6 और 4 का हाजमा और अवशोषण करने एवम् 9 का अन्य चक्रों को नियंत्रण करने हेतु उपचार किया जाता है।

(क) GS (२)

(ख) C' 1 G~O/ E R

(ग) C (बांहों तथा पैरों पर एवम् a, e, H, h, k, S पर विशेष तौर पर) / E (a, e, H, h, k, S) R – H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(घ) C 7 / E 7b GR

(ङ) C (4 तथा निचला पेट का क्षेत्र पर) / E 4 GR'

(च) C" 6, C' L/ E 6 GV'

(छ) C 5 / EV – सावधानी से

(ज) C 9 / E (कम G) V'

(झ) जब तक आवश्यक्ता हो, सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(३) तीव्र एलर्जी– Acute Allergy

सभी प्रकार की प्राण ऊर्जा एलर्जी को कुछ हद तक ठीक करते हैं, किन्तु सबसे अच्छा नारंगी तथा लाल प्राण होते हैं। कुछ किस्मों की तीव्र अथवा गम्भीर एलर्जी मात्र इन्हीं दो प्राणों द्वारा उपचार किये जाने पर ठीक हो जाते हैं। नारंगी प्राण सफाई तथा निष्कासन प्रभाव तथा लाल प्राण शक्तिदायक प्रभाव करता है।

उपचार दो भागों में विभक्त है – एक तो रोगी को राहत पहुंचाना तथा दूसरे धीरे-धीरे बीमारी का उपचार करना। रक्त शुद्धिकरण की तकनीक जो अध्याय ६ के क्रम १० (३०) में वर्णित है, जल्दी सुधार के लिए अपनाई जाती है। T (9, 6, L तथा 1) करना पड़ता है।

(क) GS (२)

(ख) C Lu / E Lub GOR – G तथा O रक्त की शुद्धि के लिए तथा R रक्त को शक्ति पहुंचाने के लिए– E O के समय, अपनी उंगलियां रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(ग) C (AP) G ~ O , जैसे- जैसे सफाई होती जायेगी, वैसे-वैसे AP हल्का होता जायेगा / E R

नोट : – C O सिर, हृदय, प्लीहा या इनके बहुत नजदीक न करें) ऐसे केसों में, C (AP) G ~ V / E R करें।

(घ) उक्त चरण (ख) तथा (ग) रोगी को राहत पहुंचाने के उद्देश्य से है।

(ङ) C 9 / E (कम G) V' – मास्टर चक्र होने के कारण, इसका उपचार जरूरी है।

(च) C' 1 G ~ O / E R

(छ) उक्त क्रम २ (ग) के अनुसार

(ज) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) GV'

(झ) C' 6, C' L / E 6 GV'

(ञ) अनुभवी उन्नत प्राणशक्ति उपचारक C (6, L) G ~ O / E W कर सकते हैं।

(ज) उक्त चरण (ङ) से (ञ) तक धीरे-धीरे एलर्जी को ठीक करने के लिए हैं।

(४) प्रतिरक्षात्मक रोग-- **Auto- Immune Ailment**

पूरा शरीर वायवी तौर पर काफी गंदा होता है। 1, 7, थायमस ग्रंथि तथा 9 पर विपरीत प्रभाव हुआ होता है। 1, बाहों तथा पैरो के लघु चक्रों पर खालीपन होता है। हमेशा तो नहीं, किन्तु आम तौर पर 6 तथा L पर घनापन होता है और वे भूरी सी लाल प्राण ऊर्जा से भरे होते हैं। 5 और प्लीहा वायवी तौर पर काफी गंदे होते हैं। 6 तथा L के नजदीक होने के कारण, K प्रभावित हो सकते हैं।

(क) GS (कई बार)

(ख) उक्त क्रम ३ (ख) के अनुसार

(ग) C' 1 G ~O/ E R

(घ) C (बाहों तथा पैरों पर, a, e, H, h, k, S — विशेष तौर इन लघु चक्रों पर) G ~ O/ E (a, e, H, h, k, S) R —H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) C 7 /E 7 (7 b के माध्यम से) GV

(च) C" 6/ E GV — अनुभवी उन्नत प्राणशक्ति उपचारक इसके स्थान पर C (6, L) G ~ O/ E 6 BGO कर सकते हैं।

(छ) C 5 G /E GV — सावधानी से

(ज) C' K G ~O /E R

(झ) C' 3

(ञ) C' (8, 9) / E (कम G) V'

(ट) जब तक आवश्यक्तानुसार हो, उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(५) अधिश्वेतरक्तता (ल्यूकीमिया)— **Leukemia**

इस रोग में निम्न चक्र प्रभावित होते है :—

1 – खालीपन, अधिक सक्रियता, गंदी पीली लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरे हुए।

7 तथा 9 – खालीपन, कम सक्रियता, गंदी पीली लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरे हुए।

उक्त चक्र भी गलत ढंग से कार्य कर रहे होते हैं। प्लीहा ल्यूकीमिया के कोशिकाओं से बुरी तरह प्रभावित होता है और 5 पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

इन चारों चक्रों का T आवश्यक है। अन्य मुख्य तथा बांहों तथा पैरों के लघु चक्र भी प्रभावित होते हैं।

दीर्घकालीन और तीव्र ल्यूकीमिया में अन्तर 1 के अधिक सक्रियपन तथा 1, 7 तथा 9 में भरी हुई गंदी पीली रंग की रोगग्रस्त ऊर्जा की मात्रा के अन्तर से है। तीव्र ल्यूकीमिया में सामान्य आकार के मुकाबले, 1 ढाई से तीन गुना अधिक सक्रिय हो जाता है तथा गंदी पीली रोगग्रस्त ऊर्जा ४० से ६० प्रतिशत हो जाती है। तीव्र ल्यूकीमिया का लक्षण पहले से पता लगा पाना मुश्किल होता है। दीर्घकालीन ल्यूकीमिया में 1 इतना अधिक सक्रिय नहीं होता और गंदी पीली रोगग्रस्त ऊर्जा ५ से १० प्रतिशत होती है। ज्यादा अधिक तीव्र केस नहीं होने में, यह ऊर्जा १० से ४० प्रतिशत तक रहती है।

(क) GS (कई बार) G

(ख) C (11, 10, 9, bh, 8) G ~ V / E eV – इसमें 9 के T पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

(ग) C' 7 G ~ V/E 7 (7b के माध्यम से) eV – यह चरण बहुत महत्वपूर्ण है।

(घ) C Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GO – इससे रक्त का शुद्धिकरण होता है। E O के समय अपनी उंगलियां रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(ङ) C 5 G ~ V/E eV – E इस इच्छा से करें कि इससे ल्यूकीमिया की कोशिकाएं टुकड़े–टुकड़े हो जांयें। सावधानी बरतें। 5 तथा 3 की पुनः जांच करें। यदि यह अधिक सक्रिय हों, तो C / E IB से संकुचन करें। यह काफी महत्वपूर्ण है। जो ज्यादा कुशल उन्नत प्राणशक्ति उपचारक नहीं है, वे मात्र C 5 G ~ V / E V करें।

(च) C' (रीढ़ की हड्डी) G ~ O – सिर के नजदीक या गर्दन के आगे न करें।

(छ) C' 1 G ~ O (C ५० से १०० बार करें)– C' अत्यन्त आवश्यक है। E IB संकुचन करने हेतु, 1 की पुनः जांच करें।

(ज) क्रम संख्या २ (ग) के अनुसार

(झ) E 1 eV – ल्यूकीमिया की कोशिकाओं को तोड़ने की इच्छा से। समस्त अस्थि तंत्र – रीढ़ की हड्डी, पसलियों, छाती की हड्डी, कूल्हे की हड्डियों और बांहों

तथा पैरों की हड्डियों में eV को जाते हुए दृश्यीकृत करें। E 1 के दौरान उपचारक को कुछ हद तक अपनी इच्छा शक्ति का इस्तेमाल करना पड़ेगा, क्योंकि आम तौर पर मूलाधार चक्र की eV को ग्रहण न करने की प्रवृत्ति होती है। E 1 के दौरान, उपचारक को यह भी इच्छा करनी चाहिए कि 1 अधिक सक्रिय (overactivated) नहीं होगा। यह चरण अति महत्वपूर्ण है। ठीक प्रकार से इस चरण की प्रक्रिया करने के लिए एक अनुभवी और कुशल उन्नत प्राणशक्ति की जरूरत पड़ती है।

(ञ) जो कम कुशल उन्नत प्राणशक्ति उपचारक है, वे उक्त क्रम (झ) के स्थान पर E 1 R करें – इसमें काफी समय लगेगा, क्योंकि इसमें बहुत खालीपन होता है। यह अति महत्वपूर्ण है।

(ट) (C" 6, C' L)G ~O/E 6 R

(ठ) C' (3, 2, 4) / E(2, 4) W

(ड) जब तक आवश्यकता हो, सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

रोगी को पूर्ण शाकाहारी होना चाहिए ताकि वह स्वास्थ्य दृष्टि के साथ-साथ, क्रूरता तथा हिंसा से बच सके। कर्मानुसार, दया करने से ही दया प्राप्त होती है। इससे रोगी के शीघ्र उपचार में मदद मिलती है। इसके अतिरिक्त उसको दान करना चाहिए– धर्मार्थ एवम् सुपात्र दान (न कि कुपात्रों या अपात्रों को दान), तथा द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन जिसका विवरण अध्याय ३ में दिया है, करना चाहिए ताकि सकारात्मक कर्म कर सके। उसको यह भी सलाह दें कि क्षमा का नियम अपनाये, अर्थात दूसरों को क्षमा करें और परमात्मा से क्षमा मांगे।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– मस्तिष्क तथा तंत्रिका तंत्र की खराबियां

Disorders of the Brain and Nervous System

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.३१२
२.	सातवीं क्रेनियल नाड़ी की फारिज– Bell's Palsy	५.३१३
३.	चेहरे की आदतानुसार अनैच्छिक मांसपेशियों का सिकुड़न– Facial Tics (Tic means habitual spasmodic contraction of muscles, especially of face, trigeminal neuralgia)	५.३१३
४.	सुन्नपना– Numbness	५.३१३
५.	मिरगी– Epilepsy	५.३१४
६.	पार्किन्सन का रोग– Parkinson's disease (or Paralysis Agitans)	५.३१५
७.	मस्तिष्क शोथ तथा मस्तिष्क सुषुम्नाच्छद शोथ– Encephalitis and Meningitis	५.३१७
८.	मानसिक पिछड़ापन– Mental Retardation	५.३१७

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– मस्तिष्क तथा तंत्रिका तंत्र की खराबियां

Disorders of the Brain and Nervous System

संदर्भ :

भाग २, अध्याय ६, तथा ५ और भाग ४, अध्याय १४, क्रम संख्या (३) व (४)

(१) सामान्य– General

मस्तिष्क और तंत्रिका को 11 और 10 नियंत्रित और ऊर्जित करते हैं। 9 भी मस्तिष्क तथा तंत्रिका तंत्र को प्रभावित और ऊर्जित करता है। bh आतंरिक सिर को जाने वाली प्रमुख रक्तनलियों को नियंत्रित और ऊर्जित करता है, जो मस्तिष्क, आंखों, कानों और सिर के अन्दर अन्य अंगों को रक्त उपलब्ध करती हैं। यह बाह्य रक्त नलिकाओं को जो खोपड़ी तथा चेहरे को रक्त उपलब्ध करती है, भी नियंत्रित और ऊर्जित करता है। bh समस्त सिर के क्षेत्र को ऊर्जित करता है। j, 8, 8' शुद्ध रक्त ले जाने वाली नलियों (carotid arteries) को प्रभावित और ऊर्जित करते हैं। 7 तथा थायमस उच्च चक्रों के और उनसे सम्बन्धित अंगों को नियमन तथा समन्वय करने में सहायता करते हैं।

1, 2 तथा 4 की प्राण ऊर्जा के अंश परावर्तित (transmutation) होकर सिर के चक्रों तथा मस्तिष्क के उपयोग में आती हैं। इसलिए निम्न चक्रों की स्वस्थता पर सिर के चक्रों, मस्तिष्क और सिर के अन्दर के अंगों की स्वस्थता निर्भर करती है। मानवीय शरीर एक वृक्ष के समान है, जिसमें भूमि से पोषककारक तत्त्व वृक्ष को स्वस्थ करने के लिए ऊपर जाते हैं।

आंखें और कान 11, 10, 9 द्वारा नियंत्रित और ऊर्जित होते हैं। आंखों के और कानों के अपने–अपने लघु चक्र होते हैं। bh और j समस्त सिर (आंखों और कानों सहित) को नियंत्रित और ऊर्जित करते हैं। गंध का संवेदन 11, 10, 9 तथा n द्वारा, स्वाद का संवेदन 11, 10, 8 तथा j द्वारा और स्पर्श का संवेदन 11, 10 तथा 1 द्वारा नियंत्रित और ऊर्जित होता है।

उपरोक्त चक्रों की स्थिति चित्र ४.१३ में दर्शायी गई है।

(२) **सातवीं क्रेनियल नाड़ी की फारिज— Bell's Palsy**

इस रोग में 6, j, 9 और 10 विपरीत रूप से प्रभावित होते हैं तथा 11, bh, कानों के लघु चक्र और 8 आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं।

(क) GS (१ या २ बार)

(ख) C'' 6 / E GBV

(ग) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) GV'

(घ) C' (9, 10, 11, bh, प्रभावित t, प्रभावित कान का लघु चक्र और प्रभावित j) G~V – यह महत्वपूर्ण है / E GV

(ङ) C' (AP) G~V / E GV

(च) C 8 G~V /E GV

(छ) उपचार की गति तीव्र करने के लिए C (4, 1)/ E W

(ज) जब तक आवश्यक हो, उपचार को प्रतिदिन एक बार करें।

(३) **चेहरे की आदतानुसार मांसपेशियों का सिकुड़न — Facial Tics (Tic means habitual spasmodic contraction of muscles, especially of face, trigeminal neuralgia)**

इसमें 10, 9, आंख का लघु चक्र और t प्रभावित होते हैं और 11, bh तथा 8 आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं। यदि यह भावनात्मक कारण से उत्पन्न हुआ है, तो 6 भी प्रभावित रहता है।

(क) GS (१ या २ बार)

(ख) C 7 / E 7b GV — 7 को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें।

(ग) C'' 6, C' L / E 6 GVB

(घ) C' (11, 10, bh, प्रभावित t) G~V /E GV

(ङ) C (j, 8, 8') /E GV

(च) C (4, 1) / E W

(छ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(४) **सुन्नपना— Numbness**

यह अनेक कारणों से हो सकता है।

(क) विटामिन की कमी से जिससे 1 और बांहों तथा पैरों के लघु चक्रों पर प्राणिक खालीपन हो जाता है। इस केस में,

C' (1, बांहों व पैरों पर, AP, a, e, H, h, k, S) G ~ O/E (1, a, e, H, h, K, S और AP) GOR' (H और S का स्थिरीकरण न करें) – यदि AP सिर, हृदय, प्लीहा या नाजुक अंगों पर या इनके पास हो तो O के स्थान पर V का उपयोग करें। यदि उपचार ठीक प्रकार से हुआ तो अधिकतर केसों में सुन्नपना तुरन्त ही समाप्त हो जायेगा।

(ख) यदि सुन्नपना अग्न्याशय के मधुमेह (Pancreatic Diabetes) के कारण हो, तो इसका उपचार उक्त चरण (क) तथा अध्याय १८ के क्रम संख्या (२) अथवा (३) में वर्णित उपचारों के साथ सम्मिलित रूप से करना होगा।

(ग) सुन्नपना स्ट्रोक (stroke), दुर्घटना (accident) और अन्य कारणों से भी हो सकता है। प्राणशक्ति उपचार इसके कारण तथा रोगी की जांच के परिणामों पर निर्भर करेगा।

अथवा

आप मात्र T (सभी चक्र, सिवाय 5 व 3 के) करें और E (5, 3) करें अथवा नहीं भी करें, जो कि परिस्थिति पर निर्भर करेगा।

(५) **मिरगी– Epilepsy**

6 पर घनापन होता है तथा यह अधिक सक्रिय होता है। 10, 9 तथा bh पर विपरीत प्रभाव और 11, j, 8 पर आंशिक प्रभाव होता है। बांये तथा दांये मस्तिष्क का संतुलन सही नहीं होता। जबकि मस्तिष्क के एक भाग में खालीपन रहता है, दूसरे भाग में घनापन होता है। बांये तथा दांये मस्तिष्क के मध्य में भूरी सी ऊर्जा भरी होती है। सिर की भूरी सी ऊर्जा 6 की गंदी ऊर्जा से सम्बन्धित होती है। जब रोगी भावनात्मक रूपसे उथल-पुथल में (upset) रहता है, तब मिरगी का दौड़ा पड़ सकता है।

(क) GS (२)

(ख) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) GV'

(ग) C (6, L) — इसके स्थान पर अनुभवी, कुशल उन्नत प्राणशक्ति उपचारक 6 को साफ करने की तकनीक, जिसका वर्णन अध्याय ६ के क्रम संख्या १० (२६) में दिया है, अपना सकते हैं।

(घ) E 6 GB – E B करते समय इस अधिक सक्रिय वाले चक्र को छोटा करके सामान्य करने की इच्छाशक्ति करें।

(ङ) C' (समस्त सिर, bh, 11, 10, 9, j, 8 और 8') G ~ V – बांये तथा दांये मस्तिष्क के मध्य में भूरी सी ऊर्जा की अच्छी प्रकार सफाई करें।

(च) E' (11, 10, 9, bh, j, 8, 8') G ~ V— इस उपचार में 9, 10 और bh पर विशेष ध्यान दें।

(छ) C (4, 1) / E W

(ज) सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

(६) पार्किन्सनका रोग— Parkinson's Disease or Paralysis Agitans

इस रोग में मस्तिष्क असंतुलन से पेशियों में भी असंतुलन उत्पन्न होता है, जिनमें उनमें अपने आप ही कम्पन आदि विकार हो जाते हैं। यह रोग मध्य आयु से प्रारम्भ होता है। सिर एक ओर टेढ़ा हो जाता है और कड़ा हो जाता है। शरीर एक ओर झुक जाता है, बाहें भी झुक जाती हैं और उंगलियां टेढ़ी हो जाती हैं। अंगूठे अंगुलियों के पास एक गोली के आकार के क्रम में लय से (rhythmically) घूमते रहते हैं। जांघें थोड़ी सी शरीर के मध्य भाग की तरफ टेढ़ी हो जाती हैं। रोगी बहुत छोटे–छोटे बनावटी नजाकत से (mincing) कदम रखता है। चेहरे की त्वचा चिकनी और बगैर झुर्रियों के होती है, जिससे वह एक मुखौटा सा लगता है, चेहरे पर किसी प्रकार का भाव नहीं आता। वाणी धीमी होती है और वह स्वयं ही कुछ बार–बार बड़बड़ाता रहता है।

इस रोग में 1 पर खालीपन होता है, यह चक्र कम सक्रिय होता है और इसमें गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा भरी होती है। 6 पर घनापन होता है, यह चक्र अधिक सक्रिय होता है और इसमें गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा भरी होती है। bh और 9 पर खोखलापन होता है, ये चक्र अधिक सक्रिय होते हैं तथा इनमें गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा भरी होती है।

रीढ़ की हड्डी तथा उसके आसपास का भाग गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से अवरुद्ध रहते हैं। शरीर पर ऊर्जा का बहुत खोखलापन (depletion) होता है। अन्य चक्रों पर भी प्रभाव पड़ता है। उपचारक को रोगी के मुकाबले में काफी शक्तिशाली होना पड़ेगा, अन्यथा वह स्वयं ही थक जायेगा और उसकी ऊर्जा खाली हो जाएगी। इस रोग की मूल जड़ मूलाधार चक्र के गलत ढंग से कार्य करने से है। स्वस्थ

व्यक्ति में 1 से प्राण ऊर्जा ऊपर के चक्रों (मय bh) के जाती है, जो उनके प्राण ऊर्जा की जरूरतों को पूरा करती है। पार्किन्सन रोग में 1 में जो गंदी रोगग्रस्त लाल ऊर्जा होती है, उससे रीढ़ की हड्डी तथा उसके अगल–बगल के क्षेत्र और 6 अवरुद्ध हो जाते हैं। 9 तथा bh भी अवरुद्ध हो जाते हैं। इन्हें 1 द्वारा परावर्तित ऊर्जा के न मिलने के फलस्वरूप, इस प्रकार की ऊर्जा की कमी को पूरा करने के लिए 9 तथा bh को कड़ी मेहनत करनी पड़ती है जिसके कारण वे अधिक सक्रिय हो जाते हैं और उन पर खालीपन हो जाता है। bh के गलत रूप से कार्य करने के कारण मस्तिष्क में कुछ तंत्रिकाओं की कोशिकाओं (nerve cells) का पतन (degeneration) हो जाता है, जिसके कारण डोपामीन (Dopamine) का उत्पादन होता है तथा उसकी कमी हो जाती है।

(क) G S (कई बार) G

(ख) C' (रीढ़ की हड्डी तथा उसका आसपास का क्षेत्र) O ~ V — O को सिर के नजदीक, गर्दन के आगे उपयोग न करें।

(ग) C' 1 G ~ O (इसको ५० से १०० बार करें) / E 1 R — यह चरण अति महत्वपूर्ण है।

(घ) C' 3

(ङ) C (2, 4) / E R

(च) (C" 6, C' L) G ~ O / E 6 GOR — इसको अनुभवी तथा कुशल प्राणशक्ति उपचारक करें।

(छ) C Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GOR— इसका पूरे शरीर पर सफाई तथा शक्ति प्रदान करने का प्रभाव पड़ता है। E O के समय अपनी उंगलियां रोगी के सिर की ओर इंगित न करें।

(ज) C 7/ 7b (कम G) V' - यह चक्र ऊपर के चक्रों का नियमन तथा समन्वयन करता है।

(झ) C 5 /E W — सावधानी से

(ञ) C (8, 8', j) G ~ V / E V

(ट) C' (समस्त सिर पर, 11, 10, 9, bh) G ~ V / E eV तथा E (bh और 9) B द्वारा इन चक्रों का संकुचन करें। इस चरण में (9, bh) के C और E पर विशेष ध्यान दें। यह चरण अति महत्वपूर्ण है।

(ठ) C (बाहों तथा पैरों पर, a, e, H, h, k, S) G ~ O / E (a, e, H, h, k, S) R— H और S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ड) पहले कुछ हफ्तों तक उपचार को प्रतिदिन करें। बाद में जब तक जरूरत हो, सप्ताह में तीन बार उपचार करें।

सामान्य तौर पर कुछ हफ्तों के उपचार के बाद कुछ सुधार दिखाई देगा, लेकिन उपचार कम से कम कई महीनों तक करना पड़ेगा।

रोगी को शाकाहारी होने की सलाह दें। उसको दान द्वारा (सुपात्रों तथा धर्मार्थ, न कि अपात्र अथवा कुपात्र को), सत्कर्म करने तथा दूसरों को क्षमा करने एवम् परमात्मा से स्वयं क्षमा मांगने के लिए प्रेरित करें।

(७) **मस्तिष्क शोथ तथा मस्तिष्क सुषुम्नाच्छ शोथ— Encephalitis and Meningitis**

(क) GS (२)

(ख) C' (समस्त सिर, 11, 10, 9, bh, j) G ~ V / E GBV— यह चरण बहुत महत्वपूर्ण है और दिन में कई बार करें।

(ग) C (8, 8') / E GV— यह लिम्फैटिक तंत्र को उत्तेजित करने के लिए है।

(घ) C 7 / E थायमस (7 b के माध्यम से) G V'

(ङ) C' (रीढ़ की हड्डी)

(च) C Lu/E Lu (Lub के माध्यम से) GO— इसके द्वारा रक्त पर सफाई का प्रभाव पड़ता है। E O करते समय अपनी उंगलियों को रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(छ) C" 6, यह बहुत महत्वपूर्ण है / E GBV

(ज) C 5 / E GV'— सावधानी से

(झ) C (4, 2) / E W

(ञ) C (3, 1)

(ट) C (पैरों तथा बाहों पर, a, e, H, h, k, S) / E (a, e, H, h, k, S) V —H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ठ) जब तक आवश्यक्ता हो, प्रतिदिन उपचार करें।

(८) **मानसिक पिछड़ापन— Mental Retardation**

11, 10, 9, bh और 8 भूरे से रंग के होते हैं और कम सक्रिय होते हैं। 1 तथा 2 प्रभावित हो जाते हैं और उनका उपचार करना पड़ेगा क्योंकि इनकी परावर्तित ऊर्जा

की उच्च चक्रों को आवश्यक्ता होती है और उनके द्वारा इस परावर्तित ऊर्जा की खपत होती है।

(क) GS (२)

(ख) C' (समस्त सिर, 11, 10, 9, bh, j, 8, 8') G ~ V

(ग) E (11, 10, 9, 8) GV' – E V के समय, चक्रों को बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें।

(घ) E (bh, j, 8') GV'

(ङ) C 7/ E 7b GV'

(च) C 6/E 6f W

(छ) C 4/E R

(ज) C' (2, 1) G ~ O/E R

(झ) उक्त क्रम (६) (ठ) के अनुसार

(ञ) अध्याय ३० के क्रम ११ में वर्णित तथा चित्र ५.२३ में दर्शाये क्रम (1) तथा (3) के अनुसार वितरणशील झाड़–बुहार सामने से 11 से 2 तक ऊपर से नीचे की ओर लगभग दस बार करें, फिर पीछे की ओर से 11 से 1 तक लगभग दस बार करें। इस विधि से मूल व यौन ऊर्जा ऊपर के चक्रों को मिलती है। ऊपर के चक्रों को 1 व 2 की ऊर्जा प्राप्त होती है, जो उनके सुधारुपूर्वक कार्य करने के लिए आवश्यक होती है। इसके बाद 1 व 2 की पुनः जांच करें। यदि आप पाएं कि वे आंशिक रूप से खाली हैं, तो E (1, 2) R करें।

(ट) अगले कुछ सालों तक, उपचार सप्ताह में तीन बार करें।

(ठ) इस उपचार के साथ, विशेष तौर पर शिक्षा प्रदान करके, उपचार में और सुधार लायें।

(ड) वृद्ध व्यक्तियों में इस उपचार को सप्ताह में एक या दो बार करके वृद्धत्व की कमजोरी का उपचार किया जा सकता है, अथवा वृद्धत्व की कमजोरी को रोका जा सकता है।

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– गिल्टी / गांठ (ट्यूमर) और कैंसर

Tumours and Cancer

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	साध्य ट्यूमर– Benign Tumour	५.३२०
२.	कैन्सर– सामान्य– Cancer-- General	५.३२१
3-	फैंफड़ों का कैन्सर– Lung Cancer	५.३३२
४.	छाती का कैंसर– Breast Cancer	५.३३२
५.	यकृत (जिगर) का कैंसर– Liver Cancer	५.३३३
६.	कोलन (बड़ी आंत का भाग) का कैंसर– Colon Cancer	५.३३३
७.	मस्तिष्क का कैंसर– Brain Cancer	५.३३३
८.	आंख का कैंसर– Eye Cancer	५.३३४
९.	अन्य प्रकार के कैंसर– Other Types of Cancer	५.३३५
१०.	श्री चोआ कोक सुई की टिप्पणी– Sri Choa Kok Sui's Note	५.३३५

नोटः– रक्त के कैंसर (Blood Cancer) अथवा अधिश्वेतरक्तता (Lukemia) के विषय में कृपया अध्याय २० का क्रम संख्या ५ देखें

ऊर्जा द्वारा शारीरिक रोगों का उपचार–उन्नत तकनीक तथा रंगीन ऊर्जा द्वारा उपचार– गिल्टी/ गांठ (ट्यूमर) और कैंसर

Tumours and Cancer

(१) **साध्य ट्यूमर– Benign Tumour**

ट्यूमर साध्य होते हैं अथवा हानिकर होते हैं। कैन्सर एक हानिकर ट्यूमर है। कोशिकाओं के कई गुना हो जाने में प्राणशक्ति की जरूरत होती है। यदि कोई अंग या उसका हिस्सा गंदी लाल ऊर्जा से लम्बे समय तक भरा रहता है तो उससे कोशिकाओं की असाधारण विकास या ट्यूमर हो जाने की प्रवृत्ति हो जाती है। दिव्य दर्शन से प्रभावित अंग या उसके भाग पर घनी गंदी लाल रंग की ऊर्जा दिखाई पड़ती है।

साध्य (benign) ट्यूमर में 9 तथा 6 अधिक सक्रिय होते हैं और घनेपन तथा रोगग्रस्त गंदी लाल ऊर्जा से भरे होते हैं। 1 अधिक सक्रिय होता है, इस पर ऊर्जा का घनापन या खालीपन रहता है तथा रोगग्रस्त गंदी लाल ऊर्जा से भरा होता है।

ट्यूमर का भौतिक, वायविक या भावनात्मक स्त्रोत होता है। बहुत कम केसों में, ची–कुंग विद्या के गलत अभ्यास द्वारा भी लम्बें समय में ट्यूमर हो सकता है– यह वायविक ट्यूमर का उदाहरण है। नकारात्मक भावनाओं का लम्बे समय तक रहने के कारण, शरीर के कुछ भागों में प्राणिक घनापन हो सकता है, जिससे एक लम्बे समय में कोशिकाओं का असाधारण विकास हो सकता है।

(क) GS (२)

(ख) C 9 G~V/ E eV

(ग) (C" 6, C' L) G~O/ E 6 GVB

(घ) C 1 G~O/ E W

(ङ) C' (AP) G ~ O / E IB (स्थानीय करण के लिए), IG, IO — यदि (AP) नाजुक हो तो इसके स्थान पर, C (AP) eV / E eV करें।

(च) जब तक आवश्यक हो, उपचार को सप्ताह में दो या तीन बार करें।

(२) **कैन्सर—सामान्य— Cancer- General**

कैंसर के रोग में 1 तथा 3 अति सक्रिय, खालीपन से युक्त और गंदी पीली—लाल या गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरे होते हैं, 6 अति सक्रिय, घनेपन से युक्त और गंदी पीली—लाल या गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरा होता है और 7 तथा 9 कम सक्रिय, खालीपन से युक्त और गंदी लाल —पीली या गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरे होते हैं।

साधारणतया, ऊपर के चक्र कम सक्रिय तथा खालीपन से युक्त होते हैं। यदि 9 तथा 7 को सामान्य कर दिया जाये, तब अन्य प्रभावित चक्र धीरे-धीरे सामान्य हो जाते हैं। प्रभावित अंग से सम्बन्धित चक्र अधिक सक्रिय होता है और गंदी लाल—पीली या गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरा होता है। यदि फैंफड़े प्रभावित होते हैं, तो 7b अधिक सक्रिय हो जाता है। यदि मस्तिष्क प्रभावित होता है, तो 9 तथा bh अधिक सक्रिय हो जाते हैं।

दिव्य दर्शन से देखा गया है कि कैंसर वाले अंग अथवा उसका भाग गंदी पीली—लाल या गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरा होता है। प्रभावित क्षेत्र में गंदी पीली और गंदी लाल रोगग्रस्त ऊर्जायें बहुत अधिक मात्रा में होती हैं, जिनके कारण कैंसर की कोशिकायें उग्र व अनियंत्रित गति से विकसित होती जाती हैं। जितनी ज्यादा गंदी पीली रोगग्रस्त ऊर्जा होती हैं, उतनी ही विकास की गति तीव्र होती है। यदि प्रभावित क्षेत्र में बहुत थोड़ी ही गंदी पीली रोगग्रस्त ऊर्जा अथवा बिल्कुल ही नहीं होती, तब कैंसर कोशिकाओं का विकास धीमा होता है। तीव्र कैंसर में प्रभावित चक्र और अंगों में गंदी पीली रोगग्रस्त ऊर्जा ४० से ६० प्रतिशत, आंशिक तीव्र (partially acute) कैंसर में २० से ४० प्रतिशत और कम तीव्र (mild) कैंसर में ० से २० प्रतिशत होती है। 1, 3 और

6 तीव्र केस में बहुत ज्यादा सक्रिय तथा कम तीव्र केस में इतने अधिक ज्यादा सक्रिय नहीं होते। तीव्र कैंसर का पहले से पता लगाना मुश्किल होता है।

कैंसर का स्रोत भौतिक, वायविक, भावनात्मक या कार्माण अथवा इनमें से एक या अधिक कारणों से होता है। नकारात्मक भावनायें जैसे क्रोध, नाराजगी अथवा घृणा के द्वारा 6 अधिक सक्रिय होता है, जिसके कारण 1 तथा 3 अधिक सक्रिय हो जाते हैं। इस कारण से एक लम्बे समय में कैन्सर बन सकता है। उदाहरण के तौर पर अति धूम्रपान तथा लम्बे समय तक नकारात्मक भावनाओं द्वारा फैंफड़ों का कैन्सर हो सकता है। यह प्रतीत होता है कि लम्बे समय तक नकारात्मक भावनायें जैसे क्रोध, नाराजगी या घृणा, कैन्सर बनने का प्रधान कारण होता है।

यदि कैन्सर नकारात्मक कार्माण कारणों से है, तो उसको ठीक करना बहुत मुश्किल है। नकारात्मक कर्मों की प्रकृति भौतिक क्रूरता होती है।

उपचार करने के लिए, दूसरों को वास्तविक या प्रतिभासात्मक आघातों के लिए क्षमा करने की आवश्यक्ता होती है। क्षमा करने से लम्बे समय तक पनप रही नकारात्मक भावनायें बाहर निकल जाती हैं, इसलिये वह उपचारात्मक होता है। दूसरों की ओर, अपनी ओर और सामान्य तौर पर जीवन की ओर, रोगी को प्रवृत्ति बदलने की आवश्यक्ता होती है। बजाय घृणा करने के मिष्ट और स्नेहमयी, बजाय अति आलोचनात्मक होने के सहनशीलता और प्रशंसात्मक, बजाय अधिक लालची तथा अधिक स्वार्थी होने के अधिक संवेदनशीलता तथा देने की भावना, बजाय नाराजगी तथा बदले की भावना के दूसरों को समझने तथा क्षमा करने और बजाय निराशात्मक तथा हतोत्साहता के प्रसन्नता तथा आशावादी प्रवृत्ति के द्वारा।

कैन्सर के उपचार में कई प्रकार के उपक्रम करने होंगे जो निम्न हैं:–

उपक्रम (१) – उचित मैडिकल उपचार–

उचित मैडिकल उपचार क्या है, यह वैज्ञानिकों, मैडिकल डाक्टर और रोगी निर्णय करें। प्रत्येक रोगी को किस प्रकार का उपचार लेना है, उसको चुनने

का अधिकार होना चाहिए। यदि इसमें कोई कृत्रिम, वैधानिक कानूनी अड़चन हो, तो उसे दूर कर देना चाहिए।

उपक्रम (२)– उचित प्राण–शक्ति उपचार–

इसके निम्न चरण होते हैं --

(क) C (AP तथा प्रभावित चक्रों पर) द्वारा इनमें की गंदी अथवा मटमैली रोगग्रस्त पीली सी लाल ऊर्जा को निकालकर। इससे कैन्सर की कोशिकाओं को विकास करने हेतु आवश्यक गंदी ऊर्जा नहीं मिलेगी। इससे शरीर स्वतः ठीक होगा अथवा कम से कम पतन की गति कम हो जायेगी।

(ख) इन रोगियों के उच्च चक्र कम सक्रिय होते हैं, विशेष तौर पर 9 तथा 7 जिनमें साधारणतया गंदी पीली सी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा नहीं भरी होती है। 6, 3 और 1 अधिक सक्रिय होते हैं और इनमें गंदी पीली सी लाल रोगग्रस्त ऊर्जा भरी होती है। इसलिये सभी चक्रों की सफाई करके, उच्च चक्रों को अधिक सक्रिय तथा निचले चक्रों का संकुचन करना पड़ता है। 9 तथा 7 के सामान्यीकरण से निचले चक्रों को सामान्य होने में सहायता मिलती है। किन्तु क्या प्रभावित चक्र स्थायी तौर पर सामान्य बने रहेंगे, यह कार्माण कारणों पर निर्भर करता है।

(ग) उपचार की गति को प्रतिरक्षात्मक तंत्र को सुदृढ़ करके बढ़ायी जाती है।

(घ) (१) AP पर mB या dB का प्रेषण करें -- आगे प्रेषण की जाने वाली नष्टकारी ऊर्जाओं को AP तक सीमित करने के लिये

(२) E (AP) (mG या dG, mO या dO)– यह कैन्सर की कोशिकाओं को तोड़ने के लिए है। अधिक उन्नत कुशल व अनुभवी प्राण शक्ति उपचारक इसके स्थान पर उपरोक्त चरण (१) में E (AP) dB करने के पश्चात् मात्र E deV कर सकते हैं। नष्टकारक ऊर्जायें नाजुक अंगों जैसे मस्तिष्क , आंखों,

कानों, हृदय और अग्न्याशय पर उपयोग नहीं करना चाहिए, किन्तु meV का उपयोग किया जा सकता है।

उक्त उपचार में रोगी को विशेषरूप से इन नष्टकारक ऊर्जाओं के लिये ग्रहणशील होना चाहिए, जिसको उपचारक सुनिश्चित कर ले, अन्यथा यह नष्टकारी ऊर्जायें रोगी से टकराकर वापस उपचारक पर आ जायेंगी जिसका उपचारक पर कुप्रभाव पड़ेगा।

नष्टकारी ऊर्जाओं का उपयोग स्वैच्छिक है। यह ध्यान रहे कि उपरोक्त प्रथम उपचार में उपक्रमों (१) व (२) में या तो mB, mG, mO का उपयोग करें, अथवा dB, dG, dO का– m और d प्रकृति की ऊर्जाओं का मिश्रण न करें।

उपक्रम (३)– रोगी का उचित आहार–

उचित आहार बहुत महत्वपूर्ण है। उसका वायवी शरीर बहुत भूरा सा होता है और उसकी रोगग्रस्त और उपयोग की हुई ऊर्जा के निष्कासन की योग्यता पर विपरीत प्रभाव होता है।

रोगी को शुद्ध शाकाहारी होना परमावश्यक है, अन्यथा उसकी हालत बिगड़ती चली जाएगी। मसालेदार भोजन नहीं लेना चाहिए। यांग (Yang) फलों तथा सब्जियों को भी नहीं लेना चाहिए। यांग (Yang) फल तथा सब्जी उसको कहते हैं, जिसको खाने से गर्मी महसूस होती है। मसालेदार खानों एवम् यांग भोजन में काफी लाल रंग की ऊर्जा होती है, जो रोग को बढ़ाती है।

उपक्रम (४)– उचित भावनाएं

नकारात्मक भावनाओं जैसे क्रोध, चिड़चिड़ापन, नाराजगी, हतोत्साहता आदि को निम्न कारणों से नहीं करना चाहिए।

(क) अधिकतर कैन्सर इनके लम्बे समय तक रहने के कारण होता है।

(ख) उनके द्वारा पहले से ही बहुत ही खाली (तथा कमजोर) शरीर पर और अधिक खालीपन होता चला जाता है, जिससे दशा और बिगड़ती चली जाती है।

(ग) इनके कारण मुख्य चक्रों का गलत ढंग से परिचालन होता है, जिसके कारण-शरीर के प्रतिरक्षात्मक तंत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

(घ) मुख्य चक्रों के गलत ढंग के परिचालन के कारण ठीक होना प्रायः नहीं होता। स्वस्थ शरीर को स्वस्थ चक्रों की आवश्यक्ता होती है।

उक्त नकारात्मक भावनाओं के स्थान पर सहनशीलता, क्षमा, शांति, प्रसन्नता या खुशी, दया, स्नेह, मृदुता, आशा और इसी प्रकार की सकारात्मक भावनायें होनी चाहिए। बहुत सी सकारात्मक भावनाएं गुलाबी रंग की ऊर्जा उत्पन्न करते हैं, जो एक प्रकार की भावनात्मक प्राण ऊर्जा है। गुलाबी रंग की ऊर्जा का चक्रों एवम मैरिडियनों पर सफाई करने का प्रभाव पड़ता है। दिव्य दर्शन से देखा जाता है कि गुलाबी ऊर्जा द्वारा चक्रों एव् मैरिडियनों की लाल गंदी ऊर्जा हटायी और परावर्तित की जाती है। चक्रों और मैरिडियनों की सफाई के फलस्वरूप प्राणशक्ति ऊर्जा स्वतंत्र रूपसे प्रवाहित होती है, जिससे चक्र सामान्य हो जाते हैं तथा शरीर स्वतः ठीक होने की योग्यता बढ़ती है।

कस्तूरी तथा गुलाब के तेल में काफी गुलाबी रंग की ऊर्जा होती है, जिनको रोगी ले सकता है। चूंकि अधिकतर रोग नकारात्मक भावनाओं द्वारा होते हैं, अतएव भविष्य में कस्तूरी और गुलाब के तेल द्वारा भावनाओं को सामान्य करने एवम् औषधि के काम में प्रयोग करने की सम्भावना हो सकती है। गुलाबी ऊर्जा का एक अन्य स्रोत गुलाबी रंग का क्वार्ट्ज़ (Rose Quartz) है। स्वच्छ Rose Quartz को स्वच्छ पानी में कई घंटे तक रखकर, पानी को गुलाबी रंग की ऊर्जा से ऊर्जित किया जा सकता है। कैन्सर के रोगियों को यह सलाह दी जाती है कि वे रत्नों (Crystals) खास तौर पर हीरे (Diamond) न पहनें, न बड़े नगों के पास रहें, क्योंकि ये निचले चक्रों को अधिक सक्रिय करते हैं, जिससे रोगी की दशा खराब हो जाती है।

नकारात्मक भावनाओं को न होने देना तथा सकारात्मक भावनाओं का रखना कैन्सर तथा अन्य गम्भीर प्रकार के रोगों के उपचार में परमावश्यक है। नियमित तौर पर अथवा प्रतिदिन द्विहृदय

पर ध्यान चिन्तन (भाग ३ में वर्णित) बहुत ही ज्यादा सहायक होंगे, क्योंकि इसके द्वारा आन्तरिक शांति, समन्वयता और प्रसन्नता प्राप्त होती है। यदि लगातार किया जाये, तो ध्यानकर्ता के हृदय में दया तथा प्रेम को बढ़ावा मिलता है। इस द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन का निम्न कारणों से शक्तिशाली उपचारी प्रभाव पड़ता है:–

(१) ध्यानकर्ता को ध्यान–चिंतन के दौरान तथा उसके बाद प्रसन्नता, शान्ति, प्रेम–दया और अन्य सकारात्मक भावनाएं महसूस होती है, जिससे सभी प्रभावित चक्रों और मैरिडियनों पर उनके सफाई तथा सामान्यीकरण का प्रभाव पड़ते हैं।

(२) ध्यान–चिन्तन के दौरान दिव्य ऊर्जा अथवा विद्युतीय-बैंगनी ऊर्जा की भारी मात्रा का सफाई करण, ऊर्जाकरण, सामान्यीकरण और पुनर्निर्माणी प्रभाव पड़ता है।

दिव्य उपचारी ऊर्जा का अवशोषण निम्न स्वीकृतिकरण को तीन बार दोहराकर बढ़ाया जा सकता है:–

"मेरे दिमाग, भावनाएं तथा शरीर की सफाई हो रही है। वे दिव्य ऊर्जा को ग्रहण एवं अवशोषण कर रहे हैं। मेरे शरीर में स्थित सभी चक्र, मैरिडियन और प्रत्येक कण की सफाई, ऊर्जन और उपचार हो रहा है। मैं पूर्ण बना जा रहा हूं। मैं ठीक किया जा रहा हूं। मैं स्वेच्छा और कृतज्ञतापूर्वक दिव्य ऊर्जा को ग्रहण करता हूं तथा इसके लिए धन्यवाद देता हूं और पूरे विश्वास के साथ"।

यह आवश्यक है कि अतिरिक्त ऊर्जा का निष्कासन किया जाये और शारीरिक व्यायाम भी किया जाये। इस सबकी प्रक्रिया अध्याय ३ में दी गयी हैं।

उपक्रम (५)– क्षमा का नियम और दया का नियम

उपरोक्त नियमों द्वारा नकारात्मक कार्मिक प्रभाव को कम अथवा नष्ट किया जा सकता है। यह आवश्यक है कि जिन्होंने आपको चोट पहुंचायी है, उन्हें आप क्षमा करें। यह उनकी एक सूची बनाकर, फिर उनको दृश्यीकृत

करके, उनमें से प्रत्येक को क्षमाकर उनको अच्छे स्वास्थ्य, प्रसन्नता, सफलता, परिपूर्णता ओर दैवीय सुरक्षा का आशीर्वाद दीजिए। यह जरूरी है, क्योंकि यदि आप दूसरे को क्षमा करते हैं, तो ईश्वर आपको क्षमा करेगा और यदि आप दूसरे को क्षमा नहीं करते हैं तो ईश्वर भी आपको क्षमा नहीं करेगा।

दया का नियम का तात्पर्य है कि यदि आप दयावान हैं, तो आप दया प्राप्त करने के पात्र बनेंगे। यह सलाह दी जाती है कि रोगी प्रति माह धर्मार्थ एवम् सुपात्रों को दान करे (कुपात्रों और अपात्रों का नहीं) और धर्मार्थ कार्यो को कार्यान्वयन करे। शाकाहारी बनने से जीवों पर दया व करुणा होती है। क्रूरता, हानिकारक वचन और नकारात्मक भावनाओं को त्यागें। जैसा आप बोयेंगे, वैसा ही फल पायेंगे।

उपक्रम (६)– कैंसर के उपचार की सामान्य प्राणशक्ति उपचार विधि

(क) GS (अनेक बार) G – अनेक कैंसर रोगियों के काला सा या गहरे से भूरा (dark grey) आभामण्डल होता है। बाह्य, स्वास्थ्य तथा आन्तरिक आभामण्डल सभी बुरी तरह प्रभावित होते हैं।

(ख) C Lu / E Lu (Lub के माध्यम से) GO – इसके द्वारा रक्त तथा समग्र शरीर पर शुद्धिकरण का प्रभाव पड़ता है। सामान्य दशा में रक्त बहुत हल्का सफेद सा नारंगी–लाल होता है। कई कैंसर केसों में रक्त गंदा लाल–पीला होता है। E O करते समय अपनी उंगलियां रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(ग) C 7 G~V/ E (7f तथा थायमस) (7b के माध्यम से) eV –साथ ही 7 को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें। 7f तथा 7b को पुनः जांचे। T 7 से थायमस ग्रंथि शक्तिवान बनेगी, जिससे प्रतिरक्षात्मक तंत्र उत्तेजित होगा। इससे ऊपर के चक्रों को सामान्य होने में भी सहायता मिलेगी और रोगी को आन्तरिक शांति प्राप्ति होगी।

(घ) C (समस्त सिर का क्षेत्र, 11, 10, 9, bh) G ~ V (नोट– 9 की ३० से ५० बार तक C करें)।

E eV-- साथ ही 11, 10 तथा 9 को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें। उपचारित चक्रों की पुनः जांच करें। इसमें 9 पर विशेष ध्यान दें।

(ङ) जब आप E 9 eV करें, तब मृदुता से किन्तु दृढ़ता से 9 को यह हिदायत दें कि वह समस्त चक्रों एवम् समस्त आंतरिक अंगों को सामान्य करें एवम् सबका समन्वय (harmonize) करे। इसका अन्य चक्रों पर सफाई एवम् सामान्य होने का प्रभाव पड़ता है। 6, 3 और 1 आंशिक या काफी साफ और संकुचित हो जायेंगे।

(च) C' (j, 8, 8') G ~ V / E eV -- E 8 के समय उसको बड़ा होता हुआ दृश्यीकृत करें।

(छ) 6 अति सक्रिय होता है और गंदी पीली-लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरा होता है। C" 6 तथा C' L -- यह अति महत्वपूर्ण है।

E (6, L) B (स्थानीयकरण हेतु) / C (6, L) G ~ O (लगभग ३० से ५० दफा)

(ज) E 6f GO (इसका आंतरिक अंगों और पूरे शरीर पर सफाई का प्रभाव पड़ता है)/ कुछ मिनट प्रतीक्षा करें / E IB (संकुचन हेतु)– साथ ही इसको छोटे होने की इच्छाशक्ति करें। इसका अधिक संकुचन न करें क्योंकि उससे यह कमजोर पड़ता है। 6 की पुनः जांच करें।

(झ) कई सप्ताह अथवा महीनों बाद जब रोगी का काफी सुधार हो जाये, तब E 6 GV, IB (उपरोक्त चरण (ज) में E 6 GO, IB के स्थान पर)

(ञ) 3 अति सक्रिय होता है और भूरी सी पीली-लाल ऊर्जा से भरा होता है। इसका C' तथा संकुचन आवश्यक है। E 3 IB (स्थानीय करण के लिए) / C' G ~ O लगभग (२० से ३० दफा)

(ट) E 3 IB- साथ ही उसको संकुचित होने की इच्छाशक्ति करें। इसकी पुनः जांच करें। प्रमुख चक्रों के औसत आकार के तुलना में इसका

आकार लगभग आधे से दो–तिहाई के बीच में होता है। यह चरण अति महत्त्वपूर्ण है।

(ठ) 1 अति सक्रिय होता है और गंदी पीली सी–लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरा होता है। इसका C' तथा संकुचन आवश्यक है। E 1 IB (स्थानीयकरण हेतु) / C GO (लगभग ५० बार)

(ड) E' 1 W — यह अति आवश्यक है, क्योंकि इस पर ऊर्जा का बहुत खालीपन होता है। E 1 IB द्वारा इसको संकुचन करें और तदनुसार इच्छाशक्ति करें। इसकी पुनः जांच करें।

(ढ) C' 5 G / E GV -- सावधानी से

(ण) C 4 G / E W

(त) C 2 / E W

(थ) C (बांहों तथा पैरों पर, a, e, H, h, k, S) GO/ E (a, e, H, h, k, S) V-- H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(द) (AP) पर बहुत घनापन होता है और गंदी पीली–लाल रोगग्रस्त ऊर्जा से भरा होता है। E (AP) IB (स्थानीयकरण हेतु) / C' (AP) G-O (लगभग १०० से २०० बार) उन अंगों पर जो नाजुक नहीं हैं अथवा C' (AP) G नाजुक अंगों पर। C' के द्वारा कैंसर कोशिकाओं को उनके विकास के लिए आवश्यक पीली–लाल रोगग्रस्त नहीं मिलेगी तथा इससे वह वंचित हो जायेगा। C द्वारा रोगी आंशिक, काफी अथवा पूर्ण राहत महसूस करेगा। यह अत्यावश्यक है।

(ध) कैंसर कोशिकाओं को धीरे–धीरे नष्ट करने के लिये, E (AP) mB अथवा dB कई मिनट तक (स्थानीयकरण हेतु) / E mG, mO अथवा E dG, dO

अधिक कुशल प्राणशक्ति उपचारक इसके स्थान पर E (AP) dB/ E deV भी कर सकते हैं। लेजर (laser) जैसी तीव्र तथा बाल–पैन के सिरे जैसे पतली प्राणशक्ति को आते हुए दृश्यीकृत करें। नष्टकारक प्राण ऊर्जा को एक अति ही तीव्र केन्द्रित रूप में करके, उसको पर्याप्त शक्ति दें

ताकि वह आंशिक रूप से धीरे–धीरे कैंसर की कोशिकाओं को नष्ट कर टुकड़े–टुकड़े करे। यह केवल उन्हीं अंगों पर करना है, जो नाजुक न हों।

यौन अंग पर mO या dO न करें।

(न) जब आप mG / mO या dG / dO प्रेषित करें, तो आप कैंसर को छोटा होते हुए, जब तक वह गायब न हो जाये, तब तक दृश्यीकृत करें।

(प) यदि कैंसर शरीर में सभी ओर फैल गया है, तो E 9 eV करें तथा eV को समस्त शरीर में कैंसर कोशिकाओं को ढूंढ़-ढूंढ़कर नष्ट करने के लिए कहें।

(फ) नाजुक अंगों जैसे आंखें, कान, मस्तिष्क, ह्रदय, अग्न्याशय के केस में मात्र C / E eV करें।

(ब) AP का सम्बन्धित चक्र अति सक्रिय होता है, इसलिए उसका C तथा संकुचन करें। C' (सम्बन्धित चक्र) G ~ O/ E IB – साथ-साथ इस चक्र को छोटा होने की इच्छाशक्ति करें। O का सिर, 5 या उनके नजदीक न उपयोग करें। पुनः जांच करें।

(भ) जब तक आवश्यक हो, सप्ताह में तीन बार इलाज दोहरायें। कुछ कैंसर रोगियों को एक वर्ष से अधिक उपचार करवाना पड़ता है।

(म) चूंकि कैंसर के रोगी का वायवीय शरीर बहुत गंदा होता है, यह सलाह दी जाती है कि उपचारक C तथा E के दौरान बीच–बीच में नियमित रूप से अपने हाथों और बांहों को नमक के पानी या अल्कोहोल से धोता रहे, ताकि वह कम से कम संक्रमित हो। इसके लिए नियमित रूप से हाथ झटकते रहे। उपचारक के संक्रमित हो जाने की दशा में वह उंगलियों में संधिवात (arthiritis) महसूस करेगा। यदि 1 और 5 संक्रमित हो जाते हैं, तो वह बहुत ज्यादा कमजोरी महसूस करेगा जो कई महीनों में दूर हो पायेगी, जब तक कोई दूसरा प्राणशक्ति उपचारक उसका उपचार न करे।

(य) रोगी को उपरोक्त उपक्रम (४) तथा उपक्रम (५) में दिये गये निदेशों का पालन करने के लिए कहें।

(र) उपरोक्त प्रकार की उपचार विधि द्वारा कैंसर रोगी को निम्न लाभ प्राप्त होंगे।

(१) कई उपचार के बाद तीव्र दर्द धीरे-धीरे कम होगा।

(२) उसका ऊर्जा स्तर बढ़ेगा और कई उपचार बाद, वह पहले से ताकतवर महसूस करेगा।

(३) उसकी भूख बढ़ेगी।

(४) यदि कैंसर कोशिकाओं का विकास नहीं रुका, तो विकास कम हो जायेगा।

(५) कैंसर की कोशिकाएं धीरे-धीरे और आंशिक रूप से नष्ट हो जायेंगी।

(६) जो जीवन के अन्तिम समय में आ चुके हों, वह शालीनता तथा शांति से मर सकेंगे।

(ल) कई कैंसर के रोगियों का निम्न कारणवश उपचार नहीं हो सकता :

(१) शक्तिशाली दवाओं द्वारा रोगी के शरीर को बुरी तरह क्षति पहुंची हो।

(२) कैंसर की कोशिकायें काफी फैल चुके हों।

(३) रोगी का शरीर अत्यन्त कमजोर हो गया हो और उसकी प्राणशक्ति ऊर्जा के अवग्रहण करने तथा शरीर के अन्दर रखने की क्षमता काफी ज्यादा कम हो गयी हो।

(४) कुछ अंग बहुत ज्यादा क्षतिग्रस्त हो गये हैं और उनकी मरम्मत नहीं हो सकती।

(५) रोग का मूल कारण कार्मिण कारणों से हो।

(घ) उक्त कारणों/परिस्थितियों के कारण जबकि कुछ कैंसर के रोगी आंशिक रूप या पूर्ण रूप से ठीक हो जाते हैं और उनका जीवन बढ़ जाता है, किन्तु केवल कुछ ही आंशिक या पूरे तौर पर ठीक हो पाते हैं।

(३) **फैंफड़ों का कैंसर– Lung Cancer**

इसमें पिछला चक्र अति सक्रिय होता है और भूरी सी पीली सी लाल ऊर्जा भरी होती है। फैंफड़ों के लघु चक्र भी अति सक्रिय होते हैं।

(क) E Lu B (स्थानीयकरण हेतु) / C' (Lu के आगे, बगल में और पीछे से) G ~ O / C' (A,P) -- O के उपयोग के समय, अपनी उंगलियों को सिर की ओर इंगित न करें।

(ख) आंशिक रूप से तथा धीरे–धीरे कैंसर के कोशिकाओं को तोड़ने के लिए E Lu (Lub के माध्यम से) IB (स्थानीयकरण हेतु), E mG / mO अथवा E dG / dO – साथ–साथ कैंसर कोशिकाओं को सुकुड़ते हुए, छोटा होते हुए और धीरे–धीरे गायब होते हुए दृश्यीकृत करें। E mO अथवा E dO के समय, अपनी उंगलियों को रोगी के सिर से दूर इंगित करें।

(ग) C' 7b IG / E IG,B – साथ ही साथ इस चक्र को छोटा होने की इच्छा शक्ति करें। पुनः जांच करें।

(घ) E (प्रभावित फैंफड़ों के लघु चक्र) IB -- साथ ही इनको छोटा हो जाने की इच्छा शक्ति करें।

(ङ) उक्त उपचार को उक्त क्रम (२) के साथ समन्वित करें।

(४) **छाती का कैंसर– Breast Cancer**

(क) 2 प्रभावित होता है। C' 2 G ~ O / E G,IB -- साथ ही इस चक्र को छोटा होने की इच्छाशक्ति करें। पुनः जांच करें।

(ख) E (प्रभावित छाती) IB (स्थानीयकरण हेतु) / C' (प्रभावित चूची का चक्र तथा प्रभावित छाती) G ~ O

(ग) E (प्रभावित छाती) IB कई मिनटों तक / E IG, IO- इस अवधि के समय कैंसर को सुकुड़ते हुए, छोटा होते हुए और धीरे–धीरे गायब होते हुए दृश्यीकृत करें।

(घ) E (प्रभावित चूची का चक्र) IB -- इसके साथ इसके छोटा होने की इच्छाशक्ति करें। पुनः जांच करें।

(ङ) उक्त उपचार को क्रम २ के साथ समन्वित करें।

(५) यकृत (जिगर) का कैंसर– Liver ~~Lung~~ Cancer

(क) E L IB (स्थानीयकरण हेतु) / C' (L तथा AP पर विशेष तौर पर) G ~ O

(ख) E L IB अथवा E L mB – कई मिनटों तक / तब E L mG, mO अथवा E L dG, dO – इस ऊर्जन के समय कैंसर को सुकुड़ते हुए, छोटा होते हुए और धीरे–धीरे गायब होते हुए दृश्यीकृत करें।

(ग) उक्त उपचार को क्रम (२) के साथ समन्वित करें।

(६) कोलन (बड़ी आंत का एक भाग) का कैंसर– Colon Cancer

(क) E (कोलन) IB (स्थानीयकरण हेतु) / C' (कोलन तथा प्रभावित भाग)G ~ O

(ख) E (AP) IB अथवा E mB––कई मिनट तक / E mG, mO अथवा dG, dO – इस ऊर्जन के समय कैंसर को सुकुड़ते हुए, छोटा होते हुए और धीरे–धीरे गायब होते हुए दृश्यीकृत करें।

(ग) C' (4 तथा बड़ी आंतों का लघु चक्र) G / E IG, IB — E IB के समय 4, तदुपरान्त बड़ी आंतों के लघु चक्र को छोटा होने की इच्छाशक्ति करें।

(घ) उक्त उपचार को उक्त क्रम (२) के साथ समन्वित करें।

(७) मस्तिष्क का कैंसर– Brain Cancer

(क) इसमें 9 तथा bh अति सक्रिय होते हैं तथा भूरे पीले से लाल ऊर्जा से भरे होते हैं।

C (समस्त सिर, 9, bh -- विशेष तौर पर प्रभावित भाग पर) eV

(ख) E (AP) IB, meV अथवा eV / E meV अथवा eV के समय कैंसर को सुकुड़ते हुए छोटा होते हुए और धीरे-धीरे गायब होते हुए दृश्यीकृत करें।

(ग) E bh IB— साथ ही उसको छोटा होने की इच्छाशक्ति करें। पुनः जांच करें।

(घ) उक्त उपचार को उक्त क्रम (२) के साथ समन्वित करें।

(८) **आँख का कैंसर— ~~Brain~~ Eye Cancer**

(क) इसमें 9, bh और प्रभावित आंख का लघु चक्र अति सक्रिय होते हैं और भूरे पीले से से लाल रोगग्रसित ऊर्जा से भरे होते हैं।

C (9, bh, प्रभावित आंख) eV

(ख) E प्रभावित आंख (9 के माध्यम से) IB, eV अथवा meV – E eV के समय ट्यूमर को सुकुड़ते हुए, छोटा होते हुए और धीरे–धीरे गायब होते हुए दृश्यीकृत करें।

(ग) E 9 B-- साथ ही इस चक्र को छोटा होने की इच्छा शक्ति करें, तदुपरान्त प्राण ऊर्जा को प्रभावित आंख में जाते हुए दृश्यीकृत करें तथा प्रभावित आंख के लघु चक्र की छोटा होने की इच्छाशक्ति करें।

(घ) E bh IB और साथ ही इसको छोटा होने की इच्छाशक्ति करें। पुनः जांच करें।

(ङ) उक्त उपचार को क्रम (२) के साथ समन्वित करें।

(च) यद्यपि प्राणशक्ति उपचार से आंख के ट्यूमर को ठीक किया जा सकता है, किन्तु आंख के कैंसर का पहले से पता लगाना बहुत मुश्किल होता है।

(९) अन्य प्रकार के कैंसर-- Other Types of Cancer

और भी बहुत प्रकार के कैंसर होते हैं। इनका उपचार उक्त वर्णित उपचारों की तरह ही है, अर्थात

(क) C' (AP)

(ख) सम्बन्धित अधिक सक्रिय चक्रों को छोटा करना

(ग) हरे तथा नारंगी प्राण द्वारा कैंसर के कोशिकाओं को धीरे-धीरे तोड़ें, किन्तु नाजुक अंगों में इस कार्य हेतु eV अथवा meV का उपयोग करें।

(घ) उपचार को उक्त क्त (२) के साथ समन्वित करें।

(१०) श्री चोआ कोक सुई की टिप्पणी-- Sri Choa Kok Sui's Note

तेज गति से कोशिकाओं के वास्ते 3 को अधिक सक्रिय होना पड़ता है। गर्भवती महिलाओं और कैंसर के रोगियों में 3 अधिक सक्रिय होता है। यह दिलचस्प होगा यदि उच्च रक्तचाप के उपचार के लिए इस्तेमाल में आने वाली दवाओं और जड़ी बूटियों का कैंसर के सम्भावित उपचार के लिए अध्ययन और प्रयोग किये जायें। एस्पिरिन (Aspirin), मधुमक्खी के प्रोपोलिस (bee propolis – red or brown resinous substance got by bees from buds for use as glue etc., जो एक प्रकार का लाल या बादामी रंग का लीसेदार पदार्थ है जो मधुमक्खियां फूलों की कली से गोंद आदि के उपयोग के लिए प्राप्त करती हैं), बी – १७ और क्लोरोफिल (Chlorophyll) (जो हरे पौधों के रंगीकरण का पदार्थ होता है) में हरा प्राण होता है। लहसुन के तेल में नारंगी प्राण होता है। कैंसर के सम्भावित उपचार के लिए इन पर भी अध्ययन तथा प्रयोग किया जा सकता है।

अध्याय – २३ व २४

प्राण ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार

CHAPTERS—XXIII and XXIV

PRANIC PSYCHOTHERAPY

प्राण ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार–सामान्य–

Pranic Psychotherapy- General (Treatment of Psycho diseases)

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	इस प्रकार के उपचार के लिए उपचारक की आवश्यक योग्यता	५.३३६
२.	चक्रों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव	५.३३६
३.	चक्रों के गलत ढंग से कार्यरत होने के फलस्वरूप होने वाले मनो रोग	५.३४२
४.	मनोरोगों की उत्पत्ति के कारण	५.३४३
५.	उपचार में काम आने वाली ऊर्जायें	५.३४४
६.	उपचार से सम्बन्धित सिद्धान्त तथा प्रक्रियायें	५.३४५
७.	चक्र तथा अभा मण्डल के कवच तैयार करना– Chakral and Auric Shields	५.३५०
८.	गम्भीर मनो रोग – Psycho diseases	५.३५३
९.	मनोरोगों से कैसे बचें– Prevention of Psycho ailments	५.३५३
१०.	नियमित अभ्यास की आवश्यक्ता	५.३५४

११.	मनोरोग उपचारकों को होने वाली स्वास्थ्य समस्यायें– Health problems encountered by Psychotherapists	५.३५५
१२.	गर्भवती महिला की भावनाओं एवम् विचारों का गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव	५.३५७
१३.	प्रार्थना द्वारा उपचार– Healing by Prayer	५.३५७
१४.	स्व-उपचार के लिए प्रार्थना– Self Healing Affirmation	५.३५९
१५.	स्व–दैवीयता	५.३५९
१६.	आदेश के द्वारा ठीक करना– Healing by Command	५.३६१

प्राण ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार–सामान्य–

Pranic Psychotherapy- General (Treatment of Psycho diseases)

(१) **इस प्रकार के उपचार के लिए उपचारक की आवश्यक योग्यता**

(क) उसको माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार में दक्षता प्राप्त हो गई हो (भाग ५, अध्याय ५)।

(ख) द्वि–हृदय पर ध्यान चिन्तन विधि अथवा अन्य प्रकार से अथवा दैवीय आशीर्वाद से, संवेदनशीलता बढ़ी हुई हो।

(ग) उन्नत प्राण चिकित्सा एवम् रंगीन ऊर्जा द्वारा प्राण चिकित्सा की कम से कम अर्ध–दक्षता प्राप्त हो गयी हो।

(२) **चक्रों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव**

(क) भाग ४ के अध्याय-११ "ऊर्जा चक्रों का कार्य एवम् शरीर पर प्रभाव" के अन्तर्गत विभिन्न चक्रों के वर्णन के अन्तर्गत चक्रों के मनोवैज्ञानिक प्रभावों का वर्णन दिया है। सहज सन्दर्भ हेतु वह निम्नवर्णित हैं:–

1– यह स्व–जीवित रहने और स्व–सरंक्षण (Self-survival and self–preservation) का केन्द्र है। मायूस व्यक्तियों के चक्र पर खोखलापन होता है और यह कम सक्रिय होते हैं। जो अव्यवहारिकता का जीवन यापन करते हैं, उनका भी चक्र खाली होता है।

2-- इसकी ऊर्जा परावर्तित होकर 8, 11 और मस्तिष्क में जाती है। अतएव मानसिक स्वस्थता के लिये 2 का स्वास्थ्य आवश्यक है।

शक्तिशाली 2 जीवन की उन्नति में सहायक होता है। शक्तिशाली 2 वाले व्यक्तियों की यौनेच्छा तीव्र होती है।

3-- अपना कोई योगदान नहीं है, किन्तु यह चक्र ऊर्जा का पंपिंग स्टेशन होने के कारण, 1 से ऊपर आने वाली भय तथा अन्य ऋणात्मक ऊर्जाओं, यदि कोई हों तो, पूरे शरीर में फैला सकता है।

4-- सब प्रकार के आन्तरिक भावना (instinct of knowing) अथवा छठी इन्द्रिय का केन्द्र है। स्त्रियों में यह शक्ति (instinctive power) अधिक होती है।

5-- वायु प्राण के प्रवेश का मुख्य स्त्रोत होने के कारण, इसकी स्वस्थता पर अन्य चक्रों की भी स्वस्थता निर्भर करती है, और जिनकी स्वस्थता पर मानसिक स्वास्थ्य निर्भर करता है। मायूस व्यक्तियों के चक्र पर खोखलापन रहता है।

6-- यह सभी रचनात्मक एवम् नकारात्मक भावनाओं का केन्द्र है। इन भावनाओं द्वारा किस प्रकार रोग उत्पन्न हो जाते हैं, इसका विस्तृत वर्णन भाग ४, अध्याय ११, क्रम (6) में दिया है जिसका ध्यानपूर्वक अवलोकन करें। ऐसा कोई भी रोग नहीं है जिसमें यह चक्र प्रभावित न होता हो। अधिकांश मनोरोगों का मूल स्त्रोत भी 6 होता है। इन कारणों से किसी भी मनो/मनोवैज्ञानिक रोग में इसका उपचार अत्यावश्यक है। यहां यह उल्लेखनीय है कि जैसा आपने अध्याय ६ से अध्याय २२ तक देखा होगा, अधिकांश केसों में शारीरिक रोगों का भी यह चक्र माध्यम बनता है तथा इसका उपचार भी आवश्यक हो जाता है।

7-- यह उच्च भावनाओं का केन्द्र है। 6 के साथ इसका सम्बन्ध होने के कारण उसके उद्वेलित होने के परिणामस्वरूप प्रायः यह भी उद्वेलित हो जाता है। इस चक्र को सक्रिय करने से निम्न भावनात्मक ऊर्जायें उच्च भावनात्मक ऊर्जाओं में परावर्तित हो

जाती हैं। इसलिये मनोरोगियों को प्रतिदिन दो बार "द्विहृदय पर ध्यान-चिन्तन" कई महीनों तक करना चाहिए, तत्पश्चात् शेष जीवन भर प्रतिदिन एक बार करना चाहिए।

8-- यह स्व-प्रकटता (self - expression), उच्च श्रेणी के सृजनात्मक कार्य (जिसमें अति सावधानी, सूक्ष्म कार्यशैली होती है) (higher creativity requiring meticulous working), धैर्यपूर्वक विस्तारयुक्त कार्य (working out details requiring perseverence), निम्न मानसिक योग्यता (lower mental faculty or the concrete mind), निम्न श्रेणी की चेतना (lower consciousness) और चिन्ता, व्यग्रता, उलझन का केन्द्र बिन्दु होता है। इसका 2 के साथ उच्च श्रेणी का सम्बन्ध (higher correspondence) होता है। अतएव, 8 तथा 2 का शक्तिशाली एवम् क्रियाशील होना परस्पर एक दूसरे पर निर्भर करता है। इसलिए सृजनात्मक कलाकारों की तीव्र यौनेच्छा होती है।

9-- यह उच्च अथवा अमूर्त मस्तिष्क /विचारों का केन्द्र (centre of the higher mental faculty or abstract mind) तथा इच्छाशक्ति एवम् निर्देशन कार्य विशेष का केन्द्र (centre of the will or directive function) होता है। इस चक्र का स्व-दृढ़ इच्छाशक्ति (self-strong will) के लिए अत्यन्त महत्त्व है। यह अन्य चक्रों को आज्ञा देता है, अतएव इसका प्रभाव अन्य सभी चक्रों पर पड़ता है।

10-- यह निम्न श्रेणी के दिव्य ज्ञान (lower Buddhic or cosmic consciousness) का केन्द्र है। इसके अतिरिक्त यह अन्तर्ज्ञान (intution) का स्थान (seat) है अर्थात् इस चक्र के माध्यम से बाहरी आयाम अर्थात चतुर्थ आयाम (outer dimension or fourth dimension) में झांका जाता है।

11-- यह दिव्य ऊर्जा, eV एवम g का एक मात्र प्रवेश केन्द्र है। यह अन्तःकरण आध्यात्मिक डोरी (spiritual cord) से जुड़ा होता है।

यह चक्र दिव्य ज्ञान (higher buddhic or cosmic consciousness), दिव्यता और आत्मा के उत्थान का केन्द्र है। इस प्रकार के मात्र अंशात्मक विकसित दिव्य ज्ञान द्वारा जो शीघ्र ही बातें जानी जाती हैं, वह कदाचित् विकसित मस्तिष्क के द्वारा लम्बे समय तक के प्रयत्न से भी नहीं जानी जा सकती हैं। अध्याय ३ के अन्तर्गत द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन के वर्णन में हमने देखा कि इस चक्र पर विराजित ओऽम से प्रवाहित ऊर्जा इसी चक्र के माध्यम से शरीर में प्रवेश करती है।

(३) चक्रों के गलत ढंग से कार्यरत होने के फलस्वरूप होने वाले मनोरोग

1-- उदासी, मायूसी (depression), आलसीपन, अव्यवहारिक होना (becoming impractical), पराकाष्ठा की दशा में आत्महत्या करने की प्रवृत्ति।

2-- मस्तिष्क का कमजोर होना, यौन विकृतियों का होना।

3-- अपना कोई प्रभाव नहीं, किन्तु इसके कारण अन्य विशेषकर 1 के गलत विपरीत प्रभाव के कारण, शरीर में रोग फैल सकते हैं।

4-- उदासी / मायूसी (depression)

5-- उदासी / मायूसी (depression)

6-- समस्त।

7-- कोई नहीं, किन्तु समस्त रोगों में इसका उपचार आवश्यक है क्योंकि 6 के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण, रोगों का प्रभाव इस पर पड़ता है।

8-- हकलाना, खाते रहने की प्रवृत्ति, झूठ बोलने की प्रवृत्ति, धूम्रपान करना, शराब की लत, स्व प्रकटता (self-expression) की कमी।

9-- चिड़चिड़ापन, तनाव, क्रोध, शोक, चिन्ता, हिस्टीरिया, भय अथवा फोबिया (phobia), भावनात्मक आघात (traumas), आशंकितता, भयातुरता, मस्तिष्क में अनर्गल बातें घूमते रहना (obsessions), हकलाना, धूम्रपान,

नशीले पदार्थों की लत, शराब पीने की लत, अवर्तमान पदार्थों / दृश्यों का दिखाई देना (hallucination), निराशा / मायूसी, मानसिक विकृति जिसमें दूसरे के प्रति क्रूर व्यवहार करना तथा अविश्वास करना (paranoid) है। मल्टीपिल सिनड्रोम (multiple syndrome), स्व–प्रकटता का अभाव, बिस्तर में मूत्र त्याग आदि।

सभी रोगों में इसका उपचार आवश्यक है।

10-- अवर्तमान दृश्यों का अवलोकन एवम् ध्वनियों का श्रवण (hallucination-- both visual and audio), नशीले पदार्थों की लत, मानसिक विकृति जिसमें दूसरे के साथ क्रूर व्यवहार करता है तथा अविश्वास करता है, मल्टिपिल सिनड्रोम, आशंकितता / भयातुरता (nervousness)

11-- जैसा कि उक्त 9 के केस में वर्णित है।

(४) मनोरोगों की उत्पत्ति के कारण

(क) नकारात्मक भावनाएं

(ख) चक्रों के गलत ढंग से कार्यरत के फलस्वरूप

(ग) ज्यादा भीड़ की जगह, श्मशान, कब्रिस्तान आदि से नकारात्मक सोच के आकार या नकारात्मक ऊर्जा परजीवियों का रोगी के साथ लग लेना।

(घ) जीवन में असुहावने भावनात्मक अथवा हिंसात्मक आघातों के फलस्वरूप भयात्मक ऊर्जा का 6, 9 तथा 11 में भर जाना, उदाहरण के तौर पर पानी से भय, आग से भय, नीचे देखने से उत्पन्न भय, काम चेष्टा से भय तथा पुरुषों से घृणा (महिला के साथ बलात्कार होने के फलस्वरूप), विभिन्न प्रकार के भय / फोबिया (phobia) हो जाना, अपनी नजर में गिर जाना (poor self- esteem), असुरक्षा की भावना (insecurity), सब चीजों को व्यर्थ समझना (futility), उदासीनता (indifference) की भावनाएं।

(ङ) इन फ़ोबिया के अधिक समय तक रहने से तीव्र प्रकार की निराशा / मायूसी (severe depression) हो जाते हैं।

(च) असुहावने घटनाएं एवम् स्मरण के फलस्वरूप मन / मस्तिष्क की मानसिक रोगग्रस्त दशा हो जाना। इनको भावनात्मक आघात अथवा ट्रौमा (trauma) कहते हैं।

(छ) दुःख देने वाली बातों को बार–बार लगातार सोचने एवम् उनके फिर–फिर के दिमाग में आकर मानसिक उत्पीड़न के फलस्वरूप रोग। यह औबसैशन (Obsession) मस्तिष्क में घूमते रहना कहलाता है।

(ज) व्यक्ति की इच्छा के विपरीत होते हुए भी अपने को न रोक सकने वाला व्यवहार। यह विवशता (compulsion) कहलाता है।

(झ) जो वस्तुएं प्रतिभासित नहीं होती हैं, अथवा वह आवाजें जो स्वस्थ व्यक्ति नहीं सुनता / सुन सकता– उनको देखना अथवा ध्वनियों को सुनना। इनको विभ्रम (hallucination– visual or audio) कहते हैं। किन्तु ये सम्पूर्ण रूप से काल्पनिक नहीं होते, अपितु आंतरिक संसार में वास्तविक होते हैं।

(ञ) पिछले जीवन या वर्तमान जीवन के नकारात्मक कार्यों का कार्मिण फल।

(५) उपचार में काम आने वाली ऊर्जायें

(क) eV -- यह समग्र C अथवा E के काम आती है। इसके साथ नीले रंग की ऊर्जा के अतिरिक्त कोई और ऊर्जा इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। यदि किसी चक्र पर इसका इस्तेमाल किया गया हो अथवा किया जाने वाला हो, तो नीली ऊर्जा के अतिरिक्त और कोई ऊर्जा इस्तेमाल नहीं करनी चाहिए। eV के द्वारा सफाई करते समय, सम्बन्धी ऊर्जाओं आदि की सफाई के अतिरिक्त, इससे शारीरिक मनोरोगों से सम्बन्धित ऊर्जाओं की सफाई के लिए भी प्रार्थना करनी चाहिए।

(ख) IV -- उक्त (क) में वर्णित कार्यों के लिए, किन्तु यह उतना प्रभावी नहीं होता।

(ग) IB -- यह चक्रों के संकुचन/ धीमा करने तथा प्रेषित प्राणशक्ति को E करके, उसको सील करने के लिए।

(घ) IR- यह निम्न चक्रों (आमतौर पर 1, 2, 4) को सक्रिय करने तथा बड़ा करने के लिये, बशर्ते कि उस चक्र पर जिस पर यह क्रिया करनी हो, eV का इस्तेमाल न तो सफाई के लिए हो और न ऊर्जन के लिए। 6 तथा उससे ऊपर के चक्रों पर इसका उपयोग न करें।

IR का उपयोग शारीरिक रोगों (यदि कोई हो) के उपचार से सम्बन्धित अन्य कार्यों के लिए भी किया जाना चाहिए।

(६) उपचार से सम्बन्धित सिद्धान्त तथा प्रक्रियायें

(क) सिद्धान्त आदि अध्याय १ में वर्णित सभी सिद्धान्त एवम् कार्यपद्धति इस उपचार में साधारणतः लागू होती है, किन्तु उसके क्रम (ख) (७) में वर्णित हाथों की सफाई करते समय स्वस्थ प्राणशक्ति ऊर्जा के बजाय eV का उपयोग किया जाता है। सामान्य प्राणशक्ति ऊर्जा, मनो/मनोवैज्ञानिक रोगों से सम्बन्धित ऊर्जाओं से हाथों की सफाई करने में असमर्थ होती है। यदि उपचार में ऊर्जन के लिए IV का उपयोग किया गया हो, तो यह कार्य IV द्वारा भी किया जा सकता है। उपचार के दौरान आरामपूर्वक रहिए तथा तनाव रहित रहिए। तनाव रहने से तनाव की ऊर्जा रोगी को प्रेषित होगी, जिससे उसकी दशा खराब हो जाएगी।

(ख). रोगी की उपचार की ग्राह्यशीलता सुनिश्चित करना—

(१) अध्याय ४ के क्रम (४) का रोगी से पालन करवायें।

(२) उसको द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन को प्रतिदिन करने के लिए विशेष रूप से जोर दें।

चूंकि रोगी की नकारात्मक भावनाओं के कारण, उपचार हो जाने के पश्चात्, वह पुनः रोगी हो सकता है, इसलिए रोगी को अपनी नकारात्मक भावनाओं को कम करने तथा समाप्त करने के लिए संकल्प करना चाहिए। इसके लिए रोगी को अपनी

सांस के चक्र का नियमन करना चाहिए अथवा धीमे और गहरे श्वांस पेट के अन्दर लेकर प्राणिक श्वसन, जिसकी पद्धति अध्याय ५ के क्रम संख्या २ में वर्णित है, करना चाहिए। इनके द्वारा 6 का नियमन व समन्वय होता है, जिससे उत्तेजना का निवारण होता है तथा शांति मिलती है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार के श्वसन द्वारा भावनाओं और मस्तिष्क का नियंत्रण हो सकता है। एक समय में कम से कम बारह प्राणिक श्वसन चक्र करें, तथा इसको बढ़ाते जायें। गम्भीर मनोरोगों एवम् हिंसक प्रवृत्ति के रोगियों को प्रतिदिन तीन बार, एक बार में १० से २० मिनट तक यह श्वसन करना चाहिए। कई महीनों तक लगातार करने से काफी सुधार दिखाई देगा। प्राणिक श्वसन के दौरान प्राप्त अधिक ऊर्जा के निष्कासन के लिए कुछ व्यायाम करें, अन्यथा प्राण का घनापन हो सकता है।

(ग) रोगी के चक्रों आदि की सफाई करने की विधि

भाग ४ के अध्याय १० में मैरिडियन्स का सांकेतिक चित्र, चित्र ४.०८ में दिया है तथा ऊर्जा चक्र की बनावट चित्र ४.१० दी गयी है। इसके अध्याय ११ के क्रम संख्या (6) के अन्तर्गत, चक्र के गलत ढंग से कार्य करने के कारण मनो प्रभाव के वर्णन में मानसिक और भावनात्मक ऊर्जा के उत्पादन, नकारात्मक सोच के आकार (negative thought entities) का उत्पादन, नकारात्मक पदार्थ अर्थात् ऊर्जा परजीवी (negative elementals) के उत्पादन एवम् उनके द्वारा चक्र की जाली (Web) फिल्टर का क्षतिग्रस्त हो जाना (दरार तथा छेद) किस प्रकार होता है, इसको ध्यान से देखें तथा मनन करें, क्योंकि सफाई करते समय इनमें से नकारात्मक ऊर्जा/ सोच के आकार/ परजीवी की सफाई एवम् उनका विध्वंस आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चक्र की जाली की मरम्मत तथा कुछ अन्य उपचारात्मक क्रियायें भी करनी होती हैं।

उपचार करने से पूर्व, उपचारक अध्याय ४ के क्रम संख्या ५ का पालन करें। अपना ऊर्जा स्तर बढ़ायें तथा रोगी की जांच करें। शारीरिक रोगों की जांच के अलावा मनोरोगों की जांच हेतु अपने अति संवेदनशील हाथों/उंगलियों द्वारा अपना सम्पूर्ण ध्यान करें, देखें कि चक्र कहां पर है, उसका आकार कितना बड़ा है, उसके अन्दर चक्र की जाली कहां पर है, क्या चक्र की जाली पर नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक भावनाओं की सोच के आकार व उनकी प्रकृति, नकारात्मक वायवी परजीवी स्थित हैं, वे कितने बड़े हैं; हो सकता है कि कोई नकारात्मक वायवी परजीवी आपके हाथ/ उंगली को धीरे से 'काट खाये'।

उक्त जांच करके एवम् उसके परिणामों का विश्लेषण करके, आप चक्र को साफ करने की प्रक्रिया प्रारम्भ करें। यदि किसी कारणवश आप उक्त गहन जांच करने में असमर्थ रहे हों, तब भी आप आगे की कार्यवाही करें। यदि आप eV को प्राप्त करने में कठिनाई महसूस करते हैं अथवा नहीं प्राप्त कर पाते, तब IV का प्रयोग करें। परमात्मा से eV प्राप्त करने के लिए एकाग्र मन से प्रार्थना करें, फिर कुछ देर प्रतीक्षा करके अपने 11 के माध्यम से प्राप्त करके eV को महसूस करें तथा 11–H अथवा 11–उंगलियों पद्धति से eV का उपयोग करते हुए, eV को रोगी की ओर प्रेषित करते हुए, उससे प्रार्थना करें कि वह अमुक रोगी के अमुक चक्र के अन्तर्गत सभी उपयोग की हुई एवम् रोगग्रस्त ऊर्जाओं, नकारात्मक भावनात्मक ऊर्जा,नकारात्मक सोच के आकार तथा नकारात्मक ऊर्जा के परजीवियों की सफाई करते हुए, उनको नष्ट कर दे। इसको तीन बार दोहराइये, तथा सफाई करते हुए, इन नकारात्मक पदार्थों को हाथ में लेते हुए नमक के पानी के बर्तन में फैंकते हुए उनको नष्ट होने के लिए कहें। बीच-बीच में उपक्रम (क) में दिये गये निदेशानुसार eV से वायवी रूप से हाथों/बाहों को साफ करते रहें एवम् हाथ झटकते रहें। जब आप सफाई कर चुकें, तो पुनः जांच करें कि प्रभावी सफाई हुई या नहीं। यदि नहीं, तो फिर पुनः और सफाई करें।

(घ) चक्रों का ऊर्जन

(१) उक्त (ग) में वर्णित सफाईकरण प्रक्रिया करने के पश्चात, eV द्वारा ऊर्जन विधि द्वारा ऊर्जन करें। eV से यह प्रार्थना करें कि वह अमुक व्यक्ति के अमुक चक्र (एवम् उसके माध्यम से अमुक अंग/समस्त शरीर, जैसा करना हो) का शीघ्र उपचार (heal) करे, तथा चक्र के फिल्टर की जो कोई दरार हों उनको ठीक कर दे तथा कोई छेद हों उनको बन्द कर दे तथा सकारात्मक सोच के आकारों को वहां पर अवस्थित कर दे। इस प्रार्थना को तीन बार दोहरायें। जहां तक सम्भव हो सके, इसका दृश्यीकरण भी करें। जांच की प्रक्रिया के समय, यदि आप नकारात्मक सोच के आकारों की प्रकृति पता लगा पाये हों, अन्यथा रोग के लक्षणानुसार अथवा सामान्य तौर पर निम्नवत सकारात्मक सोच के आकारों को अवस्थित करें:

उपक्रम	नकारात्मक सोच के आकार	सकारात्मक सोच के आकार
१.	क्रोध, रोष	क्षमा
२.	मान	मृदुता
३.	कपटता	आर्जव (सरलता)
४.	गृद्धता /लालच	सन्तोष
५.	शोक, अप्रसन्नता, उदासी, मायूसी	प्रसन्नता
६.	तनाव, थकान	आराम
७.	घृणा	मित्रता
८.	भय, चिन्ताएं	सुरक्षा, शांति और विश्वास
९.	हिंसा	अहिंसा
१०.	चिड़चिड़ापन, क्रूरता	दया
११.	पागलपन	समझदारी

उपक्रम	नकारात्मक सोच के आकार	सकारात्मक सोच के आकार
१२.	भयानक	सौम्य
१३.	आत्महत्या	जीवन में सक्रिय रूप से आगे बढ़ना
१४.	अनिद्रा	निद्रा
१५.	बेचैनी	शान्ति
१६.	विभ्रम (hallucination)	दैवीय (divine)
१७.	धूम्रपान की लत	धूम्रपान को छुड़ाने वाले
१८.	शराब पीने की लत	शराब पीने को छुड़ाने वाले
१९.	नशीले पदार्थों को सेवन करने की लत	नशीले पदार्थों के सेवन को छुड़ाने वाले
२०.	फोबिया	फ़ोबिया से बचाने वाले
२१.	अन्य	उनके प्रतिपक्षी अथवा उनसे बचाने वाले

यदि नकारात्मक सोच के आकारों का नहीं पता लग पाया हो, तो अनुमान से रोग से सम्बन्धित नकारात्मक सोच के आकार का प्रतिपक्षी सकारात्मक सोच के आकार का eV से सृजन करने के लिए कहें। इसके अतिरिक्त eV से यह भी कहें कि वह समस्त नकारात्मक और हानिपूर्वक विचारों तथा उनके सोच के आकारों के स्थान पर सकारात्मक और अच्छी भावनाओं तथा उनके सोच के आकारों का प्रत्यारोपण एवम् उनको अवस्थित करे।

यदि उपचारित चक्र का आकार सामान्य से छोटा है, तो आप उसको बड़ा करने की इच्छाशक्ति करें अथवा eV से उसको बड़ा कर सामान्य करने के लिए प्रार्थना करें। यदि उसका आकार सामान्य से बड़ा है, तो IB से संकुचन विधि द्वारा छोटा करके सामान्य करें। चूंकि eV दिव्य स्त्रोत से प्राप्त एक प्रकार की दिव्य ऊर्जा है, अतएव

उसको निर्देश देने के स्थान पर प्रार्थना करना ही अधिक उपयुक्त होगा। यह सब प्रार्थनाएं तीन बार दोहराएं।

ऊर्जन का स्व–संतुष्टि हो जाने के पश्चात, स्थिरीकरण करें तथा eV (नीले प्राण के स्थान पर) से सील करें। यहां यह बताना आवश्यक है कि इन केसों में नीले प्राण द्वारा की गयी सील कमजोर पड़ जाती है और कुछ समय बाद खुल जाती है। सील करने के उपरान्त आपके और रोगी के बीच उपचार के दौरान वायवी डोर को वायवी उपाय से काटें।

(२) यदि आपने शारीरिक रोगों के लिए किसी चक्र का उपचार साधारण प्राण ऊर्जा अथवा रंगीन प्राण ऊर्जा द्वारा किया हो, तो उस चक्र की सफाई या ऊर्जन के लिए eV का उपयोग न करें। उस चक्र को सामान्य करने के लिए यथोचित नीला/लाल प्राण ऊर्जा का प्रयोग करें।

(ङ) रोगी के 3 व 5 को अधिक सक्रिय न होने दें।

(च) आवश्यक्तानुसार, उपचार बार–बार करें।

(छ) रोगी को द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन के लिए विशेष तौर पर प्रेरित करें।

(ज) रोगी को दूसरों को क्षमा करने, क्षमा मांगने, नकारात्मक भावनाओं को छोड़कर सकारात्मक भावनाओं को अपनाने के लिए कहें।

(७) चक्र तथा आभामण्डल के कवच (chakral and auric shields) तैयार करना

चूंकि रोगी की नकारात्मक भावनाओं द्वारा परोक्ष रूप से यह प्रवृत्ति होती है कि वे चक्र के फिल्टर की जाली में छेद कर दे और नकारात्मक ऊर्जा एवम् नकारात्मक ऊर्जा परजीवियों को आकर्षित करे, इसलिए प्रभावित चक्रों का एवम् आभा मण्डल का क्रमशः चक्र का कवच एवम् आभामण्डल का कवच निर्माण करें, जिसके द्वारा नकारात्मक ऊर्जा एवम नकारात्मक ऊर्जा परजीवी दुबारा रोगी को संक्रमित न कर सकें। इसके लिए निम्न क्रिया अपनायें:–

उपक्रम (१) चक्र की ढाल तैयार करना

(क) प्रभावित चक्र पर eV का प्रेषण करें।

(ख) एक eV की गेंद जो चक्र और उसके जाली को बचा रही हो, अथवा दूसरे शब्दों में एक eV की गेंद की स्थापना करें जिसके अन्दर सम्पूर्ण चक्र आ गया हो, का दृश्यीकरण करें। इस गेंद द्वारा चक्र एवम् जाली सुरक्षित हो गयी है।

(घ) मानसिक रूप से eV को सम्बोधित करते हुए निम्न प्रार्थना उससे तीन बार कहें:—

"कृपया तीन दिन तक सब प्रकार के नकारात्मक सोच के आकारों, नकारात्मक ऊर्जाओं एवम् नकारात्मक ऊर्जा के परजीवियों से अमुक रोगी के अमुक चक्र की रक्षा करो। किन्तु रोगी की नकारात्मक भावनाओं, नकारात्मक सोच के आकारों, नकारात्मक ऊर्जाओं और नकारात्मक परजीवियों को बाहर निकलने से न रोका जाये एवम् सकारात्मक ऊर्जा, सकारात्मक सोच के आकारों और सकारात्मक भावनाओं को चक्र के भीतर प्रवेश करने से न रोका जाये।"

(ङ) दो दिन के पश्चात, पुनः चक्र की ढाल इसी प्रकार बनायें।

(च) प्रभावित चक्रों, विशेष तौर पर 1, 6f, 6b, 9 और 11 पर चक्र की ढाल बनायें।

उपक्रम (२) आभा मण्डल का कवच तैयार करना

प्रथम चरण—

प्रथम विधि

(क) अपने 11 पर ध्यान केन्द्रित करें।

(ख) एक मर्करी लैम्प (Mercury Lamp) को दृश्यीकृत करें।

(ग) रोगी को अत्यन्त छोटा और उक्त मर्करी लैम्प के अन्दर स्थित हुआ दृश्यीकृत करें।

(घ) उक्त मर्करी लैम्प के बाहरी खोल को एक चमकदार eV दृश्यीकृत करें।

अथवा द्वितीय विधि

(क) अपने 11 पर ध्यान केन्द्रित करें एवम् उचित विधि से eV को इसमें ग्रहण करें।

(ख) 11--H तकनीक द्वारा हाथों से बाहर निकली हुई eV की जांच करें।

(ग) अपने हाथों से eV का प्रेषण करते हुए रोगी के चारों ओर तथा ऊपर और नीचे, अर्थात एक खड़े अण्डाकार आकार की eV की ढाल इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए, स्थापित करें।

द्वितीय चरण–

(ङ) उक्त प्रथम अथवा द्वितीय विधि के अनुसार ढाल तैयार करके मानसिक रूप से eV को सम्बोधित करते हुए निम्न प्रार्थना तीन बार करें:–

"कृपया तीन दिन तक अमुक रोगी के बाह्य आभामण्डल की सब प्रकार के नकारात्मक ऊर्जाओं, नकारात्मक सोच के आकारों तथा नकारात्मक परजीवियों से रक्षा करो। किन्तु नकारात्मक ऊर्जाओं, नकारात्मक सोच के आकारों तथा नकारात्मक परजीवियों को बाहर निकलने से न रोका जाये, एवम् सकारात्मक ऊर्जाओं, सकारात्मक सोच के आकारों और सकारात्मक भावनाओं को बाह्य आभा मण्डल के भीतर प्रवेश करने से न रोका जाये।"

(च) दो दिन के पश्चात, पुनः आभा मण्डल की ढाल इसी प्रकार बनायें।

उपक्रम (३) विविध

यह कवच अनुभवी प्राणशक्ति उपचारकों अथवा प्राणिक मनोरोग उपचारकों द्वारा तैयार करनी चाहिए। इसका तैयार करना अति महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार कि किसी रोगी को स्वच्छ एवम् जीवाणु रहित कमरे में रखना होता है,उसी प्रकार से ढाल के द्वारा स्वच्छ एवम् 'मनोवैज्ञानिक जीवाणु रहित' आन्तरिक वातावरण (psychic bacterialess inner aura) रखना होता है।

कुशल प्राणिक मनोरोग उपचारक चक्र एवम् आभा मण्डल के कवच, विशेषकर हिंसात्मक, अति अभिलाषी, विभ्रमित (hallucinating) या नशे की लत वाले रोगियों के लिए अवश्य बनायें। जिन रोगियों के लिए यह कवच बनाये जाते हैं, वे अन्य रोगियों की अपेक्षा अति शीघ्र ठीक हो जाते हैं। यदि ये सही प्रकार से किया जाये, तो रोगी कई महीने पहले ही ठीक हो जाता है।

(८) गम्भीर रोग— Severe Psycho-diseases

गम्भीर रोगों में प्राण चिकित्सा उपचार के अतिरिक्त रोगी से अथवा उसके हितैषियों से मनोवैज्ञानिक मैडीकल उपचारक अथवा मनोचिकित्सक से सलाह के लिए भी मिलने के लिए कहें। यह समग्र राह (integreted approach) के लिए आवश्यक है।

(९) मनोरोगों से कैसे बचें— Prevention of Psychological Ailments

यह कोई भी व्यक्ति कर सकता है। उपचारक को तो यह अवश्य ही नियमित रूप से करना चाहिए।

(क) भावनात्मक रूप से विश्राम करें। यह धीमे–धीमे गहरी प्राणिक श्वसन प्रक्रिया को रोजाना करने से होता है, विशेष कर जब काम अधिक हो या किसी प्रकार का तनाव अथवा कुटुम्बी समस्यायें/तनाव हो।

(ख) जहां तक हो सके, नकारात्मक भावनाओं और सोचने से बचें। सकारात्मक रूप से सोचें एवम् क्रियान्वयन करें।

(ग) अत्यधिक क्रोध एवं घृणा से बचें। इस प्रकार की तीव्र नकारात्मक भावनायें चक्रों के सुरक्षा फिल्टरों में छेद कर देते हैं, जिससे उनमें प्रवेश पाने के लिए विदेशी आक्रमणकारी तथा नकारात्मक परजीव आकर्षित हो जाते हैं तथा उस व्यक्ति पर सम्पूर्ण रूप से हावी हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप वह व्यक्ति अस्थायी तौर पर पागल सा हो जाता है अथवा ऐसा जैसा उस पर कोई हावी हो गया हो। इस दशा में वह कुछ भी बहुत बुरी क्रियायें कर सकता है, जैसे हिंसा, हत्या, बलात्कारादि।

(घ) मद्यपान, धूम्रपान, नशीले पदार्थ अथवा विभ्रम उपजाने वाली दवाइयों/पदार्थों (hallucinogenic drugs) से बचें, क्योंकि वे चक्रों के फिल्टर को अथवा उसके कुछ भाग को जला डालते है। इसके कारण नकारात्मक परजीवी का आगमन सहज हो जाता है एवम् नकारात्मक प्रभाव भी सहज ही पड़ता है, जोकि उस व्यक्ति के नियंत्रण के परे होते है। इसी प्रकार का प्रभाव ज्यादा शराब पीने से होता है। उसके कारण नकारात्मक शारीरिक एवम् मानसिक/मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ते हैं।

(ङ) प्रतिदिन द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन करें। इससे वायवी शरीर की सफाई होती है तथा यह निम्न भावनाओं को उच्च भावनाओं में परावर्तित कर देता है। इसका ध्यानकर्ता पर बहुत शक्तिदायक तथा चैन पहुंचाने वाला प्रभाव पड़ता है। इस सम्बन्ध में अध्याय ३ के क्रम संख्या (ग) (३) का भी अवलोकन करें।

(च) नियमित रूप से शारीरिक व्यायाम अथवा नृत्य करें, क्योंकि इससे नकारात्मक भावनाएं बाहर निकलती हैं। अपनी इन भावनाओं को स्वतंत्रतापूर्वक बाहर निकलने दें, अन्यथा शारीरिक व्यायाम/नृत्य का उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा।

(छ) यदि आपके घर में समस्या उत्पादन करने वाले बच्चे हैं, तो उनके प्रति नकारात्मक भावनाएं, विचार न करें एवम् नकारात्मक व अप्रिय वचन न बोलें, क्योंकि इससे दशा और अधिक बिगड़ सकती है। उनके सामने न लड़ें, अन्यथा आपके क्रोध /घृणा से वे संक्रमित हो जायेंगे और जिससे उनका मनोवैज्ञानिक संतुलन बिगड़ जायेगा।

(ज) दूसरों को क्षमा करें एवम् उनसे क्षमा मांगें।

(झ) अवांछित तथा बुरे लोगों की संगति छोड़ें।

(१०) नियमित अभ्यास की आवश्यक्ता

प्राणिक उपचार न केवल विज्ञानात्मक है, अपितु कला भी है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि नियमित उपचार का अभ्यास बहुत आवश्यक है

और उपचार की प्रभावी गति काफी हद तक उपचारक की कुशलता पर निर्भर करती है, इसलिए इसको कला कह दिया है।

यह भी सलाह दी जाती है कि पहले इसका अभ्यास सरल, फिर मध्यम श्रेणी के रोगों पर किया जाये। अनुभव, कुशलता एवम् आत्म विश्वास प्राप्त करते–करते फिर कठिन तथा और ज्यादा कठिन रोगों का उपचार किया जाये।

उपचारक को यह भी सलाह दी जाती है कि वे प्राणिक श्वसन–ध्यान करके अधिक भावनात्मक और मानसिक स्थिरता विकसित करें और प्रतिदिन द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन करें, क्योंकि इससे वे रोगी की रोगग्रसित ऊर्जा से बच पायेंगे। यह मनो/वैज्ञानिक उपचारकों में आम बात है कि वे रोगियों के मानसिक/मनो रोगों से पीड़ित हो जाते हैं तथा तदुपरान्त अस्थायी रूप से मानसिक तौर पर असंतुलित हो जाते हैं।

(११) मनोरोग उपचारकों को होने वाली स्वास्थ्य समस्यायें – Health Problems encountered by Psychotherapists

(क) Depression (निराशा/मायूसी) आमतौर पर होती है। यह उपचारक की प्राण ऊर्जा अनजाने में उसके शरीर से रोगी में जाने के कारण होती है क्योंकि रोगी के शरीर की ऊर्जा पर खोखलापन होता है और ऊर्जा के प्रवाह का सिद्धान्त उच्च स्तर से निम्न स्तर की ओर जाने का होता है। यह रोगी की रोगग्रसित ऊर्जा से संक्रमित हो जाने के कारण भी होता है।

(ख) जब रोगी अपनी बीमारी का बखान करता है, तो रोगी की दूषित नकारात्मक भावनाओं के लिए उपचारक एक कूड़े की टोकरी (garbage bin) बन जाता है। इस प्रकार के कुछ दूषित पदार्थ शरीर के प्राकृतिक प्रतिरक्षात्मक तंत्र द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं और कुछ शरीर में बने रहते हैं। लम्बे समय में इनके इकट्ठे होते रहने के कारण उपचारक के स्वयं मनोवैज्ञानिक रोगों से पीड़ित होने की प्रवृत्ति होती है तथा वह गलत व्यवहार करने लग जाता है और कभी कुछ हद तक हिंसात्मक भी हो सकता है। इसको उपचार अथवा रोगी को सलाह देने के पश्चात द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन, सप्ताह में एक बार स्व–प्राणिक

उपचार तथा नियमित रूप से उपचार करने से अवकाश लेकर कम किया जा सकता है। इस प्राणिक उपचार का वर्णन क्रम (६) में किया गया है।

(ग) कभी–कभी रोगी की मनो रोगग्रसित ऊर्जा के उपचारक के 6 के अंदर संक्रमण एवं उनका जमाव हो जाने के कारण, वह (उपचारक) अपने 6 पर एक प्रकार का भारीपन तथा सांस लेने में कठिनाई महसूस कर सकता है। इस दशा के सुधारने के लिए उपचारक को T 6 करना चाहिए।

(घ) उपचारक अपने कंधों व बांह/बांहों पर सुन्नपन तथा छाती में दर्द महसूस करता है। 7 अधिक सक्रिय, किन्तु खालीपन सहित होता है। उपचारक का उपचार के कार्य में रोगी से एक प्रकार की सहानुभूति सी होती है। यह स्वयमेव ही उपचारक के 7 से हृदय की ऊर्जा निकलने में कारण बन जाती है, जिससे रोगी पर चैन पहुंचाने एवम् ठीक करने वाला (soothing and healing) प्रभाव पड़ता है। इस कारण उपचारक का 7 का अधिक उपयोग होने के कारण उस पर ऊर्जा का खोखलापन हो जाता है। इसका समाधान उपचारक द्वारा नियमित प्राण उपचार और उपचार से अवकाश लेना है। यद्यपि उपचारक 7– H तकनीक द्वारा हृदय की ऊर्जा का रोगी तक प्रेषित कर सकता है, किन्तु इसकी अनुशंसा नहीं की जा सकती क्योंकि इससे उपचारक को छाती का दर्द हो सकता है, जो हृदय–रोग के रूप में विकसित हो सकता है।

(ङ) उपचारक को अपने स्वयं के लिए किसी प्रकार का कोई रक्षात्मक कवच नहीं बनाना चाहिए। जब रोगी उपचारक से बात करता है, तो उस (रोगी) में से दबी हुए नकारात्मक भावनायें निकलती हैं जो उपचारक के पास आती हैं। यदि उपचारक के चारों ओर कवच होगा, तो ये नकारात्मक भावनाएं कवच से टकराकर वापस रोगी को और ज्यादा वेग व शक्ति से टकरायेंगी, जिससे रोगी की दशा और ज्यादा खराब हो जायेगी। यह परासामान्य भाषा में धूम–धड़ाका (boomerang)

कहलाता है। जब कोई नकारात्मक विचार आपकी ओर प्रेषित करता है और आप उसको ग्राह्य नहीं करते, तो वह टकराकर वापस भेजने वाले की ओर लौटता है। इस प्रक्रिया में वह उसी अपनी ही प्रकार के नकारात्मक विचारों एवम् ऊर्जा को आकर्षित करता है और जब तक ये प्रेषक की ओर लौटते हैं, इनकी शक्ति कई गुना बढ़ जाती है।

(च) उपचारक को अपने को संक्रमण रहित करने के लिए काफी व्यायाम एवम् द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन करना आवश्यक है। द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन से इस प्रकार के विचारों / ऊर्जा आदि का निष्कासन और परावर्तन होता है। इससे आपकी उपचार करने की कुशलता एवम् योग्यता भी बढ़ती है।

(१२) गर्भवती महिला की भावनाओं एवम् विचारों का गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव

गर्भवती महिला की भावनाएं तथा विचार गर्भस्थ शिशु के कुछ प्रमुख ऊर्जा चक्रों में स्थित हो जाते हैं, जिसके द्वारा उसके चरित्र पर प्रभाव पड़ता है। इसलिये बेहतर शिशुओं को पैदा करने के लिए, उनकी मांओं को सुन्दर प्रेरणादायक तथा शक्तिशाली चीजों को देखना एवं श्रवण करना बहुत महत्वपूर्ण है। उनके विचार और भावनाएं समन्वयतापूर्वक और सकारात्मक/उन्नतिशील होना चाहिए। क्रोध, निराशा, हानिकारक शब्दों तथा नकारात्मक भावनाओं और विचारों से बचना चाहिए।

क्या उन बच्चों का जिनका गर्भस्थ अवस्था में उनकी गर्भवती माताओं के नकारात्मक भावनाओं और विचारों से संक्रमण हो चुका था, उपचार हो सकता है ? इसका उत्तर हां है। आमतौर पर प्रभावित मुख्य चक्र 6, 9 और 11 होते हैं। इन चक्रों का C IV अथवा C eV द्वारा उपचार करना चाहिए।।

(१३) प्रार्थना द्वारा उपचार– Healing by Prayer

यह पाया गया है कि उपचार के तुलना में उपचार के साथ–साथ प्रार्थना भी की जाए, तब उपचार ज्यादा प्रभावी होता है। निम्न प्रार्थनाओं में

कोई भी आप कर सकते हैं, अथवा अपनी स्वयं की प्रार्थना तैयार कर सकते हैं:–

(क) ईश्वर से निम्न प्रार्थना करें :–

हे प्रभु, आपको दिव्य उपचारी ऊर्जा के लिए और इस रोगी को ठीक करने के लिए धन्यवाद। पूर्ण विश्वास के साथ। ऐसा ही हो।
Lord, thank you for your Divine healing energy, and for healing this patient. In full faith ! So be it.

अथवा

(ख) ईश्वर से निम्न कहें :–

ईश्वर, सर्वशक्तिमान और पूर्ण दयावान के नाम पर जो भी अस्वच्छ गंदी आत्माएं हैं, वे सब चली जाएं ! तदनुसार हो, धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

In the name of God , Almighty and All Merciful,
Unclean spirits be gone !

So be it ! With thanks and in full faith !

अथवा

(ग) उपचारक रोगी से निम्न कहे :–

ईश्वर, सर्वशक्तिमान और पूर्ण दयावान के नाम पर तुम स्वच्छ हो, पूर्ण हो और ठीक हो गये हो।

In the name of God, Almighty and All-merciful, you are clean, whole and healed !

With thanks and in full faith !

प्रार्थना को उपचार के दौरान कई बार कहना चाहिए और प्रत्येक रोगी के लिए कहनी या दोहरानी चाहिए। सप्ताह में कई बार उपचार करना पड़ सकता है। प्रार्थना द्वारा उपचार करना काफी शक्तिशाली और प्रभावी होता है। जो उपचारक बहुत ज्यादा शक्तिशाली हों, उनको रोगी को अति ऊर्जित नहीं करना चाहिए। जैसे–जैसे आप

ज्यादा अनुभवी और शक्तिशाली होते चले जाते हैं, वैसे-वैसे उपचार के दौरान अधिक इच्छाशक्ति का उपयोग न करें, अन्यथा रोगी की दशा खराब हो सकती है।

(१४) स्व-उपचार के लिए प्रार्थना— **Self- Healing Affirmation**

"ईश्वर सर्वशक्तिमान है, ईश्वर दयावान है। वह मुझे अमुक रोग (रोग का नाम लीजिए) से ठीक कर रहा है। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास से ! तद्नुसार हो !"

(क) उक्त प्रार्थना को लगभग १५ मिनट तक पूर्ण एकाग्रता, नम्रता, आदर और विश्वास के साथ दोहराएं।

(ख) यदि उचित ढंग से की जाए, तो साधारण रोगों में इसके द्वारा शीघ्र आराम मिलता है।

(ग) गम्भीर रोगों में उक्त प्रार्थना को लगभग १५ मिनट तक प्रतिदिन दो बार, जब तक आवश्यक हो तब तक, दोहराइये चाहे इसमें कई महीने अथवा वर्षों लग जाएं।

(घ) द्विहृदय पर ध्यान-चिन्तन के साथ स्व-उपचार की प्रार्थना पूर्तिदायक है। जो गम्भीर रोगों से पीड़ित हैं, वे पहले द्विहृदय पर ध्यान-चिन्तन करें, तत्पश्चात् स्व-उपचार की प्रार्थना करें। दोनों को मिलाने से उपचार की गति काफी तेज हो जाएगी।

(ङ) यदि रोग के लक्षण विद्यमान रहते हैं, तो चिकित्सक तथा प्राणशक्ति उपचारक से मिलिए।

(१५) स्व-दैवीयता— **Self- Divinity**

(क) उपक्रम (१) क्या तुमको यह ज्ञात नहीं है कि तुम्हारा शरीर उस पवित्र आत्मा का घर है जो तुम्हारे अन्दर विराजमान है, जो तुमने अनादिकाल से प्राप्त किया है ?

Do you not know that your body is a temple of that sacred soul which you have obtained from the beginningless period?

उपक्रम (२) देखो, मोक्ष का राज्य तुम्हारे अन्दर ही है।

For behold, the kingdom of Nirvana is within you.

उपक्रम (३) आत्मा शरीर, भावनाओं और विचारों से भिन्न है और उसकी प्रकृति अपरिवर्तनीय, अविनाशकारी और नित्य है।

Soul is different from the body, emotions and thoughts and that its nature is immutable, indestructible and and eternal.

उपक्रम (४) बुद्ध अथवा दैवीय ज्ञान की प्रकृति अथवा स्वयं की दैवीयता प्रत्येक में बसती है, चाहे वह किसी भी लालच, क्रोध, मूर्खता से ढकी हो अथवा स्वयं के क्रियाओं अथवा प्रतिकार द्वारा दबा दी गयी हो और आगे या पीछे जब इस प्रकार के ये प्रतिवस्तुएं हटा दी जाती हैं, तो वह (बुद्ध प्रकृति अथवा स्वयं की दैवीयता) पुनः प्रकाशित हो जाती है।

Buddha-nature (or the divine self) exists in everyone, no matter how deeply it may be coverd over by greed, anger or foolishness, or buried by his/her own deeds and retribution; and when all defilements are removed, sooner or later, it will reappear.

(ख) अब तक पाठक यह महसूस कर चुका होगा कि वह स्वयं उसका शरीर नहीं है, न भावना है, न विचार है और इस सब बयान का तात्पर्य यह है कि वह स्वयं अपने शरीर में एक स्व-दैवीय है जो स्वयं (छिपा हुआ) ईश्वर है। आप स्व-दैवीय के अन्दर विराजित स्वयं को इस दैवीय शक्ति द्वारा शारीरिक और मानसिक/मनो/मनोवैज्ञानिक रोगों से ठीक कर सकते हैं। यह निम्न स्वीकारता (Affirmation) को प्रतिदिन कई बार, जब तक आवश्यक हो, कर सकते हैं :–

उपक्रम (१) मैं न तो शरीर हूं, न भावना हूं, न विचार हूं।
मैं एक दैवीय व्यक्ति हूँ।
मैं वह हूं जो मैं हूं।
मैं स्वच्छ सम्पूर्ण हूं और उपचारित हूं।
धन्यवाद सहित, तदनुसार हो

I am not the body, nor the emotion, nor the thought !

I am a divine being !

I am that I am !
I am clean, whole and healed
With thanks, So be it !

उपक्रम (२) नकारात्मक परजीवियों से अपने आपको मुक्त करने के लिए, उनको निम्न सम्बोधन कीजिए

मैं एक दैवीय व्यक्ति हूँ।
मैं वह हूं जो मैं हूं।
उस ईश्वर की शक्ति से जो मैं हूं
मैं तुम सबको अभी जाने के लिए आदेश देता हूं।

I am a divine being,
I am that I am
By the power of God within me,
I command you all of you to leave now !

अथवा

ईश्वर की शक्ति जो मुझ दैवीय व्यक्तित्व में है, उसके द्वारा मैं तुमको अभी जाने के लिए आदेश देता हूं। पूर्ण विश्वास के साथ, तद्नुसार हो।

By the power of God manifesting through my divine self,
I command you to go away now !
In full faith! So be it !

उक्त सम्बोधन को दोहराते रहिए जब तक आवश्यक हो।

(१६) **आदेश के द्वारा ठीक करना– Healing by Command**

जो अनुभवी उपचारक हैं और जिनका अन्तःकरण या आत्मिक डोरी (spiritual cord) काफी बड़ा है, वे नकारात्मक परजीवियों को जाने तथा न लौटने के लिए आदेश देकर, रोगियों की सफाई कर सकते हैं। इसकी विधि इस प्रकार है :–

(क) 11 पर ध्यान केन्द्रित करिए।

(ख) मानसिक या वाचनिक रूप से निम्न आदेश दीजिए :

उस ईश्वर की शक्ति जो मुझ दैवीय व्यक्तित्व में है,

ऐ नकारात्मक परजीवियो, तुम चले जाओ और लौटकर नहीं आना।

By the power of God manifesting through my divine self !

Negative elementals, be gone !

Do not return

अथवा

अस्वच्छ एवम् गंदी आत्माएं, तुम चली जाओ और कभी लौटकर मत आना।

Unclean Spirits, be gone !

Never return !

यह आदेश एक या अनेक बार दिया जा सकता है।

प्राणिक मानसिक/मनोवैज्ञानिक उपचार, चक्रों के फिल्टर की दरारों को ठीक करने एवम् छेदों को सील करने एवम् चक्रों को सामान्य करने के लिए कीजिए। जब तक आवश्यक्ता हो, तब तक उपचार कीजिए।

ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार–उदाहरण
Pranic Psychotherapy- Examples

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	तनाव और आधसीसी दर्द– Stress and Migraine Headache	५.३६६
२.	क्रोध, चिड़चिड़ापन, चिन्ता, शोक और हिस्टीरिया– Anger, Irritability, Anxiety, Grief and Hysteria	५.३६७
३.	अपने विवाहित जीवन को कैसे सुधारें– How to improve and save your marriage	५.३६७
४.	तनाव, चिड़चिड़ापन, शोक और चिन्ता का स्व–प्राणशक्ति उपचार– Self Pranic Healing for Tension, Irritability, Grief and Anxiety	५.३६८
५.	यौन नपुंसकता– Sexual Impotence	५.३६९
६.	यौन नपुंसकता का स्व प्राणशक्ति उपचार– Self Pranic Treatment for Sexual Impotence	५.३७१
७.	फोबिया तथा मानसिक आघात– Phobias and Traumas	५.३७१
८.	हकलाना– Stuttering	५.३७२
९.	विवशता और "अनियंत्रित" विवशताओं का कैसे उपचार करें– How to treat obsessions and "uncontrollable" compulsions	५.३७२

१०.	स्त्रियों के साथ संभोग की अति तीव्र इच्छाएं, अपने जननांगों का प्रदर्शन करना, यौन सम्बन्धी हिंसा और बच्चे का यौन–सम्बन्धी उत्पीड़न करना– Nymphomania, Exhibitionism, Sexual Violence and Child Molesting	५.३७४
११.	फोबिया, ट्रॉमा और अन्य मनोरोगों के लिए स्व–पूरक स्व प्राणशक्ति उपचार– Complementary Self-Pranic Treatment for Phobias, Traumas and other Psychological Ailments	५.३७५
१२.	धूम्रपान– Smoking	५.३७८
१३.	मद्यपान की लत– Alcoholism	५.३७९
१४.	नशीले पदार्थों के सेवन की लत– Drug Addiction	५.३८०
१५.	विभ्रम और बेचैनी– Hallucination and Restlessness	५.३८२
१६.	उदासी / मायूसी–	
	(१) सामान्य	५.३८२
	(२) भौतिक कारण के फलस्वरूप होने वाली	५.३८३
	(३) मानसिक / मनोवैज्ञानिक कारणों से होने वाली –मामूली केसों में	५.३८३
	(४) मायूसी स्व प्राणशक्ति उपचार	५.३८४
	(५) गम्भीर निराशा / मायूसी– Depression	५.३८५
१७.	आत्महत्या की प्रवृत्तियां – Suicidal Tendencies	५.३८७
१८.	हिंसक रोगी– Violent Patients	५.३८८

१९. पैरेनोइड रोगी – Paranoid Patients ५.३६०

२०. हिंसात्मक रोगियों में बेचैनी और अनिद्रा–
Restlessness and Insomnia In Violent Patients ५.३६०

२१. रोगी को क्रोध पर नियंत्रण सिखाना–
Teaching the patient to regulate his Anger ५.३६१

२२. मानसिक / मनोवैज्ञानिक रूप से पिछड़े रोगी–
Mentally / Psychologically Retarded Patients ५.३६३

२३. विविध व्यक्तित्व का रोग– Multiple Personality Syndrome ५.३६३

२४. पागलपन (बगैर हिंसा के) – Madness (without violence) ५.३६५

२५. पागलपन (हिंसा सहित)– Madness coupled with violence ५.३६५

२६. गर्भस्थ शिशु का उपचार– Treating unborn baby ५.३६७

ऊर्जा द्वारा मनोरोगों का उपचार–उदाहरण
Pranic Psychotherapy- Examples

आवश्यक निर्देश–

इस अध्याय में जहां कहीं C eV या E eV का उपयोग का वर्णन आया है, वहाँ eV द्वारा अध्याय २३ के क्रम ६ में वर्णित C द्वारा नकारात्मक पदार्थों का नष्टीकरण एवम् E द्वारा सकारात्मक पदार्थों का सृजन, चक्रों की जालियों के दरारों की मरम्मत व छेदों का सील करना आवश्यक रूप से निहित हैं।

कृपया उपचार के सिद्धान्त तथा विधि जो अध्याय २३ में क्रम ६ पर दिये हैं, उन सभी का पालन करें।

(१) **तनाव और आधासीसी दर्द – Stress and Migraine Headache**

सबसे ज्यादा ये बीमारी होती है। जब आदमी तनाव में होता है, तो उसका 6 गलत तौर पर कार्य करता है और तनावमयी ऊर्जा से भर जाता है। 11 और 9 भी आंशिक रूप से प्रभावित होते हैं। स्वास्थ्य किरणें सीधी होने के स्थान पर लहरदार हो जाती है और बाह्य आभा मण्डल का रंग थोड़ा सा भूरा हो जाता है।

(क) GS

(ख) C' 6 ~ E (IV या eV), जब तक रोगी को कुछ हद तक आराम न मिल जाये।

(ग) यदि 6 अति सक्रिय हो तो E 6 IB -- इसका संकुचन करने के लिए

(घ) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) (IV या eV) – ऊर्जन के समय 7 को बड़ा होते दृश्यीकृत करें। इससे रोगी पर सुकून व शांतिमय प्रभाव पड़ेगा। E 7f न करें, अन्यथा इससे प्राण का घनापन हो जाएगा।

(ङ) C' (समस्त सिर का क्षेत्र, 11, 9), /E (IV या eV) -- इसका उद्देश्य इन चक्रों से नकारात्मक भावनाएं तथा विचार जो तनाव से सम्बन्धित हैं उनसे, मुक्ति दिलाना है। जो तनाव में रहते हैं, वे अधिकतर हफ्तों, महीनों या सालों तक आधा शीशी के दर्द से पीड़ित रहते हैं। रोगी के उपचार के समय उपचारक को आराम से रहना व तनावपूर्ण नहीं रहना चाहिए, वरना उसकी तनाव की ऊर्जा रोगी को हस्तान्तरित हो जाएगी।

(च) यदि उपचार ठीक प्रकार हो जाए, तो रोगी को काफी राहत महसूस होगी।

(छ) भावनात्मक तथा मानसिक नियंत्रण रखने और आन्तरिक शांति प्राप्त करने हेतु, रोगी को धीमे-धीमे गहरी प्राणिक श्वसन पद्धति, श्वसन द्वारा ध्यान और द्विहृदय पर ध्यान-चिन्तन सिखाना चाहिए।

(२) क्रोध, चिड़चिड़ापन, चिन्ता, शोक और हिस्टीरिया– Anger, Irritability, Anxiety, Grief and Hysteria

(क) उक्त क्रम (१) के अनुसार

(ख) शोक के केस में कई दिनों अथवा हफ्तों तक प्रतिदिन दिन में दो बार उपचार करें। यदि उपचार नहीं हुआ, तो पुनः रोगी होने की सम्भावना है।

(ग) क्रोध के केस में इस अध्याय के क्रम संख्या (२१) के अनुसार रोगी को अपने क्रोध पर नियंत्रण करना सिखायें।

(३) अपने विवाहित जीवन का कैसे सुधार करें और उसको अनुरक्षित करें– How to improve and save your marriage

जब पति/पत्नी (जो भी ऑफिस में कार्यरत होते हैं), दफ्तर से घर आते हैं, तो वे अपने कार्यालय में थकान से उत्पन्न हुई भावनाओं को वहां न निकाल पाने के कारण, घर में निकालते हैं। इसका फल यह होता है कि पत्नी और पति में शब्दों का गरमा-गरम आदान प्रदान होता है और कभी-कभी तो मारपीट भी हो जाती है। लम्बे समय में इससे शादी टूट सकती है अथवा

तलाक हो सकता है। इस सबका बच्चों पर भी कुप्रभाव पड़ता है। इन समस्याओं को कम से कम करने के लिए, नियमित तौर पर अपने पति/पत्नी पर तनाव के लिए प्राणिक मनोवैज्ञानिक उपचार करें। यदि आपके जीवनसाथी में कोई बाह्य सुधार के चिन्ह नहीं भी दिखते, तब भी इस उपचार द्वारा वह आन्तरिक शांति महसूस करेगा/करेगी, जिसको वह पसन्द करेगा/करेगी तथा आपसी रिश्ता दृढ़ होगा।

यह उपचार उद्दंड या अति भावुक बच्चों पर भी किया जा सकता है। यह दफ्तर में भी किया जा सकता है या जब महत्वपूर्ण निर्णय लेने हों। तनावमुक्त होकर, निर्णय ज्यादा ठीक और जल्दी लिए जा सकेंगे। गरमा-गरम बातचीत को शान्त अथवा कम किया जा सकता है।

(४) तनाव, चिड़चिड़ापन, शोक और चिन्ता का स्व-प्राणशक्ति उपचार-

Self Pranic Healing for Tension, Irritability, Grief and Anxiety

(क) सामान्यकरण होने तक गहरा प्राणिक श्वसन या श्वसन-ध्यान करें। इसमें लगभग दस से तीस मिनट लग सकते हैं। काम के समय अथवा जब आप तनावयुक्त हों, तब भी यह प्राणिक श्वसन किया जा सकता है। इससे चैन, शांत होने एवम् ऊर्जन (सक्रियता) का प्रभाव पड़ता है।

(ख) C 6f ~ E जब तक आप राहत न महसूस करें/ T (11, 9) -- C तथा E के समय PB करते रहें।

(ग) द्विहृदय पर ध्यान-चिन्तन करें। यदि ठीक प्रकार से करें, तो नतीजा काफी आश्चर्यजनक एवम् शीघ्र होगा। इसके द्वारा आप गहरी आन्तरिक शांति और अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे। इससे विवाहित जीवन भी सुधरेगा, विशेष तौर पर यदि दोनों ही पति-पत्नी इस ध्यान-चिन्तन को प्रतिदिन करें तो।

(घ) अपनी सकारात्मक स्व-प्रतिच्छाया का नियमित रूप से अभ्यास करें। तनावपूर्ण दशा को दृश्यीकृत करें। उसकी ओर उदासीनता और वास्तविकता से देखें। आप अपने को शान्त एवम् सही कार्य करते हुए दृश्यीकृत करें। इस समय प्राणिक श्वसन करें। इसको प्रतिदिन दोहरायें

जब तक कि आपकी यह परिस्थिति न सुधरे। जब आप तनावपूर्ण दशा को उदासीनता और वास्तविकतापूर्वक दृश्यीकृत करते हैं, तो आप चक्रों की तनावपूर्ण ऊर्जा को अपने चक्रों से आंशिक रूप में बाहर निकाल रहे होते हैं। और फिर जब आप अपने को शांति और सही कार्य करते हुए दृश्यीकृत करते हैं, तो वास्तव में आप सकारात्मक विचारों के आकारों का निर्माण कर रहे होते हैं, जो कि आपके तनावपूर्ण दशा पर सकारात्मक प्रक्रिया (Reaction) करेंगे। जब हम तनाव की बात करते हैं, तो वह हमारी एक बोझिल परिस्थिति (taxing situation) की नकारात्मक प्रतिक्रिया के अतिरिक्त और कुछ नहीं होती।

अपने भावनाओं और मस्तिष्क को नियंत्रण और इनको शान्त करने की कुशलता बढ़ाने के लिए द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन का परामर्श दिया जाता है।

यदि कोई तनावयुक्त, क्रोधित या चिड़चिड़ा हो, तो उस समय ठीक प्रकार की सोच मुश्किल होती है। इसमें उस समय के लिए निर्णय उनकी गुणवत्ता के लिए हानिकारक होंगे। इसलिए यह सलाह दी जाती है कि काम के समय आप स्वयं प्राणिक मनोवैज्ञानिक उपचार करें अथवा अपने कार्यालय के साथी से अपने ऊपर करवायें, ताकि आपका तनाव कम हो सके तथा जिसके द्वारा उत्पादन बढ़ सके।

(५) यौन नपुंसकता– Sexual Impotence

यह शारीरिक अथवा मानसिक/मनोवैज्ञानिक अथवा दोनों कारणों से हो सकती है। इन रोगियों के 2 पर खोखलापन होता है। प्रजनन तंत्र मुख्यतया 2 द्वारा ऊर्जित तथा नियंत्रित होता है। इसको 9 भी नियंत्रित करता है, क्योंकि वह अन्तःस्त्रावी तंत्र को नियंत्रित करता है। यह 8 द्वारा भी प्रभावित होता है, जो उच्च सृजन का केन्द्र है तथा 1 द्वारा, जो 2 को काफी मात्रा में ऊर्जित करता है।

पुरुषों में काम चक्र शिश्न, अण्डकोष तथा प्रोस्टेट ग्रंथि को ऊर्जित करता है। अण्डकोष उसके अपने लघु चक्र और प्रोस्टेट अपने लघु चक्र तथा p द्वारा नियंत्रित होते हैं। स्त्रियों में कामचक्र बहिर्योनि, योनि शिश्न, योनि, अण्डाशय की नलियां तथा अण्डाशय को ऊर्जित और नियंत्रित करता है।

गर्भाशय लघु गर्भाशय चक्र द्वारा ऊर्जित तथा नियंत्रित होता है। अण्डाशय तथा अण्डाशय की नलियां लघु अण्डाशय चक्र द्वारा ऊर्जित तथा नियंत्रित होते हैं। उक्त चक्रों की स्थिति चित्र ४.१४ में दर्शायी गयी है।

(क) GS

(ख) C (1, 2, 4) G / E IR– यदि रोगी रतिज रोग से पीड़ित है अथवा इसका इतिहास रखता है, तो इनका E 1 न करें, अन्यथा इससे उसका रतिज रोग वृद्धिंगत होगा और रोग के सुप्त कीटाणु उत्तेजित हो जाएगें। यदि आवश्यक हो, तो इनमे से अति सक्रिय चक्रों का IB द्वारा संकुचन करें।

(ग) C' 6 eV / E eV -- यदि संकुचन आवश्यक हो तो E IB द्वारा करें।

(घ) C 7 eV / E 7 (7b के माध्यम से) eV – E eV करते समय 7 को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें।

(ङ) C (8, 9, 11) eV / E eV

(च) यदि eV का उपयोग न कर पावें, तो इसके स्थान पर IV का उपयोग करें, किन्तु इससे उपचार उतना प्रभावी नहीं होगा जितना eV द्वारा।

(छ) रतिज रोग होने की दशा में अध्याय १७ के क्रम संख्या (११) में वर्णित उपचार को उक्त उपचार के साथ मिलाकर करें, किन्तु अध्याय २३ में वर्णित eV द्वारा उपचार के विषय सम्बन्धी निर्देशों का अवश्य पालन करें। यह महत्वपूर्ण है।

(ज) उक्त उपचार में eV या IV प्रयोग करते समय नकारात्मक ऊर्जाओं आदि का निकालना आवश्यक होगा, जिसकी विधि अध्याय २३ के क्रम संख्या (६) में दी गयी है।

(झ) उपचार को सप्ताह में दो बार करें। यदि उपचार ठीक तौर पर किया गया, तो एक या दो माह में अधिकतर केसों में काफी सुधार होगा। रोगी को पुंसकत्व प्राप्त करने के कुछ समय तक यौन प्रक्रिया से दूर

रहने के लिए निर्देशित करें अथवा वह उसको नियंत्रण करे, वरना 2 पर पुनः खोखलापन आ जायेगा।

(ञ) नपुंसकता के अन्य कोई कारण हों, तो उसका भी उचित उपचार करें।

(६) **यौन नपुंसकता का स्व–प्राणशक्ति उपचार –**

Self- Pranic Treatment for Sexual Impotence

(क) T (1 2, 4, 6, 9, 11) – इसको प्रतिदिन दस से बीस मिनट तक करें।

(ख) द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन करें। काफी सुधार होने के पश्चात भी कई महीनों तक स्व–प्राणशक्ति उपचार करते रहें, अन्यथा पुनः रोगग्रस्त हो सकते हैं।

(ग) यदि कर सकें तो उक्त (ख) के साथ उपरोक्त क्रम (५) में वर्णित उपचार को स्व–प्राणशक्ति उपचार के द्वारा करें, जो अधिक प्रभावी होगा। तब उक्त (क) में वर्णित उपचार की आवश्यक्ता नहीं है।

निर्धारित उपचार विधि जो अध्याय २३ के क्रम ६ में वर्णित है, उसका विशेष ध्यान रखें।

(७) **फोबिया तथा भावनात्मक आघात (ट्रॉमा)– Phobia and Trauma**

इनका विशेष वर्णन अध्याय २३ के क्रम ४ (घ) में दिया है। किस प्रकार के फोबिया के लिए, किस प्रकृति के सोच के आकारों, नकारात्मक ऊर्जा आदि की सफाई करना है, यह स्व–विवेक से निश्चित करें।

(क) GS

(ख) C (11, 9, 6) (IV या eV) – इसमें eV के उपयोग की सलाह दी जाती है क्योंकि IV उतना प्रभावी नहीं होता।

(ग) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) (IV या eV) – इसके ऊर्जन के समय 7 को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें।

(घ) रोगी के पूर्ण रूप से ठीक होने तक उपचार को सप्ताह में एक या दो बार करें।

(८) **हकलाना– Stuttering**

(क) GS

(ख) C (11, 9, 6) (IV या eV)

(ग) C (8, 8') (IV या eV) / E

(घ) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) (IV या eV)

(घ) उपचार सप्ताह में दो बार करें।

(९) **विवशता और "अनियंत्रित" विवशताओं का कैसे उपचार करें – How to treat obsessions and "uncontrollable" compulsions**

उपक्रम (१)

यह व्यक्ति मजबूरी में खाते रहने या झूठ बोलने से पीड़ित होते हैं, यानी जिनकी प्रवृत्ति खाते रहने की या झूठ बोलने की बन चुकी है– चाहे उसकी आवश्यकता हो या न हो! इनका 6 आंशिक रूप से तड़का हुआ (cracked) होता है और अनेक सम्बन्धित नकारात्मक परजीवी उसमें बैठे रहते हैं। 8 तथा 8' भी प्रभावित हो जाते हैं।

(क) GS

(ख) C (6, 7, 8, 8', 9, 11) eV – सम्बन्धित नकारात्मक सोच के आकारों, नकारात्मक ऊर्जाओं और नकारात्मक परजीवियों के निष्कासन तथा नष्टीकरण के लिए।

(ग) E (6, 7, 8, 8', 9, 11) eV – चक्र के तड़के हुए भागों की मरम्मत तथा छेदों को सील करने हेतु और सकारात्मक सोच के आकारों के सृजन हेतु। E 7, 7b के माध्यम से करें।

उपक्रम (२)

जो व्यक्ति मजबूरी में चोरी करने अथवा काम करते रहना-करते रहना (चाहे इसकी जरूरत न भी हो) की आदत से पीड़ित है, उनका उक्त उपक्रम (१) में वर्णित (8, 8') के स्थान पर 1 प्रभावित रहता है।

(क) GS

(ख) C (6, 7, 9, 11, 1) eV -- सम्बन्धित नकारात्मक सोच के आकारों, नकारात्मक ऊर्जाओं और नकारात्मक परजीवियों के निष्कासन तथा नष्टीकरण के लिए।

(ग) E (6, 7, 9, 11, 1) eV -- चक्र के तड़के हुए भागों की मरम्मत तथा छेदों को सील करने हेतु और सकारात्मक सोच के आकारों के सृजन हेतु। E 7, 7b के माध्यम से करें।

उपक्रम (३)

जो व्यक्ति बात–बात में घबड़ाते रहते हैं, उनका उक्त उपक्रम (१) में वर्णित (8, 8') के स्थान पर 10 प्रभावित रहता है।

(क) GS

(ख) C (6, 7, 9, 11, 10) eV -- घबड़ाहट सम्बन्धी नकारात्मक सोच के आकारों, नकारात्मक ऊर्जाओं और नकारात्मक परजीवियों के निष्कासन तथा नष्टीकरण के लिए।

(ग) E (6, 7, 9, 11, 10) eV -- चक्र के तड़के हुए भागों की मरम्मत तथा छेदों को सील करने हेतु और सकारात्मक सोच के आकारों के सृजन हेतु। E 7, 7b के माध्यम से करें।

उपक्रम (४)

जो व्यक्ति न चाहते हुए भी बिस्तर में पेशाब करते हैं, उनके उपक्रम (१) में वर्णित (8, 8') के स्थान पर गुर्दे, 3 और 2 प्रभावित रहते हैं।

(क) GS

(ख) C (6, 7, 9, 11, K, 3, 2) eV -- जबर्दस्ती पेशाब निकलवाने नकारात्मक सोच के आकारों, नकारात्मक ऊर्जाओं और नकारात्मक परजीवियों के निष्कासन तथा नष्टीकरण के लिए।

(ग) E (6, 7, 9, 11, 2) eV -- चक्र के तड़के हुए भागों की मरम्मत तथा छेदों को सील करने हेतु और सकारात्मक सोच के आकारों के सृजन हेतु E 7, 7b के माध्यम से करें। (नोट– E 3 न करें, अन्यथा रोगी को उच्च रक्तचाप हो सकता है)

उपक्रम (५)

सभी केसों में रोगी के ठीक होने तक उपचार करें। इन सभी रोगों में विवशताओं का केन्द्र 6 है, अतएव इस चक्र के उपचार पर विशेष ध्यान दें। यदि eV का प्रयोग न हो सके, तो IV का करें, किन्तु यह कम प्रभावी होगा।

(१०) **स्त्रियों के साथ संभोग की अति तीव्र इच्छाएं, अपने जननांगों का प्रदर्शन करना, यौन सम्बन्धी हिंसा और बच्चे का यौन–सम्बन्धी उत्पीड़न करना– Nymphomania, Exhibitionism, Sexual Violence and Child Molesting**

यद्यपि प्राकृतिक तौर पर कामेच्छा स्वस्थकारी होती है, किन्तु इसको नियंत्रित करना आवश्यक है। उन्नतशील परासामान्य (esoteric) विद्यार्थी यौन ऊर्जा को स्वयं के सकारात्मक सृजन, स्वस्थता और आत्मिक उत्थान के लिए परावर्तित कर लेते हैं। ऐसा कदाचित् हमारे ब्रह्मचारी एवम् त्यागीगण भी करते हैं।

इस रोग में 2, 6, 9, 11 में नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकार और नकारात्मक परजीवी भरे होते हैं। 2 तथा 6 में दरार होती है। कभी–कभी 9, 11 में भी दरार होती है। 2 तथा 6 अति सक्रिय होते हैं।

(क) GS

(ख) C (2, 6) eV / E eV -- इनमें दरारों की मरम्मत करें एवम् छेदों को सील करें। इनको E IB के द्वारा ढाई इंच व्यास के आकार तक संकुचित करें।

(ग) C (9, 11) eV / E eV – इनमें दरारों की मरम्मत करें एवम् छेदों को सील करें।

(घ) C 4 eV / E eV

(ङ) उपचार को सप्ताह में कई बार दोहरायें।

(११) **फोबिया, ट्रॉमा और अन्य मनोरोगों के लिए स्व–पूरक स्व–प्राणशक्ति उपचार– Complementary Self-Pranic Treatment for Phobias, Traumas and other Psychological Ailments**

जैसा कि आपको विदित है प्राणशक्ति उपचार के दो सिद्धान्त हैं– सफाई तथा ऊर्जन। ट्रॉमा की ऊर्जा, नकारात्मक आदतों, नकारात्मक विचार और नकारात्मक संवेदनों को अपने से दूर हटाने से इन रोगों के उपचार की गति में तीव्रता आती है। यह सफाई नकारात्मक सोच और संवेदनों अथवा नकारात्मक सोच के आकारों की है जो स्वयं में अन्दर भरे होते हैं और जो विभिन्न प्रकार के होते हैं– जैसे फोबिया, ट्रॉमा, विवशता के विचार, विवशता का व्यवहार, बुरी लतों का आदी होना, निराशाजनक विचार/ संवेदन आदि (Phobias, Traumas, Obsessive ideas, Compulsive behaviour, Addiction, Depressing thought, feeling and so on).

(क) नकारात्मक सोच के आकारों का बाह्यीकरण तथा उनको नष्ट करना– Externalizing and Disintegrating Negative Thought Entities.

(क) (१) आरामपूर्वक रहें और प्राणिक – श्वसन करें।

(२) ट्रॉमा का अनुभव, फोबिया, निराशाजनक विचारों और आदतों अथवा नकारात्मक विचार और संवेदनों का बाह्यीकरण करिए। इसके लिए एक सफेद बोर्ड (board) को दृश्यीकृत करके, उस पर अपने फोबिया अथवा नकारात्मक विचार एवम् भावनाओं आदि को प्रेषित करके करिए। दृश्यीकरण स्पष्ट हो या न हो, किन्तु इसका इरादा महत्वपूर्ण है।

(३) सफेद बोर्ड पर संग्रहीत नकारात्मक भावनाओं और विचारों को उनको बोर्ड पर मिटाकर (erasing) नष्ट करिए। इनको नष्ट करने की भावना व प्रक्रिया, इनको मिटाने से इंगित होती है।

(४) उक्त समस्त प्रक्रियायें कई बार करें, जब तक आपको काफी आराम न महसूस हो। अगले कुछ हफ्तों में इस उपचार को सप्ताह में अनेक बार दोहराइये।

(ख) अन्य तरीके भी उक्त बाह्यीकरण तथा नष्टीकरण के लिए हैं जिनकी विधि निम्नवत है:

(१) एक उबलती हुई बड़ी कढ़ाई को दृश्यीकृत करें और उसमें उक्त वर्णित सभी प्रकार का मानसिक /मनोवैज्ञानिक 'कूड़ा' फेंक दें।

अथवा

(२) एक सफ़ेद बौन्ड कागज (white bond paper) का अपने सामने दृश्यीकरण करें और उस पर संग्रहीत नकारात्मक सोच के आकारों के रूप में नकारात्मक भावनाओं और संवेदनों को प्रेषित करें। फिर यह दृश्यीकृत करें कि वह कागज मय उन नकारात्मक सोच के आकारों के, eV की अग्नि में फेंक दिया गया है। चूंकि नकारात्मक सोच के आकारों का बाह्यीकरण आंशिक होता है, अतएव इस उपचार को कई बार करना चाहिए।

इन नकारात्मक सोच के आकारों को टुकड़े-टुकड़े करके नष्ट करने के स्थान पर, इनको परावर्तित कर सकते हैं। इसके लिए सोच के आकारों को कुछ सकारात्मक रूप से परावर्तित होते हुए दृश्यीकरण करें। अथवा, अपने जीवन के बहुत प्रसन्नता के संस्मरणों की स्मृति करिए और नकारात्मक सोच के आकारों को इस प्रसन्नतामयी अनुभवों के साथ मिश्रण करके, इनको कुछ सकारात्मक रूप दीजिए।

(ख) नकारात्मक पराजीवियों की सफाई

नकारात्मक सोच के आकारों की सफाई करने के पश्चात, नकारात्मक पराजीवियों की सफाई करनी आवश्यक होती है। यह द्विहृदय पर ध्यान चिन्तन के द्वारा नियमित और यथोचित करने पर होती है। दैवीय ऊर्जा या eV स्वतः ही इन पराजीवियों का निष्कासन कर देगी और ऊर्जा की जालियों पर दरारों या छेदों को बन्द कर देगी अथवा सील कर देगी।

जो व्यक्ति १८ वर्ष से कम उम्र के हैं, अथवा ऐसे रोगों से पीड़ित हैं जिनमें द्विहृदय पर ध्यान करना वर्जित है, वे श्वेत प्रकाश पर ध्यान का अभ्यास करें।

(ग) स्वतः की सकारात्मक छवि बनाना

(क) उपचार की गति अपने को सकारात्मक विचार और संवेदनों से ऊर्जित करके बढ़ायी जा सकती है। यह सकारात्मक स्वीकारीकरण करके या सकारात्मक स्व–छवि बनाकर किया जाता है। इसको कम से कम कई महीनों तक प्रतिदिन लगभग दस मिनट करके करना चाहिए। शक्तिशाली विचारों की स्व–छवि के लिए इसमें धैर्य रखना अति महत्वपूर्ण है।

अथवा

(ख) एक और अन्य तरीका शक्तिशाली स्व–छवि बनाने का अपनी सकारात्मक स्व–छवि बनाना या सृजनात्मक दृश्यीकरण है। यदि आप मायूसी महसूस करते हैं तो अपने को प्रसन्न, आशावादी और उत्साह से भरा हुआ दृश्यीकृत करें। यदि किसी की हिंसा की प्रवृत्ति है, तो वह तनाव या भड़काने वाली स्थितियों में अपने को शान्त, भला और कर्मकारक दृश्यीकृत करें। कम से कम अगले कई महीनों तक प्रतिदिन दस मिनट तक दृश्यीकरण करिए। दृश्यीकरण का स्पष्ट होना जरूरी नहीं है। आपका दृश्यीकरण स्पष्ट है या नहीं, इसका उसकी उत्पादित सोच की

शक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु लगातार स्पष्ट इरादा की आवश्यकता है। स्पष्ट इरादे का तात्पर्य, स्पष्ट विचार से है कि आप क्या बनना चाहते हैं। लगातार इरादा से तात्पर्य आपका स्पष्ट इरादा अथवा दृश्यीकरण से है जो आप लगातार कई महीनों तक प्रतिदिन दस मिनट तक कर रहे हैं/करेंगे। इसको करने से आप एक शक्तिशाली सकारात्मक सोच के आकार का सृजन कर सकेंगे, जिसका आप पर एक अच्छा और सहायतापूर्ण प्रभाव पड़ेगा। दृश्यीकरण के समय यदि आप प्राणिक श्वसन करें, तो अच्छा रहेगा क्योंकि इससे सोच का आकार अधिक शक्तिशाली बनेगा। आपका ध्यान सिद्धहस्त होना जरूरी नहीं है। किन्तु जब दृश्यीकरण कर रहे होते हैं, तब उस समय प्रायः मन भटक जाता है– ऐसे में मन को फिर वापस ध्यान–दृश्यीकरण में लगाना ज्यादा जरूरी और महत्वपूर्ण है।

(घ) प्राणिक मनोरोग उपचारक द्वारा रोगी के उपचार की गति बढ़ाना

यह रोगी की एक सकारात्मक छवि का सृजनात्मक दृश्यीकरण करके एवम् उसके प्रति दया तथा सकारात्मक विचार और संवेदन महसूस करके किया जाता है। जब तक आवश्यक हो, सप्ताह में कई बार तथा एक दफा में पांच से दस मिनट तक उक्त दृश्यीकरण करके यह किया जाता है इसको और अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए मनोरोग उपचारक को इस दृश्यीकरण के समय प्राणिक श्वसन करना चाहिए।

(१२) धूम्रपान– Smoking

उपचार के अतिरिक्त रोगी को इच्छाशक्ति करनी होगी कि वह धूम्रपान नहीं करेगा, अन्यथा उपचार अस्थायी राहत देकर फिर व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि रोगी के चक्र में बसे हुए नकारात्मक परजीवी उसको पुनः धूम्रपान करने हेतु उकसायेंगे।

मध्यम धूम्रपान व्यक्तियों का 6, 8 तथा 8' प्रभावित होता है। चक्रों की जालियों में दरार पड़ जाती है, जिनमें नकारात्मक परजीवी बैठे होते हैं। दिव्य दर्शन से यह छोटे आकार के नारंगी अग्नि की लपटें दिखाई देते हैं,

जिनका केन्द्रीय भाग मटमैला लाल रंग का होता है। जो व्यक्ति अधिक धूम्रपान करते हैं, उनका 9 तथा 11 भी प्रभावित हो जाता है। इनके नकारात्मक परजीवी मध्यम धूम्रपान व्यक्तियों के तुलना में अधिक संख्या में और बड़े आकार के होते हैं।

नकारात्मक परजीवी 6f तथा 11 में अधिक संख्या में अवस्थित होते हैं।

(क) GS

(ख) C' (समस्त गला का क्षेत्र –सामने, बगल और पीछे से) IV या eV

(ग) C' (j, 8, 8') (IV या eV) / E' (IV या eV)

(घ) C (6f, 6b, 7, 9, 11) (IV या eV) / E (IV या eV) --- E 7, 7b माध्यम से करें।

(ङ) रोगी को धीमे–धीमे, गहरा प्राणिक श्वसन करने के लिए सलाह दें, जिससे उसे तनाव से मुक्ति मिलने में सहायता मिलेगी।

(१३) मद्यपान की लत– Alcoholism

इनके 6, 8 तथा 8' पर अधिक बड़े नकारात्मक परजीवी काफी गहरे में पैठे होते हैं। यह विभिन्न साइजों में होते हैं, कुछ केसों में तीन या चार इंच व्यास के होते हैं। इनका रंग मटमैला लाल होता है और यह अविकसित आकार में होते हैं।

इनका उपचार धूम्रपान के रोगी की तरह ही है, किन्तु इसमें 6f पर विशेष ध्यान देना चाहिए और इस चक्र का पहले उपचार करना चाहिए। उपचारक को रोगी की प्रगति का गहन निरीक्षण करते रहना चाहिए। उपचार जब तक आवश्यक हो, करते रहना चाहिए। रोगी को अपने भावनाओं के नियंत्रण में सहायता करना अति महत्वपूर्ण है। रोगी को भी इच्छाशक्ति करनी होगी कि वह इस लत को छोड़े। यह भी अति आवश्यक है कि रोगी अपनी शराबी साथियों की संगति छोड़ दे और शराब न पीने वाले व्यक्तियों की संगति करे। किसी संस्था, विशेषकर धार्मिक संस्था से जुड़ना इस लत के छोड़ने में अति सहायक होगा।

(क) GS

(ख) C' 6f eV

(ग) C' (समस्त गला का क्षेत्र –सामने, बगल और पीछे से) eV

(घ) C' (j, 8, 8') / E' eV

(ङ) नकारात्मक सोच के आकार और नकारात्मक परजीवी 6f व 11 पर अधिक होते हैं, अतएव इनका 'I' करिये।

C' (6f, 6b, 7, 9, 11) eV / E' eV (E 7, 7b के माध्यम से करें)

(१४) नशीले पदार्थों के सेवन की लत– Drug Addiction

इस लत के रोगियों के चक्रों में अवस्थित नकारात्मक परजीवियों का आकार उक्त क्रम १३ में वर्णित नकारात्मक परजीवियों के आकार से और भी बड़ा होता है और वे और भी ज्यादा शक्तिशाली होते हैं। इनका रंग मटमैला लाल होता है। इनके चक्रों में न सिर्फ दरारें होती हैं, किन्तु बड़े–बड़े छेद भी होते हैं, जिनके द्वारा नकारात्मक परजीवी शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। 6, 8, 8', 9 तथा 11 में पंक्चर होता है। बड़े छेद हो जाने के कारण, रोगी को दृश्यात्मक तथा श्रवणात्मक विभ्रम (hallucination-- audio and visual) होते हैं। कान के चक्रों का भी उपचार आवश्यक होता है। यदि रोगी बेचैनी महसूस करता है ओर सो नहीं सकता, तो उसके 1 की जाली का भी उपचार करना होता है।

इस लत के रोगियों के ऊर्जा शरीर में खोखलापन होता है। 1, 4, 5 और 6 में खोखलापन होता है और इससे उनके ड्रग के सेवन की तीव्र इच्छा होती है। इन चक्रों को भी साफ और ऊर्जित करना होता है। j, कान के चक्र तथा bh भी प्रभावित होते हैं।

इसका उपचार दो भागों में बंटा होता है। पहले भाग में चक्रों से नकारात्मक सोच के आकार, नकारात्मक ऊर्जा और नकारात्मक परजीवियों का निकालना एवम् ऊर्जन द्वारा चक्रों के फिल्टरों के छेदों एवम् घावों को ठीक करना एवम् सील करना, सकारात्मक सोच के आकारों का सृजन करना आदि है। दूसरे भाग में ऊर्जा के खालीपन वाले निम्न चक्रों के ऊर्जन से ड्रग सेवन को समाप्त करने के अवाञ्छनीय लक्षणों को कम करना है।

(क) मुख्य चक्रों,. j, bh और कान के चक्रों की जांच करें।

(ख) GS

(ग) C (6f, 6 b) eV / E eV

(घ) C (8, 8', 9, 10, 11, bh, j, कान के चक्र) eV / E eV-- इससे ड्रग सेवन की लत और विभ्रम कम होंगे।

(ङ) C 7 eV / E (7b के माध्यम से) eV -- साथ ही इस चक्र को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें। यह उपचार रोगी को आन्तरिक शान्ति एवम् समन्वय करने के उद्देश्य से है।

(च) C (1, 4, 5) G / E IR— इससे निराशा और ड्रग सेवन को समाप्त करने के लक्षण काफी कम होंगे। E 5 सावधानी से करें।

(छ) ड्रग की लत छुड़ाने का उपचार कम से कम दो दिन में एक बार करना चाहिए और आवश्यकतानुसार अधिक बार करें। रोगी बहुत हल्का और इस लत से छुटकारा पा जाना महसूस कर सकता है। उसे अपने को पूर्ण रूप से ठीक हो जाना सोचना चाहिए और इस लत को छोड़ने के लिए दृढ़ संकल्प होना चाहिए।

(ज) रोगी को उपचार के लिए पुनः और अधिक उपचार के लिए आना चाहिए, वरना कुछ दिनों बाद इस लत की पुनः लग जाने की भारी आशंका होती है, तथा उपचारक को इस सम्बन्ध में रोगी को निर्देश देना चाहिए। उपचार को कम से कम दो महीने या उससे अधिक समय तक करना चाहिए।

(झ) ड्रग के लत के रोगियों को अपने लत वाले साथियों की संगति छोड़ना परमावश्यक और अति महत्त्वपूर्ण है। यदि सम्भव हो, तो उन्हें अपना मकान भी बदल देना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी धार्मिक संस्था से जुड़ जाना भी बहुत लाभकारी होगा।

(१५) विभ्रम और बेचैनी– **Hallucination and Restlessness**

विभ्रम (hallucination) का खुलासा अध्याय २३ के क्रम संख्या ४ (झ) में वर्णित है। यदि कोई रोगी निम्न आध्यात्मिक स्तर का है, तो वह इसी प्रकार के निम्न श्रेणी की चीजों (जिनको देखने अथवा जिनकी आवाजें सुनने का उसको विभ्रम होता है) को आकर्षित करेगा और "भद्दे व गंदे दृश्य तथा ध्वनियों" को देखेगा तथा सुनेगा। इनके कुछ चक्रों के फिल्टर में छेद होते हैं।

इन रोगियों के 6, 9, bh और कान के चक्र प्रभावित होते हैं। इनके आँख के चक्र भी प्रभावित हो सकते हैं। यदि रोगी को बेचैनी होती है, तो उसके 1 की जाली में दरारें होती हैं और उनमें नकारात्मक परजीवी बसे होते हैं।

(क) GS

(ख) C (6, 9, 10, 11, bh, j, आंख के चक्र) eV / E eV, यदि दृष्टि विभ्रम हो तो, अथवा C (6, 9, 10, 11, bh, j, कान के चक्र) eV / EeV, यदि श्रवण विभ्रम हो तो

(ग) यदि बेचैनी हो, तो C 1 eV / E eV – ऊर्जन के समय कुछ अधिक इच्छाशक्ति करें। निम्न चक्र प्रायः eV के प्रति अग्राह्य होते हैं।

(घ) उपचार को सप्ताह में कम से कम तीन बार दोहरायें, ताकि बीमारी फिर से न आ जाये, विशेष कर जब कि यह रोग दीर्घकालीन हो तो।

(१६) **उदासी / मायूसी–Depression**

उपक्रम (१) सामान्य

इसके भौतिक अथवा मानसिक /मनोवैज्ञानिक कारण हो सकते हैं– शरद ऋतु में वायु में कम ओजस्वी ऊर्जा होने के कारण कुछ वृद्ध लोग उदासी/मायूसी महसूस करते हैं। यह भौतिक कारण का उदाहरण है। जिस व्यक्ति की एक लम्बे समय तक तनावपूर्ण स्थिति रहती है, उस पर मायूसी छा जाती है। कोई मानसिक आघात के फलस्वरूप अपना आत्म विश्वास खो सकता है, जिसके फलस्वरूप गम्भीर स्व–संकीर्णता हो जाती है तथा जिसके

कारण मायूसी हो जाती है। यह मानसिक/ मनोवैज्ञानिक कारण के उदाहरण हैं।

उपक्रम (२) भौतिक कारण के फलस्वरूप होने वाली निराशा/ मायूसी

इनका ऊर्जा शरीर खाली होता है। 1, 4, 5, 6 खाली हो जाते हैं।

(क) मुख्य चक्रों की जांच करें।

(ख) GS'

(ग) C (1, 4, 5, 6, H, S) G / E IR — H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें। E 5 सावधानी करें।

(ङ) मामूली मायूसी के रोगियों के केस में कई उपचारों के बाद बहुत अच्छे परिणाम निकलते हैं। कुछ केस में, प्रभाव तुरन्त ही हो जाता है। जो उन्नत प्राणशक्ति उपचारक हैं वे मास्टर उपचार पद्धति अपनायें, जिसका वर्णन अध्याय ६ के क्रम संख्या १० (३२) में दिया है।

उपक्रम (३) मानसिक/ मनोवैज्ञानिक कारणों से होने वाली मायूसी– मामूली केसों में

इसका उपचार लगभग वही है जो भौतिक कारणों का है, किन्तु इसमें 6, 9 तथा 11 से तनाव ऊर्जा या ट्रॉमैटिक (Traumatic) ऊर्जा और नकारात्मक भय, आत्म–विश्वासहीनता, शंका और निराशा के विचारों को बाहर निकालना और सफाई करनी होती है। 7 को भी उत्तेजित करना होता है।

(क) मुख्य चक्रों की जांच करें।

(ख) GS'

(ग) C (1, 2, 4, 5, H, S) G / E (1, 2, 4 H, S) IR — H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(घ) C (समस्त सिर का क्षेत्र– विशेषकर बाएं तथा दाएं ओर की तरफ, 11, 9, bh, 6) eV / E (11, 9, 6) eV

(ङ) C 7 eV / E eV (7b के माध्यम से) eV – E के समय 7 को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें।

(च) E 5 W – सावधानी से।

(छ) कुछ केसों में 6 अतिसक्रिय होता है, किन्तु उस पर खालीपन होता है। उसको इन केसों में संकुचन करिए, अर्थात E 6 IB

(ज) कुछ केसों में रोगी इतना अधिक कुपित और कुंठित होता है कि वह हिंसात्मक हो जाता है। उसका 6 तथा 3 अति सक्रिय होता है और उन्हें संकुचित करना होता है। ऐसी दशा में C 3 / E IB द्वारा 3 भी संकुचित करिए।

(झ) यदि उचित समझें, तो मास्टर उपचार पद्धति अपनायें। इसमें W-W अपनायें।

(ञ) उपचार को सप्ताह में कई बार दोहराइये।

(ट) उपचार की गति भिन्न–भिन्न होती है। कुछ रोगी, एक दफा के उपचार में ही ठीक हो जाते हैं। कुछ को कई सप्ताह या महीने लगते हैं, जो रोग की तीव्रता तथा उपचारक की कुशलता पर निर्भर करता है।

उपक्रम (४) मायूसी में पूरक स्व–प्राणशक्ति उपचार

(क) रोगी को धीमे-धीमे, गहरे प्राणिक श्वसन करने को कहिए तथा वह साथ-साथ अपने समस्या/ समस्याओं का अवलोकन करे। रोगी को आश्चर्य होगा कि वह अपनी समस्या को अधिक सटीकता और सकारात्मक दृष्टि से देख रहा है। उसको श्वसन-ध्यान प्रतिदिन करने को कहें ताकि वह समस्या का समाधान कर सके।

(ख) रोगी से अपनी सोच, संवेदन जो स्वयं, दूसरों एवम् सामान्य प्रकार से है, उसमें सकारात्मक रुख अपनाने को कहें। यह उसकी आदत में आ जाना चाहिए। जब तक वह अपने सोच व संवेदन के तरीकों में बदलाव नहीं लाएगा, तब तक उपचार की गति सीमित ही रहेगी।

(ग) रोगी को यह निर्देश दीजिए कि वह अपनी एक सकारात्मक स्व–छवि प्रतिदिन बनायें। वह अपने नकारात्मक सोच के आकारों को नष्ट करके, सकारात्मक छवि बनाये। इसकी विधि उक्त क्रम (११) में वर्णित है, जिसके अनुसार वह करे।

(घ) रोगी को द्विहृदय पर ध्यान–चिन्तन प्रतिदिन करने के लिए कहिए। यह मायूसी को नष्ट करेगा और अति लाभकारी फल देगा।

(ङ) रोगी को काफी कुछ व्यायाम करने चाहिए। वातावरण का बदलना भी कुछ केसों में अति लाभदायक रहता है, क्योंकि उदाहरण के तौर पर कुटुम्ब के कुछ सदस्यों की उपस्थिति के कारण रोगी की हालत ज्यादा खराब हो सकती है। कुछ केसों में कभी उन सदस्यों को मनोवैज्ञानिक सलाह देना अथवा उनका प्राणिक मनोरोग उपचार (Psychotherapy) करना भी आवश्यक है।

उपक्रम (५) गम्भीर निराशा / मायूसी

इसमें रोगी के वायवी शरीर में बहुत खालीपन होता है। आन्तरिक आभा मण्डल दो इंच से कम तथा काफी भूरा रंग का होता है। चक्र भी काफी छोटे होते है, लगभग दो इंच के आकार के। मामूली मायूसी में आन्तरिक आभा मण्डल में थोड़ा खालीपन होता है अथवा स्वस्थ व्यक्ति के बराबर घना नहीं होता।

(क) मुख्य चक्रों की जांच करें।

(ख) यदि रोगी आपके निदेश का पालन कर सकने योग्य है, तो उसे दस मिनट तक गहन प्राणिक श्वसन सिखाइये ताकि वह स्वयं का ऊर्जन कर सकें अथवा रोगी को भूमि या फर्श पर लिटा दें। तत्पश्चात् GS करें इसका उद्‌देश्य है कि GS के समय रोगी भू–ऊर्जा को ग्रहण व अवशोषित करता रहे। रोगी को प्राकृतिक पदार्थ की बनी हुई चटाई अथवा कम्बल पर जमीन या फर्श पर लिटायें।

(ग) C (पैरों तथा हाथों पर, a, e, H, h, k, S) G / E (a, e, H, h, k, S) IR -- H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें। H

तथा S स्वतः ही आसपास के वातावरण से प्राण ऊर्जा ग्रहण एवम् अवशोषण करते हैं, जिससे शरीर का ऋऊर्जन होता है। इसमें उपचारक का काम भी कम कठिन हो जाता है। आप लगभग पांच से दस मिनट तक विश्राम कीजिए और इस अन्तराल में रोगी के शरीर को स्वयं ऊर्जन हेतु समय ले लेने दीजिए।

(घ) C (1, 4, 5) / E IR, – E 5 सावधानी से।

(ङ) 6 की जांच के फलस्वरूप, यदि वह अति सक्रिय हो ओर उस पर खालीपन हो, तो C 6 eV / E eV, IB (IB इसके द्वारा संकुचन करें) तथा यदि 6 की जांच के फलस्वरूप, वह अति सक्रिय न हो, तो C 6 eV / E eV करें।

ï 6 eV के समय अध्याय २३ के क्रम संख्या ६ में वर्णित प्रक्रियायें अपनायें।

(च) यदि रोगी अधिक कुपित और कुंठित होता है, तो वह हिंसात्मक हो जाता है। उसका 6 तथा 3 अति सक्रिय होता है और उन्हें संकुचन करना होता है। ऐसी दशा में C 3 / E IB द्वारा 3 भी संकुचित करिए।

(छ) C 7 / E 7 (7b के माध्यम से) eV-- E के समय 7 का आकार बढ़ते हुए दृश्यीकृत करिये।

(ज) C (समस्त सिर का क्षेत्र– विशेषकर बाएं तथा दाएं ओर की तरफ, 11, 9, bh) eV / E (11, 9) eV

(झ) जहां तक हो सके, रोगी द्वारा उक्त उपक्रम (४) में दिये गये पूरक स्व-प्राणशक्ति उपचार भी करवाइये।

(ञ) यदि सम्भव हो सके, तो उपचार को प्रतिदिन दोहराइये।

(ट) चूंकि रोगी के चक्रों में ऊर्जा की अत्यन्त कमी होती है, इसलिए इनका ऊर्जन करते समय उपचारक के शरीर से रोगी द्वारा काफ़ी ऊर्जा खींच ली जाती है, इसलिए जो इस उपचार की कार्य प्रणाली है, उसको सावधानी एवम् यथोचित रूप से पालन करना महत्वपूर्ण है। इसके

अतिरिक्त यह और अच्छा रहेगा यदि उपचार से ठीक पूर्व, रोगी को पांच ग्राम चीन की अथवा कोरियन जिनसैंग (Ginseng) कैप्सूल दी जाये। इन कैपस्यूल में काफी मात्रा में कृत्रिम ऊर्जा (Synthetic Ki) होती है, जिसका सक्रिय करने एवम् ऊर्जन करने का प्रभाव पड़ता है। रोगी की उम्र तथा प्रतिक्रिया के हिसाब से यह मात्रा बढ़ाई या घटाई जा सकती है। जिनसैंग का वर्णन अध्याय ३२ में दिया गया है।

(१७) आत्महत्या की प्रवृत्तियां– Suicidal Tendencies

यदि रोगी की आत्महत्या करने की प्रवृत्ति हो, तो उसका 1 पर खालीपन होता है एवम् वह कम सक्रिय होता है। उसका आकार दो इंच या उससे भी कम होता है। यह चक्र स्व–जीवित रहने, विशेष कर विषम परिस्थितियों में एवम् जीवित रहने की आन्तरिक भावना (self-survival or instinct of self survival) तथा स्व-संरक्षण (self- presurvation) का केन्द्र होता है। उपचार में इस चक्र को सक्रिय करना होता है। 6 अधिक सक्रिय होता है, इसलिए उसको संकुचित करना होता है। इसके अलावा 7 को भी आन्तरिक शांति के लिए सक्रिय किया जाता है।

(क) रोगी से साक्षात्कार कीजिए।

(ख) सभी प्रमुख चक्रों की जांच कीजिए।

(ग) GS eV

(घ) C 1 / E' IR -- E के समय इसको बड़ा लगभग चार इंच के आकार का, करने की इच्छाशक्ति कीजिए। E' '1 अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(ङ) C 6 eV / E eV, IB (IB द्वारा 6 को तीन इंच तक संकुचित करिए।

(च) यदि रोगी हिंसात्मक हो, तो C 3 / E IB -- (चक्र को संकुचित करने के लिए)

(छ) C 7 eV / E (7b के माध्यम से) eV – E 7 के दौरान, इस चक्र को बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें। यह आन्तरिक शांति के लिए है।

(ज) C 11 eV / E eV

(झ) C 9 eV / E eV -- (यह रोगी की इच्छाशक्ति को बढ़ाने के लिए)

(ञ) 1 की पुनः जांच करें तथा पुनः E 1 IR

(ट) रोगी को मनोवैज्ञानिक परामर्श दीजिए। उसको धीरे–धीरे और मृदुता से भान कराएं कि उसकी नकारात्मक प्रवृत्ति, विचार एवम् संवेदन ही समस्या की कर्ता हैं अथवा समस्या को बढ़ा रहे हैं। अन्य व्यक्ति/व्यक्तियों का भी उपचार करना पड़ सकता है, जिनके कारण समस्या हो।

(ठ) रोग की तीव्रता और रोगी की प्रतिक्रिया को ध्यान में रखकर, सप्ताह में कम से कम दो बार उपचार करिये। अगले कुछ महीनों तक रोगी पर निरीक्षण दृष्टि रखें। यदि सम्भव हो सके तो रोगी के सम्बन्धियों एवम् घनिष्ठ मित्रों को रोगी पर गहन दृष्टि रखने को कहिये।

(ड) जब रोगी द्वि–हृदय पर ध्यान–चिन्तन को सीखने के लायक समर्थ हो जाये, तो उसको यह ध्यान–चिन्तन सिखाइये और उसको प्रतिदिन करने के लिए निर्देशित करिये। उसको अपनी सकारात्मक स्व–छवि बनाना भी सिखाइये।

(१८) हिंसक रोगी– Violent Patients

अधिक हिंसात्मक रोगियों के अधिकतर प्रमुख चक्रों का उपचार करना पड़ता है। बाहों और पैरों के लघु चक्रों का भी उपचार करना पड़ता है। उसके दायवी शरीर हिंसात्मक नकारात्मक परजीवियों से भरे पड़े होते हैं। 9, 6, 3 और 1 अधिक सक्रिय होते हैं। इनमें छेद होते हैं और कई नकारात्मक परजीवी होते हैं। 7 और 10 पर आंशिक रूप से खालीपन होता है और यह कम सक्रिय होते हैं। 6, 9, 11 में स्थित संग्रहित क्रोध और संदेहात्मक विचार और संवेदन, जो नकारात्मक सोच के आकारों में रहते हैं, उनको साफ करना होता है। यदि रोगी विचित्र भद्दी आवाजें सुनता है, तो उसके कान के

चक्रों का उपचार करना चाहिए। यदि रोगी में अत्यधिक शारीरिक शक्ति है, तो उसके बाहों एवं पैरों के लघु चक्रों का विशेषतौर पर उपचार करना होता है। यदि रोग नया है या अभी विकसित हुआ है, तो उपचार आसान होगा और शीघ्र परिणाम प्राप्त होंगे।

(क) शरीर की अच्छी तरह जांच करें।

(ख) GS eV

(ग) C (9, 6, 1) eV ~ E eV (1 के ऊर्जन के समय कुछ अधिक इच्छाशक्ति करिए। निम्न चक्र प्रायः eV के प्रति अग्राह्य होते हैं।)

(घ) C 3 / E (9, 6, 3, 1) IB – (इन चक्रों को लगभग ढाई इंच के आकार तक संकुचन करने के लिए)– यदि संकुचन ठीक प्रकार हो गया, तो रोगी शांत हो जाएगा। जो व्यक्ति रोगी को रोके रखे होते हैं, उन्हें महसूस होगा कि रोगी अब नम्र पड़ गया है और अति शक्तिवान अथवा हिंसात्मक नहीं रहा।

(ङ) C 7 eV / E 7 (7b के माध्यम से) eV – E 7 के समय 7 को सक्रिय एवम् बड़ा होते हुए दृश्यीकरण करें।

(च) C (11, bh) eV / E eV

(छ) C 10 eV / E eV

(ज) यदि रोगी विचित्र भद्दी आवाजें सुनता है, तो C (कान के चक्र) eV / E eV

(झ) यदि रोगी काफी हिंसात्मक है और बहुत शक्तिशाली है, तो

C (8, 8', 4, 2, a, e, H, h, k, S) eV / E eV – H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ञ) जो ज्यादा हिंसात्मक नहीं है, उनका उपचार सप्ताह में अनेक बार करिए। जो बहुत ज्यादा हिंसात्मक रोगी हैं, उनका उपचार अगले कई दिनों तक दिन में अनेक बार करिए और बाद में रोगी की प्रतिक्रिया देखकर उपचार की गति में उचित परिवर्तन कर लीजिए।

(१६) * पैरेनोइड रोगी– Paranoid Patients

इनका उपचार वही है जो हिंसात्मक रोगियों का है। 11, bh, 10, 9, कान चक्र, 6, 3 और 1 प्रभावित रहते हैं। उनकी रक्षात्मक जालियों में दरारें ह हैं और जिनमें नकारात्मक परजीवी और/ अथवा नकारात्मक सोच के आव भरे होते हैं। इन लगभग सभी उक्त वर्णित चक्रों में दरारें होती हैं या फ होते हैं और नकारात्मक परजीवी होते हैं। 11, 9 तथा 6 में संग्रि नकारात्मक और संवेदन अथवा नकारात्मक सोच के आकार होते हैं। 9, 6, और 1 अधिक सक्रिय होते हैं और इनका संकुचन करना होता है। 10 खालीपन होता है, इसलिए इसका E' करना चाहिए।

बहुत से हिंसात्मक रोगी पैरानोइड भी होते हैं।

नोट: नकारात्मक विचार और संवेदन, नकारात्मक सोच के आकार, नकारात ऊर्जा, नकारात्मक परजीवियों की प्रकृति के अतिरिक्त उक्त क्रम (१८) त (१६) में वांछित उपचार की कार्यप्रणाली में कोई अन्तर नहीं है। eV उपयोग के समय अपनी–अपनी प्रकृति के नकारात्मक पदार्थों की सफाई अ निष्कासन की इच्छाशक्ति करनी चाहिए।

(२०) हिंसात्मक रोगियों में बैचेनी और अनिद्रा– Restlessness and Insomnia in violent patients

इनका 1 अधिक सक्रिय होता है इसके फिल्टर में दरार या छेद होते हैं अ नकारात्मक परजीवियों से भरा होता है।

(क) रोगी का साक्षात्कार करें।

(ख) मुख्य चक्रों की जांच करें।

(ग) GS eV

(घ) C 1 eV / E' eV, IB (E IB द्वारा ढाई इंच के आकार त संकुचन करिए)। eV के ऊर्जन के समय कुछ अधिक इच्छाश करिए। निम्न चक्र प्रायः eV के प्रति अग्राह्य होते हैं।

---

* इस रोग में रोगी का मस्तिष्क अव्यवस्थित हो जाता है। उसे सौन्दर्यता, विशालता, परेशानी आदि का वि हो जाता है। आम तौर पर रोगी दूसरों को सन्देह की दृष्टि से देखता है और उन पर अविश्वास करत अथवा उनके विषय में उसको गलतफहमी होती है।

T 1 अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि नकारात्मक परजीवी जो इसके चक्र की जाली में भरे होते हैं, उनके कारण बैचेनी और अनिद्रा होती है।

(ङ) C (6, 9, 11) eV / E eV एवं तत्पश्चात् E 6 IB (संकुचन के लिए)

(च) उपचार को सप्ताह में अनेक बार दोहराइये। यदि उपचार ठीक प्रकार हो जाता है, तो कई बार के उपचार के बाद सुधार दिखाई देगा। शीघ्र ठीक करने के लिए, बहुत ही कुशलतापूर्वक उपचार करना होगा।

(छ) रोगी को अपने क्रोध का नियंत्रण करने के लिए निदेशित करिए। तीव्र क्रोध से बचने के लिए कहिए, क्योंकि इससे चक्रों की जालियों में पंचर हो जाते हैं और उस क्रोधिक व्यक्ति की ओर हिंसात्मक नकारात्मक परजीवी आकर्षित होकर आते हैं, जो चक्रों की जालियों के ऊपर बैठ जाते हैं और छेदों के भीतर प्रवेश कर जाते हैं। ये उस व्यक्ति को क्रूर बनने एवम् भयानक कृत्य करने के लिए भी उकसाते हैं। आन्तरिक संसार में इस प्रकार के 'पदार्थ' अपने ही समान 'पदार्थ' को आकर्षित करते हैं, इसीलिए अत्यधिक क्रोध नकारात्मक हिंसात्मक परजीवियों को आकर्षित करता है।

(२१) रोगी को क्रोध पर नियंत्रण सिखाना–
Teaching the Patient to regulate his Anger

(क) रोगी को गहन प्राणिक श्वसन विधि सिखाइये। उसको यह श्वसन प्रतिदिन कम से कम दस मिनट तक करने के लिए कहिये। और जब वह चिड़चिड़ा या क्रोधित हो, तब भी करे।

(ख) रोगी को निम्न प्रार्थना पर प्रतिदिन लगभग दस मिनट तक ध्यान करने के लिए कहिए। इसका स्वच्छात्मक और शांतिदायक प्रभाव पड़ता है।

हे प्रभु! अपने शान्ति का मुझे एक संयंत्र बनाइये।
जहां घृणा हो, वहां मुझे प्यार बोने दीजिए।
जहां अविश्वास हो, वहां विश्वास हो।
जहां निराशा हो, वहां आशा हो।

जहां अंधकार हो, वहां प्रकाश हो।
और जहां उदासी हो, वहां आनन्द हो।
हे दैवीय-मालिक,
मुझे यह वरदान दीजिए कि–
मैं इतना अधिक सान्त्वना न मांगू, जितना कि मैं सान्त्वना करूं।
मैं इतना अधिक दूसरों द्वारा समझा जाने के लिए उत्सुक न हूं, जितना कि मैं दूसरों को समझूं।
मै इतना अधिक प्यार पाने के लिए उत्सुक न हूं, जितना कि मैं प्यार करूं।
क्योंकि दूसरों को देने से ही हमें प्राप्ति होती है।
क्षमा करने से ही, क्षमा मिलती है।
और मृत्यु होने से ही, एक नए जीवन की प्राप्ति होती है।

Lord, make me on instrument of your peace,
Where there is hatred, let me sow love
Where there is doubt, faith
Where there is despair, hope
Where there is darkness, light and
Where there is sadness, joy
O, Divine Master,
Grant that I may not so much
Seek to be consoled, as to console
To be understood, as to understand
To be loved, as to love,
For it is in giving that we receive,
it is in pardoning that we are pardoned.
And it is in dying that we are born to a new life.

(२२) मानसिक /मनोवैज्ञानिक रूप से पिछड़े रोगी– **Mentally/Psychologically Retarded Patients**

इनको ठीक करना अत्यन्त कठिन है। महीनों के उपचार के बाद तब कहीं थोड़ा सा सुधार प्रतिभासित होता है। कई वर्षों तक उपचार करना पड़ता है। इनका 11, 10, 9, bh, 8 और रीढ़ की हड्डी प्रभावित रहते हैं। आंख और कान भी प्रभावित हो सकते हैं। 1 तथा 2 पर आंशिक रूप से खालीपन (depletion) रहता है तथा इनका उपचार करना चाहिए।

(क) रोगी के माता-पिता अथवा अभिभावकों से साक्षात्कार कीजिए।

(ख) समस्त शरीर, विशेषकर प्रमुख चक्र, आंखें, कान और रीढ़ की हड्डी की जांच कीजिए।

(ग) GS

(घ) C (समस्त मस्तिष्क, 11, 10, 9, bh और रीढ़ की हड्डी) (IV या eV) / E (तदनुसार IV या eV)

(ङ) C (6, 7) (IV या eV) / E (तदनुसार IV या eV) – E 7, 7b के माध्यम से करें।

(च) C (कान) (IV या eV) / E (तदनुसार IV या eV)

(छ) C' (आंख, bh, 9) (IV या eV) / E (bh, 9) (तदनुसार IV या eV)

(ज) C (1, p, 2) G / E IR – यह अति महत्वपूर्ण है क्योंकि 1 तथा 2 की ऊर्जा का एक अंश स्वतः ही उच्च श्रेणी की ऊर्जा में परावर्तित हो जाती है जो उच्च चक्रों के उपयोग में आती है। यह उच्च चक्रों के यथोचित परिचालन के लिये आवश्यक है।

(झ) उपचार को सप्ताह में दो या तीन बार दोहराइये।

(२३) विविध व्यक्तित्व का रोग– **Multiple Personality Syndrome**

इस रोग में अलग-अलग समय में रोगी का अलग-अलग व्यक्तित्व होता है, जिसका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं होता। उदाहरण के तौर पर, सामान्य

दशा में भला दिखने वाला व्यक्ति किसी अन्य समय में चोरी कर लेता है, अथवा हत्या कर देता है, वाहन चला लेता है, पैदल चल लेता है अथवा अन्य कोई कार्य/दुष्कार्य कर बैठता है। इसमें उसके दो या अधिक व्यक्तित्व भी हो सकते हैं। उसके एक समय में उस समय के अतिरिक्त, किसी दूसरे समय के व्यक्तित्व/व्यक्तित्वों का कोई ज्ञान/ भान भी नहीं रहता।

(क) समस्त वायवी शरीर, प्रमुख चक्रों, bh, मस्तिष्क, आंखों, कानों, 8', रीढ़ की हड्डी, हाथों, बाहों आदि की गहन जांच करें।

(ख) GS eV

(ग) C (समस्त सिर का क्षेत्र, समस्त मस्तिष्क, बांहें, पैर, रीढ़ की हड्डी, 11, 10, 9, bh, j, 8, 8', 7, 6, 5, 4, 3, 2, p, 1, a, e, H, h, k, S) eV

(घ) E (11, 10, 9, bh, j, 8, 8', 6, 4, 2, p, 1, a, e, H, h, k, S) eV — H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) E 7 (7b के माध्यम से) eV -- इसको बड़ा होते हुए दृश्यीकृत करें।

(च) E 3 eV, यदि आवश्यक हो तो, किन्तु सावधानी से।

(छ) E 5 eV, यदि आवश्यक हो तो, किन्तु सावधानी से।

(ज) चक्रों के ऊर्जन के समय कम सक्रिय चक्रों को बड़ा होकर सामान्य होने तक दृश्यीकरण करें।

(झ) चक्रों के ऊर्जन के समय अधिक सक्रिय चक्रों को E eV के पश्चात E IB द्वारा सामान्य होने तक संकुचित करिये। यदि 3 और 5 अधिक सक्रिय हों तो E IB द्वारा उनके सामान्य आकार (अर्थात अन्य मुख्य चक्रों के आकारों के आधे से लेकर दो–तिहाई तक) के होने तक संकुचित करिए।

(ञ) समस्त चक्रों की पुनः जांच करें और आवश्यक्तानुसार, पुनः यथोचित C तथा E करें।

(ट) नियमित रूप से सप्ताह में दो या तीन बार उपचार करिए।

(२४) पागलपन (बगैर हिंसा के)— Madness (without Violence)

(क) समस्त वायवी शरीर, प्रमुख चक्रों, सिर का क्षेत्र, मस्तिष्क आदि की गहन जांच करें।

(ख) GS eV

(ग) C' (समस्त सिर का क्षेत्र) eV

(घ) C (समस्त मस्तिष्क, 11, 10, 9, bh, 8, रीढ़ की हड्डी) / E eV

(ङ) C 6 eV / E 6 eV

(च) C 7 eV / E 7 (7b के माध्यम से) eV – इसका ऊर्जन के समय बड़ा होते हुए दृष्टीकरण करें।

(छ) C (1, 2, 4) eV / E eV

(ज) C 3 eV / E eV यदि आवश्यक हो, किन्तु सावधानी से

(झ) C 5 G / E W

(ञ) आवश्यक्तानुसार चक्रों का उनके सामान्य आकार होने तक बड़ा करें अथवा संकुचित करें। बड़ा होने के लिए, उनके (5 को छोड़कर) E eV के समय उनको बड़ा होते दृश्यीकृत करें। छोटा करने के लिए चक्रों के E eV के पश्चात् E IB द्वारा संकुचित करिए।

(ट) नियमित रूप से आवश्यक्तानुसार सप्ताह में तीन बार उपचार कीजिए। उपचार कई महीनों तक करना पड़ सकता है।

(ठ) रोगी के माता पिता अथवा अभिभावकों / घनिष्ठ मित्रों से रोगी को किसी मनोवैज्ञानिक सलाहकार (Psychiatric) एवं मानसिक चिकित्सक को भी दिखलाने के लिए कहें।

नोट— नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक भावनाएं एवम् संवेदन, नकारात्मक सोच के आकार तथा नकारात्मक परजीवी पागलपन प्रकृति के होंगे, जिनका निष्कासन तथा नष्टीकरण करना होगा।

(२५) हिंसात्मक पागलपन सहित – Madness coupled with Violence

उक्त क्रम (१८) तथा (२४) का अवलोकन करें। इन दोनों उपचारों का एकीकरण करके उपचार की आवश्यक्ता पड़ेगी। इस केस में नकारात्मक ऊर्जा,

नकारात्मक भावनाएं एवम् संवेदन, नकारात्मक सोच के आकार तथा नकारात्मक परजीवी जिनका निष्कासन तथा नष्टीकरण करना होगा, वे पागलपन प्रकृति, हिंसात्मक प्रकृति और हिंसात्मक पागलपन–तीनों प्रकृति के होंगे / हो सकते हैं।

(क) शरीर चक्रों की गहन जांच करें।

(ख) G S' eV

(ग) C' (समस्त सिर का क्षेत्र) eV

(घ) C' (समस्त मस्तिष्क, 11, 10, 9, bh, 8, रीढ़ की हड्डी) eV / E eV

(ङ) C (11, 10, 9, bh) eV ~ E eV

(च) C' 6 eV / E 6 eV, IB (IB संकुचन हेतु)

(छ) C 7 eV / E 7 (7b के माध्यम से) eV – E 7 के समय E को सक्रिय एवम् बड़ा होते हुए दृश्यीकरण करें।

(ज) C 5 G / E W

(झ) C' (4, 2, a, e, H, h, k, S) eV / E eV – H तथा S में प्रेषित प्राणशक्ति का स्थिरीकरण न करें।

(ञ) C' 1 eV ~ E eV / E eV, IB (संकुचन के लिए) (E eV के समय कुछ अधिक इच्छाशक्ति करिए। निम्न चक्र प्रायः eV के प्रति अग्राह्य होते हैं।)

(ट) C 3 eV / E eV यदि आवश्यक हो, किन्तु सावधानी से E IB संकुचन के लिए

(ठ) रोगी का पहले कुछ दिनों तक प्रतिदिन कई बार उपचार करें और बाद में रोगी की प्रतिक्रिया देखकर उपचार की गति में उचित परिवर्तन करें।

(ङ) रोगी के माता–पिता अथवा अभिभावकों/घनिष्ठ मित्रों से रोगी को किसी मनोवैज्ञानिक सलाहकार (psychiatric) एवम् मानसिक चिकित्सक को भी दिखलाने के लिए कहें।

(२६) गर्भस्थ शिशु का उपचार– Treating unborn baby

अध्याय २३ का क्रम संख्या १२ देखिए। जो शिशु गर्भ में है और अपनी माता के नकारात्मक सोच एवम् भावना से प्रभावित हो चुके हैं, उनको ठीक करने के लिए, उस गर्भस्थ शिशु का

C (6, 9, 11, 1) (IV या eV) करिए।

अध्याय – २५

पूरक उपचार–
निदेशात्मक उपचार

CHAPTER XXV

SUPPLEMENTARY HEALING–
INSTRUCTIVE HEALING

पूरक उपचार–निदेशात्मक उपचार
Supplementary Healing—Instructive Healing

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१	मूल सिद्धान्त– Basic concepts	५.४००
२	मनोवैज्ञानिक निदान– Psychic Diagnosis	५.४०१
३	दृश्यात्मक निदेशात्मक उपचार– Visual Instructive Healing	५.४०२
४	मौखिक निदेशात्मक उपचार– Verbal Instructive Healing	५.४०४
५	वायवी शरीर के कम्पन की गति बढ़ाना– Increasing the Rate of Vibration	५.४०७
६	निदेशात्मक उपचार की सीमाएं – Limitations of Instructive Healing	५.४०७
७	निदेशात्मक उपचार किस श्रेणी का है	५.४०७

पूरक उपचार–निदेशात्मक उपचार
Supplementary Healing—Instructive Healing

(१) मूल सिद्धान्त – Basic concepts

यह उपचार इस धारणा पर आधारित है कि शरीर (वायवी या ऊर्जा एवम् भौतिक) की एक चेतना होती है, इसलिए यह निदेशों को प्राप्त करने तथा पालन करने की क्षमता रखता है। शरीर की चेतना को भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि (Subconscious mind) कहते हैं। उपचेतनात्मक शब्द का प्रयोग यहां इसलिए किया गया है क्योंकि यह सामान्य चेतना से नीचे के स्तर का होता है। इस भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि को बार-बार निदेश देकर, उपचार की गति को बढ़ाया जा सकता है।

यह शरीर की चेतना ही है कि बगैर आपके संज्ञान या निदेशों के, शरीर के विभिन्न तंत्र स्वतः ही और समन्वयतापूर्वक कार्यरत रह पाते हैं। बगैर भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि के भौतिक क्रियायें जैसे दौड़ना अथवा नृत्य करना, जिसमें मांसपेशियों की अति जटिल समन्वयता की आवश्यक्ता पड़ती है, सम्भव नहीं हो सकता है। इस उपचेतनात्मक बुद्धि के कारण ही कोई घाव या जलन स्वतः ही ठीक हो पाता है। इस ही के कारण बगैर आपके संज्ञान या निर्देशों के, सैकड़ों यहाँ तक कि हजारों अति जटिल जैवीय-रासायनिक क्रियायें आपके शरीर में हो रही हैं। वास्तव में भौतिक और वायविक शरीर अत्युत्तम, जीवित बुद्धिमान संयंत्र हैं।

इसी प्रकार ऊर्जा चक्रों की चेतना, चक्र की उपचेतनात्मक बुद्धि (chakral sub conscious mind) कहलाती है। यह उपरोक्त भौतिक उपचेनात्मक बुद्धि के नियंत्रण में होती है।

शरीर के अंगों की चेतना उस अंग की उपचेतनात्मक बुद्धि कहलाती है। अंग और अंग की उपचेनात्मक बुद्धि सम्बन्धित चक्रों अथवा चक्र की

उपचेतनात्मक बुद्धि के नियंत्रण में होते हैं। अंगों की उपचेनात्मक बुद्धि लघु चक्रों के अनुरूप होती हैं। कोशिका (Cell) की चेतना को कोशिका की उपचेतनात्मक बुद्धि कहलाती है। कोशिकाएं एवम् उनकी उपचेतनात्मक बुद्धि अंगों की उपचेतनात्मक बुद्धि के नियंत्रण में होती हैं।

निदेशात्मक उपचार को और स्पष्ट करने के लिए, इस प्रकार समानता का उल्लेख किया जा सकता है कि जैसे किसी व्यापारिक संस्थान को भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि, उसके (व्यापारिक संस्थान के) निदेशक, अधिशासी, उप सभापति को चक्र अथवा चक्र की उपचेतनात्मक बुद्धि, उसके प्रबन्धकों या विभागाध्यक्षों को अंगों अथवा अंगों की उपचेतनात्मक बुद्धि एवम् विभागों के अन्तर्गत कार्यकर्ताओं को कोशिकाओं अथवा कोशिकाओं की उपचेतनात्मक बुद्धि से समानता की जाए।

निदेश सीधे ही रोगी के कोशिकाओं, अंगों, चक्रों अथवा भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि को दिए जा सकते हैं।

(२) **मनोवैज्ञानिक निदान– Psychic Diagnosis**

रोगी की भौतिक उपचेनात्मक बुद्धि से रोग सम्बन्धी सूचना पूँछकर रोग का निदान या गड़बड़ी का कारण मालुम किया जा सकता है। इसकी प्रक्रिया निम्नवत होगी:–

(क) प्राणिक श्वसन द्वारा अपने भावनाओं और मस्तिष्क को शान्त करिए।

(ख) अपने रोगी के चेहरे को दृश्यीकृत करिए।

(ग) रोगी के भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि से रोग या गड़बड़ी की प्रकृति पूँछें– क्या वह भौतिक, वायवी, भावनात्मक, मानसिक और कार्माण प्रकृति की है ? उदाहरण के तौर पर निम्न प्रकार पूँछें:–

"........(रोगी का नाम), बताओ कि तुम्हारे बाहों के बगल में और गले पर जो सूजन है, उसके क्या कारण हैं ? क्या वे भौतिक, वायविक (ऊर्जा से सम्बन्धित) हैं, भावनात्मक, मानसिक अथवा कार्माण प्रकृति के हैं ?

(घ) उत्तर की प्रतीक्षा करिए।

इस प्रकार के निदानों में यथार्थता होने के लिए काफी अधिक अभ्यास तथा उच्च श्रेणी की संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है।

(३) **दृश्यात्मक निदेशात्मक उपचार – Visual instructive Healing**

निर्देशों को दृश्यात्मक अथवा मौखिक तौर पर दिये जा सकते हैं। यदि निदेश चित्रों में दिये जाते हैं, तो यह दृश्यात्मक निदेश कहलाते हैं। इसको दृश्यीकरण अथवा प्रतिबिम्ब के द्वारा उपचार भी कहते हैं। यह उपचारक या रोगी के द्वारा अथवा दोनों के द्वारा किया जा सकता है। प्राणिक उपचार की तरह दृश्यीकरण अथवा प्रतिबिम्बीकरण को बार–बार दोहराना पड़ता है। यह अति आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण है कि उपचारक अपने को रोगी से निस्पृह रखे ताकि वह रोगी की भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि को दिए गये दृश्यात्मक निदेशों को अपने से अलग कर सके। रोगी के चित्त अथवा प्रतिबिम्ब को रोगी के आज्ञा चक्र (9) के अन्दर दृश्यीकृत करिए।

निदेश को मृदुता किन्तु दृढ़तापूर्वक दीजिए। ज्यादा अधिक इच्छाशक्ति का उपयोग न कीजिए, अन्यथा रोगी की भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि इसका विरोध करेगी। यदि उपचारक रोगी की भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि पर हावी हो जाता है, तो वह आंशिक रूप से कुंठित हो जाती है और निदेशों का तुरन्त पालन नहीं कर पायेगी।

प्रयोग के चित्र या प्रतिबिम्ब वास्तविक हो सकते हैं अथवा प्रतीतात्मक हो सकते हैं। वास्तविक अथवा अक्षरात्मक /शब्दात्मक चित्रण के लिए शरीर के रचना शास्त्र का गहन अध्ययन/परिप्रेक्ष्यता की आवश्यक्ता होती है। जिनका रचना शास्त्र का ज्ञान सीमित है, उनके लिए प्रतीतात्मक चित्र अथवा प्रतिबिम्ब का उपयोग करना सुगम होता है। दृश्यीकरण को प्रति सत्र में लगभग दस से पन्द्रह मिनट तक दिन में एक बार अथवा कई बार करना होता है जब तक कि उपचार पूरा न हो जाए।

(ख) कार्य प्रणाली–

(१) रोगी के चेहरे को दृश्यीकृत कीजिए।

(२) रोगी की ओर मुस्कराइये अथवा स्नेहात्मक दया प्रेषित कीजिए। यह रोगी के साथ तालमेल बैठाने और ग्रहणशीलता को बढ़ाने के लिए है।

(3) उपचार की प्रक्रिया का दृश्यीकरण करें, अन्त में अन्तिम परिणाम का।

(४) जितने बार जरूरत हो, उतने बार दृश्यीकरण दोहराइये। निदेशात्मक उपचार की आवृति स्थिति पर निर्भर करती है।

(ग) दृश्यीकरण के उदाहरण–

(१) फटे हुए कान के पर्दे के उपचार के लिए कान के छेद पर एक बहुत हल्का नीले रंग के घोल होते हुए और कान के पर्दे को सींते हुए दृश्यीकृत करें। कान के पर्दे को पूर्णरूपेण ठीक होते हुए दृश्यीकृत करें। प्रभावित भाग को निसंक्रमण करने हेतु हल्के नीले रंग का घोल का उपयोग और सीने द्वारा फटे कान के पर्दे को बन्द करना दृश्यीकरण निदेश है। कान के पर्दे का पूर्णरूपेण ठीक हो जाना प्रतीक्षित अन्तिम परिणाम का दृश्यीकरण निदेश है।

(२) ट्यूमर के केस में ट्यूमर को सफेद रक्त के कणों द्वारा भक्षण करने का दृश्यीकरण का निदेश एवम् ट्यूमर का अदृश्य हो जाने का दृश्यीकरण, प्रतीक्षित अन्तिम परिणाम का दृश्यीकरण निदेश है।

(घ) चित्रों या फोटों का भी दृश्यीकरण निदेश उपचार में इस्तेमाल किया जा सकता है। रोगी को बार–बार लम्बे समय तक चित्र को देखना होता है।

(ङ) क्षय रोगी यदि स्वस्थ फैंफड़ों को यदि देर तक देखें, तो उनके उपचार की गति बढ़ सकती है।

(४) **मौखिक निदेशात्मक उपचार— Verbal Instructive Healing**

(क) निदेश शब्दों द्वारा दिये जाते हैं— ये मौखिक, संचेतना (subliminal) द्वारा अथवा मन के द्वारा (telepathically) दिये जा सकते हैं। रोगी उपचार सम्बन्धी निदेश सामान्य टेप (Tape) अथवा चेतनात्मक टेप (subliminal tape) द्वारा दिये जा सकते हैं। रोगी जब तक आवश्यक्तता हो, टेप को दिन में अनेक बार सुने। इस प्रकार के उपचार को कई नामों से सम्बोधित किया जाता है।

(१) कृत्रिम निद्रा अथवा मोह निद्रा द्वारा उपचार— Hypnotherapy
(२) सुझाव द्वारा उपचार— Suggestive healing
(३) स्व–सुझाव द्वारा उपचार— Healing through self-suggestion
(४) स्वीकृतिकरण द्वारा उपचार— Healing through affirmation
(५) अपने शरीर या प्रभाविल भाग को सम्बोधन द्वारा उपचार— Healing by talking to your body or the affected part
(६) आदेश द्वारा उपचार— Healing by command
(७) डिग्री अथवा निर्णयात्मक उपचार— Healing by decreeing.

मौखिक निदेश में उपचारक मौखिक रूप से या मन के द्वारा रोगी की भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि अथवा चक्रों अथवा अंग/अंगों को निदेश देता है कि क्या करना है और ठीक होने के लिए निदेश देता है ।

(ख) मौखिक निदेश के उदाहरण–

(१) अग्न्याशय के मधुमेह के केस में प्राणशक्ति उपचारक रोगी का प्राणशक्ति उपचार करने के पश्चात् आज्ञा चक्र के माध्यम से पीयूष ग्रंथि को यह आदेश देता है कि वह शरीर की आवश्यक्ताओं की पूर्ति करने के लिये यथोचित मात्रा में इंसुलिन (insulin) का उत्पादन करे।

(२) घाव के उपचार में उपचारक प्राणशक्ति उपचार के दौरान घाव को मन द्वारा यह आदेश देता हे कि वह बन्द हो जाए एवम् ठीक हो जाए।

(ग) उपचार की कार्यप्रणाली--

(१) रोगी के चेहरे का दृश्यीकरण कीजिए।

(२) रोगी की ओर मुस्कराइये अथवा स्नेहात्मक दया प्रेषित कीजिए। यह रोगी के साथ तालमेल बैठाने और ग्रहणशीलता को बढ़ाने के लिए है।

(३) मन के द्वारा (telepathically) रोगी की भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि को निदेश दीजिए कि उसे क्या करना है और उसे प्रतीक्षित अन्त के परिणाम को प्रकट करने के लिए निदेश करिए। यह निदेश टेप पर रिकार्ड किये जा सकते हैं, जिनको जब तक आवश्यक्ता हो, रोगी दिन में कई बार सुन सकता है।

(४) इस प्रक्रिया को जब तक आवश्यकता हो दोहराएं। निदेशात्मक उपचार की आवृति स्थिति पर निर्भर करती है।

(घ) प्राणशक्ति उपचार में मौखिक निदेशात्मक उपचार के सहयोग लेने के उदाहरण:—

(१) चक्र के घनेपन (congestion) की सफाई E G द्वारा करके, तत्पश्चात् चक्र को मन द्वारा निदेशित कीजिए कि वह मुख्य तौर पर घड़ी की उल्टी दिशा में घूमे और रोगग्रस्त ऊर्जा को बाहर फैंक दे। एक बार प्रभावित चक्र का निसंक्रमण होने के बाद उसको अपने सामान्य तौर पर घूमने के लिए निदेशित कीजिए।

(२) अति सक्रिय चक्रों का संकुचन एवम् कम सक्रिय चक्रों को सक्रियकरण मात्र इच्छाशक्ति द्वारा किया जा सकता है। किन्तु अच्छे परिणाम तब मिलेंगे जब प्रभावित चक्रों की पहले भली प्रकार सफाई और ऊर्जन कर दिया जाये।

(३) प्रभावित भाग की सफाई एवम् ऊर्जन प्रक्रियाओं में रोगी की भौतिक उपचेतनात्मक बुद्धि को यह निदेशित कीजिए कि वह

अवरुद्ध मैरिडियनों की सफाई करे जिससे उपचार की प्रक्रिया सुगम हो सके।

(ङ) रोगी स्वयं भी मौखिक निदेशात्मक उपचार द्वारा अपना उपचार स्व–सुझाव, स्व-स्वीकृतिकरण अथवा प्रभावित चक्रों एवम प्रभावित अंगों से सम्बोधन के द्वारा कर सकता हैं। स्वी–स्वीकृतिकरण को प्रति सत्र में पांच से दस मिनट तक दोहराया जा सकता है और आवश्यक्तानुसार दिन में एक बार या कई बार किया जा सकता है। रोगी अपने शरीर, प्रभावित चक्र/चक्रों और प्रभावित अंग/अंगों से मृदुता एवम् प्यारपूर्वक बात कर सकता है और उनसे जल्दी ठीक होने के लिए निवेदन कर सकता है। यह जब तक आवश्यक्ता हो, प्रतिदिन दोहराना चाहिए।

स्व–सुझाव या स्व–स्वीकृतिकरण उपचार की गति को बढ़ाने में बहुत सहायक होता है। निम्न प्रकार इस स्वीकृतिकरण का प्रयोग किया जा सकता है:–

"मेरा शरीर स्वस्थ होता जा रहा है। मेरा (प्रभावित अंग का नाम लीजिए) ठीक हो रहा है और अच्छा होता जा रहा है।"

बहुत से रोग नाराजगी और क्षमा न कर सक पाने के कारण भावनात्मक रूप से अथवा इन कारणों से हो जाते हैं। इसलिए स्व–स्वीकृतिकरण न केवल भौतिक रोग के लिए, अपितु भावना के लिए भी होना चाहिए। आप निम्न स्व–स्वीकृतिकरण कर सकते हैं।

"मैं उन सभी को क्षमा करता हूँ जिन्होंने मुझे चोट पहुंचाई है या दर्द दिया है। मैं सभी आघात की भावनाओं को निष्कासित करता हूँ। हे परमात्मा, मैं नम्रतापूर्वक आपसे अपनी सभी अपराधों एवम् गल्तियों के लिए क्षमा मांगता हूँ। मुझे शान्ति है और मैं स्नेह से भरा हुआ हूँ। मेरा शरीर स्वस्थ हो रहा हैं, और ज्यादा स्वस्थ हो रहा है, और ज्यादा स्वस्थ हो रहा है।"

इसके अतिरिक्त आप निम्न बहुउद्देशीय स्व–स्वीकृतिकरण भी आवश्यक्तानुसार दिन में कई बार दोहराकर कर सकते हैं:–

"प्रतिदिन और हर प्रकार से, मैं अच्छा हो रहा हूँ, और अच्छा हो रहा हूँ, और अच्छा हो रहा हूँ।"

(५) वायवी शरीर के कम्पन की गति बढ़ाना— Increasing the Rate of Vibration

वायवी शरीर को कम्पन की गति बढ़ाकर शीघ्र ही ऊर्जित किया जा सकता है।

(क) GS'

(ख) वायवी शरीर को निदेश दीजिए कि वह अपने कम्पन की गति को पचास से सौ प्रतिशत तक बढ़ा दे।

(६) निदेशात्मक उपचार की सीमाएं— Limitations of Instrcutive Healing

यद्यपि कई केसों में मात्र निदेशात्मक उपचार द्वारा ही आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त होते हैं, किन्तु गम्भीर केसों में यह अकेला काफी नहीं होता। C तथा E करना होता है। गम्भीर केसों में प्राणशक्ति उपचार किये बगैर निदेशात्मक उपचार उसी प्रकार अर्थहीन होगा जिस प्रकार किसी को बगैर धन दिये हुए उससे किसी मंहगी वस्तु को क्रय करने के लिए कहना। इस प्रकार के निदेशात्मक उपचारक हैं जिन्हें प्राणशक्ति उपचार का ज्ञान नहीं है, किन्तु उनका वायवी अथवा ऊर्जा शरीर शक्तिशाली होता है।

जब उपचारक दृश्यीकरण करके अथवा मौखिक रूप से या मन के द्वारा रोगी का उपचार करता है, तो उसके बगैर इरादे के ही वह प्राणशक्ति रोगी को प्रेषित करता है। किन्तु शीघ्र उपचार के लिए, स्वास्थ्य आभामण्डल की स्वास्थ्य किरणों को सुलझााना, वायवी शरीर के रोगग्रस्त ऊर्जा को निष्कासित करना, प्रभावित चक्रों और प्रभावित अंगों से रोगग्रस्त ऊर्जा को निष्कासित करना और यथोचित मात्रा में प्राणशक्ति ऊर्जा को प्रदान करना अभी भी आवश्यक है।

(७) निदेशात्मक उपचार किस श्रेणी का है—

निदेशात्मक उपचार प्राणशक्ति उपचार का ही एक अंग है। कुछ केसों में यह उपचार की गति बढ़ाने के लिए प्राणशक्ति के दौरान या उसके बाद किया जाता है।

अध्याय – २६

प्रार्थना द्वारा उपचार

CHAPTER XXVI

HEALING BY PRAYER

प्रार्थना द्वारा उपचार– Healing by Prayer

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.४१०
२.	प्रार्थना उपचार की पूर्व आपेक्षित आवश्यक्ता– Prerequisite for Healing by Prayer	५.४११
३.	प्रार्थना द्वारा उपचार की विधि– Procedure for Healing by Prayer	५.४११
४.	प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अति ऊंचे चारित्र की आवश्यक्ता	५.४१२
५.	प्रार्थना उपचार के अन्य रूप	५.४१३
६.	स्व–उपचार की प्रतिज्ञा	५.४१३
७.	उपचार देवदूतों की नियुक्ति	५.४१३

प्रार्थना द्वारा उपचार– Healing by Prayer

(१) सामान्य – General

साधारण अभ्यास के रूप में प्राणशक्ति उपचारक अपनी उपचार सम्बन्धी प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पहले प्रार्थना करते ही हैं। यह प्रार्थना ईश्वर, आध्यात्मिक गुरुओं आदि को ध्यान में रखकर की जाती है। ऐसे कुछ प्राणशक्ति उपचारक हैं जिन्हें उपचार प्रक्रिया की पद्धति और नियमों की जानकारी न होगी, या अत्यन्त अल्प होगी या समझते न होंगे। उन्हें केवल यह महसूस होता है कि बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा उनके शरीर में बह रही है जिसके कारण उनके शरीर में कम्पन और गति होती है। कुछ प्रार्थना उपचारक अपने शरीर में बहने वाली ऊर्जा को महसूस करने के लिए उतने अधिक संवेदनशील भी नहीं होते होंगे। इससे इस तथ्य में कोई परिवर्तन नहीं आता कि उनका शरीर उपचारी ऊर्जा के लिए एक माध्यम के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है।

प्रार्थना उपचार में आप दो चीजों का निवेदन करते हैं: पहले, आप उपचारी ऊर्जा और अदृश्य आध्यात्मिक तत्व या उपचारी देवदूतों का जो उपचारी ऊर्जा को नियंत्रित या हेरफेर करते हैं; दूसरे, रोगी के जीव द्रव्य शरीर के लिए निवेदन करते हैं जिससे रोगी की सुरक्षा बनी रहे। प्रार्थना उपचार की बातों को ग्रहण करने की इच्छाशक्ति होनी चाहिए जिससे वह सामान्य निर्देशों को बिना गलती के ग्रहण कर सके। जो उपचारक बहुत अधिक इच्छाशक्ति वाले होते हैं, उन्हें प्रार्थना उपचार करते समय विशेष सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि ऐसे में रोगी के अधिक ऊर्जित हो जाने का खतरा रहता है।

यदि रोगी का अन्त समय आ गया है, तो उपचारी देवदूत नहीं आएंगे। सामान्य तौर पर उपचारक को यह बात सहज रूप में पता चल जाती है कि कोई जबाब नहीं मिल रहा है।

यद्यपि कुछ प्रार्थना उपचारकों या "विश्वासी" उपचारकों को प्राणशक्ति उपचार के बारे में जानकारी नहीं होती होगी, इसका यह अर्थ नहीं कि उपचार के प्रभाव तथा ताकत में कुछ कमी हो सकती है। इस प्रकार के उपचारक बिना थके कई घंटों तक बहुत तेजी से उपचार कर सकते हैं। उन्नत प्राणशक्ति उपचारक भी उस काम की नकल करने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं जो काम प्रार्थना उपचारक कर सकते हैं।

(२) प्रार्थना उपचार की पूर्व आपेक्षित आवश्यक्ता — Prerequisite for Healing by Prayer

यदि आप प्रार्थना उपचारक बनना चाहते हैं तो आपको सलाह दी जाती है कि आप हमेशा ध्यान चिंतन और प्रार्थना नियमित रूप से करें और ईश्वर से यह प्रार्थना करें कि वह आपको उपचार करने का उसका एक माध्यम बनाये।

उपचारक का ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए और उस पर ऐसा विश्वास रखें कि जो कुछ उसके आशीर्वाद से करेंगे, वह सब कुछ सम्भव है।

(३) प्रार्थना उपचार की विधि — Procedure for Healing by Prayer

(क) जो प्रार्थना आप हमेशा करते हैं, वह प्रार्थना कुछ मिनट तक करें। इसके बाद मन ही मन उपचार की यह प्रार्थना करें :—

"हे प्रभु, मुझे इसके उपचार का माध्यम बना।
मेरे पूरे शरीर को पीड़ितों की सहायता के लिये करुणा से भर दे।
हे प्रभु, मेरे इस शरीर में उपचार और ऊर्जा की शक्ति बहने दे।
विश्वास भरा मेरा धन्यवाद स्वीकार कर ले।"

इस प्रार्थना को दो–तीन बार पूरी एकाग्रता और दृढ़ इरादे के साथ दोहराना चाहिए। इसे पूरे आदर, विनय, भावना और पक्के ध्यान के साथ करना चाहिए।

(ख) जिन्हें प्राणशक्ति उपचार की जानकारी है, वे रोगी पर यह उपचार करें। इलाज के बाद ईश्वर को उसके आशीर्वाद के लिए धन्यवाद दें। रोगी से भी ईश्वर को धन्यवाद देने का निवेदन करें।

(ग) जिन्हें प्राणशक्ति उपचार की जानकारी नहीं है अथवा जो प्रार्थना उपचार करना चाहते हैं, वे लोग रोगी के प्रभावित/पीड़ित अंग या ब्रह्मचक्र (11) या आज्ञा चक्र (9) पर हाथ रखें। इसके बाद में यह प्रार्थना करें:

"हे दैवी करुणा से परिपूर्ण पिता,
रोगी के उपचार के लिए
पूरे विश्वास के साथ
मैं तुझे धन्यवाद देता हूं।"

इस विचार को हमेशा ध्यान में रखना जरूरी है कि केवल आप ही दैवी-उपचार के माध्यम हैं। अपनी प्रार्थना करते रहें और हथेली के चक्रों (H) पर तब तक ध्यान केन्द्रित रखें जब तक आपको ऐसा नहीं लगता कि रोगी ठीक हो जाएगा। अपने आन्तरिक संज्ञान को अपने से जोड़ें। इलाज पूरा करने से पहले उपचारक और रोगी दोनों को ईश्वर का धन्यवाद देना चाहिए।

(घ) सामान्य रोगों का इलाज शीघ्र हो जाता है। गंभीर रोगों में आराम तो तेजी से हो जाता है लेकिन पूरी तरह से काम करने के लिए कई बार इलाज करने की आवश्यक्ता होती है। रोगी की आवश्यक्ता को देखते हुए उपचारक को सप्ताह में कई बार उपचार करना चाहिए।

(ङ) प्रार्थना उपचार एक उपचारक द्वारा कई रोगियों के समूह पर या कई उपचारकों द्वारा एक रोगी पर किया जा सकता है। इस बात का ध्यान रहे कि रोगी अधिक ऊर्जित न हो जाए।

(४) प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अति ऊँचें चारित्र की आवश्यक्ता

कभी-कभी नकारात्मक कर्मों को दैवी मध्यस्थता द्वारा कम किया जा सकता है। इसके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए अति ऊँचे चारित्र की आवश्यक्ता होती है। आध्यात्मिक ऊर्जा के साथ मिलकर उपचारी ऊर्जा उपचारक के नकारात्मक व सभी गुणों को खोलकर बड़ा करती है। इसीलिए प्रतिदिन अपने मन में अपने को देखने, अपने दोषों की आलोचना, प्रायश्चित आदि द्वारा दूरकर, मन के स्वच्छीकरण की बहुत आवश्यक्ता होती है।

(५) प्रार्थना उपचार के अन्य रूप

आध्यात्मिक मंत्रों का उच्चारण, भजन, प्रभु भक्ति में नाच आदि प्रार्थना उपचार के दूसरे रूप हैं। इस प्रकार प्रार्थना-उपचार सार्वभौम है।

(६) स्व-उपचार की प्रतिज्ञा

"ईश्वर सर्व शक्तिमान है।
ईश्वर करुणावान है।
वह मेरे सभी रोगों का उपचारक है।
पूरे विश्वास के साथ उसे मेरा धन्यवाद है।"

(क) लगभग पन्द्रह मिनट तक पूरे आदर, विनय, विश्वास और ध्यान के साथ इस प्रार्थना को दोहराएं।

(ख) इसे यदि ठीक ढंग से किया जाए, तो सामान्य रोगों पर इसका शीघ्र ही और तेजी से उपचार होता है।

(ग) गम्भीर रोगों से पीड़ित व्यक्तियों को यह प्रार्थना पन्द्रह मिनट तक दिन में दो बार करनी चाहिए। यदि उपचार के लिए कई महीने या वर्ष लग जाये, तो भी यह प्रक्रिया करनी चाहिए।

(घ) स्व-उपचार की प्रक्रिया द्वि-हृदय पर ध्यान-चिन्तन (जिसका वर्णन अध्याय ३ में दिया है) की पूरक है। जो गम्भीर रोगों से पीड़ित हैं, उन्हें द्विहृदय पर ध्यान-चिन्तन करना चाहिए। उसमें अतिरिक्त ऊर्जा को त्यागने के बाद स्व-उपचार की उपरोक्त प्रार्थना करें। इन दोनों के मिलने के साथ उपचार की गति में तेजी आएगी।

(ङ) यदि रोग के लक्षण बहुत गंभीर हों, तो शीघ्र ही मैडिकल डॉक्टर और उन्नत प्राणशक्ति उपचारक की सलाह लीजिए।

(७) उपचारी देवदूतों की नियुक्ति

गम्भीर रोग से पीड़ित व्यक्ति के इलाज के बाद एक देवदूत को रोगी के पास रखने के लिए ईश्वर से निवदेन करें जिससे उपचार की प्रक्रिया में और अधिक गति बनी रहे। रोगी को यह बता देना चाहिए कि दिन में कई बार

ईश्वर से आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए स्वयं को तैयार रखे। रोगी के ग्रहण करने की शक्ति उपचारी देवदूत के कार्य को और अधिक सुगम कर देती है। उपचारक रोगी से उपचारी देवदूत को अपने पास लाने के लिए मन ही मन ईश्वर से यह प्रार्थना करे :

"हे प्रभु, उपचारी देवदूत की नियुक्ति के लिए और उस देवदूत को रोगी के पूरी तरह ठीक होने तक उसी के पास रुके रहने के लिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आपका धन्यवाद ! ये प्रभु, मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है।"

प्रार्थना पूर्ण आदर, विनय, एकाग्रता एवम् अच्छी भावनाओं के साथ की जाना आवश्यक है।

अध्याय – २७

लेसर उपचार–

CHAPTER XXVII

PRANIC LASER THERAPY

प्राणिक लेसर उपचार पद्धति
Pranic Laser Therapy

रंगीन प्रकाश के उपयोग द्वारा उपचार (chromotherapy) के विषय में कुछ उपचारकों की यह गलत धारणा है कि ये केवल रंग ही हैं जो कि रोगी का उपचार करते हैं। जब तक यह धारणा सही प्रकार से नहीं समझी जाती, तब तक इस क्षेत्र में प्रगति धीमी ही रहेगी। यह रंगीन प्रकाश नहीं, बल्कि Vitality globules (स्फूर्तिदायक ग्लोब्यूल्स) या प्राण–ऊर्जा जो रंगीन प्रकाश द्वारा एक निर्धारित प्राण में परिवर्तित होती है, उपचार करती है। इससे स्पष्ट है कि प्राण ऊर्जा (vitality globules) का घनत्व अथवा उसकी मात्रा बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि उपचार–कमरे में अधिक प्राण ऊर्जा होगी, तो प्राणशक्ति उपचार भी अधिक प्रभावी होगा। इसी प्रकार यदि उपचार कमरे में कम प्राण–ऊर्जा होगी, तो प्राणशक्ति उपचार कम प्रभावी होगी। इसी कारण, यह परामर्श दिया जाता है कि उपचार– कमरे में वायु प्राण ऊर्जा की मात्रा बढ़ाने के लिये ज्यामिति प्राणिक उत्पादक का उपयोग किया जाये। इस प्रकरण में यह उल्लेखनीय है कि अध्याय ४ के क्रम संख्या ३ पर प्राणिक उत्पादक (Pranic Generator) का वर्णन किया गया है। चार–भुजाकर पिरैमिड अथवा तीन दिशात्मक प्राणिक उत्पादक, तीन भुजाकार (अथवा दो दिशात्मक) प्राणिक उत्पादक से अधिक शक्तिशाली होता है। तीन दिशात्मक उत्पादक के उदाहरण (क) चार भुजाकार आधार अथवा (ख) तीन–भुजाकार आधार अथवा (ग) वृत्ताकार आधार एवम् ऊपर एक केन्द्र से बना कमरा है। (क) तथा (ख) के केस में जो आकृति बनेगी, वह पिरैमिड (pyramid) एवम् (ग) के केस में बनी आकृति शंकु (cone) कहलाती है। इस आकार के अथवा दो दिशात्मक उपचार के कमरों में वायु ऊर्जा लगभग भू–ऊर्जा के बराबर ही घनी होती है।

एक अन्य महत्वपूर्ण बात जो ध्यान में रखनी चाहिए वह यह है कि परिवर्तित रंगीन प्राण ऊर्जा का स्थायित्व कितना है, अथवा वह कितने देर तक स्थिर रहती है। यह रंग के स्त्रोत से उपचारित भाग की दूरी पर निर्भर करती है। यदि दूरी बहुत कम

होती है, तो रंगीन प्राण पुनः सफेद प्राण में परावर्तित हो जाती है। ऐसे केस में यद्यपि उपचार तो प्रभावी होगा, किन्तु उतना प्रभावी नहीं होगा जितना पहले परिवर्तित हुए रंगीन प्राण ऊर्जा के उपचार द्वारा होता। जैसा अध्याय ८ के क्रम संख्या २ में वर्णन कर आये हैं, सही तौर पर यदि रंगीन ऊर्जा का उपयोग किया जाए, तो वह सफेद ऊर्जा के मुकाबले ज्यादा प्रभावी होती है तथा रोग को शीघ्र ठीक करती है।

प्राण-ऊर्जा की शक्ति उसकी गति और कम्पन की दर द्वारा प्रभावित होती है। गति दूरी द्वारा प्रभावित होती है। रंगीन प्रकाश के स्रोत और उपचारित भाग के बीच में जितनी ज्यादा दूरी होगी, उतनी ही अधिक स्फूर्तिदायक ग्लोब्यूल्स की गति होगी। यदि यह दूरी बहुत कम हुई, तो गति भी तेज नहीं होगी और इसलिए प्राण ऊर्जा शक्ति काफी नहीं होगी। यदि यह दूर बहुत अधिक हुई तो गति इतनी तीव्र होगी कि इसका कुछ क्षतिकारी प्रभाव पड़ सकता है।

मृदु लेसर रोशनी (soft laser light) का लेसर प्राणिक उपचार पद्धति में उपयोग प्राणिक रंगीन उपचार पद्धति (chromotherapy) की एक अधिक उन्नत प्रणाली है। प्राणिक लेसर उपचार का प्रभाव अति शीघ्र होता है जिसकी तुलना उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से की जा सकती है। प्राण-उपचार के शिक्षक श्री मेई लिंग (Mei Ling) की भविष्यवाणी है कि अब से कुछ दशक बाद, प्राणिक लेसर उपचार पद्धति का व्यापक उपयोग होगा।

शिक्षक श्री मेई लिंग ने निम्नवत मार्गदर्शन दिया है :

(क) लेसर प्रकाश के उत्पादन में जो पदार्थ प्रयोग में लाया जाए, उसमें कार्बन का भाग पचास से अस्सी प्रतिशत होना चाहिए। इस श्रृंखला से कम होने पर, उपचार इतना प्रभावी नहीं होता तथा इससे अधिक होने पर उपचार का नष्टकारी प्रभाव होगा। यह आवश्यक हो सकता है कि इस पदार्थ को कृत्रिम तौर पर बनाया जाए।

(ख) लेसर प्रकाश के स्रोत और जिस भाग का उपचार किया जाना है, उनके बीच की दूरी एक से लेकर पांच फुट तक होनी चाहिए। दूरी का परिवर्तित हुए प्राण के स्थायित्व एवम् प्रेषित प्राण-ऊर्जा की शक्ति (प्रेषित प्राण की गति) पर प्रभाव पड़ता है। यदि यह काफी अधिक है,

तो स्फूर्तिदायक ग्लोब्यूल्स की बहुत अधिक गति होगी, जिससे क्षतिकारी प्रभाव पड़ेगा।

(ग) शक्ति या वाटेज (The power or wattage) प्राथमिकता तौर पर कम ही होनी चाहिए। किन्तु, यदि यह बहुत कम हुई तो यह बहुत प्रभावकारी नहीं होगी और यदि बहुत अधिक हुई तो क्षतिकारक प्रभाव पड़ेगा।

(घ) साधारणतया, लेसर प्राण का अनावरण (exposure) समय थोड़ा होना चाहिए। यदि यह काफी कम हुआ तो यह उपचार के लिए पर्याप्त नहीं होगा और यदि यह काफी अधिक हुआ तो यह अधिक औषधि (overdose) देने के समतुल्य होगा जिसका प्रभाव हानिकारक होगा।

(ङ) उपचार का कमरा प्राथमिकता तौर पर प्राणिक उत्पादक (pranic generator) होना चाहिए।

(च) उपचार से पहले और बाद में जांच (scanning) करनी चाहिए।

(छ) ऊर्जन करने से पहले GS तथा स्थानीय झाड़ बुहार करनी चाहिए। ऊर्जन करने के पश्चात पुनः स्थानीय झाड़-बुहार की आवश्यक्ता पड़ सकती है। ऊर्जन करते समय, प्रेषित प्राण को प्रभावित अंग की ओर प्रेषित करना चाहिए और स्थिरीकरण करना चाहिए।

उपरोक्त मार्गदर्शन को आंख बंद कर स्वीकार नहीं करना चाहिए, अपितु इनका गहन अध्ययन करना चाहिए और इनकी सत्यता की व्यापक प्रयोगों द्वारा परीक्षा करनी चाहिए। इस विषय में कुछ और अधिक शोध एवम् अनुसंधान की आवश्यक्ता प्रतीत होती है, ताकि साधारण स्तर के उपचारक को शक्ति, अनावरण का समय आदि में सटीक मार्गदर्शन दिया जा सके।

अध्याय – २८ से ३१ तक

रत्नों द्वारा प्राणशक्ति उपचार

CHAPTERS XXVIII to XXXI

PRANIC CRYSTAL HEALING

रत्न अथवा पारदर्शी पत्थर द्वारा प्राणशक्ति उपचार–सामान्य
Pranic Crystal Healing – General

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	प्राणिक रत्न–उपचार पद्धति क्या है ?	५.४२१
२.	रत्नों के तीन अनिवार्य गुण– Three essential properties of Crystals-- (a) Subtle Energy Condenser (b) Programmable and (c) Chakral Activator	५.४२१
३.	रत्नों को कब धारण न करें– When not to wear Crystals	५.४२५
४.	कर्म का सिद्धान्त– The law of Karma	५.४२६
५.	रत्नों की शक्ति– Potency of Crystals	५.४२६
६.	अंगूठी को चक्रों के सक्रियकर्ता के रूप में प्रयोग करना– Utilization of ring as Chakral Activator	५.४२७
७.	रंगीन रत्नों के गुण– Properties of Colour Crystals	५.४२६
८.	पारदर्शी रत्न के गुण– Properties of a clear crystal	५.४३१
९.	विभिन्न रत्न– Various Precious stones, gems and jewels	५.४३२
१०.	रत्नों का दूषित हो जाना– Contamination of Crystals	५.४४

रत्न अथवा पारदर्शी पत्थर द्वारा प्राणशक्ति उपचार–सामान्य

Pranic Crystal Healing – General

(१) प्राणिक रत्न–उपचार पद्धति क्या है ?

यह मूलतः रत्न (Crystal) को एक माध्यम, यंत्र, औजार, साधन अथवा उपक्रम के तौर पर उपयोग में लेते हुए प्राणशक्ति उपचार है।

(२) रत्नों के तीन अनिवार्य गुण

(क) सूक्ष्म ऊर्जा का ग्रहणकर्ता एवम् धारक– **Subtle Energy Condenser**

इसका अर्थ यह है कि यह सूक्ष्म ऊर्जाओं (subtle energies) का अवशोषण, स्टोर, प्रेषण और फ़ोकस (किरण केन्द्र पर लाना) (focus) कर सकता है। एक प्रकार से यह पुनः चार्ज के योग्य बैटरी के सम–तुल्य है जो विद्युत ऊर्जा को अवशोषित, स्टोर और मुक्त कर सकती है।

(ख) इसके अन्दर इसके अपने कार्यों के कार्यान्वयन को निर्धारण किया जा सकता है– Programmable

प्राकृतिक रत्न को दिव्य दर्शन से देखने पर यह दिखाई देता है कि उसमें अन्दर प्रकाश की छोटी–छोटी चिनगारियां होती हैं। यह चिनगारियां या प्रकाश के बिन्दु चेतना की चिनगारियां हैं। यह चेतना का बहुत ही मूल आकार है। कृत्रिम रत्नों में अत्यन्त अल्प चेतना की चिनगारियां होती हैं, इसलिए प्राकृतिक रत्नों की तुलना में अत्यन्त हीन होते हैं।

रत्न की अपनी कोई इच्छाशक्ति नहीं होती। इसलिए निर्विरोध रूप से वह निर्देशों का पालन करता है। यदि आप कहेंगे कि प्राण

ऊर्जा को अवशोषित करे, तो वैसा करेगा। यदि कहेंगे कि प्राण ऊर्जा को प्रेषित करो, तो प्रेषित करेगा।

इनकी अपनी कोई इच्छाशक्ति न होने के कारण, उनको अपनी इच्छानुसार निदेश दे सकते हैं, जिसका वह पालन करेगा। किन्तु इसको अधिक निदेश न दें, न इससे जटिल अथवा उलझनात्मक कार्यों को करने के लिए कहें।

(ग) ऊर्जा चक्रों को सक्रिय करने वाला– Chakral Activator

यह चक्रों को सक्रिय करने वाला होता है। यदि इसको चक्र के ऊपर रखा जाए, तो उसको सक्रिय अथवा और अधिक सक्रिय करता है। दिव्य दर्शन से यह मालुम पड़ता है कि चक्र बड़ा हो रहा है, अधिक तेज गति से घूम रहा है और उसमें अधिक ऊर्जा है। यह न केवल उस चक्र को उत्तेजित करता है जिस पर वह रखा हुआ है, अपितु अन्य चक्रों को भी, विशेषकर निम्न चक्रों को उत्तेजित करता है। इसका दृष्टांत चित्र ५.०८ तथा ५.०६ में स्व-स्पष्ट है।

इन चित्रों में आप पायेंगे कि रत्न रखने के पश्चात्

(१) सभी प्रमुख चक्र बड़े हो गये हैं अथवा अधिक सक्रिय हो गये हैं।

(२) उच्च चक्रों के तुलना में निम्न चक्र अधिक बड़े अथवा अधिक सक्रिय हैं।

(३) आन्तरिक आभा मण्डल बड़ा हो गया है।

(४) नीचे का आभा मण्डल ऊपर के आभा मण्डल से अधिक बड़ा है।

यद्यपि रत्नों का चक्रों को सक्रिय करने का प्रभाव पड़ता है, किन्तु दुर्भाग्यवश उसके प्रभाव से नीचे के चक्र ऊपर के चक्रों की तुलना में अधिक सक्रिय हो जाते हैं। इससे यह मतलब निकलता है

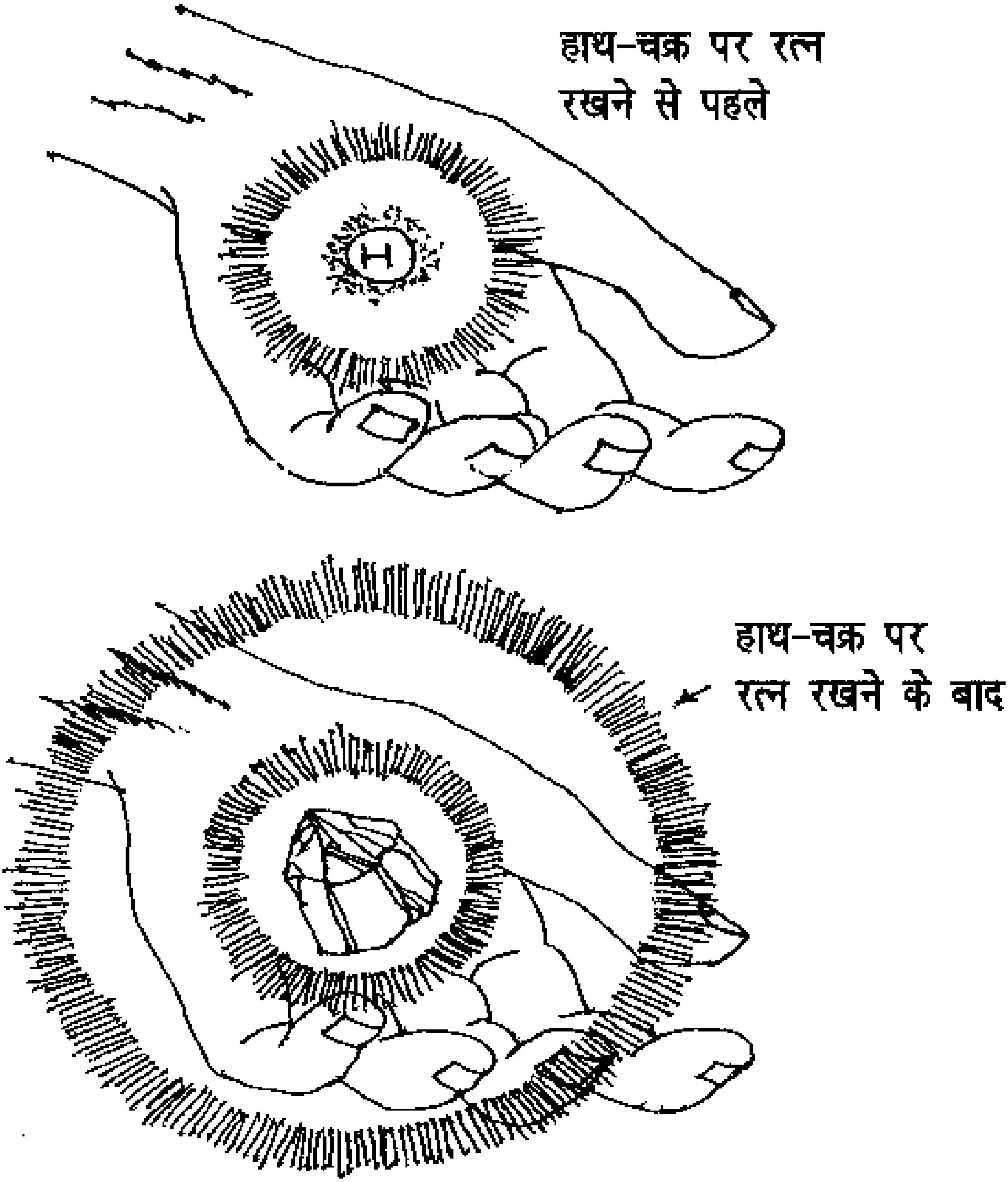

रत्न का हाथ के चक्र की सक्रियता पर प्रभाव

चित्र ५.०८

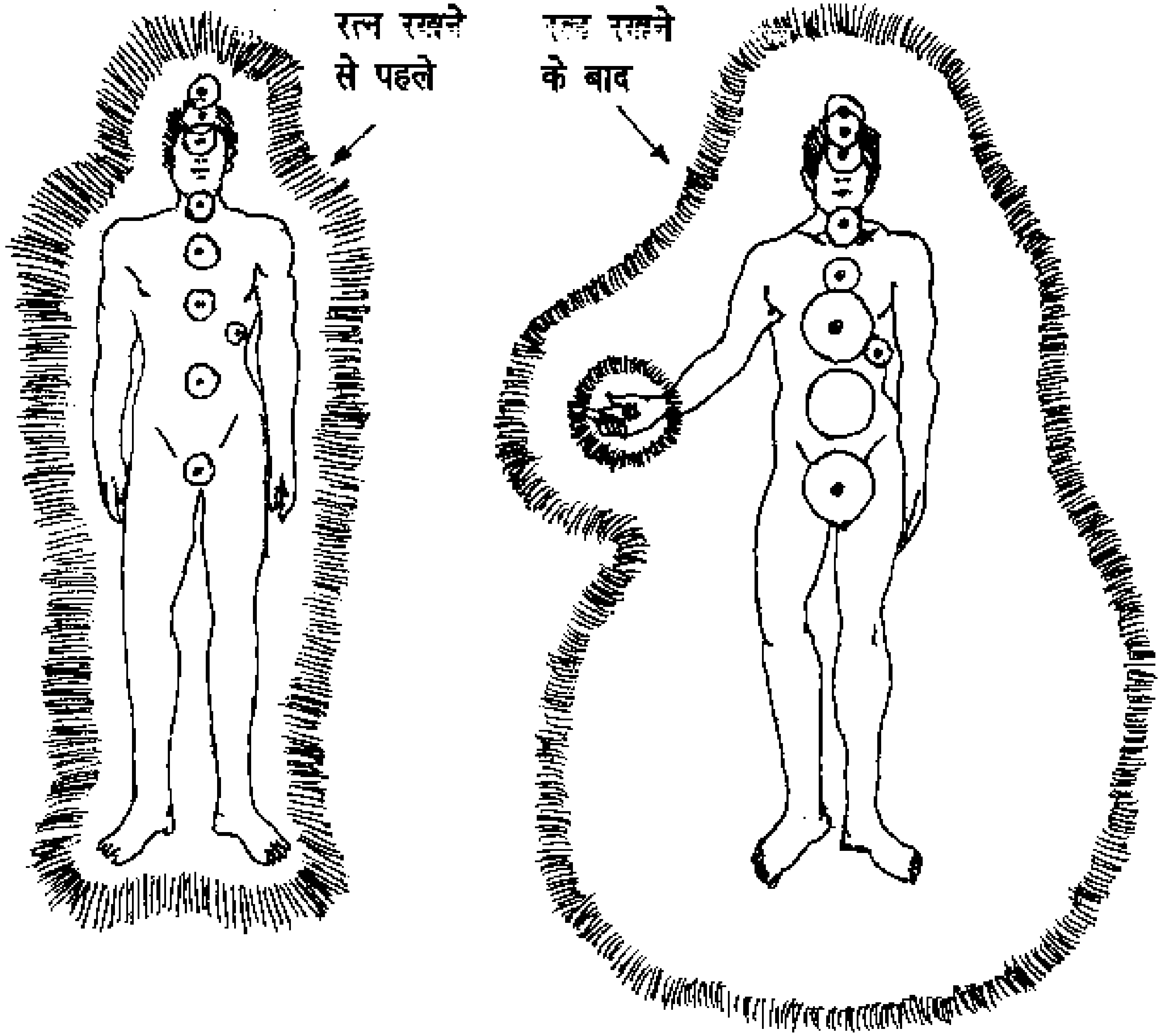

चित्र ५.०६

रत्न का हाथ-चक्र पर रखने का सभी चक्रों एवम् आन्तरिक आभामण्डल पर प्रभाव

कि हृदय, उच्च रक्तचाप अथवा कैंसर के रोगी अपने शरीर पर बेहतर होगा कि रत्न न धारण करें एवम् अपने कमरे में न रखें।

(३) रत्नों को कब धारण न करें-- When not to wear crystals

रत्नों को धारण करने से पार्श्व प्रभाव पड़ता है। इसलिए आपको जानना चाहिए कि रत्न को कब धारण न करें।

(क) निम्न चक्रों के अधिक सक्रिय हो जाने के कारण उच्च रक्तचाप के रोगी अधिक देर तक न पहिनें अथवा बड़े रत्नों के समीप न रहें, अन्यथा 1 तथा 3 के कारण रक्तचाप और अधिक बढ़ जायेगा। यदि उसे उच्च रक्तचाप होने की प्रवृत्ति है, तब भी वह रत्नों को न पहने।

(ख) हृदय के रोगी एवम् अतिश्वेतरक्तता (leukemia) के रोगी रत्न न पहिनें अथवा बड़े रत्नों के समीप लम्बे समय तक न रहें, अन्यथा उनकी दशा बिगड़ सकती है।

(ग) ट्यूमर अथवा कैंसर के रोगी रत्नों को न पहिनें। 1, 3 और 6 पहले से ही अधिक सक्रिय रहते हैं। रत्न पहनने से यह और अधिक सक्रिय हो जायेंगे, जिसके फलस्वरूप कैंसर की कोशिकाएं तेजी से फैल जायेंगी।

एक यकृत के कैंसर के रोगी का प्राणशक्ति उपचार कई सत्रों में हुआ। इसके परिणामस्वरूप कैंसर काफी कम हो गया था। शीघ्रता से ठीक होने की भावना से रोगी ने एक बड़ा एमीथिस्ट (amethyst) रत्न (ये रत्न बैंगनी रंग का होता है) पहन लिया। एक या दो सप्ताह बाद जब दूसरा एक्सरे (X-ray) परीक्षण हुआ तो डॉक्टर यह देखकर हैरान रह गया कि कैंसर की कोशिकायें और भी तेज गति से फैल गयी हैं।

(घ) जो मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक रूप से असंतुलित हैं, उनको रत्न नहीं पहनना चाहिए, अन्यथा यह असंतुलन और अधिक बढ़ जायेगा।

(ङ) गर्भवती महिला का 1, 3 तथा 6 पहले से ही अधिक सक्रिय होता है। यदि वह रत्न धारण करती है तो निम्न चक्रों के अति सक्रिय हो जाने के कारण उच्च रक्तचाप अथवा गर्भपात हो सकता है।

गर्भवती महिलाओं को अधिक रत्नों से दूर रहना चाहिए, विशेषकर जब कि उनका ऊर्जा के दृष्टिकोण से स्वच्छीकरण न हुआ हो। इससे संक्रमण होने के कारण गर्भस्थ शिशु पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

(च) जो व्यक्ति उन्नत ध्यान का अभ्यास कर रहा हो, उसको रत्न नहीं धारण करना चाहिए, अन्यथा कुण्डलिनी सिनड्रोम (Syndrome) हो सकता है– यह गम्भीर अनिद्रा, गम्भीर शारीरिक कमजोरी, शरीर के विभिन्न भागों में दर्द, रक्त चाप में बढ़ोत्तरी और अति गर्मी महसूस करने के रूप में हो सकता है।

नोट: रत्नों की परिभाषा में हीरे, अन्य बहुमूल्य पत्थर और अर्ध–बहुमूल्य पत्थर गर्भित हैं।

(४) कर्म का सिद्धान्त– The Law of Karma

कर्म का नियम है कि जो जैसा बोता है, वैसा काटता है। प्राणिक रत्न–चिकित्सा, अन्य विज्ञानों की तरह अच्छे या बुरे कार्यों के लिए की जा सकती है। यदि अच्छे कामों में इस्तेमाल की जाएगी, तो अच्छे उपचारक को बहुत पुण्य का बंध होगा और जिसका फल सौभाग्य, अच्छा स्वास्थ्य, प्रसन्नता, समृद्धि एवम् आत्म- उत्थान होगा। यदि इसकी शिक्षा और तकनीक का दुरुपयोग किया जाये और लोगों को दुख पहुंचाने और आघात पहुंचाने के लिए किया जाएगा, तो कर्म के अत्यन्त गंभीर परिणाम होंगे तथा तीव्र पाप बंध होगा, जिसके फलस्वरूप वर्षों के दुर्भाग्य, बीमारी, जीवन में उथल–पुथल और निर्धनता अथवा और अधिक तीव्र कष्ट होंगे।

(५) रत्नों की शक्ति– Potency of Crystals

अलग–अलग रत्नों की अलग–अलग शक्ति होती है। यदि वह अधिक पारदर्शक है, तो अधिक शक्तिशाली होगा। एक पारदर्शी स्फटिकमणि का रत्न

(Quartz Crystal) एक दूधिया अथवा धुंए-सा स्फटिकमणि के तुलना में अधिक शक्तिशाली होगा। गुलाब-स्फटिकमणि (Rose Quartz) अपारदर्शक होता है और एक पारदर्शक स्फटिक मणि के तुलना में कम शक्तिशाली होता है, किन्तु वह गुलाबी रंग का होता है, इसलिये उसके प्राणशक्ति ऊर्जा को रोगी सुगमता से आत्मसात कर लेता है। इससे उपचार शीघ्र हो जाता है।

रत्न की स्वच्छता (clarity) के अतिरिक्त, उसकी शक्ति उसके आकार तथा वह ऊर्जित है या नहीं एवम् वह पवित्रीकृत (consecrated) है या नहीं, इस पर निर्भर करती है। बड़ा रत्न छोटे के मुकाबले ज्यादा शक्तिशाली होगा, किन्तु यदि किसी छोटे नग को यथोचित पवित्रीकृत किया जाए, तो वह बहुत अधिक शक्तिशाली हो सकता है, अर्थात बड़े रत्न से भी अधिक।

नोटः ऊर्जन तथा पवित्रीकरण की प्रक्रिया आगे अध्याय २६ के क्रम संख्या (ख) व (ग) में वर्णित है।

(६) अँगूठी को चक्रों के सक्रियकर्ता के रूप में प्रयोग करना–

Utilization of Ring as Chakral Activator

(क) क्या आप अंगूठी पहन सकते हैं ?

यदि किसी बड़े रत्न को अपने हाथ में धारण करने में असुविधा महसूस करते हैं, तो आप रत्न को अच्छी प्रकार से स्वच्छ करलें। किस प्रकार स्वच्छ करें , यह आगे अध्याय २६ के क्रम संख्या (क) में वर्णित है। अंगूठी के रत्न की गुणवत्ता बहुत अच्छी होनी चाहिए। एक २.५ ग्राम या उससे कम भार का स्वच्छ रत्न जो जवाहरात की गुणवत्ता का हो अथवा बहुत अच्छी गुणवत्ता के बहुत छोटे अर्ध-बहुमूल्य पत्थर का चक्रों पर लगभग वही सक्रियता का प्रभाव पड़ेगा जो एक १०० ग्राम के सामान्य स्वच्छ स्फटिकमणि रत्न का होगा।

(ख) अंगूठी को किस उंगली में पहनें ?

यह महत्वपूर्ण है कि आप रत्न की अंगूठी सही उंगली में पहनें, अर्थात अंगूठी वाली उंगली (ring finger) जो अंगूठे से तीसरे नम्बर पर होती है, में पहनें। प्रत्येक उंगली एक निश्चित चक्र से सम्बन्धित होती

है। यदि आप अंगूठी को किसी दूसरी उंगली में पहनेंगे, तो कुछ ऐसे चक्र अति उत्तेजित हो जाएंगे जिनके कारण उनसे सम्बन्धित नाजुक अंगों पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। ऊर्जा 7 या 11 या किसी अन्य चक्रों जो शरीर के कुछ निश्चित नाजुक अंगों को नियंत्रित और ऊर्जित करते हैं, में जाकर अनावश्यक स्वास्थ्य की समस्यायें उत्पन्न कर सकती हैं। जब आप अंगूठी वाली उंगली में अंगूठी पहनते हैं, तो ऊर्जा 8 में जाती है, जिससे कम से कम अथवा बिल्कुल ही नहीं विपरीत प्रभाव पड़ता है, सिवाय उन व्यक्तियों के जो थायराइड ग्रंथियों के बढ़ जाने के रोग (hyperthyroidism) से पीड़ित हैं।

(ग) जिन रत्नों का उपचार में अंगूठी में पहना जा सकता है, वह निम्न है:

(१) स्वच्छ पारदर्शक स्फटिक मणि (Quartz) – इससे सफेद प्राण अथवा रंगीन प्राण प्रेषित कर सकते हैं।

(२) एमीथिस्ट (Amethyst) -- यह एक बैंगनी रंग का रत्न होता है। यह बैंगनी अथवा विद्युतीय बैंगनी रंग की ऊर्जा प्रेषित करता है।

(३) गुलाब–स्फटिक मणि (Rose Quartz) – इसके द्वारा प्रेषित प्राणशक्ति ऊर्जा में थोड़ी सी गुलाबी ऊर्जा मिली होती है। यह मानसिक/ मनोवैज्ञानिक रोगों, गड़बड़ियों अथवा उन भौतिक शरीर सम्बन्धी रोग जो मनोवैज्ञानिक कारणों से हुए हैं, के लिए अच्छा होता है। प्राण ऊर्जा को रोगी सुगमता से आत्मसात कर लेता है।

(४) हरा टूरमैलीन या पन्ना (Green Tourmaline or Emerald)-- इसके द्वारा हरे रंग की प्राण ऊर्जा के प्रेषित होने से सफाई (Cleansing) का प्रभाव पड़ता है जो कि उपचार के दृष्टिकोण से अच्छा है। पन्ना से हरा टूरमैलीन ज्यादा अच्छा होता है क्योंकि एक तो हरा टूरमैलीन सस्ता (कम बहुमूल्य) होता है और दूसरे वह पन्ना के तुलना में ज्यादा गहरे रंग की प्राण ऊर्जा देता है। पन्ना द्वारा प्रेषित प्राण ऊर्जा बहुत हल्के रंग की होती है।

नोटः टूरमैलीन बोरोन एल्यूमिनियम सिलिकेट (Boron aluminium silicate) खनिज पदार्थ का होता है और विभिन्न रंगों में मिलता है। इसमें असाधारण विद्युतीय गुण होते हैं और जवाहरात के तौर पर प्रयोग किया जाता है।

(५) हीरा (Diamond)-- यद्यपि यह विद्युतीय बैंगनी रंग का प्राण प्रेषित करता है, किन्तु यह अत्यन्त ताकतवर होता है। यदि उपचारक कुशल न हो और इस ऊर्जा को नम्र न कर सके, तो उपचार प्रक्रिया धीमी पड़ सकती है।

(६) रक्तमणि (Garnet)-- इसके द्वारा प्रेषित प्राण ऊर्जा गहरे लाल रंग की होती है। सामान्य तौर पर, यह उपचार के लिए अयोग्य है, जब तक कि उपचारक जान बूझकर इसको काफी अधिक सफेद ऊर्जा से मिश्रित न कर ले।

(घ) दो अंगूठियों को पहनने से और अधिक शक्तिशाली होना–

दो अंगूठी दोनों हाथों की अंगूठी वाली उंगलियों में पहनी जा सकती हैं, जिससे आप और अधिक शक्तिशाली हो सकते हैं। किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि जो हाथ प्राण ऊर्जा प्राप्त करे, उसमें अधिक बड़ा रत्न होना चाहिए, जिससे आप प्रेषित ऊर्जा के तुलना में अधिक ऊर्जा प्राप्त कर सकें। इस प्रकार यह सम्भावना है कि आप कम खालीपन महसूस करेंगे। यह अति महत्वपूर्ण है कि अंगूठी का रत्न यथोचित रूप से पवित्रीकृत किया हुआ हो।

(७) रंगीन रत्नों के गुण– **Properties of Color Crystals**

(क) इनके गुण उनके रंग वाली रंगीन प्राण ऊर्जा के गुणों के समान होते हैं। इस सम्बन्ध में अध्याय ८ के क्रम संख्या ४ से १० तक एवम् १६ का अवलोकन करें। निम्न तालिका में विभिन्न रंगीन रत्नों के गुण दिग्दर्शित हैं:–

रत्न का रंग	रत्न का उदाहरण	भौतिक गुण	मनोवैज्ञानिक गुण
लाल (Red)	(१) रक्तमणि (Garnet)– लाल खनिज पदार्थ, जिसके जवाहरात बनाए जाते हैं। (२) माणिक्य (Ruby), (लाल रंग का बहुमूल्य पत्थर) लाल रत्न।	उष्णता, शक्तिदायक	बहादुरी, साहस, क्रियाशीलता, प्रगतिशीलता, आक्रामक
नारंगी (Orange)	पुखराज (Topaz)	निष्कासन (पसीना निकलना, मूत्र त्याग करना, मल त्याग करना), स्वच्छीकरण करना	उत्साह, उद्दंडता (Fanaticism) आदि
पीला (Yellow)	कोरल–मूंगा, प्रवाल (कोरल– समुद्र के अन्दर पाये जाने वाला कठोर चट्टानी पदार्थ) (Coral-- Hard rocky submarine substance)	जोड़ना (cementing)	उच्च मानसिक सक्रियता (Higher mental activity)
हरा (Green)	(क) हरा टूरमैलीन (Green Tourmaline) (ख) पन्ना, मरकत	तोड़ना, हजम करना	चतुर, व्यवहार, कुशल (Tactfulness), कूटनीति (Diplomacy)
नीला (Blue)	(क) नीलम– एक गहरे रंग का बहुमूल्य पत्थर (Sapphire) (ख) मूनब्ल्यू (Moon Blue)	ठंडा करना, स्थानीय करण और संकुचित करना	निम्न श्रेणी की मानसिक सक्रियता (Lower mental activity or concrete thinking)
बैंगनी (Violet)	एमीथिस्ट (Amethyst)	इसमें सभी रंगों के रत्नों के गुण होते हैं	आत्मोन्नति (Spirituality)
गुलाबी (Pink)	गुलाब–स्फटिक मणि (Rose Quartz)	आकर्षक, सुकून पहुंचाने वाला और समन्वय करने वाला	प्यार /स्नेह (Love)

अंगूठी, नैकलेस, झुमका अथवा ब्रेसलैट (rings, pendents) द्वारा व्यक्ति की चित्तवृत्ति अथवा मिजाज (mood) पर प्रभाव डाला जा सकता है। यदि आपके पास कोई रोगी है जो निराश/हतोत्साह है अथवा कायर है, तो उसे लाल या आड़ू (peach) रंग का रत्न अपने अंगूठी या पैन्डैंट में पहनने के लिए कहें। यदि किसी व्यक्ति को शान्त करना चाहते हैं, तो उसे गुलाबी या * नीले रंग के रत्न को पहनने के लिए कहें। किन्तु इनको पहनने से पहले पत्थर या रत्न को समुचित पूर्णरूपेण स्वच्छ करके ही पहनना चाहिए। इसकी शक्ति बढ़ाने के लिए इसको ऊर्जित किया जा सकता है और पवित्र संस्कारों से भैद्य (Psychically impregnated) किया जा सकता है।

नगों के उपचार के अतिरिक्त बहुत से व्यवहारिक एवम् परासामान्य उपयोग हैं, उदाहरण के तौर पर ज्योतिष में – विभिन्न ग्रहों की शान्ति के लिए उपचार; किन्तु यह इस पुस्तक का विषय नहीं हैं।

(८) पारदर्शी रत्न के गुण– Properties of a Clear Crystal

इस रत्न से साधारणतया सफेद प्राण प्रेषित होता है, किन्तु इसमें सभी रंगीन ऊर्जाओं के गुण होते हैं। जैसा कि आपने क्रम संख्या ७ की तालिका में देखा, बैंगनी रंग के रत्न में सभी रंगों के गुण होते हैं। पारदर्शी रत्न में यह गुण बैंगनी रंग के रत्न से कम शक्तिशाली होते हैं, जिस प्रकार सफेद ऊर्जा बैंगनी रंग की ऊर्जा से कम शक्तिशली होती हैं, यद्यपि दोनों ही प्रकार की ऊर्जाओं में सभी रंगों के गुण होते हैं।

पारदर्शी रंग के रत्न से भी किसी भी रंग की ऊर्जा प्रेषित की जा सकती है, किन्तु उसके लिए आपको तद्नुसार इच्छाशक्ति करनी होगी।

---

* कभी–कभी नीले रंग के रत्न, विशेषतौर पर नीलम रत्न के पहनने से व्यक्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है, इसलिए इसके लिए सावधानी बरतें। जैसे पहनने से पहले, रात्रि को सोते समय तकिये के नीचे रखें, तब इसका प्रभाव देखें।

(६) विभिन्न रत्न– **Various Precious Stones, Gems and Jewels**

(क) (स्रोत– टाइम्स ऑफ इण्डिया, लखनऊ दिनांक २४.६.२००१ में प्रकाशित– इसमें यह उल्लेख है कि इसका स्रोत– वैबसाइट Website www.galaxyofhealth.com है)

(1) Agate सुलेमानी पत्थर

(क) Blue Lace Agate – यह चेतना को जागृत करता है और कल्पना शक्ति बढ़ाता है।

(ख) Moss Agate – Is in touch with nature and unconditional love and helps in healing the inner child.

(ग) Tree Agate – अन्तःकरण में झांकने के लिए उत्तम है, क्योंकि इससे आपका दृष्टिकोण बढ़ता है।

(2) Amazonite – स्व–योग्यता को बढ़ाता है। तांत्रिक तंत्र को सान्त्वना प्रदान करता है। रक्त और कोशिकाओं से विषाक्त गैसों को दूर कर नकारात्मकाओं को सोखता है।

(3) Amber – भारीपन दूर करता है। Ying और Yang के समन्वय में सहायक। Yang (active male principle of universe) और Ying (passive female principle of universe) को संतुलित करने में सहायता करता है।

इसका तात्पर्य यह है कि किसी विषय में अति सक्रियता, सक्रियता, अर्ध सक्रियता, अर्ध निष्क्रियता, निष्क्रियता और अति निष्क्रियता बरतने के विवेक में सहायता प्रदान करता है।

(4) Amethyst

(क) Amethyst – यह आत्मोन्नति में सहायक है। इसमें की बैंगनी किरणें दिमाग को शान्त करती हैं तथा मनोवैज्ञानिक योग्यता को बढ़ाती हैं।

(ख) Cape Amethyst – यह भावनात्मक एवम् आत्मिक– दोनों प्रकार के आन्तरिक समन्वय को सुधारता है।

(5) Angelite – मानसिक संचार का विकास एवम् सटीकता में सहायता करता है। जहां अवस्थित किया जाता है, वहां एक सुरक्षात्मक बाढ़ सी बनाता है।

(6) Apache Tears – आधार देने में सहायक, क्योंकि यह निम्न श्रेणी की भावनाओं को बाहर निकालता है।

(7) Apatite – संचार की योग्यता बढ़ाता है।

(8) Appophyllite – "तीसरी आंख" को सक्रिय करता है।

(9) Aquamarine – यह अवचेतना को झंकृत करके प्यार और करुणा भरता है और आत्मा की ओर ध्यान आकर्षित करता है। यह सत्य को पहचानने और be open to changes (अपने को परिवर्तित करने में खुले मनपूर्वक है)

(10) Aventurine

(क) Blue Aventurine – परिभ्रमण (circulation) में सहायक है।

(ख) Green Aventurine – भौतिक उपचार (physical healing) में सहायक है।

(11)	Azurite	— समझने, संचार और अन्तर्ज्ञान (intution) को बढ़ाता है।
(12)	Blood- stone	— तनाव दूर करता है और मनोवैज्ञानिक उपचार में सहायक है। रक्त से विषाक्त पदार्थ निकालता है।
(13)	Bornite (Peacock Ore)	— चक्रों को अलग-अलग और सम्मिलित रूप से सक्रिय कर सकता है। यह अध्यात्म को बढ़ाता है। Cellular metabolism (कोशिकाओं के तंत्र) में की असमानता को दूर करता है।
(14)	Calcite	
	(क) Calcite	— पाचनात्मक तंत्र और उत्सर्जनात्मक तंत्र के सुचारु रूप से कार्यान्वित रहने में सहायक है और इस प्रकार से शरीर से विषाक्त पदार्थों को दूर करने में सहायक होता है। कैल्शियम के स्तर तथा भावनाओं का संतुलन करता है।
	(ख) Gold Calcite	— यह ब्रह्म चक्र को ऊर्जित करता है।
(15)	Carnelian	— सृजनात्मक और मानसिक कार्यरीति (processing) को संतुलित करता है। यह नारंगी रंग की किरणों का वाहक है, जिससे आराम मिलता है और पिछले जन्म की बातों के स्मरण दिलाने में सहायक होता है।
(16)	Celestite	— निराशा और चिन्ता को दूर करता है।
(17)	Chalcopyrite	— बोध (perception) को सुदृढ़ करता है, ऊर्जा के अवरोधों को हटाता है जिससे

		ऊर्जा (chi)-प्रवाह बढ़ता है।
(18)	Chrysoprase	– आत्मिक सुरक्षा
(19)	Citrine	– यह शरीर को अवलम्बन देता है। यह पीले रंग की किरणों का वाहक है, अतएव समस्या सुलझाने में सहायक बनता है।
(20)	Coral– मूंगा, प्रवाल	– भावनात्मक बुनियादों को बढ़ावा देता है।
(21)	Diamond–हीरा	– स्व–स्पष्टता (personal clarity) को बढ़ावा देता है। गुर्दों और जननांगों को शक्ति प्रदान करता है।
(22)	Emerald–पन्ना, मरकत	– यह हरे रंग की किरणों का वाहक है। शारीरिक और भावनात्मक समन्वय में इसके कारण सहायता मिलती है।
(23)	Fluroite–Green	– अन्तः स्त्रावी संतुलन में सहायक है।
(24)	Garnet रक्तमणि	– समस्त शरीर को शक्ति पहुंचाने और उत्तेजित करने में सहायक होता है।
(25)	Hematite	– आधार तथा स्थिरीकरण हेतु।
(26)	Howlite	– कैल्शियम के सोखने और वितरण करने में सहायक।
(27)	Iolite	– "तीसरा नेत्र" के खोलने में सहायक और किसी प्रकरण के दोनों पक्षों की सत्यता को अधिक स्पष्ट तौर पर पहचानने में सहायक होता है। ध्यान करने में अक्सर

इसका उपयोग किया जाता है।

(28)	Jade	– आराम, बुद्धि में सहायक। साहस (हिम्मत) दिलाता है।
(29)	Jasper	:
	(क) Leopard skin Jasper	– जिस चीज की आपको जरूरत होती है, वह आपको दिलाता है। शरीर की ऊर्जाओं का संतुलन और समन्वय करता है।
	(ख) Poppy Jasper	– सकारात्मक दृष्टिकोण बनाने में सहायक। कार्य करवाने की योग्यता प्राप्त कराने में सहायक।
	(ग) Red Jasper	– यह सुरक्षात्मक पत्थर है, जो आपके आभा मण्डल को स्थिरता प्रदान करता है।
(30)	Kunzite	– भावनात्मक अवलम्बन प्रदान करता है।
(31)	Lapis	:
	(क) Lapis	– यह मस्तिष्क को समझता है।
	(ख) Lapis Lazuli	– यह मानसिक संतुलन करता है और बुद्धि तथा संचेतना (awareness) जागृत करता हैं। यह शिक्षकों के उपयोग के योग्य समझा जाता है।
	(ग) Lapis Nevada	– भावनात्मक शरीर को खोलता है और उसको बल प्रदान करता है।
(32)	Malachite	– आपके जीवन में समन्वयता लाता है, आराम पहुंचाता है और शांतिपूर्ण निद्रा

लाता है।

(33) Moldavite — यह अन्य पृथ्वी का पत्थर है, इसलिए यह दुर्लभ रत्नों में भी अति दुर्लभ रत्न है। सुरक्षात्मक आधार प्रदान करता है। इसमें से Black Onyx को अधिक पसन्द किया जाता है।

(34) Moonstone :

(क) Moonstone — भविष्य बताने में सहायक है। यह भावनाओं का संतुलन करता है, प्रसन्नता बढ़ाता है क्योंकि यह "देवी" और "मां" की ऊर्जाओं से सम्बन्धित माना जाता है।

(ख) Grey Moonstone — दूसरे पत्थरों की शक्ति को ग्रहण करने में सहायता देता है।

(ग) Orange Moonstone — आपको आराम पहुंचाकर, दूसरे पत्थरों को ग्रहण करने में सहायता पहुंचाता है।

(घ) White Moonstone — दूसरे पत्थरों के प्रभावों को बढ़ाता है। इसके अतिरिक्त Yang और Ying के संतुलन में सहायक।

(35) Obsidian :

(क) Black Obsidian — आधार प्रदान करता है।

(ख) Mahogany Obsidian — निर्णय लेने में सहायता करता है।

(ग) Snowflake Obsidian — आधार तथा सुरक्षा प्रदान करता है। शरीर की असमन्वयता को झंकृत करके दूर करता है। यह कोशिकाओं का ऑक्सीजनीकरण में भी सहायता करता

है।

(36) Onyx :

(क) Onyx – यह जीवन के उद्देश्य को पहचानने में और उसको ठीक करने में सहायक है। यह "तीसरे नेत्र" को खोलने में भी सहायक है।

(ख) Black Onyx – यह आधार प्रदान करता है।

(ग) Mexican Onyx – यह निद्रा लाने में सहायक है।

(37) Opal :

(क) Opal-- पोलकी (दूधिया पत्थर) – अन्य सम्भावनाओं को ढूंढ़ने में सहायक।

(ख) Black Opal – यह हड्डियों को मजबूत करता है।

(ग) Opalite – जो दीर्घकालीन रोगों से ग्रसित हैं, उनकी सहायता करता है।

(38) Pearl – मोती :

(क) Fresh Water Pearl – प्रेम को स्वीकार करना। यह पवित्रता, ईमानदारी, मित्रता, धैर्य, समझदारी और शान्ति से सम्बद्ध है।

(ख) Mother of Pearl मोती की सीप – "मां" के प्रेम के गुण हैं।

(39) Peridot – यह ऊर्जा को ऊर्जा आभामण्डल (aura) से भौतिक शरीर में लाता है। शारीरिक ग्रंथियों एवम् अंगों को शक्ति पहुंचाने, उनको दिषाक्त मुक्त करने और ठीक करने में सहायक है।

(40)	Pyrite	– यह परिभ्रमण (circulation) में सुधार करता है।
(41)	Quartz	
	(क) Quartz	– सभी कार्यों एवम् संतुलन में सहायक। सभी रंगों की किरणों के साथ कार्य करता है और केन्द्रित (Focus) करने, स्पष्टता और संज्ञान में सहायक।
	(ख) Clear Quartz स्फटिक पारदर्शी मणि	– सामान्य शारीरिक तंत्रों का रक्षक है तथा उसको सुदृढ़ करता है। मानसिक स्पष्टता प्रदान करता है।
	(ग) Frosted Quartz	– संतुलन को बढ़ाने में सहायक है।
	(घ) Lavender Quartz- (Cape Amethyst)	– रीढ़ की हड्डी और आभा मण्डल के क्षेत्र को (align) एक सीध में करता है।
	(ङ) Rose Quartz गुलाब–स्फटिक मणि	– भावनात्मक संतुलन के लिए। कम भावनात्मक उथल-पुथल के साथ उच्च श्रेणी की चेतना के संज्ञान की ओर ध्यान आकर्षित करता है।
	(च) Smokey Quartz	– नकारात्मक भावनाओं को साफ करता है, स्थिरता प्रदान करता है।
	(छ) Tigereye Quartz	– भौतिक शरीर के आधार और संतुलन में सहायक।
(42)	Rhodonite	– भावनात्मक अवलम्बन प्रदान करता है। अधूरे अनुभवों को सुलझाने में सहायक।
(43)	Rhodocrosite	– परिवर्तन/ नमूने को तोड़ने वाला।
(44)	Rhyolite	– पृथ्वी का पत्थर, जो सभी चक्रों का

संतुलन और एक सीध में होने (alignment) को ठीक रखने में सहायक होता है।

(45) Riverstone – शीघ्र परिवर्तन को बढ़ावा देता है।

(46) Ruby माणिक्य (मानक) – यह प्यार, प्रसन्नता और स्वास्थ्य को बढ़ाता है, क्योंकि यह लाल रंग की किरणों का संवाहक है।

(47) Blue Sapphire नीलम – यह मानसिक स्पष्टता को प्राप्त करने में सहायक है, क्योंकि यह नीले रंग के किरणों का संवाहक है।

(48) Serpentine – ब्रह्मचक्र के खोलने में सहायक है। आन्तरिक अंगों के विषाक्त मुक्त होने में और ग्लूकोज के सतर के संतुलन करने में सहायक है।

(49) Sodalite :

(क) Sodalite – अनिद्रा को समाप्त करता है। बाह्य नकारात्मक ऊर्जा से रक्षा करता है।

(ख) Transparent Sodalite – यह नील (Indigo) रंग की किरणों का संवाहक है। यह बोध (perception), इच्छाशक्ति और तन्मयता (focus) को बढ़ाने में सहायता प्रदान करता है।

(50) Sugilite – आभा मण्डल की गन्दगी को सोखता है।

(51) Sunstone – गहन विचार में सहायक

(52) Topaz पुखराज – प्रेरणा देता है और स्व–व्यक्तित्त्व को प्रकट करता है।

(53) Torquoise (A gem of greenish-blue colour) हरितक्रांति, फीरोजा	–	सुरक्षा, ठीक करना (healing), सौभाग्य और दीर्घ आयु प्रदान करता है। स्त्री के जननांगों के तंत्र की खराबियों को ठीक करने में भी सहायता प्रदान करता है।
(54) Tourmaline	:	
(क) Black Tourmaline		आभा मण्डल की स्वच्छता करने वाला और सभी स्तरों पर यह सुरक्षा प्रदान करने वाला पत्थर है।
(ग) Pink Tourmaline (Rubellite)	–	स्त्री के संतुलन और भौतिक उपचार (healing) को बढ़ावा देता है।
(घ) Watermelon Tourmaline	–	असंतुलन को ठीक करता है। अपराध की भावना को सहज करता है।
(55) Unikite	–	शारीरिक और भावनात्मक आवश्यक्ताओं का संतुलन करता है। अंगों, मांसपेशियों और नाजुक कोशिकाओं पर प्रभाव डालता है।

(ख) उक्त रत्नों के अतिरिक्त कुछ और रत्न भी होते हैं जैसेः–

(1) Cat's Eye – यह धूसर–भूरे (grey) रंग का होता है।
लहसुनियाँ

(2) Moonblue

(3) Zircon – यह पीला सा लाल रंग का होता है।
गोमेदक

प्रस्तुतकर्ता का नोट–

प्रत्येक रत्न के अपने-अपने गुण होते हैं। हर रत्न हरेक को माफिक नहीं आता। रत्न धारण करने से पहले किसी विशेषज्ञ से परामर्श आवश्यक है।

कभी–कभी एक व्यक्ति पर एक ही रत्न अलग– अलग समयों में अलग–अलग प्रभाव डालता है।

(१०) रत्नों का दूषित हो जाना– Contamination of Crystals

(क) यह रत्नों का एक स्वाभाविक गुण है कि जब कभी कोई व्यक्ति उसका स्पर्श करता है अथवा उसका उपयोग करता है, तो उस व्यक्ति की ऊर्जा उस व्यक्ति से स्वतः ही अनजाने में प्रेषित होकर रत्न द्वारा खींच ली और सोख ली जाती है। यह अच्छी या बुरी ऊर्जा, स्वस्थ या रोगग्रस्त, स्वच्छ या गंदी– कैसी भी हो सकती है। उसी प्रकार, जिस प्रकार किसी मिट्टी के कुल्हड़ में यदि आप कोई द्रव पदार्थ रखते हैं तो वह उस द्रव पदार्थ को आंशिक रूप से सोख लेता है। इस सोखी गई ऊर्जा को मनोवैज्ञानिक ऊर्जा (Psychic energy) के नाम से आगे के अध्याय/अध्यायों में सम्बोधित किया गया है।

(ख) रत्नों का एक दूसरा स्वाभाविक गुण यह भी है कि जब कभी कोई व्यक्ति उसका स्पर्श करता है अथवा उसका उपयोग करता है, तो उसके गुण/अवगुण का अंश एवम् चरित्र का अंश उस रत्न में स्थानान्तरित हो जाता है, जिसको एक प्रकार से संस्कार के तौर पर समा जाना (psychic impregnation) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि कोई व्यक्ति क्रोध करता है या निराशायुक्त है, तो उसकी नकारात्मक ऊर्जा रत्न में हस्तान्तरित होकर समा जाती है। और यदि कोई अच्छे गुणों का है, तो उसकी सकारात्मक ऊर्जा हस्तान्तरित होकर रत्न में समा जाती है।

(ग) जैसा कि क्रम संख्या २ (ख) में वर्णन किया गया है कि रत्न में उसके कार्यों के कार्यान्वयन का निर्धारण (programme) किया जा सकता है। हो सकता है कि जो रत्न आपके पास हो, उसमें किसी व्यक्ति ने पहले प्रोग्राम किया हो और वह अभी भी उसमें अवस्थित हो।

(घ) इस प्रकार आप देखेंगे कि रत्न में उपरोक्त तीन प्रकार का संक्रमण (contamination) हो सकता है। खान से निकालने में, काटने छांटने, सफाई करने, व्यापार में रत्नों को अनेक व्यक्तियों के माध्यम/हाथों से

गुजरना पड़ता है। रत्न का इन सभी व्यक्तियों द्वारा उपरोक्त (क) तथा (ख) में वर्णित संक्रमण होता है, तथा हो सकता है कि इनमें से किसी ने (ग) में वर्णित प्रोग्राम भी किया हो।

इसके अतिरिक्त कोई भी रत्न/आभूषण यदि आपको विरासत में मिलता है अथवा उपहार स्वरूप मिलता है, तो जिससे आपको मिला है, उसके गुण/अवगुण भी उपरोक्त प्रकार उसमें समाये हुए मिलते हैं। यदि किसी व्यक्ति के रोगग्रस्त होने के फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई हो और उसका कोई आभूषण/रत्न आपको प्राप्त होता है, तो वह रोगग्रस्त ऊर्जा भी उसमें गर्भित होगी।

साधारणतया किसी को यह ज्ञान नहीं हो पाता कि किसी अमुक रत्न/आभूषण में किस प्रकार का संक्रमण है। ऐसी दशा में यह मानकर चलना चाहिए कि खान से निकले हुए अनेकों स्पर्शित/उपयोग किए हुए व्यक्तियों में अधिकांश पवित्र व अच्छे व्यक्ति नहीं रहे होंगे।

उपरोक्त कारणों से यह अति आवश्यक है कि किसी भी आभूषण अथवा रत्न को उपयोग में लाने से पहले उसका स्वच्छीकरण कर लिया जाए। इसकी विधि अध्याय २६ के क्रम (क) में दी गयी है। नमक के घोल अथवा चन्दन की धूप/अगरबत्तियां जलाकर और eV द्वारा स्वच्छीकरण किया जाता है, परन्तु कुछ रत्नों को नमक के घोल में डालने से क्षति पहुंच सकती है। ऐसे केस में पानी तथा चन्दन की धूप/अगरबत्तियों तथा eV द्वारा स्वच्छ करें।

उपचार के उपयोग में लाये जाने वाले रत्नों को भी प्राणिक उपचार करने से पूर्व, यह आवश्यक है कि इन सभी उपरोक्त दूषणों की सफाई कर दी जाये। इसके अतिरिक्त उसमें अच्छी ऊर्जा भर दी जाये तथा उसका पवित्रीकरण (अथवा एक प्रकार की प्राण प्रतिष्ठा) कर दी जाये, ताकि उसकी कार्य करने की शक्ति काफी बढ़ जाये। इन सबकी विधि अगले अध्याय २६ में दी गयी है।

नोट– आप एक ऐसा रत्न अपने हाथ में लीजिए जिसका स्वच्छीकरण नहीं हुआ। अपने सीधे हाथ की उंगलियों से अपने हाथ चक्र को संवेदनशील कर उसकी जांच (Scanning) कीजिए और उसका ऊर्जा क्षेत्र ज्ञात कीजिए। इसको बहुत धीरे-धीरे कीजिए। क्या आप रत्न की ऊर्जा को महसूस कर सकते हैं ? अब आप अपनी प्रथम और मध्य की उंगलियों पर रत्न से ऊर्जा लीजिए और अपने

अंगूठे को इन दो उंगलियों पर धीरे से फिराइये, जैसे आप किसी कपड़े की गुणवत्ता जांच करने के लिए अपनी उंगलियों के ऊपर कपड़े को रखकर, उसके ऊपर अंगूठे को फिराते हैं। रत्न की इस ऊर्जा की गुणवत्ता को महसूस कीजिए। अब आप अपने बांए हाथ की इन्हीं दो उंगलियों पर बाएं हाथ के अंगूठे को इसी प्रकार फिराइये। अब आप रत्न की ऊर्जा को अपने स्वयं की ऊर्जा (जिसको आपने अपने बांए हाथ में परखा है) से तुलना कीजिए। क्या आप को दोनों में कोई अन्तर मालुम पड़ता है ? रत्न की गंदी ऊर्जा कैसी महसूस होती है ? यदि आप संवेदनशील हैं, तो रत्न के गंदा होने की दशा में आप अपने सीधे हाथ की उंगलियों में थोड़ा सा दर्द, चिपचिपापन अथवा थोड़ा सा कष्ट मालुम पड़ेगा। इस प्रयोग से उक्त कथन की पुष्टि हो जायेगी।

रत्नों का स्वच्छीकरण, ऊर्जन तथा पवित्रीकरण–

Cleansing, Energisation and Consecration of Crystals

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
क	रत्नों का स्वच्छीकरण– Cleansing of Crystals	५.४४६
(१)	पानी और नमक– Water and Salt	५.४४६
(२)	सुगन्धित धूप का धुंआ– Incense	५.४४७
(३)	विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा– Electric Violet Energy	५.४४६
(४)	प्रार्थना द्वारा– Using Prayer	५.४५१
ख	रत्नों का ऊर्जन– Charging (or Energising) of Crystals	५.४५२
(१)	भूमिका	५.४५२
(२)(१)	प्राणिक श्वसन द्वारा – Through Pranic Breathing	५.४५३
(२)(२)	सूर्य, वायु तथा पृथ्वी की ऊर्जा से चार्ज करना	५.४५४
ग	रत्न को एक साथ चार्ज तथा पवित्रीकृत करना– Charging and consecration of crystals simultaneously	५.४५५
घ	पवित्रीकृत रत्न/रत्नों के विषय में सावधानियां और ज्ञातव्य बातें	५.४६०

रत्नों का स्वच्छीकरण, ऊर्जन तथा पवित्रीकरण–

Cleansing, Energisation and Consecration of Crystals

क्रम (१) रत्नों का स्वच्छीकरण– Cleansing of Crystals

इसके कई तरीके हैं जो निम्नवत हैं।

उपक्रम (१) पानी और नमक– Salt and Water

(क) पहली विधि

एक लीटर पानी में लगभग एक मुट्ठी भर नमक डालिए और उसे अच्छे प्रकार घुल जाने दीजिए। फिर उसमें रत्न को डाल दीजिए। रत्न की ओर देखते हुए, उसको मौखिक अथवा मानसिक रूप से निर्देश दीजिए कि जब तक वह इस नमक के घोल में है, अपने अंदर की गंदी और रोगग्रस्त ऊर्जा को बाहर निकाल दे। इस नमक के घोल का उद्देश्य यह है कि पानी इस ऊर्जा को सोखने में और नमक उसको टुकड़े–टुकड़े करने को समर्थ है। यह निदेश तीन बार दीजिए। रत्न को इस घोल में तीस मिनट तक पड़े रहने दें। इस समय के बीत जाने पर रत्न की ओर देखते हुए तीन बार यह निर्देश दें कि वह ऊर्जा को बाहर निकालना बन्द कर दे।

यदि रत्न उच्च गुणवत्ता का है या बहुमूल्य पत्थर से निर्मित है, तो नमक के घोल के स्थान पर मात्र ठंडा पानी ही इस्तेमाल करें क्योंकि हो सकता है कि नमक उसको क्षति पहुंचा दे। ठंडा पानी के अतिरिक्त इथाइल या मिथाइल एल्कोहोल (Ethyl or Methyl alcohol), अथवा दोनों से भी स्वच्छ किया जा सकता है। अथवा इसके अलावा चन्दन का तेल भी इस उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

यदि किसी रत्न का प्रयोग किसी गम्भीर बीमारी के उपचार में किया गया है, तो उसको साफ होने में अधिक समय लगेगा क्योंकि उसमें की ऊर्जा अत्यन्त गंदी होगी।

(ख) दूसरी विधि

उक्त नमक के घोल में रत्न को आप अपने हाथ में रखते हुए पानी में डालिए। तत्पश्चात् अपनी उंगलियों से लगभग तीन मिनट तक नमक के घोल में डूबे हुए रत्न को लगातार मलिये और रत्न से गंदी ऊर्जा के निकलने की इच्छा शक्ति कीजिए अथवा मौखिक या मानसिक रूप से रत्न को (क) में वर्णित निदेश दीजिए। तीन मिनट बाद उक्त विधि से ऊर्जा निकलवाना बन्द कराकर, रत्न को बाहर निकाल लें। जब भी आप रत्न को निदेश दें, उसकी ओर देखते हुए दीजिए। इस विधि में समय की बचत हो जाती है।

यह अधिक अच्छा होगा यदि आप रत्न को स्वच्छ करने से पहले और बाद में जांच द्वारा उसका ऊर्जा का क्षेत्र ज्ञात कर लें। इन दोनों के अन्तर को महसूस कीजिए। आप पायेंगे कि रत्न को स्वच्छ करने से न केवल गंदी ऊर्जा बाहर निकलती है, अपितु उसका प्राण ऊर्जा स्तर भी बढ़ता है।

उपक्रम (२) सुगन्धित धूप का धुंआ– Incense

रत्न को स्वच्छ करने का एक तरीका सुगंधित धूप के धुंए के उपयोग द्वारा है। जब सुगंधित धूप को जलाया जाता है, तो एक विशेष प्रकार की ऊर्जा निकलती है। दिव्य दर्शन से यह देखा गया है कि यह प्रकाश के जीव (देव) हैं, जिनके विभिन्न रंग होते हैं। इनके तदनुसार (अर्थात रंग के अनुसार) गुण होते हैं। कई प्रकार के सुगंधित धूप के धुंए होते हैं, जिनका उपयोग विभिन्न उद्देश्यों के लिए किया जाता है जैसे प्यार, धन, बुरी आत्माओं के बाहर निकालने आदि के लिए।

चन्दन की लकड़ी के धुएं से हरा रंग निकलता है, जिसका स्वच्छ करने का प्रभाव होता है। निम्न प्रक्रिया करें।

(क) रत्न के ऊर्जा का क्षेत्र एवम् गुणवत्ता की जांच करें।

(ख) चन्दन की लकड़ी अथवा अगरबत्तियां जलाइए और उसके धुंए में रत्न को कुछ मिनटों तक रखिए। प्रकाश के जीवों (देवों) से मानसिक अथवा मौखिक रूप से निम्न निवेदन कीजिए।

"हे प्रकाश के देव, आप इस रत्न को समस्त गंदी और रोगग्रस्त ऊर्जा से साफ कर दीजिए। आपके सहयोग के लिए धन्यवाद।"

उक्त निवेदन को तीन बार दोहराइये।

(ग) उक्त समय के पश्चात् प्रकाश के जीवों (देवों) को मानसिक अथवा मौखिक रूप से उनके सहयोग के लिए तीन बार धन्यवाद दीजिए।

(घ) पुनः जांच करें और ऊर्जा के क्षेत्र और गुणवत्ता का अन्तर महसूस करें।

उक्त विधि से किसी जगह को अथवा रत्न को साफ करना अधिक शक्तिशाली और शीघ्रतर है, क्योंकि सुगंधित धूप के धुएं में जो प्रकाश के जीव हैं, उनकी अपनी चेतना होती है और इसलिए वे तुरन्त ही आपके निदेशों का पालन करते हैं।

सुगन्धित धूप के धुंए से रत्न को स्वच्छ करना

चित्र ५.१०

इसका चित्रण चित्र ५.१० में दिया है।

उपक्रम (३) विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा– **Electric Violet Energy**

(क) रत्न के ऊर्जा क्षेत्र और गुणवत्ता की जांच कीजिए।

(ख) अपने तालु से जीभ लगाइए।

(ग) ईश्वर से प्रार्थना करके, eV को 11 -- H तकनीक से ग्रहण कीजिए।

(घ) अपने H को रत्न की ओर करते हुए eV का प्रेषण कीजिए और साथ ही तीन बार eV से निम्न प्रार्थना कीजिए–

"ओ, विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा, कृपया इस रत्न को समस्त गंदी और रोगग्रस्त ऊर्जा, (यदि आप रत्न का किसी के मानसिक/मनोवैज्ञानिक रोग के उपचार में प्रयोग करें, तो यहां पर 'समस्त नकारात्मक मानसिक/मनोवैज्ञानिक ऊर्जाएं, समस्त नकारात्मक सोच के आकारों, समस्त नकारात्मक परजीवियों ' भी सम्मिलित कर लीजिए), पिछले समस्त मनोवैज्ञानिक छापों और पिछले समस्त प्रोग्रामों से स्वच्छ कीजिए। इसके लिए आपको धन्यवाद।"

"O Elective Violet Energy, please cleanse this crystal of all dirty and diseased energies, (If you are using the crystal for psychotherapic purpose, please include 'all negative psychic energies, all negative thought entities and all negative elementals' herein), all previous psychic impressions and all previous programmes. Thank you for the same."

इसका चित्रण चित्र संख्या ५.११ में दिया है।

(ङ) आपने eV से प्रार्थना करते हुए, जिमसे स्वच्छ करने के लिए कहा है, उन सभी को हटाने के उद्देश्य से इच्छाशक्ति का प्रयोग करते हुए, eV द्वारा रत्न की सफाई लगभग दस बार कीजिए। प्रत्येक बार हाथ को झटकते हुए, इन सभी को नमक के घोल की ओर उन्हें नमक के घोल में घुलने एवम् नष्ट होने के उद्देश्य से फैंकिये, जिस प्रकार आप स्थानीय झाड़ बुहार में करते हैं।

(च) अपने हाथों को eV से धोइए।

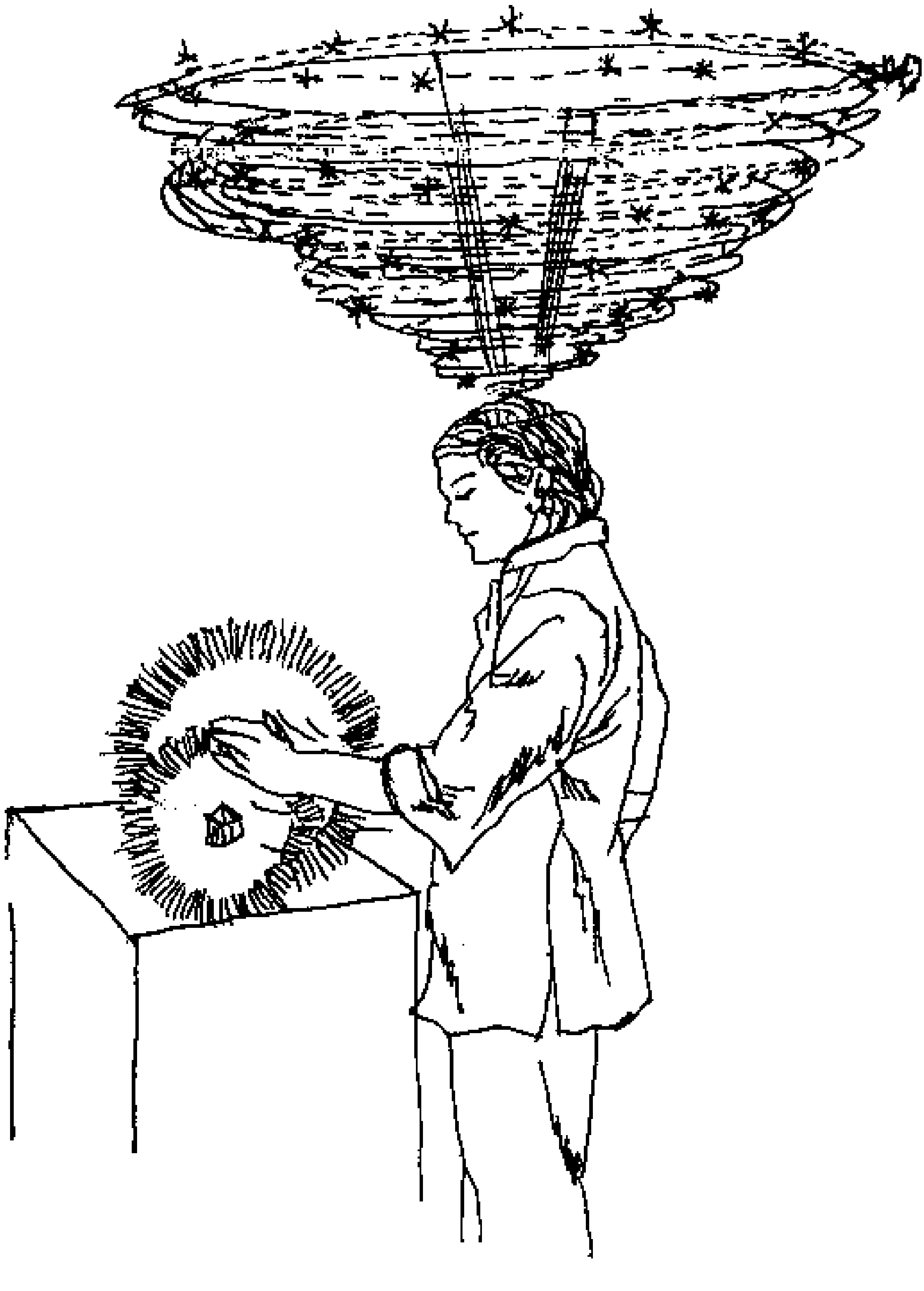

11-H तकनीक से eV से रत्न को स्वच्छ करना

चित्र ५.११

(छ) रत्न की ओर देखते हुए उसकी ओर दो या तीन सैकिन्ड तक eV का प्रेषण कीजिए।

(ज) यदि आप को रत्न का ऊर्जन नहीं करना है, तो स्थिरीकरण की विधि से स्थिरीकरण कीजिए एवम् IB द्वारा सील कर दीजिए। तत्पश्चात् वायवी विधि से वायवी डोर को काटिए।

(झ) यदि आपको रत्न का आगे (ख) "रत्नों के ऊर्जन" के अनुसार ऊर्जन करना हो, तो स्थरीकरण एवम् सील न करें।

(ञ) eV को सहयोग के लिए तीन बार धन्यवाद दीजिए।

(ट) पुनः जांच करें और पहले की हुई जांच और इसमें ऊर्जा के स्तर और गुणवत्ता का अन्तर महसूस कीजिए।

(ठ) मनोवैज्ञानिक छापों, प्रोग्रामों, नकारात्मक मानसिक/मनोवैज्ञानिक ऊर्जाओं, नकारात्मक सोच के आकारों, नकारात्मक परजीवियों को रत्न से बाहर निकालने के लिए सुगंधित धूप का धुंआ सक्षम नहीं होता है।

उपक्रम (४) प्रार्थना द्वारा– Using Prayer

(क) व (ख)– उक्त उपक्रम (३) (क) व (ख) के अनुसार

(ग) अपने ध्यान को ब्रह्म चक्र व हाथ चक्र पर केन्द्रित करिए।

(घ) रत्न को देखिए और तीन बार निम्न प्रार्थना कीजिए :

"हे सर्वशक्तिमान, आध्यात्मिक गुरुओ और पवित्र देवदूतो, कृपया करके इस रत्न को समस्त गंदी और रोगग्रस्त ऊर्जा, (यदि आप रत्न का किसी के मानसिक/मनोवैज्ञानिक रोग के उपचार में प्रयोग करें, तो यहां पर 'समस्त नकारात्मक मानसिक/मनोवैज्ञानिक ऊर्जाएं, समस्त नकारात्मक सोच के आकारों, समस्त नकारात्मक परजीवियों ' भी सम्मिलित कर लीजिए),पिछले समस्त मनोवैज्ञानिक छापों और पिछले समस्त प्रोग्रामों से स्वच्छ कीजिए। धन्यवाद। पूर्ण विश्वास के साथ। ऐसा ही हो।"

"To the Supreme Being, to the Spiritual Elders and the Holy Angels, thank you for cleansing this crystal of all dirty and diseased energies, (If you are using the crystal for psychotherapic purpose, please include 'all negative psychic energies, all negative thought entities and all negative elementals' herein), all previous psychic impressions and all previous programmes. In full faith, So be it."

प्रार्थना करते समय हाथ चक्र को रत्न की ओर करें, तथा यह इच्छाशक्ति कीजिए कि 11-H की तकनीक से जो दिव्य ऊर्जा आ रही है, वह आपके H के माध्यम से निकलकर रत्न को साफ कर रही है।

(ङ) इच्छा शक्ति का प्रयोग करते हुए सभी निष्कासित पदार्थों की, नमक के घोल का उपयोग करते हुए, लगभग दस बार सफाई कीजिए।

(च) से (ट) तक – उक्त उपक्रम ३ (च) से (ट) तक।

उपक्रम (५)

रत्न को साफ करने में सुगंधित धूप का धुंआ ऐच्छिक (optional) है, किन्तु नमक का घोल तथा eV आवश्यक है। प्रार्थना से बहुत अधिक सहायता मिलती है।

क्रम (ख) रत्नों का ऊर्जन– Charging (or Energising) of Crystals

उपक्रम (१) भूमिका

रत्न की शक्ति उसको बहुत अधिक मात्रा में प्राण-ऊर्जा द्वारा चार्ज (अथवा ऊर्जन कहिए) करके बढ़ायी जा सकती है। जो रत्न चार्ज नहीं किया गया है और जो चार्ज किया गया है, दोनों चक्रों को समान रूप से सक्रिय करते हैं, परन्तु चार्ज किया रत्न अधिक शक्तिशाली होता है। जैसे ग्रहण करने वाले हाथ पर चक्र सक्रियक (chakral activator) (आगे से इसको संक्षिप्तीकरण हेतु CA द्वारा सम्बोधित किया जाएगा) रखने से किसी व्यक्ति का 1 यदि लगभग साढ़े तीन इंच है, तो लगभग पांच से छह इंच हो जाता है। चार्ज किए रत्न की यद्यपि यही सक्रियता होगी, किन्तु बगैर चार्ज किए हुए रत्न के चक्रों, वायवी शरीर और आभा मण्डल में स्थित ऊर्जा का घनत्व, उससे कई गुना अधिक होगा। वह जो प्राण ऊर्जा सोखेगा अथवा प्रेषण करेगा, वह भी कई गुना अधिक होगी। चार्ज किए हुए CA के द्वारा बगैर चार्ज किए हुए

CA के मुकाबले में कई गुना ऊर्जा सोख एवम प्रेषित कर सकते हैं। यदि कोई २०० ग्राम का रत्न है और चार्ज किया गया है, तो वह ४०० या ५०० ग्राम के बगैर चार्ज किये हुए रत्न से अधिक शक्तिशाली होगा।

चार्ज किए हुए रत्न की शक्ति को बरकरार रखने के लिए, उसको नियमित तौर पर साफ करते रहना जरूरी है, क्योंकि वह धारण करने वाले की गंदी ऊर्जा से संक्रमित होता रहता है। दैनिक चर्या और उपचार सत्रों में भी धारण करने वाले को काफी तनाव, क्रोध, चिड़चिड़ापन और अन्य नकारात्मक भावनाएं हो सकती हैं। चूंकि रत्न एक subtle condenser (देखिए अध्याय २८, क्रम २ क) होता है, इसलिए सभी प्रकार की ऊर्जाओं, जिनमें गंदी ऊर्जा भी सम्मिलित है, को सोखता है। इनसे संक्रमित होने के फलस्वरूप रत्न की शक्ति काफी कम हो जाती है।

चार्ज करने का अर्थ रत्न को प्राण ऊर्जा द्वारा ऊर्जन करने का है, जिसमें सूर्य, वायु, भूमि द्वारा प्राप्त ऊर्जा भी शामिल है, परन्तु इसमें दिव्य ऊर्जा शामिल नहीं है।

उपक्रम (२) किसी प्रकार के भी चार्ज करने के पूर्व, रत्न का स्वच्छीकरण आवश्यक है, जिसकी विधि उपरोक्त क्रम (क) में दिखाई दी गई है।

चार्ज करने की निम्न विधियां हैं :

(१) प्राणिक–श्वसन द्वारा— Through Pranic Breathing

(यह विधि विशेषकर, उन व्यक्तियों के लिए योग्य है जो उच्च आध्यात्मिक आत्माओं में विश्वास नहीं करते, अर्थात एक प्रकार से उनमें नास्तिकपन हो)

(क) पांच बार प्राणिक–श्वसन क्रिया करें।

(ख) अपने H को रत्न की ओर रखकर, लगभग बीस बार प्राण–श्वसन करें, रत्न को चार्ज करने की इच्छाशक्ति करें और उसके ओर देखते हुए, उसको निम्न निर्देश तीन बार दीजिए :–

"जो प्राण–ऊर्जा मैं प्रेषित कर रहा हूं, उसको सोखिए"

(ग) उक्त क्रिया (ख) के बाद, रत्न को निम्न निद्रेश तीन बार दीजिए :

"अब प्राण–ऊर्जा को सोखना बन्द करिए"

(घ) यदि और अधिक रत्न को चार्ज नहीं करें, तो स्थिरीकरण तथा सील करें। तत्पश्चात् वायवी डोर को काटें।

(ङ) इस विधि द्वारा ऊर्जा का चार्जिंग का स्तर चित्र ५.१२ में दिग्दर्शित है।

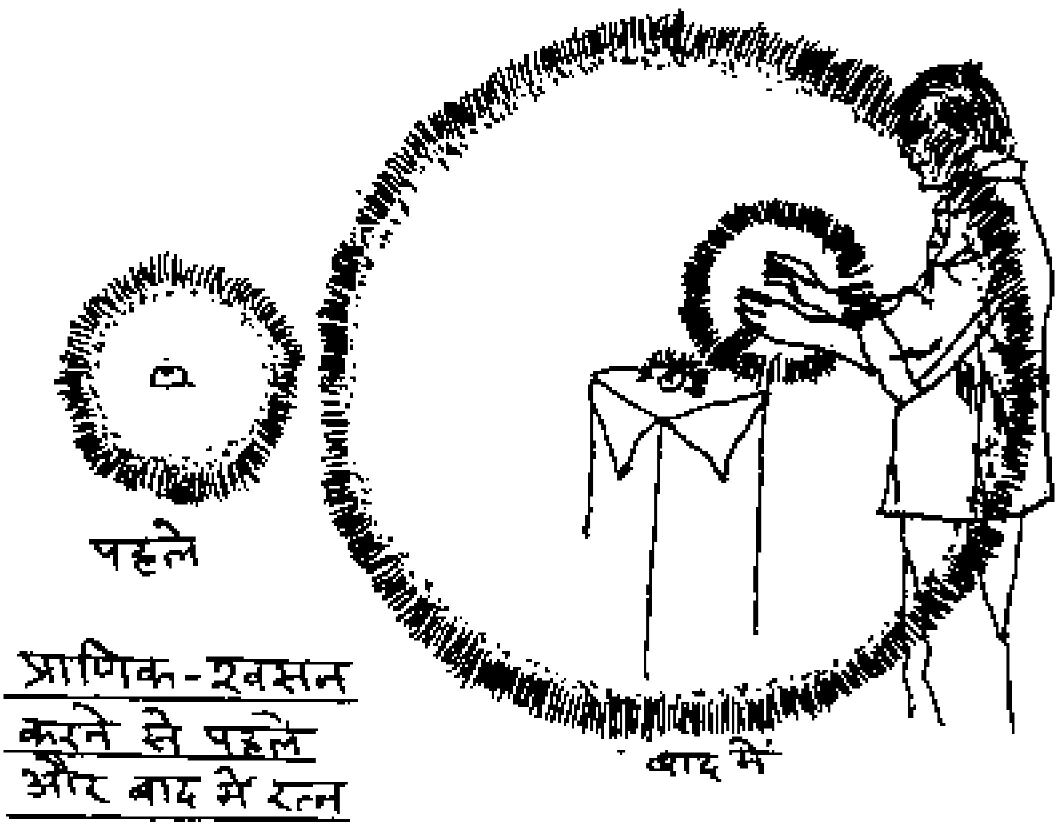

चित्र ५.१२

(२) सूर्य, वायु तथा पृथ्वी की ऊर्जा से चार्ज करना–

चार्ज किए हुए रत्न की शक्ति और अधिक बढ़ाने के लिए, उसे ऐसे स्वच्छ स्थान पर रखिए, जहां देर तक उसके रखे रहने तथा आपकी अनुपस्थिति में उसकी चोरी न हो जाए। जहां तक हो सके दिन के समय चार्जिंग करें और धूप में रखें। रत्न जमीन या घास को भी छूता रहना चाहिए। उस स्थान के नीचे कोई नाला, सैप्टिक टैंक, मुर्दा शरीर आदि नहीं होने चाहिए। यह भी सुनिश्चित करें कि वहां या तो कोई न हो अथवा बहुत थोड़े आदमी हों, अन्यथा चार्जिंग सुचारु रूप से नहीं हो सकेगी।

(क) रत्न की ओर देखते हुए, उसको निम्न निर्देश मौखिक या मानसिक तौर पर तीन बार दीजिए :

"सूर्य, वायु और पृथ्वी से अभी तुरन्त ही से ऊर्जा को सोखिए तथा स्टोर कीजिए। केवल स्वच्छ और स्वस्थ ऊर्जा ही सोखिए। जब तक आपको निर्देशित नहीं किया जाता, तब तक ऊर्जा सोखते तथा स्टोर करते रहिए।"

(ख) कई घंटों बाद, रत्न की ओर देखते हुए मौखिक या मानसिक तौर पर निम्नं निर्देश तीन बार दीजिए :

"सूर्य, वायु और पृथ्वी से ऊर्जा ग्रहण करना बन्द करिए।"

(ग) यदि आपको रत्न पवित्रीकृत नहीं करना है, तो स्थिरीकरण तथा सील करें। तत्पश्चात् वायवी डोर को काटें।

क्रम (ग)– रत्न को एक साथ चार्ज तथा पवित्रीकृत करना–
Charging and Consecration of Crystals simultaneously

उपक्रम (१)

(क) चार्ज किए हुए रत्न को पवित्रीकृत करने से उसकी शक्ति और अधिक बढ़ जाती है। यह क्रम (ख) में वर्णित चार्जिंग के मुकाबले अधिक शक्ति देता है। चार्जिंग तथा पवित्रीकरण करना सबसे अच्छा दिन में स्वच्छ खुले वातावरण में होता है, क्योंकि वह सूर्य, वायु और पृथ्वी से भी ऊर्जा सोखता है।

(ख) इस क्रिया की यह पूर्व–अपेक्षित शर्त है कि पवित्रीकरण करने वाले व्यक्ति का सर्वशक्तिमान ईश्वर, उच्च अध्यात्माओं, पवित्र फरिश्तों (देवदूतों), प्रकाश के देवों और nature spirits (प्रकृति आत्माओं) में विश्वास हो।

(ग) चार्जिंग तथा पवित्रीकरण करने से पहले, उनको उक्त क्रम (क) में बतायी गयी विधिओं से अच्छी तरह स्वच्छ करना परमावश्यक है।

(घ) एक समय में एक या एक से अधिक रत्नों का चार्जिंग/पवित्रीकरण किया जा सकता है।

उपक्रम (२)

चार्जिंग तथा पवित्रीकरण की प्रक्रिया छह भागों में की जाती है, जो निम्नवत है :—

भाग – १– सर्वशक्तिमान ईश्वर की सहायता के लिए प्रार्थना करना–

उक्त क्रम (ख) के उपक्रम (२) (२) के अनुसार रत्न/रत्नों को रखिए। फिर ईश्वर से उसके आशीर्वाद के लिए प्रार्थना कीजिए और मौखिक या मानसिक रूप से तीन बार निम्न निवेदन कीजिए :—

"हे सर्वशक्तिमान प्रभु, मैं आपको इस रत्न/इन रत्नों को अपने दिव्य आशीर्वाद, दिव्य स्नेह और दया, दिव्य उपचारात्मक ऊर्जा और दिव्य उपचार शक्ति से चार्ज करने के लिए धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

तत्पश्चात् रत्न/रत्नों की ओर देखते हुए उसे/उन्हें मौखिक या मानसिक रूप से तीन बार निदेशित करें :

"अभी इसी समय से आशीर्वाद और ऊर्जाओं को ग्रहण करिए तथा सोखिए और जब तक बन्द करने के लिए आदेश न दिया जाए, तब तक ग्रहण तथा सोखते रहिए।"

कुछ मिनट तक प्रतीक्षा करें, तब भाग २ के अनुसार करें।

भाग २– उच्च आत्माओं से सहायता के लिए प्रार्थना करना–

इसमें आध्यात्मिक गुरुओं, देवदूतों (फरिश्ते) और अन्य पवित्रात्माओं से उनके आशीर्वाद के लिए प्रार्थना कीजिए और मौखिक या मानसिक रूप से रत्न/रत्नों की ओर देखते हुए तीन बार निवेदन कीजिए :

"हे आध्यात्मिक गुरुओ, उपचारक देवदूतो, प्रकाश के देवो और सभी बड़े व्यक्तियो, मैं आपको इस रत्न/इन रत्नों को दिव्य आशीर्वाद, दिव्य स्नेह, दिव्य दया और दिव्य उपचारक ऊर्जा से चार्ज करने के लिए धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास से।"

तत्पश्चात् रत्न/रत्नों की ओर देखते हुए उन्हें तीन बार मौखिक या मानसिक रूप से निदेश दीजिए।

"अभी इसी समय से आशीर्वाद प्राण-ऊर्जाओं को ग्रहण करिए तथा सोखिए और जब तक बन्द करने के लिए आदेश न दिया जाए, तब तक ग्रहण तथा सोखते रहिए।"

कुछ मिनट तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् भाग ३ के अनुसार करें।

भाग –३– सूर्य, वायु और पृथ्वी की प्राण ऊर्जा से चार्ज करना–

सूर्य, वायु एवं पृथ्वी की प्रकृति-आत्माओं (nature spirits) और फ़रिश्तों (देवदूतों) (angels) से रत्न की ओर देखते हुए निम्न निवेदन मानसिक या मौखिक रूप से तीन बार करिए :

"हे सूर्य, वायु एवम् पृथ्वी की प्रकृति-आत्माओ और फ़रिश्तो, मैं आपको इस रत्न/ इन रत्नों को सूर्य-प्राण, वायु-प्राण तथा पृथ्वी-प्राण से चार्ज करने के लिए धन्यवाद देता हूँ। कृपया केवल स्वच्छ और स्वस्थ ऊर्जा से ही चार्ज कीजिए। धन्यवाद सहित एवम् पूर्ण विश्वास से।"

तत्पश्चात् रत्न/रत्नों की ओर देखते मानसिक या मौखिक रूप से तीन बार निदेश दीजिए :

"अभी इसी समय से सूर्य, वायु और पृथ्वी से ऊर्जा ग्रहण कीजिए और सोखिए। केवल स्वच्छ और स्वस्थ प्राण-ऊर्जा ही ग्रहण कीजिए। जब तक पुनः निदेशित नहीं किया जाता, तब तक ऊर्जा ग्रहण करते और सोखते रहिए।"

कुछ मिनट तक प्रतीक्षा करने के पश्चात भाग ४ के अनुसार करें।

भाग ४– स्वतः पुनः चार्ज करना–

लेसर रत्न के अलावा अन्य रत्नों का स्वयमेव ही पुनः चार्ज होता रहे, इसके लिए उसकी/उनकी ओर देखते हुए, निम्न निदेश मानसिक या मौखिक रूप से तीन बार दीजिए :

"जब आपका उपचार में उपयोग हो रहा हो, तो स्वयमेव ही उपचारक गुरुओं, उपचारक फ़रिश्तों, प्रकाश के देवों और महान व्यक्तियों से प्राण–ऊर्जा ग्रहण कर लिया कीजिये। तदनुसार हो, तदनुसार हो, तदनुसार हो।"

लेसर रत्न के केस में निम्न निदेश दीजिए :

"उपचारों के दौरान, जब भी आप ऊर्जा का प्रेषण कर रहे हों, तो स्वयमेव ही उपचारक गुरुओं, उपचारक फ़रिश्तों, प्रकाश के देवों और महान व्यक्तियों से प्राण ऊर्जा ग्रहण कर लिया कीजिए। तदनुसार हो, तदनुसार हो, तदनुसार हो।"

(क) रत्नों को उचित तथा सटीक निर्देश देना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

(ख) यदि आप केवल वातावरण से ऊर्जा ग्रहण करने के लिए कहते हैं, तो वह वातावरण में उपस्थित व्यक्तियों/पशुओं/ पौधों आदि से भी प्राण–ऊर्जा ग्रहण कर सकता है। इससे आपको तथा उन सभी को स्वास्थ्य की समस्यायें हो सकती हैं।

(ग) निर्देश देते समय, किसी विशिष्ट गुरु का नाम मत लीजिए, जब तक आपने उन गुरु से आज्ञा न प्राप्त कर ली हो। गुरु का नाम लेना नीति–शास्त्र के विरुद्ध है।

(घ) रत्न की स्वच्छता बनाये रखना महत्वपूर्ण एवम् आवश्यक है। यदि वह स्वच्छ रहेगा, तो उचित रूप से काम करेगा एवम् उपचार में सकारात्मक सहायक होगा। इसके अतिरिक्त स्वच्छ होने पर स्वयमेव चार्ज करता रहेगा।

भाग–५– कृतज्ञता ज्ञापन करना

पवित्रीकृत करने के पश्चात, धन्यवाद देना महत्वूपर्ण चरण है।

रत्न/रत्नों की ओर देखते हुए मौखिक या मानसिक रूप से तीन-तीन बार उच्चारण करते जाइए :

"हे सर्वशक्तिमान प्रभु, मैं आपको आशीर्वाद के लिए पुनः धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

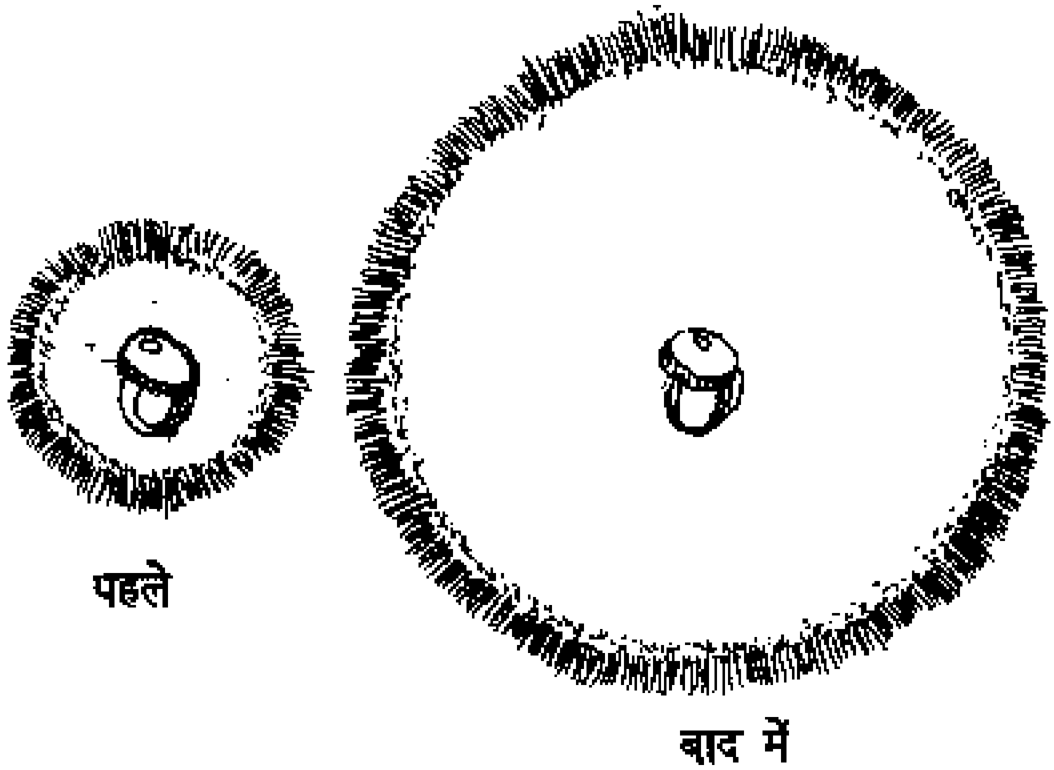

पवित्रीकरण से पहले और बाद में अंगूठी

चित्र ५.१३

रत्नों सहित पवित्रीकृत अंगूठीयों
को पहनने से उपचार शक्ति
का तुरन्त बढ़ जाना

चित्र ५.१४

"हे आध्यात्मिक गुरुओ, उपचारक देवदूतो, प्रकाश के देवो और सभी बड़े व्यक्तियो, मैं आपको दिव्य आशीर्वाद के लिए पुनः धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

"हे सूर्य, वायु एवम् पृथ्वी की प्रकृति–आत्माओ और फ़रिश्तो, मैं आपको दिव्य आशीर्वाद के लिए पुनः धन्यवाद देता हूँ। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

भाग–६– पवित्रीकरण के अन्त में

रत्न/रत्नों की ओर देखते हुए उसे/उन्हें तीन बार मौखिक या मानसिक रूप से निर्देशित करें :

"अब और ऊर्जा का ग्रहण करना और शोषण बन्द करिए। तदनुसार हो।"

फिर रत्न/रत्नों की ऊर्जा का स्थिरीकरण करिए, IB से सील करिए और वायवी डोर को वायवी विधि से काटिए।

(घ) पवित्रीकृत रत्नों के विषय में सावधानियाँ और ज्ञातव्य बातें–

(१) सिल्क ऊर्जा की कुचालक होती है, अतएव जब रत्न का उपयोग न किया जा रहा हो, तब उसे सिल्क के कपड़े में लपेट कर रखिए।

(२) चूंकि उपचार के दौरान एवम् उपचारक के हाथों द्वारा रत्न संक्रमित होता रहता है, अतएव उसको नियमित तौर पर स्वच्छ करते रहना चाहिए। प्रत्येक उपचार के बाद नमक के घोल तथा eV से स्वच्छ करना चाहिए।

(३) प्राण-शक्ति उपचार में रत्न की ऊर्जा घट जाती है अथवा समाप्त हो जाती है, अतएव उसका दो-तीन रोगियों के उपचार के पश्चात् पुनः चार्ज करना जरूरी है, यदि उसका पवित्रीकरण नहीं हुआ है तो।

(४) यदि लम्बे समय तक रत्न रखा हुआ हो, तब भी प्रत्येक दशा में (अर्थात् पवित्रीकृत किये जाने की दशा में भी) उसको पुनः चार्ज करना जरूरी है।

(५) पवित्रीकरण करने के पश्चात् रत्न की शक्ति काफी बढ़ जाती है, क्योंकि वह दिव्य उपचारक ऊर्जा से चार्ज हुआ होता है। चक्रों पर सक्रियता का प्रभाव उपचारक के आध्यात्मिक विकास एवम् कुशलता के अनुसार तीस से पचास प्रतिशत बढ़ जाता है।

(६) रत्न का पवित्रीकरण कभी-कभी ही किया जाता है। उसको एक या दो साल बाद दोहराया जा सकता है।

(७) पवित्रीकरण करने के पश्चात् उसको नियमित तौर पर मात्र स्वच्छ करते रहना होता है।

(८) पवित्रीकरण द्वारा ऊर्जा का बढ़ जाना चित्र संख्या ५.१३ तथा उपचार शक्ति का बढ़ जाना चित्र ५.१४ में दृश्यीकृत किया गया है।

रत्नों द्वारा प्राण–शक्ति उपचार
Crystal Pranic Healing

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१	रत्नों द्वारा उपचार के सिद्धान्त, नियम व कार्य प्रणाली	५.४६४
२	उपचारक की योग्यता	५.४६७
३	उपचार में काम आने वाले रत्न	५.४६८
४	उपचार के उपयोग में आने वाले रत्नों के दो प्रकार– Two types of Crystals used in Healing	५.४६९
५	लेसर रत्न से सामान्य झाड़–बुहार करना– General Sweeping with a Laser Crystal	५.४७४
६	लेसर रत्न से स्थानीय झाड़–बुहार करना– Localised Sweeping with a Laser Crystal	५.४७४
७	लेसर रत्न से ऊर्जित करना– Energisation with the use of a Laser Crystal	५.४८०
८	स्थिरीकरण करना तथा वायवी डोर काटना– Stabilisation and Cutting the Etheric Cord	५.४८१
९	लेसर रत्न के उपयोग द्वारा रंगीन ऊर्जा कैसे प्रेषित करें– How to project Colour Pranas using Laser Crystal	५.४८१
१०	उपचार की कार्यप्रणाली – Healing Procedure	५.४८२

११ विशिष्ट उपचार विधि– वितरणशील झाड़ बुहार–
Special Healing Technique–Distributive Sweeping ५.४८८

१२ विशिष्ट उपचार विधि– रत्न को एक्सट्रैक्टर (extractor), अर्थात रोग ग्रस्त ऊर्जा आदि को बलपूर्वक निकालने के काम में प्रयोग – Using the Crystal as an Extractor ५.४८६

१३ विशिष्ट उपचार विधि–पवित्रीकृत रत्नों का समग्र उपयोग– Healing by the use of Conscreted Crystals ५.४६२

१४ रत्नों द्वारा उपचार में मुख्य सावधानियां ५.४६७

१५ रत्न/रत्नों द्वारा दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार–
Crystal Distant Pranic Healing ५.४६७

रत्नों द्वारा प्राण–शक्ति उपचार
Crystal Pranic Healing

(१) रत्नों द्वारा उपचार के सिद्धान्त, नियम व कार्यप्रणाली–
Principles and Procedures

इसमें अभी तक वर्णित सिद्धान्त, नियम, कार्यशैली, सामान्यतः लागू होते हैं जो सहज सन्दर्भ के लिए नीचे वर्णित है।

क्रम	विषय	अध्याय	क्रम संख्या
१	उपयोग के सिद्धान्त	१	सभी
२	उपयोग	२	१ से ७ तक, १०, १२, १३
३	सामान्य	४	१
४	हाथ व उंगलियों के ऊर्जा चक्र	४	२
५	उपचार करने के लिए स्थान	४	३
६	रोगी की उपचार ग्राह्यता सुनिश्चित करना	४	४
७	प्राणशक्ति उपचारक के लिए निर्देश	४	५ (क) से (च) तक
८	झाड़ बुहार– रत्न के द्वारा झाड़–बुहार करने की कार्यप्रणाली आगे क्रम ५ व ६ में दी गई है, किन्तु मूलतः इसमें अध्याय ४ में वर्णित धारणा लागू होती है।	४	५ (छ)
९	ऊर्जन करना–रत्न के द्वारा ऊर्जन	४	५ (ज)

क्रम	विषय	अध्याय	क्रम संख्या
	करने की कार्य प्रणाली आगे क्रम ७, ८ व ९ में दी गई है, परन्तु मूलतः इसमें अध्याय ४ में वर्णित धारणा लागू होती है। **महत्वपूर्ण– आज्ञा चक्र का ऊर्जन रत्न द्वारा कभी न करें, इससे रोगी की आंख को क्षति पहुंच सकती है।**		
१०	उपचारक को विविध निर्देश	४	५ (झ) से (ढ) तक, (त) से (द) तक, (प) से (ब) तक, (म) से (व) तक
११	रत्न द्वारा ऊर्जन न करना– शिशुओं, बच्चों, बहुत कमजोर और बड़े बूढ़े रोगियों का उपचार ऊर्जन रत्न द्वारा न करें। यह अति महत्वपूर्ण है, अन्यथा विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। आवश्यक्तानुसार साधारण/उन्नत प्राणशक्ति उपचार ही करें।	४	५ (ण) (ध), (न)
१२	बिना जांच किये उपचार– यह रत्न द्वारा न करें, क्योंकि रत्न द्वारा उपचार से तीव्र प्रभाव पड़ता है, अतः यह खतरनाक हो सकता है।	४	६

क्रम	विषय	अध्याय	क्रम संख्या
१३	आध्यात्मिक व्यक्तियों का उपचार	४	७
१४	उपचार कितने अंतराल पर किया जाए	४	१०
१५	उपचार की सम्पूर्ण या समग्र दृष्टि	४	११
१६	प्राणशक्ति उपचार में इच्छाशक्ति कैसे करें	४	१२
१७	पूर्णोपचार के समय के नियम और कितना समय लगता है	४	१३, १४
१८	दर्द या रोग के लक्षण दुबारा जल्दी उभर आना	४	१५
१९	कुछ रोगियों के ठीक नहीं होने कारण	४	१६
२०	व्यक्तिगत समस्यायें जो उपचारक को हो सकती हैं	४	१७
२१	जीव द्रव्य के कम्पन की दर	४	१८
२२	प्राणशक्ति उपचार का उपचारक पर प्रभाव	४	१९
२३	प्राणशक्ति श्वसन पद्धति	५	२
२४	उंगलियों द्वारा जांच करना	५	७ (१) व (२)
२५	स्व–प्राणशक्ति उपचार	६	स्व विवेक से
२६	दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार	७	सभी
२७	रंगीन प्राणशक्ति ऊर्जा	८	१ से २२ तक

क्रम	विषय	अध्याय	क्रम संख्या
२८	चिन्ह	६	१
२६	उन्नतशील उपचार की तकनीकें	६	२
३०	अनिश्चित दशा में कौन सी ऊर्जा प्रयोग करें	६	५
३१	विविध	६	७ से १२ तक
३२	विविध शारीरिक तंत्रों का उपचार– उदाहरण	१० से २२ तक	सभी
३३	मनो/मनोवैज्ञानिक रोगों का उपचार	२३ तथा २४	सभी
३४	प्राणिक लेसर उपचार	२७	

रत्न द्वारा उपचार करने में झाड़ बुहार तथा ऊर्जन की विशिष्ट विधियां हैं, जो इस अध्याय में वर्णित है।

(२) उपचारक की योग्यता

उपचारक को उन्नत एवम् रंगीन प्राणों द्वारा प्राणशक्ति उपचार तथा मनो/मनोवैज्ञानिक उपचार में पूर्ण नहीं तो, कम से कम अर्धदक्ष एवम् समुचित अनुभव तो होना अत्यन्त आवश्यक है। रत्न द्वारा उपचार में रत्न एक शक्तिशाली संयंत्र का कार्य करता है, इसलिए उसके द्वारा उपचार में जरा सी भूल हो जाने के फलस्वरूप गंभीर गड़बड़ी अथवा रोगी के ऊपर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

उपचारक को द्वि-हृदय पर ध्यान-चिन्तन नियमित रूप से करना चाहिए। यह आवश्यक है।

रत्न द्वारा उपचार उपचारक को पहले सामान्य केसों से प्रारम्भ करना चाहिए, तदुपरान्त थोड़ी दक्षता और बढ़ जाने और आत्म विश्वास हो जाने के पश्चात गम्भीर रोगों का उपचार करना चाहिए।

(३) उपचार में काम आने वाले रत्न

साधारणतः निम्न रत्न उपचार में काम में लिए जाते हैं। इनका वर्णन अध्याय २८ में भी किया गया है।

उपक्रम संख्या	उपचार के लिए रत्न, जिनका उपयोग सामान्य तौर पर किया जाता है	किस प्राण ऊर्जा का द्योतक है	इस अध्याय तथा अध्याय ३१ में किस चिन्ह से उद्बोधित है	किस तकनीक से ऊर्जा ग्रहण–प्रेषण की जाती है
१	स्वच्छ पारदर्शी स्फटिक मणि– चक्र सक्रियक– (Clear, transparent Quartz Chakral Activator)	सफेद	QCA	प्रारम्भिक (H-H)
२	स्वच्छ पारदर्शी स्फटिक मणि– लेसर रत्न (Clear transparent Quartz Laser Crystal)	सफेद	QLC	(१) (H – H) (२) वातावरण से सीधा–उंगलियों में पकड़कर
३	उक्त दोनों प्रकार में से कोई सा भी रत्न	सफेद	QC	
४	हरा टूरमैलीन (Green Tourmaline) –यदि यह उपलब्ध न हो, तो पन्ना (Emarld)	हरा	हरा रत्न	
५	एमीथिस्ट (Amethyst)	बैंगनी	बैंगनी रत्न	
६	गुलाब–स्फटिक मणि (Rose Quartz)	गुलाबी	गुलाबी रत्न	

(४) उपचार के उपयोग में आने वाले रत्नों के दो प्रकार– **Two types of Crystals used in Healing**

(क) चक्र सक्रियक के तौर पर– As Chakral Activator

अध्याय २८ के क्रम संख्या २ (ग) में इसका वर्णन किया है, इसका सन्दर्भ वहां से ग्रहण करिए। यह उपचारक के शरीर की ऊर्जा का स्तर बढ़ाने के काम आता है। इस उद्देश्य के लिए इसको उपचारक अपने हाथ चक्र पर रखता है। सामान्यतः यह स्वच्छ पारदर्शी स्फटिक मणि का होता है, किन्तु विशेष परिस्थिति में यह अन्य उपचार के काम में आने वाले अन्य रंगीन रत्नों का भी हो सकता है।

(ख) लेसर रत्न– As Laser Crystal

यह स्वच्छ पारदर्शी स्फटिक मणि का है। वास्तव में यह लेसर नहीं है, किन्तु यह लम्बा पतले स्फटिक मणि के रत्न होने के कारण इस नाम से सम्बोधित कर दिया है, क्योंकि इसके नोकदार सिरा होता है। किसी लेसर रत्न में दोनों तरफ नोकदार सिरे होते हैं। इसके द्वारा जो प्राण–ऊर्जा बाहर निकलती है, वह केन्द्रित अर्थात इकट्ठी होकर निकलती है।

इसका उपयोग स्वच्छीकरण एवम् ऊर्जीकरण– दोनों प्रकार से हो सकता है। जब इसका उपयोग स्वच्छ करने के लिए किया जाता है तो जिस प्रकार एक उच्च दबाव वाले पानी से फर्श धोया जाता है, उस प्रकार का प्रभाव होता है। लेसर से इकट्ठी केन्द्रित होकर ऊर्जा स्वच्छीकरण को अधिक प्रभावी बनाती है। लेसर रत्न जहां तक सम्भव हो, साढ़े पांच इंच लम्बा होना चाहिए ताकि हैण्डिल करने में सुगम हो और उपचारक को कम से कम संक्रमण हो। इसका यह भी तात्पर्य नहीं है कि कम लम्बे लेसर रत्न को इस्तेमाल नहीं किया जा सकता है। इसको चित्र ५.१५ में दिखाया गया है।

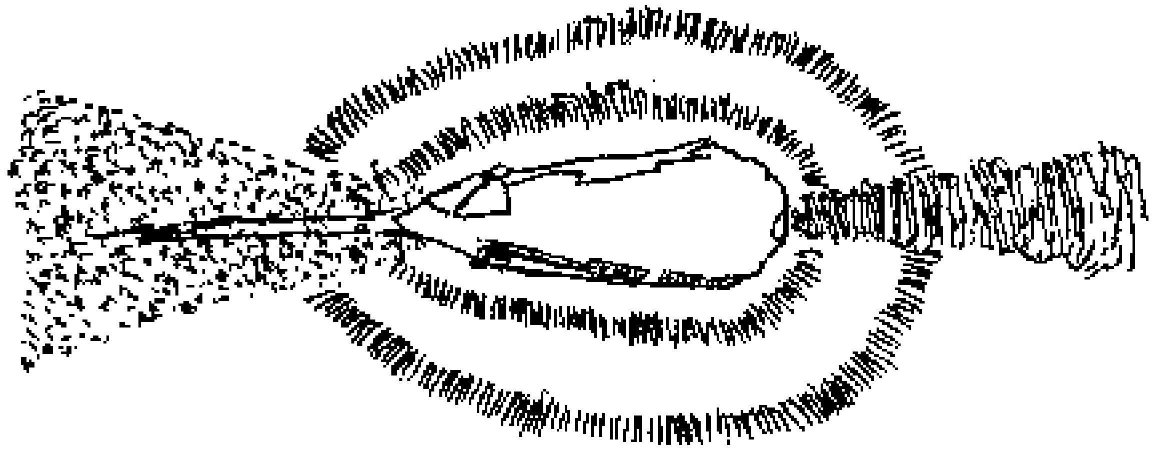

लेसर रत्न LASER CRYSTAL

चित्र ५.१५

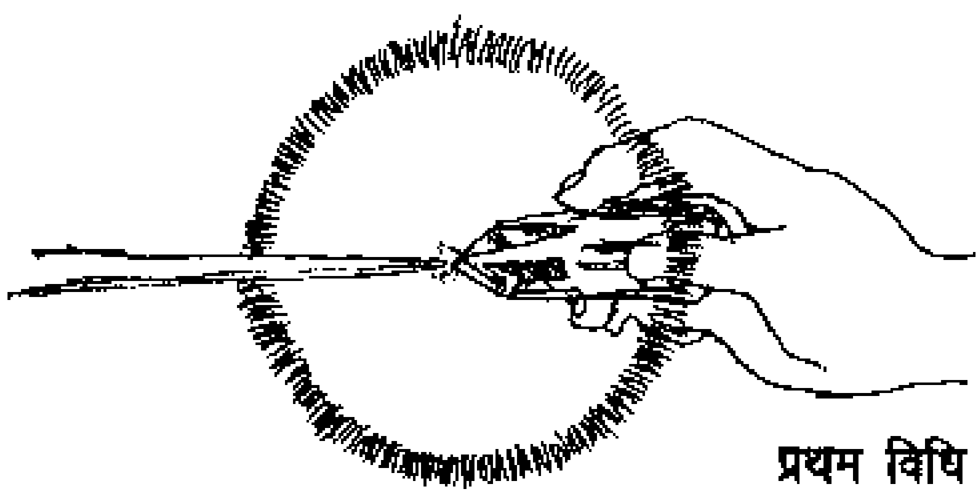

प्रथम विधि

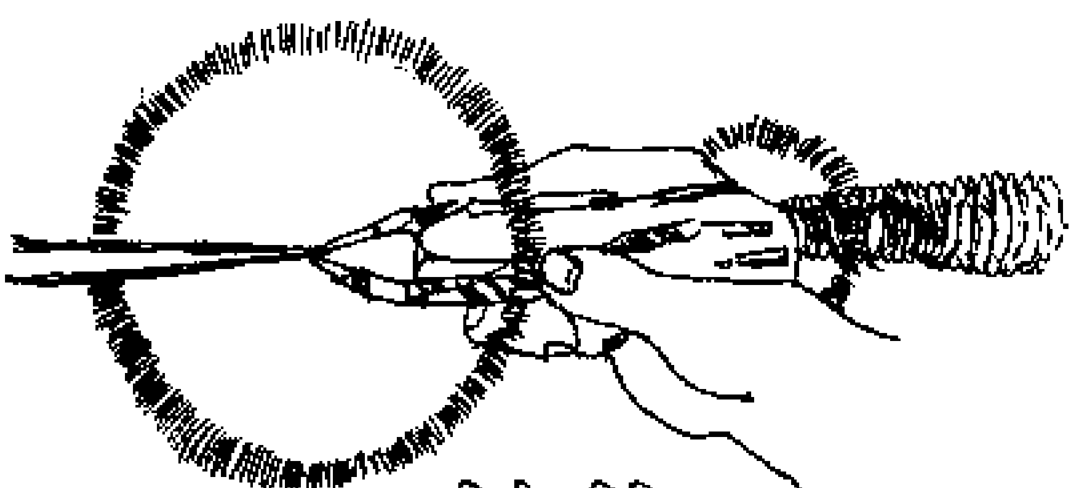

द्वितीय विधि

लेसर रत्न को पकड़ने की दो विधियां

TWO WAYS OF HOLDING A LASER CRYSTAL

चित्र ५.१६

(ग) लेसर रत्न को कैसे पकड़ें-- How to hold a Laser Crystal

इसकी दो विधियां हैं :--

(१) प्रथम विधि-- लेसर रत्न को अंगूठे, तर्जनी उंगली और मध्यमा उंगली के मध्य में इस प्रकार पकड़ें कि उसका ऊर्जा ग्रहण करने का सिरा (लगभग गोल या नोकदार सिरा) हथेली के अन्दर रहे। इस विधि में प्रेषण ऊर्जा हाथ—चक्र एवम् उंगली के चक्रों द्वारा प्रेषित होती है। इसी को H -- H विधि कह दिया गया है, क्योंकि वातावरण से ऊर्जा दूसरे H द्वारा प्राप्त होगी तथा जिस हाथ में लेसर रत्न पकड़ा हुआ है, उसके द्वारा प्रेषित होगी।

(२) द्वितीय विधि— लेसर रत्न को अंगूठे, तर्जनी उंगली और मध्यमा उंगली के मध्य में इस प्रकार पकड़ें कि उसका ऊर्जा ग्रहण करने का सिरा हथेली के बाहर रहे। इस विधि में वातावरण से अथवा अन्य स्रोतों से ऊर्जा सीधे ऊर्जा ग्रहण करने वाले सिरे में प्राप्त होकर, नोंक वाले सिरे से प्रेषण होगी। यदि आपने रत्न को पवित्रीकृत किया हुआ है और अध्याय २६ के क्रम (ग) के अन्तर्गत उपक्रम (२) भाग ४ में वर्णित लेसर रत्न को उपचार के दौरान स्वयमेव ही उपचारक गुरुओं, उपचारक फरिश्तों, प्रकाश के देवों और महान व्यक्तियों से प्राण ऊर्जा ग्रहण निर्देश दिये हुए हैं, तो वे स्वयमेव ही अपने को इन स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा से पुनः चार्ज करते रहेंगे।

उपरोक्त दोनों विधियों को चित्र ५.१६ में दिखाया गया है।

(घ) **ग्रहण करने वाले हाथ में चक्र सक्रियक (CA) एवम् प्रेषण करने वाले हाथ में लेसर रत्न (LC) लेकर उपचार करना— Healing by taking Chakral Activator on the Receiving Hand and Laser Crystal on the Projecting Hand.**

बजाय प्रेषण करने वाले हाथ द्वारा झाड़-बुहार तथा ऊर्जन करने के, आप LC का उपयोग कर सकते हैं। इससे रोग ग्रस्त ऊर्जा से संक्रमण काफी कम हो जायेगा।

किसी रोगी का उपचार करते समय, CA को ग्रहण करने वाले हाथ *पर रखिये और LC को दूसरे हाथ** पर रखिए, जैसा कि चित्र ५.१७ में दृश्यत है। CA, LC से ज्यादा बड़ा और ज्यादा भारी होना चाहिए किन्तु यह अत्यावश्यक नही है। आम तौर पर CA ऊपर से देखने पर वृत्ताकार (circular) अथवा अनेक समभुजाओं (polygon) वाला होता है। CA एवम LC के उपयोग से आपकी उपचार करने की शक्ति बढ़ जाएगी। स्वच्छीकरण प्रक्रिया तेज होगी और एक रोगी को एक सत्र में कम समय लगेगा।

प्राण ऊर्जा को प्रेषित करते समय, उपचारक सफेद ऊर्जा को दृश्यीकृत करके अथवा कुछ भी दृश्यीकृत न करके सफेद ऊर्जा को प्रेषित कर सकता है और रंगीन ऊर्जा को दृश्यीकृत करके रंगीन ऊर्जा प्रेषित कर सकता है।

उपचार के पश्चात् LC को अच्छी तरह साफ करना चाहिए, जिसकी विधि अध्याय २६ में दी है। इससे उपचारक तथा अगले रोगी को पिछले रोगी की रोगग्रस्त ऊर्जा द्वारा संक्रमण नहीं होगा। उपचार करने के अन्तराल में भी इसको साफ किया जा सकता है।

---

* यदि किसी रत्न में एक नोकदार सिरा है (single terminator) है , तो नोंक वाले सिरे को अपने शरीर की ओर करके रखिए। यदि दोनों ओर नोक (double terminator) हैं तो उसको CA के तौर पर इस्तेमाल न करिए।

** उपक्रम (ग) में बताए अनुसार पकड़िये।

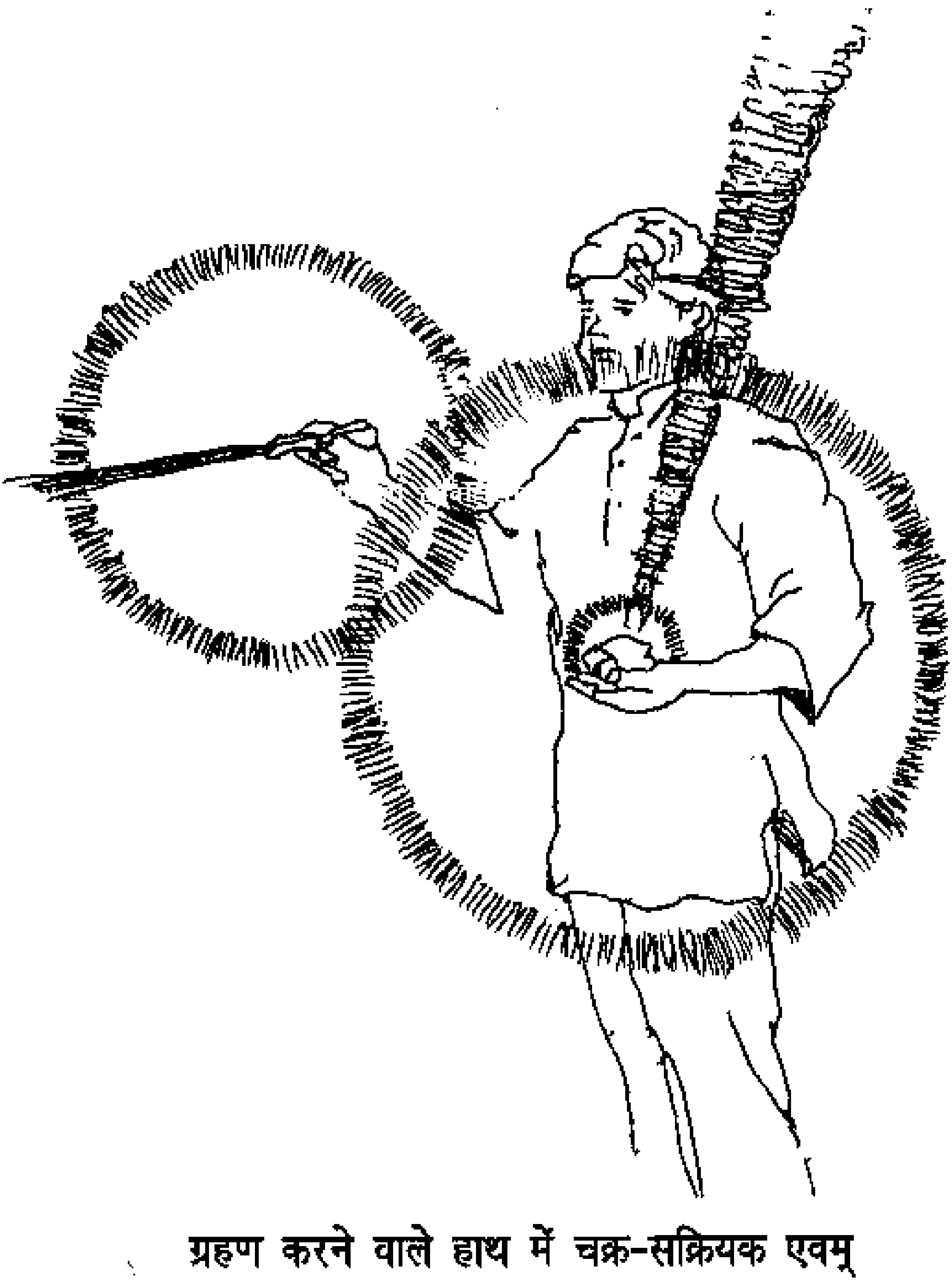

ग्रहण करने वाले हाथ में चक्र-सक्रियक एवम्
और प्रेषण करने वाले हाथ में लेसर रत्न
का उपयोग करते हुए

चित्र ५.१७

(५) **लेसर रत्न से सामान्य झाड़-बुहार करना– General Sweeping with a Laser Crystal**

इसकी विधि प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार के समान है।

(क) चित्र ५.१७ के अनुसार एक बड़ा CA और LC हाथों में रखिए।

(ख) चित्र ५.१८ में पहली लाइन के सहारे ऊपर से नीचे सीधे लाइन में अथवा थोड़े से सर्पाकार लाइन में LC को धीरे-धीरे लाइए। इस झाड़-बुहार में इच्छाशक्ति करिए कि आप रोगी के शरीर से इस्तेमाल की हुए एवम् रोगग्रस्त ऊर्जा बाहर निकाल रहे हैं। तत्पश्चात् LC को नमक के घोल वाले बर्तन की ओर झटकिए तथा इच्छाशक्ति कीजिए कि रोगग्रस्त ऊर्जा उस बर्तन की ओर फैंकी जा रही है जो नमक के घोल में जाकर नष्ट हो रही है। तात्पर्य यह है कि जो विधि आपने प्रारम्भिक प्राण-शक्ति उपचार में अपनायी थी, वही यहां करनी है।

(ग) उक्त विधि को दाएं तथा बांए ओर की दूसरी लाइन पर करिए, तत्पश्चात् इसी प्रकार तीसरी, चौथी और पांचवी लाइन पर।

(घ) पांचों लाइनों पर शरीर के सामने से जैसे आपने (ख) और (ग) में किया, वैसा ही शरीर के पीछे से करिए।

(ङ) शरीर के आगे तथा पीछे दोनों ओर से झाड़-बुहार का करना इस अध्याय तथा अध्याय ३१ में GS द्वारा सम्बोधित किया गया है।

(च) सीधे लाइन में LC को लाने के तुलना में थोड़े से लहरदार (slightly zigzag) लाइन में लाने से स्वच्छीकरण ज्यादा प्रभावी होता है।

(छ) चूंकि झाड़-बुहार आप कर रहे हैं, न कि LC (वह तो आपके हाथ में मात्र एक संयत्र है), इसलिए आप LC को किसी प्रकार के निर्देश न दें।

(६) **लेसर रत्न से स्थानीय झाड़-बुहार करना– Localized Sweeping with a Laser Crystal**

इसको छह विधियों से किया जा सकता है।

थोड़े से सर्पाकार नीचे की ओर

सीधे नीचे की ओर

सामान्य
झाड़-बुहार

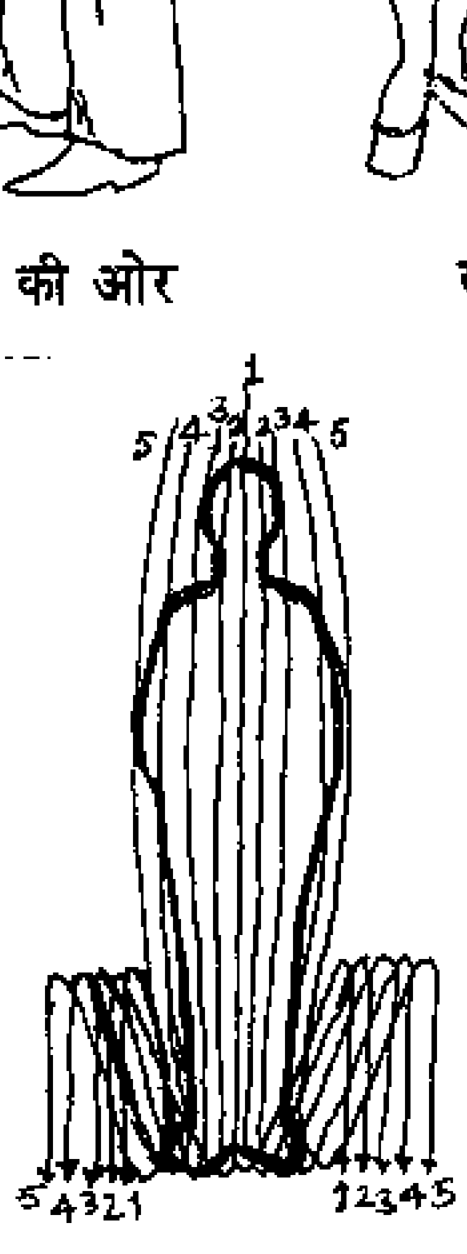

चित्र ५.१८

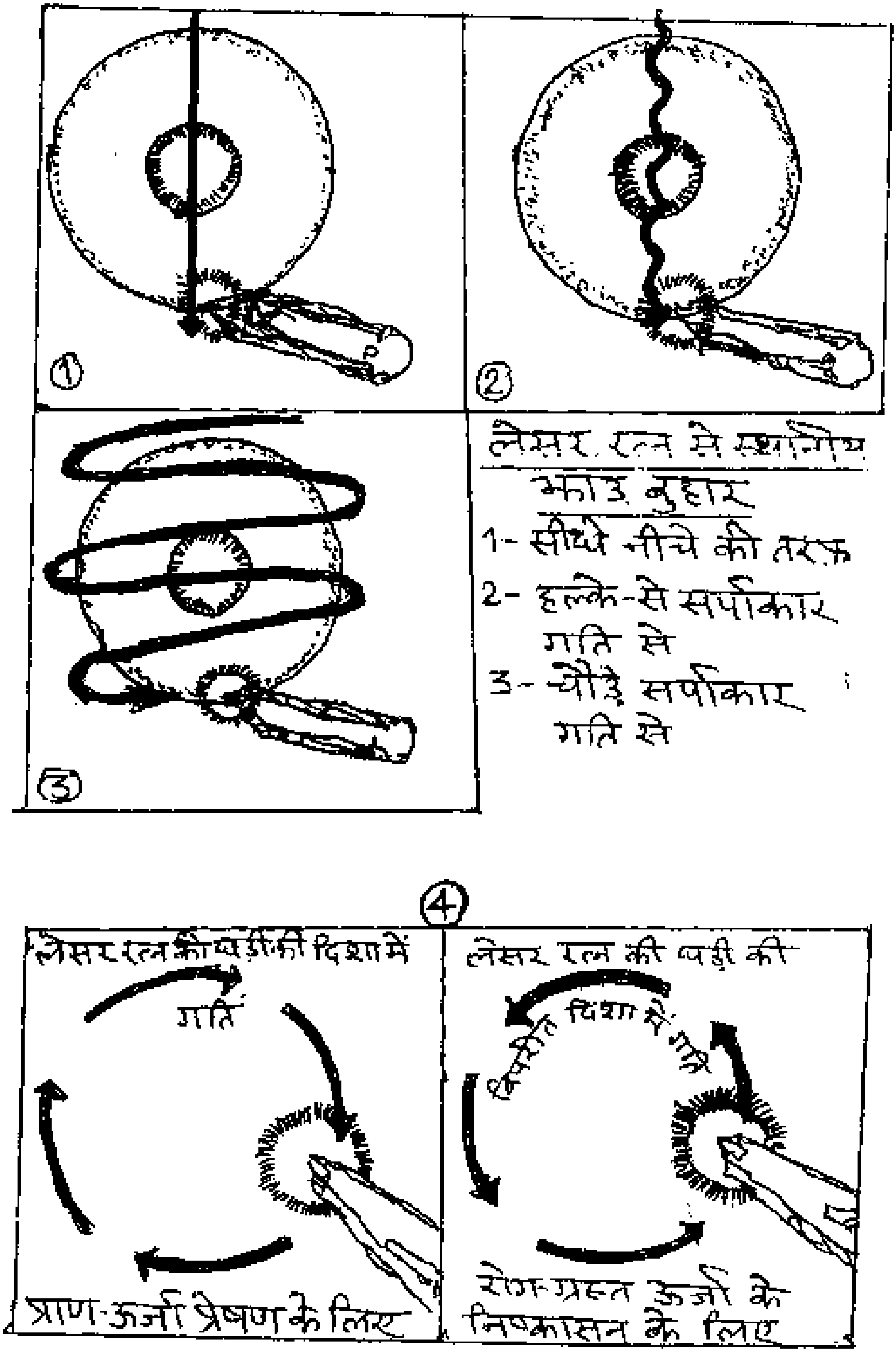
1
2
लेसर रत्न से स्थानीय झाड़ बुहार
1- सीधे नीचे की तरफ
2- हल्के-से सर्पाकार गति से
3- चौड़े सर्पाकार गति से
3
4
लेसर रत्न की घड़ी की दिशा में गति
प्राण-ऊर्जा प्रेषण के लिए
लेसर रत्न की घड़ी की विपरीत दिशा में गति
रोग-ग्रस्त ऊर्जा के निष्कासन के लिए

चित्र ५.१६

(क) पहली विधि

चक्र या AP पर पांच बार LC से ऊपर से नीचे की ओर सीधी लाइन में झाड़–बुहार करके नमक के घोल वाले बर्तन की ओर क्रम ५ (ख) के अनुसार झटकिए। इसको चित्र ५.१६ में नं 1 विधि से दर्शाया गया है।

(ख) दूसरी विधि

उक्त (क) के अनुसार, किन्तु सीधी लाइन के स्थान पर हल्के से सर्पाकार गति से करिए। इसको चित्र ५.१६ में नं 2 विधि से दर्शाया गया है। यह (क) से अधिक प्रभावी है।

(ग) तीसरी विधि

उक्त (क) के अनुसार, किन्तु सीधी लाइन के स्थान पर चौड़े सर्पाकार गति से करिए। इसको चित्र ५.१६ में नं 3 विधि से दर्शाया गया है। यह (ख) से अधिक प्रभावी है।

(घ) चौथी विधि

LC को चक्र या AP पर कुछ सैकिन्डों तक घड़ी की दिशा में घुमाइये। फिर उस चक्र या AP को स्वच्छीकृत करने के लिए कुछ सैकिन्डों तक घड़ी की उल्टी दिशा में घुमाइये। इस प्रक्रिया में हल्की सी इच्छाशक्ति उपयोग की हुई तथा रोगग्रस्त ऊर्जा को बाहर निकालने की कीजिए और रोगग्रस्त ऊर्जा को नमक के घोल में फैंक दीजिए।

यदि प्रभावित चक्र पर ज्यादा घनापन (congestion) है, तो LC को घड़ी की दिशा में घुमाने के तुलना में घड़ी की विपरीत दिशा में अधिक बार घुमाइए। मोटा-मोटा मार्गदर्शन के रूप में इसे इस प्रकार समझिए कि घड़ी की दिशा से घड़ी की विपरीत दिशा में दोगुने बार घुमाइये। यदि चक्र पर खालीपन (depletion) है, तो घड़ी की विपरीत दिशा से घड़ी की दिशा में दोगुने बार घुमाइए।

इस विधि को चित्र ५.१६ में नं 4 विधि से दर्शाया गया है।

(ङ) पांचवी विधि

यदि चक्र या प्रभावित भाग बहुत गंदा है, तो रोगग्रस्त ऊर्जा को LC से पंक्चर करिए। यह "रोगग्रस्त ऊर्जा के पंक्चर की तकनीक" (puncturing the diseased energy technique) कहलाती है। इसको इच्छाशक्ति द्वारा LC की नोक को उसके ओर रखकर, LC को आगे पीछे चलाकर किया जाता है, जैसे कि किसी का पंक्चर किया जाता है। इस प्रक्रिया को कई बार दोहराइये। इससे रोगग्रस्त ऊर्जा टूटेगी और ढीली पड़ेगी, जिससे स्वच्छता सुगमता हो सकेगी। इसके बाद LC से स्थानीय झाड़-बुहार करते हुए रोगग्रस्त ऊर्जा को नमक के घोल में फैंक दीजिए। इन दोनों प्रक्रियाओं, अर्थात पंक्चर करने और झाड़-बुहार को एक के बाद लगभग बीस या बीस से ज्यादा बार कीजिए।

नोट– इस तकनीक में, ज्यादा इच्छाशक्ति का उपयोग न कीजिए, अन्यथा जिस चक्र या प्रभावित अंग को आप साफ कर रहे हैं, वह क्षतिग्रस्त हो सकता है। केवल थोड़ी सी इच्छाशक्ति का प्रयोग कीजिए। यह अति महत्त्वपूर्ण है और इसे सदैव ध्यान में रखिए।

उक्त विधि चित्र ५.२० में दर्शायी गयी है।

(च) **छठी विधि**

बहुत ही अच्छी प्रकार से किसी बहुत गंदे ऊर्जा चक्र की सफाई करने के लिए, यह विधि अपनायी जाती है। चक्र को काल्पनिक तौर पर छह भागों में जैसा चित्र ५.२१ में प्रदर्शित है बांटा गया है: (१) ऊपरी दांया भाग (२) ऊपरी बांया भाग (३) नीचे का बांया भाग (४) नीचे का दांया भाग (५) चक्र का मध्य भाग और (६) चक्र का आन्तरिक भाग जिसमें चक्र के जड़ और तना (The root and the stem of the chakra) हैं।

प्रारम्भ करने के लिए LC द्वारा ऊपरी दांये भाग पर पांच बार स्थानीय झाड़-बुहार रोगग्रस्त ऊर्जा को निकालकर नष्ट करने के लिए कीजिए, फिर इसी प्रकार ऊपरी बांए भाग, नीचे के बांये भाग, नीचे के दांए भाग और मध्य

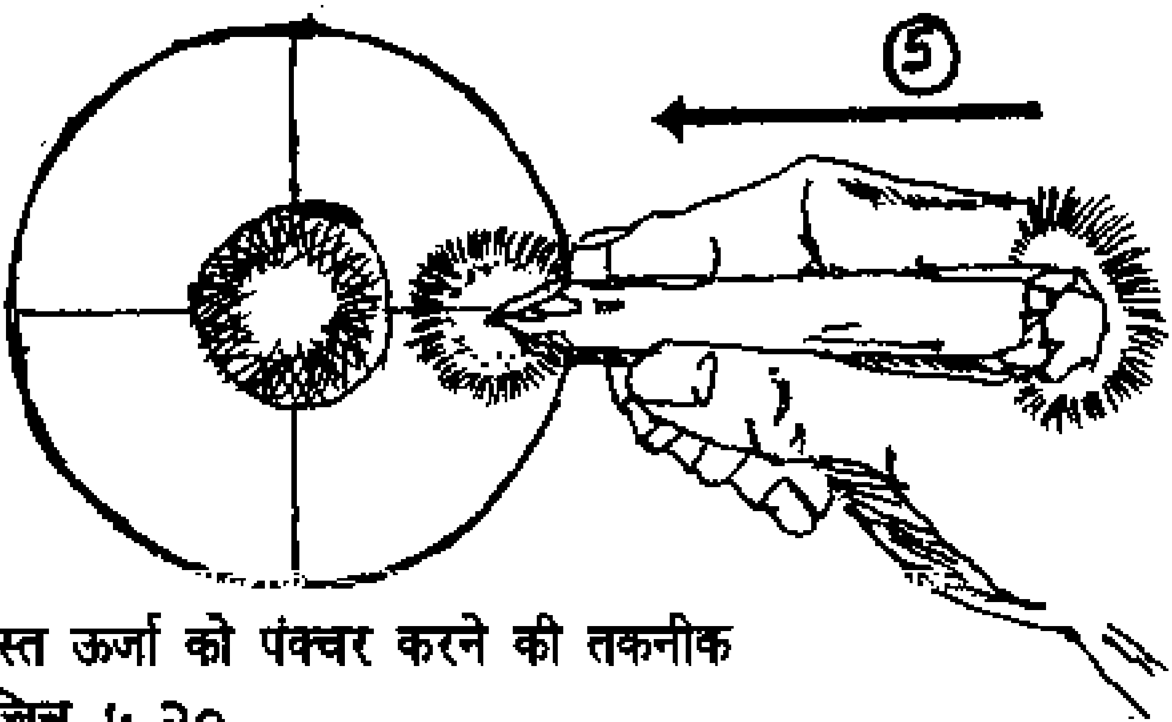

रोग ग्रस्त ऊर्जा को पंक्चर करने की तकनीक
चित्र ५.२०

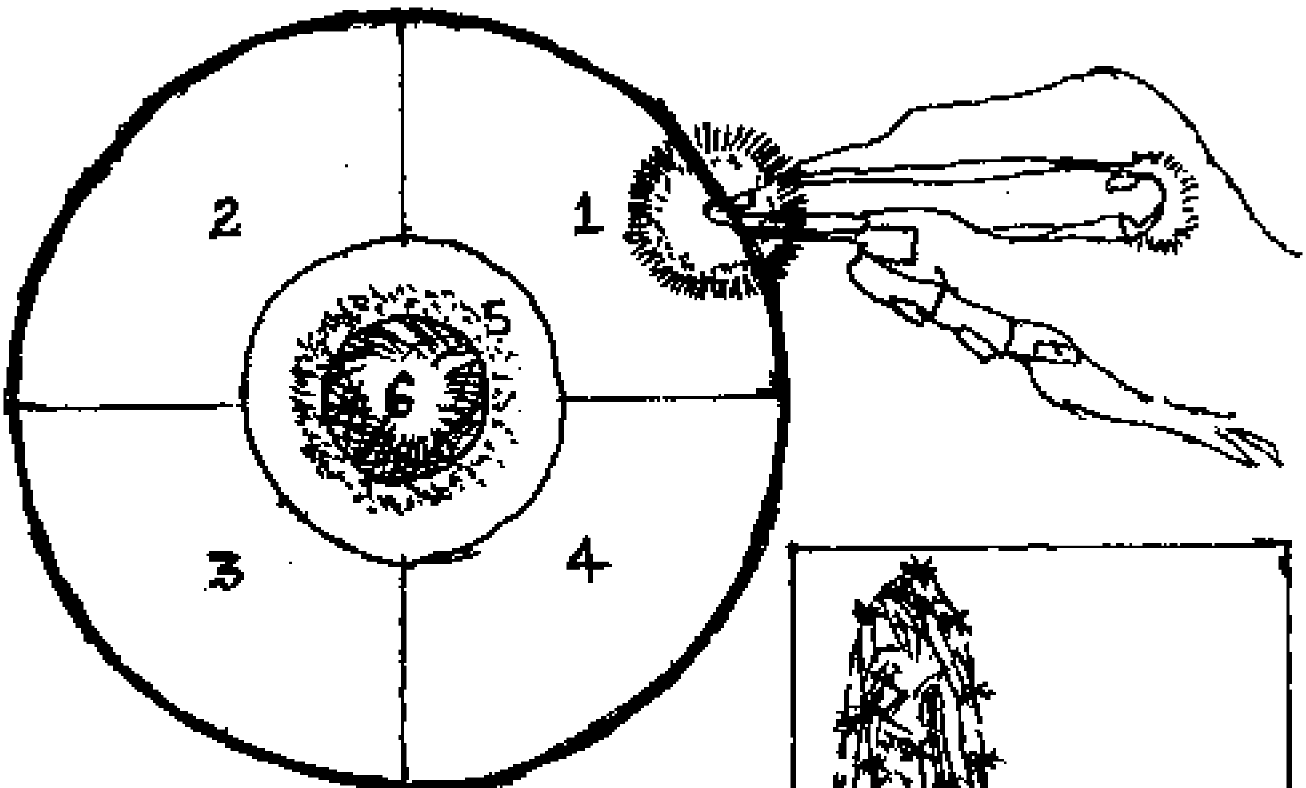

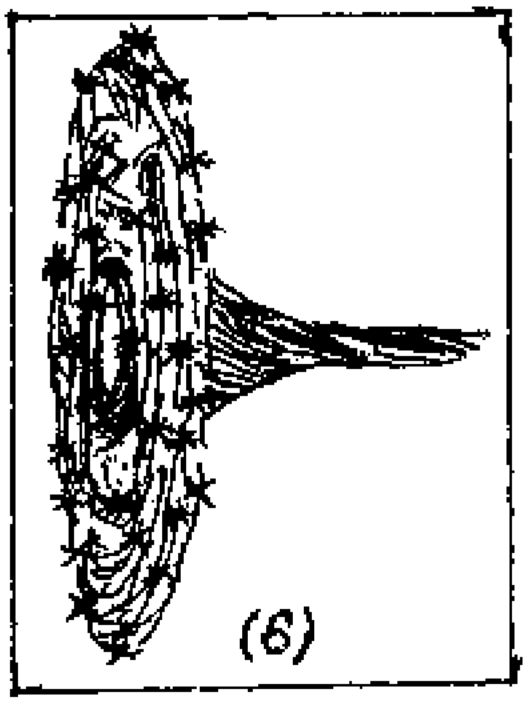

चक्र की छह भागों में
झाड़-बुहार की तकनीक

1. ऊपरी दांया भाग 2. ऊपरी बांया भाग
3. नीचे का बांया भाग 3. नीचे का दांया भाग
5. मध्य भाग 6. जड़ और तना

चित्र ५.२१

भाग पर कीजिए। तत्पश्चात् इन पाचों भागों पर इसको सात या इससे अधिक बार दोहराइए।

उसके बाद छठे भाग, अर्थात ऊड़ और तने पर यही प्रक्रिया सात या उससे अधिक बार करिए। इस तकनीक को "छह भागों वाली चक्र को स्वच्छीकरण करने की तकनीक (six-section chakral cleansing technique)" कहते हैं।

गम्भीर रोगों में कुछ चक्र बहुत ही अधिक गंदे होते हैं। इस विधि से आप शीघ्रतापूर्वक अच्छी प्रकार सफाई कर सकते हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण है।

कितनी बार C करना है, इसमें स्व–विवेक, अन्तर्ज्ञान (Intution) एवम् अनुभव के आधार पर इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

(७) लेसर रत्न से ऊर्जित करना– Energisation with the use of a Laser Crystal

(क) चित्र ५.१७ के अनुसार CA तथा LC लीजिए।

(ख) LC का नोंकदार सिरा चक्र या प्रभावित भाग की ओर करिए।

(ग) प्रारम्भिक ऊर्जन पद्धति के अनुसार ऊर्जन करिए, अर्थात् अपनी इच्छाशक्ति का उपयोग करते हुए CA के द्वारा प्राण ऊर्जा ग्रहण करते हुए, LC के द्वारा प्राण ऊर्जा को चक्र की ओर प्रेषित करिए। ऊर्जा को वाञ्छित निर्देश दीजिए एवम् यथासम्भव दृश्यीकृत कीजिए। बीच-बीच में LC द्वारा ग्रहण की हुई रोगग्रस्त ऊर्जा को नमक के घोल में झटककर नष्ट होने के लिए फेंकते रहिए।

(घ) यह कैसे जाना जाए, कि चक्र या प्रभावित भाग काफी ऊर्जित हो गया है या नहीं ? जब आप हाथ से ऊर्जित कर रहे होते हैं, तो प्राण ऊर्जा के प्रवाह के रुक जाने अथवा उसके वापस टकराकर लौटकर आने को आसानी से महसूस कर सकते हैं, किन्तु जब LC द्वारा ऊर्जित कर रहे होते हैं, तो कम संवेदनशीलता होती है। इसके लिए आपको संवेदन की चैतन्यता बढ़ानी होगी, या आप बीच-बीच में नियमित तौर पर हाथ

द्वारा जांच (scanning) कर सकते हैं, कि ऊर्जीकरण समुचित हो गया है या नहीं।

यदि रोगी की विपरीत प्रतिक्रिया हो, जैसे सिर दर्द आदि, तो यह सम्भवतः अधिक ऊर्जीकरण द्वारा होता है। ऐसी दशा में आप अधिक ऊर्जा को झाड़–बुहार कर बाहर निकाल दें।

LC को ऊर्जीकरण या झाड़ बुहार के समय कोई निदेश न दीजिए।

कितनी बार E करना है, इसमें स्व–विवेक, अन्तर्ज्ञान (Intution) एवम् अनुभव के आधार पर इसमें परिवर्तन किया जा सकता है।

(८) **स्थिरीकरण– Stabilization**

तथा वायवी डोर को काटना– Cutting the Etheric Cord

प्रारम्भिक उपचार में वर्णित विधि द्वारा स्थिरीकरण करते समय, हाथ अथवा LC को तीन बार स्थिरीकरण कहते हुए घड़ी की दिशा में तीन बार घुमाइए, तत्पश्चात् B या IB से उसे सील करने के लिए चित्रित (paint) करिए। फिर रोगी के सौर जालिका चक्र (6) से उपचारक के 6 के बीच बन गयी वायवी डोर को तलवार या कैंची, अथवा अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से काटिए।

(९) **लेसर रत्न के उपोग द्वारा रंगीन प्राण ऊर्जा कैसे प्रेषित करें –**
How to project colour pranas using Laser Crystal

(क) चित्र ५.१७ में दर्शायी विधि से CA तथा LC रखिए।

(ख) तालु से जीभ लगाइए।

(ग) उन्नत प्राण ऊर्जा – रंगीन प्राण ऊर्जा विषय सम्बन्धी अध्याय ८ व ९ में वर्णन का गहन अध्ययन करें। वांछित रंगीन प्राण ऊर्जा को ग्रहण करने के लिए सम्बन्धित मुख्य चक्र (1, 8 अथवा 11) पर ध्यान केन्द्रित करिए तथा साथ-साथ ही उन उंगलियों के पोरों पर जिनमें आपने LC पकड़ रखा है, पर भी ध्यान केन्द्रित कीजिए। यदि आप

चाहें, तो ऐच्छिक तौर पर LC वाले हाथ की हथेली के मध्य भाग पर भी ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं, किन्तु इसका करना आवश्यक नहीं है।

(घ) रंगीन प्राण प्रेषण की तीन विधियां 1 -- H, 8 -- H है तथा 11-- H हैं।

(१०) उपचार की कार्यप्रणाली– **Healing Procedure**

(क) CA तथा LC को स्वच्छीकृत, चार्ज करके तथा पवित्रीकृत करके तैयार रखें। निस्तारण इकाई (Disposal Unit) जैसे नमक का घोल, हरे आग का गोला आदि जैसा प्रारम्भिक उपचार पद्धति में बताया है, को भी तैयार रखे।

(ख) अधिक अच्छा होगा यदि आप जिस दिन उपचार करें, उपचार के पूर्व द्वि–ह्रदय पर ध्यान चिन्तन (देखिए अध्याय ३) करें।

(ग) उपचार के प्रारम्भ से अन्त तक चंदन की धूप या अगरबत्ती जलाये रखें।

(घ) अपने को शान्त रखिए।

(ङ) रोगी की उपचार–ग्राह्यता बढ़ाए।

(च) क्रम (९) में इंगित किए संकेतों के अनुसार पालन कीजिए।

(छ) उपचार से पूर्व, रोगी अपनी प्रार्थना करे अथवा निम्न प्रार्थना करे:

"हे सर्वशक्तिमान प्रभु,

मैं आपको दिव्य आशीर्वाद, दिव्य प्रेम और करुणा, दिव्य उपचार, दिव्य सहायता और सुरक्षा के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

(उक्त प्रार्थना को तीन बार दोहराएं, तत्पश्चात्)

हे आध्यात्मिक गुरुओ, आध्यात्मिक उच्चात्माओ, उपचारक गुरुओ, उपचारक देवदूतो, प्रकाश के देवो और महान व्यक्तियो,

मैं आपको दिव्य आशीर्वाद, दिव्य प्रेम और करुणा, दिव्य उपचार, दिव्य सहायता और सुरक्षा के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

(उक्त प्रार्थना को तीन बार दोहराएं)

(ज) उपचार से पूर्व, आप अपनी प्रार्थना करें, अथवा निम्न प्रार्थना करें :

"हे सर्वशक्तिमान प्रभु,

मैं आपको (रोगी का नाम लीजिए) के उपचार के लिए दिव्य आशीर्वाद, दिव्य प्रेम और करुणा, दिव्य सहायता और सुरक्षा के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

(उक्त प्रार्थना को तीन बार दोहराएं, तत्पश्चात्)

हे आध्यात्मिक गुरुओ, आध्यात्मिक उच्चात्माओ, उपचारक गुरुओ, उपचारक देवदूतो, प्रकाश के देवो और महान व्यक्तियो,

मैं आपको (रोगी का नाम लीजिए) के उपचार के लिए दिव्य आशीर्वाद, दिव्य प्रेम और करुणा, दिव्य सहायता और सुरक्षा के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

(उक्त प्रार्थना को तीन बार दोहराएं)

जब आप दिव्य आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करते हैं, तो आपके अन्दर दिव्य उपचारी ऊर्जा का प्रवाह होता है। उसका दिग्दर्शन चित्र ५.२२ में किया गया है।

(झ) प्राण-श्वसन विधि द्वारा अपना ऊर्जा स्तर बढ़ायें।

(ञ) अपनी जीभ को तालु से लगायें। अध्याय २८ में चित्र ५.०६ में जो रत्नों के धारण से शरीर के ऊपरी भागों एवम् ऊपरी चक्रों और शरीर के नीचे के भागों एवम् नीचे के चक्रों के बीच में जो ऊर्जा स्तर की असमानता है, वह इससे काफी कम हो जाती है और नीचे के भाग/चक्रों का ऊर्जा स्तर ऊपर के भाग/चक्रों के ऊर्जा स्तर के तुलना में थोड़ा सा ही अधिक रहता है, अतएव यह महत्वपूर्ण है।

इसका कारण यह है कि तालु से जीभ के लग जाने पर मैरिडियन्स का सर्किट पूरा हो जाता है, जिससे ऊर्जा के स्तरों के सिद्धान्त के आधार पर नीचे से ऊर्जा, ऊपर अधिक मात्रा में प्रवाहित होने लगती है।

(ट) अपने हाथों को संवेदनशील करें तथा आवश्यक्तानुसार हाथ और/अथवा उंगलियों से जांच करें।

(ठ) जांच के परिणामों का विश्लेषण करें।

(ड) आवश्यक्तानुसार CA / LC के उपयोग द्वारा GS, स्थानीय झाड़-बुहार, ऊर्जन करें, वितरणशील झाड़-बुहार, स्थिरीकरण, सील करें। (नोट— वितरणशील झाड़ बुहार का वर्णन आगे क्रम ११ में दिया है)

(ढ) विशिष्ट केसों में, उपचार के उपरान्त, सर्वशक्तिमान प्रभु से तीन बार मानसिक प्रार्थना करते हुए दिव्य ऊर्जा को ग्रहण करें तथा उससे रोगी के चारों ओर एक दिव्य सम्पुटिका (कैप्स्यूल) (Divine capsule) बनाकर उसके अन्दर रोगी को अवस्थित करें। तदुपरान्त प्रभु से तीन बार प्रार्थना करें कि उपचार होने तक इस रोगी (रोगी का नाम लीजिए) के निरन्तर देखभाल के लिए तथा उपचार में सहायता के लिए एक उपचारी गुरु और एक उपचारी देवदूत को नियुक्त कर दें।

(ण) रोगी के 6 तथा आपके 6 के मध्य की उपचार के दौरान स्वयमेव ही स्थापित हो गयी वायवी डोर को काटें।

(त) उपचार के अन्त में रोगी पुनः अपनी प्रार्थना करे अथवा निम्न प्रार्थना करे:

"हे सर्वशक्तिमान प्रभु,

मैं आपको पुनः दिव्य आशीर्वाद और दिव्य उपचार के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

इस प्रार्थना को तीन बार दोहराए, तत्पश्चात्

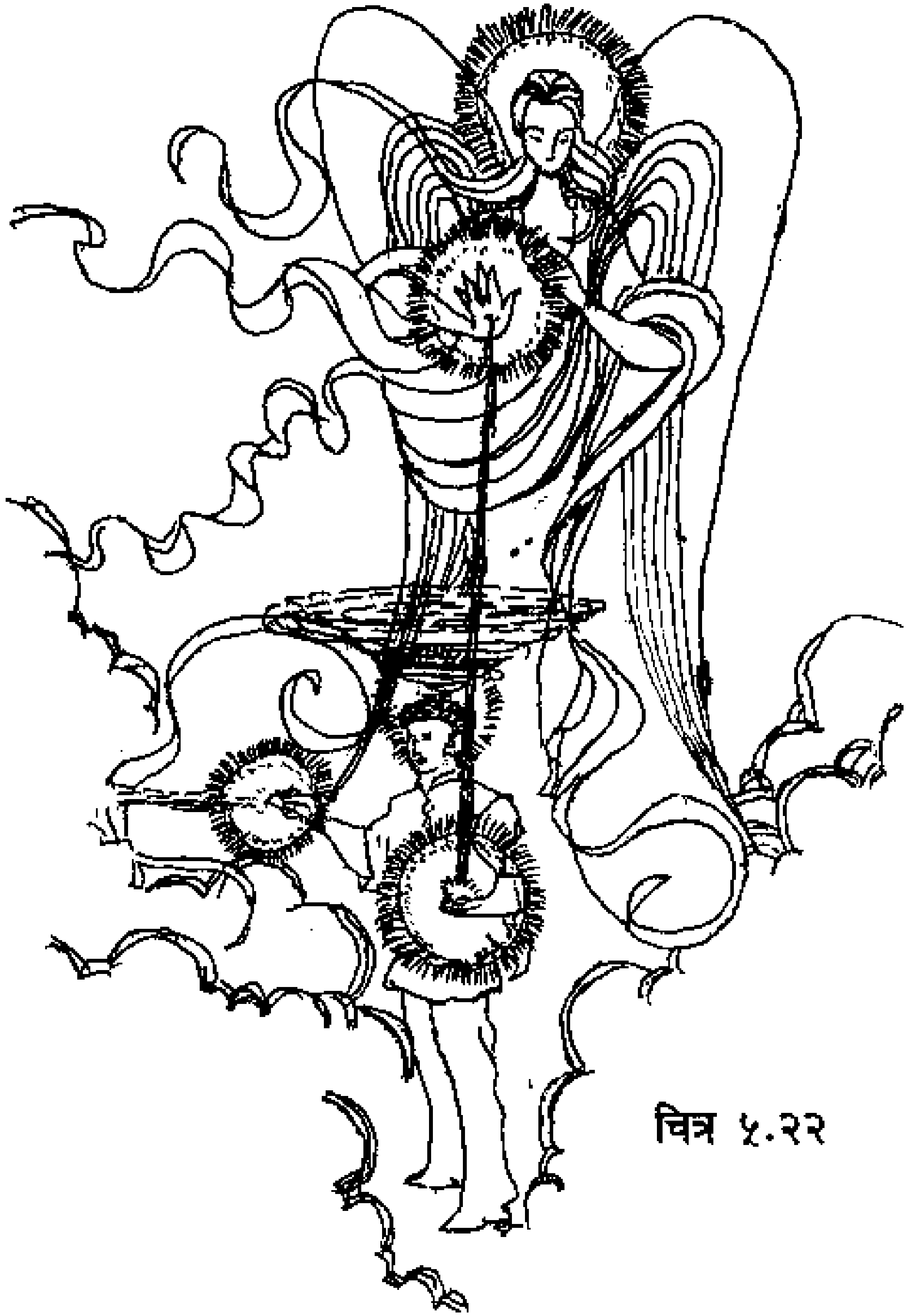

चित्र ५.२२

दिव्य आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करने पर
दिव्य उपचारक ऊर्जा रत्न के माध्यम से
उपचारक के शरीर में प्रवेश करते हुए

हे आध्यात्मिक गुरुओ, आध्यात्मिक उच्चात्माओ, उपचारक गुरुओ, उपचारक देवदूतो, प्रकाश के देवों और महान व्यक्तियो,

मैं आपको पुनः दिव्य आशीर्वाद और दिव्य उपचार के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

(थ) उपचार के अन्त में आप भी पुनः अपनी प्रार्थना करें अथवा निम्न प्रार्थना करे।

हे सर्वशक्तिमान प्रभु,

मैं आपको आशीर्वाद तथा (रोगी का नाम लीजिए) के उपचार के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

मैं आपको रोगी के उपचार होने तक उसके पास एक उपचारी गुरु और एक उपचारी देवदूत को नियुक्त करने के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

मैं आपसे विनम्रतापूर्वक यह भी प्रार्थना करता हूं कि जो भी मन, वचन तथा काय से मेरे द्वारा उपचार प्रक्रिया में गलती हो गई हो, उन्हें आप क्षमा कर दें तथा यह गल्तियां किसी प्रकार से रोगी को हानि न पहुंचाएं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

(उक्त प्रार्थना को तीन बार दोहराएं, तत्पश्चात्)

हे आध्यात्मिक गुरुओ, आध्यात्मिक उच्चात्माओ, उपचारक गुरुओ, उपचारक देवदूतो, प्रकाश के देवो और महान व्यक्तियो,

मैं आपको आशीर्वाद तथा (रोगी का नाम लीजिए) के उपचार के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद और पूर्ण विश्वास के साथ।"

(उक्त प्रार्थना को तीन बार दोहराएं)

(द) रत्नों को स्वच्छ करें।

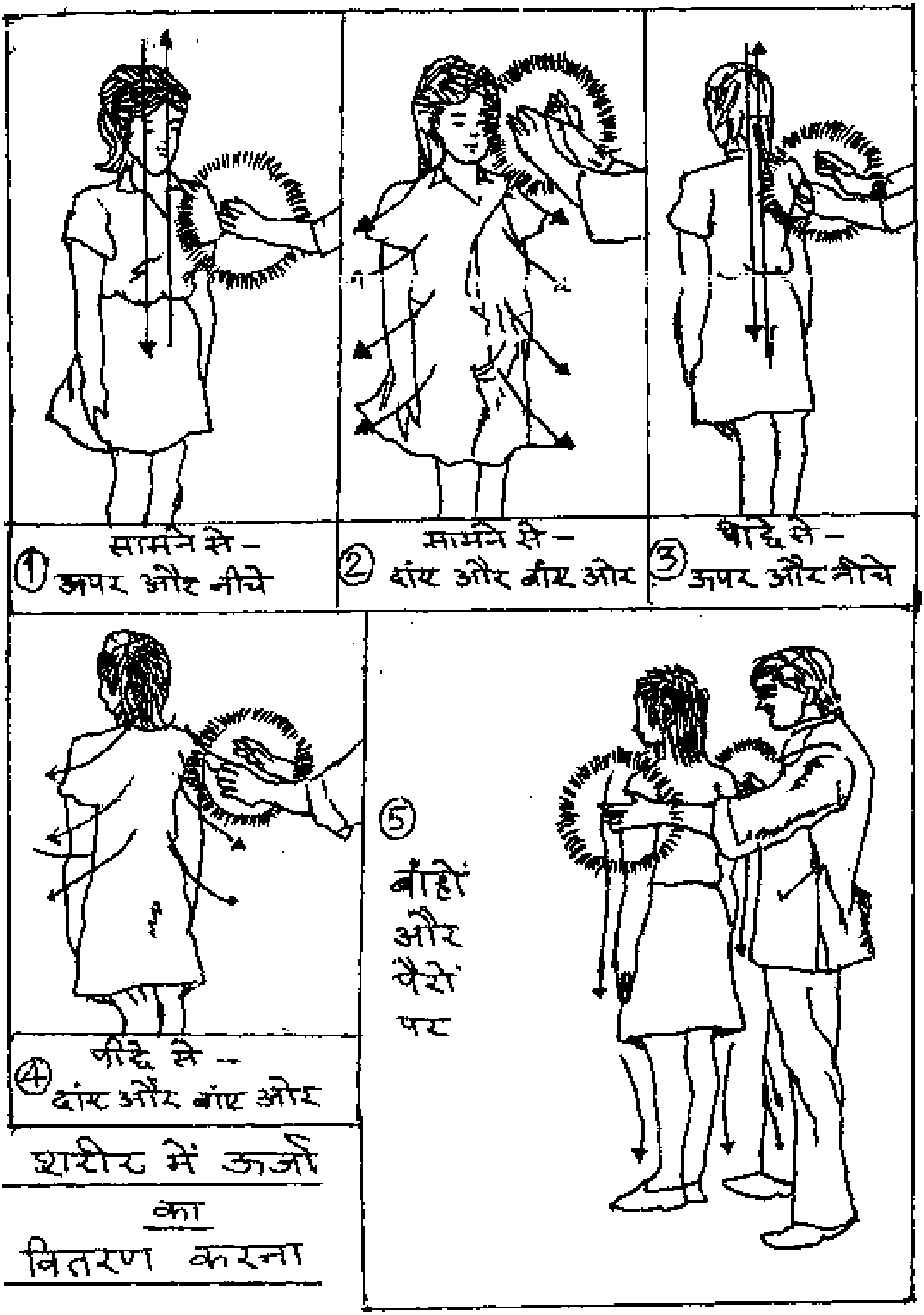

1 सामने से – ऊपर और नीचे
2 सामने से – दांए और बांए ओर
3 पीछे से – ऊपर और नीचे
4 पीछे से – दांए और बांए ओर
5 बाँहों और पैरों पर
शरीर में ऊर्जा का वितरण करना

चित्र ५.२३

(घ) अन्य रोगी / रोगियों के उपचार समाप्त करने के बाद पुनः रत्नों को स्वच्छ करें, फिर उसको सिल्क के कपड़े अथवा केस में सुरक्षित तौर पर रख दें।

(११) विशिष्ट उपचार विधि– वितरणशील झाड़–बुहार–
Special Healing Technique – Distribution Sweeping

उपचार के अन्त में, प्राण-ऊर्जा का प्रवाह बढ़ाकर और प्राण ऊर्जा को शरीर के विभिन्न भागों में फैलाकर, उपचार की गति बढ़ायी जा सकती है। इसको उपरोक्त क्रम संख्या १० (ङ) में दिए गए क्रम में वर्णन के तदनुरूप करें। इसकी विधि निम्नवत है।

(क) वितरणशील झाड़–बुहार को रोगी के शरीर के सामने से ऊपर 11 से नीचे 2 तक करे, फिर नीचे 2 से ऊपर 11 तक करें। इसको धीरे–धीरे पांच बार दोहराएं।

(ख) वितरणशील झाड़-बुहार को अगल-बगल में करें। रोगी के चेहरे के पास दोनों हाथ ले जाकर, अपने हाथों को दांए और बाएं ओर ले जाएं, फिर इसी प्रकार गले के सामने से, छाती के सामने से, नाभि के सामने से और 2 के सामने से दाएं और बाएं वितरणशील झाड़ बुहार करें।

(ग) विधि (क) और (ख) के अनुसार रोगी के पीछे से वितरणशील झाड़ बुहार करें, किन्तु इसमें 11 से 2 के स्थान पर 11 से 1 तक करना पड़ेगा, क्योंकि 2 की स्थिति शरीर के सामने और 1 की स्थिति शरीर के पीछे की ओर होती है। इसी उक्त (ख) में 'नाभि के सामने' के बाद '2' के स्थान पर '1' के सामने से करें। इसी प्रकार 'छाती' के स्थान पर 'पीठ' के सामने से करें।

(घ) बाहों और पैरों पर वितरणशील झाड़ बुहार करें। उक्त वर्णन चित्र ५.२३ में दर्शाया गया है।

(१२) **विशिष्ट उपचार विधि--रत्न को एक्सट्रैक्टर अर्थात रोगग्रस्त ऊर्जा आदि को बलपूर्वक निकालने के काम में प्रयोग– Using the Crystal as an Extractor**

चूंकि रत्न एक सूक्ष्म ऊर्जाओं का स्टोर करने वाला संयत्र (Subtle energy condenser) होता है, यह दोनों प्राण ऊर्जा एवम् रोगग्रस्त ऊर्जा को सोख सकता है। चूंकि इसका प्रोग्राम निर्धारित किया जा सकता है, अतएव इसको किसी चक्र या प्रभावित भाग से गंदी ऊर्जा, रोगग्रस्त ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकार, नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक परजीवियों को निकालने, सोखने, छिन्न–भिन्न करने और बाहर फैंकने के लिए निर्देशित किया जा सकता है। इसके लिए आप छोटा सा स्वच्छ पारदर्शक स्फटिक मणि अथवा हरा टूरमैलीन (Green Tourmaline) इस्तेमाल कर सकते हैं। हरा टूरमैलीन ज्यादा प्रभावी होता है, क्योंकि हरे रंग का तोड़ने वाला प्रभाव होता है।

प्रमुख शब्द बलपूर्वक निकालना, सोखना, छिन्न–भिन्न करना और बाहर फैंकना (extract, absorb, disintegrate and expel) महत्वपूर्ण हैं। आपके निर्देश एकदम सटीक, सही और सही क्रम में होने चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि आप बलपूर्वक निकालना ही कहते हैं, तो रत्न केवल इसी काम को करेगा, अन्य नहीं। आपको चक्र या प्रभावित अंग का नाम भी लेना पड़ेगा तथा यह भी कि वह स्वच्छ प्राण ऊर्जा को न निकाले। जैसे यदि आपको रोगी के 6 की सफाई करनी है, तो रत्न को निम्न निर्देश दीजिए।

> "हे रत्न, कृपा करके (रोगी का नाम लीजिए) के सौर जालिका चक्र से आप गंदी और उपयोग की हुई ऊर्जा, रोगग्रस्त ऊर्जा, नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकार, नकारात्मक परजीवियों को बलपूर्वक निकालिए, सोखिए, छिन्न–भिन्न करिए और तदुपरान्त बाहर फैंकिए, किन्तु स्वच्छ प्राण ऊर्जा को न निकालिए।"

उक्त निदेश तीन बार दीजिए।

जिस स्थान पर आप उपचार कर रहे हों, वहां वायु के आने जाने के लिए काफी जगह होनी चाहिए, ताकि रोगग्रस्त ऊर्जा वहां से जा सके। यह

भी आवश्यक है कि आप उस स्थान में चन्दन की धूप या अगरबत्तियां जलाकर, स्थान को स्वच्छ करते रहें।

(क) एक्सट्रैक्टर रत्न को दो विधियों से उपयोग में लाना–

Two ways of using the extractor

प्रथम विधि– रोगी को लिटाकर इसके प्रभावित भाग अथवा चक्र के ऊपर रत्न को रखिए, तदुपरान्त उसको उचित निर्देश दीजिए। यदि मनो/मनोवैज्ञानिक उपचार भी कर रहे हों, तो नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकारों और नकारात्मक परजीवियों को निर्देश में शामिल कर लीजिए।

कुछ समय प्रतीक्षा करने के पश्चात् रोगग्रस्त ऊर्जा आदि को निस्तारण इकाई में झटका देकर फैंक दीजिए। रत्न को पहले निर्देशित क्रियाओं को बन्द करने के लिए तीन दफा निर्देशित कीजिए।

रत्न की अच्छी प्रकार से सफाई कीजिए।

द्वितीय विधि– प्रभावित भाग या चक्र के पास रत्न को पकड़िए। उसके द्वारा घड़ी की दिशा में घुमाते हुए कुछ सैकिन्डों तक प्राण ऊर्जा प्रेषित कीजिए। फिर घड़ी की उल्टी दिशा में उसको घुमाते हुए ऊर्जा आदि को बलपूर्वक निकालने आदि के उक्त वर्णित वचनों द्वारा तीन बार निर्देशित करिए। रोगग्रस्त ऊर्जा आदि को निस्तारण इकाई में फैंक दीजिए। जब तक प्रभावित भाग या चक्र काफ़ी स्वच्छ न हो जाए, तब तक इस प्रक्रिया को दोहराते रहिए। तत्पश्चात् रत्न को उक्त निर्देशित क्रियाओं को बन्द करने के लिए तीन दफा निर्देशित कीजिए।

रत्न की अच्दी प्रकार सफाई कीजिए।

उक्त दोनों विधियां चित्र ५.२४ में दर्शायी गई है।

प्रथम विधि

USING THE CRYSTAL AS AN EXTRACTOR

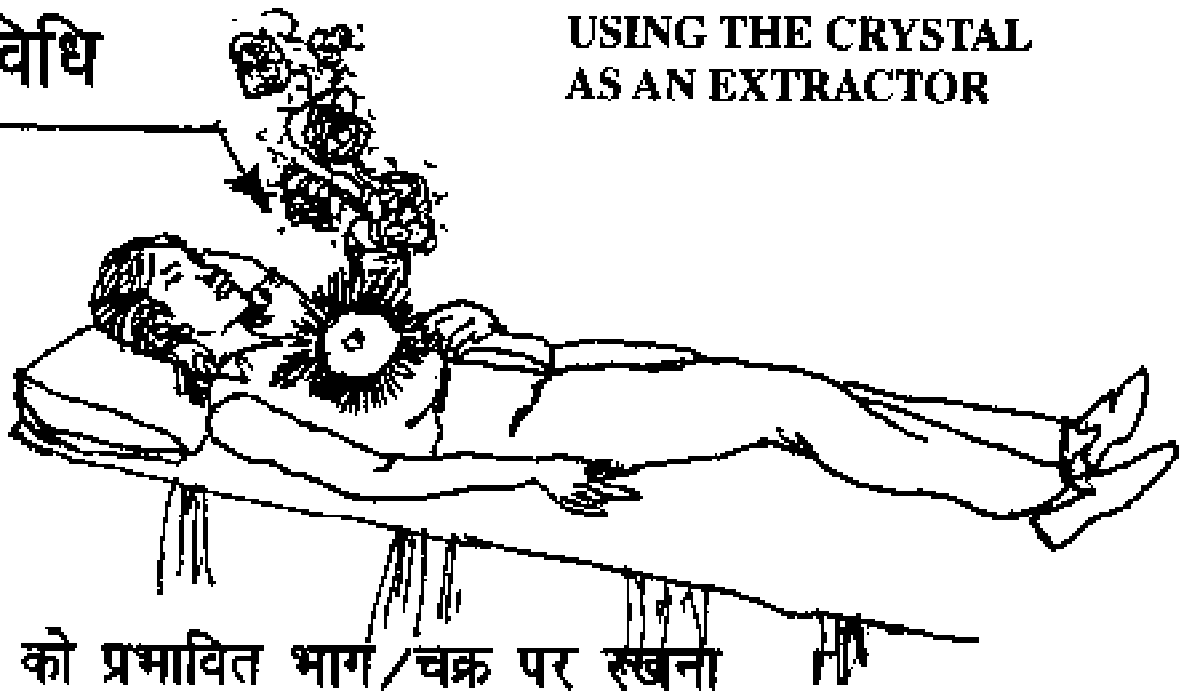

रत्न को प्रभावित भाग/चक्र पर रखना

द्वितीय विधि

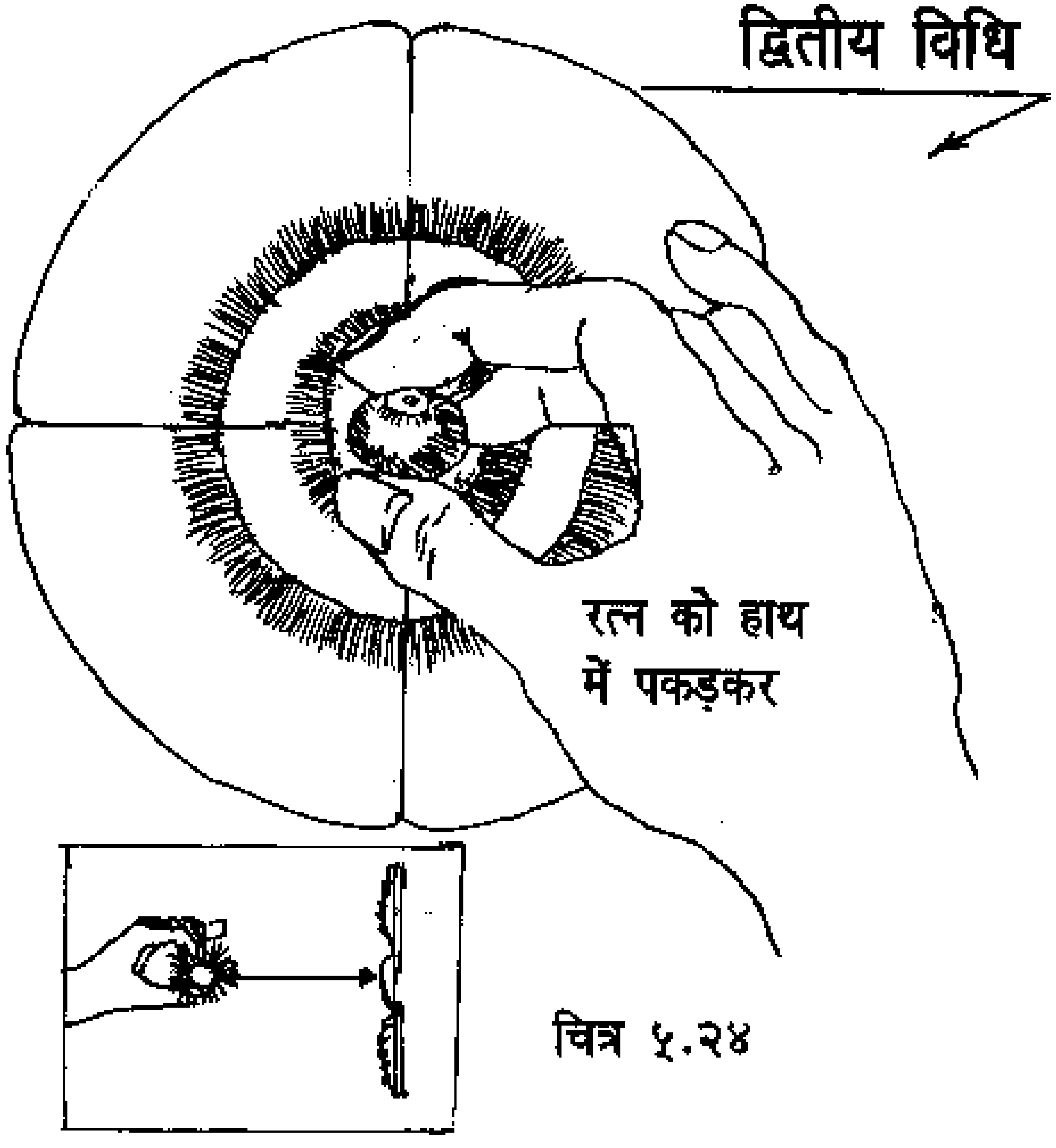

चित्र ५.२४

रत्न का रोगग्रस्त ऊर्जा आदि का बल पूर्वक निकालना

(ख) **एक्सट्रैक्टर रत्न को बलपूर्वक रोगग्रस्त ऊर्जा आदि को निकालने के लिए पर्याप्त समय दीजिए— Allow enough time for the Extractor to work**

एक्सट्रैक्टर रत्न रोगग्रस्त ऊर्जा आदि को निकालने का कार्य एक निश्चित गति से ही कर सकता है, इसलिए उसको अपना काम समाप्त करने के लिए पर्याप्त समय दीजिए।

उदाहरण के तौर पर, यदि आपको अत्यधिक चिन्ता या तनाव है, तो लेट जाइए और अपने 6 पर हरा रत्न रखकर, उसको यह निदेश तीन बार दीजिए कि वह आपके 6 तथा समस्त शरीर से समस्त तनाव की एवम रोगग्रस्त ऊर्जा को बलपूर्वक बाहर निकाले, सोखे, टुकड़े–टुकड़े करे और फैंक दे। लगभग पन्द्रह-बीस मिनट तक विश्राम करने के बाद रत्न को यह बन्द करने के लिए तीन बार निदेशित कीजिए। आपको इसके बाद सम्भवतः अच्छा लगेगा। आप हरे रत्न के स्थान पर गुलाबी रत्न भी इस्तेमाल कर सकते हैं, क्योंकि गुलाबी रत्न का सुकून पहुंचाने तथा शान्ति देने का प्रभाव होता है।

यदि रोगी लेटा हुआ है, तो आप उसके शरीर के भिन्न–भिन्न भागों पर अनेक रत्न रख सकते हैं। और उन्हें उचित निदेश दे सकते हैं। इस विधि से उपचारक के लिए समस्त शरीर, भिन्न–भिन्न प्रभावित भागों और चक्रों की सफाई करना बहुत आसान हो जाएगा। यदि आपके पास कई रोगी हैं, तो सभी को लेट जाने के लिए कहिए और उनके ऊपर रत्नों को रखकर इस प्रकार आप सफाई के कार्य को सुगमता से कर सकते हैं।

(१३) **विशिष्ट उपचार विधि– पवित्रीकृत रत्नों का समग्र उपयोग– Healing by the use of consecrated Crystals**

बहुत अधिक करने की अपेक्षा, यदि आप रोगी को लेट जाने को कहें, तदुपरान्त उसके समस्त शरीर के प्रभावित भागों और चक्रों पर अनेक स्वच्छीकृत एवम् पवित्रीकृत रत्न रखें। उन रत्नों को प्रभावित भागों/ चक्रों तथा समस्त शरीर की सफाई करने और ऊर्जित करने के लिए निदेशित करें। बच्चों व गर्भवती महिलाओं पर इस विधि को न करें। पवित्रीकृत रत्न को 7f पर न रखें, अन्यथा हृदय पर काफी प्राण ऊर्जा का घनापन हो सकता है,

जिससे धड़कन तथा सीने में दर्द हो सकता है। रत्न को हृदय के पीछे अर्थात रीढ़ की हड्डी के नीचे हृदय के पीछे की तरफ रखें।

आप रत्नों को चिकने पत्थरों (pebbles) के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं, वे अपेक्षाकृत सस्ते होते हैं। स्वच्छ स्फटिक मणि, गुलाबी स्फटिक मणि और अन्य रंगों के रत्नों का रोगियों के ऊपर रखने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। स्वच्छ स्फटिक मणि, गुलाबी स्फटिक मणि और हरे रंग के रत्नों का उपयोग अधिक सुरक्षित तथा सुगम है। यदि आप अन्य रंगों के रत्नों को इस्तेमाल करना चाहते हैं, तो आपको उन्नत प्राण चिकित्सा उपचार में उच्च श्रेणी की कुशलता तथा दक्षता होना आवश्यक है।

जब आप पवित्रीकृत रत्नों को रोगी के ऊपर रखें, तो रोगी की प्रतिक्रिया नियमित रूप से देखते रहिए। उसको कोई असाधारण सनसनी या अनुभव तो नहीं हो रहा है आदि। सावधानी बरतिए।

इस विधि को उदाहरण मात्र के लिए चित्र ५.२५ में दर्शाया है।

विधि–

संदृष्टि– इस प्रकरण में गंदी और रोगग्रस्त ऊर्जा को बलपूर्वक निकालने (Extract), सोखने (Absorb), छिन्न–भिन्न करने (Disintegrate) और फैंकने (Expel) की संदृष्टि EADE द्वारा की गयी है, तदुपरान्त ऊर्जित करने (Energize) को E द्वारा की गयी है। उदाहरण के तौर पर यदि चक्र क पर स्फटिक का रत्न (Quartz Crystal) अथवा अमुक रंग का रत्न रखने और उसको चक्र य तथा शरीर के र, ल अंगों से EADE करने, तथा चक्र य, अंग र तथा समस्त शरीर को ऊर्जित करने (E) का निर्देश निम्नवत दिया गया है :

य पर QC अथवा अमुक रंग का रत्न– EADE (य, र, ल) – E (य, र तथा समस्त शरीर)

(क) रोगी को लेटने और विश्राम करने के लिए कहें।

(ख) रोगी को अपनी जीभ को तालु से लगाने के लिए कहें।

(ग) चंदन की धूप अथवा अगरबत्तियां जलायें। यह रोगग्रस्त ऊर्जा को निकालने अथवा नष्ट करने के लिए है। किसी बड़े कमरे में जहां वायु का प्रवाह अच्छा हो, उपचार करें।

(घ) दिव्य आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करें।

(ग) हृदय के पीछे QC अथवा हरा रत्न रखें– EADE (7, हृदय, Lu तथा समस्त शरीर)

हृदय के पीछे हरा रत्न रखना अधिक उत्तम है, क्योंकि उसका सफाई तथा घनापन खत्म करने का प्रभाव होता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी रोगी का हृदय आंशिक रूप से अवरुद्ध है, तो हरा रत्न धीरे-धीरे हृदय की धमनियों में फंसी रोगग्रस्त ऊर्जा को टुकड़े-टुकड़े करके हटा देगा।

(च) 6 पर QC अथवा गुलाबी या हरा रत्न– EADE (6) -- E (6 तथा समस्त शरीर)

(छ) 11 पर QC अथवा बैंगनी या हरा रत्न (11, मस्तिष्क, पिनीयल ग्रंथि) –

E (11, मस्तिष्क, पिनीयल ग्रंथि तथा समस्त शरीर)

(ज) 10 पर अथवा अथवा बैंगनी या हरा रत्न– (10, पिनीयल ग्रंथि, तंत्रिका तंत्र) – E (10, पिनीयल ग्रंथि, तंत्रिका तंत्र तथा समस्त शरीर)

(झ) 9 पर QC अथवा बैंगनी या हरा रत्न – EADE (9, नाक, पीयूष ग्रंथि) – E (9, पीयूष ग्रंथि, अन्तःस्त्रावी ग्रंथियां तथा समस्त शरीर)

(ञ) 8 पर QC अथवा गुलाबी या हरा रत्न– EADE (8, थायराइड ग्रंथियां, श्वास नली अर्थात Trachea, ग्रसिका नली अर्थात esophagus) – E (8, थायराइड ग्रंथि, श्वास नली, ग्रसिका नली तथा समस्त शरीर)

(ट) 4 पर QC – EADE (4, छोटी और बड़ी आंत) – E (4, छोटी और बड़ी आंत तथा समस्त शरीर)

(ठ) यदि 5 बहुत गंदा है, तो 5b पर QC – EADE (5, प्लीहा)– E (5 हल्के से, तथा समस्त शरीर)। सावधानी बरतिए।

(ड) 2 पर QC अथवा हरा रत्न– EADE (2, यौनांगों, मूत्राशय) – E (2, यौनांगों, मूत्राशय तथा समस्त शरीर)

(ढ) 1 के नजदीक पैरों के मध्य में QC – EADE (1 तथा समस्त शरीर) – E (1 तथा समस्त शरीर)

(ण) प्रत्येक कांख (armpit) में QC – EADE (प्रत्येक कांख तथा समस्त शरीर)

(त) प्रत्येक कोहनी (elbow) के नीचे QC – EADE (प्रत्येक कोहनी तथा समस्त शरीर) – E (प्रत्येक कोहनी तथा समस्त शरीर)

(थ) प्रत्येक हाथ (हथेली पर) QC – EADE (प्रत्येक हाथ तथा समस्त शरीर) – E (प्रत्येक हाथ तथा समस्त शरीर)

(द) प्रत्येक कूल्हे (hip) के बगल में QC – EADE (कूल्हों)– E (कूल्हों तथा समस्त शरीर)

(ध) प्रत्येक घुटने (knee) के नीचे– QC -- EADE (प्रत्येक घुटने के पीछे तथा समस्त शरीर)– E (प्रत्येक घुटने के पीछे तथा समस्त शरीर)

(न) दोनों तलुओं पर QC – EADE (प्रत्येक तलुए तथा समस्त शरीर) – E (प्रत्येक तलुए तथा समस्त शरीर)

(प) रोगी को बीस मिनट या अधिक समय तक लेटे रहने दें। अधिकतर केसों में, इसका काफी शक्तिकारी अथवा चमत्कारिक अनुभव होगा। यदि रोगी को असुहावना अनुभव होता है, तो रत्नों को तुरन्त ही हटा दीजिए। उनको स्वच्छ करने तथा ऊर्जन करने की प्रक्रिया को बन्द करने के लिए निदेशित करके नमक के घोल में डाल दें।

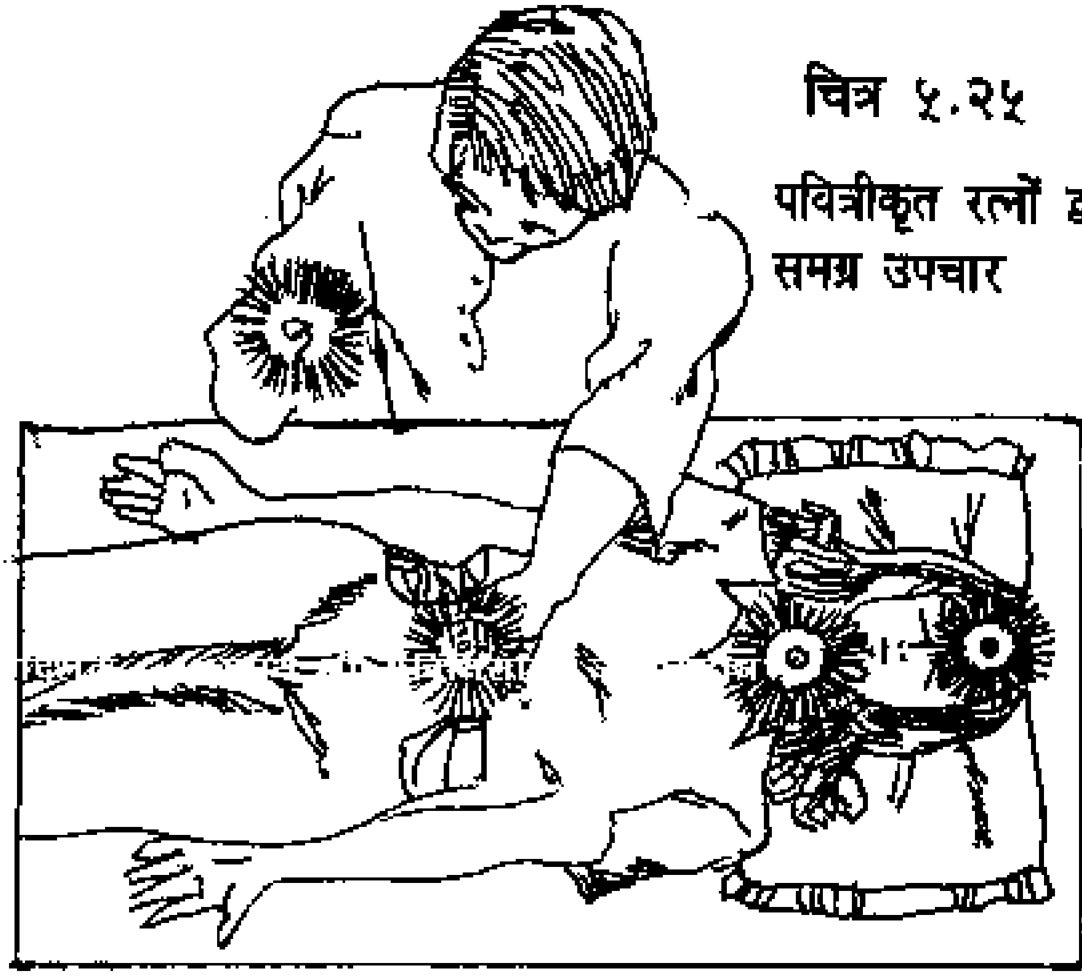

चित्र ५.२५

पवित्रीकृत रत्नों द्वारा समग्र उपचार

दूरस्थ उपचार

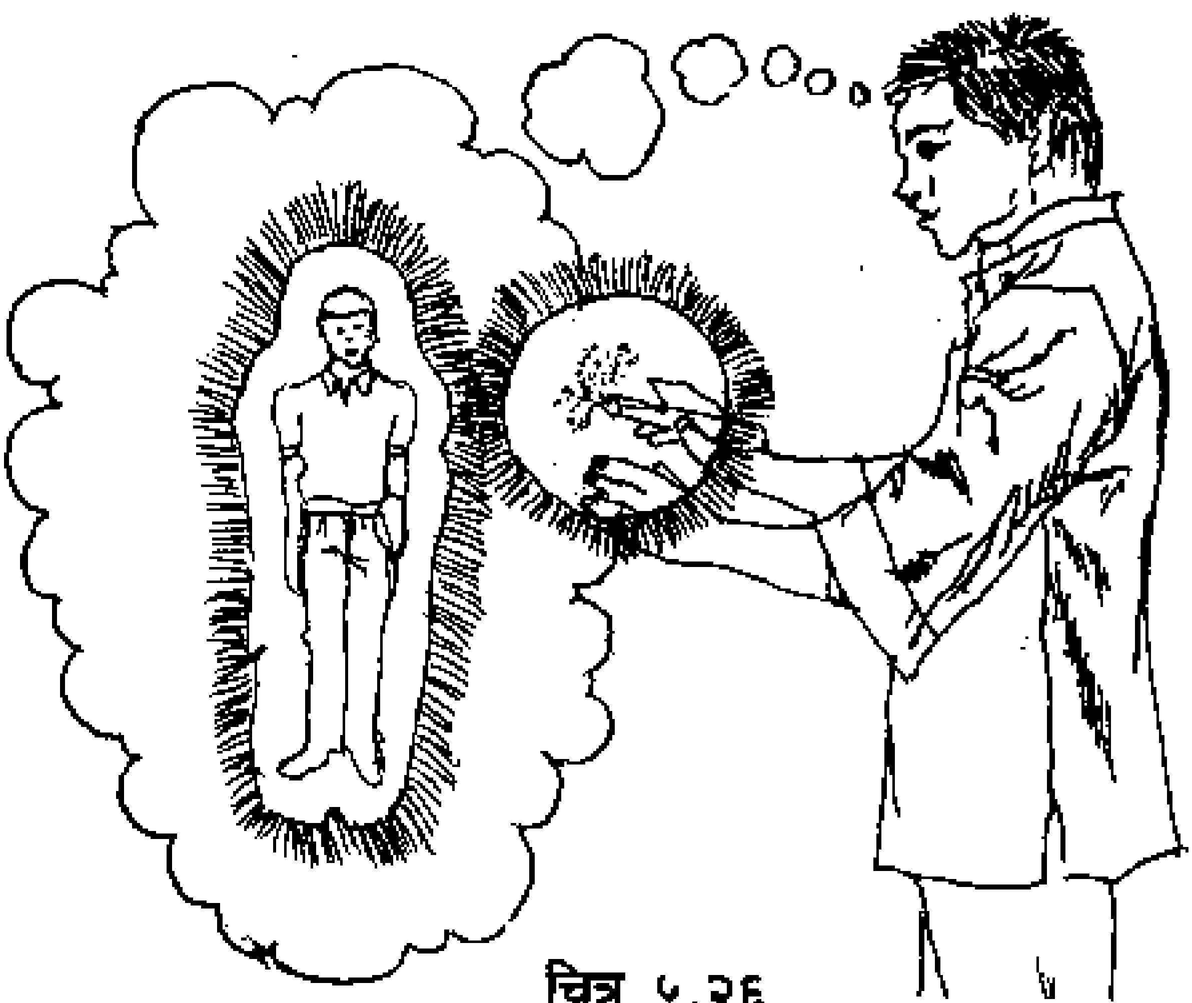

चित्र ५.२६

(फ) समस्त ऊर्जित अंगों, चक्रों व समस्त शरीर में प्रेषित ऊर्जा को स्थिरीकरण करिए एवम् सील करिए।

(ब) उपचार के अन्त में, सभी रत्नों को हटा दीजिए और उनको स्वच्छ करने तथा ऊर्जन करने की प्रक्रिया को बन्द करने के लिए निदेशित करके, नमक के घोल में डाल दीजिए। उनको सोखी हुई समस्त गंदी और रोगग्रस्त ऊर्जा को नमक के घोल में निकालने के लिए निदेशित करिए।

(१४) रत्नों द्वारा उपचार में मुख्य सावधानियाँ

(क) शिशुओं, बच्चों, बहुत कमजोर और बड़े बूढ़े रोगियों का रत्नों द्वारा ऊर्जन न करिए। इनका ऊर्जन हाथ चक्र से करिए।

(ख) बगैर जांच किये, बिना रोगी की उपचार ग्राह्यता निश्चित किये हुए उपचार न करें। उपचार के बीच-बीच में जांच करते रहें।

(ग) रत्नों को सटीक, सरल निर्देश दें।

(घ) ऊर्जन करने का समय न कम हो, न अधिक हो।

(ङ) बीच-बीच में रोगग्रस्त ऊर्जा को रत्न से झटकते रहें।

(च) आंख के चक्र और आंख का रत्न द्वारा ऊर्जन न करें।

(छ) उपचार से पूर्व और बाद में आप व रोगी दोनों प्रार्थना करे।

(झ) रत्नों का स्वच्छीकरण, चार्जिंग और पवित्रीकरण यथोचित समय पर करें।

(ञ) प्राणशक्ति उपचार विशेष सम्बन्धी अन्य सावधानियां बरतें।

(१५) रत्न/रत्नों द्वारा दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार–

Crystal Distant Pranic Healing

आपने अध्याय ७ में वर्णित दूरस्थ प्राणशक्ति उपचार में दक्षता प्राप्त कर ली होगी। इसके उपरान्त ही रत्न द्वारा दूरस्थ उपचार करें। जब रोगी कोई वाहन चला रहा हो, अथवा कोई भारी संयंत्र को हैण्डिल कर रहा हो अथवा कोई

ऐसा संकटकालीन काम कर रहा हो जिससे उसकी तथा अन्य व्यक्तियों की सुरक्षा प्रभावित हो सकती है, तो उस समय उपचार न करें। बेहतर होगा कि माध्यमिक दूरस्थ उपचार पद्धति में बताये गये सलाह के अनुसार रोगी से उपचार के पूर्व तालमेल बैठा लें, ताकि रोगी की उपचार-ग्राह्यता सुनिश्चित हो जाए तथा उपचार भी प्रभावी हो सके। उपचार के पूर्व दैवीय आशीर्वाद के लिए प्रार्थना।

(क) ग्रहण करने वाले हाथ पर CA रखें और LC को प्रेषण करने वाले हाथ पर रखें।

(ख) रोगी को लगभग बारह इंच ऊंचा मानकर कल्पना करें। दृश्यीकरण स्पष्ट होना आवश्यक नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि रोगी की उपचारी ऊर्जा की इच्छाशक्ति ठीक होनी चाहिए।

(ग) GS तथा स्थानीय झाड़-बुहार करें। झाड़-बुहार के समय रोगी का नाम बार-बार दोहराएं। इससे सफाई का काम अधिक प्रभावी होता है।

(घ) ऊर्जन करें और ऊर्जन करते समय रोगी के नाम का बार-बार उच्चारण करें। यह इस बात को सुनिश्चित करने के लिए है कि उपचारी ऊर्जा अधिकांश रोगी को पहुंच जाए, न कि ब्रह्माण्ड को।

(ङ) उपचार के पश्चात् प्रभु को दैवीय आशीर्वाद के लिए कृतज्ञता ज्ञापन करें।

(च) जब तक आवश्यक हो, सलाह में कई बार उपचार करें।

दूरस्थ उपचार को एक चित्रण चित्र ५.२६ में दिया गया है।

रत्नों द्वारा प्राण–शक्ति उपचार में उपयोग–उदाहरण
Pranic Crystal Healing-- Examples

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	सामान्य– General	५.५००
२.	साधारण रोग और गड़बड़ियां– Simple Ailments and Disorders	५.५०१
३.	घाव– Wounds	५.५०१
४.	ताजा जलना– Fresh Burns	५.५०२
५.	पुराना जलना – Old Burns	५.५०२
६.	दांत का दर्द– Toothache	५.५०२
७.	मासिक धर्म की परेशानी– Menstrual Discomfort	५.५०३
८.	बढ़ी हुई पौरुष ग्रंथि– Enlarged Prostrate	५.५०३
९.	पेट का दर्द, उल्टी और पतले दस्त होना– Abdominal Pain, Vomitting and Loose Bowel Movement	५.५०३
१०.	सिरदर्द का सामान्य उपचार– Treatment for Headache in General	५.५०४
११.	तनाव द्वारा अथवा भावनात्मक समस्याओं के कारण सिर का दर्द– Headache due to Stress or some Emotional Problems	५.५०४
१२.	आंखों के तनाव के कारण सिरदर्द– Headache due to Eye Strain	५.५०४
१३.	संधिवात– Arthiritis	५.५०५
१४.	बुखार– Fever	५.५०५
१५.	उच्च रक्तचाप– Hypertension	५.५०७
१६.	हृदय की समस्यायें– Heart Problems	५.५०७
१७.	मल्टिपिल स्लियरोसिस– Multiple Sclerosis	५.५०८

रत्नों द्वारा प्राण–शक्ति उपचार में उपयोग–उदाहरण
Pranic Crystal Healing-- Examples

(१) सामान्य– **General**

इस अध्याय में दिये गए उदाहरणों में कुछ रोगों के रत्न/ रत्नों के उपयोग के द्वारा उपचार करने की विधि दी गयी है। इसमें अध्याय ३० में वर्णित समग्र नियम, पद्धति आदि लागू होंगी। प्रत्येक उपचार में उपचारक के ग्रहण करने वाले हाथ में चक्र सक्रियक (CA) और प्रेषण करने वाले हाथ में लेसर रत्न (LC) एवम् जीभ को तालु से लगाने का विधान है। इनमें स्वच्छ पारदर्शक स्फटिक मणि (QC) द्वारा उपचार से तात्पर्य है। अध्याय ६ में दिये गये संदृष्टियों का इसमें भी उपयोग किया गया है। संक्षिप्तीकरण हेतु, कुछ और संदृष्टियों का भी उपयोग किया है जो निम्नवत हैः–

(CUD) – अध्याय ३० के क्रम संख्या ६ (क) में वर्णित विधि (ऊपर से नीचे) (upward to downward motion) द्वारा स्थानीय झाड़ बुहार करना (C)

(CSZ) – अध्याय ३० के क्रम संख्या ६ (ख) में वर्णित (हल्के से सर्पाकार गति) (slightly zigzag motion) द्वारा C

(CPT) – अध्याय ३० के क्रम संख्या ६ (ङ) में वर्णित पंक्चर करने की तकनीक (Puncturing technique) द्वारा C

(C_{six}) – अध्याय ३० के क्रम संख्या ६ (च) में वर्णित छह भागों वाली चक्र को स्वच्छीकरण करने की तकनीक (six-section chakral cleansing technique) द्वारा C

GS – रत्न द्वारा GS

C – रत्न द्वारा C (इसकी विधि स्वविवेक से उपचारक चुनें)

C' – रत्न द्वारा C' (इसकी विधि स्वविवेक से उपचारक चुनें)

(CSZ) (AP) X – पांच — प्रभावित भाग को (CSZ) विधि से पांच बार C

F — गंदी तथा रोगग्रस्त ऊर्जा को निस्तारण इकाई में नष्ट होने के लिए झटकना (Flick)

चूंकि इन उदाहरणों में रत्नों का उपयोग मात्र संयंत्र के तौर पर है, न कि उसके स्वयं के द्वारा सफाई/ऊर्जन के , अतएव, रत्नों को नीचे दिये गये उदाहरणों की प्रक्रिया अपनाते समय, पूरे उपचार में कोई निर्देश न दें। इन उदाहरणों में रंगीन ऊर्जा द्वारा उन्नत प्राणशक्ति उपचार के जो उदाहरण गत अध्यायों में आये हैं, उनका सन्दर्भ भी दिया गया है।

(२) **साधारण रोग और गड़बड़ियां— Simple Ailments and Disorders**

(क) (CSZ) (AP) x पांच बार, F

(ख) चरण (क) x सात बार

(ग) E' (AP) – यदि आप तय नहीं कर पायें कि (AP) का पूरी तरह E हुआ कि नहीं, तब E को तीन से पांच मिनट तक करें।

(घ) यदि रोगी को अभी भी काफी आराम नहीं पहुंचा हो, तो चरण (क) तथा (ग) को एक या दो दफा दोहराएं।

(ङ) यदि बीमारी के लक्षण अभी भी हों, तो रोगी को मैडिकल डाक्टर तथा उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

(३) **घाव— Wounds-- अध्याय ६ क्रम १० (१७), (१८)**

(क) (CSZ) (AP) x पांच बार, F

(ख) चरण (क) x सात बार

(ग) E (AP) – पांच से दस मिनट

(घ) शीघ्र उपचार के लिए, दिन में तीन बार उपचार करें।

(ङ) यदि घाव के ठीक होने में समस्या हो, तो T (1, 4, 6)

(४) **ताजा जलना– Fresh Burns -- अध्याय ६, क्रम १० (१३)**

(क) (CSZ) (AP) x पांच बार, F

(ख) चरण (क) x सात बार या अधिक बार, जब तक दर्द काफी कम न हो जाए

(ग) E' (AP) – तीन से पांच मिनट

(घ) C ~ E, जब तक पूर्ण रूप से न ठीक हो जाए।

(ङ) उपचार की गति को बढ़ाने के लिए T 1 कर सकते हैं।

(च) रोगी को AP को दो–दिन तक न धोने के लिए निदेश दें। इसके अलावा वह कोई क्रीम (Cream), विशेष तौर पर विटामिन–E क्रीम न लगाये। इससे फफोला /छाला पड़ जाएगा। विटामिन–E पुराने जले हुए पर लगायी जा सकती है।

(५) **पुराना जलना– Old Burns-- अध्याय ६, क्रम १० (१४), (१५)**

(क) उक्त क्रम ४ में वर्णित चरण (क), (ख) तथा (ग)

(ख) C ~ E

(ग) T 1

(घ) उपचार को त्वरित करने हेतु, दिन में तीन बार उपचार करें।

(ङ) उक्त क्रम ४ (च) के अनुसार

(६) **दांत का दर्द– Toothache -- अध्याय ६ क्रम १० (७)**

(क) रोगी को AP की ओर अपनी एक उंगली इंगित करने के लिए कहें।

(ख) (CUD) (AP) x पांच बार, F

(ग) उक्त चरण (क) x सात बार; रोगी आंशिक या पूर्ण आराम महसूस कर सकता है।

(घ) E (AP) – तीन से पांच मिनट तक

(ङ) यदि रोगी पूर्ण आराम महसूस करता भी हो, तब भी उससे दंत चिकित्सक से मिलने के लिए निदेशित करें।

(७) **मासिक धर्म की परेशानी—Menstrual Discomfort-- अध्याय १७ क्रम (२),(३)**

(क) (CSZ) (2 तथा पेडू यानी pubic area – जननांग से ऊपर का भाग जहां बाल रहते हैं) x पांच बार, F

(ख) उक्त चरण (क) x सात बार-- अधिकांश केसों में रोगी को काफी आराम मिलेगा।

(ग) E 2 – कुछ मिनटों तक

(घ) T (1, p, 4, 6, 8, 9)

(ङ) उपचार को मासिक धर्म होने से तीन दिन पहले करें, ताकि जो परेशानी है, वह या तो न हो या कम से कम हो।

(८) **बढ़ी हुई पौरुष ग्रंथि – Enlarged Prostate अध्याय १७, क्रम (८)**

पौरुष ग्रंथि पैरिनियम (perineum) के ऊपरी भाग पर होती है। काम चक्र पैरिनियम के ऊपर होता है। 2, p तथा प्रोस्टेट प्रभावित होते हैं।

(क) (CSZ) 2 x पांच बार, F

(ख) उक्त चरण (क) x सात बार

(ग) T' (p, पौरुष ग्रंथि)

(घ) T (1, 4, 6) -- (ये आंशिक रूप से प्रभावित हो जाते हैं)।

(ङ) उपचार को सप्ताह में दो या तीन बार करें। अधिकतर रोगी शीघ्र सुधार पायेंगे।

(९) **पेट का दर्द, उल्टी और पतले दस्त होना— Abdominal Pain, Vomitting and Loose Bowel Movement-- अध्याय १५, क्रम (३), (५)**

(क) GS (दो या तीन बार)

(ख) (CSZ) (6, पेट का ऊपरी भाग) x पांच बार, F

(ग) चरण (ख) x सात बार

(घ) (CSZ) (4, पेट का निचला भाग) x पांच बार, F

(ङ) चरण (घ) x सात बार – रोगी को बगैर ऊर्जन के C' 6 तथा C' 4 तथा C' (पेट का ऊपर व नीचे का भाग) द्वारा ही तुरन्त आराम महसूस होगा।

(च) E (6, 4) – कुछ मिनटों तक

(छ) गम्भीर केसों में अथवा लक्षण रहे आने पर, रोगी को शीघ्र मैडिकल डाक्टर तथा और अधिक अनुभवी व कुशल उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

(ज) पाचन तंत्र की बीमारियों में, ऊर्जन से पहले रोगी की पूरी तरह सफाई जरूरी है, अन्यथा रोगी पर प्रतिक्रियात्मक प्रभाव पड़ सकता है अथवा उसकी दशा अस्थायी तौर पर और अधिक बिगड़ सकती है।

(१०) सिरदर्द का सामान्य उपचार – Treatment for Headache in General-- अध्याय ६, क्रम १० (५)

(क) C' (AP) – इससे दर्द काफी कम हो जाएगा।

(ख) E (AP) – कुछ मिनट तक

(११) तनाव द्वारा अथवा भावनात्मक समस्याओं के कारण सिर का दर्द – Headache due to Stress or some Emotional Problems– अध्याय २४, क्रम (१)

(क) C' 6f x पांच बार, F

(ख) चरण (क) x सात बार

(ग) C' 6b x पांच बार, F

(घ) चरण (ग) x सात बार– इसके बाद रोगी को आंशिक राहत महसूस होगी।

(ङ) E 6 -- कुछ मिनटों तक

(च) C' (सिर के AP पर) / E

(१२) आंखों के तनाव के कारण सिर दर्द -- Headache due to Eye Strain– अध्याय ६, क्रम १० (५)

(क) आंखों, कनपटियों तथा 9 की जांच करें।

(ख) हाथ द्वारा C' (आंखों, कनपटियों तथा 9) -- इसको रत्न की सहायता से न करें, अन्यथा आंखें ऊर्जित या अधिक ऊर्जित हो सकती है, जिससे कुछ समय बाद दशा बिगड़ सकती है।

(ग) C bh – रत्न का उपयोग करते हुए

(घ) E (आंखें) (bh तथा 9 के माध्यम से) – 9 के E के समय रत्न का उपयोग न करें।

(ङ) C' (सिर का AP) / E

(१३) संधिवात – Arthiritis-- अध्याय १६, क्रम (४), (६), (१०)

(क) GS – तीन बार

(ख) C' (1, p, 2, 4, 6, L)

(ग) यदि रिह्यूमैटोइड (Rheumatoid) संधिवात है, तो C 5 / E धीरे और सावधानी से। ज्यादा E होने पर रक्तचाप बढ़ सकता है।

(घ) यदि बांह में प्रभाव है, तो T (a, e, H) और यदि पैर में प्रभाव है, तो T (h, k, S) – H तथा S का स्थिरीकरण न करें।

(ङ) C' (AP) / E-- पांच से दस मिनट तक।

(च) अगले लगभग तीन माह तक, उपचार को सप्ताह में तीन बार करें।

(१४) बुखार – Fever-- अध्याय ६, क्रम १० (३१) तथा अध्याय १०

दिव्य दर्शन से देखा गया है कि बुखार के रोगी के समस्त शरीर पर ऊर्जा का खालीपन होता है और पतले भूरे से लाल रंग के आभामण्डल से घिरा होता है। 6 पर घनापन होता है और इसमें गंदी लाल ऊर्जा भरी होती है। इस ऊर्जा को निकालने तथा समस्त शरीर से भूरे से लाल रंग की रोगग्रस्त ऊर्जा को निकालने से बुखार बहुत शीघ्रता से कम हो जाता है। 1 को सीधे ऊर्जित नहीं करना, अन्यथा बुखार बढ़ जायेगा।

७०–८० प्रतिशत केसों में बुखार श्वसन तंत्र अथवा पाचन तंत्र के संक्रमण के कारण होते हैं। यदि रोगी की नाक रुंधी हो, कफ़ हो या गला खराब हो और/अथवा सांस लेने में कठिनाई महसूस कर रहा हो, तो ये रोगी के श्वसन तंत्र के कारण हो सकता है। यदि उसके पेट में दर्द हो, उल्टी, पतले दस्त हों और/अथवा मल में रक्त हो, तो ये गैस्ट्रो-आंत के संक्रमण के कारण हो सकता है।

स्त्रियों में मूत्र मार्ग के संक्रमण द्वारा बुखार हो सकता है। इसके लक्षण वहां पर दर्द, मूत्र त्याग में कठिनाई, पेडू (pubic area) में दर्द और परेशानी और/अथवा पीठ के निचले हिस्से में दर्द है।

(क) GS (पांच बार)

(ख) (CSZ) 6f x पांच बार, F

(ग) उक्त चरण (ख) x दस बार

(घ) (CSZ) 6b x पांच बार, F

(ङ) उक्त चरण (घ) x दस बार

(च) E 6 – कुछ मिनटों तक

(छ) C' (पेट का ऊपरी भाग, पेट का निचला भाग)

(ज) गम्भीर संक्रमण की दशा में T 5 सावधानी से

(झ) T (4, 11, a, e, H, h, k, S) – H तथा S का स्थिरीकरण न करें।

(ञ) यदि बुखार श्वास–संक्रमण के कारण है, तो

T (9 या नाक, 8, 8', Lu तथा 7b)

(नोट – Lu का ऊर्जन Lub के माध्यम से करें)

(प) यदि बुखार गैस्ट्रो–आंत (gastro-intestinal) संक्रमण के कारण है, तो C' (L, उदर, छोटी आंत) एवम् T4

(फ) यदि बुखार मूत्र मार्ग के संक्रमण के कारण है, तो T' 2

और यदि पीठ के निचले भाग में दर्द है तो C' (K , मूत्र वाहनियां)। इसके अतिरिक्त, रत्न को अपने हाथों से हटाकर, अपने हाथ से C 3 तीस बार करें-- यह रक्तचाप अधिक हो जाने की सम्भावना को कम करने के लिए है।

(ब) यदि बुखार टौंसिल के कारण है, तो रत्नों द्वारा से T' (j, 8, 8')

(भ) उपचार के अगले कुछ दिनों तक दिन में दो बार उपचार करें।

(म) यदि बीमारी गम्भीर है या लक्षण रहे आते हैं, तो रोगी को शीघ्र ही मैडिकल डॉक्टर एवम् कुशल उन्नत प्राणशक्ति उपचारक से मिलने के लिए कहें।

(१५) उच्च रक्तचाप — **Hypertension**-- अध्याय १३, क्रम ८

(क) GS (पांच बार)

(ख) (CPT) एवम् (C_{SIX})' 6 IG

(ग) C' L

(घ) E 6 G, IB -- यदि C' के बाद यह चक्र अभी भी अति सक्रिय हो, तो IB को उसको छोटा करते हुए सामान्य करने के लिए निर्देशित करें।

(ङ) CA को हाथ में से हटा दें। फिर केवल LC द्वारा

C' (CPT एवम् C_{SIX}) 3 करें।

(च) E 3 IW, IB' – चक्र को E IB' के समय मानसिक तौर पर निर्देश दें कि वह 7b से लगभग एक तिहाई से आधा आकार तक छोटा हो जाए।

(छ) यदि उचित रूप से इलाज किया गया, तो काफी सुधार होगा।

(१६) हृदय की समस्यायें — **Heart Problems** -- अध्याय १३, क्रम (२) से (७) तक तथा (१०)

(क) GS (तीन बार)

(ख) (C_{SIX})' 6, C' L

(ग) E 6 G, IB -- यदि C' के बाद भी यह चक्र अधिक सक्रिय हो, तो E IB के समय उसको छोटे होकर सामान्य तक हो जाने के लिए निर्देशित करें।

(घ) रत्नों को हाथों से हटा दें। 7f तथा हृदय की जांच करें।

(ङ) यद्यपि 7 अधिक गंदा न भी हो, तब भी अपने हाथ अथवा LC द्वारा

(Csix)' 7f IG

(च) CA / LC को पुनः धारण करके, T 7b

(छ) यदि रोगी अति धूम्रपान करता है, तो C' (Lub और Lu के दांए एवम् बांए भाग पर), एवम् (CPT तथा Csix)' 7b IG / E W

(ज) T (1, 4, 6, 8)

(झ) दो–तीन महीने तक सप्ताह में दो–तीन बार उपचार करें।

(१७) मल्टिपिल स्लियरोसिस– Multiple Sclerosis

इस रोग में एक लम्बे समय में मस्तिष्क एवं रीढ़ की हड्डी की कोशिकाएं विविध प्रकार से अस्वस्थ होकर कड़ी हो जाती हैं। मैडिकल डॉक्टरों के अनुसार यह रोग केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र के शिरों अथवा ज्ञान तंतु तंत्रिकाओं (nerves) के बाहरी भाग (Myelin) तथा घवों के निशानों की दीर्घकालीन सूजन एवम् नष्टीकरण प्रक्रिया है और उन पर दाग पड़ जाने के कारण होता है। इसके फलस्वरूप हाथों और पैरों में कमजोरी हो जाती है, अपने स्वैच्छिक प्रक्रियाओं का समन्वय नहीं हो पाता, सुन्नपन होता है, आँखों में धुधलापन व दो प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ना और कुछ अन्य लक्षण होते हैं। रोग बढ़ जाने पर स्मरण शक्ति समाप्त हो जाती है।

इस रोगी का 6 बहुत अधिक सक्रिय, गंदा और सामान्यतया घनापन से युक्त होता है। प्लीहा पर खोखलापन होता है। रीढ़ की हड्डी वायवी रूप से गंदी होती है। 1 और 2 बहुत अति सक्रिय मगर खोखलापन से युक्त होते हैं। p गंदा होता है। 3 और 4 दोनों ही छोटे और खोखलेपन युक्त होते हैं। T 4 द्वारा 3, 2, 1, p को सामान्य करना सुगम होता है। 7 थोड़ा सा कम सक्रिय होता है। 8 अधिक सक्रिय होता है मगर खोखलेपन से युक्त होता है। j गंदे होते हैं और उन पर घनापन हो सकता है। 9, 10, 11 तथा bh गंदे, कम सक्रिय और घनेपन युक्त होते हैं, किन्तु कभी–कभी 10 अधिक सक्रिय

मगर खोखलेपन से युक्त भी होता है। कानों के ऊपर मस्तिष्क का भाग आम तौर पर घनेपन से युक्त होता है।

यदि बीमारी गम्भीर नहीं है, तो सक्षम उन्नत प्राणशक्ति उपचार द्वारा एक से पांच सत्रों में दिखाई देने वाला या काफी अधिक सुधार हो सकता है।

(क) उपचार से पूर्व बहुत अच्छी प्रकार जांच करें तथा उसकी दशा का निरीक्षण करें।

(ख) C' (सामने के फैंफड़े, बांया तथा दांया फैंफड़ा और फैंफड़ों का पिछला भाग)। रक्त की सफाई की तकनीक (देखिए अध्याय ६, क्रम १०, उपक्रम ३०) अपनाएं। इसके लिए E Lu (Lub के माध्यम से) GOR (G, O, R की मात्रा का अनुपात लगभग चार G के, तीन O के तथा सात R के श्वसन प्रक्रिया होनी चाहिए), तदुपरान्त स्थिरीकरण करके, Lu को बाहर की ओर से B द्वारा रंगकर सील करें। जब आप E O करें, तो उंगलियों एवम् LC की नोक की दिशा रोगी के सिर की दिशा से दूर रहनी चाहिए, अन्यथा O द्वारा सिर को क्षति पहुंच सकती है।

यदि रोगी छाती के दर्द के रूप में प्रतिक्रिया अनुभव करता है, तो जब तक दर्द गायब न हो जाए, तब तक C' 7 करें। इस दशा के हो जाने पर भविष्य में उपचार करते समय ऊर्जा के उपयोग के समय उपरोक्त रंगों से हल्के रंग का इस्तेमाल करें।

(ग) आंतरिक अंगों की सफाई की तकनीक (देखिए अध्याय ६, क्रम १०, उपक्रम २८) अपनाएं।

(१) C' 6

(२) E 6f – B (एक श्वसन प्रक्रिया तक), G (तीन श्वसन प्रक्रिया तक), O (तीन श्वसन–प्रक्रिया तक), R (छह श्वसन–प्रक्रिया तक)

(३) E 6b – उक्त (२) के अनुसार BGOR

(४) रोगी को लगभग तीन मिनट तक विश्राम दें ताकि प्रेषण की गई ऊर्जाएं अन्य चक्रों को साफ तथा ऊर्जित कर सकें।

(घ) ऊपर के और नीचे के चक्रों की पुनः जांच करें। आप पाएंगे कि (ख) व (ग) प्रक्रियाओं से चक्रों की दशा सुधर गयी है। 1 व 2 जो पहले अधिक सक्रिय और खोखलेपन से युक्त था, अब कम अधिक सक्रिय और ऊर्जित हो गये हैं। 4 व 3 पहले से अधिक सक्रिय और ऊर्जित हो गये हैं। ऊपर के चक्र जो सामान्यतः छोटे और घनेपन युक्त थे, अब अधिक बड़े और कम घनेपन युक्त है। इस रोग के शीघ्र उपचार के लिए रक्त एवम् आंतरिक अंगों की सफाई की तकनीकें अति महत्वपूर्ण है।

(ङ) GS (लगभग तीन या चार बार)

(च) C' 4 G / E' G (लगभग तीन श्वसन प्रक्रिया तक), R (लगभग आठ श्वसन प्रक्रिया तक) – यह चरण अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अन्य निम्न चक्रों का सुचारुपूर्वक कार्यरत होना 4 के सुचारुपूर्वक कार्यरत होने पर निर्भर करता है। T' 4 होने पर अन्य चक्रों में काफी सुधार हो जाएगा।

(छ) C' (1, 2, p) GO / E' R (प्रत्येक चक्र E R द्वारा लगभग आठ श्वसन प्रक्रिया तक ऊर्जित करें)

(ज) C' 3 G / E W (लगभग चार या पांच श्वसन प्रक्रिया तक)। 3 की पुनः जांच करें । यदि यह अधिक सक्रिय है, तो उसके सामान्य होने तक C द्वारा अतिरिक्त ऊर्जा बाहर निकालें।

जो वृद्ध हैं, उनका E W लगभग दो श्वसन प्रक्रिया तक करें। जो व्यक्ति ५५ वर्ष से अधिक आयु के हैं, उनके मामले में उपचारक को सावधान रहना होगा, क्योंकि उनका 3 अति ऊर्जित होने की दशा में कुछ समस्यायें हो सकती हैं।

(झ) C 5 GV / E V (लगभग तीन से पांच श्वसन प्रक्रिया तक करें)। 5 तथा 3 की पुनः जांच करें। E 5 से कभी–कभी 3 अधिक सक्रिय हो जाता है। ऐसी दशा में C (3 व 5) द्वारा तुरन्त ही 3 को संकुचित करें।

(ञ) C' (7f, 7b) / E 7b G (तीन श्वसन प्रक्रिया तक), V (छह श्वसन प्रक्रिया तक) । ऊपर के चक्रों को 7 प्रभावित करता है। T 7 द्वारा ऊपर के चक्रों का उपचार सुगम हो जाता है।

(ट) C' (मस्तिष्क के दांए और बांए भाग पर – कानों से थोड़ा ऊपर की तरफ) G ~ V

(ठ) C' j G ~ V

(ड) C (8, 9, 10, 11, bh) GV / E G (प्रत्येक को लगभग तीन श्वसन प्रक्रिया तक), V (प्रत्येक को लगभग चार श्वसन प्रक्रिया तक), eV (एक श्वसन प्रक्रिया तक)। कई सप्ताहों के उपचार के पश्चात E eV का समय दो श्वसन प्रक्रिया तक धीरे-धीरे बढ़ाया जा सकता है। इससे मस्तिष्क के उपचार में सुगमता होगी।

(ढ) चक्रों की पुनः जांच करें।

(ण) वितरणशील झाड़-बुहार रोगी के पीछे के ओर से ऊपर से नीचे की ओर 11 से 1 तक और फिर 1 से ऊपर की ओर 11 तक लगभग दस-दस बार करें, फिर आगे की ओर से ऊपर से नीचे की ओर 11 से 2 तक और फिर 2 से ऊपर 11 तक लगभग दस-दस बार करें। वितरणशील झाड़-बुहार अत्यन्तावश्यक है, क्योंकि इससे ऊर्जा का प्रवाह बढ़ता है तथा मूल ऊर्जा (1 द्वारा) व यौन ऊर्जा (2 द्वारा) ऊपर के चक्रों को मिलती है। ऊपर के चक्रों को 1 व 2 की जो ऊर्जा प्राप्त होती है, वह उनके सुचारुपूर्वक कार्य करने के लिए आवश्यक है।

वितरणशील झाड़ बुहार करने के पश्चात् यदि आप पुनः ऊपर के चक्रों की जांच करें, तो आप पायेंगे कि वे पहले से काफी बड़े हो गये हैं। यह पद्धति मानसिक रूप से पिछड़े बच्चों और वयस्कों पर भी लागू की जा सकती है।

1 व 2 की पुनः जांच करें, आप पाएंगे कि वे आंशिक रूप से खोखले हैं। ऐसी दशा में, E (1, 2) R करें।

(त) C 6 / E W (सात श्वसन प्रक्रिया तक)।

(थ) C (बांहों, पैरों पर) G ~ O / E (बाहों, पैरों) (a, e, H, h, k, S के माध्यम से) G (दो श्वसन प्रक्रिया तक), O (दो श्वसन प्रक्रिया तक), R (पांच श्वसन प्रक्रिया तक)– H व S का **स्थिरीकरण न करें।**

उंगलियों और एड़ियों या शरीर के अन्य भागों का सुन्नपना उनका C GO/ E GOR द्वारा काफी हद तक ठीक **किया जा सकता है।**

(थ) उपचार को सप्ताह में तीन बार करें और धीरे–धीरे सप्ताह में दो बार तक करें। तीन से छह माह तक उपचार करें। गम्भीर केस में उपचार में लगभग छह माह या अधिक लग सकते हैं। सामान्यतया रोगी को काफी हद तक सुधार मालुम पड़ेगा।

(द) ऊपर जो श्वसन–प्रक्रिया की गिनती मात्र सामान्य मार्गदर्शन के लिए है इसमें उपचारक अपनी शक्ति को एवम् रोगी की आवश्यक्तायें तथा दशा देखकर आवश्यक परिवर्तन कर सकते है। शक्तिशाली उपचारक रंगीन प्राण मात्र कुछ सैकिन्डो में प्रेषण कर सकता है, जबकि साधारण उपचारक को कई श्वसन–प्रक्रिया लग सकती हैं।

(ध) इस रोग का उपचार केवल कुशल अनुभवी प्राणशक्ति उपचारक करें।

अध्याय – ३२

जिन्सैंग

Chapter- XXXII

GINSENG

अध्याय – ३२

जिन्सैंग – Ginseng

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	पदार्थ	५.५१५
२.	श्री चोआ कोक सुई द्वारा किए गये प्रयोग	५.५१५
३.	जिन्सैंग का प्रभाव	५.५१६
४.	आभा मण्डल	५.५१६
५.	स्वच्छीकरण, अधिक सक्रियकरण व ऊर्जीकरण प्रभाव	५.५१६
६.	जिन्सैंग का उपचार में उपयोग	५.५१७
७.	उपचारक और रोगी के लिए परामर्श	५.५१७

जिन्सैंग – Ginseng

(१) पदार्थ

जिन्सैंग जीनस (Genus) प्रकार की औषधि के पौधे की जड़ है। जीनस अन्य सभी समुदायों (groups) के पौधों की संरचना की प्रकृति (structural characteristics) से भिन्न वह समुदाय है जिसमें अलग तरह की समान संरचना की प्रकृति पायी जाती है, किन्तु ये भी अनेक प्रकार के होते हैं। ये पौधा पूर्वी एशिया में चीन व कोरिया एवम् उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है। (ज्ञातव्य हो कि यह अब भारत में बाजार में उपलब्ध है, यद्यपि यह महंगा है। इस सम्बन्ध में बड़े कैमिस्टों (chemists) से सम्पर्क किया जा सकता है)

(२) श्री चोआ कोक सुई द्वारा किए गए प्रयोग

श्री चोआ कोक सुई ने वायवी शरीर पर चीन तथा कोरिया का लाल जिन्सैंग का प्रयोग किया था। जिन व्यक्तियों पर इस का प्रयोग किया गया, उनकी आयु १४ से ५५ वर्ष की थी और एक दफा में उनको डेढ़ से लेकर पांच ग्राम तक जिन्सैंग के पाउडर की मात्रा दी गयी थी।

दिव्य दर्शन से देखा गया कि जिन्सैंग पाउडर का प्रभाव लगभग तुरन्त ही प्रारम्भ हो गया। आन्तरिक और स्वास्थ्य मण्डलों से प्रकाश की अनेक चमक आते हुए दृष्टिगत हुईं। आंतरिक आभा मण्डल पांच इंच से बढ़कर लगभग दस इंच हो गया, स्वास्थ्या मण्डल अधिक चमकीला होकर लगभग दो फुट से लगभग तीन फुट हो गया तथा बाह्य आभा मण्डल का भी विस्तार हो गया। हल्का भूरा सा पदार्थ का निष्कासन हुआ। चक्र अधिक चमकीले, अधिक बड़े होकर, अधिक सक्रिय हो गए। मुख्य चक्रों का आकार साढ़े तीन इंच से बढ़कर लगभग पांच इंच हो गया। उपनाभि चक्रों (जो कृत्रिम ऊर्जा बनाते हैं) का आकार एक इंच व्यास से बढ़कर लगभग तीन इंच हो गया। कृत्रिम ऊर्जा घनी हो गयी। यद्यपि जिन व्यक्तियों पर प्रयोग किया, उनकी प्राण ऊर्जा बहुत अधिक थी, किन्तु जिन्सैंग के प्रयोग से उनको आराम मिला और वे बेचैन नहीं हुए। यह उसी प्रकार हुआ, जिस प्रकार ध्यान–चिन्तन में होता है। यद्यपि ध्यान–चिन्तन के समय बहुत ऊर्जा पैदा होती है, किन्तु ध्यानकर्ता आराम व शान्ति से

रहता है। इस प्रकार के सूक्ष्म व गूढ़ प्रकृति के सुधार का सम्बन्धित व्यक्ति को संज्ञान नहीं होता, सिवाय संवेदनशील अथवा कमजोर व्यक्ति के।

(३) जिन्सैंग का प्रभाव

जिन्सैंग का प्रभाव (१) उसकी ली गयी मात्रा, (२) जिन्सैंग के प्रकार– ये अलग–अलग चमक या शक्ति के होते हैं और (३) सेवन करने वाले व्यक्ति के शरीर पर निर्भर करता है। डेढ़ ग्राम जिन्सैंग का असर लगभग दस से सोलह घंटे तक रहता है। इस दौरान इसका प्रभाव धीरे–धीरे कम हो जाता है। इस कारण यह अधिक उपयुक्त होगा यदि अपने स्वास्थ्य के संरक्षण हेतु जिन्सैंग की डेढ़–डेढ़ ग्राम की मात्रा दिन में दो बार ली जाए। जो रोगी व्यक्ति हैं, वे अच्छा हो कि इससे अधिक मात्रा लें।

(४) आभा मण्डल

दिव्य दर्शन से देखा गया है कि अन्य खाद्यों और औषधियों के तुलना में जिन्सैंग बहुत चमकीला होता है। पचास ग्राम लाल जिन्सैंग पाउडर का आन्तरिकतम आभा मण्डल (Core or inmost aura) बहुत घना होता है, लगभग एक फुट से दो फुट व्यास का होता है और द्रव–स्वर्ण (liquid gold) जैसा दिखाई पड़ता है। बाह्य आभा मण्डल लगभग छह से आठ मीटर व्यास का होता है। जिन्सैंग में बहुत मात्रा में प्राण ऊर्जा होती है तथा काफी मात्रा में कृत्रिम ऊर्जा (Synthetic ki) भी होती है। उप–नाभि चक्रों में कृत्रिम ऊर्जा का बहुत अधिक बढ़ जाना एक तो नाभि चक्र के अधिक सक्रिय हो जाने के फलस्वरूप होता है और दूसरे जिन्सैंग के अन्दर ही निहित कृत्रिम ऊर्जा के कारण होता है।

(५) स्वच्छीकरण, अधिक सक्रियकरण व ऊर्जीकरण प्रभाव

चूंकि जिन्सैंग भूरे से पदार्थ को निकालता है, इसलिए इसका स्वच्छीकरण (cleansing) प्रभाव पड़ता है। उपयोग हुई ऊर्जा के निष्कासन एवम् ताजा प्राण ऊर्जा को हजम करने के लिए यह अधिक अच्छा रहता यदि जिन्सैंग के सेवन के पश्चात् तुरन्त ही व्यायाम किया जाए। मुख्य चक्रों और वायवी शरीर (ऊर्जा शरीर) के अधिक चमकीले, अधिक बड़े और अधिक घने हो जाने के कारण, इसका सक्रिय करने और ऊर्जन करने का प्रभाव पड़ता है। इस कारण से शरीर के विभिन्न अंग जिनको मुख्य

चक्र नियंत्रित व ऊर्जित करते हैं, वे भी स्वच्छ अधिक सक्रिय और ऊर्जित हो जाते हैं।

(६) जिन्सैंग का उपचार में उपयोग

प्रयोगों के उपर्युक्त निष्कर्षो के कारण यह स्पष्ट हो जाता है कि चीनी और कोरियाई लोग जिन्सैंग को क्यों अधिक आदर देते हैं। बहुत से चीनी और कोरियाई अपने स्वास्थ्य के संरक्षण व सुधारने हेतु, इसको नियमित रूप से लेते हैं। अनेक प्रकार के रोगों में, किसी विशेष अंग के उपचार हेतु जड़ी-बूटियों के साथ-साथ जिन्सैंग भी चीनी दवाओं में निर्धारित (prescribe) किया जाता है। अन्य जड़ी बूटियों के साथ जिन्सैंग व्यवहारिक रूप से सबको ठीक करने वाली (cure all) दवा समझी जाती है।

(७) उपचारक और रोगी के लिए परामर्श

यद्यपि यह आवश्यक तो नहीं है, किन्तु यदि उपचारक अधिक रोगियों के उपचार से पहले तथा बाद में, जिन्सैंग की एक ग्राम मात्रा का सेवन करे, इससे उसका ऊर्जा का स्तर बढ़ेगा और उसकी उपचार करने की योग्यता भी बढ़ेगी। जो रोगी बहुत कमजोर हों, वे यदि उपचारक द्वारा उपचार किए जाने के पूर्व, एक से दो ग्राम जिन्सैंग का सेवन करें तो उनको लाभप्रद होगा।

अध्याय -- ३३

दिव्य उपचार

Chapter XXXIII

Divine Healing

अध्याय – ३३

दिव्य उपचार
Divine Healing

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	भूमिका – Introduction	५.५२०
२.	दिव्य ऊर्जा को प्राप्त करने की योग्यता – Qualifications for receiving the Divine Energy	५.५२१
३.	दिव्य ऊर्जा के ग्राह्यता की स्वीकृति – Affirmation for Receptinity	५.५२१
४.	उपचारक द्वारा प्रार्थना Invocation by the Healer	५.५२१
५.	उपचारक द्वारा दिव्य ऊर्जा ग्रहण करने की विधि– Procedure for receiving the Divine Energy	५.५२२
६.	eV द्वारा उपचारक क्या करता है। What is done by the Healer with eV	५.५२२
७.	उपचार की विधि	५.५२३
८.	आश्चर्यजनक दिव्य उपचार की तकनीक	५.५२४
९.	सामूहिक उपचार	५.५२६
१०.	दूरस्थ सामूहिक उपचार	५.५२६
११.	निदेशित उपचार एवम् दिव्य उपचार का एकीकरण– Combination of Instructive Healing and Divine Healing	५.५२८
१२.	धार्मिक संस्कारित पवित्र पदार्थ के माध्यम से उपचार– Eucharistics Healing	५.५२९

दिव्य उपचार
Divine Healing

(१) भूमिका– Introduction

दिव्य उपचार में दिव्य ऊर्जा द्वारा उपचार किया जाता है। सर्वशक्तिमान प्रभु से प्रार्थना करके यह दिव्य ऊर्जा उपचारक के आत्मा, फिर उसके वायवी शरीर, रोगी के वायवी शरीर और अन्त में रोगी के भौतिक शरीर में प्रवेश करती है। दिव्य उपचार अनेक धर्मों वाले करते हैं। यह प्राणशक्ति की एक उच्च श्रेणी है।

दिव्य ऊर्जा एक विद्युतीय बैंगनी रंग का प्रकाश अथवा अत्यन्त तेज सफेद प्रकाश के रूप में देखी जाती है। सामान्य तौर पर, इसको गम्भीर रोगों के उपचार के उपयोग में लाते हैं, न कि सामान्य रोगों में। सामान्य रोगों में इसका उपयोग इस प्रकार होगा कि जैसे ईंधन के तौर पर कोयले के स्थान पर हीरे को जलाएं और जो एक प्रकार से उसका दुरुपयोग होगा। आम तौर पर जब किसी उपचारक को अल्प समय में बहुत से सामान्य तथा गम्भीर रोगों से ग्रसित रोगियों का उपचार करना होता है, तब दिव्य उपचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त यदि रोगी की दशा तीव्र गति से बिगड़ती जा रही हो और साधारण तौर पर यथोचित प्राण चिकित्सा करने का समय उपलब्ध न हो, तब भी दिव्य उपचार किया जा सकता है।

eV की एक अपनी ही चेतना होती है। उसको पता होता है कि कहां जाना है और क्या करना है। उदाहरण के तौर पर, यदि eV को 9 में प्रेषित किया जाए, तो वह प्रभावित चक्रों और प्रभावित भागों में जाकर रोगग्रस्त ऊर्जा को बाहर निकाल देगी। अति/कम चक्रों को संकुचित/सक्रिय करके सामान्य करेगी। कमजोर अंगों को मजबूत करेगी और जिन अंगों में सूजन है, उनमें शांति पहुंचाएगी।

(२) **दिव्य ऊर्जा को प्राप्त करने की योग्यता– Qualifications for receiving the Divine Energy**

उपचारक को उन्नत प्राणशक्ति उपचार एवम् मनोरोग प्राणशक्ति उपचार में साधारण दक्षता एवम् अनुभव होना आवश्यक है। यदि रत्नों द्वारा प्राणशक्ति उपचार का भी थोड़ा ज्ञान व अनुभव हो, तो यह और भी अत्युत्तम होगा।

इसके अतिरिक्त उसकी ईश्वर में अटूट आस्था एवम् भक्ति, उच्च श्रेणी की सच्चरित्रता तथा संयमपूर्वक जीवन भी आवश्यक है।

(३) **दिव्य ऊर्जा के ग्राह्यता की स्वीकृति– Affirmation for Receptivity**

दिव्य उपचारी ऊर्जा बहुत शक्तिशाली होती है, किन्तु बहुत सूक्ष्म तथा गूढ़ होती है। शीघ्र उपचार के लिए रोगी को अति ग्रहणशील होना पड़ेगा, अन्यथा उपचार धीमी गति से होगा। यदि रोगी बिल्कुल ही ग्रहणशील नहीं है, तो उपचार होगा ही नहीं। ऐसे केसों में W या साधारण रंगीन प्राणों का प्रयोग श्रेयस्कर होगा। अग्रहणशील रोगियों को ये प्राण इसलिए ज्यादा उपयोगी होंगे क्योंकि वे eV से अधिक स्थूल हैं।

रोगी की ग्राह्यता उसके द्वारा तीन बार निम्न प्रार्थना मौन अथवा मौखिक रूप से कहने से बढ़ सकती है :

"हे प्रभु, मैं आपसे दिव्य आशीर्वाद तथा उपचार के लिए प्रार्थना करता हूं। मैं दिव्य उपचारी ऊर्जा को पूर्णरूपेण स्वीकार करता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

(४) **उपचारक द्वारा प्रार्थना– Invocation by the Healer**

उपचार करने से पूर्व , उपचारक मौनपूर्वक निम्न प्रार्थना तीन बार करे–

"हे प्रभु, मैं विनम्रतापूर्वक आपके दिव्य मार्गदर्शन, दिव्य उपचार और दिव्य सुरक्षा के लिए प्रार्थना करता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

इसके अतिरिक्त निम्न प्रार्थना भी तीन बार करें।

"हे आध्यात्मिक गुरुओ, उपचारक गुरुओ और उपचारक देवदूतो, मैं विनम्रतापूर्वक आपके दिव्य मार्गदर्शन, दिव्य उपचार और दिव्य सुरक्षा के लिए प्रार्थना करता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

उपचारक अपनी कोई अन्य प्रार्थना भी कर सकता है, अथवा इसका संशोधन कर सकता है।

(५) **उपचारक द्वारा दिव्य ऊर्जा ग्रहण करने की विधि–**
Procedure for receiving the Divine Energy by the Healer

(क) **साधारण शक्तिशाली उपचारक के लिए**

11 की तकनीक द्वारा

(ख) **अधिक शक्तिशाली उपचारक के लिए**

7 का हल्का सा स्पर्श करते हुए, 11 की तकनीक द्वारा। 7 को स्पर्श करने से ऊर्जा की अत्यधिक शक्ति थोड़ी सी कम पड़ जाती है, अन्यथा रोगी कमजोर हो सकता है या मूर्छित हो सकता है।

(ग) **अत्यधिक शक्तिशाली उपचारक के लिए, जिनके अन्तःकरण की डोरी उनके सिर से भी अधिक मोटी है**

7 का स्पर्श करते हुए 10 की तकनीक द्वारा। अत्यधिक शक्तिशाली उपचारक के द्वारा इस प्रकार ग्राह्य eV अपेक्षाकृत मृदु, सुरक्षित और अधिक प्रभावी होती है। ऐसे लोग 11 की तकनीक से eV ग्रहण करेंगे, तो वह रोगी के शरीर पर अत्यधिक हावी हो जाएगी और उपचार की गति धीमी हो जाएगी।

(घ) **दिव्य ऊर्जा अन्य चक्रों के माध्यम से ग्रहण करना**

9 द्वारा। इसके अतिरिक्त 7b के माध्यम से 7 द्वारा।

(६) **उपचारक क्या करता है – What is done by the Healer with eV**

(क) प्रभावित चक्रों एवम् अंगों की सफाई तथा ऊर्जन। नीचे के चक्रों की अपेक्षा ऊपर के चक्र eV को अधिक ग्रहण करते हैं। जो स्थूल रोगी

हैं, अर्थात जो अधिक धार्मिक प्रवृत्ति के नहीं हैं, उनके नीचे के चक्र सीधा ऊर्जन करने पर eV को बिल्कुल ही ग्रहण नहीं करते।

(ख) 7b के माध्यम से, 9, 10 अथवा 11 द्वारा eV ग्रहण करके, उपचारक उसको रोगी के शरीर के विभिन्न अंगों में भेज सकता है। इसमें उपचारक ग्रहण करने वाले चक्र से eV को शरीर के सभी भागों में, विशेष तौर पर प्रभावित चक्रों और भागों में, फैलते हुए दृश्यीकृत करता है। एक शक्तिशाली उपचारक अपनी हथेली द्वारा 7b को ठोकते हुए अतिशीघ्र eV की बहुत ही अत्यधिक मात्रा रोगी के शरीर में प्रवेश करा सकता है।

(ग) दिव्य ऊर्जा को धीरे–धीरे या शीघ्रता से जैसे चाहें, प्रेषण किया जा सकता है। यदि यह अति शीघ्र किया जाये, तो रोगी को चक्कर आ सकते हैं अथवा वह मूर्छित हो सकता है। इसी कारण से दिव्य उपचार में अपनी हथेली को रोगी के 9 या 10 को हल्के से स्पर्श करते हुए अथवा ठोकर मारते हुए, जब अत्यधिक दिव्य ऊर्जा का प्रेषण किया जाता है, तो रोगी मूर्छित हो सकता है.

(७) उपचार की विधि

(क) उक्त क्रम (३) में वर्णित प्रार्थना रोगी एवम् क्रम (४) में वर्णित प्रार्थना उपचारक करे।

(ख) उपचारक अत्यधिक चमकती हुई सफेद प्रकाश अथवा विद्युतीय बैंगनी प्रकाश ऊपर से रोगी के 11 में प्रवेश करते हुए एवम् उसके शरीर के समस्त भागों में फैलती हुई दृश्यीकृत करे।

(ग) जब तक रोगी का शरीर दिव्य ऊर्जा को पूरी तरह इस्तेमाल करले, तब तक उसको (दिव्य ऊर्जा को) रोगी के साथ ही रहने के लिए उपचारक उससे मानसिक रूप से निवेदन करे।

(घ) उपचार के अन्त में रोगी व उपचारक दोनों ही निम्न प्रार्थना करें :

रोगी के लिए–

"हे प्रभु, मैं विनम्रता पूर्वक आपके दिव्य आशीर्वाद तथा उपचार के लिए धन्यवाद देता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।" (तीन बार)

उपचारक के लिए–

"हे प्रभु, मैं विनम्रतापूर्वक आपके दिव्य मार्गदर्शन, दिव्य उपचार और दिव्य सुरक्षा के लिए धन्यवाद देता हूं। मेरे मन, वचन, काय द्वारा उपचार में जो भी गल्तियां हुई हों उनके लिए मैं आपसे क्षमा मांगता हूं और आपसे प्रार्थना करता हूं कि इससे रोगी को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।" (तीन बार, तदुपरान्त)

"हे आध्यात्मिक गुरुओ, उपचारक गुरुओ और उपचारक देवदूतो, मैं विनम्रतापूर्वक आपके दिव्य मार्गदर्शन, दिव्य उपचार और दिव्य सुरक्षा के लिए धन्यवाद देता हूं। मेरे, मन, वचन, काय द्वारा उपचार में जो भी गल्तियां हुई हों, उनके लिए मैं आपसे क्षमा मांगता हूं और आपसे प्रार्थना करता हूं कि इससे रोगी को किसी प्रकार की हानि न पहुंचे। (तीन बार)

धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।"

(ङ) जब तक आवश्यक्ता हो, उपचार सप्ताह में कई बार दोहराइए।

(८) आश्चर्यजनक दिव्य उपचार की तकनीक

यह तकनीक उन रोगियों पर अपनायी जा सकती है, जिनको ईश्वर तथा अन्य आध्यात्मिक गुरुओं आदि के प्रति अति सम्मान व भक्ति हो। इन भावनाओं से वायवी शरीर काफी साधारण बैंगनी प्राण ऊर्जा उत्पन्न करता है। इसी कारण से बैंगनी रंग का अध्यात्म से सम्बन्ध होता है। साधारण बैंगनी प्राण से शरीर एवम् वायवी शरीर दोनों के ही दिव्य ऊर्जा अथवा eV को ग्रहण करने की अत्यधिक क्षमता हो जाती है। इस प्रकार आश्चर्यजनक उपचार होता है। वह व्यक्ति जो ईश्वर एवम् आध्यात्मिक गुरुओं आदि की आलोचना करते रहते हैं

तथा उनके प्रति कोई सम्मान नहीं करते, पर्याप्त साधारण बैंगनी प्राण उत्पन्न नहीं कर पाते। ऐसे व्यक्तियों में जब eV प्रेषित की जाती है तो उनकी प्रतिक्रिया या तो बहुत ही कम होती है या होती ही नहीं है। इसके परिणामस्वरूप उनके उपचार की गति धीमी या बिल्कुल ही नहीं होती है। यदि रोगी को साधारण बैंगनी ऊर्जा से ऊर्जित करके तब eV से ऊर्जित किया जाए, तब हम आश्चर्यजनक दिव्य उपचार के लिए उचित परिस्थितियों के समान सदृश्यता उत्पन्न कर सकते हैं।

इस तकनीक को केवल अनुभवी उन्नतशील प्राणशक्ति उपचारक ही करें, न कि प्रारम्भिक उपचारक। उपचारक को अपने आन्तरिक मार्गदर्शन के प्रति अधिक संवेदनशील होना पड़ेगा, तभी वह इस तकनीक का उपयोग कर सकता है। इस उपचार को करने से पहले दिव्य आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करना अत्यावश्यक है।

यह तकनीक अति शक्तिशाली है और निम्न चक्रों पर इसका उपयोग नहीं करना चाहिए।

(क) 3 -- इससे उच्च रक्तचाप हो सकता है।

(ख) 1, 2 तथा p -- यह 1 पर करने से उसको अधिक सक्रिय करके, रोगी को बेचैन कर सकता है। इसके द्वसरा कुण्डलिनी ऊर्जा को गलत ढंग से जाग्रत करने की प्रवृत्ति होती है, जिससे शारीरिक और मनावैज्ञानिक समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। 2 पर करने से उसको अत्यधिक सक्रिय करके, यौनेच्छा अत्यधिक बढ़ जाती है जिससे गम्भीर पति--पत्नी सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं।

(ग) 5 -- इससे ऊर्जा शरीर पर प्राण का घनापन छा सकता है।

(घ) 7f या छाती के क्षेत्र पर -- इससे 7 अत्यधिक सक्रिय हो सकता है और उस पर घनापन हो सकता है, जिससे हृदय की समस्यायें हो सकती हैं।

उपचार में V : eV की मात्रा का अनुपात ४ : १ है। जैसे-जैसे शक्तिशाली होता जाता है, वैसे-वैसे यह ३ : १ तक बढ़ाया जा

सकता है। वास्तव में इस तकनीक का उचित उपयोग अनुभव से ही सीखा जा सकता है। ज्यादा ऊर्जन से रोगी में विपरीत प्रतिक्रिया हो सकती है और उसकी दशा खराब हो सकती है। कम ऊर्जन करने से वह या तो ठीक न हो पावे अथवा उपचार आशाजनक आश्चर्यकारी न हो।

उपचारक प्राण ऊर्जाओं को उपचार सम्बन्धी उचित निर्देश दे अथवा उचित निवेदन करे एवम् आवश्यक दृश्यीकरण करे।

(९) **सामूहिक उपचार– Mass Healing**

एक उन्नत शक्तिशाली उपचारक दिव्य उपचारी ऊर्जा से अनेक रोगियों का सामूहिक उपचार कर सकता है।

(क) मानसिक रूप से शान्तिपूर्वक दिव्य उपचार और सुरक्षा के लिए आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करिए।

(ख) सभी रोगियों को मानसिक या मौखिक रूप से दिव्य उपचार की ग्रहणशीलता की स्वीकृति के लिए प्रार्थना करने के लिए निर्देशित कीजिए।

(ग) एक साथ ही अपने 11 तथा 7 पर ध्यान केन्द्रित करिए। दिव्य ऊर्जा ऊपर से 11 द्वारा ग्रहण करके, फिर 7f द्वारा प्रेषित करिए, फिर हाथों से प्रेषित करिए।

(घ) उक्त के साथ ही समस्त रोगियों को अत्यधिक चमकती हुई सफेद प्रकाश या विद्युतीय बैंगनी रंग के प्रकाश के सागर में नहाते हुए दृश्यीकृत करिए। ऐसा कई मिनटों तक करिए।

(ङ) धन्यवाद ज्ञापन कीजिए।

इसका चित्रण चित्र ५.२७ में किया गया है।

(१०) **दूरस्थ सामूहिक उपचार– Distant Mass Healing**

(क) रोगों को पूर्व सूचना दीजिए कि अमुक तारीख को अमुक समय पर दूरस्थ उपचार किया जाएगा। वे निर्धारित समय पर आराम से बैठें,

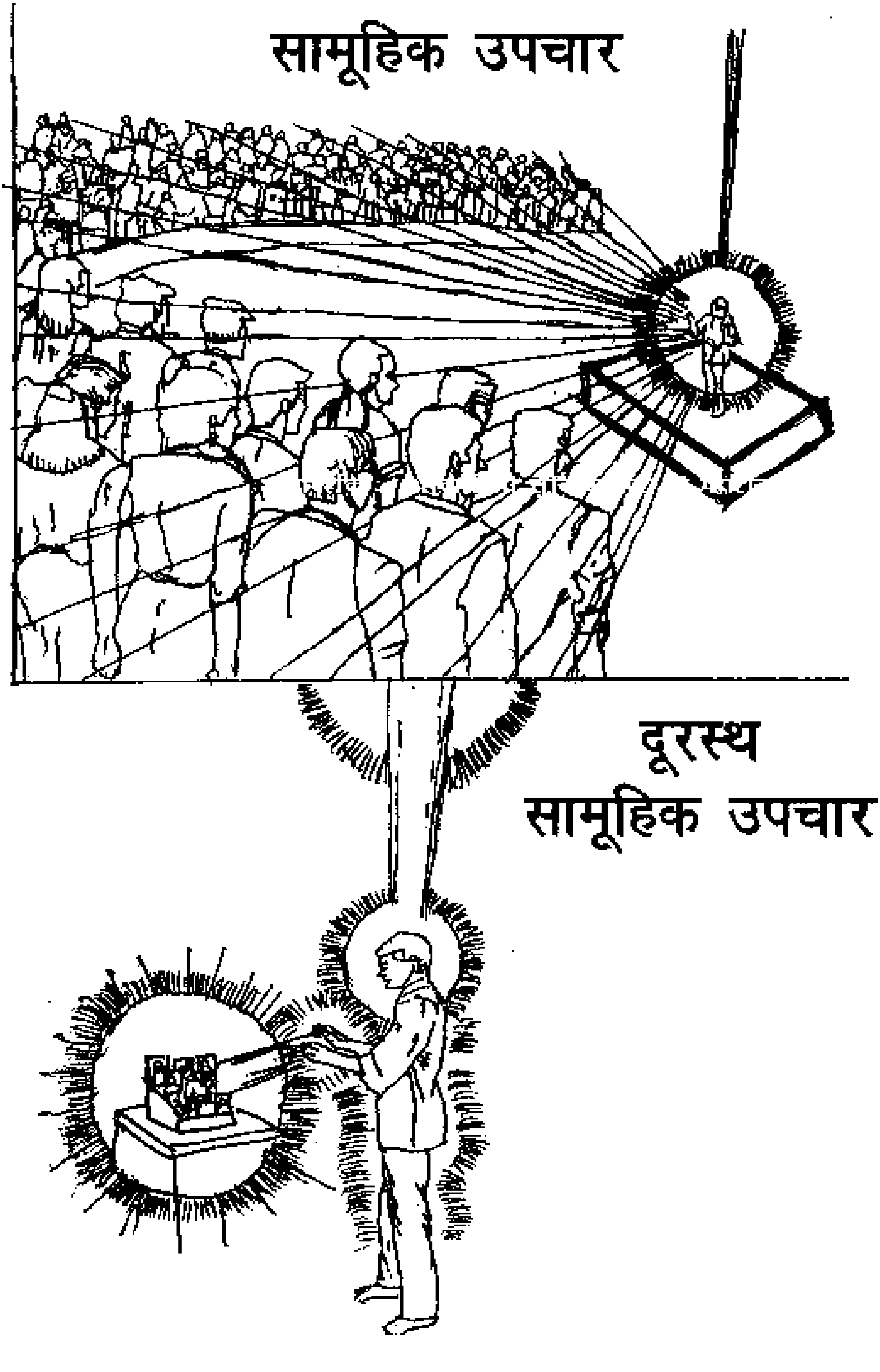

चित्र ५.२७

मौन पूर्वक या मौखिक तौर पर उपचार की ग्रहणशीलता की स्वीकृति के लिए प्रार्थना करें। फिर पांच मिनट प्रतीक्षा करें।

(ख) उपचारक के पास प्रत्येक रोगी की फोटो होनी चाहिए। निर्धारित समय पर उन फोटों को एक के बाद छुएं। इससे रोगियों के साथ एक मजबूत वायवी सम्बन्ध स्थापित होगा।

(ग) उक्त क्रम (६) (क) के अनुसार करिए।

(घ) एक साथ ही अपने 11 तथा 7 पर ध्यान केन्द्रित करिए। दिव्य ऊर्जा ऊपर से 11 द्वारा ग्रहण करके, फिर 7 द्वारा हाथों में ग्रहण कीजिए। eV को चित्रों पर एक या दो मिनट तक प्रेषित कीजिए।

(ङ) मानसिक रूप से दिव्य उपचारक ऊर्जा से निवेदन कीजिए कि रोगियों के पास तब तक रहे, जब तक वे उसका पूर्णरुपेण उपयोग नहीं कर लेते।

(च) धन्यवाद ज्ञापन कीजिए।

(छ) जब तक आवश्यक हो, तब तक उपचार सप्ताह में दो या तीन बार कीजिए। इसका चित्रण चित्र ५.२७ में किया गया है।

(११) निदेशित उपचार एवम् दिव्य उपचार का एकीकरण– Combination of Instructive Healing and Divine Healing

उपचार या तो सामूहिक रूप से किया जाता है या व्यक्तिगत रूप से। उपचारक दिव्य उपचारी ऊर्जा और दिव्य सुरक्षा के लिए एक छोटी सी प्रार्थना कहता है। फिर उपचारक जोर से मौखिक रूप से दृढ़ विश्वास के साथ कहता है "हे प्रभु, आपको इस रोगी (अथवा सभी रोगियों) का उपचार करने के लिए धन्यवाद। तुम (रोगी/रोगियों) मानसिक, भावनात्मक, वायवी और भौतिक रूप से स्वच्छीकृत और ठीक किए जा रहे हो। तुम्हारा .... (प्रभावित अंग या भाग का नाम लीजिए) स्वच्छीकृत, ऊर्जित और ठीक किया जा रहा है। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।

इस उच्चारण को एक बार या अनेक बार किया जाता है। रोगियों को मानसिक या मौखिक रूप से उपचार की ग्रहणशीलता की स्वीकृति को उच्चारित करके सहयोग प्रदान करना चाहिए।

(नोट– निदेशित उपचार का कथन अध्याय २६ में वर्णित है)

दिव्य दर्शन से देखा गया है कि उक्त दशा में, उपचारक दिव्य उपचारी ऊर्जा को रोगी को प्रेषित कर रहा होता है, चाहे रोगी को इस बार की संज्ञानता हो या न हो।

(१२) धार्मिक संस्कारित पवित्र पदार्थ के माध्यम से उपचार– Eucharistic (यूकैरिस्टिक) Healing

यह उपचार वास्तविक रूप में अत्यन्त पवित्र होता है। जब इस कार्य के योग्य किसी पदार्थ का पवित्रीकरण (consecration) किया जाता है, तो बहुत अत्यधिक मात्रा में दिव्य ऊर्जा चमकदार विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा के रूप में आती है। इससे वे पदार्थ छोटे-छोटे ज्वाला निकलते हुए 'सूर्यों' में परिवर्तित हो जाते हैं। इस उपचार के लिए व्यक्ति को बहुत अधिक आध्यात्मिक रूप से उन्नत एवम् उच्च आत्मोन्नत होना आवश्यक है।

जब पवित्र पदार्थ को समुचित संज्ञान, भक्ति और कृतज्ञता पूर्वक ग्रहण किया जाता है, तो रोगी का दिव्य मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक उपचार होता है। यह परामर्श दिया जाता है कि रोगी मानसिक रूप से शांतिपूर्वक उपचार की ग्रहणशीलता की स्वीकृति और उसके लिए धन्यवाद करे, "हे प्रभु, मैं दिव्य आशीर्वाद और दिव्य उपचार को पूर्णतया स्वीकार करता हूं। मैं मानसिक, भावनात्मक और शारीरिक रूप से तेरी दिव्य उपचारी ऊर्जा को स्वीकार करता हूं। धन्यवाद सहित और पूर्ण विश्वास के साथ।" इस प्रार्थना को तीन बार दोहराइए, फिर अन्दर से शान्तचित्त रहिए। आन्तरिक रूप जो कुछ हो रहा है, उसके प्रति चौकन्ने रहिए। कुछ केसों में, रोगी अपने शरीर के अन्दर प्रकाश को भरे हुए देखेगा और दिव्य परमानन्द, दिव्य विभोरता और दिव्य प्रकाश का अनुभव करेगा। गम्भीर केसों में जब तक आवश्यक्ता हो, रोगी सप्ताह में तीन या अधिक बार करे। इस प्रकार के उपचार से भौतिक और

मनो/मनोवैज्ञानिक रोगों और भावनात्मक आघातों अथवा दर्द को ठीक किया जा सकता है।

यूकैरिस्टिक उपचार को उपचारक भी रोगी पर आजमा सकता है। ग्रहण करने वाले हाथ को पवित्र पदार्थ की ओर करके, उससे दिव्य उपचारी ऊर्जा को ग्रहण करके, दूसरे हाथ से रोगी का स्वच्छीकरण एवम् ऊर्जन करे। गम्भीर केसों में, उपचार को दोहराइए।

उक्त कथन का आशय यूकैरिस्टिक उपचार की वैज्ञानिक प्रक्रिया स्पष्ट करने का है। जिन पदार्थों को इस प्रकार के उपचार में लिया जा सकता है, अथवा लिया जाता है, वे किसी सिद्धक्षेत्र की पवित्र रज, किसी अतिशय क्षेत्र की पवित्र रज, किसी साधु के द्वारा स्पर्शित वायु एवम् रज, पवित्रीकृत गण्डा/तावीज, श्री जिन प्रतिमा के चरणों से स्पर्शित पवित्र गन्धोदक अथवा किसी विशेष पुण्यशाली से स्पर्शित पदार्थ आदि हो सकते हैं। जैन शास्त्रों के आधार पर निम्न उदाहरण हैं:–

उद्‌भूत भीषण–जलोदर–भार भुग्ना :
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशा :।
त्वत्पाद पङ्कज रजोऽमृत दिग्ध देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज तुल्य रूपा :।। ४५।।

भावार्थ– जिन मनुष्यों को अत्यन्त भयंकर जलोदर रोग उत्पन्न हो गया हो, जो नितान्त शोचनीय अवस्था को प्राप्त होकर जीने की आशा छोड़ चुके हों वे यदि आपके चरण कमलों की विभूति (भभूति) अमृत मानकर लपेट लेते हैं तो वे सचमुच ही कामदेव के समान स्वरूपवान बन जाते हैं। (भक्तामर स्तोत्र से उद्‌धृत)

(ख) मैनासुन्दरी के गन्धोदक श्रीपाल व उसके साथियों पर छिड़कने के फलस्वरूप उनके कुष्ठ रोग से मुक्ति होकर परम सुन्दर शरीर हो जाना। (सन्दर्भ : श्रीपाल चरित्र– स्व० कवि परिमल्ल कृत पद्य ग्रन्थ का पं. दीपचन्द्र जी वर्णी द्वारा हिन्दी भाषा में अनुवाद)

(ग) पूज्य श्री १०८ शुभचन्द्राचार्य के चरण की धूल से चट्टान का स्वर्णमयी हो जाना।

(घ) सन् १६४५ में ऐलक श्री सुबल महाराज अपने गृहस्थावस्था (उस समय का नाम पायगौंडा सत्यगौंडा पाटील) में जब थे तो एक भयंकर सर्प ने उन्हें काट लिया था, जिसके कारण उनके शरीर में अपार दाह हो रही थी, प्यास की वेदना हो रही थी। उस समय तत्कालीन क्षुल्लक समंतभद्र जी तथा कीर्तनकार जिन गोंडा मांगूरकर ने भक्तिपूर्वक विषापहार स्तोत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। उस समय जिन भगवान का पंचामृत अभिषेक भी किया गया था। ऋषिमंडल का जाप भी चल रहा था। अभिषेक तथा शांतिधारा पूर्ण होने पर अभिषेक का जल जब श्री पायगौंडा सत्यगौंडा पाटील पर डाला गया तो तत्काल सारी वेदना दूर हो गयी। (सन्दर्भः चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर जी– लेखक पं सुमेरुचन्द दिवाकर पृष्ठ ६६-७०)

(ङ) बरार प्राप्त के अमरावती जिले के हिबरखेड़ा ग्राम में भगवान पार्श्वनाथ के अभिषेक के जल के फलस्वरूप वहां के जैन मन्दिर के कर्मचारी को सर्प काटने से चढ़े हुए विष का उतर जाना।

(सन्दर्भः उक्त "चारित्र चक्रवर्ती– पृष्ठ ७०)

(च) कुरु देश की राजधानी हस्तिनापुर का राजा विनयधर को एक बार महारोग हो गया। राजा ने बड़े-बड़े वैद्यों से चिकित्सा करवाई, किन्तु कोई फल नहीं हुआ। राजा का सिद्धार्थ नामक मंत्री था, जो शुद्ध सम्यग्दर्शन का धारक जैनी था। एक दिन उसने सर्वौषधि ऋद्धि के धारक मुनिराज के पाद- प्रक्षालन का जल लाकर राजा को दिया। जिनेन्द्र भक्त राजा ने श्रद्धापूर्वक उस जल को ग्रहण किया। जल पीते ही उनका रोग नष्ट हो गया।

(सन्दर्भ : आराधना कथा कोष, तीसरा भाग, पृष्ठ ४७– लेखक ब्रह्मचारी श्री नेम दत्त जी)

(छ) ऐसा सुना गया है कि बीसवीं शताब्दी में श्री गुरुवर मुनि महाराज के शरीर से स्पर्शित वायु द्वारा एक व्यक्ति जिसको श्मसान में चिता पर लिटा दिया गया था, जी उठा था।

(सन्दर्भ: पूज्य आचार्य श्री १०८ नेमिसागर जी का उपदेश)

(ज) राजा द्रोण की पुत्री विशल्या (जो बाद में लक्ष्मण की पत्नी बनी) के स्पर्शित जल से युद्ध में निर्जीव प्रायः लक्ष्मण तथा अन्य घायल राजाओं का ठीक हो जाना (सन्दर्भ: जैन रामायण– रचियता महाकवि खुशालचन्द जी, हिन्दी भाष्यकार चारित्र शिरोमणि आचार्य श्री १०८ ज्ञान सागर जी)

(१३) महामंत्रों की साधना एवम् पीठ से दिव्य ऊर्जा

महामंत्रों में णमोकार मंत्रादि की साधना में अपने स्व–शरीर का नियंत्रण, मन–वचन– काय की एकाग्रता एवम् पीठ में श्मसान पीठ, शव पीठ, अरण्य पीठ, श्यामा पीठ आदि का उल्लेख जिन शासन में आत्मा ऊर्जा के लिए प्राप्त है।

(आधार: जैन धर्म की रहस्यमयी गुप्त विद्यायें-संग्रहकर्ता-पूज्य आचार्य श्री १०८ दयासागर जी महराज)

अध्याय — ३४

बेहतर स्वास्थ्य के लिए मार्गदर्शन तथा निवारक चिकित्सा

Chapter XXXIV

Guide to Better Health and Preventive Healing

बेहतर स्वास्थ्य के लिए मार्गदर्शन तथा निवारक चिकित्सा – Guide to Better Health and Preventive Healing

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	उचित आहार–जल – Proper Diet / Water	५.५३५
२.	उचित निवास– Proper Residence	५.५३५
३.	उचित श्वसन– Proper Breathing	५.५३५
४.	उचित व्यायाम– Proper Exercises	५.५३६
५.	उचित जीविका– Proper Livelihood	५.५३६
६.	उचित वायवी स्वच्छता– Proper Etheric Hygiene	५.५३६
७.	उचित भावनायें एवम् विचार (भावनात्मक और मानसिक स्वच्छता)– Proper Emotions and Thoughts (Emotional and Mental Hygiene)	५.५३८
८.	क्षमा और करुणा – Forgiveness and Kindness	५.५३८
९.	उचित मानवीय संबंध– Proper Human Relationships	५.५३८
१०.	उचित जीवन –शैली– Proper Life style	५.५३९
११.	निवारक प्राणशक्ति उपचार– Preventive Pranic Treatment	५.५३९
१२.	बेहतर स्वास्थ्य के लिए प्राणशक्ति उपचार की समग्र राह– Integrated approach of Pranic Treatment for better health	५.५४०

बेहतर स्वास्थ्य के लिए मार्गदर्शन तथा निवारक चिकित्सा – Guide to Better Health and Preventive Healing

(१) **उचित आहार-जल – Proper diet /water**

(क) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से शुद्ध आहार

(ख) पोषण युक्त (Nutritions) आहार

(ग) धूल, कीटाणु, रासायनिक, विषाक्त पदार्थों से रहित

(घ) समय-समय पर अनशन व उपवास करना चाहिए

(ङ) जल छना हुआ – हो सके, तो एक्वागार्ड (Aquaguard) द्वारा साफ किया हुआ।

(च) मौसम में जो स्वाभाविक रूप से फल, सब्जियां आती हैं, उनका पर्याप्त सेवन

(छ) आटा चोकर सहित

(२) **उचित निवास – Proper Residence**

(क) जहां वायु दूषित एवम् संक्रमित न हो

(ख) जहां धूप का सेवन हो सके

(ग) जहां धार्मिक दैनिक क्रियाओं को करने में अड़चन न हो

(घ) आसपास श्मसान, कसाईखानादि न हो

(३) **उचित श्वसन – Proper Breathing**

प्राणिक श्वसन प्राकृतिक है। जब कोई बच्चा जन्म लेता है, तो वह पेट से श्वास (abdominal breathing) लेता है। बड़े होने पर यह छाती से कब लेने लगता है, पता ही नहीं चलता। पेट से सांस लेने में अधिक ताजी हवा आती है, और अधिक दूषित हवा बाहर निकलती है। इसलिए इस प्रकार के श्वसन को अक्सर करते रहिए। इससे आपका ऊर्जा स्तर भी बढ़ता है। इसके सीखने की विधि अध्याय ५ के क्रम संख्या २ में दी गयी है।

व्यायाम

(४) उचित श्वसन — Proper Breathing Exercises

प्रातः भ्रमण, व्यायाम, योगासन का कथन हम भाग ३ में कर आये हैं। प्राणिक व्यायाम का कथन इस भाग के अध्याय ३ के क्रम संख्या २ (क) "वायवी शरीर की सफाई" के अन्तर्गत किया गया है। इन सभी को यदि करेंगे, तो काफी समय लग जायेगा। प्रतिदिन कम से कम आधा घंटा से लेकर दो घंटा तक इन सब में समय लगायें। यह इस बात पर निर्भर करता है कि आपके दिनचर्या के अनुरूप आप किना समय निकाल पाते हैं। सभी उक्त शारीरिक क्रियाओं/ व्यायामों में से आप अपने चुनाव तथा लाभ के अनुसार, निर्धारित समय में व्यायाम करें, किन्तु कुछ समय के लिए प्रातः भ्रमण तो अवश्य ही करें।

(५) उचित जीविका— Proper Livelihood

आप अपने जीवन में किसी ऐसे नौकरी, व्यवसाय, जीविकादि से न जुड़ें, जिसमें हिंसा होती है, जैसे मद्य, मांस, मधु, अंडा, चमड़ा का या इनसे बने पदार्थ का व्यवसाय अथवा इनसे सम्बन्धित नौकरी आदि। आपकी जीविका का आपकी भावनाओं पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

यदि आप किसी ऐसे जीविका से जुड़े हैं, जहां काम का बहुत अधिक दबाब है, चिन्ताएं आदि हैं, तो इनसे तीव्र अथवा गम्भीर प्रकृति के तनाव आदि पैदा हो जाते हैं, जिनसे शरीर पर कुप्रभाव पड़ता है। इनसे बचने के लिए "ध्यान" का सहारा लीजिए— जैसे धार्मिक ध्यान अथवा द्वि–हृदय पर ध्यान–चिन्तन। इसका विवरण क्रमशः भाग १ तथा इस भाग के अध्याय ३ में दिया है।

(६) उचित वायवी स्वच्छता — Proper Etheric Hygiene

स्वच्छता में शारीरिक, वायवी, भावनात्मक एवम् मानसिक स्वच्छतायें सारगर्भित हैं। यहां इस प्रकरण में वायवी स्वच्छता पर बल दिया है। इसके लिए

(क) धूम्रपान से बचें— इससे शारीरिक व वायवी शरीर गंदा हो जाते हैं। लगातार धूम्रपान से गंदी बादामी ऊर्जा शरीर में भर जाती है ; जिससे बहुत सी वायवी नाड़ियां अवरुद्ध हो जाती हैं और उससे शारीरिक कमजोरी आती है। रीढ़ की हड्डी में पीछे की नाड़ी के आंशिक अवरुद्धता के कारण 6b, 3 तथा 1 पर घनापन आता है और वे अति सक्रिय हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप उच्च

रक्तचाप हो सकता है। वायवी फैंफड़े एवम् 7b बहुत अधिक गंदे होते हैं और उन पर कुप्रभाव पड़ता है। 7f गंदे 7b से घनिष्ठता पूर्वक सम्बन्धित होता है, जो हृदय को प्रभावित करता है।

(ख) मद्यपान से बचें– इससे समस्त वायवी शरीर गंदा और भद्दा हो जाता है। इनसे वायवी शरीर को क्षति पहुंचती है, जिससे व्यक्ति को अनेक प्रकार के मनोरोग होने की तीव्र आशंका रहती है।

(ग) ऐसे स्थान में न रहें, जहां वायवी ऊर्जा गंदी हो। ऐसे स्थानों में दिव्य दर्शन से देखा गया है कि भूमि से आने वाली ऊर्जा हल्के भूरे से रंग की होती है। यदि किसी कूड़े के स्थान का भूमि उद्धार (reclaimation) किया गया है तो वह क्षेत्र वायवी तौर पर गंदा व दूषित होता है। इसी प्रकार कुछ स्थान जैसे अस्पताल, श्मसान भूमि, कब्रिस्तान आदि भी वायवी तौर पर काफी गंदे होते हैं। ऐसे स्थानों में होने के पश्चात पानी–नमक से स्नान कर लेना चाहिए।

(घ) यदि कोई कमरा लम्बे समय तक किसी रोगी द्वारा इस्तेमाल किया गया है, तो वह रोगग्रस्त ऊर्जा से भर जाता है। इस प्रकार के कमरों की सफाई पानी और नमक के इस्तेमाल से, अथवा चन्दन की धूप, अगरबत्तियां जलाकर, अथवा प्रार्थना द्वारा, अथवा सूर्य की रोशनी द्वारा, अथवा आगे अध्याय ३६ के क्रम ३ पर वर्णित विधि द्वारा की जा सकती है।

(ङ) वस्तुओं के आदान-प्रदान से भी वायवी गंदगी हो सकती है। जो व्यक्ति जिस वस्तु का उपयोग करता है, उसके वायवी शरीर के ऊर्जा के अंश उस वस्तु में प्रवेश कर जाते हैं। यदि कोई व्यक्ति गंदी, वायवी शरीर वाला है, तो उसके द्वारा उपयोग में लायी गई वस्तुएं गंदी ऊर्जा से आंशिक अथवा पूर्णरूपेण भर जाती है। यदि यह साधारण नियम बना लें कि न तो किसी दूसरे की वस्तु उधार लें और न दें, तो इससे बचा जा सकता है। यदि आवश्यक हो, तो उपक्रम (घ) में वर्णित विधि द्वारा ऐसे वस्तुओं को स्वच्छ किया जा सकता है।

(च) जब आप कोई पुरानी (second hand) वस्तु, विशेष तौर पर आभूषण (jewellery) क्रय अथवा ग्रहण करते हैं, तो जिन हाथों से वह गुजरी हुई होती है, उनके ऊर्जा के अंश उसमें विद्यमान होते हैं। अतएव, इनकी सफाई आवश्यक है– इसकी विधि अध्याय २६ के क्रम (क) में दी गयी है।

(छ) यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति के अधिक सम्पर्क में आते हैं जो अधिक बीमार हो अथवा बीमार व्यक्ति के गले मिलते हों, तो वह अनजाने में आपसे स्वस्थ ऊर्जा ग्रहण करते हुए, अपनी रोगग्रस्त व दूषित ऊर्जा आपको देता है। पुनः स्वस्थता प्राप्त करने के लिए तीन ग्राम लहसुन का तेल (जिसमें नारंगी प्राण काफी मात्रा में होता है) अथवा दो ग्राम फूलों का पराग जो मधुमक्खी इकट्ठा करती हैं अथवा २०० मिलीग्राम चीनी जिन्सैंग या कोरियायी लाल जिन्सैंग (देखिए अध्याय ३२) अथवा ४०० से ८०० iu विटामिन E का सेवन करें।

(७) उचित भावनायें एवम् विचार (भावनात्मक और मानसिक स्वच्छता)— Proper Emotions and Thoughts (Emotional and Mental Hygiene)

नकारात्मक भावनाओं एवम् विचारों से बचें। इसका विस्तृत वर्णन भाग ४ के अध्याय १२ के क्रम ५ में वर्णित है। इसलिए यहां दोहराया नहीं जा रहा है । यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कोई भी मनोरोग ठीक तो किया जा सकता है, किन्तु यदि भावनायें व विचार सही नहीं हैं, तो वह पुनः हो सकता है और उसका स्थायी उपचार सम्भव नहीं होता।

सकारात्मक भावनायें दया, करुणा आदि भायें तथा प्रसन्नचित्त रहें। यदि आप अध्यात्मिक क्षेत्रों में उन्नत गुणी व्यक्तियों जैसे साधु व त्यागी व्रतियों के संसर्ग में रहें, तो यह आपके शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक एवम् आत्मिक स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभप्रद रहेगा।

(८) क्षमा और करुणा— Forgiveness and Kindness

सदैव इनका जीवन में पालन करें। अनेक रोग जिनके मूल में क्रोध व हिंसा होते हैं, वह स्वयमेव ही ठीक हो जाएंगे और आप हर प्रकार से स्वस्थ रहकर आध्यात्मक के क्षेत्र में उन्नति कर सकेंगे।

(९) उचित मानवीय सम्बन्ध— Proper Human Relationship

मनुष्यों एवम् पशुओं/ अन्य जीवों के प्रति क्रूरता गम्भीर रोगों का कारण बनती है। जैसा आप बोएंगे, वैसा पाएंगे। कर्म का नियम अटल है। नकारात्मक कर्मों का फल अशुभ व दुःखमयी ही होगा। इनसे बचें।

(१०) उचित जीवन शैली– **Proper Life Style**

(क) इनसे बचें:

(क) अत्यधिक कार्य– प्रतिदिन कई माह/वर्षों तक १४ से १६ घंटे प्रतिदिन काम करना। यह आपके स्वास्थ्य व कुटुम्बी जीवन के लिए हानिकारक है।

(ख) अत्यधिक मनोरंजन– विशेष कर रात्रि में ।

(ग) धन की गृद्धता एवम् बेईमानी की अथवा नं २ की कमाई ।

(घ) अहंकार, लोभ एवम् अधिक परिग्रह रखने की भावना ।

(ङ) व्यसन, अभक्ष्य का सेवन ।

(च) बुरे और व्यसनी व्यक्तियों की संगति।

(ख) इनको अवश्य करें:

(क) देव दर्शन, गुरु पारित, शास्त्र स्वाध्याय, वैयावृत्य, सामायिक।

(ख) दान–अभयदान, आहार दान, ज्ञान दान, करुणा दान, औषधि दान, धार्मिक कार्यों के लिए दान।

(ग) अणुव्रतों का पालन, पानी छानकर पीना।

(घ) धार्मिक कार्यों में उत्साहपूर्वक भाग लेना।

(ग) अन्य क्रियायें

इस पुस्तक के भाग ३ का अध्ययन करके, वे समस्त क्रियायें जिनसे बगैर आपके नियम भंग हुए, आपको लाभ पहुंचता हो, जैसे प्राणायाम, जापानी जल पद्धति, त्वचा की देखभाल, आंखों की देखभाल, मुद्रायें, शारीरिक एवम् मानसिक सक्रियता के उपाय, स्वस्थ जीवन के उपाय, एक्यूप्रैशर विधि द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण आदि।

(११) निवारक प्राणशक्ति उपचार– **Preventive Pranic Treatment**

इसकी विधि अध्याय ६ के क्रम संख्या १० (३५) में दी गयी है। इसी का स्व–प्राणशक्ति उपचार भी किया जा सकता है।

(१२) बेहतर स्वास्थ्य के लिए प्राण-शक्ति उपचार की समग्र राह–
Integrated Approach of Pranic Treatment for better health

क्रम सं०	प्रकृति / तकनीक	संदर्भ		अन्तराल	उद्देश्य
		अध्याय	क्रम		
क	निवारक प्राणशक्ति उपचार	६	१० (३५)	प्रति सप्ताह	स्वास्थ्य सुधारना, वृद्धत्व की गति कम करना
ख	द्वि-हृदय पर ध्यान चिन्तन	३	ग	प्रतिदिन	शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व आत्मिक स्वास्थ्य के लिए
ग	सौर जालिका चक्र की सफाई जो निम्न भावनाओं का केन्द्र है	६	१० (२६)	आवश्यक्तानुसार	नकारात्मक भावनाओं से बचना
घ	आन्तरिक अंगों की सफाई	६	१० (२८)	प्रति सप्ताह	बेहतर स्वास्थ्य
ङ	रक्त की सफाई	६	१० (३०)	"	"
च	प्रतिरक्षात्मक तंत्र को मजबूत करने के लिए– जब इसको करें तो नीचे क्रम (छ) में वर्णित उपचार न करें	१०	७	प्रति दो सप्ताह में एक बार	"
छ	समस्त शरीर को हर प्रकार से शक्ति पहुंचाना एवम् सक्रिय करने के लिए मास्टर उपचार पद्धति– जब इसको करें तो उपरोक्त क्रम (च) में वर्णित उपचार न करें।	६	१० (३२)	"	"
ज	जिन्सैंग के सेवन द्वारा	३२	७	आवश्यक्तानुसार	निवारक एवम् शक्तिवर्द्धक
झ	मनोरोगों से कैसे बचें	२३	६	सदैव	निवारक
ञ	तनाव की स्व–प्राणशक्ति उपचार	२४	४	आवश्यक्तानुसार	उपचारक

अध्याय – ३५

प्राण ऊर्जा के प्रसंग में अर्हत ध्यान

Chapter XXXV

Arhatic Meditation in the context of Pranic Energy

प्राण ऊर्जा के प्रसंग में अर्हत ध्यान
Arhatic Meditation in the context of Pranic Energy

(१) अर्हत ध्यान द्वारा प्राण ऊर्जा का परावर्तन

जैसा कि भाग ४ के अध्याय ११ के क्रम (2) में वर्णन किया गया है कि 2 का 8 से उच्च सम्बन्ध है। काम चक्र की यौन ऊर्जा का एक अंश प्राणशक्ति की उच्च कोटि की ऊर्जा में परावर्तित होता है, जिसको 8 व 11 के सुचारु रूप से परिचालन में प्रयोग होता है। शक्तिशाली काम चक्र जीवन में उन्नति के लिए सहायक होता है।

स्वस्थ जीवन में कामेच्छा एवम् संभोग की प्रवृत्ति अनादिकालीन संस्कारों के कारण स्वाभाविक है। किन्तु किसी कारणवश यदि यह इच्छाएं दब जाएं अथवा दबा दी जाएं और यौन ऊर्जा का समुचित सकारात्मक उपयोग न हो पाये, तो ये यौन विकृतियों के रूप में उभर सकती हैं जैसे अध्याय २४ के क्रम १० में वर्णित मनोरोग। ब्रह्मचारियों एवम् त्यागीगण जो ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करते हैं, उनके संयम एवम् धार्मिक चर्या से यह यौन ऊर्जा उच्च कोटि की ऊर्जा में परावर्तित होती रहती है, जो उनके आत्मिक उत्थान के काम आती है।

इस प्रकरण में जो अर्हत ध्यान का प्रसंग है, उसमें प्राणशक्ति उपचार की निर्धारित संस्थायें यौन ऊर्जा को उच्च कोटि की ऊर्जा में परावर्तन करने का विज्ञान एवम् कला सिखाते हैं जिसमें वह परावर्तित ऊर्जा मस्तिष्क के कोशिकाओं को अधिक सक्रिय करती हैं।

(२) अर्हत ध्यान के लाभ

इस ध्यान के नियमित रूप से करने से निम्न लाभ होते हैं:–

(क) ऊर्जा चक्र बड़े हो जाते हैं और काफी तेज घूमते हैं।

(ख) अभ्यासकर्ता का वायवी (ऊर्जा) शरीर अधिक बड़ा, घना हो जाता है, तथा उसकी ऊर्जा अधिक सुधर (refined) जाती है।

(ग) ऊर्जा के आभा मण्डलों पर भी तद्नुसार प्रभाव पड़ता है।

(घ) इस प्रकार अभ्याकर्ता की उपचार करने की गति बहुत तीव्र एवम् अधिक प्रभावी हो जाती है।

(ङ) ऊर्जा के उक्त प्रकार के परावर्तन से समग्र रूप से लाभ मिलता है।

(३) **अर्हत ध्यान के प्रशिक्षण के प्राप्त करने के लिए आवश्यक योग्यता**

इसके लिये श्री चोआ कोक सुई द्वारा अधिकृत प्रशिक्षण व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा प्रारम्भिक तथा माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार, उन्नत प्राणशक्ति उपचार एवम् प्राणशक्ति द्वारा मनोरोगों के उपचार में प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है।

(४) **सम्पर्क सूत्र**

यदि आपने उक्त अधिकृत प्रशिक्षण प्राप्त कर लिये हों, तो अर्हत ध्यान सीखने के लिए निम्न पते पर सम्पर्क करें–

(क) प्राणिक हीलिंग फाउन्डेशन,
बी– ३६, गीताञ्जलि एनक्लेव,
नई देहली– ११० ०१७

(ख) एक्जीक्यूटिव सैक्रेटरी,
ऑल इण्डिया प्राणिक हीलिंग फाउन्डेशन ट्रस्ट,
सैकिन्ड फ्लोर, सोना टॉवर्स
७१, मिलर्स रोड,
बंगलौर – ५६ ० ०५२

All India Pranic Healing Foundations Trust
2nd Floor, Sona Towers,
71, Millers Road,
Bangalore – 560 052

(५) **आवश्यक नोट–**

अर्हत ध्यान के नाम से भ्रमित न हों कि इसका सम्बन्ध जैन धर्म में वर्णित अर्हत भगवान के ध्यान से है। नाम की समानता मात्र एक संयोग है।

ऊर्जा के अन्य उपयोग
(अध्यात्म के अतिरिक्त)

Chapter XXXV

Other Applications of Pranic Energy
(Other than Spirituality)

ऊर्जा के अन्य उपयोग (अध्यात्म के अतिरिक्त)— Other uses of Energy (Other than Spiritual)

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१	वस्तुओं को ऊर्जित करना— Energising objects	५.५४६
२	पौधों को शीघ्र विकसित करना— Induction of Faster Growth of Plants	५.५४६
३	वायवी तौर पर कमरे की सफाई— Etherial Cleansing of Room	५.५४७
४	अस्थायी तौर पर खिलाड़ियों की खेल खेलने के लिए शक्ति और दक्षता बढ़ाना— Temporarily increasing the Strength and Ability of Sportspersons during Participation in Sports.	५.५४८
५	यात्रा को सुरक्षित करना— Making the journey safe	५.५५०
६	आकामक पशु आदि के आक्रमण को तुरन्त ही समाप्त करना— Stopping instantaneously the attack of a charging animal	५.५५०

ऊर्जा के अन्य उपयोग (अध्यात्म के अतिरिक्त)– Other Applications of Energy (Other than Spiritual)

(१) वस्तुओं को ऊर्जित करना– Energising Objects

पानी, भोजन, पौधे, दवाएं, तेल, मल्हम, लेप, लोशन, पट्टी, दूध आदि वस्तुओं को भी उपचार में सहयोग के लिए प्राणशक्ति से ऊर्जित किया जा सकता है। ऊर्जित किए हुए पानी को रोगी उपचार में सहयोग के लिए पी सकता है। ठंडा पानी बहुत अधिक प्राणशक्ति सोखता है जबकि गर्म पानी बहुत कम सोखता है। अतएव इसके लिए ठंडे पानी का ही उपयोग अपेक्षित होगा।

पौधे, दवा, तेल, मल्हम, लोशन आदि की प्रभावशीलाता और ताकत बढ़ाने के लिए उन्हें ऊर्जित किया जा सकता है। किन्तु ध्यान रहे कि यदि दवा रोगी के लिए कदाचित् हानिकारक सिद्ध होती है, तो ऊर्जित की हुई दवा और अधिक हानिकारक हो जाएगी। मालिश के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले ऊर्जित तेल रोगी के त्वचा के छिद्रों से प्रवेश कर प्राणशक्ति के प्रवेश के लिए एक वाहक का काम करते हैं। यह उन रोगियों के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है जो उपचार क्रिया में बाधा पहुंचाते हैं।

उपरोक्त वस्तुओं के प्रयोग से कई बार उपचार की संख्या कम की जा सकती है। प्राणिक–श्वसन प्रक्रिया अथवा साधारण ऊर्जा ग्रहण विधि से इन वस्तुओं का ऊर्जन किया जा सकता है।

(२) पौधों को शीघ्र विकसित करना– Induction of Faster Growth of Plants

इसके लिए C (पौधे की जड़) G/ E R (६५ प्रतिशत मात्रा), Y (५ प्रतिशत मात्रा) करिए। इसको एक महीने तक प्रतिदिन करिए।

सावधानी– अधिक E Y न करें, अन्यथा इसका विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

(३) वायवी तौर पर कमरे की सफाई— Etherical cleansing of Room

कभी—कभी कहीं किसी कमरें में नकारात्मक भावनाओं वाले व्यक्ति के रहने अथवा कुछ समय तक ठहरने के कारण वह कमरा नकारात्मक ऊर्जा से भर जाता है। इसी प्रकार किसी गम्भीर रोगी की किसी कमरे में उपस्थिति अथवा किसी व्यक्ति की मृत्यु होने के फलस्वरूप कमरा गंदी व रोगग्रस्त ऊर्जा, नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकारों व नकारात्मक परजीवियों से भर जाता है। स्वस्थ रहने के लिए एवम् इनके संक्रमण से बचने के लिए ऐसे कमरे की वायवी स्वच्छता आवश्यक है। इसके लिए पहले आप कमरे से समस्त वस्तुएं हटाकर उसमें चन्दन की धूप एवम् चन्दन की कई अगरबत्तियां जलाएं। फिर अध्याय १ के क्रम संख्या १२ (घ) में वर्णित विधि द्वारा एक हरे आग के गोले का निर्माण करें, जिसका व्यास लगभग दो फुट हो। इसको सुनिश्चित करने के पश्चात् ईश्वर से प्रार्थना करते हुए eV को 11 – H तकनीक द्वारा ग्रहण करें और उससे तीन बार कमरे में विद्यमान गंदी व रोगग्रस्त ऊर्जा, नकारात्मक ऊर्जा, नकारात्मक सोच के आकारों व नकारात्मक परजीवियों को खींच–खींचकर उस आग के गोले में नष्ट हो जाने हेतु लगातार फैंकते रहने के लिए निवेदन करें। इस प्रकार आप कमरे के एक कोने से प्रारम्भ करके एक तरफ काफी धीरे-धीरे चलते हुए eV द्वारा उक्त कार्यवाही को यथासम्भव करवाते हुए, हरे आग के गोले को भी अपनी इच्छाशक्ति द्वारा अपने आगे—आगे चलाते रहें। कमरे के दूसरे सिरे पर पहुंचकर फिर वापस अपनी पूर्व दिशा की ओर, लेकिन थोड़ा सा हटकर मुड़कर इसी क्रिया को दोहराएं। इस प्रकार आप कमरे के फर्श को पूरी तौर पर सफाई करें, कहीं कोई जगह छूट न जाए।

इसके पश्चात् इसी विधि द्वारा आप कमरे के चारों दीवालों पर तथा कमरे की छत पर आग के गोले को चलाते हुए eV द्वारा वांछित कार्य करवाते हुए, प्रक्रिया पूरी करें। अन्त में, अध्याय १ के क्रम संख्या १३ (घ) में विधि द्वारा उस हरे आग के गोले को नष्ट करें एवम् जिस ऊर्जा द्वारा आग का गोला बनवाया था, उसको एवम् eV को धन्यवाद दें।

(४) **खिलाड़ियों को खेल खेलने के लिए शक्ति और दक्षता बढ़ाना– Temporarily Increasing the strength and ability of Sportspersons during participation in sports**

(क) पहले यह विचार करना चाहिए कि कुछ संस्थाएं /खिलाड़ी इस प्रयोजन हेतु प्रतिबन्धित दवाएं क्यों प्रयोग में लाते हैं तथा परीक्षण में पकड़े जाने के फलस्वरूप खेल खेलने के लिए प्रतिबन्धित होने का भी क्यों खतरा उठाते हैं। इन दवाओं से उनके शरीर पर निम्न प्रभाव पड़ते हैं। (दवाओं एवम् उससे सम्बन्धित विवरण हिन्दुस्तान टाइम्स, लखनऊ नामक दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित अंग्रेजी के लेख का हिन्दी रूपान्तर है। इसमें कई अंग्रेजी के शब्दों का हिन्दी रूपान्तर डिक्शनरी में न मिलने के कारण, उनको यथावत लिख दिया गया है)

(१) **तंत्रिका तंत्र उत्तेजित करना–** थकान कम होती है, आक्रमण की भावना बढ़ती है, मांसपेशियों को मस्तिष्क द्वारा कार्य करने के आदेश मिलने से लेकर उनके कार्यान्वित होने के बीच के अन्तराल का समय कम होता है। इनके लिए प्रतिबन्धित दवाएं Amphetamines तथा इसी प्रकार के पदार्थ जैसे ephedra, Modafinil (थकान के लिए), opiates narcotics, Caffeine, Alcohol होती हैं।

यह दवाएं मस्तिष्क के उस भाग को जो थकान महसूस करता है और चौकन्ना बनाता है, उसको उत्तेजित करती हैं। इसके अलावा उन मुख्य ज्ञान तंतुओं को जो मांसपेशियों को मस्तिष्क से आदेश देता है, को उत्तेजित करती हैं।

(२) **मांसपेशियों तक अधिक ऑक्सीजन पहुंचाना–** जिन खेलों में अधिक शक्ति की आवश्यकता होती है (जैसे फुटबॉल, हॉकी, वॉलीबॉल, लोहे के भारी गोले को ऊपर उठाना, लम्बी कूद, जैवेलियन आदि) और जिनमें काफी देर तक खेलना पड़ता है (जैसे अधिक लम्बी दौड़), उनमें खेलने की शक्ति और क्षमता (Stamina) बढ़ाना।

इनके लिए प्रतिबन्धित दवाएं Erythropoietin (EPO), सम्पूर्ण रक्त और रक्त कणों का Transfusion, संशोधित हैमोग्लोबिन (haemoglobin)

इन दवाएं/उपचार से रक्त के अधिक लाल कण बनते हैं, फैंफड़ों से अधिक ऑक्सीजन मांसपेशियों तक जाती है, जिनको सुकुड़ने के लिए लगातार ऑक्सीजन की आवश्यकता रहती है।

(३) **मांसपेशियों का विकास–** सामान्य तौर पर, myoblasts (छोटी कोशिकाएं) आपस में एक (fuse) होकर, मांसपेशी की कोशिका में अपनी nuclei तथा protein fibres मिलाकर उसको अधिक शक्तिशाली और बड़ा बनाते हैं।

इनके लिए प्रतिबन्धित दवाएं Anabolic steroids जैसे testosterone, human growth harmone, "designer" harmones (इनका वर्तमान के परीक्षणों में पता नहीं लग पाता)

इन दवाओं का परीक्षण के दौरान पता लग जाता है, जिसका भय खिलाड़ी के लिए सदैव बना रहता है।

(ख) खेल की उक्त प्रतिस्फूर्ति बढ़ाने की प्राणशक्ति उपचार विधि–

(१) अध्याय ६ के क्रम १० (३२) में वर्णित मास्टर उपचार पद्धति अपनायें। खिलाड़ी के शरीर की संरचना (Constitution) का ध्यान रखें। उपक्रम (ञ) में ऊर्जन निम्न प्रकार करें। :–

यदि खिलाड़ी अधिक सशक्त है, तो–

E' 1 IR -- रक्त में अधिक लाल रक्त के उत्पादन के लिए, उसको सामान्य तौर पर समस्त शरीर में और विशेष रूप से फैंफड़ों में फैलाने के लिए, मस्तिष्क की समस्त ज्ञान तंतुओं को सक्रिय व उत्तेजित करने के लिए तथा समस्त मांसपेशियों को शक्तिशाली बनाने के लिए।

E' 3 IR -- मूलाधार चक्र से आ रही ऊर्जा को समस्त शरीर में शीघ्र फैलाने के लिए ।

यदि खिलाड़ी सशक्त है, तो–

E 1 IR एवम् E' 3 (IR या W) – उक्त उद्देश्यों के लिए ।

खेल से लौटने के पश्चात, जांच करें तथा 1 तथा 3 को आवश्यक्तानुसार E IB द्वारा संकुचन करके सामान्य करें।

(५) **यात्रा को सुरक्षित करना– Making the Journey safe**

जिस वाहन में यात्री को यात्रा करना है, उसका एक प्रतिरूपात्मक आकार बनाने के लिए eV से निवेदन करें जो लगभग तीन इंच ऊंचा हो। फिर यात्री को एक इंच ऊंचाई के रूप में उस प्रतिरूपात्मक आकार के अन्दर बैठे हुए दृश्यीकृत करें। इस आकार की यथार्थ सटीकता होना आवश्यक नहीं है। फिर eV को उस यात्री को वाहन की यात्रा की समाप्ति तक अथवा तीन दिन तक, जो भी पहले हो, उस समय तक सुरक्षित करने का तीन बार निवेदन करें। यदि तीन से अधिक समय तक यात्रा वाञ्छित है, तो दो दिन पश्चात पुनः इसी प्रक्रिया को दोहराएं।

(६) **आक्रमक पशु आदि के आक्रमण को तुरन्त ही समाप्त करना– Stopping instantaneously the attack of a charging animal etc.**

सावधानी– यह विधि वही अत्यधिक उन्नत प्राणशक्ति व्यक्ति अपनाएं जो इस सम्बन्ध में पहले छोटे–छोटे अन्य प्रयोगों के अनुभव द्वारा स्वयं की समुचित दक्षता हो जाने का आत्म विश्वास प्राप्त कर चुके हैं।

विधि– आक्रमण पशु पर तुरन्त उसका

E 1 (mB या dB) एवम् E 11 (mB या dB)

शक्तिवाली एवम् भयंकर पशु के लिए dB का ही उपयोग करें।

प्राण– ऊर्जा क्षेत्र में खोज व अनुसंधान

Chapter XXXVII

Discovery and Research in the field of Pranic Energy

प्राण ऊर्जा क्षेत्र में खोज व अनुसंधान
Discovery and Research in the field of Pranic Energy

विषयानुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
१	भूमिका — Introduction	५.५५३
२	आधुनिक खोज — Modern Findings	५.५५३
३	प्राण ऊर्जा क्षेत्र में भावी खोज और अनुसंधान हेतु सम्भावित विषय और विचार— Seed Ideas for Research in the field of Pranic Energy	५.५६०
४	प्राण ऊर्जा— विज्ञान का प्रसार — Globalizing Pranic Science	५.५६१
५	प्राण ऊर्जा विज्ञान का साहित्य — Literature of Pranic Energy Science	५.५६१
६	श्री चोआ कोक सुई के सौजन्य से पाठ्यक्रमों द्वारा प्रशिक्षण— Courses conducted by the courtesy of Sri Choa Kok Sui	५.५६२
७	प्राणशक्ति विज्ञान की विद्या एवम् उसके द्वारा उपचार के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में सम्भावित उपयोग— The Science of Pranic Energy and its application in fields (other than healing)	५.५६२
८	सन्दर्भ	५.५६७

प्राण ऊर्जा क्षेत्र में खोज व अनुसंधान
Discovery and Research in the field of Pranic Energy

(१) भूमिका– Introduction

प्राण ऊर्जा एवम् उसके द्वारा चिकित्सा का स्पष्ट वर्णन उपलब्ध जैन शास्त्रों में नहीं मिलता। यदि सर्वज्ञ के कथन की उपलब्धता होती, तो वह पूर्ण एवम् प्रमाणित होता एवम् उसमें आगे शोध करने की गुंजाइश नहीं होती। जैसा कि भाग ४ के अध्याय २ में वर्णित है, वर्तमान युग में श्री चोआ कोक सुई ने इस विद्या का गहन अध्ययन व काफी खोज के पश्चात प्रस्तुत किया है, यद्यपि इसका आधार जैन साहित्य प्रतीत होता है। वर्तमान पीढ़ी का यह कर्तव्य बन जाता है कि वह उपलब्ध ज्ञान का बुद्धिमता पूर्वक विकास कर एवम् उसकी गुणवत्ता बढ़ाकर अगली पीढ़ी को सौंपे। जिस प्रकार विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में अनुसंधान की प्रक्रिया चलती रहती है, उसी प्रकार प्राण-ऊर्जा के क्षेत्र में भी आवश्यक्ता है।

(२) आधुनिक खोज– Modern Findings

(क) किये गये अध्ययन एवम् प्रयोग

(१) १९३९ में सेम्योन डेविडोविच किर्लियन व उनकी पत्नी ने तीव्र आवृत्ति के विद्युतीय क्षेत्र पर आधारित किर्लियन (Kirlian) फोटोग्राफी का विकास किया जिसका न दिखाई देने वाले ऊर्जा शरीर या जीव द्रव्य शरीर के कुछ भागों के चित्र लेने में उपयोग किया जाता है।

(२) किर्लियन दम्पत्ति के अध्ययन के आधार पर यह देखा गया है कि कोई भी रोग दिखाई देने वाले शरीर को प्रभावित करने से पहले जीवद्रव्य शरीर को प्रभावित करता है।

(३) अल्मा-आटा के सुप्रसिद्ध किरोव स्टेट विश्वविद्यालय के जीव-वैज्ञानिकों, जीव-रसायन शास्त्रियों व जीव-भौतिक वैज्ञानिकों के एक समूह ने घोषणा की कि जीव द्रव्य शरीर केवल कुछ आयनीकृत, सक्रिय या उत्तेजित इलैक्ट्रौन, प्रोट्रौन या कुछ अन्य अणुओं का प्लाज़्मा जैसा तारामण्डल या समूह ही नहीं होता बल्कि वह अपने आप में एक पूरी संघटित शरीर रचना है जो एक इकाई के रूप मे कार्य करती है और उसका अपना विद्युत-चुम्बकीय क्षेत्र होता है।

(४) आवेश, मन की दशा और विचार जीव द्रव्य शरीर को प्रभावित करते हैं।

(५) कज़ाकिस्तान स्टेट विश्वविद्यालय की खोजों के अनुसार ऊर्जा शरीर का अपना संघटित स्वरूप होता है जो शरीर-रचना के रूप को निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए मास्को में स्थित 'एनिमल मार्फोलोजी' संस्थान के डॉ एलैक्ज़ेंडर स्टडिट्स्की ने मांसपेशी के छोटे-छोटे टुकड़े कर उसे चूहे के शरीर के एक घाव में बांध दिया। वहां पर एक पूरी नई मांसपेशी तैयार हो गई। इससे उन्होंने यह नतीजा निकाला कि इनमें संघटन का कुछ स्वरूप है।

(६) व्यक्ति की एक उंगली या हाथ कट जाने पर भी जीव द्रव्य शरीर की उंगली या हाथ उसी स्थान पर रहता है। इसलिए व्यक्ति को कभी-कभी यह अनुभव होता है कि वह कटा हुआ अंग उसी स्थान पर है।

(७) लेनिनग्राद के वैज्ञानिक डॉ. मिखाइल कुज़मिच गैकिन ने जीवद्रव्य नाड़ियों और शिरोबिन्दुओं से संबंध रखने वाले केन्द्रों के अस्तित्व तथा प्राचीन चीनी औषधि विद्या में वर्णित एक्युपंचर बिन्दुओं की पुष्टि की है। टोबीस्कोप यंत्र की सहायता से उन्होंने एक्युपंचर के स्थानों को सही प्रकार से खोज निकाला। बाद में विक्टर अदामेन्को नामक युवा भौतिकशास्त्री ने टोबीस्कोप के विकसत रूप की खोज की और उसका नाम सी.सी.ए.पी. (Conductivity of the channels of acupuncture points) रखा जो न केवल एक्युपंचर के बिन्दुओं को ढूंढ़ता है बल्कि

जीवद्रव्य शरीर में होने वाले बदलाव एवं प्रतिक्रियाओं को अंकपद्धति में अंकित भी करता है।

(८) जीव द्रव्य शरीर में पाये जाने वाले चमकदार बिंदु एक्युपंचर के लिये प्रमुख होते हैं।

(९) रूसी वैज्ञानिक छिपी हुई या सुप्त मानसिक योग्यालाओं के जाग्रत करने के लिए जीवद्रव्य शरीर के कुछ खास बिन्दुओं को उत्तेजित करने पर गहराई से विचार कर रहे हैं

(१०) रूसी मनोवैज्ञानिक उपचारकों द्वारा किये गये शोध से यह पता चलता है कि मनोवैज्ञानिक उपचार में उपचारक के जीवद्रव्य शरीर से ऊर्जा निकल कर रोगी के जीवद्रव्य शरीर में स्थानांतरित होती है।

(ख) The first world congress for academic exchange of medical Quigong (abstract of presentations), Beijing, China, 1988.

दि फर्स्ट वर्ल्ड कांफ्रेस फॉर एकाडेमिक एक्सचेंज ऑफ मेडिकल क्विगांग (Qigong) (एब्स्ट्रैक्ट ऑफ प्रेजेंटेशन) बीजिंग, चाइना, १९८८

वर्ष १९८८ में विश्व सम्मेलन में प्रस्तुत लेखों का सारांश

सामान्य जिज्ञासा के लिए यह बताया जाता है कि १९८८ में चीन के बीजिंग शहर में 'एकाडेमिक एक्सचेंज ऑफ मेडिकल क्विगांग' के पहले विश्व सम्मेलन में लिखित प्रपत्र (१२८ सार संकलन) प्रस्तुत किये गये थे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस सम्मेलन में बहुत से रोगों व बीमारियों के लिए 'क्विगांग' चिकित्सा के उपयोग का प्रदर्शन तकनीकी प्रपत्रों में किया गया था। कुछ चुने हुए प्रपत्र–सार का सारांश नीचे दिया जा रहा है जिससे पाठक 'क्विगांग–उपचार' की शक्ति और उसके विविध उपयोग के कुछ नमूनों को जान सके।

(१) एक स्टडी ऑफ दि इफैक्ट ऑफ इमिटेड क्वि (Qi) (वाइटल एनर्जी) ऑफ क्विगांग (Qigong) ऑन ह्यूमन कारसिनोमा सेल्स (human carcinoma cells) – लेखक : फेंग लिडा, क्विआन

जुक्विंग, शेन सुक्विंग तथा अन्य (चाइना इम्युनोलोजी रिसर्च सेंटर, बीजिंग, चाइना)।

उत्सर्जित प्राणशक्ति (ओजस्वी ऊर्जा) का हेल कोशिकाओं (Hale cells) एस जी सी – ७६०१ ह्यूमन गैस्ट्रिक एडिनोकार्सिनोमा कोशिकाओं और गैस्ट्रिक एडिनोकार्सिनोमा कोशिकाओं के क्रोमोसोम्स (chromosomes) पर होने वाले प्रभाव का टिशु कल्चर, साइटोजेनेटिक्स (cytogenetics) और इलैक्ट्रोमाइक्रोस्कोप पद्धतियों द्वारा अध्ययन किया गया था।

इन अध्ययनों से यह पता चला कि :–

- उत्सर्जित ओजस्वी प्राणशक्ति से नष्ट हुए हेल कोशिकाओं की औसत दर ३०.६२% थी और अधिकतम दर ५६.६१% थी, बिना इलाज किये कोशिकाओं की दर 0% रही।
- ४१ परीक्षणों में यह देखा गया कि ६० मिनट तक ओजस्वी ऊर्जा का उत्सर्जन करने पर गैस्टिक एडिनो–कार्सिनोमा कोशिकाओं के नष्ट होने की औसत दर २५.०२% थी जबकि इसकी तुलना में बिना इलाज की गई कोशिकाओं के नष्ट होने की दर 0% रही। इन कोशिकाओं को जांचने के लिए इलैक्ट्रान माइक्रोस्कोप परीक्षण का उपयोग किया गया था।
- ओजस्वी ऊर्जा प्राप्त करने के बाद गैस्ट्रिक एडिनोकार्सीनोमा कोशिकाओं के क्रोमोसोम्स की संरचना में अदला–बदली, उनमें टूटन और द्विकेन्द्रकों के निर्माण की गति बढ़ जाती है।

ऊपर लिखी गई सभी परीक्षित कोशिकाओं का परिणाम लिखा गया है और सभी ग्रुपों के बीच यानि परीक्षण ग्रुप व नियंत्रण ग्रुप के बीच आंकड़ों के अंतर को निर्धारित किया गया है। (पी < 0.0१).

(२) दि यूज़ ऑफ दि इमिटेड क्वी इन क्विगांग एण्ड एक्युपंचर इन दि ट्रीटमेंट ऑफ फूड एलर्जीस – लेखक: सु चोव (कनाड़ा क्विगांग हेल्थ क्लीनिक)

एक से पच्चीस वर्ष तक के काल में भोजन एलर्जी के मेडिकल परीक्षण के साथ ५२ रोगियों के इलाज का उल्लेख किया गया। एक्युपंचर पद्धति के सहयोग से क्विगांग उपचार का प्रयोग इस इलाज में किया गया जिसमें एक्युपंचर का उपयोग इलाज की प्रारम्भिक अवस्था में तथा क्विगांग का उपयोग अंतिम अवस्था में किया गया। एक्यूपंचर के केन्द्रों को पहचाना गया और सामान्यतः उन्हीं स्थानों को चुना गया जिनसे प्लीहा, जिगर, आमाशय, और फैंफड़ों की ओजस्वी ऊर्जा का उपयोग करने से वह ऊर्जा और अधिक बढ़ जाती है जिससे यह फायदा होता है कि आंतरिक अंगों के कार्य करने और शरीर की प्रतिरोधी क्षमता बढ़ती है। इसका परिणाम यह रहा कि एलर्जी की प्रतिक्रियाओं में भारी कमी हुई और भोज्य पदार्थों में एलर्जी पैदा करने वाले तत्वों की कमी हुई।

(३) दि इफैक्ट ऑफ दि इमिटेड क्वी ऑन दि इम्यून फंक्शंस ऑफ माइस– लेखकः वांग युशेंग, फेंग लीडा, चेन शुयिंग और चेन हाइशिंग (चाइना इम्यूनोलोजी रिसर्च सेंटर, बीजिंग, चाइना)

क्वी या ओजस्वी ऊर्जा के संपर्क में आने के बाद शरीर की प्रतिरोधी क्षमता पर कोई प्रभाव पड़ता है, यह जानने के लिए चूहे पर एक परीक्षण किया गया था।

अच्छे प्रशिक्षित क्विगांग मास्टरों द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा प्राप्त करने के बाद शरीर का परीक्षण करने से यह पता चला कि ओजस्वी ऊर्जा पेट–झिल्ली (पेरिटोनियल) के मैक्रोफेजेस (peritoneal macrophages) की भक्षकाधु (फैगोसाइटिक) क्रिया में काफी वृद्धि करती है और साथ ही एसिड फॉस्फेट्स की प्रक्रिया में भी वृद्धि करती है। जिसका अर्थ यह हुआ कि ओजस्वी ऊर्जा प्रतिरोधी तंत्र में सहयोग देने वाली पेट–झिल्ली के मैक्रोफेजेस को उत्तेजित कर सकती है।

(४) इफैक्ट्स ऑफ विभाग ऑन साइको–सोमैटिक एण्ड अदर इमोशनली रूटेड डिस्ऑडर्स – लेखक : रिचर्ड आर. पोवक, (यू.एस.ए)

संभावित भावनात्मक मूल अव्यवस्थाओं, विशेषकर मासिक धर्म व उससे पहले की कठिनाइयां, आधे सिर का दर्द, आंतों का असह्य रोग, भोजन

की अव्यवस्था, पीठ का दुःसाध्य रोग (सर्जरी से पहले व बाद दोनों अवस्था) तथा अन्य भावनात्मक अव्यवस्थाएं जैसे चिंता, उदासी, छिपा हुआ दुःख व नींद की अव्यवस्था को ठीक करने के लिए शेन् पद्धति (जो क्विगांग उपचार का एक विशिष्ट रूप है) बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुई।

(५) ए स्टडी ऑफ दि इफैक्ट ऑफ दि इमिटेड क्वि ऑन दि एल– १२१० सैल्स ऑफ ल्युकेमिया इन माइस– लेखक: झाओ शियूजेन व फेंग लिडा (चाइना इम्युनोलोजी रिसर्च सेंटर, बीजिंग, चाइना)

डी.बी.ए. चूहे के ल्युकेमिया के एल– १२१० कोशिकाओं पर उत्सर्जित ओजस्वी ऊर्जा के प्रभाव का परीक्षण किया गया था। परीक्षण के लिए चुने गये चूहों के समूह को प्रतिदिन १०-१४ मिनट तक दस दिनों तक ओजस्वी ऊर्जा दी गई जबकि नियंत्रण ग्रुप का कोई इलाज नहीं किया गया। सामान्य सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखा गया कि एल– १२१० कोशिकाएं अभी भी उपस्थित थीं। इस कारण आंकड़ों के फर्क को पहचाना गया (पी 0.0१) । इस बात का ध्यान में रखकर यह सुझाया गया कि ओजस्वी ऊर्जा प्राप्त करने के बाद चूहों में एल– १२१० कोशिकाओं की संख्या में आशातीता कमी की जा सकती है।

(६) क्विगांग इन आस्ट्रेलिया– एन इफैक्टिव वैपन अगेंस्ट स्ट्रैस– लेखक : जैक लिम् (क्विगांग स्कूल ऑफ आस्ट्रेलिया)

तनाव से छुटकारा पाने के लिए क्विगांग बहुत ही लाभकारी माध्यम माना गया है। तनाव के दिखाई देने वाले लक्षणों में हृदय की धड़कन में तेजी, शारीरिक थकान और अनिद्रा, पेट में अल्सर या फोड़ा, अधिक रक्त–दाब तथा अन्य हृदय रोग दिखाई देते हैं। सर्वेक्षण रिपोर्ट में जिन ४०० लोगों का उदाहरण दिया गया है, उन सभी की परिस्थितियों में सुधार बताया गया है। ये सभी विभिन्न प्रकार के व्यवसाय जैसे डॉक्टर, व्यापारी, वकील, कम्प्यूटर विशेषज्ञ, कलाकार, घरेलू स्त्रियां, विद्यार्थी और सेवानिवृत्त व्यक्ति थे।

(७) इफैक्ट ऑफ दि इमिटेड क्वि आन हीलिंग ऑफ इक्सपैरिमेंटल फ्रैक्चर– लेखक जिया लिन तथा जिया जिंडिंवा (नेशनल रिसर्च इंस्टिट्यूट ऑफ स्पोर्ट्स साइंस, बीजिंग, चाइना)

खरगोशों में टूटी हड्डी जोड़ने के लिए उत्सर्जित ओजस्वी ऊर्जा का शरीर पर पड़ने वाला तुलनात्मक प्रभाव यह दर्शाता है कि जिस नियंत्रण समूह को ओजस्वी ऊर्जा नहीं दी गई थी, उनकी उपेक्षा जिस समूह को ऊर्जा दी गई थी उनमें हड्डी को जोड़ने वाला पदार्थ अधिक मात्रा में था। बहुत अधिक खिंची मांसपेशियों में पैदा हुए अत्यधिक चोट के उपचार के लिए भी इस प्रकार के परिणाम प्राप्त किये गये थे।

इस बात का अंदेशा लगाया जाता है कि हड्डियों व मांसपेशियों के इलाज में ओजस्वी ऊर्जा के उत्सर्जन में जो प्रक्रिया होती है उससे विद्युतीय–चुंबकीय क्षेत्र का निर्माण होता है। इसके परिणाम में उच्च सतर की जैविक गतिविधि होती है।

(८) दि चक्राज– लेखक : सी,डब्ल्यु. लीडबीटर, १९२७. दि थियोसोफिकल् पब्लिशिंग हाऊस, अड़यास, मद्रास।

इस पुस्तक में विभिन्न प्रकार की प्राणशक्तियों के बारे में चर्चा की गई है। इसमें अल्कोहल, नशीले पदार्थ व तम्बाकू का 'ईथरीय शरीर (etheric body) पर पड़ने वाले गलत प्रभावों पर भी विचार किया गया है। इस पुस्तक में श्री लीडबीटर द्वारा किये गये दिव्यदर्शी अध्ययनों के आधार पर बनाये गये चक्रों के दस रंगीन चित्र भी हैं।

(९) थियोरीज़ ऑफ चक्रास,: ब्रिज टू हायर कौंशियन्स (conscience)– लेखक: होरोशी मोटोयामा। १९८१. व्हीटोन, III; दि थियोसोफिकल् पब्लिशिंग हाउस।

इस पुस्तक में चक्रों पर लेखक के व्यक्तिगत अनुभव और वैज्ञानिक परीक्षणों को लिखा गया है। चक्रों को जागृत करने की पद्धतियां भी इस पुस्तक में लिखी गई हैं। चीन के एक्युपंचर

शिरोबिन्दुओं की तुलना भारतीय 'नाड़ी' से की गई है। यह पुस्तक बहुत ही रोचक व सूचनाप्रद है।

(१०) इसोटिरिक हीलिंग (Esoteric Healing) इलाइस वेली (Alice Bailey) १९५३, न्यूयार्क, लूसिस (Lucis) पब्लिशिंग कंपनी।

(११) दि औरा– (The Aura) –: डब्ल्यु, जे, किलनर, १९११ यार्क बीच, माइने, सैमुएल वीजर, आई.एन.सी. (Samuel Weiser) Inc.

(३) प्राण ऊर्जा क्षेत्र में भावी खोज और अनुसंधान हेतु सम्भावित विषय और विचार– Seed Ideas for Research in the field of Pranic Energy

(क) प्राण ऊर्जा के प्रभाव से सम्बन्धित विषय

(१) लेसर प्राण चिकित्सा– इस विषय में इस भाग के अध्याय २७ का सन्दर्भ ग्रहण करें।

(२) खाद्य पदार्थों में पोषण गुण का ऊर्जा का दृष्टिकोण– Nutrition in Food- A Pranic View

वैज्ञानिकों ने अब तक पोषण-विज्ञान (Nutrition) को रासायनिक दृष्टि से ही अध्ययन किया है जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स, शक्कर, खनिज, वसा और विटामिन। अब तक खाद्य पदार्थों के पोषण गुण का प्राण–ऊर्जा के दृष्टिकोण से अध्ययन नहीं हुआ है, अर्थात उनमें कौन–कौन से रंगीन प्राण होते हैं और क्या मात्रा होती है और वह मनुष्य के शरीर पर किस प्रकार प्रभाव डालती है।

(३) संतुलित खुराक में रंगीन प्राणों का उचित मिश्रण–

Proper Mixture of Colour Pranas in Balanced Diet

संरक्षित खाद्य पदार्थों में लगभग उतने ही प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट्स और अन्य रासायन होते हैं, जितने कि ताजे खाने में, किन्तु ताजा खाना अधिक पोषक होता है। कृत्रिम और प्राकृतिक विटामिनों में प्राकृतिक विटामिन कृत्रिम की अपेक्षा अधिक प्रभावी होता है, क्योंकि उसमें अधिक प्राण ऊर्जा होती हैं। खाने को अधिक पकाने से न केवल कुछ

रासायनिक तत्व जल जाते हैं बल्कि काफी मात्रा में उससे प्राण बाहर निकला जाता है।

स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि संतुलित खुराक खायी जाए। संतुलित खुराक क्या होती है– यह न केवल उसके रासायनिक अथवा पोषणकारी तत्वों के उचित मिश्रण से मापना चाहिए, बल्कि उसमें विभिन्न प्रकार की रंगीन प्राणों का क्या उचित मिश्रण होना चाहिए। संतुलित प्राण–खुराक के लिए कदाचित् किन-किन रंगों के खाद्य पदार्थ होने चाहिए, यह खोज का विषय हो सकता है। खाद्य-पदार्थ के रंगों से उसमें अधिकांश रंग के प्राण का पता ज्ञात हो जाना चाहिए। उदाहरण के तौर पर हरी सब्जियों में काफी मात्रा में हरा प्राण होता है और गाजर में काफी नारंगी प्राण होता है ; किन्तु इस तरह की दृष्टि सब जगह घटित नहीं होती– जैसे कि लाल टमाटर में काफी मात्रा में पीला सा हरा (Yellowish--Green) प्राण होता है और लाल प्राण बहुत कम होता है और तरबूज में जिसमें कि हरा छिल्का ओर लाल गूदा होता है, उसमें काफी मात्रा में हरा प्राण तो होता ही है किन्तु लाल प्राण कदाचित् ही होता है।

(४) दवा और प्राण – Medicines and Prana

पाश्चात्य दवाओं का दृष्टिकोण भारतीय (आयुर्वेदिक) और चीनी दवाओं के दृष्टिकोण से बहुत भिन्न है। पाश्चात्य की रासायनिक या भौतिक है, जब कि आयुर्वेद की अधिक गूढ़ है। आयुर्वेदिक तथा चीनी दवाओं में प्राण ऊर्जा और शरीर में प्राण–समन्वयता पर बल दिया जाता है। चीनी उपचारों के अन्तर्गत इस दृष्टिकोण का विभिन्न जड़ी बूटियों और एक्यूपंचर द्वारा काफ़ी विकास किया गया है, यद्यपि भारत में भी जड़ी बूटी के सम्बन्ध में चेतना जाग गयी है।

(५) भोजन का रोग पर प्रभाव– प्राणिक दृष्टि– Effect of Diet on Disease- Pranic View

यह सर्वविदित है कि गर्म मसालेदार भोजन के द्वारा बवासीर पीड़ित रोगी की दशा बिगड़ जाती है। ऐसा क्यों होता है ? ऐसा इसलिए है

कि बवासीर रोग में गुदा के क्षेत्र पर लाल प्राण का घनापन होता है। और जाहिर है कि गर्म मसालेदार भोजन के द्वारा, जिसमें काफी मात्रा में लाल प्राण होता है एरोग बढ़ जाएगा। जिन व्यक्तियों के कब्ज होने की प्रवृत्ति होती है, वह अपनी दशा पपीता खाकर सुधार सकते हैं, जिसमें काफी मात्रा में नारंगी प्राण होता है जो दस्त करने के लिए उत्तेजित करता है।

(६) **रंगीन प्राण ऊर्जा के गुणों के आधार पर जड़ी बूटियां और दवाओं का विभागीयकरण— Classifying herbs and drugs using the properties of Colour Pranas**

रंगीन प्राणों के गुणों के दृष्टिकोण से जड़ी-बूटियों और दवा के विभागीयकरण की प्रस्तावना की जाती है। इन सबका एक चार्ट बनाया जा सकता है। लम्बवत स्तर पर विभिन्न रंगीन प्राणों और मिश्रित रंगीन प्राणों और उनके गुण दर्शाए जाएं। क्षितिज स्तर पर शरीर व फिर विभिन्न अंगों/उपांगों को दर्शाया जाय। जड़ी-बूटियों और दवाओं की तब उस चार्ट में यथायोग्य सूची बनायी जाए। जैसे मूत्र लाने वाली (diuretic) दवा को नारंगी अथवा पीला—नारंगी प्राण जिसका निष्कासन का गुण होता है के अन्तर्गत रखा जाए। दर्द नाशक (Analgesics or pain killers) दवाओं को नीले प्राण जिसका सुकून देने का प्रभाव होता है, के अन्तर्गत रखा जाए। जो जड़ी-बूटियां रक्त के थक्के को घोलती है, उनको हरे प्राण जो कि तोड़ता है और घोलता है, के अन्तर्गत रखा जाए। इस चार्ट में जिनसैंग नामक जड़ी-बूटी, जिसका वर्णन अध्ययाय ३२ में किया गया है, का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस चार्ट को भरने के लिए अनेकों अनुभवी जड़ी-बूटियों व औषधि-कारकों को बहुत अधिक शक्ति और समय का उपयोग करके दृढ़-निश्चयात्मक प्रयत्न करने होंगे।

(७) **पौधे /वृक्ष और प्राण**

अध्याय ३६ के क्रम २ में वर्णन किया गया है कि किस प्रकार पौधों को ऊर्जा के उपचार द्वारा शीघ्र विकसित किया जा सकता है। यह क्षेत्र

अभी तक लगभग अनछुआ है। विभिन्न पौधों और वृक्षों में कौन–कौन से प्राण उपलब्ध होते हैं, विभिन्न प्राणों का उन पर क्या प्रभाव पड़ता है और प्राण दृष्टिकोण से मनुष्य एवम् पशुओं के किस प्रकार वे उपयोगी हो सकते हैं।

(ख) प्राण ऊर्जा के पता लगाने एवम् मापने के गूढ़ संयंत्र को विकसित करना– Developing Sophiticated equipment that can detect and quantify prana or vital energy

प्राणिक प्रेषण और प्राण– ऊर्जा की खपत नापने के गूढ़ संयंत्र को विकसित करने की आवश्यक्ता है। किर्लियन फोटोग्राफी की एक बहुत बड़ी कमी यह है वह केवल छोटे–छोटे ऊर्जा के आकारों अथवा संयंत्र के सम्पर्क में आये हुए वस्तुओं की ही फोटो ले सकता है। एक ऐसे अधिक व्यवहारिक और उन्नत किस्म के केमरे के विकास की आवश्यक्ता है जो ऊर्जा की वस्तुओं अथवा ऊर्जा–जीवियों के चित्रों की दूर से ही फोटो ले सके।

(ग) प्राण–ऊर्जा का शरीर के कोशिकाओं पर प्रभाव– Effect of Pranic Energy on Body Cells

यह किस प्रकार होता है। जब त्वचा गर्म तेल के सम्पर्क में आती है तो कोशिकाएं क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। किन्तु यदि प्राण उपचार तुरन्त ही कर दिया जाए, तो त्वचा को क्षति नहीं पहुंचती अथवा बहुत कम क्षति होती है। प्राण–ऊर्जा कोशिकाओं व उसके भागों पर यह किस तरह से प्रभाव डालती है?

(घ) रंगीन प्राणों की सहायता से कृत्रिम रासायनों को बनाना– Production of Synthetic Chemicals with the help of Colour Pranas

जब नारंगी–लाल प्राण ऊर्जा ताजे घाव में प्रेषित की जाती है, तो घाव शीघ्रता से भर जाता है। इस संबंध में अध्याय ८ के क्रम संख्या ११ तथा अध्याय ६ के क्रम १० (१८) को देखिए। क्या नारंगी–लाल प्राण किसी रासायन या रासायनों के उत्पादन को उत्तेजित करता है जिससे धाव के उपचार की गति बढ़ जाती है? यदि

ऐसा है, तो क्या यह सम्भव है कि इसके द्वारा कृत्रिम तौर पर उन रासायनों का उत्पादन हो सके ? इसी प्रकार का अनुसंधान अन्य रंगीन प्राणों पर भी किया जा सकता है।

(४) प्राण ऊर्जा विज्ञान का प्रसार– **Globalizing Pranic Science**

विश्व प्राणिक उपचार की संस्था फ़िलीप्पीन्स में है,जिसका पता निम्न है:

एक्जीक्यूटिव उपाध्यक्ष,	**Executive Vice President,**
विश्व प्राणिक-उपचार, फ़ाउन्डेशन	**World Pranic Healing Foundation,**
पोस्ट बाक्स ९१०१,	**Post Box No. 9101,**
एम.सी.एस. मेलिंग केन्द्र,	**M C S Mailing Centre,**
मकाटी,	**Makati,**
मैट्रो मनीला,	**Metro Manila**
फ़िलीप्पीन्स,	**Philippines**

इस संस्था का उद्देश्य विकासशील देशों में प्राणिक उपचार की कला व विज्ञान का प्रसार करना है, जिसकी उन देशों में आवश्यक्ता है। वर्तमान में इसकी शाखएं दक्षिण अमेरिका महाद्वीप में, अर्जेन्टाइना तथा ब्राज़ील, उत्तरी अमेरिका महाद्वीप में कनाडा, संयुक्त राष्ट्र ऑफ अमेरिका तथा मैक्सिको, यूरोप महाद्वीप में ऑस्ट्रिया, बैल्जियम, लक्जै़म्बर्ग, फ़िनलैंड, जर्मनी, इटली, आयरलैंड, नीदरलैंड (हॉलैंड), पोलैण्ड तथा स्विटज़रलैण्ड, ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में ऑस्ट्रेलिया व एशिया महाद्वीप में इण्डोनेशिया, फिलिप्पीन्स मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैण्ड तथा भारत में। भारतवर्ष में इसका विवरण अध्याय ४ के अन्त में दिए गए परिशिष्ट ५.०१ में दिया गया है ।

यह परामर्श दिया जाता हे कि अपने–अपने क्षेत्रों में प्राणशक्ति उपचारक एक संस्था बना लें, जिसके उद्देश्य निम्नवत हों :

(क) प्राण--शक्ति उपचार की प्रैक्टिस (Practice) का नियमन व उपचार की गुणवत्ता का सुनियोजन।

(ख) प्राण-शक्ति उपचार में हुए खोज व नयी–नयी तकनीकों के विषय में सूचना उपलब्ध कराना।

(ग) प्राण-शक्ति उपचार की प्रैक्टिस का प्रचार करना एवम् सरकारों के शिक्षा व स्वास्थ्य विभागों द्वारा रोगों के उपचार में वैकल्पिक रूप में प्राण-शक्ति उपचार को लागू करवाना।

(घ) प्राण-ऊर्जा के क्षेत्र में खोज एवम् अनुसंधान को प्रोत्साहन देना।

(ङ) अपने-अपने क्षेत्र की प्रचलित भाषा में प्राणशक्ति उपचार से सम्बन्धित पाठ्य पुस्तकों को उपलब्ध अंग्रेजी भाषा का रूपान्तर करवाकर उपलब्ध करना। वर्तमान में श्री चोआ कोक सुई द्वारा लिखित हिन्दी भाषा "प्राणशक्ति उपचार– प्राचीन विज्ञान और कला (परासामान्य उपचार की प्रायोगिक पुस्तिका" नाम से पुस्तक जो "The Ancient Science and Art of Pranic Healing (Practical Manual on Paranormal Healing)" नाम की अंग्रेजी पुस्तक की रूपान्तर है, बाजार में उपलब्ध है तथा इसके अतिरिक्त जर्मन, पुर्तगाली, फिलिपीनो, इण्डोनेशियन, बहासा, चीनी, फ्रेंच, इटैलियन, डच और पोलिश भाषा में छप चुकी है। इस पुस्तक में मात्र प्रारम्भिक, माध्यमिक, स्व एवम् दूरस्थ प्राणशक्ति का ही वर्णन है। उन्नतशील रंगीन, मनोरोग, रत्नों द्वारा, निर्देशित, प्रार्थना द्वारा, प्राणिक लेसर प्राणशक्ति एवम् दिव्य उपचारों का वर्णन अंग्रेजी भाषा में ही है, किन्तु बाजार में इनकी भी पुस्तकें नहीं मिलती। यह पुस्तकें जब कोई अभ्यार्थी प्राणशक्ति प्रशिक्षण प्राप्त करता है, तभी उसको उपलब्ण हो पाती है। यह इस कारण से है कि सही प्रशिक्षण के द्वारा इन उपचारों का प्रभाव सुनिश्चित हो सकता है।

(५) प्राण ऊर्जा विज्ञान का साहित्य– Literature of Pranic Energy Science

(क) प्राणशक्ति उपचार– प्राचीन विज्ञान और कला (हिन्दी भाषा में) एवम् The Ancient Science and Art of Pranic Healing (in English language)-- इसी पुस्तक में भी लिंग (Mei Ling) प्राणिक उपचार केन्द्रों तथा विश्व की अन्य परासामान्य संस्थाओं के पते और गूढ़ विज्ञान अध्ययन तथा गूढ़ विज्ञान अभ्यास पर अनेक सुझाई गयी पुस्तकों के नाम (मय उनके लेखकों के नाम) दिए गए हैं। यह पुस्तकें खोज व अनुसंधान को आगे बढ़ाने में सहायक हो सकती है।

(ख) Advanced Pranic Healing (उन्नतिशील प्राणशक्ति उपचार)

(ग) Pranic Psychotherapy (प्राणिक मनोरोग चिकित्सा)

(घ) Pranic Crystal Healing (रत्नों द्वारा प्राणशक्ति उपचार)

ये सभी पुस्तकें अंग्रेजी भाषा की हैं और सभी श्री चोआ कोक सुई द्वारा लिखित हैं।

(६) **श्री चोआ कोक सुई के सौजन्य से पाठ्यक्रमों द्वारा प्रशिक्षण— Courses conducted by the courtesy of Sri Choa Kok Sui**

(क) Master Choa Basic Pranic Healing Course– प्रारम्भिक प्राणशक्ति उपचार

(ख) Master Choa Advanced Pranic Healing Course – उन्नतशील प्राणशक्ति उपचार– इसके लिए पहले उक्त पाठ्यक्रम (क) करना आवश्यक है।

(ग) Master Choa Pranic Psychotherapy Course– प्राणिक मनोरोग चिकित्सा– इसके लिए पहले उक्त पाठ्यक्रम (क) व (ख) करना आवश्यक है।

(घ) Master Choa Pranic Crystal Healing Course– रत्नों द्वारा प्राणशक्ति उपचार– इसके लिए पहले उक्त पाठ्यक्रम (क), (ख) व (ग) करना आवश्यक है।

(ङ) Arhatic Yoga – अर्हत योग– इसके लिए उक्त पाठ्यक्रम (क), (ख) व (ग) करना आवश्यक है।

(च) Master Choa Financial Prosperity and Success Course– आर्थिक समृद्धि एवं सफलता

(छ) Mental Self Defence–मानसिक स्व-रक्षा

(ज) Simplified Chi Kung and Others– सरलीकृत ची कुंग (एक प्रकार की प्राणशक्ति द्वारा कराटे) तथा अन्य

इन पाठ्यक्रमों को करने का सुझाव दिया जाता है। इनसे न केवल प्राणशक्ति विज्ञान का जीवन में लाभ उठाया जा सकता है, अपितु खोज एवम् अनुसंधान में यह सहायक होंगे।

(७) **प्राणशक्ति विज्ञान की विद्या एवम् उसके द्वारा उपचार के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में सभावित उपयोग— The Science of Pranic Energy and its application in fields (other than healing)**

जिस प्रकार विज्ञान का उपयोग इंजीनियरिंग क्षेत्र में होता है, खगोल विज्ञान (astronomy) का उपयोग ज्योतिष (astrology) में किया जाता है, उसी प्रकार प्राण ऊर्जा का उपयोग प्राणशक्ति उपचार में किए जाने के अतिरिक्त, अन्य क्षेत्रों में सम्भावित उपयोगों के विषय में भी विचार किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ

(१) प्राणशक्ति उपचार– प्राचीन विज्ञान और कला– लेखक श्री चोआ कोक सुई

(२) The Ancient Science & Art of Pranic Healing by Sri Choa Kok Sui

(३) Advanced Pranic Healing by Sri Choa Kok Sui

(४) Pranic Psychotherapy by Sri Choa Kok Sui

(५) Pranic Crystal Healing by Choa Kok Sui

(६) उन्नतशील प्राणशक्ति उपचार के शिक्षक श्री क्लिफ़ सल्दान्हा (Sri Clifff Saldanha), चेन्नई द्वारा प्रस्तुतकर्ता को प्रारम्भिक प्राण उपचार, उन्नतशील प्राण उपचार एवम् प्राण मनोरोग उपचार का प्रशिक्षण

(७) अति उन्नतशील प्राणशक्ति उपचार के शिक्षक श्री डेनियल गोरगोनिया (Sri Daniel Gorgonia), विश्व प्राणिक संस्था, फिलिप्पीन्स (World Pranic Foundation, Philippines) द्वारा प्रस्तुतकर्ता को रत्नों द्वारा प्राण चिकित्सा का प्रशिक्षण

(८) भक्तामर स्तोत्र — परमपूज्य श्री १०८ मानुतङ्गाचार्य कृत

(९) श्रीपाल चरित्र– स्व. कवि परिमल्ल कृत पद्य ग्रन्थ का पं. दीपचन्द्र जी वर्णी द्वारा हिन्दी भाषा में अनुवाद

(१०) चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर जी– लेखक पं. सुमेरुचन्द्र दिवाकर

(११) आराधना कथा कोष, तीसरा भाग– लेखक ब्रह्मचारी श्री नेमदत्त जी

(१२) जैन रामायण– रचियता महाकवि खुशालचन्द्र जी, हिन्दी भाष्यकार चारित्र शिरोमणि आचार्य श्री १०८ ज्ञान सागर जी

(१३) जैन धर्म की रहस्यमयी गुप्त विद्यायें–संग्रहकर्ता–आचार्य श्री १०८ दयासागर जी महराज।

(१४) परम पूज्य आचार्य श्री १०८ दयासागर जी महराज का मार्गदर्शन।

(१५) लेख "Why atheletes use banned drugs" जिसका प्रकाशन अंग्रेजी समाचार पत्र "The Hindustan Times" में वर्ष २००४ में हुआ।

(१६) लेख "Moving into Meditation" लेखक– Veena Minocha, जिसका प्रकाशन अंग्रेजी समाचार पत्र "The Hindustan Times" में १७ अगस्त २००४ को हुआ।

(१७) लेख "Gem Power", जो "Website www.galaxyofhealth.com से लेकर, अंग्रेजी समाचार पत्र "The Times of India, Lucknow" ने २४.६.२००१ को प्रकाशित किया।

भाग–६

अध्यात्म और प्राण ऊर्जा

PART 6

SPIRITUALITY AND PRANIC ENERGY

भाग — ६

अध्यात्म और प्राण–ऊर्जा

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
१	भूमिका	
	१ रत्नत्रय, ध्यान और पञ्च परमेष्ठी	६.१
	२ ध्याता, ध्यान और ध्येय	६.५
	३ ध्याता के अधिकारी एवम् प्रस्तुतकर्ता की लघुता	६.५
२	इस भाग में वर्णित अध्यात्म के लिए आवश्यक योग्यता	६.६
३	प्राण ऊर्जा द्वारा अध्यात्म क्षेत्र में प्रवेश	६.८
	१. पंच परमेष्ठी को साक्षात नमस्कार	६.८
	२. पंच परमेष्ठी को परोक्ष नमस्कार	६.६
	३. ऊर्जा के दीपक द्वारा आरती	६.६
	४. स्वयं की पवित्र स्थलों की ऊर्जा यात्रा	६.१०
४	अध्यात्म क्षेत्र में प्राण ऊर्जा द्वारा गहन प्रवेश	६.१०
५	अध्यात्म क्षेत्र में प्राण ऊर्जा के प्रवेश के सम्बन्ध में अनुसंधान की आवश्यकता	६.१५
६	सन्दर्भ	६.१५

भाग — ६

अध्यात्म और प्राण-ऊर्जा

मङ्गलाचरण

कमठोपसग्ग–दलणं, तिहुयण–भवियाण मोक्ख देसयरं।

पणमह पास–जिणेसं, घाइ–चउक्कं विणासयरं।।२३।।

अर्थ– कमठकृत उपसर्ग को नष्ट करने वाले, तीनों लोकों सम्बन्धी भव्यों के लिए मोक्ष के उपदेशक और घाति–चतुष्टय के विनाशाक पार्श्व–जिनेन्द्र को नमस्कार करो।।२३।।

अध्याय १ — भूमिका

१. रत्नत्रय, ध्यान और पंच परमेष्ठी

भाग १ में इनका वर्णन दिया गया है। ध्यान का विशेष वर्णन उसके अध्याय ५ में दिया है। उन सबको यहाँ न दोहराते हुए, वहाँ वर्णित धर्म ध्यान के अर्न्तगत आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय भेदों की ओर पाठक का ध्यान आकर्षित करना है। प्रथम तीन प्रभेद श्रावक व मुनि दोनों कर सकते हैं, किन्तु संस्थान विचय के अर्न्तगत पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ एवम् रूपातीत ध्यान के अधिकारी निर्ग्रन्थ मुनि हैं। इनमें से श्रावक अभ्यास अथवा प्रशिक्षण हेतु पिण्डस्थ धर्मध्यान कर सकते हैं, जिसका विस्तृत वर्णन भाग १ के अध्याय ५ के क्रम १२ पर दिया है।

जो ध्यानविषैं परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्माका स्वरूप है तिसस्वरूपरूपके आराधनेंविषैं नायक प्रधान पंच परमेष्ठी हैं तिनिकूं ध्यावनां, यह अष्ट पाहुड़ में भावपाहुड़ में परम पूज्य श्री १०८ कुन्दकुन्दाचार्य उपदेश करै हैं :–

गाथा — **झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।**
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ।। १२४ ।।

संस्कृत — **ध्याय पंच अपि गुरून् मंगलचतुः शरणपरिकरितान् ।**
नरसुरखेचरमहितान् आराधनानायकान् वीरान् ।। १२४ ।।

अर्थ – हे मुने ! तू पंच गुरु कहिये पंच परमेष्ठी हैं तिनहिं ध्याय, इहां "अपि" शब्द है सो शुद्धात्मस्वरूपके ध्यानकूं सूचै है, ते पंच परमेष्ठी कैसे हैं – मंगल कहिये पाप का गालण अथवा सुखका देना अर चउशरण कहिये च्यार शरण अर लोक कहिये लोकके प्राणी तिनिकरि अरहंत सिद्ध साधु केवलि प्रणीत धर्म ये परिकरित कहिये परिवारित हैं युक्त हैं, बहुरि नर सुर विद्याधरनिकरि महित हैं पूज्य हैं लोकोत्तम कहै हैं, बहुरि आराधन के नायक हैं, बहुरि वीर हैं कर्मनिके जीतनेंकूं सुभट हैं तथा विशिष्ट लक्ष्मांकूं प्राप्त है तथा देहैं, ऐसे पंच परम गुरुकूं ध्याय।।

भावार्थ – इहां पंच परमेष्ठीकूं ध्यावनां कह्या तहां ध्यानविषैं विघ्नके निवारनेवाले च्यार मंगलस्वरूप कहे ते येही हैं, बहुरि च्यार शरण अर लोकोत्तम कहे हैं ते भी इनिहीकूं कहे हैं; इनिसिवाय प्राणीकूं अन्य शरणां रक्षा करनेंवालाभी नाहीं है, अर लोकविषैं उत्तमभी येही हैं, बहुरि आराधना दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये च्यार हैं ताकै नायक स्वामीभी येही हैं, कर्मनिकूं जीतनेंवालेभी येही हैं। तातैं ध्यानके कर्त्ताकूं इनिका ध्यान श्रेष्ठ है, शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति इनिहीके ध्यानतैं होय है तातैं यह उपदेश है।।१२४।।

इसी अष्ट पाहुड़ में मोक्षपाहुड़ में (पृष्ठ ३५६) में वर्णन है कि आगैं आचार्य कहै हैं जो – अरहंतादिक पंच परमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषैं ही हैं तातैं आत्मा ही शरण है:–

गाथा – **अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।**
ते वि हु चिट्ठहि आधे तम्हा आदा हु मे सरणं।।१०४।।

संस्कृत – **अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपाध्यायाः साधवः पंच परमेष्ठिनः।**
ते अपि स्फुटं तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं।।१०४।।

अर्थ – अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय अर साधु ये पंच परमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषैं ही चेष्टारूपहैं आत्मा की अवस्थाहैं तातैं मेरै आत्माहीका शरणा है, ऐसैं आचार्य अभेदनय प्रधानकरि कह्या है।।

भावार्थ – ये पांच पद आत्माहीके हैं जब यह आत्मा घातिकर्मका नाश करै है तब अरहंतपद होय है, बहुरि सो ही आत्मा अघातिकर्मनिका नाशकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय

है तब सिद्धपद कहावै है, बहुरि जब शिक्षा दीक्षा देने वाला मुनि होय है तब आचार्य कहावै है, बहुरि पठनपाठनविषैं तत्पर ऐसा मुनि होय है तब उपाध्याय कहावै है, अर जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गकूं केवल साधैही तब साधु कहावै है, ऐसैं पांचूं पद आत्माहीमैं हैं। सो आचार्य विचारै है जो या देहमैं आत्मा तिष्ठै है सो यद्यपि कर्मआच्छादित है तौऊ पांचूं पदयोग्य है, याहीकूं शुद्धस्वरूप ध्याये पांचूं पदका ध्यान है तातैं मेरै या आत्माहीका शरणा है ऐसी भावनां करी है, अर पंचपरमेष्ठीका ध्यानरूप अंतमंगल जानाया है ।।१०४।।

मोक्षपाहुड़ अध्याय के अन्त में (पृष्ठ ३६१) निम्नवत भाष्या है :

छप्पय।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं ।
सैवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अधिकारू।।
इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो
भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो।।१।।

दोहा

बंदूं मंगलरूप जे अर मंगलकरतार।
पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार।।२।।

इहां कोई पूछै— जो ग्रंथनिमैं जहां तहां पंचणमोकारकी महिमा बहुत लिखी, मंगलकार्यमैं विघ्नके मेटनेंकूं यही प्रधान कह्या, अर यामैं पंचपरमेष्ठीकूं नमस्कार है सो पंचपरमेष्ठीकी प्रधानता भई, पंचपरमेष्ठीकूं परम गुरु कहे तहां याही मंत्रकी महिमा तथा मंगलरूपपणा अर यातैं विघ्नका निवारण अर पंचपरमेष्ठीकै प्रधानपणां अर गुरुपणां अर नमस्कार करनें योग्यपणां कैसैं है ? सो कहनां।

ताका समाधानरूप कछूक लिखिये है :— तहां प्रथम तौ पंचणमोकार मंत्र है, ताके पैंतीस अक्षर हैं, सो ये मंत्रके बीजाक्षर हैं तथा इनिका जोड़ सर्व मंत्रनितैं प्रधान है, इनि अक्षरनिका गुरु आम्नायतैं शुद्ध उच्चारण होय तथा साधन यथार्थ होय तब ये अक्षर कार्यमैं विघ्नके निवारणेंकूं कारण हैं तातैं मंगलरूप हैं। जो " मं " कहिये पाप

ताकूं गालै ताकूं मंगल कहिये तथा " मंग " कहिये सुखकूं ल्यावै दे ताकूं मंगल कहिये सो यातैं दोऊ कार्य होय हैं। उच्चारणतैं विघ्न टलैं हैं, अर्थ विचारे सुख होय है, याही तैं याकूं मंत्रनिमैं प्रधान कह्या है, ऐसैं तौ मंत्रके आश्रय महिमा है। बहुरि पंचपरमेष्ठीकूं नमस्कार यामैं है – ते पंचपरमेष्ठी अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये हैं सो इनिका स्वरूप तौ गंथनिमैं प्रसिद्ध है, तथापि कछू लिखिये है :

— x — x — x —

संसारमैं चतुर्गतिविषैं अनेक प्रकार सुखदुःखरूप भया भ्रमै है, तहां कोई काल ऐसा आवै जो मुक्त होनां निकट आवै तब सर्वज्ञके उपदेशका निमित्त पाय अपनां स्वरूपकूं अर कर्मबंधका स्वरूपकूं अर आपमैं विभावका स्वरूपकूं जानै इनिका भेद ज्ञान होय तब परद्रव्यकूं संसारके निमित्त जानि तिनितैं विरक्त होय अपने स्वरूपका अनुभवका साधन करै दर्शनज्ञानरूप स्वभावविषैं स्थिर होनेंका साधन करै तब याकै बाह्य साधन हिंसादिक पंच पापनिका त्यागरूप निर्ग्रन्थपद सर्व परिग्रहका त्यागरूप निर्ग्रन्थ दिगंबर मुद्रा धारै पांच महाव्रत पांच समितिरूप तीन गुप्तिरूप प्रवर्तै तब सर्व जीवनिकी दया करनेंवाले साधु कहावै, तामैं तीन पदवी होय-- जो आप साधु होय अन्यकूं साधुपद की शिक्षादीक्षा देय सो तौ आचार्य कहावै, अर साधु होय जिनसूत्रकूं पढ़ै पढ़ावै सो उपाध्याय कहावै, अर जो अपनें स्वरूपका साधनमैं रहे सो साधु कहावै अर जो साधु होय अपनें स्वरूपका साधनका ध्यानका बलतैं च्यारि घातिकर्मनिका नाशकरि केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्यकूं प्राप्त होय सो अरहंत कहावै, तब तीर्थंकर तथा सामान्यकेवली जिन इंद्रादिककरि पूज्य होय तिनिकी वाणी खिरै जिसतैं सर्व जीवनिका उपकार होय अहिंसाधर्म का उपदेश होय सर्व जीवनिकी रक्षा करावै यथार्थ पदार्थनिका स्वरूप जनाय मोक्षमार्ग दिखावै ऐसी अरहंत पदवी होय हैं, बहुरि जो च्यारि अघाति कर्मकाभी नाशकरि सर्व कर्मनितैं रहित होय सो सिद्ध कहावै। ऐसैं ये पांच पद हैं, ते अन्य सर्व जीवनितैं महान हैं तातैं पंचपरमेष्ठी कहावैं हैं, तिनिके नाम तथा स्वरूपके दर्शन तथा स्मरण ध्यान पूजन नमस्कारतैं अन्य जीवनिके शुभपरिणाम होय हैं तातैं पाप का नाश होय है, वर्त्तमानका विघ्न विलय होय है, आगामी पुण्यका बंध होय है तातैं स्वर्गादिक शुभगति पावै है। अरि इनिकी अज्ञानुसार प्रवर्त्तनेंतैं परंपराकरि संसारतैं निवृत्तिभी होय है तातैं ये पंच परमेष्ठी सर्व जीवनि के उपकारी परमगुरु हैं, सर्व संसारी जीवनिकै पूज्य हैं। .... ऐसैं जिनमतमैं इनि पंच परमेष्ठीका महानपणां प्रसिद्ध

है अर न्यायके बलतैंभी ऐसैंही सिद्ध होय है जातैं जे संसारके भ्रमणतैं रहित होय तेही अन्यकै संसारका भ्रमण मेटनेकूं कारण होय जैसैं जाकै धनादि वस्तु होय सो ही अन्यकूं धनादिक दे अर आप दरिद्री होय तब अन्यका दरिद्र कैसैं मेटैं, ऐसैं जाननां। ऐसैं जिनकूं संसारके विघ्न दुःख मेटनें होय अर संसार का भ्रमणका दुःखरूप जन्म मरणतैं रहित होनां होय ते अरहंतादिक पंचपरमेष्ठी का नाम मंत्र जपो, इनिके स्वरूपका दर्शन स्मरण ध्यान करो, तातैं शुभ परिणाम होय पापका नाश होय, सर्व विघ्न टलैं परंपराकरि संसारका भ्रमण मिटै कर्मका नाश होय मुक्तिकी प्राप्ति होय, ऐसा जिनमत का उपदेश है सो भव्य जीवनिकै अंगीकार करनें योग्य है।

२. ध्याता, ध्यान और ध्येय

उक्त कथन से स्पष्ट है कि जिन आज्ञानुसार पंच परमेष्ठी के नाम का मंत्र जपना, इनके स्वरूप का दर्शन, स्मरण एवम् ध्यान के माध्यम से परम्परा से निर्वाण प्राप्ति होती है एवम् ये ही परमगुरु एवम् जगद्‌गुरु हैं। अर्थात, ध्याता– भव्य संसारी जीव, ध्यान– पंचपरमेष्ठी तथा ध्येय– पंच परमेष्ठी हैं। जब आप इस ध्यान के प्रसंग में पंच परमेष्ठी के गुणों को अपने आत्मा के अप्रकट गुणों से तुलना करेंगे, तो पाएंगे कि आपकी शुद्ध आत्मा ही पंच परमेष्ठी का स्वरूप है। इस ध्यान में जब गहरे उतरेंगे, तो स्व-आत्मा और पंच परमेष्ठी के ध्यान में इतना मग्न हो जाएंगे कि संसार का भान ही नहीं रहेगा एवम् आपने आत्मा के आनन्द में आत्म–विभोर हो जाएंगे, तब पंच परमेष्ठी अथवा स्व–आत्मा के ध्यान में चरम अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय का भेद समाप्त हो जाएगा, अर्थात आत्मा द्वारा, शुद्ध आत्मा का ध्यान करके, शुद्धात्मा ही ध्यान का लक्ष्य हो जाएगा। यह प्रशस्त मार्ग व्यवहार रत्नत्रय से निश्चय रत्नत्रय की ओर ले जाकर, अर्थात परम्परा से परोक्ष रूप से/प्रत्यक्ष रूप द्वारा, असंख्यात/अनन्त कर्मों की निर्जरा से सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कराकर मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

३. ध्याता के अधिकारी एवम् प्रस्तुतकर्ता की लघुता

इस ध्यान के अधिकारी वास्तव में हमारे परम पूज्य निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हैं। पाठक को इनके द्वारा प्राप्त आज्ञा, मार्गदर्शन एवम् उपदेश को सर्वोपरि मानकर श्रावक अवस्था से ही ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। प्रस्तुतकर्ता अत्यन्त बुद्धिहीन एवम् अल्पज्ञ है और ध्यान के प्रकरण में उसका कुछ भी लिखना इस प्रकार है जैसे

कोई बालक सामने थाली में रखे पानी में पड़ रहे चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को पकड़ने का प्रयास करे, अथवा विद्वज्जनों द्वारा मूर्खता के कारण हँसी का पात्र होने पर भी आकाश को मापने का प्रयास करे। बावजूद इसके, आगे के अध्यायों में इस विषय में परोपकार की भावना से ध्यान के विषय में कुछ लिखने की चेष्टा की गयी है। मेरी पंच परमेष्ठी, जिनवाणी एवम् विद्वज्जनों से विनम्र प्रार्थना है इसमें सम्भावित भूलों अथवा अशुद्धियों के लिए मुझे उदारतापूर्वक क्षमा करेंगे।

अध्याय – २

इस भाग में वर्णित अध्यात्म के लिए योग्यता –

आशा है कि पाठको नें अब तक

१. गुरु, गुरु की अनुपस्थिति में जिन मन्दिर में विराजित देव अथवा इन दोनों की अनुपस्थिति में जिनवाणी की साक्षीपूर्वक तीन मकारों (मद्य, मांस, मधु), पंच उदम्बर (बड़, पीपल, पाकर, कठूमर, अंजीर), मक्खन, सप्त व्यसन (द्यूत, मांस, मद्य, शिकार, चोरी करना, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन), रात्रि भोजन (कम से कम अन्न) का त्याग कर दिया होगा।

२. गुरु, देव अथवा जिनवाणी की साक्षीपूर्वक कुछ नियम, जैसे देव दर्शन सम्बन्धी, पानी छानकर पीना, दैनिक स्वाध्याय, दान, चमड़े की वस्तुओं का त्याग, अभक्ष्य का त्याग आदि ले लिए होंगे।

३. भाग १ – अध्यात्म व भाग ४ – प्राण ऊर्जा विज्ञान का गहन अध्ययन कर लिया होगा।

४. इस भव सागर के अन्तहीन भ्रमण से निकलने का संवेगपूर्वक दृढ़ मन बना लिया होगा।

५. पंच परमेष्ठी का ध्यान, स्मरण एवम् मनन का जुनून हो गया होगा, क्योंकि "नहिं त्राता, नहिं त्राता, नहिं त्राता जगत्रिय, वीतराग परो देवो न भूतो, न

भविष्यति" के अनुसार इन ही के माध्यम से लक्ष्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है, अन्य कोई रास्ता नहीं है, न अन्य कोई शरण है।

६. द्वि हृदय पर ध्यान–चिन्तन, जिसका वर्णन भाग ५ के अध्याय ३ के क्रम (ग) में दिया है, उसका अनेकों बार अभ्यास कर लिया होगा। इसमें वर्णित हृदय-चक्र से गुलाबी रंग की ऊर्जा, ब्रह्म–चक्र से सफेद चमकीली ऊर्जा, हृदय तथा ब्रह्म- चक्र से सुनहरे रंग की ऊर्जा को विश्व को प्रेषित करते हुए एवम् इनके द्वारा विश्व को लपेटने का तथा इसके पश्चात् ब्रह्म–चक्र में अत्यन्त तेजमयी ॐ के विराजमान होने का समुचित रूप से भव्य दिग्दर्शन कर लेने का भी अभ्यास कर लिया होगा।

७. प्राण ऊर्जा के जांचने (scanning) में जिसका वर्णन भाग ५ के अध्याय ४ के क्रम ५ (ड.) में दिया है, काफ़ी दक्षता प्राप्त कर ली होगी।

८. प्रारम्भिक व माध्यमिक प्राणशक्ति उपचार में कम से कम अर्धदक्षता प्राप्त कर ली होगी।

९. रंगीन प्राण ऊर्जा का अध्ययन कर लिया होगा, जिसका वर्णन भाग ५ के अध्याय ८ में दिया है, तथा जिसके द्वारा उपचार का कुछ-कुछ अभ्यास कर लिया होगा।

१०. साधरणतः भाग ५ का समस्त अध्ययन कर लिया होगा, विशेषकर अध्याय २३, ३३, ३४ व ३६ का।

११. विद्युतीय बैंगनी ऊर्जा जिसका वर्णन भाग ५ के अध्याय ८ के क्रम २० में दिया है, उसको परमात्मा के आशीर्वाद के फलस्वरूप अपने ब्रह्म–चक्र में प्राप्त करने एवम् इसको प्रेषित करने का समुचित अभ्यास एवम् अनुभव प्राप्त कर लिया होगा एवम् उसके प्रति संवेदनशीलता हासिल कर ली होगी।

१२. भाग ५ के अध्याय २३ के क्रम ७ में वर्णित चक्र व आभामण्डल के कवच तथा अध्याय ३६ के क्रम ५ में बतायी गयी विधि का कुछ अभ्यास कर लिया होगा।

यदि ऐसा है तो, मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस भाग में वर्णित अध्यात्म में प्राण ऊर्जा का योगदान प्रकरण को पढ़कर, उसका अभ्यास करने से इतने दिव्य अनुपम आनन्द मे मग्न हो सकते हैं जिसमें से वापस आने का मन नहीं करेगा। तभी इस

पुस्तक को पढ़ने के दो लक्ष्यों अर्थात् (१) स्व–आत्मा की उन्नति एवम् (२) वैयावृत्य, विशेषकर चतुर्विध संघ की, में से प्रथम लक्ष्य की उपलब्धि हो सकेगी।

यदि आपने उक्त क्रम ७, ८, ६, व १२ में उपरोक्तानुसार दक्षता अथवा अभ्यास नहीं भी किया, तब भी आप प्रयास तो कर सकते हैं।

अध्याय ३

प्राण ऊर्जा द्वारा अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश

१. **पंच परमेष्ठी को साक्षात नमस्कार –**

(क) जिन प्रतिमा अथवा गुरु का साक्षात दर्शन करें। तत्पश्चात् पंच परमेष्ठी से प्रार्थना करते हुए विद्युत बैंगनी (दिव्य) ऊर्जा (eV), जिसका वर्णन भाग ५, अध्याय ८ में दिया है, को अपने ब्रह्म–चक्र (11) में ग्रहण करें एवम् उसको अपने हाथ–चक्र के द्वारा प्रेषण करते हुए, सुनिश्चित करलें कि आप eV को समुचित मात्रा में ग्रहण कर रहे हैं।

(ख) फिर अपना ध्यान आपके सामने विराजित जिन प्रतिमा अथवा गुरु के चरणों में केन्द्रित करते हुए, ध्यान करें कि आपके ब्रह्म–चक्र से नमस्काररूपी ऊर्जा निकल कर उस प्रतिमा अथवा गुरु के श्री चरणों में लगातार जा रही है तथा आपके ब्रह्म-चक्र से उनके चरणों के मध्य एक ऊर्जा का पुल बन गया है तथा इस पुल के माध्यम से आप उनके श्री चरणों में शिरोनति कर रहे हैं, मानों आपका सिर शिरोनति की स्थिति में सीधा ही उनके श्री चरणों से स्पर्श कर रहा है। इस स्थिति में अत्यन्त भक्तिपूर्वक रह कर उनके चरणों के दिव्य स्पर्श का आनन्द उठाइये। कदाचित् आपको ऐसा अनुपम सुख मिलेगा, जिसको शायद पहले अनुभव न किया हो।

(ग) अब विचार कीजिए कि उस जिन प्रतिमा अथवा गुरु के श्री चरणों की पवित्र आशीर्वादात्मक ऊर्जा उनके श्री चरणों से निकल कर आपके ब्रह्म–चक्र के माध्यम से आपके समस्त शरीर में प्रवेश करके आपको आल्हादित एवम्

रोमांचित कर रही है। अर्थात इधर से आप भक्तिपूर्वक अपने ऊर्जा के माध्यम से उनके श्री चरणों में शिरोनति कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप उनके श्री चरणों की आशीर्वादात्मक ऊर्जा आपको ग्रहण हो रही है और इस प्रकार इन दोनों प्रकार की ऊर्जाओं का आदान प्रदान हो रहा है। जब तक आप इस स्थिति में रहना चाहें, रहिए।

२. पंच परमेष्ठी को परोक्ष नमस्कार –

क्रम १ में वर्णित क्रिया का अभ्यास हो जाने के बाद, अब आप उन तीर्थक्षेत्रों, मन्दिरों एवम् उन गुरुओं का स्मरण कीजिए, जिनके दर्शनों का सौभाग्य आपने कभी प्राप्त किया हो। भाग ५ के अध्याय ७ में वर्णित दूरस्थ प्राण चिकित्सा के सिद्धान्तानुसार, अब क्रम १ में वर्णित क्रिया को उन तीर्थक्षेत्रों/मन्दिरों में विराजित जिन प्रतिमाओं एवम् गुरुओं के श्री चरणों के प्रति दोहरायें तथा निरन्तर अभ्यास करें।

ततपश्चात् उन तीर्थक्षेत्रों, जिन मन्दिरों में विराजित जिन प्रतिमाओं एवम् गुरुओं के श्री चरणों के प्रति उक्त क्रिया दोहरायें, जिनको यद्यपि आपने देखा तो न हो, परन्तु जिनकी फोटो आपके पास उपलब्ध हो।

३. ऊर्जा के दीपक द्वारा आरती

जिन मन्दिरों में जाकर अथवा गुरु के समक्ष जाकर, पंच परमेष्ठी से प्रार्थना कर अपने ब्रह्म-चक्र में eV ग्रहण करें और यह सुनिश्चित करके कि वह आपको प्राप्त हो रही है, उससे यह निवेदन करें (तीन बार) कि वह आपके लिए एक जलता हुआ दीपक तैयार करे। इसको अपने आज्ञा-चक्र में ग्रहण करके अपने सिर को भगवान/गुरु के समक्ष नवाते हुए विधिपूर्वक आरती करें, जैसे पंच परमेष्ठी की आरती "यह विधि मंगल आरति कीजे, पंच परम पद भज सुख लीजे ....", अथवा महावीर भगवान, पार्श्वनाथ भगवान अथवा उन गुरु आदि की कोई भी आरती करें। इस आरती का अनुपम आनन्द लें।

उक्त आनन्द को तिगुना करने के लिए eV से पुनः प्रार्थना करें कि वह आपको दो जलते हुए दीपक और तैयार करे। उन दीपकों को आप अपने दोनों आंखों में ग्रहण करें। फिर इस प्रकार तीनों ऊर्जा के दीपकों से आरती करें।

४. स्वयं की विभिन्न पवित्र स्थलों की ऊर्जा यात्रा

भाग ५ के अध्याय ३६ के क्रम ५ के अनुसार एक तीन इंच का eV का वाहन तैयार करें। तत्पश्चात अपने को स्वयं को एक इंच दृश्यीकृत करते हुए, उस वाहन में प्रवेश कर जाएं। फिर ev के उस वाहन के द्वारा विभिन्न तीर्थक्षेत्रों, विदेह क्षेत्रों एवम् मन्दिरों की यात्रा करके वहाँ विराजित पंच परमेष्ठी के दर्शनों का आनन्द उठाइये। आप नन्दीश्वर द्वीप आदि भी जा सकते हैं, जहाँ मानुषोत्तर पर्वत को उल्लघंने का कोई व्यवधान नहीं पड़ेगा।

अध्याय ४

अध्यात्म के क्षेत्र में प्राण ऊर्जा द्वारा गहन प्रवेश

१. प्रथम चरण – पंच परमेष्ठी की प्रतिष्ठा

अध्याय ३ में वर्णित प्रक्रियाओं का अच्छी तरह अभ्यास करें। णमोकार मंत्र व पंच परमेष्ठी में सतत् भक्तिपूर्वक ध्यान करें, यहाँ तक कि वह एक जुनून का रूप लेले। उनके गुणों का लगातार चिन्तवन करें। फिर जब आप पूर्णतः निश्चित हो जाएं कि कोई आपको व्यवधान (disturb) नहीं करेगा, तब जाग्रत बैठी अवस्था अथवा जाग्रत लेटे रहने की अवस्था में आंखें बंद करके eV का उपयोग करते हुए, निम्न क्रियायें करें :–

(क) विदेह क्षेत्र में विराजित विद्यमान विंशति तीर्थंकरों के चरणों में भक्ति एवम् विनयपूर्वक नमोऽस्तु, शिरोनति एवं आवर्त करते हुए, उनसे प्रार्थना करें कि वह आपके साथ सिद्ध लोक चलें। इस प्रार्थना को बार–बार दोहराते हुए, उनको अत्यन्त भक्ति एवम् विनयपूर्वक अपने सिर पर विराजमान करते हुए सिद्ध लोक लेजाएं। इसी प्रकार की प्रार्थना विदेह क्षेत्र में विराजमान समस्त केवली भगवानों से करें एवम् उनको सिद्ध लोक ले जाएं।

(ख) ढ़ाई द्वीप में विराजमान समस्त आचार्यों, उपाध्यायों एवम् साधुओं के चरणों में भक्ति एवम् विनयपूर्वक नमोऽस्तु, शिरोनति एवम् आवर्त करते हुए, उनसे प्रार्थना करें कि वह आपके साथ सिद्ध लोक चलें। इस प्रार्थना को बार–बार दोहराते

हुए, उनको अत्यन्त भक्ति एवम् विनयपूर्वक अपने सिर पर विराजमान करते हुए सिद्ध लोक ले जाएं।

(ग) सिद्ध लोक में विराजमान चौबीसों भगवान एवम् अन्य अनन्तानन्त सिद्ध परमेष्ठियों (जिनके नाम आपको स्मरण हों, उनको नामों से स्मरण करते हुए) के चरणों में भक्ति एवम् विनयपूर्वक नमोऽस्तु, शिरोनति एवम् आवर्त करें।

(घ) eV से प्रार्थना करते हुए एक अत्यन्त रमणीय एवम् दिव्य सिंहासन बनाने के लिए कहें। इसको सुनिश्चित करने के पश्चात्, आप विराजित समस्त अरिहन्त, आचार्य, उपाध्याय, साधु एवम् सिद्ध परमेष्ठियों के चरणों में सिर रखकर अत्यन्त भक्ति एवम् विनयपूर्वक बार-बार प्रार्थना करें कि वे इस सिंहासन में विराजमान हो जाएं एवम् आपके साथ चलें। आप कल्पना करें कि अरिहन्त, सिद्ध (अशरीर), आचार्य, उपाध्याय एवम् साधु (मुनि) परमेष्ठी के प्रथम अक्षरों अ, अ, आ, उ, म से अ + अ + आ + उ + म = आ + आ + उ + म = आ + उ + म = ओ + म = ओम् अथवा ॐ बन गया। अर्थात समस्त पंच परमेष्ठी इस महा पवित्र एक अक्षर वाले ॐ में गर्भित हो गये। यह ॐ इतना तीव्र सफेद प्रकाश वाला होगा, कि जिसकी तीव्रता करोड़ों सूर्य से भी अधिक होगी जैसा कि भाग ५ के अध्याय ३ (ग) में द्वि–हृदय पर ध्यान–चिन्तन के प्रकरण में ॐ के विषय में वर्णित है।

(ङ) आप इस ॐ को अत्यन्त भक्तिपूर्वक उस दिव्य सिंहासन में विनयपूर्वक प्रतिष्ठित कराएं। फिर उस दिव्य सिंहासन को अपने सिर पर रखें और धीरे-धीरे उसको सिद्ध लोक से लाकर, यहाँ अपने ब्रह्म–ऊर्जा चक्र में ले आवें एवम् ॐ में प्रतिष्ठित समस्त पंच परमेष्ठियों को उस दिव्य सिंहासन सहित स्थापित करें। जब आप इसमें सफल हो जाएंगे, तो पायेंगे कि उसका तीव्र दिव्य प्रकाश सब ओर फैल रहा है। ॐ की एक प्रतिबिम्बित प्रतिकृति को अगले हृदय ऊर्जा चक्र द्वारा हृदय में धारण करें। आपकी समस्त आत्मा में एक अत्यन्त दिव्य प्रकाश व दिव्य आनन्द फैल जाएगा, जिसका वर्णन शब्दातीत होगा और मात्र अनुभवगम्य ही होगा। आप यह भी पायेंगे कि आपके ब्रह्म ऊर्जा चक्र के माध्यम से, ॐ के प्रभाव से एक अनुपम दिव्य ऊर्जा आपके समस्त शरीर में प्रवेश कर रही है। कभी–कभी यह ऊर्जा की मात्रा इतनी

अधिक हो सकती है आप उसको सहन नहीं कर पाएंगे और तब आपको मन-ही-मन प्रार्थना करनी होगी कि और अधिक ऊर्जा नहीं चाहिए। आप देर तक इस अनुभव का आनन्द उठाएं।

इसके समापन के समय, आप पुनः पंच परमेष्ठियों को भक्ति एवम् विनयपूर्वक कृतज्ञता ज्ञापन करें एवम् उनको जिस प्रकार आप लाए थे, उसी प्रकार वापस अपने-अपने स्थानों पर प्रतिष्ठित करदें। उनको पुनः बारम्बार नमस्कार, शिरोनति एवम् आवर्त करें। फिर eV को दिव्य सिंहासन बनाने के लिए धन्यवाद दें और उससे इस प्रकार कहें कि चूँकि दिव्य सिंहासन से अभीष्ट कार्य हो चुका है, अतएव उसे अब हटादें। इसको सुनिश्चित करके, फिर वापस अपने साधारण अवस्था में आजाएं। कुछ समय तक इस अनुभव की अनुभूति का आनन्द उठायें, फिर प्रसन्नतापूर्वक आंखें खोलकर हाथ जोड़कर णमोकार मंत्र का उच्चारण करें। आप अपने को पहले से कहीं अधिक अच्छा महसूस करेंगे। अपने इस अनुभव को जीवन की एक अमूल्य निधि समझकर, इसकी अनुभूति से ही पुनः पुनः आनन्द उठायें।

२. **द्वितीय चरण – गंधोदक से आत्म स्नान –**

गंधोदक का मंत्र

(लघु विद्यानुवाद से उद्धृत)

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकम्।
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम्।।
स्यात्सज्ज्ञानचरित्रदर्शनलता संसिद्धिसम्पादकम्।
कीर्ति श्रीजयसाधकं तव जिनस्नानस्य गन्धोदकम्।।४।।

अर्थ – हे जिनेन्द्र देव, आपके स्नान का यह गंधोदक कीर्ति, लक्ष्मी, जय को देने वाला एवम् सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र की लता को पुष्ट कर मोक्ष तक पहुँचाने वाला है। धरणेन्द्र पद, इन्द्र पद, चक्रवर्ती पद, राज्य पद को देने वाला, सातिशय पुण्य का बंध कराने वाला, यहाँ तक कि मुक्ति-रमा का वरण कराने वाला है ।।४।।

नेत्रद्वन्द्वरुजोविनाशनकरं गात्रं पवित्रीकरम्।
वातोत्पित्तकफादिदोषरहितं गात्रं पवित्रं भवेत्।।
कामालक्षयकुष्ठरोगविषमग्राहक्षयंकारि तत्।
श्री मत्पार्श्वजिनेन्द्रपादयुगलस्नानस्य गन्धोदकम्।।५।।

अर्थ – श्रीमद् देवाधिदेव श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र के चरण युगल के स्नान का पवित्र गन्धोदक दोनों नेत्रों के विकारों को दूर करने वाला, शरीर को पवित्र करनेवाला, वात–पित्त–कफ़ादि दोषों को दूर करने वाला तथा कामल, क्षय, कुष्ठादिक विषम और अलंघ्य रोगों का नाश कर, नीरोग करने वाला होता है।।५।।

घातिवातविघातजातविपुलं श्रीकेवलज्योतिषो।
देवस्यास्य पवित्रगात्रकलनात् पूतं हितं मङ्गलम्।।
कुर्याद्भव्यभवार्तिदावशमनं स्वर्मोक्षलक्ष्मीफलम्।
प्रोद्यद्धर्मलताभिवर्धनमिदं सद्गन्धगन्धोदकम्।।६।।

अर्थ – घातिया कर्मों का नाश करने वाले और केवल ज्ञान ज्योति से प्रकाशमान श्री जिनेन्द्र देव के शरीर से स्पर्शित यह पवित्र, हितकारी, मंगलकारी गंधोदक भव्य जीवों के संसार सम्बन्धी दोषों को नष्ट कर मोक्ष लक्ष्मी रूपी फल को देने वाला और धर्म लता की निरन्तर वृद्धि कराने वाला है।।६।।

निःशेषाभ्युदयोपभोगफलवत्पुण्यांकुरोत्पादकम्।
धृत्वा पंक निवारकं भगवतः स्नानोदकं मस्तके।।
ध्यातौ विश्वमुनीश्वरैरभिनुतौ प्रेक्षावतामर्चितौ।
इन्द्राद्यैर्मुहुरर्चितौ जिनपतेः पादौ समभ्यर्चयो ।।७।।

।। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः । मंगलं भूयात् ।।श्रीः।।

अर्थ – हे प्रभो, आपके स्नान का यह जल मस्तक पर धारण करने से समस्त पाप मल अथवा कर्म मल अपना प्रभाव खो देते हैं और वे पल भर में नष्ट हो जाते हैं। यह विश्व के समस्त अभ्युदयों, भोगों और उपभोगों को देकर, सातिशय पुन्य को उत्पन्न कराने वाला है। श्री जिनेन्द्र देव के

इस पवित्र चरण जल को विश्ववंद्य मुनीश्वर, ध्यानी, तपस्वी, इन्द्रादिक देवता, चक्रवर्ती आदि महापुरुष भी नित्य ही अपने मस्तक पर धारण करते हैं। हे प्रभो, आपके चरणों का यह जल निश्चित ही मेरे समस्त दोषों को दूर करेगा।।७।।

।। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः । मंगलं भूयात् ।।श्रीः।।

कायोत्सर्ग (खड़े) अवस्था में, आंखें बंद करके, अपने eV के मध्यम से दिव्य सिंहासन बनायें। फिर जिस भगवान की प्रतिमा का आप अभिषेक करना चाहें, उस जिनालय की प्रतिमा जी को, उन भगवान को नमोऽस्तु व शिरोनति करके एवम् प्रार्थना कर अनुमति लेकर, उस दिव्य सिंहासन में प्रतिष्ठित करें। फिर इस सिंहासन को अपने सिर पर विनयपूर्वक रखकर, अपने स्व-स्थान आजायें।

उक्त क्रिया करके पुनः उन भगवान को नमोऽस्तु व शिरोनति करें। फिर यह कल्पना करें कि आपके दोनों हाथों में दो स्वर्ण कलश हैं जिनमें अभिषेक के योग्य जल भरा हुआ है। फिर "सहस अठोतर कलशा प्रभुजी के सिर दुरें" पढ़ते हुए आप प्रतिमाजी का अभिषेक करें एवम् इसके फलस्वरूप उस पवित्र गन्धोदक से आपके समस्त आत्मा में स्नान हो रहा है, ऐसा अनुभव करें। इस स्नान से आपकी अशुद्ध आत्मा धीरे-धीरे स्वच्छ होती हुई, ज्योतिर्मयी चिच्चमत्कारपूर्वक हो रही है। देर तक इस अनुभव का लाभ लें। फिर जिस प्रकार आप प्रतिमाजी को लाए थे, उसी प्रकार उस जिनालय में विनयपूर्वक, उन भगवान को कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए विराजमान करदें। ततपश्चात् प्रतिमा जी को बार-बार नमोऽस्तु करें, शिरोनति करें एवम् आवर्त करके, eV से दिव्य सिंहासन बनाने के लिए धन्यवाद दें और उससे इस प्रकार कहें कि चूंकि दिव्य सिंहासन से अभीष्ट कार्य हो चुका है, अतएव अब उसे हटादें। इसको सुनिश्चित करके वापस अपने साधारण अवस्था में आजाएं। कुछ समय तक इस अनुभूति का आनन्द उठायें, फिर प्रसन्नतापूर्वक आंखें खोलकर हाथ जोड़कर णमोकार मंत्र का उच्चारण करें। आप अपने को पहले से कहीं अधिक

अच्छा महसूस करेंगे। इस अनुभव को जीवन की एक अमूल्य निधि समझकर, इसकी अनुभूति से ही पुनः पुनः आनन्द उठायें।

आत्म शुद्धि मंत्र

ॐ ह्रीं अमृते अमृतोम्दवेः अमृतवर्षीणी अमृतं स्त्रावय स्त्रावय सं सं क्लीं क्लीं ब्लूं द्रां द्रां द्रीं द्रीं दावय दावय सं हं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः स्वाहा।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अस्य आत्म शुद्धि कुरू कुरू स्वाहा।

उक्त अनुभवों को सर्वसाधारण में न बतायें, क्योंकि लोग आपका कदाचित् विश्वास न करें।

अध्याय ५
अध्यात्म क्षेत्र में प्राण ऊर्जा के प्रवेश के सम्बन्ध में अनुसंधान की आवश्यक्ता

विद्वज्जनों एवम् त्यागी गणों से विनम्र निवेदन है कि वे इस क्षेत्र में, जो सम्भवतः नया है, अपने सृजनात्मक एवम् सकारात्मक बुद्धि से प्रयोग एवम् अनुसंधान करें और जनकल्याण के लिए उचित मार्ग दर्शन देने की कृपा करें।

सन्दर्भ –

१. अष्टपाहुड़ विरचित श्री कुन्दकुन्दाचार्य।
२. लघु विद्यानुवाद
३. आचार्य श्री १०८ दयासागर जी महराज का मार्गदर्शन।
४. प्रस्तुतकर्ता के निजी अनुभव।

अन्त मङ्गलाचरण

एस सुरासुर–मणुसिंद–वंदिदं धोद–घाइ–कम्म–मलं।
पणमामि वड्ढमाणं, तित्थं धम्मस्स कत्तारं ।।२४।।

अर्थ – जो इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्तियों से वंदित, घातिकर्मरूपी मल से रहित और धर्म–तीर्थ के कर्ता हैं, उन वर्धमान (अथवा सन्मति, वीर, अतिवीर, महावीर) तीर्थङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ ।। २४।।